✲ आशीर्वाद

राष्ट्रसंत आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म०

✲ परामर्श एवं मार्गदर्शन

श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधर केसरी
श्री मिश्रीमलजी महाराज
उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज
उपाध्याय श्री फूलचन्दजी महाराज 'श्रमण'
उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी महाराज
प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज
मेवाडभूषण श्री प्रतापमलजी महाराज

✲ सम्पादक मण्डल

श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्री अशोक मुनि साहित्यरत्न
श्री अजीत मुनि 'निर्मल'
श्री रमेश मुनि सिद्धान्त-आचार्य
श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'
प० श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल
डा० श्री नेमीचन्द जैन (इन्दौर)
डा० श्री नरेन्द्र भानावत (जयपुर)
डा० श्री सागरमल जैन (भोपाल)
श्री विपिन जारोली (कानोड)

✲ प्रबन्ध सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

✲ सप्रेरक एवं सहयोगी

प० मुनि श्री मूलचन्द जी महाराज
तपस्वी श्री मोहनलाल जी महाराज
प० श्री उदय मुनि जी महाराज
प० भगवती मुनि जी महाराज
प० श्री चन्दन मुनि जी महाराज

✲ सयोजक तथा प्रकाशक

अभयराज नाहर
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
महावीर बाजार, ब्यावर (राजस्थान)

✲ प्रथमावृत्ति—वि० स० २०३५, जनवरी १९७९

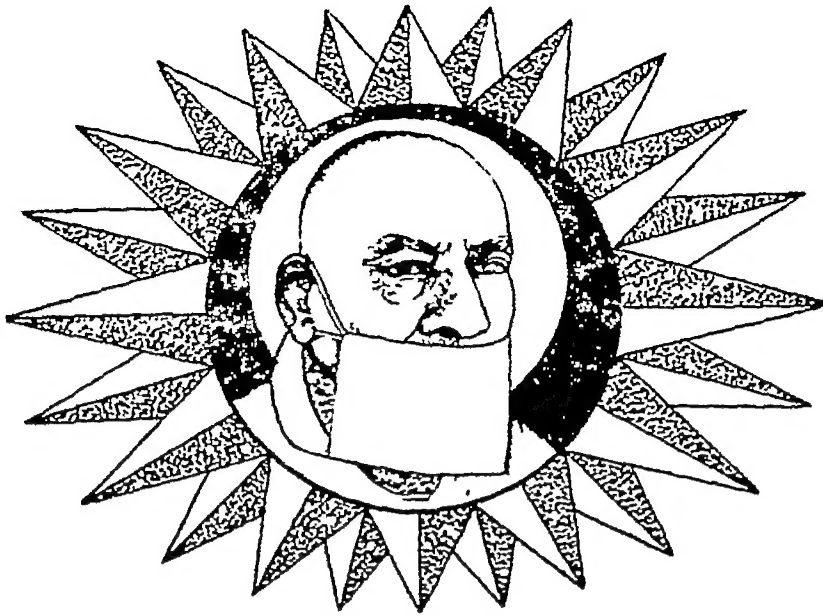
[उदार सहयोगियो से प्राप्त अर्थसहयोग से प्रचारार्थ अर्धमूल्य]
✲ मूल्य—मात्र तीस रुपया

✲ मुद्रक श्रीचन्द सुराना के लिए
श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव द्वारा
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-४



प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज

जन्म	दीक्षा	दिवंगति
वि० सं० १९३४, कार्तिक शुक्ला १३, रविवार, नीमच (मध्यप्रदेश)	वि० स० १९५२, फाल्गुन शुक्ला ५, रविवार	वि० स० २००७ मार्गशीर्ष शुक्ला ९, रविवार कोटा



समर्पण

जिनके दिव्य ज्ञानालोक ने,
हजारों हृदयों का अंधकार दूर किया,
जिनकी अमोघ वाणी ने,
हज़ारों-हज़ार पतितों का उद्धार किया,
जिनकी अनंत करुणा ने,
लाखों जीवों को अभय-दान दिया,
उन श्रद्धा-संयम-सत्य-शील-प्रज्ञा के
साकार-पुरुष,
जैन दिवाकर, जगद्वल्लभ, गुरुदेव,
श्री चौथमल जी महाराज की
पावन स्मृति स्वरूप,
उन्हीं के श्री-चरणों में,
सश्रद्धा, सविनय, सभक्ति...

— केवल मुनि

प्रकाशकीय

तीन वर्ष पूर्व जब श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी वर्ष के आयोजनो का कार्यक्रम बन रहा था, गुरुदेवश्री के भक्तो के मन मे एक उत्साह व उमग की लहर दौड रही थी। अनेक कल्पनाएँ व अनेक कार्यक्रम व सपने आ रहे थे। समारोह को सफलतापूर्वक तथा सुनियोजित तरीके से मनाने के लिए एक महासमिति का भी गठन किया। जिसका नाम था—**श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी समारोह महासमिति।**

इस समिति मे समाज के अनेक गणमान्य, उत्साही कार्यकर्ता, सेवा-भावी तथा दानी-मानी सज्जन सम्मिलित थे। सभी ने उत्साहपूर्वक समारोह मनाने का सकल्प लिया और इस महान् कार्य मे जुट गये।

इन दो वर्षो मे, इन्दौर, रतलाम, जावरा, मन्दसौर, चित्तौड, कोटा, ब्यावर, जोधपुर, उदयपुर, निम्बाहेडा, नीमच, चित्तौड, देहली आदि प्रमुख नगरो मे तथा सैकडो छोटे-छोटे गाँवो मे भी बडे उत्साहपूर्वक अनेक आयोजन हुए, कार्यक्रम हुए। अनेक स्थानो पर गुरुदेवश्री जैन दिवाकर जी महाराज की स्मृति मे, विद्यालय, चिकित्सालय, वाचनालय, साधर्मी-सहायता फड आदि जन-सेवा के महत्त्वपूर्ण कार्यों का प्रारम्भ हुआ, लोगो ने तन-मन-धन से कार्य भी किये और उन्मुक्त मन से सहयोग भी किया। प्राय समूचे भारत के जैनो मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज के पवित्र नाम की गूँज पुन गूँज उठी और उनकी दिव्यता की पावन स्मृतियाँ भी ताजी हो उठी।

गत वर्ष इन्दौर चातुर्मास से पूर्व ही कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज जोकि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रमुख प्रभावशाली शिष्य है, उनके मन मे जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ के निर्माण हेतु भी भावनाएँ जाग रही थी। उनकी इच्छा थी कि उस महापुरुष की स्मृति मे जहाँ सैकडों जन-सेवी सस्थाओ की स्थापना हो रही है, वहाँ उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व के विराट् स्वरूप का दर्शन कराने वाला एक श्रेष्ठ ग्रन्थ भी लोगो के हाथो मे पहुँचना चाहिए।

कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज यद्यपि स्मृति ग्रन्थ के महत्त्व को जानते थे, पर अन्यत्र भी स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन की चर्चाएँ चल रही थी अत उस कार्य से स्वय को पृथक् ही रखा। उसी बीच आपने श्री जैन दिवाकरजी महाराज के विरल व्यक्तित्व का स्पष्ट दर्शन कराने वाली एक पुस्तक लिखी—'श्री जैन दिवाकर'। वैसे यह पुस्तक ही गागर मे सागर थी। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व एव थोडे से विचारो को बडी सुन्दर ललित भाषा मे तथा प्रामाणिक ढग से प्रस्तुत किया गया। सर्व साधारण मे यह प्रकाशन बहुत ही लोकप्रिय बना। चातुर्मास मे कार्तिक शुक्ला १३ के देशव्यापी विशाल समारोह के प्रसग पर मुनिश्री जी की प्रेरणा से 'तीर्थंकर' (मासिक) का एक सुन्दर विशेषाक भी प्रकाशित हुआ। देश विदेश मे विद्वानो व विचारको मे सर्वत्र ही उसकी सुन्दर प्रतिक्रिया रही।

चातुर्मास के पश्चात् गत अप्रैल (वैशाख) महीने मे ब्यावर में जन्म शताब्दी का विशाल

प्रकाशकीय

समारोह आयोजित हुआ। उपाध्याय पं० रत्न श्री मधुकर जी महाराज, श्री प्रतापमलजी महाराज, कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज, प० श्री मूल मुनि जी महाराज, श्री अशोक मुनिजी महाराज आदि मुनिवरो व महासतियो के सम्मिलन से समारोह की शोभा मे चार चाँद लग गये। इस प्रसग पर स्व० गुरुदेवश्री के परम भक्त महाराणा भूपालसिहजी (उदयपुर) के वशज श्रीमान् महाराणा भगवतसिहजी भी पधारे थे।

अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस एव अखिल भारतीय जैन दिवाकर जन्म शताब्दी समारोह महासमिति की खास मिटिंग भी हुई। महासमिति की कार्यकारिणी के समक्ष 'जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ' प्रकाशन का पुन जोरदार आग्रह आया और समिति ने सर्वानुमति से प्रस्ताव पास कर कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज से स्मृति-ग्रन्थ निर्माण का दायित्व अपने हाथो मे लेने की प्रार्थना की।

गुरुदेव की स्मृति मे आयोजित कार्य और समाज की आग्रह-भरी विनती को ध्यान मे रखकर कवि श्री केवल मुनिजी महाराज ने स्मृति-ग्रन्थ सम्पादन आदि का दायित्व स्वीकार कर लिया। रूपरेखा बनी। विद्वानो से विचार-विमर्श हुआ। जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन भी हुआ और कुल मिलाकर **श्री जैन दिवाकर स्मृति** ग्रन्थ के रूप मे यह **श्रद्धा का** सुमन गुरुदेवश्री के चरणो मे समर्पित करने मे हम सफल हुए।

ग्रन्थ के सम्पादन मे श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराना, डा० श्री नरेन्द्र भानावत, श्री विपिन जारोली आदि का भावपूर्ण सहयोग मिला तथा कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज की प्रेम पूर्ण प्रेरणा से प्रेरित होकर अनेक उदार सज्जनो ने अर्थ सहयोग दिया। श्री ज्ञानचन्द जी तातेड, श्री नेमीचन्द जी तातेड श्री कमलचन्द जी धोडावत आदि उत्साही युवको एव बहनो ने भी बहुत सहयोग दिया।

अगर श्रीचन्दजी सुराना का सहयोग नहीं मिला होता तो यह ग्रन्थ इस रूप मे सामने नही आ सकता एव देहली के नवयुवक कार्यकर्ताओ का सहयोग नही होता तो ग्रन्थ अर्थ मूल्य मे प्राप्त होना कठिन था।

साथ ही आगरा के प्रमुख प्रेस श्री दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स के मालिक बाबू पुरुषोत्तमदासजी भार्गव का सहयोग भी चिरस्मरणीय रहेगा, जिन्होने कम समय मे बहुत ही सुन्दर रूप मे मुद्रण-कार्य सम्पन्न कराया।

उक्त सज्जनो के साथ ग्रन्थ के लेखक विद्वानो, मुनिवरो, उदार सहयोगियो के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हुए मैं कामना करता हूँ कि भविष्य मे भी इसी प्रकार सबके सहयोग का सम्बल हमे मिलता रहेगा।

—अभयराज नाहर

जय गुरुदेव !

मन्त्री, जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय

अपनी बात

सन्त का जीवन गगा की धारा की तरह सहज पवित्र और सतत गतिशील होता है। सन्त का चरण-प्रवाह जिधर मुडता है, उधर के वायुमण्डल मे पवित्रता और प्रफुल्लता की गन्ध महकने लगती है। जन-जीवन मे जागृति की लहर दौड जाती है। मानवता पुलक-पुलक उठती है।

स्व० जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमल जी महाराज के दिव्य व्यक्तित्व की सन्निधि इसी प्रकार की थी। उनकी दिव्यता की अनुभूति और प्रतीति जिनको हुई, उनका जीवन क्रम आमूल चूल वदला गया, न केवल वदला, किन्तु पवित्रता और प्रसन्नता से गमक-गमक उठा। चाहे कोई गरीव था या अमीर, राजा था या रक, अधिकारी था या कर्मचारी, किसी भी वर्ग, किसी भी वर्ण, और किसी भी पेशे का व्यक्ति हो, जो उनके निकट मे आया, उनकी वाणी का पारस-स्पर्श किया, उसके जीवन मे एक जादुई परिवर्तन हुआ, सुप्त मानवता अगडाई ले उठी और वह मानव सच्चे अर्थ मे मानव वन गया, मानवता के सन्मार्ग पर चल पडा।

मेरी इस अनुभूति मे श्रद्धा का अतिरेक नही है, यथार्थ का साक्षात्कार है। मैं ही नही, हजारो व्यक्ति आज भी इसमे साक्ष्य हैं कि—ऐसा प्रभावशाली सन्त शताब्दियो मे विरला ही होता है। उनका ज्ञान पाडित्य प्रदर्शन से दूर, गगोत्री के सलिल की तरह शीतल, शुद्ध और विकार रहित था। उनका दर्शन (आस्था) विशुद्ध और सुस्थिर था। वीतराग वाणी के प्रति सर्वात्मना समर्पित थे वे। विभिन्न धर्मो-दर्शनो का अध्ययन किया, अन्य दार्शनिक विद्वानो व धर्मावलम्बियो के सम्पर्क मे भी रहे, पर उनकी चेतना स्वय के रग मे ही रगी रही, समय, परि-स्थिति और भौतिक प्रभाव का रग उन पर नही चढा, वल्कि उनकी प्रचण्ड ज्ञान चेतना का रग ही सम्पर्क मे आने वालो पर गहराता रहा।

गुरुदेव श्री के चारित्र की निर्मलता स्वय मे एक उदाहरण थी। विवाह करके भी जो अखड ब्रह्मचारी रह जाये उसके आत्म-सयम की अन्य कसौटी करने की अपेक्षा नहीं रह जाती। जम्वूस्वामी की तरह सुहागरात को ही 'विराग रात' बनाने वालो की चारित्रिक उज्ज्वलता का क्या वर्णन किया जाय।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज की आत्म-शक्ति अद्भुत थी। उनकी समग्र अन्तश्चेतना जैसे ऊर्ध्वमुखी हो गई थी। वाणी और मन एकाकार थे। वे आगम की भाषा मे—

जोगसच्चे, करणसच्चे, भावसच्चे—थे।

मन से, वचन से, काया से सत्य रूप थे। वे सत्य को समर्पित थे। करुणा उनके कण-कण मे रम चुकी थी। उनकी अहिंसा-जागृत थी। इसलिए अन्ध-विश्वास उनके समक्ष टिके नही, क्रूरता उनकी वाणी से कॉप उठी थी, हिंसा की जडें हिल चुकी थी।

वे समदर्शी थे। धर्म और साधना के क्षेत्र मे किसी भी प्रकार के भेदभाव, ऊँच-नीच की परिकल्पना उनकी प्रकृति के विरुद्ध थी। महलो की मिठाई की अपेक्षा गरीव की रोटी उन्हे अधिक प्रिय थी।

वे एकता और सगठन के प्रेमी थे। वे एकता के लिए हर प्रकार के स्वार्थों का बलिदान कर सकते थे और किया भी, किन्तु सिद्धान्तो की रक्षा करते हुए।

वे एक कर्मयोगी थे। फलाकाक्षा से दूर रहकर अनपेक्ष भाव से कर्तव्य करते जाना— यही उनका जीवन व्रत था।

आज जिस 'अत्योदय' की बात राजनैतिक धरातल पर हो रही है, वह 'अन्त्योदय' की प्रक्रिया उन्होने मानस-परिवर्तन के साथ अपने युग मे ही प्रारम्भ कर दी थी। भील, आदिवासी, हरिजन, चमार, मोची, कलाल, खटीक, वेश्यायें—आदि उनके उपदेशो से प्रभावित होकर स्वय ही धर्म की शरण मे आये और सभ्य सुशील सात्विक जीवन जीने लगे। यह एक समाज-सुधार की चमत्कारी प्रक्रिया थी, जो उनके जीवनकाल तक बराबर चलती रही। काश ! वे शतायु होते तो जैन समाज का और अपने देश का नक्शा कुछ अलग ही होता। पीडित-दलित मानवता आज मुस्कराती नजर आती।

एक दिन गुरुदेव कह रहे थे "मेरा उद्देश्य विराट् है, विशाल है, प्राणिमात्र की कल्याण कामना है। एक जाति के प्रति यह दृष्टिकोण बनाऊँ तो पूरी जाति को सुधार सकता हूँ परन्तु फिर दृष्टि सीमित हो जायगी, सर्वजनहिताय न रहेगी।'

मैं बचपन से ही उनके सान्निध्य मे रहा, बहुत निकट से उनको देखा। प्रारम्भ से ही तर्कशील वृत्ति होने के कारण उनको परखा भी, अनेक बातें पूछी थी। उनके सम्पर्क मे आने वालो की भावनाओ और वृत्तियो को भी समझा, कुल मिलाकर मेरे मन पर उनका यह प्रतिबिम्ब बना कि उनके व्यक्तित्व मे समग्रता है। जीवन मे सच्चाई है। खण्ड-खण्ड जीवन जीना उन्होंने सीखा नहीं था। प्रभु भक्ति भी सच्चे मन से करते थे और उपदेश भी सच्चे अन्त करण से देते थे। उनका श्रुतज्ञान जो भी था, सत्कर्म से परिपूरित था। बस, इसीलिए उनका व्यक्तित्व चमत्कारी और प्रभावशाली बन गया। निस्पृहता और अभयवृत्ति उनके जीवन का अलकार बन गई थी।

उनकी समन्वयशील प्रज्ञा बडी विलक्षण थी। अपने सिद्धान्तो पर अटूट आस्था रखते हुए भी वे कभी धर्माग्रही, एकान्तदर्शी या मतवादी नहीं बने। 'सर्व धर्म समभाव' जैसे उनके अन्तर मन मे रम गया। उनकी एकता, सर्वधर्म समन्वय, दिखावा, छलना या नेतृत्व करने की चाल नही, किन्तु मानवता के कल्याण की सच्ची अभीप्सा थी। उनके कण-कण मे प्रेम, सरलता और बधुता का निवास था।

श्री जैन दिवाकर जी महाराज का जन्म हुआ था तो शायद एक ही घर मे खुशियो के नगारे बजे होगे, किन्तु जिस दिन उनका महाप्रयाण हुआ—जैन-हिन्दू, सिक्ख-मुसलमान-ईसाई तमाम कौम मे उदासी छा गई। सभी प्रकार के लोगो की आँखो से आँसू बह गये। महलो से लेकर झोपडी तक ने खामोश होकर सिर झुकाया। यह उनकी अखण्ड लोकप्रियता का प्रमाण था।

इस वर्ष समग्र भारत मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज का जन्म शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है। उनकी पावन स्मृति मे भक्तो ने स्थान-स्थान पर जन-सेवा के कार्य किये हैं। विद्यालय, चिकित्सालय, नि शुल्क औषधालय, असहायो की सेवा सहायता आदि कार्य प्रारम्भ हुए हैं तथा पुराने चले आ रहे सस्थानो का पुनरुद्धार भी हुआ है। इसी सन्दर्भ मे मेरे मन मे यह भावना

भी जागी कि उस महापुरुष की स्मृति मे एक सुन्दर श्रेष्ठ स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया जाय । इसी श्रद्धा भावना की सम्पूर्ति स्वरूप यह स्मृति ग्रन्थ भी तैयार हो गया है ।

यद्यपि आजकल अभिनन्दन ग्रन्थ तथा स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का एक रिवाज या शौक-सा हो गया है, इस कारण कुछ लोग इसे महत्त्व कम देते हैं । इसी कारण मेरे अन्तर् मन मे भी काफी समय तक विचार मन्थन चलता रहा कि स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय या नही ? अनेक श्रद्धालु जनो व विद्वानो का आग्रह रहा कि श्री जैन दिवाकरजी महाराज का कृतित्व और व्यक्तित्व बहुत ही विराट् था । इस शताब्दी के वे एक महान् पुरुष थे । उन्होंने अपने जीवन के ७३ वर्षो मे जो कुछ किया, वह पिछले सैकडो वर्षों मे नहीं हुआ । अहिंसा, दया और सदाचार प्रधान जीवन की जो व्यापक प्रेरणा उनके कृतित्व से मिली है वह इतिहास का अद्भुत सत्य है । भौतिक या आर्थिक सहयोग के विना सिर्फ उपदेश द्वारा हजारो हिंसाप्रिय व्यक्तियो की हिंसा छुडाना, व्यसन ग्रस्त व्यक्तियो को सिर्फ उपदेश सुनाकर व्यसन मुक्त बना देना एक बहुत ही अद्भुत कार्य था । शासको, अधिकारियो, व्यापारियो और सामान्य प्रजाजनो को एक समान रूप से प्रभावित कर जीवन-परिवर्तन की प्रेरणा देना सचमुच में इतिहास का अमर उदाहरण है । कहा जा सकता है कि श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने एक नये युग का प्रवर्तन किया था । उनके युग को हम 'जैन दिवाकर-युग' कह सकते है । और ऐसे युग-प्रवर्तक महापुरुष के कृतित्व-व्यक्तित्व के मूल्याकन स्वरूप किसी स्मृति ग्रन्थ का निकालना सचमुच मे आवश्यक ही नही, उपयोगी भी होता है । और होता है हमारी कृतज्ञता का स्वय कृतज्ञ होना ।

मैंने स्मृति ग्रन्थो की चालू परम्परा से थोडा-सा हटकर चलना ठीक समझा । आजकल अभिनन्दन ग्रन्थ या स्मृति ग्रन्थ जो भी निकलते है, उसमे मूल व्यक्तित्व मे सम्बन्धित बहुत ही कम सामग्री रहती है और अन्य विपयो की सामग्री की अधिकता व प्रधानता रहती है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि मूल व्यक्तित्व की सामग्री अल्प हो, या उसकी व्यापकता एव सम सामयिक स्थितियो मे उपयोगिता कम हो ! किन्तु श्री जैन दिवाकर जी महाराज के विपय मे तो ऐसा नही है । उनके जीवन से सम्बन्धित सामग्री प्रचुर है । और धर्म, समाज तथा राष्ट्र के लिये किये गये उनके महनीय प्रयत्नो का लेखा-जोखा तो अपार है । मानवता के कल्याण की कथाएँ तो उनकी कई स्मृति ग्रन्थो की सामग्री दे सकती फिर उनकी उपेक्षा क्यो ? वास्तव मे तो उन्ही का मूल्याकन हमे करना है । उन्ही के व्यवितत्व की किरणो के बहुरगी आलोक मे आज की जागतिक जटिलताओ का समाधान खोजना है अत मैंने परम्परागत शैली को छोडकर मूल व्यक्तित्व को प्रधानता देने की दृष्टि रखी । स्मृति ग्रन्थ मे विषयान्तर करने वाले अनेक श्रेष्ठ लेख उपेक्षित करने पडे है । हाँ, 'चिन्तन के विविध विन्दु' मे कुछ उपयोगी सामग्री अवश्य देदी है, ताकि पाठ्य सामग्री मे कुछ विविधता का रस भी मिश्रित हो सके ।

प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ मे हमारे विद्वान् सम्पादक मडल ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व व कृतित्व के अनेक स्वरूपो को, अनेक दृष्टियो से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । हमारा विचार था प्रत्यक्ष मे जिन्होंने साक्षात्कार किया है उनकी श्रद्धाजलियाँ दी ही जायें, उनके सिवाय बहुत से लोग जो उनके निकट सम्पर्क मे नहीं आये हैं, वे उनके जीवन और विचार को पढे तथा उस पर अपने दृष्टिकोण से लिखें । इस हेतु "श्री जैन दिवाकर स्मृति निवन्ध प्रतियोगिता'

का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता मे भाग लेने वालो को श्री जैन दिवाकरजी महाराज से सम्बन्धित काफी साहित्य पढने हेतु नि शुल्क भेजा गया। हमे सन्तोष है कि अनेक लेखको ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज को पढा है, गहराई से पढा है और अपने नजरिये से देखकर उन पर लिखा है। इन लेखो मे घटनाओ की पुनरावृत्तियाँ तो होना सम्भव है, क्योकि विभिन्न लेखक एक ही व्यक्तित्व पर जब अपने विचार व्यक्त करेंगे तब घटनाएँ तो वे ही रहेगी, किन्तु चिन्तन-मनन और निष्कर्ष अपना स्वतन्त्र होगा। 'व्यक्तित्व की बहुरगी किरणें' शीर्षक खण्ड मे ऐसा ही कुछ प्रतीत होगा।

इस ग्रन्थ के खण्ड हमने नहीं किये हैं, फिर भी विभागो का वर्गीकरण जो हुआ है वह खण्ड जैसा ही बन गया है। प्रथम विभाग मे कालक्रमानुसार श्री जैन दिवाकरजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त दिया है। अब तक गुरुदेवश्री के जितने भी जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए हैं उनमे स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज द्वारा लिखित 'आदर्श मुनि' तथा 'आदर्श उपकार' सबसे अधिक विस्तृत एव प्रामाणिक जीवन-चरित्र है। किन्तु इन पुस्तको मे वि० स० १९८७ तक का ही जीवन-वृत्त मिलता है। इस सवत के बाद का जीवन-वृत्त कही लिखा हुआ नहीं मिलता, जबकि इसके बाद के चातुर्मास बहुत ही अधिक प्रभावशाली तथा महत्त्वपूर्ण रहे हैं। लोकोपकार की दृष्टि से इन चातुर्मासो की अपनी महत्ता है। मैंने जीवन-चरित्र लिखते समय सवत् १९८७ के बाद के जीवन-वृत्त को विस्तार पूर्वक लिखने के लिए अनेक स्थानो पर सामग्री खोजने का प्रयत्न किया है। ब्यावर-आगरा मे पुरानी सामग्री—जैन प्रकाश की फाइलें, जैन पथ-प्रदर्शक आदि पत्रो की फाइलें देखने की चेष्टा की। परन्तु लिखित सामग्री तो उपलब्ध हुई ही नहीं, मुद्रित सामग्री भी कुछ ही उपलब्ध हुई। देहली मे भी जैन प्रकाश की कुछ पुरानी फाइलें मिलीं। इनमे से कुछ सामग्री, कुछ घटनाएँ मिली है यथास्थान इनका लेखन जीवन-चरित्र मे किया है और अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न भी किया है।

दूसरे विभाग मे गुरुदेवश्री से सम्बन्धित कुछ सस्मरण हैं। यद्यपि बीज रूप मे ये घटनाएँ प्राय जीवन-चरित्र मे आ गई है, पर हर लेखक अपनी दृष्टि से कुछ-न-कुछ नवीनता के साथ रखने की चेष्टा करता है, अतः कुछ रुचिकर सस्मरण दूसरे विभाग मे ले लिए है।

तीसरा विभाग ऐतिहासिक महत्त्व का है। गुरुदेवश्री के भक्त—राजा, राणा, ठाकुर, जागीरदार आदि लोगो ने उनकी करुणा प्रपूरित वाणी से प्रभावित होकर जीवदया के पट्टे, अगता पालने की सनदें आदि घोषित तथा प्रचारित कीं, उनकी मूल प्रतिलिपि (आदर्श उपकार पुस्तक से) यहाँ दी गई हैं।

चतुर्थ विभाग मे श्रद्धाजलियाँ हैं। आजकल श्रद्धाजलिया सर्वप्रथम छापी जाती है, पर मेरे विचार मे पहले श्रद्धेय के उदात्त जीवन की झांकी मिलनी चाहिए, फिर श्रद्धार्चन होना चाहिए अत इन्हें चतुर्थ विभाग मे रखी है।

पचम विभाग मे गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व की बहुरगी किरणो की एक विरल झांकी है। 'जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता' मे लगभग ३०-४० निबन्ध आये थे। उनमें से जो अच्छे स्तर के निबन्ध प्रतीत हुए उनका समावेश इस विभाग मे किया गया है। मैं पहले भी लिख

चुका हूँ, अनेक लेखको द्वारा एक व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे लिखे जाने पर घटनाओ की पुनरावृत्ति, पुनर्लेखन होना सहज सम्भव है, वैसा हुआ है, किन्तु हर लेखक का सोचने-समझने एव प्रस्तुत करने का अपना तरीका है, उसे सर्वथा नकारना या पुनरावृत्ति मात्र को दोष कोटि मे रख देना उन अनेक लेखको के साथ न्याय नही होगा। इस दृष्टि से इस विभाग मे घटनाओ, सस्मरणो के उल्लेख ज्यो के त्यो रख दिये हैं। इस विभाग मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यापक व्यक्तित्व के विभिन्न रग पाठको के समक्ष उजागर होगे।

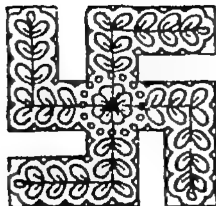
छठा विभाग मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज की इतिहास-प्रसिद्ध अपूर्व प्रवचन-कला के सम्बन्ध मे यत्किंचित विवेचन तथा कुछ प्रवचनाश पर लिए गये हैं ताकि पाठक उस मनोहर मोदक का आस्वाद पा सकें। यह सच है कि प्रवचनकार के श्रीमुख से सुने प्रवचन मे और पुस्तको मे पढ़े हुए मे अन्तर होता है। हाथी दाँत जब तक हाथी के मुँह मे रहता है तब तक उसकी शोभा व शक्ति कुछ अलग होती है, वह दीवार तोड सकता है किन्तु हाथी के मुख मे से निकलने पर वह शक्ति नही रहती। फिर भी हाथी दांत हाथीदांत ही रहता है। ऐसे ही प्रवचन प्रवचन ही रहता है।

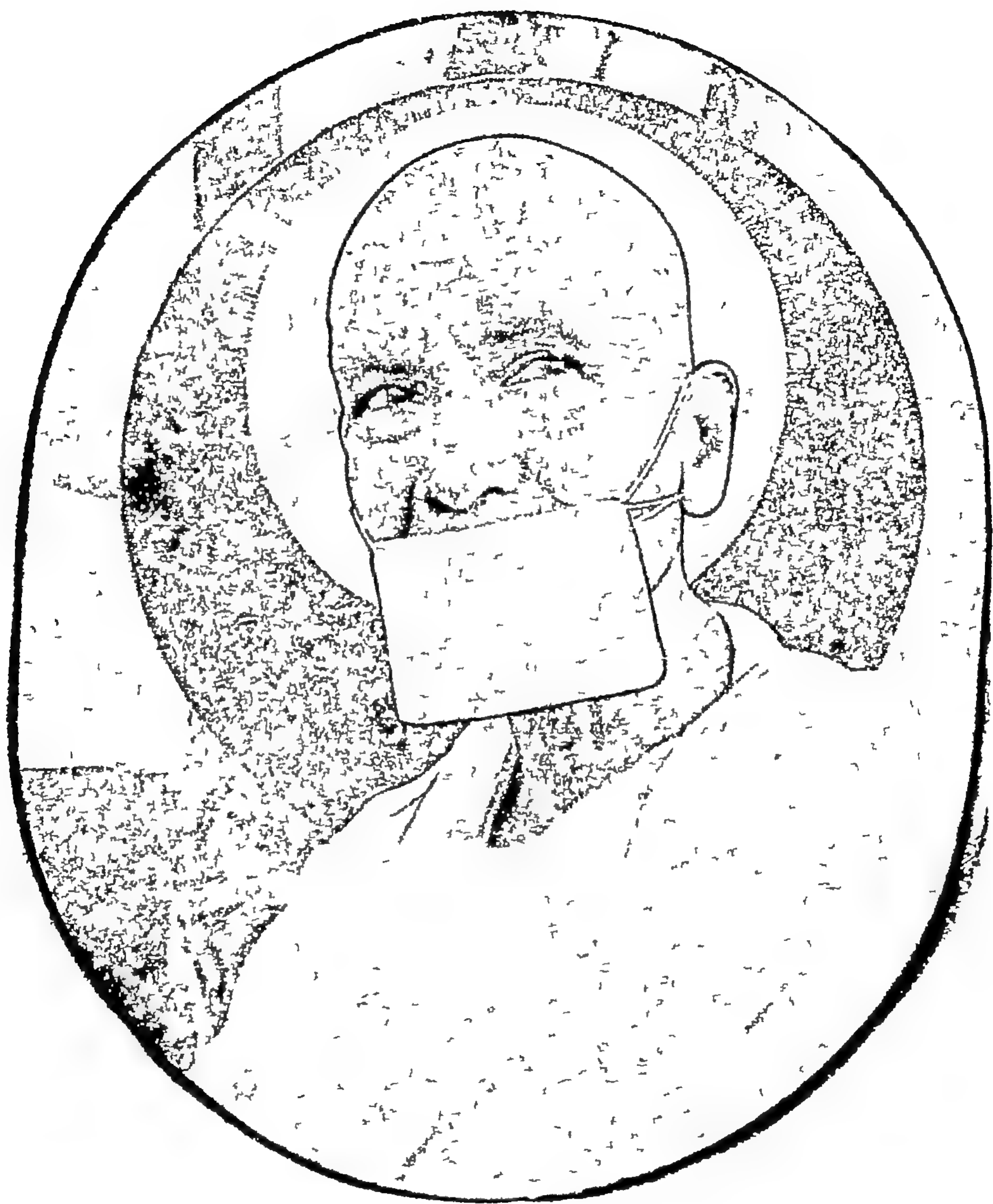
इसी प्रकार सप्तम विभाग मे सरल सहज भाषा मे रचे हुए स्व० गुरुदेवश्री के प्रिय भजन व पद दिये गये हैं जोकि आज भी सैकडो भक्तो को याद हैं, वे प्रात साय श्रद्धा और भावना पूर्वक उन्हे गुनगुनाते हैं।

अष्टम विभाग मे कुछ विशिष्ट विद्वानो के धर्म, दर्शन, सस्कृति तथा इतिहास से सम्बन्धित लेख हैं जिनका जैन-दृष्टि से सीधा सम्बन्ध जुडता है।

इस प्रकार अष्ट पखुडी कमल-दल की भाँति परम श्रद्धेय गुरुदेव का यह स्मृतिग्रन्थ अष्ट विभाग मे सम्पन्न हुआ है। इसका समस्त श्रेय हमारे सहयोगी सम्पादको, लेखको, उदार सहयोगी सज्जनो को है जिनकी निष्ठा, विद्वत्ता, भक्ति और भावना इस ग्रन्थ के पृष्ठ-पृष्ठ पर अकित है। मैं तो सिर्फ एक निमित्त मात्र हूँ। मेरे प्रयत्न से एक शुभकार्य हो सका, इसी का मुझे आत्मतोष है।

—केवल मुनि





गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रतिभाशाली प्रमुख शिष्य

कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज

[स्मृति ग्रन्थ के प्रधान संपादक तथा प्रेरणा शक्ति केन्द्र]



श्री जैनदिवाकर जन्मशताब्दी महोत्सव (५ नवम्बर १९७८ देहली में) के अवसर पर महामहिम उपराष्ट्रपति श्री बा. दा. जत्ती गुरुदेव के प्रति श्रद्धाजलि स्वरूप उद्घाटन भाषण दे रहे हैं। पट्ट पर समारोह के प्रेरणासूत्र श्री केवलमुनि जी म. एवं सामने विशाल जन समूह।

शुभकामना सन्देश



दिनांक १२-६-१९७८

स्वर्गीय जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज साहब का स्मृति-ग्रथ प्रकाशित होने जा रहा है, जानकर हार्दिक सन्तोष हुआ।

चौथमलजी महाराज जैन के सच्चे दिवाकर थे, उनके ज्ञान की किरणें झोपडी से महलो तक पहुँची, वाणी के अद्भुत जादू ने वह कार्य किया जो सत्ता अपने तलवार एव धन के वल से नही कर सकी। पतितो को पावन वनाया, लाखो जीवो को अभयदान दिलाया, अपने त्याग-तप से अद्भुत कार्य कर जनता को एक नई दिशा दी। बिखरे हुए समाज को एकत्र करने का अथक प्रयास किया। उनके जीवन के आद्योपान्त कार्य प्रत्येक प्राणी को अनुकरणीय हैं। इस स्मृति-ग्रन्थ के माध्यम से उनके जीवन की कृतियाँ प्रकाश मे लाई जायें, जो कि भविष्य की पीढी को प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती रहेगी। इसी शुभ-कामना के साथ।

—आचार्य आनन्द ऋषि



शुभकामना

उपराष्ट्रपति, भारत
नई दिल्ली
मई २६, १६७८

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप इस वर्ष अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं और उनकी स्मृति में एक स्मृति-ग्रन्थ भी प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। मैं आपके इस आयोजन एवं स्मृति-ग्रन्थ की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

आपका
ब० दा० जत्ती
(उपराष्ट्रपति, भारत)



राज भवन
लखनऊ
मई ३१, १६७८

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ है कि सर्व अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज सुप्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्मशताब्दी वर्ष सम्पन्न करने जा रहा है।

आध्यात्मिकता भारतीय राष्ट्र की प्राण शक्ति है जिसने देश और काल की चुनौतियो के अनुरूप कलेवर बदलते हुए समाज को जीवन्त बनाया है। अत प्रत्येक आध्यात्मिक गुरु तथा सन्त के व्यक्तित्व व कृतित्व को द्वार-द्वार तक पहुँचाना राष्ट्र की अनुपम सेवा है।

उत्सव की सफलता के लिए मैं हार्दिक शुभकामनाये भेजता हूँ।

ग० दे० तपासे
(राज्यपाल, उत्तर प्रदेश)

संदेश

राज भवन
बंगलौर-५६० ००१
८ जून, १९७८

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज के तत्त्वावधान मे सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्मशताब्दी मनायी जा रही है और उसके उपलक्ष मे एक स्मृति-ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जा रहा है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने १८ वर्ष की किशोरावस्था मे ही समाज मे व्याप्त दुर्व्यसनो से दुखी होकर वैरागी वनकर जैन श्रमण दीक्षा ग्रहण की थी और तव से लगातार ५५ वर्ष उनके स्वर्गवास तक मानवमात्र की सेवा करते रहे। सन्त होते हुए भी वे महान् राष्ट्रधर्मी व समाजधर्मी थे जिसके कारण सभी कौमो के लोग उनका वडा आदर करते थे। मैं आशा करता हूँ कि उनके जन्मशताब्दी समारोह के अवसर पर उनके अनुयायी वन्धु उनके मानवधर्मवादी मिशन को सव प्रकार का वढावा देने का दृढ सकल्प करके उनके चरणो पर अपनी श्रद्धा अर्पित करेंगे।

उनके जन्मशताब्दी समारोह की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनाये भेजता हूँ।

गोविन्द नारायण
(राज्यपाल, कर्णाटक)



RAJ BHAVAN
Madras—600 022,
31st May 78

Dear Shri Surana,

I am glad to know that you are publishing Shri Jain Divakar Smruti Granth Pujya Shri Chauthmalji Maharaj is well known for his numerous social services His mission is a great inspiration to many I wish the Granth and the function great success

Yours sincerely,
(Prabhudas B Patwari)

शुभकामना

विदेश मन्त्री, भारत

दिनांक २८-६-७८

प्रिय महोदय,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन समाज सुप्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्म-शताब्दी समारोह मनाने जा रहा है। जैन-दर्शन मे सत्य और अहिंसा जैसे चिरन्तन एव विश्व-जनीन मानवीय मूल्यो को मान्यता दी गई है और मुझे आशा है कि इस शताब्दी समारोह के माध्यम से अनेक सद्विचार समाज के सामने प्रस्तुत किये जायेगे।

इस समारोह की सफलता के लिए हमारी हार्दिक शुभ कामनायें स्वीकार करे।

आपका

(अटल विहारी वाजपेयी)



पेट्रोलियम और रसायन तथा उर्वरक मंत्री

भारत सरकार

नई दिल्ली-११०००१

दिनाक : ५-६-१९७८

यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि जैन दिवाकर जन्म शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य मे श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। ऐसे अवसर पर चिकित्सालयो, विद्यालयो आदि की स्थापना करना उनके प्रति एक महान् श्रद्धाजलि अर्पित करना होगा।

मैं स्मृति-ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाये भेज रहा हूँ।

—हेमवतीनन्दन बहुगुणा

संदेश

राज्य वित्त मंत्री
भारत
नई दिल्ली
दिनाक : ३१ मई १९७८

प्रिय श्री सुराना जी,

आपके २२ मई के पत्र से यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज श्री चौथमलजी महाराज का जन्म-शताब्दी वर्ष मनाने जा रहा है।

किसी भी देश मे ऐसे सन्त महात्मा कभी-कभी ही जन्म लेते हैं जिनका जीवन यथार्थ रूप मे सम्पूर्ण मानव समाज को और दरिद्र नारायण को समर्पित हो। वचपन मे श्री चौथमलजी महाराज के बारे मे जो कुछ जाना और सुना था, उस स्मृति के आधार पर मैं यह अभी भी कह सकता हूँ कि वे ऐसे विरले सन्त महात्माओ मे से थे।

यह श्री चौथमलजी महाराज की विशेषता थी कि वे घोर अभाव मे रहने वाले गरीब से गरीब आदमी के मन मे भी विशिष्ट प्रकार की जिजीविषा जाग्रत कर देते थे। उसके अभावो मे मानसिक सन्तोष का अमृत टपका कर उसके जीवन के शून्य पात्र मे कर्तव्य और लगन का मधु भर देते थे।

आज के इस सघर्षमय जीवन और प्रतिगामी प्रवृत्तियो के परिप्रेक्ष्य मे देखें तो हमे इस वात की आवश्यकता महसूस होती है कि हम महान् सन्त महात्माओ की जन्मतिथि अथवा जन्म-शताब्दी मनाकर ही न रह जाये, वरन् गाँव-गाँव और नगर-नगर मे ऐसे सदाचार-सघो की स्थापना करें, जो प्रत्येक मानव के जीवन को जीने योग्य वना सके।

आपके इस सद्प्रयास की सफलता की कामना तो मैं करता ही हूँ, परन्तु साथ ही जानना चाहता हूँ कि आपका समाज स्थायी रूप से इस दिशा मे क्या-क्या कार्यक्रम वना रहा है।

आपका
सतीश अग्रवाल

✡

शुभकामना

स्वास्थ्य एव परिवार कल्याण मत्री के
सहायक निजी सचिव
भारत
नई दिल्ली-११००११
८ जून, १९७८

प्रिय महोदय,

आपका दिनाक २२ मई का पत्र माननीय स्वास्थ्य मन्त्री महोदय के नाम प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के जन्म शताब्दी वर्ष पर आपके द्वारा आयोजित होने वाले समाज-सेवी कार्यों एव स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन के बारे मे जानकर माननीय मत्री जी को प्रसन्नता हुई। आपके आयोजन एव स्मृतिग्रन्थ अपने उद्देश्य मे सफल हो इस हेतु माननीय मत्री जी अपनी शुभकामनायें प्रेषित करते है।

भवदीय
(राजीव उपाध्याय)



वीरेन्द्रकुमार सखलेचा
मुख्य मत्री

भोपाल
दिनाक : २२ जून, १९७८

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्म शताब्दी मना रहा है।

श्री चौथमलजी महाराज ने सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध सघर्ष किया तथा सदाचार के प्रचार द्वारा एक नई लहर पैदा की थी। वह एकता तथा विश्व बन्धुत्व के सबल प्रवक्ता थे।

मैं आशा करता हूँ कि उनकी जन्म शताब्दी के आयोजन तथा स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन से उनके अनुकरणीय कार्यो पर प्रकाश पडेगा तथा लोगो को समाज-सुधार के कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। मैं इस आयोजन की सफलता की कामना करता हूँ।

(वीरेन्द्रकुमार सखलेचा)

शिक्षण मंत्री
महाराष्ट्र शासन
मन्त्रालय, मुंबई ४०० ०३२
दिनांक २८ जून १९७८

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की इस वर्ष जन्मशताब्दी मनायी जा रही है।

श्री चौथमलजी महाराज ने भगवान् श्री महावीर की सीख को अपने जीवन मे यथार्थ किया है। अहिंसा, सामाजिक बुराइयो का उन्मूलन, गरीबो की सेवा और गरीबी नष्ट करने के उनके अथक प्रयत्नो से वे समाज के सभी वर्गों मे बडे प्रिय, आदरणीय और श्रद्धा के योग्य सिद्ध हुए हैं। ऐसे महान् क्रान्तिकारी सुधारक सन्त की स्मृति मे एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन सर्वथा उचित है।

श्री चौथमलजी महाराज की जन्मशताब्दी और स्मृति-ग्रन्थ के प्रति मेरी सद्भावनाये।

(डॉ० बलीराम हिरे)



राजमाता जोधपुर

उमेद भवन
जोधपुर
दिनाक १४-६-७८

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज द्वारा प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्मशताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है और इस अवसर पर उनके उदात्त चरित्र से प्रेरणा लेने व उनके जीवन सुधार मिशन को आगे बढाने के उद्देश्य से उनकी स्मृति मे एक स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है।

मेरी इस स्मारिका की सफलता हेतु शुभकामनाये हैं।

कृष्णा कुमारी
(राजमाता-जोधपुर)

KASTURBHAI LALBHAI Tele { Gram "LALBHAI"
Phone · 66023 & 22377
Pankore's Naka,
Ahmedabad
31-5-78

आपका ता० २९-५-७८ का पत्र और उसके साथ भेजी हुई श्री चौथमलजी महाराज की जीवन परिचय पत्रिका मिली।

अखिल भारतीय श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन समाज प्रसिद्ध सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे है और इसके उपलक्ष मे एक 'स्मृति-ग्रन्थ' का प्रकाशन कर रहे है वह जानकर प्रसन्नता हुई।

इस 'स्मृति-ग्रन्थ' द्वारा आप लोग श्री जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज के उपदेश को समाज मे प्रचार करने मे सफल हो, ऐसी मैं शुभकामनाएँ प्रदान करता हूँ।

लि०
कस्तुरभाइ लालभाइ के प्रणाम



जवाहरलाल मूणोत

वम्वई
२ जून, १९७८
(ज्येष्ठ १२, १९०० शक)

प्रकट है कि श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ एक उत्कृष्ट सरचना सिद्ध होगी, क्योकि उसे श्री दिवाकरजी के अन्तेवासियो के परामर्श और मार्गदर्शन का लाभ मिलने जा रहा है, प्रधान सम्पादक के रूप मे स्वय श्री कविरत्न श्रमणवर श्री केवलमुनिजी है और साथ ही, उद्भट विद्वानो का सहयोगी सम्पादक मण्डल है। और सवसे वढकर, समग्र सार्थकता और सफलता की गैरण्टी स्वय प्रथितयश दिवाकरजी महाराज साहव की रोमाचकारी प्रेरणादायी जीवनी है, जो अपने आप मे एक धार्मिक महाकाव्य है, जिसका पारायण धर्म-साधना और धर्माराधना के दिव्य फल दे देता है। स्मृति-ग्रन्थ के सजीव, सुन्दर, सफल और चिरस्थायी यश की मेरी अग्रिम शुभकामनाएँ स्वीकार करे।

आपका
जवाहरलाल मूणोत
अध्यक्ष : अ भा. श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस

अनुक्रमणिका

प्रथम विभाग

एक पारस-पुरुष का गरिमामय जीवन

—कविरत्न श्री केवल मुनि

द्वितीय विभाग

घटनाओं में बोलता व्यक्तित्व : स्मृतियों के स्वर

तृतीय विभाग

अहिंसा और सदाचार की प्रेरणा के साक्ष्य : ऐतिहासिक दस्तावेज

चतुर्थ विभाग

शाश्वत दिवाकर को श्रद्धा का अर्घ्य : भक्ति-भरा प्रणाम

पंचम विभाग

जैन दिवाकर व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणें

षष्ठम विभाग

हृदयस्पर्शी और ओजस्वी प्रवचन कला एक झलक

सप्तम विभाग

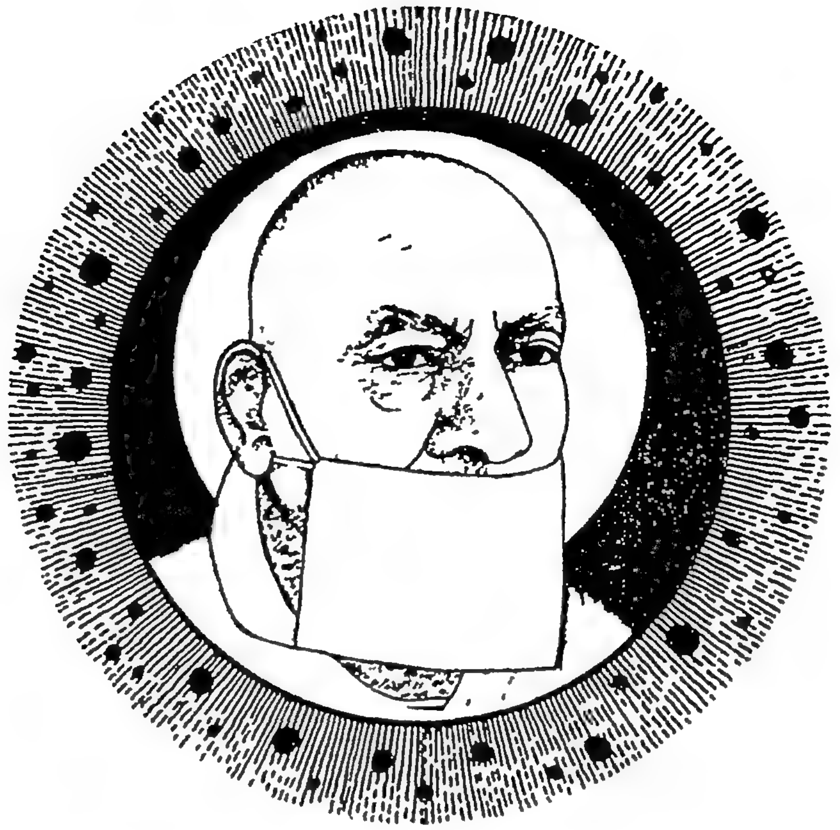
भक्ति, उपदेश, वैराग्य और नीति की स्वर चेतना गुम्फित में

जैन दिवाकरजी के प्रिय पद्य
[सकलन—श्री अशोक मुनि]

अष्ठम विभाग

चिन्तन के विविध बिन्दु : धर्म, दर्शन, संस्कृति और इतिहास

परिशिष्ट



एक परम-पुरुष का गरिमामय जीवन

श्री जैन दिवाकर-स्मृति-ग्रन्थ



एक पारस-पुरुष का गरिमामय जीवन

✡ कविरत्न केवलमुनि

एक शाश्वत धर्म दिवाकर

दिवाकर अपनी सहस्र रश्मियो के साथ नित्य प्रात काल उदित होता है, दिन भर अन्धकार का नाश कर प्रकाश का प्रसार करता है और फिर सध्या के समय छिप जाता है। धरा पर गहन अन्धकार फैल जाता है। लेकिन धर्म दिवाकर की महिमा कुछ अद्भुत ही है। धर्म दिवाकर जब उदय होता है तो उसका प्रभाव क्षणस्थायी, एक-दो दिन अथवा वर्ष-दो-वर्ष का नही होता, वरन् युग-युगो तक आलोक फैलाता रहता है। गगन दिवाकर गिरि-कन्दराओ और अन्तर्गुफाओ का प्रगाढ अन्धकार नष्ट नही कर पाता, वहाँ उसकी किरणें नही पहुँच पाती, लेकिन धर्म दिवाकर मानव के अन्तर्हृदय मे घनीभूत अन्धकार को नष्ट करके वहाँ आलोक फैला देता है। अज्ञान और मोह से आवृत उसके अन्तर्चक्षुओ मे ज्ञान के प्रकाश की ज्योति जग उठती है। दिवाकर प्रतिदिन उदय होता है और धर्म-दिवाकर युगो बाद कभी-कभी। ऐसे ही धर्म दिवाकर थे मुनिश्री चौथमलजी महाराज, जिन्होंने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व, ओजस्वी वाणी और निर्मल चरित्र से जन-जन के हृदय मे सदाचार की ज्योति जलाई थी। अहिंसा भगवती की स्थापना करके हजारो मूक पशुओ को अभय दान दिलवाया था। लोगो के हृदय से पाप को निकाल कर पुण्य की, सत्यधर्म की स्थापना की थी। आगम की भाषा मे **'लोगस्स उज्जोयगरे'** की शब्दावली को वे सार्थक करते रहे।

भारतीय जीवन का आधार धर्म

भारत अपने नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के लिए ससार मे प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के निवासियो के हृदय मे धर्म की प्रतिष्ठा सदा से रही है। अति प्राचीन काल मे धर्म और अनेक धर्मनायको ने इसी पुण्य धरा पर जन्म लिया था। इस देश मे सन्तो का स्थान सम्राटो मे बढकर रहा है। सम्राटो के मुकुट सन्तो के चरणो मे झुके हैं। प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत से लेकर यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। शासक व श्रीमत लोग अकिंचन-निर्ग्रन्थ सन्तो के चरणो मे सिर झुकाकर स्वय को गौरवान्वित समझते रहे हैं।

धर्म और धर्मतन्त्र

प्राचीन युग से चले आये धर्म मे काल प्रभाव से मध्यकाल तक आते-आते अनेक विकृतियाँ आ गईं। धर्म का स्थान धर्मतन्त्र ने ले लिया। जो धर्म सदाचार पर आधारित था, उसमे बाह्याडम्बर घुस गया। बाह्यचिन्हो से धर्म और धार्मिको की पहचान होने लगी। भारतीय सस्कृति की वैदिक और बौद्धधारा मे मत-मतान्तर होने लगे। शिव के अनुयायी विष्णु भक्तो से द्वेष करने लगे। उनकी साधना और पूजा-अर्चना पद्धतियो में काफी अन्तर आ गया। एक-दूसरे से वे काफी दूर हो गये। यज्ञ के नाम पर देवो को प्रसन्न करने के लिए मूक पशुओ की बलि होने लगी। धीरे-धीरे यह परम्परा बन गई और राजाओ, धर्माधिकारियो, धर्मगुरुओ तथा साधारण जनता को इसने बुरी तरह जकड लिया। लोग हिंसा में धर्म मानने लगे और धर्म के मूलाधार—सदाचार, नैतिकता तथा अहिंसा को भूल गये।



श्रमण संस्कृति का मूल आधार : अहिंसा

भारतीय संस्कृति की धारा मे श्रमण संस्कृति का विशिष्ट स्थान है। समय के झझावातो मे इसमे मत-मतान्तर की लहरें तो उत्पन्न हुई लेकिन इसने धर्म के मूल केन्द्र अहिंसा को नहीं छोडा। यह अहिंसा ही इसे गौरवपूर्ण स्थान दिलाने मे समर्थ रही है। सुदूर अतीत काल से आज तक सभी श्रमण भारत के कोने-कोने मे पदयात्रा करके अहिंसा भगवती का सन्देश पहुंचाते रहे हैं। यह मानसिक, वैचारिक, शाब्दिक और शारीरिक अहिंसा का ही प्रभाव है कि श्रमण संस्कृति के अनुयायियो मे कभी भी जीवन को विषाक्त करने वाली कटुता और ईर्ष्या-द्वेष न पनप सके।

श्रमणों का सतत प्रवाह

भारत मे सन्तो-श्रमणो का अनवरत प्रवाह रहा है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानो के शब्दों मे प्रागैतिहासिक काल से ही भारतभूमि मे श्रमणो का विचरण होता रहा है। उन्होंने अहिंसा भगवती की ज्योति को सदा जलाए रखा है। उनकी चारित्रनिष्ठा और सत्यपूत वाणी तथा असीम दया भावना से प्रभावित होकर बडे-बडे हिंसाप्रिय सम्राटो ने भी अहिंसा को स्वीकार किया, उसे हृदय मे धारण किया एव शिकार तथा मासभक्षण पर प्रतिबन्ध लगवाया। उनके इस कार्य से राजा तथा प्रजा दोनो मे सुख-शान्ति का प्रसार हुआ।

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज

इसी श्रमण परम्परा मे एक विशिष्ट सन्त का अभ्युदय हुआ। उनका नाम है—चौथमलजी महाराज। उनके विशिष्ट सद्गुणो और तपोमय जीवन से प्रभावित होकर समाज ने जैन दिवाकर, प्रसिद्धवक्ता, वाग्मी, महामनीषी, जगद्वल्लभ आदि उपाधियो से उन्हे अलंकृत किया। वास्तव मे इन उपाधियों से वे अलंकृत नही हुए वरन् ये उपाधियाँ ही धन्य हो गईं।

वे क्रान्तदर्शी, युगपुरुष सन्त थे। उन्होंने अपने समय के समाज की नब्ज को पहचाना और प्रचलित कुरीतियो, कुरूढियो एव कुपरम्पराओ को नष्ट करने का प्रयत्न किया। इस कार्य मे भी उनकी विशिष्टता यह रही कि लोगो ने उनके महान् प्रयत्न के प्रति श्रद्धा ही व्यक्त की, कभी द्वेष नही किया। इसीलिए तो लोगो ने उन्हे जगद्वल्लभ कहकर सम्मान किया, क्योकि उनके प्रति श्रद्धा रखने वाले—हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, भारतीय, यूरोपीय, अंग्रेज आदि सभी थे। वे जैन श्रमण होते हुए भी सभी सम्प्रदायो के श्रद्धाभाजन थे।

वास्तविक अन्त्योदय

वैसे तो आधुनिक युग मे किसी भी विशिष्ट व्यक्ति को युगपुरुष कहने का प्रचलन हो गया है, लेकिन वास्तविक युगपुरुष वह होता है जो अपने युग की सभी प्रवृत्तियो को प्रभावित करे। युग पर अपने विचारो व व्यक्तित्व की छाप डाले। लोग स्वयं ही उसकी बात मानें, आदर करें। उसका चरित्र भी ऐसा होना चाहिए जो महलो से झोपड़ियो तक सर्वत्र प्रेरणास्पद हो। धनी-निर्धन, अपढ़-विद्वान्, ग्रामवासी, नगरवासी सभी जन जिसके अनुयायी हो। मुनिश्री चौथमलजी महाराज का जीवन ऐसा ही युग प्रभावकारी था।

आजकल अन्त्योदय की चर्चा समाचार पत्रो मे खूब हो रही है। इसमे सरकार कुछ गरीबो को धन और जीविका के साधन जुटा देती है और समझती है कि इससे उनका जीवन उन्नत हो जायगा, उनके जीवन मे सुख-शान्ति भर जायेगी। लेकिन धन से कोई सुखी नहीं हुआ है। सुख तो सद्गुणो और सुसस्कारो से मिलता है। वास्तविक अन्त्योदय तो सद्प्रवृत्तियों का विकास है। अपने



को अन्त्यज व पतित मानने वाले व्यक्तियो मे जब स्वय के विकास और कल्याण की उमग उठे, आत्म-विश्वास जगे और सत्संकल्प कर उस ओर बढने की वृत्ति पैदा हो, तभी सच्चा अन्त्योदय हो सकता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने यही तो किया। उनकी प्रेरणा से खटीको, कलालो, चमारो, मोचियो, भीलो आदि ने मास-मदिरा आदि कुव्यसनो का त्याग किया, परिणामस्वरूप उनकी शारीरिक, आर्थिक, आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति हुई। वे अपने पैरों पर खडे हो गये। उनके बुरे सस्कार बदले और उनमे स्वय का उत्थान करने का मनोबल जागृत हुआ। कर्ज लेने वाले कर्जा देने लगे। गगापुर, जोधपुर, माडल आदि अनेक स्थानो के ज्वलन्त प्रमाण मौजूद है। आज उन लोगो का जीवन सुख-शान्ति से भरपूर है। वे जैन दिवाकरजी महाराज का हृदय से आभार मानते हैं और हजारो मुखो से उनके उपकारो का बखान करते हैं। जैन दिवाकरजी महाराज ने ऐसा अन्त्योदय किया जिससे उनका ही नही, उनकी पीढियो तक का उद्धार हो गया। उनकी सन्तानें भी सुख के झूले मे झूल रही है।

सद्गुण प्रचार की नयी शैली

श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने जनता मे सदाचार एव अहिंसा के प्रचार के लिए नई शैली अपनाई। तत्कालीन धर्म-प्रचारको की खण्डन-मण्डन प्रधान शैली से हटकर उन्होंने जनता को सरल और जनभाषा मे प्रेरणा दी। उनकी सत्यपूत वाणी ने जन-जन के हृदय को स्पर्श किया। उनके शब्दो मे आडम्बर नही, हृदय का घोष होता था। परिणामस्वरूप श्रोता की हार्दिक कोमल भावनाएँ सहसा झकृत हो जाती और वह स्वय ही हिंसा आदि दुर्गुणो से विरक्त होकर उनका त्याग कर देता।

वाणी का प्रभाव

मानव हृदय पर जितना प्रभाव वाणी का पडता है, उतना दूसरी किसी वस्तु का नहीं, होनी चाहिए रसना रस भरी।

श्री जैन दिवाकर जी महाराज की वाणी मे यह सहजगुण था। जो एक बार उनका प्रवचन सुन लेता वह बार-बार सुनने को लालायित रहता। उस पर यथेष्ट प्रभाव पडता। वह सदा के लिए आपका भक्त बन जाता। उनके शब्दो मे ऐसा आकर्षण था कि राह चलने वाले रुक जाते और एकाग्र होकर सुनते रहते। एक अंग्रेज कर्नल १० मिनट सुनने का सकल्प करके आया और ५० मिनट तक भाव-विभोर होकर सुनता रहा। रावजी ने मोटर रुकवाई और साधारण जनो के साथ बैठकर प्रवचन सुनने लगे। चोरो ने सुना तो चौरकर्म त्याग दिया, शराबियो ने शराब छोड दी, शिकारियो ने तीरकमान खूंटी पर लटका दिये, धर्म के नाम पर होने वाला मूक पशुओ का वध बन्द हो गया, मासाहारियो ने मासभक्षण त्याग दिया—यह सब क्या था ? वाणी का ही तो प्रभाव था।

वे वाणी का मोल खूब जानते थे, इसीलिए तो उनकी वाणी इतनी प्रभावशालिनी थी। उनके शब्दो का राजा और रक, ब्राह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान, पारसी और ईसाई, जैन और जैनेतर, अग्रवाल और ओसवाल, भारतीय और यूरोपीय सभी पर अचूक प्रभाव पडता था। सभी गद्गद् हो जाते थे। उन्हें लगता था जैसे उनका ही हृदय बोल रहा हो। यही तो शब्द-शक्ति की पराकाष्ठा है कि सुनने वाला उसे अपने ही हृदय की आवाज समझे।

यह गुण जैन दिवाकरजी महाराज की वाणी मे भरपूर मात्रा में था, इसीलिए तो वे प्रसिद्धवक्ता और वाग्मी कहलाए।



गम्भीर ज्ञान

प्रसिद्ध वक्ता और वाग्मी होने के साथ-साथ जैन दिवाकरजी महाराज का ज्ञान भी बड़ा गहन और गम्भीर था। जैन आगमों में तो वे निष्णात थे ही, साथ ही साथ वैदिक दर्शनों—वेदान्त, सांख्य, योग, न्याय आदि का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। गीता में गहरी पैठ थी। कुरानशरीफ और बाइबिल का भी आपने अध्ययन किया था। पैनी और तलस्पर्शी बुद्धि से उन्होंने इन ग्रन्थों के रहस्य और हार्द को हृदयंगम कर लिया था। उनके ज्ञान में अनुभव की तेजस्विता थी। उनके शब्द कण्ठ से नहीं, हृदय से निकलते थे। इसलिए उनमें प्रभावकता थी। लेकिन अपने इस विशाल और सूक्ष्म अध्ययन का उपयोग उन्होंने कभी भी विरोधी को नीचा दिखाने के लिए नहीं किया। उनके ज्ञान के पीछे पवित्र लोकहितकारिणी भावना बनी रही।

सरलहृदयी सच्चे सन्त

जैन दिवाकरजी महाराज सच्चे सन्त थे। भारतीय संस्कृति में सन्त के लिए सरल हृदय और मधुर स्वभाव आवश्यक माना गया है। उसे निष्कपट होना चाहिए। साधना से प्राप्त शक्तियों द्वारा चमत्कार प्रदर्शन में नहीं पड़ना चाहिए। अनेक सन्त चमत्कारों के मोह में पड़ जाते हैं। यश और मान की कामना में वे अपनी चमत्कारिक शक्तियों द्वारा राजाओं तथा सामान्य जनता को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। लेकिन आपका हृदय सरल था, स्वभाव मधुर था और वाणी कोमल। उनका उद्देश्य किसी को प्रभावित करना नहीं था वरन् सबको सुख-साता देना था। यह बात दूसरी है कि उनकी सहज साधना के प्रभाव से भक्तों की आधि-व्याधि और उपाधि स्वयं ही दूर हो जाती थी, जैसे सरोवर के निकट जाने से स्वतः ही ग्रीष्म की दाहकता का प्रभाव कम होकर शीतलता व्याप्त होने लगती है। वे निर्दोष श्रमणचर्या का पालन करते हुए अहिंसा की ज्योति जगाते रहे।

करुणा के आगार

आपका हृदय करुणा का आगार था। **णवणीयतुल्लहियया**—नवनीत के समान कोमल हृदय वाले थे। दीन-दुखियों को देखकर उनका हृदय करुणा से भर जाता था। वे किसी को भी पीड़ित व दुखी नहीं देख सकते थे। कष्ट देने वाले और कष्ट पाने वाले दोनों पर ही उन्हें दया आती थी। अपने हृदय की करुणा से प्रेरित होकर ही उन्होंने शिकारियों, मांसाहारियों और दुर्व्यसनियों का हृदय परिवर्तन किया था। उनकी प्रेरणा से हजारों मानवों और पशुओं का जीवन सुखी हुआ था। मन, वचन एवं कर्म—तीनों से उन्होंने करुणा पाली। उनका घोष था—दया पालो। कभी उन्होंने कर्कश वचन नहीं बोले।

उनकी जिह्वा, उनकी वाणी ने किसी की आत्मा को दुखाया नहीं, वरन् सबको आत्म-कल्याण और सदाचार की ओर उन्मुख किया। अपनी विश्वव्यापिनी करुणा द्वारा उन्होंने सबको सुख तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर ही किया।

निर्भीक और दृढ़

मधुर स्वभाव तथा करुणासागर होते हुए भी उनके हृदय में दृढ़ता और निर्भीकता का वास था। उनके संकल्पों और शब्दों में वज्र-सी दृढ़ता थी। इस दृढ़ता के कारण ही उनके व्यक्तित्व और वाणी में आकर्षण और प्रभाव था। निर्भीकता प्रभावोत्पादिनी होती है। ढिलमिल चरित्र वाले व्यक्तियों में कोई आकर्षण नहीं होता। विश्वास ही विश्वास का जनक होता है। जिसे स्वयं अपने



पर विश्वास न हो, वह दूसरो का विश्वास भी अर्जित नही कर पाता। उनमे दृढ आत्मविश्वास था तभी तो उनकी वाणी और व्यक्तित्व मे इतना आकर्षण था और जादू का-सा प्रभाव था। विरोध को वे विनोद समझते थे। उनकी दृढता से ही प्रभावित होकर उनके विरोधी भी समर्थक हो जाते थे। उनके निर्भीक और मधुर शब्दो को सुनकर उनके प्रति नतमस्तक हो जाते थे।

मानव हृदय के कुशल पारखी

आपका लौकिक अनुभव भी बहुत विशाल था। ५६ वर्ष के दीर्घ सयमी जीवन मे वे अनेक और विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो के सम्पर्क मे आये। अपने इस विशाल अनुभव के आधार पर उन्हे मानव के हृदय को परखने की अद्भुत क्षमता प्राप्त हो गई थी। उन्होने चोरो, डाकुओ, दुर्दान्त हत्यारों और वेश्याओ को भी प्रतिज्ञाएं दिलवाई। कुछ लोगो ने उस समय उनके त्याग पर विश्वास नहीं किया, किन्तु आपका विश्वास कभी गलत नही हुआ। उन लोगो ने बडी निष्ठा से प्रतिज्ञाओ—नियमो का पालन किया। आपका विश्वास था कि अनेक बार मनुष्य परिस्थितियो और परम्पराओ से विवश होकर भी दुराचार मे प्रवृत्त होता है। यदि उसकी सुप्त शुभ प्रवृत्तियो को जगा दिया जाय तो वह स्वय ही सदाचार की ओर चल पडेगा। यही उन्होने किया और उसमे सदा सफलता पाई।

महान् सर्जक

उत्तम मानव जीवन के सर्जक होने के साथ-साथ जैन दिवाकरजी महाराज उत्कृष्ट साहित्य के रचयिता भी थे। इस क्षेत्र मे भी उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने गद्य और पद्य दोनो लिखे। लोक गीत, भजन आदि के साथ-साथ उनकी प्रतिभा से जीवन-चरित्र तथा विवेचनयुक्त ग्रन्थ भी निःसृत हुए। इनकी ३० पद्य रचनाओ मे १६ जीवन चरित्र हैं और ११ भजन सग्रह हैं। इन्हे पढते हुए होठ थिरकने लगते हैं, मन-मयूर नाचने लगता है और पाठक भाव-विभोर हो जाता है। इनकी रचनाओ मे लोक-गीतो की मधुरता और रसमयता है तो गजलो के गुलदस्ते भी हैं।

'भगवान महावीर का आदर्श जीवन', 'जम्बूकुमार', और 'पार्श्वनाथ (चरित्र)' आदि आपकी गद्य-रचनाएँ हैं। इनमे अनेक प्रेरक प्रसग भरे पडे हैं।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने समस्त वेद-शास्त्रो का दोहन कर गीता का उपदेश दिया उसी प्रकार आपने समस्त जैन आगम साहित्य का मथन कर **'निर्ग्रन्थ प्रवचन'** नाम से महावीर वाणी का सकलन किया। जिस प्रकार गीता योगेश्वर श्रीकृष्ण की कीर्ति का आध्यात्मिक आधारस्तम्भ है उसी प्रकार निर्ग्रन्थ प्रवचन आपश्री की वह अमर कृति है, जो युग-युगो तक प्रकाश-स्तम्भ बनकर जन-जन का मार्ग-दर्शन करती रहेगी। इसके अठारह अध्यायो मे जैन आगमो के सभी विषय सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप मे समाहित कर लिये गए हैं। यह आपके गूढ और तलस्पर्शी अध्ययन का परिचायक है। इस ग्रन्थ मे सकलित रत्नो का बहुरगी प्रकाश पाठक के अन्तर्हृदय को जाग्रत कर उसके ज्ञानचक्षुओ को खोल देता है और कल्याण पथ प्रशस्त करता है।

महान् और विराट् व्यक्तित्व

जैन दिवाकरजी महाराज का व्यक्तित्व विशाल और विराट था। उनका व्यक्तित्व इन्द्रधनुषी था। वक्तृत्व, कवित्व, प्रभावकत्व, कारुण्य, लोकहित, श्रमणत्व और उच्चकोटि की तपोमय साधना के अनेक मनोरम रगो का समागम हुआ था। उनके व्यक्तित्व मे।

वे विशिष्ट साधक थे। उन्होंने साधना की उन असीम ऊँचाइयो को छू लिया था



जहाँ तक साधारण साधक नही पहुँच पाते। महान व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण है—निरभिमानता। साधारणत मानव थोडी सी प्रसिद्धि पाकर ही फूल उठते हैं, अभिमान मे भर जाते हैं। छोटे-छोटे तलैयो के समान उफन पडते हैं। लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज कभी अपनी प्रसिद्धि से फूले नही, सागर के समान गम्भीर बने रहे। उनका विशाल हृदय फलदा वृक्ष की तरह और भी विनम्र हो गया। उनके पारस स्पर्श से अनेक लोहे सदृश मानव स्वर्ण की तरह चमक-चमक उठे। कलुषित हृदय निर्मल बन गए, आसमान मे उडने वाले (अभिमानी) जमीन पर चलन लगे (विनम्र बन गए) फिर भी उन्हे कभी यह विचार नही आया कि मैंने कुछ किया है। कर्तृत्व-अहकार तो उनमे था ही नही इसीलिए उनमे अभिमान नही आया, अहकार नही जागा। वे तो केवल जिन-शासन की महत्ता और गुरुकृपा का प्रसाद मानते रहे, विनम्र और विनयशील बने रहे। क्योकि वे जानते थे कि जिनशासन और आत्मोन्नति का मूल विनय है।

विनय, सदाचरण, शुद्ध श्रमणचर्या, तपोभूत जीवन, वाणी-विवेक, करुणापूरित हृदय आदि अनेक सद्‌गुणो के सगम से आपका व्यक्तित्व विशाल और विराट हो गया था।

आध्यात्मिक दिवाकर

मुनिश्री चौथमलजी महाराज भौतिक नही वरन् आध्यात्मिक, गगन के नहीं, वरन् धरा के दिवाकर बनकर चमके। भौतिक दिवाकर के प्रकाश के समान उनमे ताप नही वरन् तप की ज्योति थी। उनमे दाहकता नही, किन्तु जीवनदायी ऊष्मा थी। उनका जीवन तप से चमक रहा था। अपने तपोमय जीवन के प्रकाश से उन्होंने जन-जन का अन्तर्हृदय आलोकित किया। सम्पर्क मे आने वाले नर-नारियो के मन के कलुष को धोकर उसे ज्ञान और सदाचार की ज्योति से चमकाया। लोगों के अवगुणो और दुर्व्यसनो को मिटाकर उनमे गुणो का विकास किया। जिस प्रकार बाल-रवि की किरणें सुखद और स्फूर्तिदायी होती है, इसी प्रकार उनके महान् व्यक्तित्व की वचनरूपी किरणें सुखद और स्फूर्तिदायिनी थी। पाप-पक और प्रमाद-निद्रा को मिटाने की अद्‌भुत शक्ति तथा क्षमता थी। जो भी उनके सम्पर्क मे आया, कुन्दन की तरह चमक उठा।

एकता के अग्रदूत

आपश्री जब दीक्षा लेने का सकल्प कर रहे थे, तब आपके ससुर श्री पूनमचन्दजी ने दीक्षा से विरत करने के लिए कहा था—"श्रमण सघ मे भी मनोमालिन्य है, अनेक सम्प्रदाय हैं।' यह सुनकर आप दीक्षा से विरत तो हुए नही, वरन् मन मे यह सोच लिया कि 'मैं जैन-संघ मे विद्यमान इन विभिन्न सम्प्रदायो मे एकता स्थापित करने का भरपूर प्रयास करूँगा।' श्रमण बनने के बाद भी आपकी यह इच्छा सदैव ही बलवती रही। जब भी अवसर मिला, आपने एकता का प्रयास किया। यहाँ तक कि एक श्रमण सघ हो इसके लिए आप अपने सम्प्रदाय की उपाधियाँ तक त्यागने को तैयार हो गए। आचार्य पद भी (ब्यावर के जैन श्रमण सम्मेलन में) श्री आनन्दऋषि जी महाराज को दिलवाया। अजमेर मे पूज्य श्रीलालजी महाराज के स्वागतार्थ आप स्वय पाँच साधुओ के साथ ब्यावर मार्ग पर पहुँचे। ढड्ढाजी की हवेली मे जाकर उनसे सम्मिलित प्रवचनो की प्रार्थना की। रामगंज मण्डी मे श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्यश्री की खोटी आलोचना भी समताभाव मे सहन की। विरोध या परिहार में एक शब्द तक भी न कहा। दिगम्बर जैन आचार्य सूर्यसागर जी महाराज ने ज्यो ही सम्मिलित प्रवचन की इच्छा प्रकट की तुरन्त ही आपने सहर्ष उनका हार्दिक स्वागत किया। २००७ के कोटा चातुर्मास में तो आपकी एकता भावना फलवती होती दिखाई देने



लगी । एक मच मे ही त्रिमूर्ति (दिगम्वर आचार्य सूर्यसागर जी महाराज, श्वेताम्वर मूर्तिपूजक आचार्य आनन्दसागर जी महाराज और आपश्री) के प्रवचन होने लगे । काश ! आप कुछ दिन और जीवित रह जाते तो त्रिमूर्ति सर्वतोमद्र (चतुर्मुखी) वन जाती है । तेरापन्थी आचार्य तुलसी भी इस मच पर विराजमान दिखाई देते ।

विक्रम् स० १९८३ मे जब आप सादड़ी मे विराजमान थे तव 'जैन प्रकाश' के सम्पादक झवेरचन्द जादवजी कामदार ने आपकी सेवा मे उपस्थित होकर आपके एकता सम्वन्धी विचारो को जानने की विनम्र इच्छा प्रकट की। आपने कहा कि एकता के लिए मूलभूत आवश्यकताएँ ये हैं—

(१) सभी साधु-साध्वियो का एक स्थान पर सम्मेलन हो ।
(२) साधुओ की समाचारी और आचार-विचार प्रणाली एक हो ।
(३) स्थानकवासी सघ की ओर से प्रमाणभूत श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन हो ।
(४) परस्पर एक-दूसरे की निंदा और टीका-टिप्पणी न करें ।
(५) पर्व-तिथियो का सर्वसम्मत निर्णय हो ।

आपके ये सभी सुझाव व्यावहारिक थे और आज भी इनकी उपयोगिता असदिग्ध है ।

आपकी कल्पना थी, जैन समाज की सास्कृतिक एकता की ओर उसे साकार वनाने के लिए महावीर जयंती (चैत्र सुदि १३) का उत्सव सामूहिक रूप मे मानने का प्रवर्तन आपश्री ने किया । सघ एकता की भावना से ही जहाँ भी 'महावीर जयन्ती' का प्रसग आया उन्होंने इस पर्व को सम्मिलित रूप से मनाने की प्रवल प्रेरणा दी । उज्जैन, अमलनेर, आगरा आदि स्थानो पर दिगम्वर, श्वेताम्वर, स्थानकवासी सभी सप्रदायो ने मिल-जुल कर भगवान महावीर का जन्म दिवस मनाया । आज प्राय. सभी स्थानो पर यह परम्परा प्रवर्तित हो रही है, जिसका मूल श्रेय आप ही को है ।

हिन्दू जाति के सगठन के लिए लोकमान्य तिलक ने भी इसी प्रकार 'गणपति उत्सव' और 'शिवाजी उत्सव' का आयोजन महाराष्ट्र मे किया था, जो आज भी चल रहे हैं ।

सगठन निर्माण के प्रेरक

जैन दिवाकर जी महाराज सगठनो के महत्त्व को खूब समझते थे। समाज-सुधार और मगलकारी कार्यों का सचालन इन्ही सगठनो के द्वारा होता है । उन्होने वालोतरा, व्यावर, पीपलोदा, उदयपुर आदि अनेक स्थानो पर 'महावीर जैन मडल' या 'जैन मडलो' की स्थापना करवाई। रतलाम मे जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति की स्थापना हुई, जहाँ से सत्साहित्य का प्रकाशन होता रहा। रायपुर (वोराणा), देलवाडा, सनवाड, गोगूंदा आदि स्थानो पर वालको को धार्मिक शिक्षा देने के लिए जैन पाठशालाओ की स्थापना हुई । जोधपुर मे महिलाश्रम, अहमदनगर मे 'ओसवाल निराश्रित फड, मन्दसौर मे 'समाज हितैषी श्रावक मडल', चित्तौडगढ मे 'चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम' आदि अनेक सस्थाएँ आपश्री की प्रेरणा से समाज के उपकारी कार्यों के लिए निर्मित हुई ।

जैन दिवाकर जी महारज की प्रतिभा वहुमुखी थी। वे प्रसिद्धवक्ता, वाग्मी, महामनीषी, जगद्वल्लभ, क्रान्तदर्शी और युगपुरुष सत थे। वे दिवाकर के समान ही चमके । उनकी प्रभा आज तक जन-जन को प्रेरणा देती रही है और आगे भी देती रहेगी ।

ऐसे आध्यात्मिक दिवाकर को जन्म देने का श्रेय मालव धरा के एक छोटे से कस्वे नीमच को प्राप्त हुआ है । आपके जन्म से आपकी जन्मभूमि धन्य हो गई ।



उद्भव : एक कल्पांकुर का

जन्म-भूमि

भारत की पुण्य धरा मे मालव भूमि सदा से ही वीर-प्रसूता रही है। यहाँ अनेक कर्मवीरो ने जन्म लिया है तो धर्मवीरो ने भी इसे अपने जन्म से गौरवान्वित किया है। दशार्णपुरनरेश दशार्णभद्र जैसे कर्म और आध्यात्मिक क्षेत्र मे शूरवीर ने यही जन्म लिया था। विक्रमादित्य जैसे प्रवल प्रतापी, विद्या व्यसनी और प्रजावत्सल शासक भी इसी भूमि ने उत्पन्न किये। यह भूमि प्राकृतिक सुषमा और सम्पदा मे भरपूर है। इसीलिए यहाँ की भूमि के लिए प्रचलित है—

मालव भूमि गहन गम्भीर।
डग-डग रोटी पग-पग नीर॥

इसी भूमि को पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज, पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज आदि अनेक मनीषी सत एव तपस्वियो तथा महासती रगूजी महाराज आदि अनेक महासतियो को जन्म देने का गौरव प्राप्त हुआ है। यहाँ उत्पन्न हुई अनेक विभूतियो से भारत का आध्यात्मिक वैभव चमका है।

इस प्रदेश का एक नगर है 'नीमच'। नगर वहुत वडा तो नही है, लेकिन यह प्रसिद्ध प्राचीन काल से ही रहा है। यहाँ अनेक ऐतिहासिक तथा सास्कृतिक स्थल हैं। ब्रिटिश शासन काल मे यह सैनिक छावनी के रूप मे प्रसिद्ध रहा है। इसकी भौगोलिक स्थिति २५० उत्तरी अक्षाश तथा ७५° पूर्वी देशान्तर पर है। ग्वालियर के सिन्धिया नरेश के शासन काल मे यह राजपूताना-मालवा के सीमात पर था। वर्तमान मे यह नगर मध्य-प्रदेश मे स्थित है। रेल्वे का प्रमुख स्टेशन है।

जन्म वश

इसी नीमच नगर मे ओसवाल जाति का एक चोरडिया परिवार का निवास था। यह परिवार कुल मर्यादा का पालन करने वाला था। इस परिवार के मुखिया—गृह स्वामी थे—गगारामजी और इनकी धर्मपत्नी थी केसरवाई। पति-पत्नी दोनो ही आचार-निष्ठ, धर्मनिष्ठ सद्-गृहस्थ थे। गगारामजी का चरित्र गगा के समान निर्मल था और केसरवाई के गुणो की महक केसर के समान ही सपूर्ण नगर मे फैली हुई थी। गगारामजी की आर्थिक स्थिति साधारण ही थी किन्तु उनके चारित्रिक गुणो के कारण उनकी नगर मे प्रतिष्ठा वहुत अधिक थी। वे घी का व्यापार करते थे। इस व्यापार के अतिरिक्त उन्हे उत्तराधिकार मे थोडी-सी जमीन, कुछ आम के वृक्ष और एक कुआ भी अपने पिता श्री ओकारजी से मिला था।

ओकारजी दारूग्राम (ग्वालियर स्टेट) के ठाकुर साहव के यहाँ कामदार थे। किसी वात पर इनका ठाकुर साहव से मतभेद हो गया। मतभेद इतना वढा कि मनमुटाव तक जा पहुँचा। ओकारजी शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। वे सघर्ष मे न पडे। उन्होने जल मे रहकर मगर से वैर रखना उचित न समझा। फलस्वरूप दारूग्राम छोडकर नीमच आ वसे। यही गगारामजी का जन्म और केसरवाई के साथ उनका पाणिग्रहण सस्कार हुआ।

धार्मिक परिवार मे धर्मनिष्ठ केसरवाई आ मिली। गगाराम जी के घर साधु-साध्वियो का आगमन होता रहता था। केसरबाई उनके दर्शन-वदन करके वहुत हर्षित होतीं।



स्वप्न सकेत

ब्राह्ममुहूर्त का समय। टिमटिमाते तारे अस्त होने को प्रस्तुत थे। मन्द-सुगन्ध समीर शरीर मे पुलक भर रहा था। केसरबाई अपनी शैया पर अर्द्ध निद्रित दशा मे लेटी थी। पलकें अलसाई और मुँदी हुई थी। एकाएक उन्हे पत्र-पुष्प और फलो से लदा हुआ एक विशाल आम्रवृक्ष दिखाई दिया। पीले-पीले पके हुए रसाल फलो के दर्शन से केसरबाई के मन-प्राण रससिक्त हो गए। उसने अचकचाकर आँखें खोल दी। आम्रवृक्ष लुप्त हो गया। वह समझ गई कि यह स्वप्न था। विवेकिनी माताएँ शुभ स्वप्न देखने के बाद सोती नही। केसरबाई भी शय्या पर बैठ कर प्रभुस्मरण करने लगी।

गगारामजी की आँखें खुली तो पत्नी को बैठे देखा तो पूछा—

"क्या बात हो गई ? तुम्हारी नीद कैसे खुल गई ?"

केसरबाई ने अपना स्वप्न सुना दिया। गगारामजी ने कहा—

"यह तो बडा शुभ स्वप्न है। तुम्हारी कुक्षि से कोई ऐसा पुण्यशाली जीव जन्म लेगा जिसकी शीतल छाया मे जगत सुख-शाति का अनुभव करेगा।"

स्वप्न फल जानकर केसरबाई बहुत हर्षित हुई। वह अपने गर्भस्थ शिशु को धार्मिक सस्कार देने को प्रस्तुत हो गई।

माता की कुक्षि प्रकृति की अद्भुत प्रयोगशाला है। इसी मे राम, कृष्ण, जैसे सुसस्कारी शिशुओं का निर्माण होता है तो रावण, कस जैसे कुसस्कारियो का भी। तामसी वृत्ति वाले भी इसी प्रयोगशाला मे निर्मित होते हैं, तो सात्त्विक वृत्ति वाले भी। इनके निर्माण मे माता के आचार-विचारो का सर्वाधिक प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त वश-परम्परा, माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक वृत्तियाँ, उनके आचार-विचार आदि का भी प्रभाव पडता है। इच्छानुकूल योग्य संतान की चाह वाली माताएँ इन सभी बातो के प्रति सजग सावधान रहती है। गर्भस्थ शिशु का प्रभाव भी माता पर पडता है। धर्मात्मा जीव के गर्भ मे आने पर माता की प्रवृत्ति सहज ही धार्मिकता की ओर उन्मुख हो जाती है।

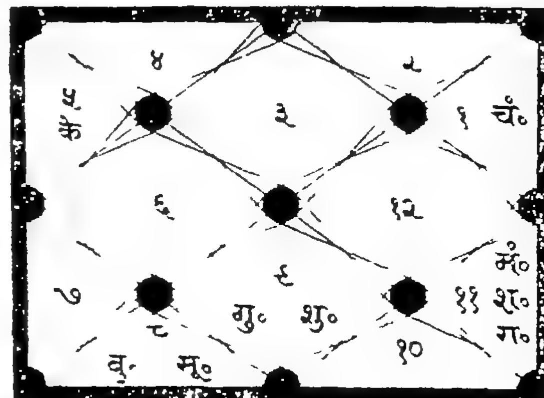
केसरबाई स्वय भी सदाचारिणी थी और गर्भस्थ जीव भी धर्मात्मा था। परिणामस्वरूप केसरबाई का मन धर्म मे रमने लगा। गर्भस्थ शिशु और माता दोनो ही परस्पर एक-दूसरे पर प्रभाव डाल रहे थे। माता का अन्तर्मन अधिकाधिक धर्ममय होता जा रहा था। वह बडे यत्न से गर्भ की परिपालना कर रही थी।

जन्म

सवत् १९३४, कार्तिक सुदी १३, रविवार का दिन। ५० घटी, १३ पल बीतने के बाद, अश्विनी नक्षत्र के तृतीय चरण मे माता केसरबाई ने एक शिशु को जन्म दिया।

शिशु के जन्मकालीन ग्रहो की स्थिति इस प्रकार थी—

जन्म कुण्डली





बालक के जन्म पर पूरे परिवार मे हर्ष-उल्लास छा गया। प्रसूतिकर्म किये गए। १२वें दिन विद्वान ब्राह्मणो ने ज्योतिष के अनुसार नाम बताया—चौथमल (चतुर्थ मल्ल)।

नाम-विवेचन

चौथ को ज्योतिष मे रिक्ता तिथि माना जाता है। सामाजिक व्यवहार मे भी यह तिथि अशुभ समझी जाती है। लेकिन जैनागमो मे चारित्र को रिक्त कर कहा है—'चयरित्तकर चारित्त' अर्थात् कर्मो के चय, उपचय, सचय को रिक्त करने वाला चारित्र है।

मोक्ष के मार्गों का वर्णन करते हुए आचार्यो ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और चौथा मार्ग 'तप' गिनाया है। कहा है—**भव कोडी सचिय कम्म तवसा निज्जरिज्जइ**—कोटि जन्मो के सचित कर्म तप से नष्ट हो जाते हैं।

चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य पाँचो महाव्रतो का कवच माना गया है। ससार मे ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम है क्योकि ब्रह्मचर्य का अर्थ ही आत्मा मे रमण करना है।

धर्म के चार भेदो मे **चौथा** भेद है 'भाव'। भाव ही मुख्य है। इसी के द्वारा मुक्ति की प्राप्त होती है। सासारिक व्यापारिक जगत मे भी 'भाव' का महत्व सर्वोपरि है। भाव (मूल्य) ऊँचा जाने पर ही लाभ होता है। धर्ममार्ग मे भी भाव (आत्मा के परिणाम) ऊर्ध्वमुखी होने से अतिशय ज्ञान—केवलज्ञान तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है।

चौदह गुणस्थानो मे भी **चौथा** गुणस्थान सम्यक्त्व है। यही मोक्षमार्ग की आधारशिला है। मोक्षमार्ग का प्रारम्भ यही से होता है। इसी गुणस्थान मे जीव सर्वप्रथम अपने स्वरूप का अनुभव करता है।

प्राचीन कहावत है—'व्यक्ति पर नाम का प्रभाव अवश्य पडता है।' गुरुदेव चौथमल जी महाराज पर अपने नाम का कितना प्रभाव पडा, यह सर्वविदित है। उन्होने चारित्र का पालन करके कर्मो के सचय को रिक्त किया, घोर तप किया, ब्रह्मचर्य का पालन किया और साधना की उच्च भावभूमि पर पहुँचे। इसलिए तो जन-जन के वन्दनीय हुए। उनका नाम स्मरण आते ही हृदय श्रद्धा से भर जाता है।

जोधपुर के आशुकवि प० नित्यानंद जी ने उनके बारे मे कहा था—

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्व जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला।
अय चतुर्थो भवताच्चतुर्थे धातातिसृष्टोऽस्ति चतुर्थ मल्ल.॥

प्राचीन तीनो युगो मे धर्मोपदेशक तथा धर्म प्रवर्तक हो गये है लेकिन आप इसी चतुर्थ युग मे ऐसे प्रभावशाली पुरुष चतुर्थमल्ल (चौथमल) हैं।

परिवार

चौथमल जी महाराज के दो भाई और दो बहनें थी। बडे भाई का नाम कालूराम जी और छोटे भाई का नाम फतेहचन्द जी था। बडी बहन नवलबाई और छोटी बहन सुन्दरबाई थी। सुन्दरबाई का परिवार मदसौर मे रहता है। उनकी एक पुत्री जिसका बम्बई मे विवाह हुआ वह बम्बई मे ही रहती है। सबसे छोटी एक बहन और थी जिसका लघुवय मे ही अवसान हो गया था।

विद्या भगवती के अक मे

समय गुजरने के साथ-साथ बालक चौथमल माँ के अक से उतरकर उसकी अँगुली पकड़



कर चलने लगा और फिर दौड लगाने लगा। उसकी वाल-क्रीडाओ को देखकर माता केसरबाई का हृदय हर्ष से भर जाता, लेकिन हर्ष मे भी वे अपने कर्तव्य को न भूली। पुत्र के मन-मस्तिष्क मे सुसस्कार भरती रही।

वालक चौथमल सात वर्ष का हो गया। पिता ने उसे विद्यार्जन के लिए गुरु के पास विठा दिया। क्योकि विद्या ही कुरूपो का रूप और रूपवानो का सौन्दर्य है। कहा है—'विद्यारूप कुरूपाणा।'

कुशाग्र बुद्धि वालक चौथमल ने अक्षरज्ञान के साथ-साथ हिन्दी, उर्दू, अग्रेजी, गणित आदि का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया। उन्हें नई नई पुस्तको को पढने का चाव रहता था। वे नगर के पुस्तक विक्रेता नदरामजी पंसारी की दुकान पर अवकाश मिलते ही जा बैठते और पुस्तकें पढते रहते। कभी मन ही मन और कभी सस्वर। उन्हें सगीत का शौक भी लगा। आयु वढने के साथ-साथ स्वर भी मधुर होता गया। सगीतशास्त्र के विधिवत् अध्ययन के बिना ही उन्हें श्रोताओ को मुग्ध करने की कला आ गई। लोग उनके उत्तम गुणो से प्रभावित होकर कहते—'यह वालक किसी दिन महापुरुष वनेगा।'

वालक चौथमल का एक प्रमुख गुण था—गम्भीरता। यह गम्भीरता उनकी विचार-हीनता के कारण न थी वरन् इसका कारण थे उनके धार्मिक और शुभ सस्कार। उनमे विनय गुण का भी समावेश था। यह गुण उनके यहाँ यदा-कदा आने वाले साधु-साध्वियो के प्रभाव का परिणाम था। घर का वातावरण शात और धार्मिक होने के कारण वालक चौथमल मे स्वच्छन्दता और उच्छृखलता का किंचित्मात्र भी समावेश न हो पाया।

अपने इस गम्भीर स्वभाव और धार्मिक सस्कारो से आप्लावित वालक चौथमल १२ वर्ष का हो गया। उसने वाल्यावस्था से किशोरावस्था मे प्रवेश किया।

वैराग्य स्फुरणा

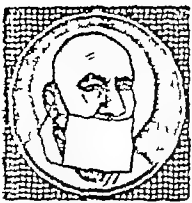
प्रथम आघात : अग्रज का अन्त

अभी चौथमलजी १३ वर्ष के ही थे कि उन्हे पहला तीव्र आघात लगा। उनके अग्रज कालूराम जी का असमय ही करण अन्त हो गया।

कालूरामजी चौथमलजी के बडे भाई थे। घर मे धार्मिक वातावरण होने पर भी बाहर की कुसगति के कारण उन्हें जुआ (द्यूत) खेलने का व्यसन लग गया। घर मे तो जुआ खेल ही नहीं सकते थे। इधर-उधर लुक-छिपकर जुआ खेलते रहते थे। एक दिन उनके कुमित्रो ने नगर-सीमा के वाहर अपना व्यसन पूरा करने की योजना वनाई। सभी मित्र वहाँ पहुँच गए। सध्या के झुरमुटे तक खेल चलता रहा। सयोग से कालूराम जीतते रहे। रात्रि का अन्धकार फैलते ही कालूराम उठकर चलने लगे तो मित्रो ने आग्रह करके विठा लिया। धन प्राणो का ग्राहक होता है। अवसर देखकर मित्रों ने कालूराम को धर दवोचा। उनका गला दवा दिया। कालूराम ने वहुत हाथ-पैर मारे लेकिन कई कुमित्रो के आगे उनका वश न चला और उनके प्राण तन पिंजर को त्याग कर निकल भागे।

यह था द्यूत-क्रीड़ा का भयकर दुष्परिणाम!

कालूराम के शव को वही पडा छोडकर मित्रो ने धन का परस्पर बँटवारा किया और अपने-अपने घर जा सोए।



माता केसरबाई ने भी उस रात भयकर स्वप्न देखा। सम्पूर्ण घटना स्वप्न मे उनकी आँखो के सामने घूम गई। वह सिहर गई, पसीना छूट गया।

सुबह मालूम हुआ कि कालूराम रात को घर नही आये। उनके न आने मे पिता भी चिन्तित हुए। तलाश की तो नगर सीमा के पास जगल मे कालूराम का निर्जीव शरीर मिल गया। गगारामजी रोष मे भरकर कानूनी कार्यवाही करने को उद्यत हुए तो केसरबाई ने समझाया—

"सतोष धारण करो। कालू तो अब वापिस आयेगा नही। व्यर्थ ही शत्रुता बढेगी। वैर से वैर शात नही होता और रक्त से रक्त नही धुलता। रक्त धोने के लिए स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है और वैर को शात करने के लिए क्षमा के पीयूष की। आप भी कालू के हत्यारो को क्षमा कर दीजिए।"

कितना उदार हृदय था वीरमाता केसरबाई का। उसके इन वचनो मे गगारामजी का क्रोध भी शात हो गया। पुत्र की अन्त्येष्टि कर दी गई।

इस घटना का किशोर चौथमलजी पर गम्भीर प्रभाव पडा। उनकी गम्भीरता और भी गहरी हो गई। समझ लिया कि व्यसन का परिणाम ऐसा ही क्रूर होता है।

यह घटना सवत् १९४८ की है।

दूसरा आघात पिता का विछोह

कालूरामजी की मृत्यु के बाद गगारामजी मुख से तो कुछ न बोले लेकिन कालूराम के अकाल-मरण ने उनकी कमर ही तोड दी। पुत्र पिता का सहारा और उसके बुढापे की लाठी होता है। यह सहारा छूट जाने से गगारामजी का दिल टूट जाना स्वाभाविक ही था। पुत्र का गम उन्हें अन्दर ही अन्दर पीडित करने लगा। **'चिता जलावे मृतक तन, चिन्ता जीवित देह।'** गगारामजी ने खाट पकड ली। केसरबाई और चौथमलजी सेवा मे जुट गए। लेकिन गम की कोई दवा नहीं होती। उनकी सेवा व्यर्थ हो गयी। कालूराम का गम काल बनकर उन्हे खा गया। स० १९५० मे श्री गगारामजी का स्वर्गवास हो गया।

केसरबाई का सुहाग सिन्दूर पुछ गया और चौथमलजी के सिर से पिता का साया हट गया। माता और पुत्र दोनो का जीवन दु ख से भर गया, किन्तु दोनो ही सुसस्कारी थे इसलिए उनकी विचारधारा वैराग्य की ओर मुड गई। दोनो को ही ससार असार दिखाई देने लगा।

केसरबाई के दु ख का अनुमान भी नही लगाया जा सकता। पति-मरण की पीडा पत्नी ही जान सकती है। यदि किशोर चौथमलजी का भार न होता तो वे उसी समय प्रव्रजित हो जाती। लेकिन उन्हें अपना सासारिक कर्तव्य पालन करना था, चौथमलजी को काम पर लगाना था और उनकी गृहस्थी जमानी थी। ये कार्य सम्पन्न होते ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

विवाह-बन्धन

पहले हमने बताया है कि श्री चौथमलजी गम्भीर रहते थे। पुत्र की गम्भीरता ने माता-के हृदय को चिन्तित कर दिया। परिवारीजन भी उनकी वैराग्य भावना को ससार की ओर मोडने को तत्पर हो गए। चौथमलजी की आयु १६ वर्ष की हो चुकी थी। इस अवस्था मे स्त्री का बन्धन ही सबसे कडा बन्धन माना जाता है। परिवारी जनों की दृष्टि भी इधर ही गई। उन्होंने



चौथमलजी को विवाह-बंधन मे बाँधने का निर्णय किया। यह जिम्मेदारी डालने मे माता केसरबाई भी सहमत थी।

सयोग से उमी समय प्रतापगढ (राजस्थान) निवासी श्री पूनमचन्द जी की ओर से उनकी पुत्री मानकुँवर के साथ चौथमल जी की सगाई का आग्रहपूर्ण अनुरोध आया। माता-जी और परिवारीजनो को तो मुँहमाँगी मुराद ही मिल गई। उन्होंने तत्काल सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। चौथमलजी से पूछने और उनकी सहमति लेने का तो प्रश्न ही नही था। उस समय लडके-लडकी की सहमति तो ली ही नहीं जाती थी। उनका बोलना भी निर्लज्जता समझी जाती थी। विवाह-सम्बन्ध मे माता-पिता एव वृद्धजनो का ही एकाधिकार था।

विवाह की तैयारियाँ होने लगी।

यद्यपि चौथमलजी विवाह करना नही चाहते थे, लेकिन वे इस सम्बन्ध का विरोध न कर सके। विरोध न कर सकने का कारण उस समय की सामाजिक परिस्थितियाँ भी थी। लेकिन प्रमुख कारण था उनकी माता-पिता के प्रति विशेष आदर भावना। वे इन्कार करके अपनी माता के हृदय को पीडित नही करना चाहते थे। उन्होंने कई वार माता के समक्ष अपने हृदय की वात कहने का विचार किया किन्तु उनका साहस जवाव दे जाता। वे कुछ भी न कह पाते।

वे इसी ऊहापोह मे रहे और माताजी तथा परिवारीजनो ने सवत् १९५० मे उन्हें विवाह सूत्र मे बाँध दिया। प्रतापगढ निवासी पूनमचन्दजी की सुपुत्री मानकुँवर उनकी धर्मपत्नी वन गई।

माता केसरवाई ने सोचा—पुत्र को पटवारी का काम ही सिखा दिया जाय परिवार वालो ने भी सहमति व्यक्त की। चौथमलजी को निकटवर्ती गाँव मे पटवारी का काम सीखने भेज दिया गया।

पटवारी ने काम सिखाना स्वीकार कर लिया। लेकिन पहले ही दिन उसने चौथमलजी को भोजन बनाने का आदेश दिया। इन्होने कभी भोजन बनाया तो था ही नही, अत कच्ची-पक्की रोटियाँ सेंक कर रख दी। पटवारी ने देखा तो क्रोधित होकर इन्हे झिडक दिया। चौथमल जी के जीवन मे झिडकी खाने का यह प्रथम अवसर था। वे झिडकी न सह सके। विनयी स्वभाव होने के कारण प्रत्युत्तर तो न दिया किन्तु वहाँ से चले आए।

अब वे अपने भविष्य के बारे मे गम्भीरता से विचारने लगे। उनकी गम्भीरता मे वैराग्य का रग घुलता गया।

उदासीनता

विवाह के वाद भी परिवारीजनो की इच्छा पूरी न हुई। चौथमलजी का गाम्भीर्य न टूटा, वरन् और वढ गया। वैवाहिक कार्यक्रमो मे भी वे तटस्थ रहे और सुहागरात भी वैराग्यरात के रूप मे मनाई। पत्नी मानकुँवर उनकी गम्भीरता को अनदेखी करती रही। उसे विश्वास था कि हाथ पकडा है तो जीवन भर निभायेंगे ही। वह युग भी ऐसा ही था जिसमे विवाह जन्म-जन्मातर का सम्बन्ध माना जाता था। एक वार जिसका हाथ पकड लिया उसे मृत्यु ही छुडा सकती थी। लेकिन चौथमलजी तो वैवाहिक जीवन से निस्पृह थे। ससार मे रहते हुए भी वे जल मे कमलवत् निर्लेप थे।

उनकी उदासीनता को देखकर परिवारी और वृद्धजन उन्हे समझाते—'अब तुम्हारा विवाह



हो गया है। कुछ अर्थोपार्जन करो। ऐसे बैठे-बैठे कैसे काम चलेगा।' लेकिन चौथमलजी पर इस समझाने का कोई प्रभाव न पड़ता। वे तो धर्मोपार्जन करना चाहते थे तो फिर अर्थोपार्जन की ओर क्यो झुकते ?

वैराग्य का पल्लवन

उसी समय नीमच नगर मे कुछ सतो का आगमन हुआ। चौथमल जी उनके पास जाने लगे। उनका अधिकाश समय सतो की सेवा और धर्मश्रवण मे ही व्यतीत हो जाता।

केसरबाई के लिए इस ससार का आकर्षण तो पति के देहान्त के साथ ही समाप्त हो चुका था, अब वह अपने कर्तव्यभार से भी मुक्त हो गई थी। सतो के आगमन को उन्होंने शुभ सयोग माना और अपनी दीक्षा लेने की भावना व्यक्त करते हुए पुत्र से बोली—

"बेटा! अब तुम युवा और समर्थ हो चुके हो। तुम्हारा विवाह भी हो चुका है। अब अपनी गृहस्थी सँभालो। मुझे दीक्षा की अनुमति दो। मैं अपना आत्म-कल्याण करना चाहती हूँ।"

"आपकी भावना बहुत प्रशसनीय है, माताजी! लेकिन मेरे बारे मे भी तो कुछ सोचिये।" चौथमलजी ने कहा।

"तुम्हारे बारे मे ? अब क्या सोचना बाकी रह गया है ?"

"जिस कल्याण-पथ पर आप चलना चाहती हैं, उसी पथ पर चलने की मेरी हार्दिक इच्छा है।"

पुत्र के ऐसे विचार सुनकर माता चौंक गईं। समझाने का प्रयास करती हुई कहने लगीं—

"यह क्या कह रहे हो लाल! तुम्हारी आयु भी छोटी है और विवाह भी अभी हुआ है। गृहस्थाश्रम का पालन करो। जब आयु परिपक्व हो जाय तो दीक्षा ले लेना।"

"तो क्या दीक्षा वृद्धावस्था मे ही लेनी चाहिए ?"

"नहीं पुत्र! ऐसा नियम तो नही है, जब भी भावना सुदृढ हो दीक्षा ली जा सकती है।"

"माताजी! दीक्षा का दृढ निश्चय तो मैंने बड़े भाई के देहावसान के पश्चात् ही कर लिया था।"

"तो फिर विवाह का विरोध क्यो नही किया ?"

"आपका हृदय दुखी न हो, इसलिए।"

माता विचारमग्न हो गईं। पुत्र ही पुन बोला—

"माताजी! यह मानव शरीर भोग का कीडा बनकर गँवाने के लिए नही मिला है। तप-सयम ही मानव-जीवन का सार है। मैं भी दीक्षित होने के लिए दृढसकल्प हूँ।"

पुत्र के दृढ शब्दो से माता समझ गई कि पुत्र की वैराग्य भावना बलवती है। इसे भोगो की ओर नही मोडा जा सकता। उन्होंने अपनी ओर से स्वीकृति देते हुए कहा—

"पुत्र! मेरी ओर से तो तुझे अनुमति है, लेकिन जिसका हाथ पकडा है, उसकी अनुमति भी आवश्यक है। बहू को घर ले आ और उसे समझा-बुझाकर सहमत कर ले।"

माता की अनुमति पाकर चौथमलजी का गम्भीर चेहरा मुस्करा उठा। उनकी बात उचित थी। अत वे ससुराल से अपनी परिणीता बहू को लिवा लाये।

श्रेयांसि बहु विघ्नानि मानकुँवर का विरोध

चौथमलजी ने समझा-बुझाकर अपनी पत्नी मानकुँवर को अपने विचारो से सहमत करने का प्रयास किया तो वह एकदम भडक उठी। विरोध करते हुए बोली—



"न मैं स्वय दीक्षा लूंगी और न तुमको अनुमति दूंगी। यदि दीक्षा ही लेना था तो फिर विवाह क्यो किया?"

सास ने समझाया तो बहू ने उसका भी विरोध किया।

चौथमलजी की प्रव्रज्या मे व्यवधान तो खडा हुआ ही, साथ ही गृह कलह भी होने लगा। घर की शान्ति भी भग हो गई। चौथमलजी अपनी पत्नी को मामी-ससुर के यहाँ छोड आये। वे नीमच लौटकर अपना व्यापार समेटने लगे।

पत्नी के जाने से घर मे शान्ति तो स्थापित हो गई, लेकिन बात छह कानो मे पहुँच गई। मामी-ससुर के यहाँ रहते हुए भी पत्नी शान्त न रही।

चौथमलजी की दीक्षा का सकल्प उनके ससुर के कानो तक भी जा पहुँचा। वे अपनी पुत्री के भविष्य के प्रति चिन्तित हो गए। तुरन्त नीमच आये और चौथमलजी मे पूछा—

"कुँवर साहब! मैंने सुना है कि आपका विचार साधु बनने का है।"

"आपने ठीक ही सुना है।" चौथमलजी का प्रत्युत्तर था।

ससुर साहब ने समझाने का प्रयास किया—

"देखो कुँवर साहब! धर्म की आराधना तो गृहस्थ मे रहकर भी की जा सकती है। साधु बनने मे कोई लाभ नही है। गृहस्थी का पालन करते हुए धर्मध्यान करो।"

चौथमलजी ने दृढ शब्दो मे अपना सकल्प व्यक्त किया—

"गृहस्थाश्रम मे धर्म-पालन की उतनी सुविधा नही है जितनी कि साधु-जीवन मे है। इसलिए आत्म-कल्याण के लिए श्रमण-जीवन बहुत जरूरी है।"

ससुर साहब समझ गये कि चौथमलजी को समझाना व्यर्थ है। वे उठकर चले गये।

ससुरजी के प्रयास

ससुर पूनमचन्दजी के समझाने का कोई प्रभाव न हुआ तो उन्होंने नीमच नगर के वृद्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियो का सहारा लिया। उन्होंने भी चौथमलजी को समझाया लेकिन वे भी उनके दृढसकल्प के समक्ष विफल हो गये।

इसके बाद फिर ससुरजी ने चौथमल जी को समझाने का प्रयास किया लेकिन चौथमलजी तो अपने सकल्प के धनी थे। उन पर कोई प्रभाव न हुआ।

टेढ़ी अँगुली

जब चौथमल जी समझाने-बुझाने से न माने। सीधी अँगुलियो से घी न निकला तो ससुर पूनमचन्द जी ने भय के द्वारा काम करने का विचार किया। वे नीमच नगर के हाकिम से मिले और सारी स्थिति समझाकर चौथमलजी को भयभीत करने की प्रेरणा दी। हाकिम सासारिक पुरुष था, वह आत्मकल्याण के महत्त्व को क्या समझता। उसने भयभीत करने के लिए चौथमलजी को हवालात में बन्द कर दिया।

पूनमचन्दजी तथा अन्य सासारिक व्यक्ति जिसे दण्ड समझते हैं, उसे चौथमलजी ने सुअवसर माना। हवालात के एकान्त शान्त स्थान को उन्होंने पौषधशाला समझा और जप-ध्यान में लीन हो गये।

छह दिन इसी प्रकार बीते। सातवें दिन ससुर साहब ने आकर व्यग्य भरे शब्दो मे पूछा—



"यह स्थान तो आपको अवश्य पसन्द आया होगा। यदि साधु बनने की हठ छोड दी तो यहाँ से मुक्ति मिल सकती है।"

चौथमलजी ने विचार किया—'यहाँ रहकर न सत्संगति मिल सकती है और न साधु-जनो की सेवा का सुयोग। यहाँ रहकर न तो विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकूँगा और न साधु ही बन सकूँगा। यहाँ से निकलने के बाद ही दीक्षा के लिए प्रयास किया जा सकता है।' अपनी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करते हुए उन्होने ससुर साहब के विचारो से सहमति व्यक्त कर दी।

ससुरजी का नियन्त्रण

पूनमचन्द जी को इतनी शीघ्र सहमति की आशा न थी। इस सहज सहमति ने उन्हे सशकित कर दिया। उनकी अनुभवी आँखो ने इस सहमति को रहस्यमयी माना। उन्होंने सोचा—'माता और पुत्र दोनो ही दीक्षा के लिए कटिबद्ध है। कही चिडिया हाथ मे बिलकुल ही न निकल जाय।' उन्होने अपना नियन्त्रण कठोर करने का निश्चय कर लिया और माता-पुत्र दोनों को समझा-बुझा कर अपने साथ अपने ग्राम धम्मोत्तर (प्रतापगढ) ले आए। अब उन्होंने अपना नियन्त्रण पक्का समझा। एक दिन गर्व मे भरकर केसरबाई से बोले—

"समधिनजी! अपने पुत्र को समझा दीजिए कि साधु बनने की बात दिमाग से निकाल दे। उसे साधु बनाने का प्रयास आप भी न करे वरना याद रखिए मेरा नाम पूनमचन्द है।"

पूनमचन्दजी ने सोचा था कि केसरबाई विधवा है और इस समय मेरी निगरानी मे है। दब जायगी। लेकिन सिंहनी हाथियो के समूह से घिर जाने पर भी घबराती नही वरन् उसका शौर्य और भी अधिक प्रदीप्त हो उठता है। यही दशा वीरमाता केसरबाई की हुई। पुत्र को हवालात मे रखे जाने से वह भरी तो बैठी ही थी। कडक कर बोली—

"समधीजी! होनी टलती नही, होकर रहती है। यदि मेरे पुत्र को साधु बनना है तो बनेगा ही, उसे कौन रोक सकता है। रही आपके पूनमचन्द होने की बात, तो मेरा नाम भी केसरबाई है। पूनम के चाँद को अमावस्या का चाँद बना दूँगी।"

पूनमचन्दजी को ऐसा उत्तर मिलने की आशा नही थी। वे सहम गये। आगे कुछ भी न कह सके। उनका गर्वोन्नत मुख लटक गया। बात यही समाप्त हो गई।

अब केसरबाई को भी पूनमचन्दजी का गर्व खल गया। वह अपने पुत्र की वैराग्य भावना को और दृढ करती रही।

शीलवती रगूजी की घटना

एक बार माता-पुत्र दोनो धम्मोत्तर की एक गली मे होकर जा रहे थे। मार्ग मे एक मकान को देखकर पुत्र ने पूछा—

"माताजी! यह मकान किसका है?"

माँ ने बतलाया—

यह मकान शीलवती रगूजी का है। यहाँ उनकी ससुराल थी। वे बाल विधवा हो गई थी। विधवा होते ही उनका चित्त धर्म मे रम गया। वे प्रात सामायिक-प्रतिक्रमण करतीं, स्वाध्याय करती, साधु-साध्वियो के प्रवचन सुनती, मुक्तहस्त होकर दान देती, दोपहर को फिर धार्मिक ग्रन्थ पढती, सन्ध्याकालीन सामायिक प्रतिक्रमण करती, रात्रि को नवकार मत्र गिनती—यो उनका जीवन धर्म को समर्पित था।



किन्तु ससार मे ऐसे भी लोग होते हैं जो धार्मिक जनो को पाप के गर्त मे ढकेलने के लिए सदा तत्पर रहते है। अपनी क्षुद्र वासनापूर्ति के लिए घोर अनैतिक कर्म करते हैं। ऐसे ही एक ठाकुर की दृष्टि रगूजी पर पड गई। वह ताक-झांक करने लगा। रगूजी ने उसे निवेदन करवाया कि "मैं उनकी पुत्री के समान हूँ। अपनी हरकतो को बन्द करने की कृपा करें।" लेकिन वासना के कीडों में विवेक कहाँ ? उस पर विनय का उलटा प्रभाव हुआ। उसने रगूजी को दो-चार बदमाशो के द्वारा उठवा कर मँगवाने (अपहरण) की योजना बना ली।

ठाकुर के तौर-तरीको से रगूजी को अपना शील असुरक्षित दिखाई दिया। शीलरक्षा के लिए उन्होंने दूसरी मजिल से कूदकर अपने प्राणोत्सर्ग का विचार किया। रात को जब वे प्राणोत्सर्ग के लिए उद्यत थीं तभी ऊँट पर बैठा एक व्यक्ति आया। उसने कहा—"बहन ! इस ऊँट पर बैठ जाओ। मैं तुम्हारे अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दूंगा।" हृदय को हृदय भलीभाँति पहचानता है। रगूजी को उस ऊँट वाले पर विश्वास हुआ। वे ऊँट पर बैठ गईं। कुछ ही समय बाद जब उन्होंने आँखें खोली तो अपने को पीहर मे पाया।

कुछ समय बाद रगूजी ने पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के प्रवचन सुनकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

पुत्र ! यह उन्ही रगूजी का मकान है। बेटा ! दृढनिश्चयी और दृढधर्मी व्यक्तियो के जीवन मे ऐसी घटनाएँ हो ही जाती हैं। उनके मार्ग की विघ्न-बाधाएँ स्वयमेव नष्ट हो जाती हैं।

इस घटना से चौथमलजी की दीक्षा-भावना और भी दृढ हो गई।

धम्मोत्तर मे रहते हुए माता-पुत्र को काफी दिन हो गये थे। पूनमचन्दजी की निगरानी मे भी कुछ ढील आ गई थी। एक दिन वहा से किराये की सवारी लेकर दोनो माता-पुत्र नीमच आ गये।

उनके जाने से पूनमचन्दजी क्रोध मे भर गये।

व्यापार समेटना

नीमच मे चौथमलजी की वैराग्य भावना को और भी बल मिला। उनके पडौस मे एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी। वे उसकी शवयात्रा मे सम्मिलित हुए। श्मशान मे उस पुरुष की चिता जल रही थी और उनके मन मे वैराग्य की ज्योति जल रही थी।

घर लौटकर आए और माता से आज्ञा लेकर पूज्य अमोलक ऋषिजी महाराज के दर्शन करने प्रतापगढ चले गये। उनके प्रवचन से वैराग्य भावना और बढी। वहाँ से छोटी सादडी (मेवाड) गये। पूज्य श्रीलालजी महाराज और शंकरलालजी महाराज के दर्शन किये। चार रात्रि का आगार रखकर तिविहार रात्रिभोजन का यावज्जीवन त्याग कर दिया।

फिर लौटकर घर आये तो माता ने कहा—

"बेटा ! कारोबार समेट लो। लेना-देना साफ कर लो।"

पुत्र ने माता की सलाह मानी और व्यापार समेटना शुरू कर दिया। कुआँ, आम के वृक्ष और सारी चल-अचल सम्पत्ति बेच दी। नाई ने दुःख प्रगट करते हुए कहा कि मेरे यजमान का एक घर कम हो जायेगा तो अपने कानो की सोने की बालियाँ देकर उसे प्रसन्न कर दिया। एक व्यक्ति का मकान १५०) रु० में इनके पिताजी ने गिरवी रखा था, उसे भी उस व्यक्ति को वापिस लौटा दिया। इनके सद्व्यवहार की प्रशसा सम्पूर्ण नगर मे होने लगी। उसी समय निम्बाहेडा



निवासी श्री खूबचन्दजी वैरागी नीमच आये। इनके अतिथि बने और उदयपुर आने की प्रेरणा देकर चले गये।

अभ्यास के पथ पर

उदयपुर मे उस समय वादी मानमर्दक पं० श्री नन्दलालजी महाराज का चातुर्मास था, दोनो माता-पुत्र वही पहुँचे। वहाँ इन्होने प्रतिक्रमण और दशवैकालिक सूत्र के तीन अध्ययन कठस्थ कर लिए।

इसके बाद इन्होने माता सहित गुरुदर्शनार्थ भ्रमण प्रारम्भ किया। ब्यावर मे अपनी सगी मौसी साध्वी श्री रत्नाजी महाराज के दर्शन किये। वहाँ से बीकानेर गये। वहाँ ३२ शास्त्रों की ज्ञाता गट्टूबाई के घर ठहरे। महासती नन्दकुँवरजी महाराज की साध्वियाँ भी वहीं विराजमान थी। बीकानेर से भीनासर होते हुए देशनोक पहुँचे। वहाँ पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदायानुगामी श्री रघुनाथजी महाराज और श्री हजारीमलजी महाराज विराजमान थे। उनके दर्शन किये, प्रवचन सुने। उन्होने भी चौथमलजी के मुख से दशवैकालिक की गाथाओं का शुद्ध उच्चारण सुनकर हर्ष व्यक्त किया।

वहाँ से जयपुर गये। काशीनाथजी के घर ठहरे। फिर निम्बाहेडा (टोक) पहुँचे। यहाँ कविवर श्री हीरालालजी महाराज से शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया। कुछ शास्त्र, पात्र, रजोहरण आदि धर्म-उपकरण लेकर जावद (मालवा) पहुँचे। वहाँ उस समय पूज्यश्री चौथमलजी महाराज और पूज्य श्रीलालजी महाराज विराजमान थे। उन्होंने अलग-अलग इन्हे दीक्षा लेने की प्रेरणा दी।

इस भ्रमण का उद्देश्य साधुचर्या का सूक्ष्म अध्ययन और श्रमण-जीवन की कठिनाइयो को समझना था। पूर्व अध्ययन से जीवन यात्रा मे प्रमाद और भूल का अवकाश नही रहता।

इस निकट अनुभव के बाद इन्होने अब दीक्षा मे विलम्ब करना उचित न समझा। दीक्षा की भावना लेकर माता-पुत्र निम्बाहेडा आये और कविवर्य पं० श्री हीरालालजी महाराज के साथ केरी गाँव पहुँचे। जब महाराजश्री ने इस पदयात्रा का कारण पूछा तो उन्होने प्रव्रजित होने की इच्छा प्रकट की। इनकी दृढता से महाराजश्री सन्तुष्ट हो गये।

पूनमचन्द जी फिर विघ्न बने

दीक्षार्थी के परिवार के लोगो की आज्ञा के बिना जैन साधु किसी को दीक्षा नही देते। यही इन माता-पुत्रो की दीक्षा मे विलब का कारण था। केरी से श्री फूलचन्दजी और भोगीदासजी चौथमलजी के श्वसुर पूनमचन्दजी से आज्ञा लेने के लिए गये। दीक्षा की बात सुनते ही पूनमचन्द जी आगबबूला हो गये। उन्होंने धमकी दी—

"मेरे पास दुनाली बन्दूक है। एक गोली से शिष्य को यमधाम पहुँचा दूँगा और दूसरी से दीक्षा देने वाले गुरु को।"

यह धमकी सुनकर दोनो सन्नाटे मे आ गये। आगे कुछ कहने का प्रश्न ही नही था। लौटकर चले आये। सन्तगण भी चमक उठे। आशुकवि श्री हीरालालजी महाराज ने दीर्घदृष्टि से सोच-विचार कर चौथमल जी को धर्मोपकरण लेकर मन्दसौर आने की प्रेरणा दी।

चौथमलजी मदसौर पहुँचे। वहाँ भी बिना आज्ञा दीक्षा देना सम्भव न हुआ। चौथमलजी का हृदय व्यथित हो गया। उनकी अकुलाहट बढ रही थी। माता के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की तो उसने अपनी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करते हुए सुझाया—



"मेरे पास जो आभूषण हैं। उन्हे पूनमचन्द जी को दे आऊँ। शायद वे अनुमति पत्र लिख दें।"

वैरागी पुत्र को आभूषणो का क्या लोभ ? उसने तुरन्त सहमति व्यक्त कर दी। माता आभूषण लेकर धम्मोत्तर गई। पूनमचन्दजी को आभूषण देकर समझाया—

"समधीजी ! मेरा पुत्र प्रव्रजित हुए विना तो मानेगा नही। आप यह जेवर रख लीजिए। आपकी पुत्री के लिए सहारा बन जाएँगे। अब आप मुझे अनुमति-पत्र लिख दीजिए।"

पूनमचन्द भी पूरे घाघ थे। आभूषण लेकर अनुमति पत्र लिख दिया। लेकिन उसमे सिर्फ केसरबाई को दीक्षा की अनुमति लिखी, चौथमलजी की नही। माता इस चाल से अनजान थी। उसने समझा-बुझाकर बहूरानी से अनुमति-पत्र लिखा लिया। बहू ने माता-पुत्र दोनो को दीक्षित होने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

विघ्न पर विघ्न

पिता-पुत्री के अनुमति पत्र लेकर माता मन्दसौर आई। चौथमलजी हर्षित हुए। लेकिन जब पूनमचन्दजी का अनुमति-पत्र पढा गया तो उनका कपट खुला। माता केसरबाई ने कहा—

"बहूरानी की अनुमति मिल ही गई है। ससुर की अनुमति न मिली, न सही। मैं माँ हूँ। मैं आज्ञा देती हूँ।"

गुरुदेव आशुकवि प० श्री हीरालालजी महाराज सन्तुष्ट हुए। उन्होने मन्दसौर के श्री सघ से विचार-विमर्श किया। श्रीसघ पर पूनमचन्दजी की धमकी का गहरा प्रभाव पडा हुआ था। विनम्र किन्तु स्पष्ट शब्दो मे कहा—'महाराजश्री इस दशा मे हमारे यहाँ दीक्षा होना कठिन है।' यह उत्तर सुनकर गुरुदेव ने वहाँ से विहार कर दिया। जावरा पहुँचे तो वहाँ के श्रीसघ ने भी यही उत्तर दिया।

इन विघ्नो से चौथमलजी बहुत क्षुभित हुए। उन्होंने अपनी माताजी से शीघ्र दीक्षा दिलवाने की प्रार्थना की। माता ने कहा—

"सादगीपूर्ण दीक्षा लेनी है तो जल्दी हो जायगी और यदि आडम्बरपूर्वक समारोह के साथ लेनी है तो प्रतीक्षा करनी ही पडेगी।"

"हमे आडम्बरो से क्या काम ? दीक्षा ही तो लेनी है। आप सादगी से दीक्षा दिलवा दें।" चौथमलजी ने कहा।

"ठीक है पुत्र ! मुझे भी अपना आत्मकल्याण करना है। तुम्हे दीक्षा दिलाकर मैं भी प्रव्रजित हो जाऊँगी।"

पुत्र को आश्वासन देकर माता ने गुरुदेव से निवेदन किया। गुरुदेव ने कहा—

"मैंने भी खूब सोच-विचार लिया है। फाल्गुन शुक्ला ५ का दिन ठीक रहेगा। उपयुक्त अवसर और स्थान देखकर दीक्षा दे दूँगा। शुभ धर्मोपकरण लेकर तैयार रहना।"

तिथि निश्चित होते ही माता-पुत्र दोनो हर्ष से भर गए। गुरुदेव बडलिया, ताल होते हुए बोलिया पधारे।

संकल्प पूरा हुआ

वि० स० १९५२, फाल्गुन शुक्ला ५, रविवार का दिन, पुष्य नक्षत्र का योग, शुभ मुहूर्त। ऐसे शुभमुहूर्त मे कविवर्य श्री हीरालालजी महाराज ने चौथमलजी को दीक्षा प्रदान कर दी। अब



चौथमलजी श्री चौथमलजी महाराज बन गए। साधना के अमर पथ पर चल पड़े। उनका जीवन त्याग-पथ की ओर मुड़ गया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—पाँच महाव्रतो का पालन करने लगे। आठ प्रवचनमाताओ को जीवन मे साकार करने लगे। अब वे 'षट्काय के पीयर' बन गए। नवदीक्षित मुनि चौथमलजी महाराज गुरुदेव के साथ पच पहाड पधारे। केसरबाई भी वही पहुँच गई। छोटी दीक्षा के ७ दिन बाद फाल्गुन शुक्ला १२ को बडी दीक्षा समारोहपूर्वक धूम धाम से सम्पन्न हुई। सकल्प के धनी का सकल्प पूरा हुआ। जो उसने विचार किया वह पूरा कर दिखाया। माता केसरबाई ने भी अपने पुत्र की दीक्षा में पूरी-पूरी सहायता की।

सवत् १९५० से १९५२ के दो वर्षो तक चौथमलजी महाराज की दीक्षा मे विघ्न आते रहे। उनके वैराग्य की धारा को ससार की ओर मोडने का अथक प्रयास किया गया। हवालात मे रखा गया, जान से मारने की धमकी दी गई लेकिन उनका वैराग्य इतना कच्चा नही था जो इन धमकियो से दब जाता। ठाणाग सूत्र मे ससार विरक्ति के निम्न कारण बताए हैं—

(१) स्वेच्छा से ली हुई प्रव्रज्या
(२) रोष से ली गई प्रव्रज्या
(३) दरिद्रता से ऊबकर ली गई प्रव्रज्या
(४) स्वप्नदर्शन द्वारा ली गई प्रव्रज्या
(५) प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर ली गई प्रव्रज्या
(६) जाति स्मरण ज्ञान से पूर्व जन्मान्तर का स्मरण होने से ली गई प्रव्रज्या
(७) रोग के कारण ली गई प्रव्रज्या
(८) देवो द्वारा प्रतिबुद्ध किये जाने पर ली गई प्रव्रज्या
(९) अपमानित होने पर ली गई प्रव्रज्या
(१०) पुत्र-स्नेह के कारण ली गई प्रव्रज्या

अन्यत्र दीक्षा के ससार-प्रसिद्ध निम्न कारण माने गये है—

(१) **दु खगर्भित वैराग्य**—अशुभ कर्मो के कारण दु खो से घबराकर जो ससार से विरक्ति होती है, वह दु खगर्भित वैराग्य कहलाता है।

(२) **श्मशानजन्य वैराग्य**—यह वैराग्य श्मशान मे किसी शव की अन्त्येष्टि होते हुए देखने से होता है।

ये दोनो ही वैराग्य श्लाघनीय नही है। ये स्थायी भी नही रहते। चौथमलजी महाराज का वैराग्य इनमे से किसी भी कोटि का नही था। उनका वैराग्य आत्मा से प्रस्फुटित हुआ था। इसको आगम की भाषा मे (३) **ज्ञानगर्भित वैराग्य** कहा जाता है। यह स्थायी भी होता है। इसीलिए दो वर्ष तक निरन्तर विघ्न-बाधाएँ सहते रहने पर भी चौथमलजी महाराज की वैराग्य ज्योति बुझी नही वरन् और भी अधिक प्रदीप्त होती रही। दीक्षा ग्रहण करने के बाद तो उनके वैराग्य मे दिनोदिन चमक आती गई। वे दिवाकर बनकर चमके और जन-जन के हृदय को आलोकित किया।

चौथमलजी की दीक्षा के दो महीने बाद केसरबाई ने भी महासती श्री फूंदीजी आर्याजी महाराज से दीक्षा अगीकार कर ली। वे साध्वी बन गई। वीरमाता और वीरपुत्र दोनो ही साधना द्वारा अपना आत्मकल्याण करने लगे।



उदय : धर्म-दिवाकर का

प्रथम चातुर्मास (सं० १९५३) · झालरापाटन छावनी

नवदीक्षित मुनि श्रीचौथमलजी महाराज ने स० १९५३ का प्रथम चातुर्मास गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज के साथ छावनी मे किया। गुरु-सेवा मे रत रहकर 'दशवैकालिक का शब्दार्थ' तथा 'औपपातिक सूत्र' का अध्ययन किया।

दूसरा वर्षावास (स० १९५४) . रामपुरा

छावनी चातुर्मास के पश्चात् गुरुदेव ने आपश्री को चैनरामजी महाराज के साथ अलग विहार करवाया। कोटा, रामपुरा, मणासा, नीमच, जावरा होते हुए आप पुन गुरुदेव के पास पधारे और गुरुदेव की सेवा मे रहकर दूसरा चातुर्मास रामपुरा मे किया।

प्रथम प्रवचन

कोटा विहार के समय श्रावको ने प्रवचन सुनने की जिज्ञासा की। मुनि चैनरामजी महाराज ने चौथमलजी महाराज को प्रेरित किया। आपने प्रवचन दिया। व्याख्यान देने का प्रथम अवसर था, लेकिन आपकी शैली इतनी मधुर और विषय प्रतिपादन इतना स्पष्ट था कि श्रोता पूर्ण रूप से प्रभावित हुए। आग्रह करके श्रावक सघ ने आपश्री का एक व्याख्यान और करवाया।

यह उनकी प्रवचन शैली की उत्तमता का प्रमाण है। इसके बाद तो उनकी प्रवचन शैली निखरती ही चली गई।

तीसरा वर्षावास (स० १९५५) · बड़ी सादड़ी (मेवाड)

तीसरा चातुर्मास भी आपने गुरुदेव के साथ बडी सादडी (मेवाड) मे किया। इस बीच आप जावरा दादागुरु श्री रतनचन्दजी महाराज के दर्शन-वन्दन हेतु गए थे। इस चातुर्मास मे आपके शास्त्रीय ज्ञान और गहन अध्ययन की बहुत वृद्धि हुई।

चौथा चातुर्मास (स० १९५६) : जावरा

बडी सादडी का चातुर्मास करने के बाद आपश्री निम्बाहेडा तथा चित्तौड होते हुए पारसोली (मेवाड) पधारे। वहाँ के राव रत्नसिंहजी मेवाडाधीश के सोलह जागीरदारो में से एक थे। उन्हे जैनधर्म का ज्ञान भी था और वे श्रद्धेय पडित श्री रतनचन्दजी महाराज, गुरु जवाहरलालजी महाराज, कविवर श्री हीरालालजी महाराज आदि मे प्रभावित भी थे। उनकी दैनिक चर्या जैन श्रावको की-सी थी। उन्होंने चौथमलजी महाराज के दर्शन करके अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये—महाराजश्री ! एक दिन धार्मिक क्षेत्र मे आपश्री का आदरणीय स्थान होगा। आपश्री जैन सिद्धान्तो के पारगामी विद्वान् बनोगे।

वहाँ से गुरुदेव के साथ विहार करते हुए आपश्री नारायणगढ पधारे। वहाँ नृसिंहजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक न था। गुरुदेव इन्हें उनकी सेवा मे छोड गए। इनकी सेवा से कुछ दिन बाद नृसिंहजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक हो गया। आप उनके साथ विहार करते हुए मन्दसौर पधारे।

शास्त्रज्ञ द्वारा प्रशसा

एक दिन भूरा मगनीरामजी महाराज ने आपसे कहा—'चौथमलजी आज व्याख्यान तुम दो।'



उस समय वहाँ आगम शास्त्रो के तत्त्ववेत्ता गौतमजी वागिया व्याख्यान श्रवण करने आये हुए थे। उनके सामने बड़े-बड़े मुनियो का भी प्रवचन देने का साहस न होता था। कारण यह था कि वागियाजी भगवती, पन्नवणा आदि आगमो के विशिष्ट जानकार थे। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने आत्मविश्वासपूर्वक व्याख्यान देना शुरू किया। उनकी ओजस्वी वाणी, मधुर शैली, गम्भीर घोष और आचाराग के अस्खलित उच्चारण तथा युक्तियुक्त एव स्पष्ट भावार्थ को सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो गए। वागियाजी वाग-बाग हो गए। उनके मुख से उद्गार निकले—

"महाराज साहब! आपने अल्प समय मे ऐसी विशिष्ट ज्ञानाराधना कर ली होगी, मुझे यह कल्पना भी नही थी। आपकी व्याख्यान शैली की रोचकता और स्पष्टता से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आपकी वैराग्यावस्था मे मैंने आपको जो अपमानजनक शब्द कहे, उनके लिए मैं हृदय से क्षमायाचना करता हूँ।"

वागियाजी की प्रशसा आपश्री के प्रवचन की उत्कृष्ट प्रभावोत्पादकता का स्पष्ट प्रमाण है। इसके बाद तो आपके प्रवचनो की धूम ही मच गई।

श्रावको ने वहाँ इन्हें आग्रहपूर्वक कुछ दिन के लिए रोक लिया। वहाँ से आपश्री विहार करके जावरा आये और गुरुवर श्रीजवाहरलालजी महाराज की सेवा मे जुट गए। वही पं० नन्दलाल जी महाराज आदि विराजमान थे। उन्हीं की सेवा मे रहकर आपने वही अपना चातुर्मास किया।

पाँचवाँ चातुर्मास (स० १९५७) : रामपुरा

जावरा चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री वहाँ से विहार करके निम्बाहेडा पधारे। वहाँ उनकी मौसी रत्नाजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नही था। कुछ दिन वहाँ रुककर कुकडेश्वर (होल्कर स्टेट) मे पधारे। दूसरी ओर से विहार करते हुए गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज भी वहाँ आ पहुँचे। वहाँ से रामपुरा आए और वही वर्षावास किया। वर्षावास मे कितने ही बालको को तत्त्व-ज्ञान सिखाया और कई प्रवचन दिए।

छठा वर्षावास (स० १९५८) : मन्दसौर

रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण करके मुनिश्री चौथमलजी महाराज अनेक स्थानो को अपने चरण स्पर्श से पवित्र करते हुए मन्दसौर पधारे। यही चातुर्मास किया। इस चातुर्मास की विशेषता यह थी कि यह वर्षावास आपने स्वतन्त्ररूप से किया। चार मास तक जनता आपश्री के प्रवचनो से लाभान्वित होती रही।

सातवाँ चातुर्मास (सं० १९५९) : नीमच

मन्दसौर चातुर्मास के बाद आपश्री विहार करते हुए खाचरोद पधारे। वहाँ आप गुरु श्री जवाहरलालजी महाराज की सेवा मे रहे। वहाँ अनेक संत एकत्र हो गये। वर्षा ऋतु निकट आने लगी। इन्दौर का श्री सघ, धार से श्री मोतीलालजी आदि और उज्जैन से श्री हजारीमलजी आदि अपने-अपने यहाँ चातुर्मास का निमन्त्रण देने आए। उज्जैन सघ ने तो चौथमलजी महाराज के चातुर्मास के लिए खास प्रार्थना की। लेकिन उनके भाग्य में आपश्री की मगलमयवाणी सुनने का योग न था। श्री चौथमल जी महाराज को उनके गुरुदेव ताल (जावरा) मे चातुर्मास की आज्ञा प्रदान करने वाले थे तभी बड़ी सादडी का श्री सघ आ पहुँचा। बड़ी सादड़ी मे अधिक उपकार की सभावना से आपकी प्रार्थना पर गुरुदेव ने बड़ी सादडी चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान करदी। तदनुसार आपने बड़ी सादडी की ओर विहार करने का विचार किया। मन्दसौर होते हुए आप



नीमच पधारे। नीमच मे श्री हजारीमल जी महाराज बीमार हो गये। अत वही चातुर्मास किया। वहाँ श्री हुकमीचन्द जी की दीक्षा सम्पन्न हुई।

आठवाँ चातुर्मास (स० १९६०) नाथद्वारा

नीमच से विहार करके छावनी, जावद होते हुए कनेरे पधारे। मार्ग के सभी स्थानो पर जैन और जैनेतरो ने प्रवचन-पीयूष का पान किया, विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान लिए। सर्वत्र गरीव, अमीर, राज्याधिकारी, व्यापारी, मजदूर और कृषक एकत्र होते। अनेक स्थानो पर विहार करते हुए आपश्री सारोल पधारे। यह स्थान नाथद्वारा के निकट है। नाथद्वारा वैष्णवो का तीर्थ है और विष्णुपुरी कहलाता है। श्रावको से पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ कुछ घर जैनो के भी हैं। आपश्री सारोल से विहार कर नाथद्वारा पधारे। बाजार से गुजरे तो दूकानदारो ने उठकर सभी संतो की वन्दना की। लोगो से ठहरने योग्य स्थान पूछा तो उत्तर मिला—'द्वारकाधीश की खडग पर योग्य स्थान है।' सत गण वहाँ के कर्मचारी से स्वीकृति लेकर ठहर गए। दूसरे दिन व्याख्यान हुआ तो श्रोता जैन ही थे, स्थान भी एकान्त मे था। आपने सार्वजनिक स्थल पर व्याख्यान देने की इच्छा प्रगट की। इस पर लोगो ने कहा—

"महाराज साहब! सार्वजनिक स्थान—बाजार मे व्याख्यान देना उचित नही। यह वैष्णवो का गढ़ है। यदि किसी ने टेढे-मेढे प्रश्न कर दिये तो आपश्री के साथ-साथ जिनशासन की भी अवमानना होगी।"

"गुरुदेव की कृपा से जिनशासन की प्रभावना ही होगी। आप लोग चिन्ता न करें।" महाराजश्री का आत्म-विश्वास भरा उत्तर था।

उत्साहित होकर उदयपुर निवासी श्री राजमलजी ताकडिया ने कहा—

"यहाँ का सार्वनजिक स्थल लीलियाकुड है। आपश्री वहीं पधारें। मैं सब व्यवस्था कर दूँगा।"

तदनुसार लीलियाकुड पर आपश्री का प्रवचन हुआ। पहले दिन श्रोता कम रहे लेकिन उनकी सख्या बढने लगी। तेरहवें व्याख्यान मे श्रोताओ की सख्या तेरह सौ तक पहुँच गई—उनमे वैष्णव, हिन्दू, सनातन धर्म के अधिकारी विद्वान् और श्रीनाथजी के भक्त आदि सभी होते थे। सभी प्रवचन-गगा में डुबकियाँ लगाते। टेढे-मेढ़े तो क्या किसी ने कोई खास प्रश्न भी नही किए। प्रवचन शैली ही इतनी मधुर और रोचक थी कि विषय बिल्कुल स्पष्ट हो जाता। आपश्री किसी भी धर्म का खण्डन-मडन नहीं करते थे। सीधी सच्ची सदाचार की बात ओजस्वी वाणी मे कहते थे। परिणामस्वरूप जनता खिची चली आती थी।

जिनशासन की महती प्रभावना हुई।

जब आपश्री नाथद्वारा से चले तो जैनो के अतिरिक्त जैनेतरो ने भी रुकने की सभक्ति प्रार्थना की। आपने जैन साधुओ का कल्प समझाकर उन्हे सतुष्ट किया। सभी ने फिर पधारने का आग्रह किया।

नाथद्वारा से विहार कर आपश्री सत समुदाय सहित गगापुर पधारे। वहाँ प्रवचन-गगा बहने लगी। एक बार बाजार मे आपका व्याख्यान हो रहा था। वैष्णवो ने अपने ठाकुरजी के रथ का मार्ग इसीलिए बदल दिया कि आपके प्रवचन मे विघ्न न पडे और श्रोताओ को उठना न पडे क्योकि श्रोताओ से बाजार पूरा भरा हुआ था।



गगापुर से चित्तौड़ होते हुए आप जावरा पधारे। मार्ग में गुरुदेव श्री हीरालालजी महाराज का सानिध्य भी प्राप्त हो गया। जावरे में नाथद्वारा श्रीसंघ चातुर्मास की प्रार्थना लेकर आया। जावरा श्रीसघ को एव रतलाम के सेठ अमरचन्द जी पीतलिया को इस प्रार्थना पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—

"आपके यहाँ जैन श्रावकों के कितने घर हैं?"

"बहुत थोडे है।"

"तो चातुर्मास की धर्म प्रभावना कैसे बनेगी?"

"अजैन लोग हमसे अधिक उत्सुक है, इसलिए धर्म प्रभावना अधिक होगी, हमे पूरा विश्वास है।"

सेठ अमरचन्द जी ने सोचा—'विष्णुपुरी नाथद्वारा मे महाराज साहब के निमित्त से जिन-शासन की प्रभावना होगी।' इसलिए उन्होंने नाथद्वारा चातुर्मासार्थ अपनी सहर्ष सहमति प्रगट कर दी।

मुनिश्री हीरालाल जी महाराज की आज्ञा से आपश्री का यह चातुर्मास नाथद्वारा मे हुआ। आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर अजैनो ने भी जैन विधि से व्रत उपवास आदि किए। आपकी प्रशंसा गाई जाने लगी। नाथद्वारा मे जिनशासन और जैन सिद्धान्तो का खूब प्रचार-प्रसार हुआ।

नवाँ चातुर्मास (सं० १९६१) : खाचरोद

नाथद्वारा से विहार कर मुनिश्री चौथमलजी महाराज सन्त समुदाय सहित हारोल, देल-वाडा, ढबूक आदि स्थानो को पवित्र करते हुए उठाले (मेवाड) पधारे। वहाँ नाथद्वारा के श्रावकों ने आकर आपसे पुन. नाथद्वारा पधारने की प्रार्थना की। यद्यपि वे नाथद्वारा मे चातुर्मास बिताकर आये थे किन्तु श्रावको और तपस्वी हजारीमलजी महाराज की इच्छा न टाल सके। तपस्वीजी महाराज ने श्रावको द्वारा मिलने की इच्छा प्रकट करायी थी। आपश्री नाथद्वारा पहुँचे। तपस्वी हजारीमलजी महाराज के दर्शन किये, अन्य सन्तो की भी वन्दना की। उन्होंने भी बहुत प्रेम व्यक्त किया। हजारीमलजी महाराज ने बीकानेर चलने का आग्रह किया। इस पर आपश्री ने उत्तर दिया कि 'गुरुदेव की आज्ञा आवश्यक है।' इस पर तपस्वीजी ने कहा—'हम ब्यावर मे तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।' वहाँ से विहार कर आपश्री उदयपुर पधारे। प्रवचन-गंगा बहने लगी। उदयपुर स्टेट के सुप्रसिद्ध जागीरदार और भूतपूर्व प्रमुख दीवान कोठारी बलवन्तसिहजी भी प्रवचनों को बडे चाव से सुनते। वहाँ से विहार कर आपश्री बड़ेगाँव पधारे। आपके उपदेश से प्रेरित होकर वहाँ के किसानो ने हिंसा का त्याग कर दिया। वहाँ से भिण्डर आदि स्थानों पर होते हुए कानोड पधारे।

कानोड मे एक दिन आपश्री अपने ठहरने के स्थान पर बैठे थे। एक युवक पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने अनुमान किया कि यह युवक (किशोर) निराश्रित है। पास बुलाकर उसका परिचय पूछा तो उसने बताया—'मैं राजपूत हूँ। मेरा नाम शंकरलाल है। पहले धरियावद मे रहता था। माता-पिता न होने से यहाँ आ गया हूँ।'

महाराजश्री ने कहा—"अन्न-वस्त्र आदि के लिए इस मूल्यवान जीवन को खोने मे क्या लाभ? साधु बनकर अपने मनुष्य-जीवन को सफल कर।"

शकरलाल ने प्रसन्न होकर सहमति दी। वहाँ के श्रावको ने भी अनुमति दी। शकरलाल ने अपनी जातिवालो से भी अनुमति ले ली और वह प्रव्रजित हो गया।



वहाँ से अनेक स्थानो पर होते हुए आप खाचरोद पधारे और वही वर्षावास किया।

दशवां चातुर्मास (स० १९६२) : रतलाम

खाचरोद का चातुर्मास शान्तिपूर्वक पूरा हो गया। रतलाम से प्रतापमलजी महाराज की अस्वस्थता के समाचार मिले। आपने लक्ष्मीचन्दजी महाराज के साथ दो साधुओ को भेजा। किन्तु उनकी सेवा का सुफल प्राप्त न हो सका, प्रतापमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। आपश्री भी वहाँ पधार गये थे। स्वर्गवास के पश्चात् आपने वहाँ से विहार करने का विचार किया।

आपकी माताजी केसरकुँवरजी महाराज, जो स० १९५२ मे, साध्वी बन गई थी, वही रतलाम मे विराजमान थीं। ९ वर्ष की कठोर साधना से उनका शरीर-बल क्षीण हो गया था। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा था। गिरते स्वास्थ्य से उन्हे लगा—जैसे अन्त समय नजदीक आ पहुँचा है। एक दिन उनके उद्गार निकले—

"मेरा अन्त समय समीप ही दिखाई दे रहा है। अतः आप (मुनिश्री चौथमलजी महाराज) आसपास ही विचरण करना जिससे मुझे अन्तिम समय के त्याग-प्रत्याख्यान मे आपका सहयोग प्राप्त हो सके। आपके मुख से मैं मंगलपाठ सुन सकूँ और सथारा ग्रहण करके शान्तिपूर्वक मेरी इहलीला समाप्त हो सके।"

माताजी की इस भावना का पुत्र पर यथेच्छ प्रभाव हुआ। यद्यपि अब माता-पुत्र का सम्बन्ध नही रहा था, लेकिन माता का उपकार कैसे भुलाया जा सकता है। माता का पद सासारिक दृष्टि से तो बहुत ही उच्च माना गया है, इस पर आपश्री की माताजी तो दीक्षा मे परम सहकारिणी हुई थीं। मार्ग में आने वाली सभी विघ्न-बाधाओ से जूझकर उन्होंने सयम का पथ-प्रशस्त किया था। उन्ही के अकथ प्रयासो और साहस से आपश्री की दीक्षा और सयम-साधना संभव हो सकी थी। ऐसी माता का उपकार क्या भुलाया जा सकता था? उसकी भावना की क्या उपेक्षा की जा सकती थी? आपश्री ने महासतीजी महाराज की इच्छा सहर्ष स्वीकार कर ली। अनेक जनो को सत्पथ की ओर प्रेरित करते हुए रतलाम के निकट ही धमणोद और वहाँ से सैलाना पधारे। वहाँ आपको महासतीजी महाराज के स्वास्थ्य मे सुधार के समाचार प्राप्त हुए। चिन्ता कम हुई। विचार हुआ—अब स्वास्थ्य सुधर ही जायगा। तनिक से सुधार से पूर्ण सुधार की आशा बँध ही जाती है। आप नीमच पधारे। वहाँ वादी-मानमर्दक गुरुवर श्रीनन्दलालजी महाराज विराज रहे थे। वही रतलाम श्रावक सघ ने रतलाम मे चातुर्मास की प्रार्थना की। उत्तर मिला—सभी सन्तगण रामपुरा मे एकत्र होंगे, वही वर्षावास का निर्णय होगा। आपश्री रामपुरा पधारे। सभी सन्त वहाँ एकत्र हुए।

रतलाम मे महासती श्री केसरकुँवरजी महाराज का स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। उनकी प्रत्येक श्वास मे मुनिश्री चौथमलजी महाराज के दर्शनो की ध्वनि थी। किन्तु आपश्री तो रतलाम से बहुत दूर रामपुरा मे थे। वहाँ कैसे पहुँच सकते थे? शायद प्रकृति का यह नियम है कि अत्यधिक अनुराग वालो को यह अन्त समय मे समीप नही रहने देती। इसीलिए निर्वाण के समय श्रमण भगवन्त महावीर ने गौतम स्वामी को दूर भेज दिया था। वे जानते थे कि गौतम का उनके प्रति विशेष अनुराग है, निर्वाण के समय उन्हें बहुत दुःख होगा। शायद प्रकृति भी यही चाहती थी कि महासती केसरकुँवरजी महाराज के अन्तिम समय पर मुनिश्री चौथमलजी महाराज वहाँ उपस्थित न रहे।



माता का स्वर्गवास

माता-पुत्र का सम्बन्ध बडा अटूट होता है। हजारो कोस दूर रहने पर भी यह स्नेह का बन्धन नही टूटता। त्रयोदशी की रात्रि को आपश्री को एक स्वप्न दिखाई दिया। आपने देखा—महासती केसरकुँवरजी महाराज आपश्री के सम्मुख प्रत्यक्ष खडी हैं। वे कह रही हैं—तुम्हारे दर्शनो की इच्छा अपूर्ण रह गई। शरीर वेदना के अन्तिम समय मे मैंने चौविहार सथारा ले लिया है। प्रात तक मेरा यह नश्वर शरीर छूट जायगा। मेरी भावना है कि तुम जिनशासन की महती प्रभावना करो। शरीर छोडकर मैं तुमसे दूर नही हूँ। धर्म-प्रभावना मे मेरा उचित सहयोग तुम्हे मिलेगा।"

वस उनकी आँखें खुल गईं। वे कुछ पूछ भी न सके। स्वप्न का दृश्य खुली आँखो के सामने भी नाचने लगा। सोचने लगे—यह स्वप्न है, या सत्य का सकेत ? क्या ऐसा हो गया ? शेष रात्रि वे सो न सके।

प्रात काल ही रतलाम से सूचना मिली कि 'महासती केसरकुंवरजी महाराज ने सथारा ग्रहण कर लिया है।'

समाचार पाते ही आपने शीघ्र विहार किया। कलारिया पहुँचे। वहाँ समाचार मिला—'चतुर्दशी की सुबह महासतीजी महाराज का स्वर्गवास हो गया है।'

चित्त मे खेद हुआ। स्वप्न सत्य हो गया। भावना उमडी—'मैं अपनी वीरमाता, दीक्षा मे परम सहकारिणी, उपकारिणी माता को अन्तिम समय दर्शन भी न दे सका। उनकी अन्तिम इच्छा भी पूरी न कर सका। त्याग-प्रत्याख्यान मे सहायक भी न हुआ।' तुरन्त भावना बदली—'खेद से कर्मबन्धन की शृ खला बढती है। होनी के अनुसार ही निमित्त मिलते हैं। कौन किसकी माता, कौन किसका पुत्र ? जीव अकेला आता है और आयु पूर्ण होने पर अकेला ही चला जाता है। जन्म-मरण का नाम ही तो ससार है। इसमे दु ख कैसा और आश्चर्य क्या ?' और आपने चित्त के खेद तथा मोह-बन्धन को झटक दिया।

कलारिया से आप वापिस लौट रहे थे तभी जावरा का श्रावक सघ आपको अत्यधिक आग्रह करके जावरा ले गया। वहाँ मालूम हुआ कि एक-दो दिन तो महासतीजी महाराज ने आपकी याद की और फिर अन्तिम समय उन्होंने मोह तोड दिया। उनके अन्तिम शब्द थे—'कौन किसका पुत्र, कौन किसकी माता। ये सब सासारिक बन्धन झूठे हैं। मोह का पसारा है। मैं साध्वी होकर किस मोह-ममता मे फँस गई ? मेरा तो एकमात्र लक्ष्य आत्मकल्याण है।'

यह जानकर आपने भी सन्तोष धारण कर लिया।

माता और पुत्र दोनो ही धन्य थे। माता ने अपने पुत्र को भी आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर किया और स्वय भी अपनी आत्मा का कल्याण किया और पुत्र सदा ही माता के उपकारो के प्रति कृतज्ञ तथा विनम्र बना रहा।

तदनन्तर आप रतलाम पधारे। वहाँ चातुर्मास किया। इस चातुर्मास मे बम्बई से जैन समाज के सुप्रसिद्ध तत्त्व-चिन्तक और क्रातिकारी विचारो के अग्रणी वाडीलाल मोतीलाल शाह आपके दर्शनार्थ आये। उन्होने कभी जीवन मे उपवास नहीं किया था। किन्तु महाराजश्री के उपदेश से प्रभावित होकर स्वत प्रेरणा से उन्होंने उपवास किया। श्रावक सघ ने भी खूब सेवाभक्ति प्रदर्शित की। किन्तु वहाँ प्लेग (महामारी) फैल गया। प्लेग का उपद्रव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही



गया। तब श्रावक सघ ने प्रार्थना की—'प्लेग के कारण अनेक श्रावक चले गए हैं। प्लेग की भीषणता बढती ही जा रही है। इसलिए आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि आपश्री यहाँ से विहार कर जाएँ तो उत्तम रहे।'

आप रतलाम से विहार करके पचेड पधारे। वहाँ ठाकुर साहब रघुनाथसिंहजी तथा उनके सुयोग्य बन्धु चैनसिंहजी जैनधर्म से परिचित हुए। आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर उन्होंने कितने ही जानवरो की हिंसा का त्याग कर दिया। अन्य लोगो पर भी काफी प्रभाव पडा। मासाहारियो ने मास भक्षण त्यागा, शराबियो ने मदिरा का त्याग किया और धर्मप्रेमी बने।

ग्यारहवाँ चातुर्मास (स० १९६३) : कानोड

रतलाम से आप कई गाँवो मे होते हुए माडलगढ की ओर जा रहे थे। मार्ग मे लोगो ने कहा—'महाराज साहब ! इस रास्ते मे कुछ दूर आगे जाकर लोग बन्दूकें लेकर झाडियो मे छिपे बैठे रहते है। वे लोगो को लूट लेते हैं। उन्हें मार डालते हैं। आप इधर से न जाएँ।' महाराज ने सहज स्मितपूर्वक उत्तर दिया—'हमारे पास है ही क्या जो वे लूटेंगे।' फिर भी साथ मे श्रावक थे वे गाँव से चौकीदार को लिवाने गए और आप निर्भय होकर गाँव पहुँच गए। मार्ग के लुटेरो का इनकी ओर आँख उठाने तक का साहस न हुआ। वहाँ से आप बेगुँ पधारे। वहाँ समाचार मिला कि आपकी सासारिक नाते से सगी मौसी प्रवर्तिनी रत्नाजी महाराज ने सथारा ले लिया है। शीघ्र गति से विहार करके आप सरवाणिया, नीमच, मल्हारगढ होते हुए जावरा पधारे। वहाँ आपको आर्याजी रत्नाजी महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। आप पुन मन्दसौर होते हुए मल्हारगढ पधारे। वहाँ के लोगो के अधिक आग्रह पर कुछ दिन रुककर नारायणगढ पधारे। वहाँ श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी सम्प्रदाय के सन्त अमीविजयजी महाराज के साथ वार्तालाप हुआ। वहाँ से आप जावद पधारे। जावद मे पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज विराज रहे थे। उनके साथ अन्य सत भी थे। वहाँ समाचार मिला कि कजेडा मे एक भाई दीक्षा लेना चाहता है। पूज्यश्री ने आपको कजेडा जाकर उस भाई को प्रेरित करने का आदेश दिया। आप कजेडा पहुँचे, उस भाई की वैराग्य भावना को उत्प्रेरित किया। तदनन्तर भाटखेडी होते हुए मणासे पधारे। वहाँ आपके उपदेश से प्रभावित होकर श्री कजौडीमल ने दीक्षा ग्रहण करने का विचार प्रगट किया। महाराज साहब ने विलम्ब न करने की प्रेरणा दी।

वहाँ से विहार करके नीमच, बडी सादडी होते हुए आपश्री कानोड पधारे और वहीं चातुर्मास किया। यहाँ आपश्री की प्रेरणा से लोगो मे झगडा होते-होते रुक गया। झगडा रथ निकलने पर हो रहा था। मार्ग मे व्याख्यान हो रहा था। कुछ लोग रथ निकालना चाहते थे और दूसरे लोग उसे रोक रहे थे। आपकी प्रेरणा से लोग शात हो गए।

बारहवाँ चातुर्मास (स० १९६४) : जावरा

स० १९६४ का चातुर्मास आपने जावरा मे किया। वहाँ मणासे से वैरागी कजौडीमलजी आये। उन्होंने परिवार की आज्ञा न मिलने पर भी साधुवेश धारण कर लिया।

तेरहवाँ चातुर्मास (१९६५) : मन्दसौर

जावरा चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप कजौडीमलजी को साथ लेकर निम्बाहेडा गए। कजौडीमलजी की पत्नी आपके उपदेश से इतनी प्रभावित हुई कि उसने अपने पति को दीक्षा लेने हेतु अनुमति-पत्र लिख दिया। तदनन्तर आप डग, बडौद, सारगपुर, सीहोर, भोपाल आदि स्थानो मे होते हुए देवास पधारे। देवास मे रतलाम निवासी श्री अमरचन्दजी पीतलिया का निमन्त्रण



मिला कि 'रतलाम मे श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हो रहा है, आप अवश्य पधारें।' आपश्री रतलाम पधारे।

रतलाम मे चैत्र सुदी ११-१२ को राजकीय विद्यालय में आपके सार्वजनिक प्रवचन हुए। उपस्थित जनसमूह ने खूब प्रशसा की। वहां मोरवी नरेश भी उपस्थित थे। वे भी बहुत प्रभावित हुए। कान्फ्रेन्स के जन्मदाता श्री अम्बादासजी डोसाणी ने प्रवचन समाप्ति पर अपने उद्गार व्यक्त किये—

"महाराज साहब के प्रवचन इतने प्रभावशाली हैं कि इनकी प्रशसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। कान्फ्रेन्स का उद्देश्य तथा साराश आपके प्रवचनो मे आ गया है। अब तो हम सब लोगो को आपके उपदेशानुसार कार्य करना चाहिए।"

तदन्तर अनेक क्षेत्रो मे धर्म-जागृति करते हुए मन्दसौर पधारे और वहां चातुर्मास किया। इस चातुर्मास मे बीसा ओसवाल नन्दलालजी ने दीक्षा ग्रहण की।

चौदहवां चातुर्मास (स० १९६६) उदयपुर

मन्दसौर चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप वहां से विहार करके नीमच तथा निम्बाहेडा होते हुए उदयपुर पधारे। वहां आपके प्रवचन शुरू हुए। श्रोताओ की सख्या बढने लगी। राज-दरबारी लोग भी प्रवचनो मे सम्मिलित होने लगे। हिन्दुआ कुलसूर्य उदयपुर नरेश सर फतेहसिंह जी महाराणा के दीवान तथा निजी सलाहकार श्रीमान् कोठारी बलवन्तसिंहजी ने महाराज साहब की खूब सेवा की।

पतितोद्धार

उदयपुर मे प्रवचन गगा बहाकर जैन दिवाकरजी महाराज वादी-मानमर्दक प० श्री नन्दलालजी महाराज के साथ जन-कल्याण की दृष्टि से नाई गांव पधारे। उस समय नाई गांव के निकट लगभग साढ़े तीन हजार आदिवासी भील एक मृत्युभोज के सन्दर्भ मे एकत्र हुए थे। भील नेताओ ने आपश्री का उपदेश सुना तो उनका हृदय भी दया व सादगी की भावना से ओत-प्रोत हो उठा।

भील जाति सदियो से अज्ञानान्धकार मे डूबी हुई है। सभ्यता और धर्म के सस्कार उन्हे कभी मिले ही नही। मास-मदिरा आदि ही उनका भोजन है और शिकार, लूट-पाट आदि उनका पेशा। सदियो से यही उनकी परम्परा रही है। उन लोगो को सद्बोध देना विरले और विशिष्ट साधको का ही काम रहा है।

आपश्री ने बडे ही सहज ढग से उनको मानव-जीवन के कल्याण की बातें और मनुष्य को मनुष्य बने रहने के लिए सर्वसाधारण नियम आदि समझाए, हेय-उपादेय अर्थात् करने योग्य तथा न करने योग्य कार्यो का विवेचन किया।

उपदेश का इच्छित प्रभाव हुआ। उनमे विवेक जागा। हिंसा आदि दुष्कृत्यो के कुपरिणामो का ज्ञान हुआ। पापो और दुर्व्यसनो के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई। उनमे से भीलो के नेता व प्रमुख व्यक्तियो ने निवेदन किया—

"महाराज साहब! हम जीव-हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करते हैं, लेकिन नगर के महाजनो से कम न तौलने की प्रतिज्ञा भी कराइये।"

आपश्री के सकेत से नगर के महाजन भी एकत्र हुए। आपका उपदेश सुनकर उन्होंने भी



कम न तौलने की प्रतिज्ञा ली। आदिवासियो ने जैन दिवाकर जी महाराज के समक्ष निम्न प्रतिज्ञाएँ ली—

(१) गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज के प्रवचन सुनने के बाद अब हम लोग जगल मे दावाग्नि नहीं सुलगवायेंगे।

(२) मनुष्यो को किसी भी तरह का त्रास न देंगे और किसी नारी की हत्या न करेंगे।

(३) विवाह के समय मामा के यहाँ से आने वाले भैंसों और बकरो की बलि नहीं देंगे, प्रत्युत उन्हें 'अमरिया' बनाकर छोड़ देंगे।

इन प्रतिज्ञाओ को हम हमेशा निभायेंगे।

आदिवासियो का हर्षरव वातावरण मे गूँज उठा। जैन और जैनेतर सभी के मुख पर जैन दिवाकरजी महाराज की जय-जयकार गूँज रही थी। सभी हर्षित और सतुष्ट हुए। हजारो हिंसक व्यक्तियो को सहज प्रेरणा से ऐसी प्रतिज्ञाएँ करवाना एक असाधारण बात है।

उदयपुर से विहार करके आप बडेगाँव (गोगू दे) पधारे। वहाँ से राव साहब श्री पृथ्वी सिंहजी और उनके पौत्र श्री दलपतसिंहजी ने प्रवचनो से प्रभावित होकर प्रतिवर्ष बलिदान हेतु प्राप्त होने वाले दो बकरो को सदा के लिए अभय देने की प्रतिज्ञा ली। अन्य अनेक किसानो ने भी पचेन्द्रिय जीव-हिंसा और मदिरापान का त्याग किया।

वहाँ से नाथद्वारा, सरदारगढ, आमेट, देवगढ, नया शहर (ब्यावर) होते हुए अजमेर पधारे। मार्ग मे सर्वत्र उपदेश प्रवचन होते रहे। लोगो पर यथेच्छ प्रभाव पडा। प्रवचन सभाओ मे राजा, राव, सेठ, साहूकार, महाजन, किसान आदि सम्मिलित होते तो भगी, चमार, भील आदि आदिवासी भी झुड के झुड बना कर आते और बडे चाव से सुनते, तथा हिंसा एव मदिरापान त्याग की प्रतिज्ञा लेते।

अजमेर मे श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हो रहा था। वहाँ भी आपश्री ने सघ एकता विषय पर प्रवचन दिये।

वहाँ से आपश्री चित्तौड, निम्बाहेडा होते हुए जावद पधारे। वहाँ चातुर्मास हेतु उदयपुर श्रावक सघ की प्रार्थना आई। पण्डितरत्न श्री देवीलालजी महाराज और आपने उदयपुर मे चातुर्मास किया।

पन्द्रहवाँ चातुर्मास (१९६७) जावरा

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण करके आप देलवाडा, काकरोली, कुणज कुवेर होते हुए नाणदा पधारे। यहाँ के ठाकुर साहब तेजसिंहजी प्रति मास बकरे का बलिदान करते थे। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर उन्होंने बकरे का बलिदान बन्द कर दिया।

नाणदा से आप वागोर पधारे। वागोर मे स्थानकवासियो का एक भी घर न था, तेरापथियो के ही घर थे। वे लोग स्थानकवासी साधुओ का न सम्मान करते थे और न उनका प्रवचन सुनते थे, लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज का आगमन सुनकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। उत्साहपूर्वक स्वागत को आए। जैनेतर लोग माहेश्वरी बन्धुओ ने भी उत्साह दिखाया। श्रावगी बन्धुओ की सेवा भक्ति भी प्रशसनीय रही। सभी ने आग्रहपूर्वक आठ दिन तक रोका। कई प्रवचन हुए। प्रवचनो मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि सभी जातियो के लोग सम्मिलित होते और लाभ



उठाते। इस समय वहाँ के निवासियो ने मुने चनो का सदाव्रत चालू किया जो आज तक चल रहा है।

वागोर से आप भीलवाडा, मगरूप, पारसोली, बीगोद, माडलगढ, बेगू, सीगोली, नीमच होते हुए मल्हारगढ पधारे। वहाँ आपके गुरुदेव आशुकवि श्री हीरालालजी महाराज ने आदेश दिया—'अनुकूल अवसर पर प्रतापगढ जाकर सासारिक नाते से अपनी पत्नी को सद्बोध देना।'

पत्नी मानकुँवर साध्वी बनी

गुरुदेव के इस आदेश को सुनकर आप असमजस मे पड गए। हृदय मथन चलने लगा। दीक्षा ग्रहण किये भी १३ वर्ष मे अधिक समय बीत चुका था। मोह का बन्धन तो बिल्कुल ही समाप्त हो चुका था। फिर भी दो बातो का विचार था एक तो ससुर जी जल्दी ही आवेश मे आ जाने वाले व्यक्ति थे और दूसरा मानकुँवर तो इस बात पर कटिबद्ध थी कि कही भी मिल जायें, वही आपको गृहस्थ वेश पहनाकर घर ले आऊँ। आप अपने व्रतो मे अडोल थे। संकल्प भी दृढ था, फिर भी विवाद और क्लेश से दूर ही रहना चाहते थे।

इस सब स्थिति को जानते हुए भी आपने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और प्रतापगढ पहुँचे। बाजार मे प्रवचन की योजना बनी। पूनमचन्दजी और मानकुँवर को भी आपके आगमन का पता चला। पूनमचन्द जी स्वय तो आए नही, लेकिन मानकुँवर प्रवचन मे उपस्थित हुई। प्रवचन शुरू होते ही उसने उच्च स्वर मे चीख कर कहा—

"मेरा खुलासा किये विना यहाँ से जाएँ तो मेरी सौगन्ध है।"

लोग प्रवचन सुनने मे मग्न थे। किसी ने उसकी बात पर ध्यान न दिया। अब तो वह जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगी। चीख-पुकारो से प्रवचन का रग भग हो गया। परिणाम-स्वरूप आपने प्रवचन देना बन्द कर दिया। इस स्थिति मे आपने वहाँ रुकना उचित न समझा और मन्दसौर आ गए। मानकुँवर ने वहाँ भी पीछा किया और उछल-कूद मचाने लगी। बडी कठिनाई से समझा बुझाकर श्रीसघ ने उसे वापिस प्रतापगढ भेजा।

जब आपश्री जावरा मे विराज रहे थे, काफी शान्त, सौम्य वातावरण था, वहाँ भी मान-कुँवर (पत्नी) जा पहुँची। उसका एक ही ध्येय था—'किसी प्रकार आपको गृहस्थ वेश पहनाकर अपने साथ ले जाना।' लोगो ने बहुत समझाया, लेकिन वह अपनी हठ से टस से मस नही हुई। ताल निवासी श्री हुक्मीचन्दजी की बहन ऐंजाबाई की पुत्री धूलीबाई ने उसे बडी चतुराई से अच्छी तरह समझाया तो वह बोली—

"अच्छा! एक बार मुझे उनसे मिला दो। खुलासा बातचीत होने के बाद जैसा वे कहेगे वैसा मैं मान लूँगी।"

उनकी यह इच्छा स्वीकार कर ली गई और चार-छह श्रावक-श्राविकाओ तथा कई साधुओ की उपस्थिति मे उसे आपश्री के समक्ष लाया गया। उसने आते ही कहा—

"आपने तो मुझे छोड कर सयम ले लिया। अब मैं क्या करूँ? किसके सहारे जिन्दगी बिताऊँ।"

आपने शान्त गम्भीर स्वर मे समझाया—

"तुम्हारा और मेरा अनेक जन्मो मे सासारिक सम्बन्ध हुआ है। परन्तु धर्म सम्बन्ध नही



हुआ। यह सम्बन्ध ही सबसे ज्यादा दुर्लभ है। ससार असार है। इसमे कोई किसी का साथी नही, सहारा नही। सभी अपने कर्मों के वश आते हैं और चले जाते हैं। कोई भी अमर नही है। पुत्र को छोड कर पिता चल वसता है और पत्नी को छोडकर पति। एकमात्र धर्म ही आश्रय है। मेरी मानो तो धर्म का आश्रय लो। साध्वी वन जाओ। तुम्हारे लिये यही श्रेयस्कर है।"

सन्तो के सत्यपूत वचन वडे प्रभावकारी होते हैं। मानकुँवर प्रभावित हुई। उसका विग्रह अनुग्रह मे बदल गया। उसके हृदय मे वैराग्य भावना जाग्रत हो गई। उसने कहा—

"आपकी वात सत्य है। यह ससार असार है। अव मैं साध्वी वनकर इस मानव-जन्म को सफल करना चाहती हूँ। मुझे दीक्षा दिलवाने की कृपा कीजिए।"

जावरा सघ के माध्यम से श्री गुलावचन्द जी डफरिया ने अपनी ओर से धन व्यय करके मानकुँवर का दीक्षा महोत्सव किया। यह वि० स० १९६७ की विजयादशमी का दिन था। मानकुँवर अव साध्वी मानकुँवर वन गई।

एक साधक की वाणी मे कितना आत्मवल और हृदय को वदलने की क्षमता होती है यह इस घटना से स्पष्ट हो गया कि आपको पुन गृहस्थ वनाने की जिद पर अडी हुई मानकुँवर स्वय ही ससार त्याग कर साध्वी वन गई।

महासती मानकुँवर जी महाराज छह वर्ष तक विविध प्रकार की तपाराधना करती रही। अपना अन्तिम समय निकट जान उसने सथारा ले लिया और श्रावण शुक्ला १० वि स० १९७३ को स्वर्गवासी हुई।

जैन दिवाकरजी म० ने यह चातुर्मास जावरा मे किया।

सोलहवाँ चातुर्मास (१९६८) : बड़ी सादड़ी

जावरा से विहार करके आपश्री करजू पधारे। करजू से अनेक ग्रामो मे विहार करते हुए आप वडी सादड़ी पधारे और वही चातुर्मास किया। भाद्र पद शुक्ला ५ को उदयपुर निवासी कृष्णलालजी ब्राह्मण ने दीक्षा ग्रहण की।

सत्रहवाँ चातुर्मास (स० १९६९) रतलाम

बडी सादडी से विहार करके आप अनेक गाँव-नगरो मे होते हुए रतलाम पधारे। रतलाम चातुर्मास की विनती स्वीकार कर धार, इन्दौर, देवास, उज्जैन आदि नगरो मे सार्वजनिक व्याख्यान एव त्याग-प्रत्याख्यान धर्मध्यान कराते हुए पुन रतलाम पधारे। १९६९ का चातुर्मास रतलाम मे हुआ। आपकी वाणी का लाभ हजारो लोगो ने लिया, बहुत उपकार हुआ। स० १९६९ मार्गशीर्ष वदि ४ को रतलाम मे ताल निवासी चपालालजी ने धूमधाम से दीक्षा ग्रहण की। रतलाम निवासी पूनमचन्द जी वोथरा के सुपुत्र श्री प्यारचन्दजी ने भी साधु-जीवन स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की, लेकिन उसका सुयोग अभी नही आया था। गुरुदेव के साथ रतलाम से आप उदयपुर तक गये। वहाँ से आज्ञा लेने के लिए धाना सुता (रतलाम) आये। पारिवारिक एव सम्बन्धी जनो ने विघ्न उपस्थित कर दिया। दादी और भ्राता ने आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। श्री प्यारचन्दजी की इच्छा पुन गुरुदेव के चरणो मे पहुँचने की थी, परन्तु मार्ग व्यय नही था। रतलाम वाले श्री धूल-चन्दजी अग्रवाल की माता हीरावाई ने आर्थिक सहयोग दिया। आप पुन उदयपुर पहुँचे। वहाँ से गुरुदेव के साथ चित्तौड आये। फिर घर जाकर आज्ञा लेकर आये एव स० १९६९ की फाल्गुन शुक्ला ५ को समारोहपूर्वक श्री सघ ने दीक्षा दिलवाई।



चित्तौड श्रीसघ तथा यूरोपियन भक्त टेलर साहब ने आगामी चातुर्मास चित्तौड़ मे ही करने की भावभरी प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार कर आपने निम्बाहेडा की तर्फ विहार किया।

अठारहवाँ चातुर्मास (सं० १९७०) : चित्तौड़

महाराजश्री निम्बाहेडा से केरी आदि स्थानो पर विचरण करते हुए तारापुर पधारे। वहाँ अठाणा के रावजी साहब का सन्देश मिला कि "आपश्री के प्रवचन बडे मधुर और रोचक होते हैं। आप यहाँ पधारें।" प्रार्थना स्वीकार करके आप अठाणा पधारे। प्रवचनो का रावजी साहब तथा लोगो पर बहुत प्रभाव पडा। राव साहब और अन्य लोगो ने विविध प्रकार के त्याग लिए।

वहाँ से आप कई स्थानो पर होते हुए हमीरगढ़ पधारे। हमीरगढ मे हिन्दू-छीपा बन्धुओ के झगडे पिछले ३६ वर्ष से चल रहे थे। इन झगडो को दूर करने के सभी प्रयत्न विफल हो चुके थे। महाराज श्री ने अपनी ओजस्वी वाणी मे प्रवचन दिया। उनके उपदेश से लोगो का हृदय परिवर्तन हुआ। उन्होंने कलह न करने का निर्णय कर लिया। हिन्दू-छीपाओ का झगडा समाप्त हो गया। यह था आपकी दिव्य वाणी का अद्भुत प्रभाव।

इसके पश्चात् आप चातुर्मास हेतु चित्तौड पधारे। प्रवचन-गगा बहने लगी। जैन-अजैन, जागीरदार, राजकर्मचारी आदि सभी वाणी का लाभ लेने लगे। वहाँ के ब्राह्मणो का कई वर्षों का वैमनस्य आपके उपदेशो से मिट गया। इसकी खुशी मे हाकिम जीवनसिहजी ने सबको प्रीति भोज दिया।

जैन आगम का परमाणु ज्ञान

चित्तौड के अफीम विभाग के चीफ इस्पैक्टर एफ जी टेखर नाम के यूरोपियन थे। टेलर साहब आपके प्रेमी थे। प्रवचनो मे आते और धर्म एव विज्ञान के बारे मे चर्चा किया करते। उन्हें हिन्दी भाषा का भी अच्छा ज्ञान था।

विशाल आगम भगवती सूत्र पर आपके प्रवचन चल रहे थे। परमाणु का प्रसंग आ गया। आपने परमाणु का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण फरमाया। टेलर चकित रह गये। वह तो समझते थे कि परमाणु का ज्ञान केवल पश्चिम वालो के ही है। उन्हें स्वप्न मे भी आशा न थी कि जैन आगमो मे परमाणु का इतना सूक्ष्म ज्ञान भरा होगा। विशद और तलस्पर्शी विवेचन सुनकर वह गद्गद हो गये। प्रवचन समाप्त होने पर बोले—

"महाराज साहब ! आपके ग्रन्थो मे एटम (परमाणु) का इतना सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन सुनकर मैं दंग रह गया। आप परमाणु ज्ञान का प्रारम्भ कब से मानते हैं ? मनुष्य को सर्वप्रथम यह ज्ञान कब हुआ और किसके द्वारा हुआ ? इसे कितना समय बीत गया ?"

महाराजश्री ने गम्भीर स्वर में फरमाया—

"इस ज्ञान को वर्षों की सीमा मे नहीं बांधा जा सकता। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को परमाणु का ज्ञान सर्वप्रथम हुआ। इसको प्राप्त हुए तो असख्य वर्ष हो गए।"

"असख्य वर्ष ? लेकिन हमारा पश्चिमी जगत तो वैज्ञानिक ज्ञान को ही चार सौ वर्ष पुराना मानता है। इससे पहले तो परमाणु का ज्ञान था ही नहीं।"—टेलर साहब के स्वर मे आश्चर्य उभर आया था।

"यह तो अपनी-अपनी मान्यता है। ज्ञान की अल्पता से ही मनुष्य अपनी मनगढन्त मान्यताएँ बना लेता है।"



महाराजश्री के इन शब्दो ने बात समाप्त कर दी। टेलर साहब भी चकित हो, उठकर चले गए।

कुछ दिन बाद टेलरसाहब एक चित्र लेकर आये और महाराजश्री को दिखाकर बोले—

"देखिए! यह है परमाणु का चित्र! आपके ग्रन्थो मे वर्णन मात्र ही है और विज्ञान ने चित्र भी उतार दिया।"

महाराजश्री ने मद स्मितपूर्वक कहा—

"यह परमाणु का चित्र नही है, आप अभी तक परमाणु को समझ नही सके हैं।"

"कैसे?" टेलर साहब चकराये।

"जैन आगमो मे परमाणु उसे कहा गया है जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है। उसका चित्र नही लिया जा सकता।"

"तब यह क्या है?"

"यह है स्कन्ध। इसका निर्माण अनन्त पुद्गल परमाणुओ के मिलने से होता है।"

"आपकी बात कैसे मान ली जाय?"

"स्कन्ध टूट सकता है, उसका विखण्डन हो सकता है, लेकिन परमाणु का खडन नही हो सकता। आप लोग इसे कुछ भी नाम दें, परमाणु ही कहते रहे, लेकिन जैन आगम दृष्टि से तो परमाणु अखडित और अविभाज्य ही होता है।"

टेलर साहब सोचने लगे—'जैन आगमो मे अध्यात्म के साथ-साथ कितना भौतिक ज्ञान भरा हुआ है। जिस परमाणु ज्ञान को हम वैज्ञानिक लोग चार सौ वर्ष पहले ही प्राप्त कर पाये हैं उससे भी सूक्ष्म ज्ञान इनको हजारो-लाखो वर्ष पहले था।' और वे श्रद्धा से अभिभूत होकर गुरुदेव के चरणो में नतमस्तक हो गए।

कुछ वर्षों बाद जब पश्चिमी वैज्ञानिको ने अपने तथाकथित परमाणु का विखडन कर दिया तो विज्ञान ने जैन आगम ज्ञान का लोहा मान लिया।

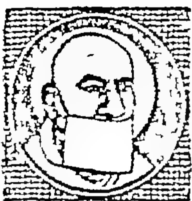
टेलर साहब प्रवचनो मे आते ही रहते थे। एक दिन उन्होने अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये—

"महाराज! आपका धर्म बहुत ही उच्च आदर्शों पर स्थित है। भोग-प्रधान व्यक्ति के लिए इसका पालन करना बडा कठिन है। लेकिन मोक्ष की इच्छा करने वाले को तो इसी की शरण लेनी पडेगी।"

उक्त शब्द टेलर साहब की जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा के परिचायक हैं। उन्होंने मास-मदिरा का आशिक त्याग कर दिया था। उनकी पत्नी भी गुरुदेव के प्रति श्रद्धा रखती थी। एक दिन उसने कुछ फल अपने नौकर के हाथ भेजे तो जैन दिवाकरजी महाराज ने नौकर को अपनी श्रमण-मर्यादा समझा कर वापिस लौटा दिये।

टेलर साहब के मित्र एक अंग्रेज सेनाध्यक्ष (कर्नल साहब) महाराजश्री के दर्शनो को आये तो उनके प्रवचन सुनकर भक्त ही बन गए। जीवदया के भावना से प्रेरित होकर मोर और कबूतर को मारने का त्याग कर लिया।

एक बार आपश्री के पास टेलर साहब एक शीशी मे पाउडर (चूर्ण) लाये और भेंट करते हुए बोले—



"महाराज ! यह तो वनस्पतियो से वनी है। वैज्ञानिक विधि से निर्मित होने के कारण पूर्ण रूप से शुद्ध है। इसे तो आप ले ही सकते हैं। यह पानी मे डालते ही दूध वन जायगा।"

शीशी अस्वीकार करते हुए आपने समझाया—

"शुद्ध होने पर भी खाद्य पदार्थों का सग्रह करना हमारी साधु-मर्यादा के खिलाफ है। रात्रि को कोई भी खाद्य पदार्थ जैन साधु नहीं रखता। आवश्यक वस्तुएँ हमे गृहस्थो से मिल ही जाती हैं। फिर व्यर्थ का परिग्रह रखने से क्या लाभ ?"

"आपके लिए भेंट लाई वस्तु को मैं वापिस तो ले नही जा सकता।" टेलर साहव ने निराश स्वर में कहा।

परिमाणस्वरूप वह शीशी रोगियो के उपयोग के लिए अस्पताल में भिजवा दी गई।

टेलर साहव महाराजश्री तथा जैन मतो की निस्पृहता तथा त्यागवृत्ति को देखकर गद्गद हो गए।

वास्तव मे टेलर साहव और उनकी पत्नी आपश्री के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं निर्मल चरित्र ने बहुत प्रभावित थे। उनके हृदय मे असीम श्रद्धा और भक्ति थी। वे महाराजश्री के विदेशी भक्तो मे अग्रगण्य थे। इसके वाद उन्होंने दो भावभीने पत्र भी भेजे थे।

उन्नीसवा चातुर्मास (स० १९७१) : आगरा

चित्तौड चातुर्मास पूरा करके महाराजश्री विहार करने लगे तो अन्य लोगो के साथ टेलर साहव भी आए। सभी की इच्छा थी कि आप विहार न करें लेकिन श्रमणधर्म के नियमो के कारण चुप हो जाना पडा। सभी ने महाराजश्री को भावभीनी विदाई दी।

विचरण करते हुए मुनि श्री गगरार पधारे। वहाँ वैर-वृत्ति के कारण कुसंप था। महाराज श्री के उपदेश से उनका विरोध समाप्त हो गया।

वेश्याओं का उद्धार

वहाँ से विहार करके आपश्री हमीरगढ, विगादे होते हुये नन्दराय पधारे। आपके उपदेशो से यहाँ के ओसवाल परिवार मे आई धार्मिक शिथिलता दूर हो गई। कुछ दिन के प्रवास के वाद विचरण करते हुए आप जहाजपुर पधारे। वहाँ स्थानकवासी जैनों के पाँच ही परिवार थे, लेकिन पूरा कस्वा ही आपके प्रवचनो को वड़े चाव से सुनता था। सभी उपस्थित होते थे। तीन हजार से भी अधिक जनसमूह एकत्र हो जाता। वहाँ एक कुप्रथा थी—विवाह आदि अवसरो पर वेश्या नृत्य की। आपको जैसे ही इस कुप्रथा का पता चला तो आपने इसे वन्द कराने का विचार किया। आपकी प्रेरणा से यह कुप्रथा वन्द हो गई। समाज ने वेश्या-नृत्य न कराने का निर्णय कर लिया।

यह निर्णय सुनते ही वेश्याएँ हतप्रभ रह गई। जीवन-निर्वाह की चिन्ता सताने लगी। सोचा—'जिसने समाज को यह प्रेरणा दी है, वे ही हमे भी कोई राह वताएँगे।' एक दिन वाहरि भूमि को जाते हुए आपके मार्ग मे वे उपस्थित होकर वोली—

"गुरुदेव ! आपकी प्रेरणा से समाज ने वेश्यानृत्य वन्द करने का निर्णय कर लिया। हमारी आजीविका का साधन छिन गया। अव आप ही वताइये हम क्या करें ? कैसे अपना पेट भरें ?"

महाराज साहव ने जोशीली वाणी मे उन्हें उद्वोधन दिया—

"वहनो ! नारी जाति का पद वहुत ही गौरवपूर्ण है। वह ममतामयी माता और स्नेह-



शीला वहन है। तुमने इतना महत्वपूर्ण पद पाया है। यह कुत्सित कर्म और नृत्य-गान तुम्हारे लिए अनुचित है, नारी के माथे पर कलक है। सदाचरण और सात्विकवृत्ति से इस कलक को धो डालो। मेहनत-मजदूरी से भी पेट का पालन हो सकता है, धार्मिक तथा सात्विक जीवन विताओ।"

वेश्याओ ने आपके उद्‌वोधन से प्रभावित होकर सात्विक जीवन अपना लिया। मेहनत मजदूरी करके पेट भरने लगी। नारकीय जीवन से उद्धार पाकर वे सात्विक व सदाचारमय जीवन विताने लगी।

जहाजपुर मे एक दिन जागीरदार साहव ने किले मे प्रवचन का प्रवन्ध कराया। व्याख्यान से प्रभावित होकर जागीरदार साहव ने ३० वकरो को जीवनदान दिया। यहाँ से टोक होते हुए आप सवाई माधोपुर पधारे।

खटीको मे जागरण

यहाँ तीस खटीको ने हिंसा कृत्य वन्द कर दिया तथा खेती और मजदूरी करके जीवनयापन करने लगे। कई वर्षों वाद उन्होंने अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये—

"जव हम लोग हिंसा कर्म करते थे तो हमारा गुजारा भी नही हो पाता था, पेट भी वडी कठिनाई से भरता था, लेकिन जव से हिंसा छोडी है तव से हम सभी प्रकार से सुखी है। हमारे जीवन में अव सुख-शाति है। गुरुदेव की कृपा से हमारा जीवन सुधर गया है।"

इसके वाद जव आप भीलवाडा पधारे तो वहाँ ३५ खटीक परिवारो ने हिंसात्मक धन्धा-वन्द करके अहिंसा की शरण ली। इसी प्रकार स्थानीय माहेश्वरी समाज भी आपके प्रवचनो से प्रभावित हुआ। वर्षों से चले आये मतभेद भुलाकर वे भी परस्पर प्रेम-सूत्र मे वँध गये।

इस समय आगरा श्रीसघ ने सेवा मे उपस्थित होकर चातुर्मास की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई। आपश्री यहाँ से विहार करके श्यामपुर होते हुए गगापुर पधारे। कुछ लोगो की अरुचि देखकर वहाँ श्मशान के पास वनी छतरियो मे ही ठहर गए। गाँव मे स्थानकवासी जैन एक ही परिवार था। उसे महाराजश्री का आगमन ज्ञात हुआ तो तुरन्त सेवा मे पहुँचा। गाँव मे पधारने की प्रार्थना करने लगा। लेकिन तव तक दिन का चौथा पहर वीत चुका था। साधु-मर्यादा के अनुसार महाराजश्री गमन नही कर सकते थे। कडकडाती ठड पड रही थी। वह श्रावक चटाई आदि वांधने लगा जिससे कि शीत का प्रकोप कुछ तो कम हो सके। महाराजश्री ने मना करते हुए कहा—

"भाई! इस प्रवन्ध की कोई जरूरत नही। हरिण, खरगोश आदि तो विल्कुल ही निर्वस्त्र रहते हैं।"

और आपने वह रात्रि कडाकडाती ठड मे चारो ओर से खुली छतरियो मे ही विताई। प्रातःकाल ग्राम मे पधारे। दिगम्बर जैन धर्मशाला मे ठहरे। फिर श्रावक से पूछा—

"भाई व्याख्यान कहाँ देना है ?"

"कही भी प्रवचन दे दीजिए महाराज! सुनने वाले तो हम पिता-पुत्र दो ही है।" वेचारा श्रावक अचकचाकर वोला।

"भाई। घवराओ मत। कहावत है—दो तो दो सौ से भी ज्यादा हैं।" महाराजश्री ने आत्म-विश्वास भरे स्वर मे कहा और वाजार में उसकी दूकान पर वैठकर ही प्रवचन देना शुरू किया। मंगलाचरण होते ही कुछ लोग और आ गए। प्रवचन चलने लगा, श्रोता समूह वढने लगा।

समाप्त होते-होते तो सैकडो श्रोता एकत्र हो गये। सभी एकाग्रचित्त होकर सुन रहे थे। प्रवचन पूर्ण हुआ लेकिन लोगो की प्यास और बढ गई। अमृत-पान से कौन अघाता है। लोगो ने आग्रह किया। महाराजश्री ने दो प्रवचन और दिये।

दो से दो हजार का श्रोता समूह एकत्र होना आपश्री के अपूर्व प्रवचन प्रभाव का द्योतक है।

वहाँ से विहार करके भरतपुर होते हुए आप आगरा पधारे। इस समय आगरा मे महावीर जयन्ती उत्सव धूमधाम मे मनाया गया। बेलनगज (आगरा) मे हुए प्रवचन मे धौलपुर निवासी श्री कन्नोमलजी सेशन जज उपस्थित थे। उन्होंने तथा अनेक लोगो ने धौलपुर पधारने की प्रार्थना की।

आगरा से महाराजश्री धौलपुर पधारे। वहाँ मुरैना निवासी स्याद्वादवारिधि प्रसिद्ध विद्वान् प० गोपालदासजी बरैया का आग्रहपूर्ण निमन्त्रण मिला। पडित जी दिगम्बर जैन थे और गोम्मटसार आदि ग्रन्थो के प्रकाण्ड विद्वान थे।

वहाँ से आप लश्कर (ग्वालियर) पधारे। श्वेताम्बर समाज के वहाँ लगभग ४० घर थे लेकिन सराफा बाजार मे हुए आपके प्रवचनो मे ७००-८०० से अधिक उपस्थिति थी। सभी सम्प्रदायो के लोग आपका उपदेश सुनने आते थे। लश्कर के श्रीसघ ने आपसे चातुर्मास का आग्रह किया। आपने कहा—दो साधु आगरा मे रह गए हैं। उनसे सम्मति लिए बिना निर्णय नही किया जा सकता। महाराजश्री पुन आगरा की ओर पधारे और वह चातुर्मास आगरा में ही सम्पन्न किया।

खटीक का हिंसा-त्याग

आगरा वर्षावास पूर्ण करने के बाद आप मालव भूमि की ओर बढ रहे थे। कोटा से कुछ आगे विहार कर रहे थे। मार्ग मे एक व्यक्ति किसी छायादार विशाल वृक्ष के नीचे सोया हुआ था। उसके पास ही दो बकरे बँधे थे। उस व्यक्ति की मुखमुद्रा कठोर थी। जाति से वह खटीक था। महाराजश्री ने अनुमान लगाया—यह व्यक्ति वधिक है। वधिको के मुख पर ही ऐसी कठोरता होती है। उसकी निद्रा भग हुई। उसने आँखें खोलीं। महाराजश्री ने प्रतिबोध देने के लिए प्रश्न किया—

"भाई ! तू यह पाप क्यो करता है ? जीविकोपार्जन के लिए ही न ! फिर भी तू सभी प्रकार से दीन-हीन दिखाई दे रहा है। तन पर साबित कपड़े भी नही हैं। दु ख और दैन्य की मूर्ति ही बना हुआ है।"

"महाराज ! आपके सामने झूठ नही बोलूँगा। मैं सभी प्रकार से दु खी हूँ। सुख क्या है, मैंने इस जीवन मे जाना ही नही।"

"सुखी तुम हो भी कैसे सकते हो ? दूसरो को दु ख देने वाला, उनकी हत्या करने वाला खुद कैसे सुख पा सकता है। इस हिंसाकर्म को छोडो तो सुख की आशा करो—महाराजश्री ने कहा।

"कैसे छोड़ूँ ? यह तो मेरा पैतृक व्यवसाय है ?"

"तो क्या पैतृक व्यवसाय छोडा नहीं जा सकता ? सवाई माधोपुर के खटीको को जानते हो ? वहाँ के ३५ परिवारो ने यह बुरा धन्धा छोड दिया। क्या वे अब सुखी नहीं है ?"

"उनको तो मैं खूब जानता हूँ। वे तो बहुत सुखी हैं।"

"तो उन्ही का अनुकरण करो। तुम भी सुखी हो जाओगे।"



सुखी होना कौन नही चाहता ? माघू खटीक कुछ क्षण तक सोचता रहा और फिर वोला—

"महाराज ! मैं अभी इस धन्धे को छोडने को तैयार हूँ। मेरे पास इस समय ३२ वकरे हैं। यदि कोई मुझे इन सवका लागत मूल्य भी दे दे तो उस धन से मैं कोई ऐसा काम कर लूंगा जिसमे हिंसा न हो।"

महाराजश्री कुछ क्षण तक सोचते रहे तो वही पुन बोला—

"आप मेरा विश्वास करें। मैं परमात्मा और चन्द्र-सूर्य की साक्षी से अपनी प्रतिज्ञा का जीवन भर दृढतापूर्वक पालन करता रहूँगा। कभी भी जीव-हिंसा न करूंगा।"

श्रावक का एक परम कर्तव्य होता है—सदाचार की ओर बढते हुए मानव की सहायता करना। आपके साथ विहार मे श्री कन्हैयालाल जी और जुहारमल जी थे। उन पुण्यशाली श्रावको ने वैसी ही व्यवस्था कर दी। माघू खटीक जीव-हिंसा से जीवन भर के लिए विरत हो गया। अव उसका हृदय-परिवर्तन हो चुका था। वह कल्याण-पथ को स्वीकार कर चुका था। वह सुखपूर्वक जीवन विताने लगा। सत्य है—

संगः सतां किमु न मगलमातनोति।

साधुओ की सगति से कौन सा मगल नही प्राप्त होता ? अर्थात् सभी प्रकार के मगल प्राप्त हो जाते हैं।

बीसवाँ चातुर्मास (स० १९७२) · पालनपुर

वहाँ से विचरण करते हुए महाराजश्री सीगोली, सरवाणिया, नीमच, मल्हारगढ होते हुए मन्दसौर पधारे। वहाँ गुरु श्री जवाहरलालजी महाराज तथा पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज भी विराजमान थे। पालनपुर के श्रीसघ ने वहाँ आकर चातुर्मास की प्रार्थना की। उन्हे स्वीकृति मिल गई। इस स्वीकृति के उपरान्त गगापुर (मेवाड) का श्रीसघ अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना करने आया। गगापुर के श्रीसघ ने निवेदन किया—

"हमारे यहाँ कुछ दिन वाद तेरापन्थी सघ का पाट (मर्यादा) महोत्सव होने वाला है। वहाँ कई विद्वान सत उपस्थित होगे। यदि स्थानकवासी विद्वान सत भी पधारे तो वहुत उपकार होने की सभावना है।"

पूज्य श्रीलालजी महाराज को गगापुर श्रीसघ की यह वात उचित लगी। उन्होने सस्नेह आपश्री की ओर देखकर कहा—

"मुनिजी ! आप वहाँ जाकर धर्म-प्रभावना करिए।"

आपने विनय भरे शब्दो मे निवेदन किया—

"पूज्य महाराज साहव ! ऐसे अवसर पर तो वहाँ आप जैसे दिग्गज आचार्य का पधारना अधिक उपयुक्त रहेगा।"

पूज्यश्री ने प्रत्युत्तर देते हुए फरमाया—

"चौथमलजी ! आपके प्रवचन वहुत प्रभावशाली होते हैं। जैनियो के अतिरिक्त जैनेतर लोग भी हजारो की सख्या मे उपस्थित होकर श्रद्धा और रुचि के साथ सुनते हैं। आप ही पधारिये।"

आपने पूज्यश्री का आदेश शिरोधार्य किया। गगापुर पधारकर प्रवचन-गगा वहाई। आपके प्रवचनो की प्रशसा होने लगी। वहाँ अनेक मोची परिवारो ने जैनधर्म अगीकार किया।

नवकार मन्त्र जपने लगे, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि भी करने लगे। हिंसा आदि कृत्य तथा मास-मदिरा आदि का त्याग कर दिया। आज भी अनेक परिवार मास-मदिरा आदि के पूर्ण त्यागी है। जैनधर्मानुसार धर्माराधना करते हैं और बहुत सुखी हैं। धर्म मे दृढ श्रद्धालु है।

उसी समय उज्जैन के सरसूबा बालमुकुन्द जी भैया साहब राज्य-कार्य से वहाँ आए। एक दिन वे आपके प्रवचन मे उपस्थित हुए। दर्शन-वन्दन करके बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। महाराजश्री ने उनको प्रेरित करते हुए कहा—

"आप तो राज्याधिकारी हैं। वाणी द्वारा ही बहुत पुण्य का उपार्जन कर सकते है। उज्जैन परगना मे अनेक देवी-देवताओ के धाम है। उन स्थानो पर जो हिंसा होती है, उसे आप बन्द करा दें तो बहुत उत्तम हो।"

बालमुकुन्द जी भैया साहब ने आपकी इच्छा स्वीकार की और पूरा-पूरा प्रयास करने का वचन दिया।

गंगापुर से विहार कर आपश्री रास्मी पधारे। वहाँ कई जातियो के लोगो ने अभक्ष्य आहार का त्याग किया। एक देवी के समक्ष प्रतिवर्ष एक भैंसे का वध किया जाता था, उसे भी बन्द कर दिया।

रास्मी से विहार करके आपश्री पोटला पधारे। वहाँ आपके प्रभाव से माहेश्वरियो मे फैले कुसप की समाप्ति हो गई। वहाँ से कोसीथल, रायपुर, मोखणदा आदि स्थानो पर लोगो को कल्याण-पथ पर अग्रसर करते हुए आमेट पधारे।

मार्ग मे अरणोदा के ठाकुर साहब हिम्मतसिंहजी ने जीवन-भर के लिए शिकार खेलने का त्याग कर दिया। कोसीथल के ठाकुर साहब श्रीमान् पद्मसिंह जी ने वैशाख, श्रावण और भाद्रपद-इन तीन महीनो मे शिकार न खेलने का नियम लिया। साथ ही उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जुवानसिंह जी ने वैशाख और भाद्रपद मास मे शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली।

आमेट के राव श्रीमान् शिवनाथ सिंहजी आपके दर्शन हेतु आए। व्याख्यान राव साहब के महल के सामने विशाल मैदान मे हुआ। महावीर जयन्ती का महोत्सव बडे समारोहपूर्वक उत्साह के साथ मनाया गया।

वहाँ से विहार करके चारभुजाजी, घाणेराव, सादड़ी आदि अनेक स्थानो पर होते हुए आबूरोड पधारे। वहाँ पालणपुर का श्रीसघ आ पहुँचा और भक्तिपूर्वक आपश्री को पालनपुर ले गया।

पालणपुर मे आप पीताम्बर भाई की धर्मशाला मे ठहरे। प्रवचन गगा बहने लगी। पालणपुर के नवाब साहब शेर मुहम्मद खाँ बहादुर को पता चला तो एक हाफिज और एक हिन्दू पडित के साथ वे व्याख्यान सुनने आये। सारगर्भित व्याख्यान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। थोडी देर तत्त्व-चर्चा भी की। जाते-जाते उन्हे एक ज्ञान-पेटी दिखाई दे गई। उसमे चालीस रुपये डाले। नवाब साहब की इच्छा तो प्रतिदिन व्याख्यान सुनने की थी लेकिन वृद्धावस्था के कारण शरीर से विवश थे, प्रतिदिन नहीं आ पाते थे।

मन्दसौर मे तार द्वारा समाचार मिला कि बडे महाराज श्री जवाहरलालजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नही है। आपने एकदम विहार कर दिया। लेकिन आबूरोड के पास पहुँचने पर बडे महाराजश्री के स्वर्गवास का समाचार मिला। आप पुन पालणपुर वापिस आ गए।



कुछ ठड पडने लगी थी । एक दिन नवाव साहव आये । वहुमूल्य शालें महाराजश्री के चरणो मे रखकर वोले—

"महरवानी करके मेरी यह छोटी-सी भेंट कवूल फरमायें ।"

आपने वे दुशाले अस्वीकार करते हुए कहा—

"हम लोग जैन साधु हैं । वहुमूल्य वस्तु नही लेते । सदा विचरण करते रहते हैं । कभी महलो मे तो कभी झोपडी मे और कभी वन मे ही वृक्ष के नीचे रात गुजारते हैं । इसलिए वहुमूल्य वस्तुएँ कभी अपने पास नहीं रखते ।"

नवाव साहव जैन साधुओ की निर्लोभता से वहुत प्रभावित हुए । भेंट अस्वीकार करने से उनका दिल वैठने लगा । आजिजी भरे शव्दो मे वोले—

"मैं वडा वदकिस्मत हूँ । क्या आप मेरी कोई भी भेंट स्वीकार नही करेंगे ? मैं क्या दूं जिसे आप स्वीकार कर ले ।"

आपश्री ने कहा—

"नवाव साहव ! आप वदकिस्मत नही हैं । हम आपकी भेंट अवश्य स्वीकार करेंगे लेकिन वह भेंट अहिंसा और सदाचार की होनी चाहिए ।"

"जो आप कहें, वही करूँ ?"

"तो आप जीवन भर के लिए शिकार, मास और मदिरा को छोड दें । आपकी यही भेंट सच्चा तोहफा होगी ।"

'जो हुकुम' कहकर नवाव साहव ने उसी समय शिकार, मास और मदिरा का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया । साथ ही अपनी पूरी रियासत में मुनादी (राजकीय घोषणा) करा दी—

"जहाँ भी जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज पधारें वहाँ की जनता इनका पूरा-पूरा सम्मान करे । आपके प्रवचनो को सुनकर जिन्दगी पाक वनाए, क्योकि ऐसे साधु दुनिया मे वार-वार नहीं पधारा करते है ।"

ऐसा ही एक प्रसग आचार्य हेमचन्द्र के जीवन मे भी आया था । उन्होंने भी गुर्जर सम्राट महाराज कुमारपाल की वहुमूल्य शाल अस्वीकार करके निर्धन विधवाओ की सहायता का मार्ग प्रशस्त किया था । घटना इस प्रकार थी—

आचार्यश्री हेमचन्द्र एक वार पाटण की ओर विहार करते हुए निकट के एक गाँव मे ठहरे । वहाँ एक विधवा वृद्धा आचार्यश्री के प्रति वहुत श्रद्धा रखती थी । वह अत्यन्त निर्धन होते हुए भी वहुत सतोषी थी । उसने अपने हाथ से सूत कातकर एक मोटी खुरदरी चादर आचार्यश्री को भेंट दी । वृद्धा की भक्ति-भाव से भीनी भेंट आचार्य ने सहर्ष स्वीकार करके उसी के सामने अपने कन्धे पर डाल ली । वृद्धा धन्य हो गई । उसने अपना जीवन सफल माना ।

उसी चादर को कन्धे पर डाले आचार्यश्री ने पाटण मे प्रवेश किया । महाराज कुमारपाल उनके परमभक्त थे । उत्साहपूर्वक स्वागत हेतु आए । आचार्यश्री के कन्धे पर पडी मोटी-खुरदरी चादर को देखकर उन्हें वडा दु:ख हुआ । अपनी ओर से वहुमूल्य चादर भेंट करते हुए कहा—

"गुरुदेव ! आपके कन्धे पर यह मोटी चादर शोभा नही देती । इसलिए इसे उतार कर मेरी इस चादर को धारण करिए ।"

आचार्यश्री ने चादर अस्वीकार करते हुए कहा—

"राजन् ! शोभा तो प्रजा के प्रति तुम्हारी उपेक्षा नही देती । तुमने गरीव विधवाओ के लिए क्या किया है ? क्या तुम्हारा उनके प्रति कोई कर्तव्य नही है ?"



कुमारपाल की कर्तव्य बुद्धि जागृत हो गई। तत्काल उन्होंने राजकोष से कई करोड स्वर्ण मुद्राएँ व्यय करके निर्धन विधवाओ की सहायता की घोषणा कर दी।

सतो और सत्पुरुषो के जीवन मे ऐसे प्रसग आते रहते हैं और उनकी प्रेरणा से लोकोपकार होता है।

पालणपुर चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री धानेरा मे पधारे। वहाँ के हाकिम ने आपका बहुत स्वागत किया। वहाँ पालनपुर के नवाब शमशेर खाँ बहादुर के दामाद जबर्दस्तखाँ का निवास था। वे आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुए। प्रवचन सुनकर इतने प्रभावित हुए कि कई जाति के पशुओ की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा ली। वहाँ से विचरण करके बालोतरा पधारे। उस समय तक वहाँ के निवासी सभा की स्थापना, उसके सचालन के नियमो आदि बातो के जानकार नही थे। धर्म-क्रियाएँ करने, प्रवचन सुनने आदि तक ही उनका धार्मिक जीवन सीमित था। आपने अपने प्रवचन मे सब बातो पर प्रकाश डाला। वहाँ 'जैन मडल' की स्थापना हुई।

इक्कीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७३) : जोधपुर

बालोतरा से आप जोधपुर पधारे। वहाँ खूंटे की पोल मे ठहरकर श्री शभुलालजी कायस्थ के नोहरे मे व्याख्यान दिया। स्थान की तगी से अन्य स्थान पर व्याख्यान होने लगे। वहाँ के निवासी प्रवचनो से इतने प्रभावित हुए कि चातुर्मास की पुरजोर प्रार्थना करने लगे। महावीर जयन्ती का उत्सव बडे उत्साहपूर्वक मनाया गया। लोगो ने जब चातुर्मास का अधिक आग्रह किया तो आपने फरमाया—'मेरे गुरुदेव पाली मे विराजमान है। उनकी आज्ञा चाहिए।' लोग पाली जाकर गुरुदेव की आज्ञा भी ले आए। कुछ दिन इधर-उधर विहार करके आप जोधपुर लौट आए। अन्य सत भी वहाँ आ गए। आऊवा की हवेली मे सभी सत ठहरे। उसी के चौक मे प्रवचन होने लगे। शीघ्र ही श्रोताओ की सख्या बढ़ गई और वह स्थान छोटा पडने लगा। जैन और जैनेतर सभी प्रवचन मे आते। सरकारी कर्मचारियो के सरसामान खाता के दरोगा श्रीयुत नानुरामजी माली ने कुचामन की हवेली मे प्रवचन का प्रबन्ध किया। महाराज श्रीविजय सिंहजी साहेब, रायबहादुर प० श्यामबिहारी मिश्र, रेवेन्यू मेम्बर, रीजेन्सी काउन्सिल, रायसाहेब लक्ष्मणदास जी चीफ जज आदि उपस्थित हुए।

इस पर्युषण मे बहुत तपस्याएँ हुईं। जैनो के अतिरिक्त अजैनो ने भी बढ-चढकर भाग लिया। लगातार आठ-आठ दिन का उपवास किया।

बाईसवाँ चातुर्मास (स० १९७४) : अजमेर

जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके आप पाली की ओर प्रस्थित हुए क्योकि वहाँ आपके गुरुदेव चातुर्मास कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य भी ठीक न था। कुछ दिन गुरु-सेवा मे रत रहे। जब उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया तो उनकी आज्ञा लेकर विहार किया और अनेक स्थलो पर विचरण करते हुए ब्यावर पधारे। वहाँ आपके गुरुदेव आशुकवि हीरालालजी महाराज पहले ही पहुँच चुके थे। वयोवृद्ध मुनिश्री नन्दलालजी महाराज भी विराजमान थे। वहाँ का जैन समाज कई सम्प्रदायो मे विभक्त था। देशभक्त सेठ दामोदरदासजी राठी ने आपके प्रवचन सनातन धर्म हाईस्कूल मे कराए। आपने 'प्रेम और एकता' पर ऐसा सारगर्भित तथा ओजस्वी भाषण दिया कि एकता की प्रचण्ड लहर फैल गई। हैडमास्टर ने प्रभावित होकर दूसरा व्याख्यान कराया।

इसी समय अजमेर श्रीसघ ने आपको आग्रहपूर्वक बुलाया। आप अजमेर पधारे। प्रवचन सुनकर सभी प्रभावित हुए। राय बहादुर छगनमलजी, दीवान बहादुर उम्मेदमलजी लोढा, मगनमल



जी, गाढमलजी लोढा आदि ने समस्त श्रीसघ की ओर से अजमेर चातुर्मास की विनती की। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके आपने किशनगढ की ओर विहार कर दिया।

किशनगढ़ मे महावीर जयन्ती

किशनगढ मे आपके पदार्पण के साथ ही हर्ष छा गया। कुछ दिन बाद ही चैत्र सुदी १३ आने वाली थी। भगवान महावीर के जन्मोत्सव की धूमधाम से तैयारी होने लगी। राज्य की ओर से छाया आदि का प्रबन्ध हुआ। महावीर जयन्ती का उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। व्याख्यान सुनने को हजारो मनुष्य उपस्थित हुए। हिंसादिक कृत्य बन्द रहे। गरीवो को वस्त्र आदि का दान दिया गया। जैन लोगो ने आयविल व्रत किये।

किशनगढ से विहार करके टोक होते हुए आप हरमाडे पधारे। वहाँ तेलियो ने अमुक दिन घानी बन्द रखने की और जैन भाइयो ने अपनी आय मे से पच्चीस टका सैकडा धार्मिक कार्यों मे व्यय करने की प्रतिज्ञा की।

वहाँ से रूपनगढ आए। रूपनगढ मे प्राचीन शास्त्रो का भण्डार था। श्रावको के अत्यधिक आग्रह पर आपने कुछ शास्त्र अपने साथ लिये और अजमेर की ओर विहार कर दिया।

अजमेर मे आप लाखन कोठरी में रायवहादुर सेठ उम्मेदमलजी के मकान मे चातुर्मास हेतु ठहरे। इस समय आपके गुरुदेव आशुकवि हीरालालजी महाराज का चातुर्मास किशनगढ मे था। लेकिन वहाँ प्लेग फैल गया। इसीलिए श्रावको के अत्यधिक आग्रह पर वे पडित नन्दलालजी महाराज के साथ अजमेर पधारे। इस मुनि सगम से अजमेरवासियो को बड़ा हर्ष हुआ।

आपके गुरुदेव प० श्री हीरालालजी महाराज ने वहुत से भजन वनाये और साधु-साध्वियो मे वितरित कर दिये।

एक दिन अस्वस्थ रहने के वाद आश्विन शुक्ला २ को प० मुनिश्री हीरालालजी महाराज देवलोकवासी हो गए।

प्लेग अजमेर मे भी फैल गया। अत. मुनि सघ को नगर के वाहर लोढाजी की हवेली मे जाना पडा। शेप चातुर्मास वही पूरा हुआ।

तेईसवाँ चातुर्मास (स० १९७५) : ब्यावर

अजमेर से विचरण करते हुए आप ताल पधारे। वहाँ के ठाकुर साहव उम्मेदसिंहजी ने अष्टमी और चतुर्दशी को बिलकुल शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। उनके वन्धुओ और पुत्रो ने भी अनेक प्रकार के त्याग लिए। वहाँ से आप लसाणी पहुँचे तो वहाँ के ठाकुर सहाव श्री खुमाण-सिंहजी प्रतिदिन प्रवचन सुनने लगे और उन्होंने पक्षियो की हिंसा का त्याग कर दिया। साथ ही कितने ही अन्य मासाहारी व्यक्तियो ने मास न खाने का नियम लिया।

लसाणी से विहार करके आप देवगढ पधारे। वहाँ के रावतजी, विजयसिंहजी उदयपुरनरेश के सोलह उमरावो मे से एक थे। जैन मुनियो के प्रति उनके हृदय मे घोर अरुचि थी। एक बार कुछ पडितो को एक जैन मुनि के साथ वितण्डावाद करने के लिए भी उन्होंने भेजा। एक दिन जव उन मुनि का प्रवचन हो रहा था उस समय वे घोडे पर बैठकर निकले। मण्डप बँधा हुआ देखकर वोले—'इसे हटवा दो। हम इसके नीचे से नहीं निकलेंगे।' श्रावक क्या कर सकते थे? लाचार होकर पर्दा खोल देना पड़ा।

यह उनकी अरुचि की पराकाष्ठा थी।

लेकिन एक दिन वह भी आया जव वे जैन दिवाकरजी महाराज का सार्वजनिक प्रवचन



बाजार में हो रहा था, वहाँ जन-साधारण के बीच महाराजश्री का प्रवचन बड़े प्रेम व भक्ति से नियमित सुनने लगे, अपनी शंकाओं के समाधान के लिए आने लगे। रानियों ने भी व्याख्यान सुनने की इच्छा प्रकट की तो आदरपूर्वक आपको महल में बुलवाया। उस दिन महल में सर्व साधारण जनता को भी व्याख्यान सुनने का अवसर दिया। आसन के लिए बहुमूल्य गद्दे बिछवाये। किन्तु महाराजश्री तो निस्पृह थे। उन्हें गलीचों से क्या वास्ता ? आपने अपने साधारण वस्त्र पर ही बैठकर प्रवचन दिया। रावतजी साहब ने भी गलीचा उठवा दिया और सामान्य आसन ग्रहण किया। ॐकार शब्द की ऐसी युक्तियुक्त तथा विशद व्याख्या की कि प्रभावित होकर रावतजी ने साल के अधिक महीनों में शिकार न करने का तथा कुछ जानवरों को बिल्कुल ही न मारने का नियम लिया।

कुछ दिन बाद महाराजश्री ने वहाँ से विहार किया तो रावतजी ५०-६० आदमियों के साथ उन्हें वापिस लौटाने के लिए चल दिये। महाराजश्री कुछ आगे निकल गए थे। देर न हो जाय इसलिए अकेले ही बड़ी शीघ्रता से चलकर महाराजश्री के पास पहुँचे और बड़े आग्रह तथा अनुनयपूर्वक उन्हें वापिस देवगढ़ में ले आए। अत्यधिक विनय करके कुछ दिन रोका।

स० १९७५ में फिर जैन दिवाकरजी महाराज को अनुनय-विनय करके बुलवाया और बहुत सेवा-भक्ति की।

यह था गुरुदेव के प्रवचन का प्रभाव कि रावतजी साहब की घोर अरुचि श्रद्धा-भक्ति में परिणत हो गई।

महाराजश्री देवगढ़ से विहार करके कोशीथल पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्रीपद्मसिंहजी के सुपुत्र श्री जवानसिंहजी तथा उनके छोटे भाई दर्शनार्थ आए। उन्होंने अहिंसा का पट्टा लिखकर दिया। उन्होंने स्वयं भी अनेक प्रकार के त्याग किए।

कोशीथल से आप चैत सुदी १ को चित्तौड़ पधारे। यहाँ मुनिश्री नन्दलालजी महाराज तथा मुनिश्री चम्पालालजी महाराज भी विराजमान थे। टेलर साहब भी प्रवचनों में आने लगे।

चित्तौड़ से विहार करके हथखदे, निम्बाहेड़ा, नीमच होते हुए मन्दसौर पधारे। मन्दसौर में महावीर जयन्ती उत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इसी समय रतलाम के श्रीसंघ ने आकर रतलाम पधारने की आग्रह-भरी प्रार्थना की। महाराजश्री रतलाम की ओर प्रस्थित हुए। रतलाम श्रीसंघ ने जेठ वदी ११ के दिन भैरवलालजी सुरिया (कोशीथल वाले) को समारोहपूर्वक दीक्षा दिलवाई। चतुर्दशी के दिन प्रवचन देने के बाद जावरा, मन्दसौर, नीमच होते हुए चित्तौड़ पधारे। वे नगर के बाहर ही ठहर गए। टेलर साहब सेवा में उपस्थित हुए, रुकने की प्रार्थना की लेकिन समयाभाव के कारण आप रुक नहीं सके, विहार कर दिया। टेलर साहब डेढ़ मील तक पहुँचाने गए।

चित्तौड़ से अनेक स्थलों पर विहार करते हुए आप ब्यावर पहुँचे और दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी की हवेली में चातुर्मास हेतु ठहर गए।

आपके दर्शनों के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। चुन्नीलालजी सोनी, जो सज्जन एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, ने आने वाले दर्शनार्थियों के स्वागत-सत्कार का भार अपने कन्धों पर उठा लिया।

इस चातुर्मास में डॉ० मिलापचन्दजी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।



चौबीसवाँ चातुर्मास (स० १९७६) दिल्ली

देवगढ़ के रावतजी के अत्यधिक आग्रह पर आप ब्यावर का चातुर्मास पूर्ण करके देवगढ पधारे। रावतजी ने बहुत सेवाभक्ति प्रदर्शित की। वहाँ से नाथद्वारे मे लीलियाकुण्ड की पेड़ी पर प्रवचन देकर देलवाडा होते हुए उदयपुर की ओर विहार किया।

जब आपश्री उदयपुर के निकट पहुँचे तो कुछ विरोधियो ने आकर कहा—महाराज ! हमने सुना है आपने उदयपुर पधारने की स्वीकृति दे दी है ?

"हाँ"—महाराजश्री ने सक्षिप्त उत्तर दिया।

"लेकिन" आपश्री को यह तो मालूम ही है कि आपके पास जो लोग प्रार्थना करने गये थे वे गैर जिम्मेदार थे। श्रीसघ में उनका कोई स्थान नही है, अत उनकी प्रार्थना का कोई महत्त्व नही है।"

"" तो इससे क्या फर्क पडता है ? प्रार्थना का मूल्य व्यक्ति के पद से नही, भावना से होता है। फिर मैंने जो वचन दिया है उसका पालन तो मुझे करना ही है।"

"तो हमारा सघ आपका विरोध करेगा' ।"

विरोध की बात सुनकर गुरुदेवश्री के मुख पर मुस्कान तैर गई। बोले—"विरोध को मैं विनोद समझता हूँ। उससे कभी घबराया नही, पर एक बात यह तो बताइये कि उदयपुर मे आपके कितने घर हैं ?

"लगभग पाँच सौ तो हैं ही' ।"

"और पूरे उदयपुर में कितने घर हैं ' ?"

"छत्तीस हजार !"

"तो पाँच सौ घरो पर आप अपना अधिकार बनाये रखिए। बाकी लोग तो प्रवचन सुनेंगे ही ?"

आपके इस निर्भीकतापूर्ण उत्तर से विरोधी झेंप गए। वे हाथ मलते ही रह गये और गुरु-देव ने खूब उल्लासपूर्ण वातावरण में नगर-प्रवेश किया। उनका आत्म-विश्वास इतना दृढ था कि वे कभी किसी के विरोध से डरे नही, जो ठीक समझा वह किया और सफलता सदा चरणो की चेरी बनती रही।

नगर मे दिल्ली दरवाजा के निकट लावुवास की हवेली मे आपश्री को ठहराया गया। आपश्री के प्रवचन सार्वजनिक स्थानो पर होने लगे और विभिन्न जातियो और वर्णो के हजारो लोग उमड-उमडकर आते थे। उदयपुर मे श्रावक समाज दो दलो मे विभाजित था। एक दल ने अपनी उपेक्षा होते देखकर गुरुदेवश्री का आगमन ही रोकने की व्यर्थ चेष्टा की, किन्तु जब प्रव-चन में अपार भीड देखी तो उनके भी दिल बुझ गये।

उदयपुर नरेश महाराणा फतेहसिंह जी के बडे भाई हिम्मतसिंहजी ने गुरुदेवश्री की खूब सेवाभक्ति की। अधिकारी मानसिंह गिराही ने भी प्रवचन का लाभ लिया। अजमेर से दीवान बहा-दुर सेठ उम्मेदमलजी भी आ गए। कुवर फतहलालजी तथा महन्त गगादासजी भी प्रवचनो से बहुत प्रभावित हुए। महन्त गगादासजी की भक्ति तो इतनी बढ गई कि कभी-कभी आप गोचरी न पधारते तो वह भी प्रसाद नहीं पाते।

उदयपुर से नाई पधारे। वहाँ आपके उपदेश से कई लोगो ने मास-मदिरा का त्याग



किया। सनवाड मे हजारो श्रोताओ को उपदेश देने के बाद आप कपासण तथा हमीरगढ होते हुए माडलगढ पधारे। सभी स्थानो पर लोगो ने त्याग पच्चखाण किए।

वहाँ से आपने बूँदी की ओर विहार किया। मार्ग मे एक स्त्री ने कहा—'मुनिवर! इस भयकर वन मे आप क्यो जाते हो? यहाँ तो चोरो का बहुत भय है।' आपने हँसकर उत्तर दिया—'जिसके लिए भय होता है, ऐसी कोई वस्तु हमारे पास है ही नहीं। चोर हमसे क्या ले जायगा।"

बूँदी मे आपके प्रवचन सार्वजनिक स्थल पर हुए। दिगम्बर भाइयो ने भी बडा रस लिया। प्रत्येक प्रवचन समाप्त होने पर कुवर गोपाललाल जी केटिया (सुप्रसिद्ध सेठ केसरीलाल जी केटिया के सुपुत्र) खडे होकर आपकी वदना करते और आभार प्रदर्शित करते। बूदी से आप माधोपुर पधारे।

माधोपुर मे आपने एक बाई को दीक्षा देकर श्री फूलाजी आर्या जी की शिष्य बना दिया। वहाँ महावीर जयन्ती उत्सव धूमधाम से सम्पन्न हुआ। आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर एक मुसलमान भाई आलिम हाफिज ने जैन सिद्धान्तो को स्वीकार किया। मुँहपत्ती बाँधकर वह सामायिक, पौषध करने लगा, दया पालने लगा।

माधोपुर से विचरण करके आप श्यामपुर, वेतेड, अलवर होते हुए दिल्ली पधारे। चाँदनी चौक मे पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के दर्शन किये। वहाँ की जनता ने चातुर्मास का अत्यधिक आग्रह किया। वर्षा ऋतु भी सिर पर थी। अत वही चातुर्मास का निर्णय हो गया।

चातुर्मास शुरू होते ही दूर-दूर से दर्शनार्थी आने लगे। जम्मू नरेश के दीवान भी आए। आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण द्वारका प्रसाद ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया।

पच्चीसवाँ चातुर्मास (सं० १९७७) जोधपुर

दिल्ली का यशस्वी चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री ने आगरा की ओर विहार किया। मार्ग मे मथुरा आये, वहाँ दिगम्बर जैनो का अधिक प्रभाव था। दिगम्बर जैन भाइयो के आग्रह पर आपश्री का एक प्रवचन दिगम्बर जैन मन्दिर मे तथा दूसरा सार्वजनिक स्थान पर हुआ।

मथुरा से गुरुदेव श्री आगरा पधारे। लोहामडी और मानपाड़ा मे आपके अनेक प्रवचन हुये। यहाँ प० रत्न पूज्यश्री माधव मुनि जी महाराज से आपका मिलन हुआ। पूज्य माधव मुनि जी महाराज शास्त्रार्थ महारथी थे। साहित्य के मर्मज्ञ और सुकवि थे। अनेक वर्षो से आप गुरुदेवश्री से मिलना चाहते थे। आगरा मे यह सुयोग आया। व्याख्यान भी साथ मे हुआ।

आगरा से जयपुर होते हुए चैत शुक्ला ११ को किसनगढ पधारे।

किशनगढ मे महावीर जयन्ती उत्सव बडे धूमधाम से हुआ। व्याख्यान मे सभी जातियो के तीन हजार से अधिक श्रोता उपस्थित हुए। बहुत से तो बाहर गाँव से आए थे। शास्त्रविशारद पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज, प० रत्न मुनिश्री देवीलालजी महाराज आदि भी विराजमान थे। आपने महावीर भगवान के जीवन पर सुन्दर व्याख्यान दिया।

किशनगढ से आप अजमेर पधारे। अजमेर मे साम्प्रदायिक तनाव कुछ अधिक था। सन्त तो इस तनाव को महत्व नहीं देते थे, लेकिन अनुयायीजन इन मतभेदो को अधिक तूल देते थे। सभी मुनिवर मुथो की हवेली मे विराजे। दूसरे दिन ही पूज्य श्रीलालजी महाराज के आगमन का समाचार मिला। स्थानीय जैन सघ ने विनय की—"यदि आप (मुनिगण) उनके (पूज्य श्रीलाल



जी महाराज के) स्वागतार्थ पधारें तो मतभेद भी दूर होंगे और जनता पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"

जैन सघ की प्रार्थना स्वीकार हुई। पूज्य मन्नालालजी महाराज की आज्ञा से आप पाँच मुनिवरो के साथ ब्यावर मार्ग की ओर पधारे। दोनो ओर के सन्तो का मिलन हुआ। आपने अपने साथ ही विराजने का आग्रह किया लेकिन पूज्य श्रीलालजी महाराज अपनी शिष्य मडली सहित ढड्ढा जी हवेली मे ठहरे। सन्ध्या समय पूज्य खूबचन्दजी महाराज तथा जैन दिवाकरजी महाराज अन्य ६ साधुओ के साथ पूज्य श्रीलालजी महाराज की सेवा मे पधारे। उनसे एक ही स्थान पर सम्मिलित रूप से प्रवचन देने की प्रार्थना की। लेकिन पूज्यश्री ने आनाकानी की। व्याख्यान अलग-अलग ही हुए।

अजमेर से जैन दिवाकरजी महाराज तबीजी पधारे। वहाँ पुन॰ पूज्य श्रीलालजी महाराज का मधुर मिलन हुआ। पूज्यश्री ने आपकी बहुत प्रशसा की, खूब स्नेह प्रदर्शित किया।

पुनः ब्यावर मे जब जैन दिवाकर जी महाराज बाजार मे व्याख्यान दे रहे थे तब पूज्य श्रीलालजी महाराज उधर से निकले। जैन दिवाकर जी महाराज ने पट्टे पर से उतर कर उनकी विनय की।

साम्प्रदायिक मतभेद होते हुए भी जैन दिवाकरजी महाराज के विचार कितने उत्तम और हृदय कितना विनय से भरा था।

ब्यावर से विलाडे पधारे। वहाँ दासफा परगना जसवन्तपुरा (मारवाड) के कुँवर चमन सिह जी तथा डाक्टर जवेरीमल जी आये हुए थे। वे भी आपके प्रवचन से बहुत प्रभावित हुए।

आसाढ सुदी ३ के दिन आपश्री अन्य सन्तो तथा पूज्य श्री मन्नालाल जी महाराज के साथ जोधपुर पधारे। यहाँ रावराजा रामसिह जी की हवेली मे विराजे। जनता प्रवचन सुनने को उत्सुक थी। उसी समय तार द्वारा समाचार मिला कि पूज्य श्रीलाल जी महाराज का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया है। व्याख्यान स्थगित कर दिया गया और हार्दिक सवेदना प्रगट की गई। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने पूज्य श्रीलाल जी महाराज का श्लोकवद्ध जीवन-चरित्र लिखा, किन्तु साम्प्रदायिक कारणो से प्रकाशित न हो सका।

जोधपुर चातुर्मास शुरू हो गया। जैन और जैनेतर सभी लोगो पर प्रवचनो का बहुत प्रभाव पडा। वे सामायिक-प्रतिक्रमण सीखने लगे। सोनियो ने एकत्र होकर दया प्रभावना की। उनकी स्त्रियो ने एकान्तर तथा षष्ठ-अष्टम व्रत किये।

पूज्यश्री की सेवा मे रहने वाले मुनिश्री फौजमल जी महाराज ने ६७ दिन की दीर्घ तपश्चर्या की। उनकी तपःपूर्ति का दिन अहिसा दिवस के रूप मे मनाने का निश्चय हुआ। ओसवाल भाई राजसभा (काउन्सिल) मे गए। उनकी प्रार्थना पर महाराज प्रतापसिह जी ने इस दिन हिंसा पूर्णरूप से बन्द करवा दी। एक-दो कसाइयो ने कहा भी कि 'हाकिमो और सरकारी रसोई को मास कैसे मिलेगा?' तो महाराज ने आदेश दिया कि 'कोई भी मास नहीं खायेगा। यहाँ तक कि शेरो और बाघो को भी दूध ही दिया जावेगा।'

इस प्रकार इस दिन हिंसा पूर्ण रूप से बन्द रही। यहाँ तक कि कसाइयो के अतिरिक्त, हलवाई, भडभूंजे, तेली, तमोली, लोहार आदि सबने अपना कारोबार बन्द रखा। कसाइयो ने दो



सौ बकरो को अभयदान दिया और रावराजा रामसिंहजी ने अपनी ओर से तीस बकरो को अभयदान दिलाया तथा ५० अपाहिजो को भोजन कराया।

तेवीस वर्षीय मादडी (मेवाड) निवासी ओसवाल भैरवलाल जी ने दीक्षा ग्रहण की। उनका नाम बदल कर वृद्धिचन्दजी रखा गया।

श्री भैरवलालजी को वैराग्य भावना तो १६ वर्ष के थे तभी आ गयी थी परन्तु उनके काका ने आज्ञा नही दी, बल्कि मार-पीट और मिर्चों की धुनी तक भी दी कि यह साधु बनने का नाम न ले।

छब्बीसवाँ चातुर्मास (स० १९७८) · रतलाम

जोधपुर मे विहार करके आप पाली पधारे। वहाँ पहले किसी समय प० रत्न पूज्य श्री माधव मुनिजी महाराज ने एक पाठशाला प्रारम्भ करने की योजना बनाई थी। वह योजना कार्य रूप मे परिणत हो गई। पाठशाला अभी तक चालू है। वहाँ से आप सोजत पधारे। आपके प्रवचन के प्रभाव से कितने ही लोगो ने दुर्व्यसनो का त्याग कर दिया। वहाँ से आप ब्यावर पधारे। अजमेर मे पूज्यश्री शोभाचन्द जी महाराज का सन्देश आया कि "यहाँ दो वैरागी तथा दो वैरागिनो की दीक्षा होने वाली है उसमे आप पूज्य मन्नालालजी महाराज सहित पधारें।" अजमेर श्रीसघ ने यह सन्देश दिया एव आग्रह पूर्वक प्रार्थना की। आपने स्वीकृति दे दी तथा पूज्यश्री के साथ अजमेर पधारे।

अजमेर से विहार करके आप नसीराबाद पधारे। वहाँ अनेक खटीको ने जीवहिंसा का त्याग किया। वहाँ से भीलवाडा पधारे।

मार्ग मे भी बहुत उपकार हुआ। श्रावको ने ४० बकरो को अभय दिया। फिर आप चित्तौड पधारे। वहाँ ओसवाल और महेश्वरियो ने दहेज न लेने का निश्चय किया और कन्या-विक्रय का दण्ड निर्धारित कर दिया। साथ ही असमर्थ और निर्धन भाइयो को कन्या के विवाह के लिए ४०० रुपये बिना व्याज के देने का निर्णय किया। सोनियो ने प्रत्येक एकादशी और अमावस्या के दिन अग्नि का उपयोग न करने की प्रतिज्ञा की। मोचियो ने प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या के दिन मास मदिरा के सेवन का त्याग किया और इन दो दिनो ईश्वर-भजन का नियम लिया। गाडी वालो ने अधिक भार न लादने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार के अनेक नियम अन्य जाति वालो ने भी लिए।

चित्तौड से विहार करके आप चित्तौड किले पर पधारे। वहाँ चारभुजाजी के मन्दिर मे प्रवचन हुए। महन्त लालदासजी तथा उनका शिष्य समुदाय प्रवचन सुनते थे। चितौड होकर टेलर साहब बेलगाम (दक्षिण) जाते हुए निकले। उनके हृदय मे महाराज साहब के दर्शन-वन्दन की बहुत इच्छा थी, लेकिन आवश्यक सरकारी कार्य होने के कारण रुक न सके। उनका भावभरा पत्र आया।

जब आपने वहाँ से विहार किया तो महतजी ने रुकने का बहुत आग्रह किया और उनका शिष्य तो चरणो से लिपट ही गया। बडी कठिनाई से उसे समझा-बुझाकर आपने घटियावली के लिए प्रस्थान किया।

घटियावली मे महाजनो और किसानो ने आपश्री के उपदेश सुनकर विविध प्रकार के त्याग लिए। वहाँ के ठाकुर साहब श्री यशवन्तसिंहजी और उनके काका श्री जालिमसिंहजी नित्य प्रवचन सुनते थे। ठाकुर साहब ने पक्षियो को न मारने की तथा जालिमसिंहजी ने शेर, सूअर तथा पक्षियो को न मारने की एव कालूसिंहजी ने चार प्रकार के प्राणियो के अलावा किसी को न मारने



की प्रतिज्ञा ली। किशन खाटकी ने एकम, द्वितीया, पचमी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या के दिन अपने हिंसापूर्ण व्यापार को बन्द रखने का नियम लिया।

निम्बाहेडा मे महावीर जयन्ती

घटियावली से अनेक स्थलो पर विहार करते हुए आप निम्बाहेडा पधारे। चैत सुदी १३ आने वाली थी। आपने 'एकता' पर सरगर्भित प्रवचन दिया। लोगो पर बहुत प्रभाव हुआ। परिणामस्वरूप महावीर जयन्ती का उत्सव समस्त जैन भाइयो ने मिलकर बडी धूमधाम से मनाया। इस उत्सव के मनाने से पहले लोगो ने आपसे पूछा था—'महावीर जयन्ती कैसे मनाएँ ?' आपने कहा—'महावीर भगवान तो सभी के है। सभी जैनियो को मिलकर मनाना चाहिए।' इस एक शब्द ने ही समाज मे एकता के प्राण फूंक दिये। परिणामस्वरूप जैन समाज मे इस अवसर पर ऐक्य हो गया।

मिथ्या कलक निवारण

विहार करते हुए आप सादडी पधारे। वहाँ पाँच-सात स्त्रियो पर मिथ्या कलक लगाया जा रहा था। अन्य स्त्रियाँ उन्हे छूती भी न थी। कई सतो ने इस विवाद को मिटाने का प्रयत्न किया लेकिन सफल न हो सके। आपके उपदेश से यह विवाद समाप्त हो गया। इन स्त्रियो को समाज मे उचित स्थान प्राप्त हुआ।

सादडी से विहार करते हुए आप नामली पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्री महीपालसिंह जी तथा उनके बन्धु श्री राजेन्द्रसिंहजी आपके प्रवचनो से बहुत प्रभावित हुए।

बानासुत, खाचरोद होते हुए रतलाम पधारे और श्रीमान् सेठ उदयचन्दजी के भवन मे विराजे। वर्षावास शुरू हो गया। दूर-दूर से दर्शनार्थी आने लगे। प्रवचन-पीयूष पान करने के लिए राह चलते रास्तागीर भी रुक जाते। बडे-बडे राज्याधिकारी तथा रतलाम काउन्सिल के सदस्य पडित त्रिभुवननाथ जी जुत्सी भी प्रवचनो का लाभ लेने लगे।

यहाँ चित्तौड किला के चारभुजाजी के मन्दिर के महन्त श्री लालदासजी का भाव-भीना पत्र आया। जैनेतर वैदिक विद्वान द्वारा लिखा होने के कारण यह पत्र उद्धरण योग्य है। महन्तजी का पत्र निम्नानुसार है—

स्वस्तिश्री रतलाम नगर शुभस्थाने • सकल गुण सम्पन्न, गगाजलसम निर्मल, चरित्रनायक श्री चौथमलजी महाराज जोग किला चित्तौडगढ से लिखी महन्त लालदास का प्रणाम स्वीकार करिए। स्वामी जी ! आपके अमृतमय वचनो को याद करके मेरा हृदय गद्गद् हो जाता है।

पाँच साधु के बीच मे, राजत मानो चन्द।
अमृत सम तुम बोलते, मिटत सकल भ्रम फन्द ॥
दृष्टि सुहृद मुनि चौथ की, सबको करे निहाल।
गति विधि हू पलटै तबै, कागा होत मराल ॥
सद्गुरु शब्द सु तीर हैं, तन-मन कीन्हो छेद।
बेदर्दी समझे नही, विरही पावे भेद ॥
हरिभक्ता अलगुरुमुखी, तप करने की आस।
सतसगी साँचा यती, वहि देखूँ मैं दास ॥



आपने पांच व्याख्यान देने का वचन दिया था, उसे कब पूरा करेंगे ? पत्र के उत्तर की अभिलाषा है। आशा है पत्र पढते ही अविलम्ब अपनी कुशलता का समाचार देंगे।

संवत् १९७८, भादवा वदी १०
ता० २८-८-१९२१

आपका शुभेच्छुक
महन्त लालदास
चतुर्भुजाजी का मन्दिर
किला (चित्तौडगढ)

तपस्वी मुनि मयाचन्दजी महाराज की ३३ दिन की तपस्या का पूर्णाहुति दिन भाद्रपद सुदी ५ को था। उस दिन अपाहिजो को भोजन-वस्त्र का दान दिया गया। हिंसा पूर्णरूप से बन्द रही। वाघ आदि को भी दूध ही पिलाया गया। रतलाम नरेश महाराजा सज्जनसिंह जी अस्वस्थ थे, फिर भी भाद्रपद वदी १२ को प्रवचन सुनने आये। लोगो ने स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिलाया फिर भी महाराज उठे नही। उनके साथ काउन्सिल के सदस्य, सरदार तथा अन्य उच्च राज्यकर्मचारी भी थे। डेढ घटे तक व्याख्यान सुनते रहे। दूसरे दिन जोधपुर स्टेट के दीवान के सुपुत्र श्री कान्हमल जी दर्शनार्थ आये।

मंगलपाठ से मगल

रतलाम चातुर्मास की ही घटना है। महाराजश्री शौच के लिए जा रहे थे। प्रभात का समय था। नगर के बाहर एक बैलगाडी के समीप कोई आदिवासी करुण स्वर मे क्रन्दन कर रहा था। आपने पूछा—

"क्यो रो रहे हो मामा ! क्या कुछ खो गया है ?"

"सब कुछ चला गया, महात्माजी ! मेरा बीस वर्ष का जवान बेटा अब नही बचेगा। वैद्यो से निराश होकर घर ले जा रहा हूँ।" आदिवासी ने आर्तस्वर मे बताया।

महाराज श्री के नेत्र सजल हो गये। हृदय मे करुणा का स्रोत उमडने लगा। दयार्द्र होकर बोले—

"भगवान का नाम सुनाए देता हूँ। तुम्हारे पुत्र का कल्याण होगा।"

तदुपरान्त मांगलिक सुनाकर कहा—

"घर ले जाओ। इसका अब कल्याण हुआ ही समझो।"

आपकी वाणी से उसके हृदय मे आशा का संचार हुआ। घर पहुँचा। दस दिन मे उसका बेटा पूर्ण स्वस्थ हो गया। आदिवासी दम्पति के हृदय मे गुरुदेव के प्रति असीम श्रद्धा जाग उठी। सबसे यही कहता कि 'यह तो मर चुका था, महात्माजी के मन्त्र से ही इसे जीवन मिला है।'

आदिवासी दम्पति श्रद्धा से विभोर होकर कृतज्ञता प्रगट करने के लिए कुछ भेंट लेकर आये। लेकिन महात्माजी का पता ठिकाना तो कुछ मालूम नही था अत उसी स्थान पर आ बैठे। जहाँ पहले गुरुदेव ने मांगलिक सुनाई थी। आतुर हृदय लिए प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षा फलवती हुई। महाराजश्री आते हुए दिखाई दिये। आदिवासी दम्पति विभोर हो उठे। चरण पकड कर भेंट सामने रखते हुए बोले—

"बापजी ! आपके लिए टिमरू-चारोली और दस रुपये लेकर आए हैं। खेती पकने पर मक्का भी लाएँगे। इन्हें कृपा करके ले लो।"



महाराजश्री उनकी श्रद्धा से गद्‌गद हो गये। किन्तु भेंट अस्वीकार करते हुए बोले—

"भेंट तो हम लेते नही।"

आदिवासी का दिल बैठने लगा। महाराजश्री ने कहा—

"तुम यदि कुछ देना ही चाहते हो तो आज से जीवन-भर के लिए शिकार, पशु-बलि, मास और मदिरा छोड़ दो। क्या तुम इतना कर सकोगे?"

"क्यो नहीं कर सकेंगे, बापजी! आपने हमारे बेटे की जान बचाई तो हम भी सभी प्राणियो की प्राण-रक्षा करेंगे।"

आदिवासी दम्पति ने निष्ठापूर्वक प्रतिज्ञा-पालन का वचन दिया।

सत्ताईसवाँ चातुर्मास (सं० १९७९) : उज्जैन

रतलाम से विचरण करते हुए आप सारगी पधारे। वहाँ के ठाकुरसाहब जोरावरसिंहजी ने बहुत भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। आपने 'पर-स्त्री-गमन निषेध' पर एक प्रभावशाली प्रवचन दिया। सुनकर लोगो ने 'पर-स्त्री-त्याग' का नियम लिया। इसके बाद 'अहिंसा परमो धर्म.' पर आपका ओजस्वी प्रवचन हुआ। अहिंसा की धारा बहने लगी। ठाकुर साहब ने अपनी रियासत मे मछलियाँ मारने तथा शिकार करने की पाबन्दी (सभी धार्मिक तिथियो, एकादशी, पूनम, अमावस्या जन्माष्टमी, रामनवमी और पर्यूषण के दिनो मे) लगा दी।

इसके बाद ठाकुर जोरावरसिंहजी मिगसर वदी ९ का लिखा एक पत्र आया। उसमे क्षमा प्रार्थना करते हुए लिखा था कि "मैंने परस्त्रीगमन न करने का नियम नहीं लिया था उसका कारण यह था कि क्षत्रिय धर्म में परस्त्रीगमन वैसे ही निषेध है। तथा—

यह विरद रजपूत प्रथम, मुख झूठ न बोले।
यह विरद रजपूत, काछ परत्रिय नहिं खोले॥
यह विरद रजपूत, दान देकर कर जोरे।
यह विरद रजपूत, मार अरियाँ दल मोरे॥
जमराज पाँव पाछा धरे, देखि मतो अवधूत रो।
करतार हाथ दीधी करद, यह विरद रजपूत रो॥

मैं इस कवित्त (छप्पय) को सदा स्मरण रखते हुए अपना जीवनयापन करता हूँ।"

राजमहल की स्त्रियों तथा अन्य महिलाओ ने भी विविध प्रकार के नियम लिए।

विहार करते हुए आप राजगढ पधारे। आपके प्रवचनो को सुनकर मुसलमान भाई भी कहने लगे कि 'ऐसा मालूम पडता है कि इन्हें खुदा ने ही भेजा है।' तीस बुनकरो ने मास-मदिरा का त्याग किया।

अनुपम इकरारनामा

धारानगरी से आप केसूरग्राम पधारे। उस समय सैलाना, महीदपुर, उज्जैन, रतलाम आदि ६० क्षेत्रो के चमार गंगाजलोत्सव पर केसूरग्राम मे एकत्र हुए थे। इनमे मदिरापान की कुटेव सदियो से जड़ जमाए हुए थी। कुछ सुधार प्रेमी श्रावको ने आपश्री से निवेदन किया—

"महाराज! हमें तो अनुग्रह करके आप उपदेश फरमाते ही हैं। यदि चर्मकार बस्ती में पधार कर इन चर्मकारो को भी सदुपदेश दें तो इनका भी उद्धार हो जायेगा। इन्हें आपके सदुपदेश की सख्त आवश्यकता है।"



आपने श्रावको का निवेदन स्वीकार किया। चर्मकार वस्ती मे दो प्रवचन फरमाए। चमत्कारी प्रभाव हुआ। चर्मकारो की एक विशेष मीटिंग (सभा) हुई। दीर्घदृष्टि से विचार किया गया और निम्न इकरारनामा लिखा गया—

पच चमार मेवाडा केसूर

यह इकरारनामा लिखने वाले चमार पंच लुनीवाला दुर्गाजी चौधरी, सकल पच मालवा तथा खाचरोदवाला घासी जी तथा सकल पंच वडलावदावाला वालाजी तथा वडनगर के सरपंच मोतीजी यह चार गाँव के पंच केसूर (धार जिला) मे एकत्र हुए। चपावाई के यहाँ गंगाजल हुआ था। इस समय पूज्यश्री १००८ श्री मन्नालालजी महाराज की सप्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के सदुपदेश से यह प्रस्ताव किया है कि जो मास खायेगा या दारु (शराव) पीयेगा उसका व्यवहार पच तोड देंगे। जाति से छह महीने बन्द रहेगा और ११) रु० दड देना होगा। इस इकरारनामे के अनुसार महीदपुर, उज्जैन, खाचरोद, सुखेडा, पिपलौद, जावरा, मन्दसौर, चित्तौड, रामपुरा, कुकडेश्वर, मनासा आदि ६० गाँवो मे पालन किया जायेगा।

तिथि फाल्गुन वदी ३, सं० १९७८, ता० १३-२-२२
निशानी अगूठा—पच लूनीवाला—दुर्गाजी
—खाचरोदवाला—घासीजी
—वड़लावदावाला—वालाजी पटेल
—वड़नगर वाला—मोतीजी पटेल
—पटेल भेरू केसूर—रूपा पन्ना, केसूर

इस प्रकार ६० गाँवों के चमारो ने मास-मदिरा का त्याग कर दिया।

ये लोग अपनी प्रतिज्ञा मे दृढ रहे। शराव के ठेकेदार को हानि हुई तो उसने सरकारी अधिकारियो से शिकायत कर दी। उनके स्वार्थ की भी हानि थी। अधिकारियो ने चमारो को डराया, धमकाया यहाँ तक कि एक चमार के मुँह मे शराव की वोतल जवरदस्ती उडेल दी, फिर भी उसने नहीं पी, उगल दी। एक स्वर से सभी चमारो ने विरोध किया—

"हम धमकियो से डरने वाले नही है। आप हमारी गरदनो पर तलवार चलवा दे, फिर भी हम गुरुदेव के सामने ली हुई प्रतिज्ञा नही तोडेंगे।"

कितना प्रभाव था गुरुदेव की वाणी मे कि प्रतिज्ञा लेने वाला मेरु के समान अटल हो जाता था।

केसूर से आप इन्दौर होते हुए देवास पधारे। यहाँ के नरेश (जूनियर) सर मल्हार राव वावा साहव ने प्रवचन लाभ लिया। वहाँ से आप उज्जैन पधारे। उज्जैन में महावीर जयन्ती उत्सव मनाया गया। इस उत्सव मे दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सभी भाइयो ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। जैनो के अतिरिक्त, वैष्णव, मुसलमान, वोरा आदि भी चातुर्मास करने का आग्रह करने लगे। लेकिन आपने स्पष्ट स्वीकृति नही दी। वहाँ से आप रतलाम पधारे। रतलाम मे मुनि सम्मेलन होने वाला था। इसलिए पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज, प० रत्न श्री नन्दलालजी महाराज आदि २९ सत विराजमान थे। यहाँ उज्जैन श्रीसघ, दिगम्बर जैन श्री राजमलजी, वावू वशीधर जी भार्गव, आदि आए। चातुर्मास की प्रार्थना यहाँ स्वीकार हो गई।



अनेक स्थानो पर विहार करते हुए आप उज्जैन पधारे। यहाँ मुनि मयाचन्दजी महाराज ने ३३ दिन की तपस्या की। तपस्या की पूर्णाहुति भाद्रपद शुक्ला ९, बुधवार स० १९७९ (दिनाक ३०-८-१९२२) को हुई। इस पावन प्रसग पर उज्जैन के कपडे का कारखाना, प्रेस, जीन तथा कसाईखाना बन्द रखे गये। उस समय की ७०००) रु० दैनिक की हानि उठाकर भी जनरल मैनेजर श्री मदनमोहनजी ने मील बन्द रखा। खानसाहब सेठ नजरअली, अल्लावख्श मिल्स के मालिक सेठ लुकमान भाई ने भी अपनी फैक्ट्री बन्द रखी। मुहर्रम का त्यौहार होने पर भी उन्होंने जातिभोज मे मीठे चावल बनवाए और १०० बकरो को अभय दिया।

यह गुरुदेव के दयामूलक सर्वव्यापी प्रभाव का उदाहरण है।

महाराजश्री का अहिंसा पर प्रभावशाली प्रवचन हुआ। इसमे काजी बजरुद्दीन, उस्ताद हसन मियाँ, मौलाना फैज मुहम्मद, इब्राहीम कस्साब जज साहब, मौलवी फाजिल सादुद्दीन हैदर सबजज मी० चौथे, पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट आदि पधारे। जज साहब ने आपके प्रवचन की भूरि-भूरि प्रशसा की। उसका साराश था।

"मैंने बहुत से भाषण, स्पीच वगैरह सुने हैं, लेकिन मुनि चौथमलजी महाराज साहब ने जो व्याख्यान आज हम लोगो को सुनाया है, उसमे बहुत ज्यादा आनन्द आया। वे इज्जत करने लायक हैं। इनकी बातें याद रखना और उन पर अमल करना आप सबका फर्ज है।

"हमारे सामने जो स्वामी जी महाराज (श्री मयारामजी महाराज) बैठे है, आपने तेतीस उपवास किये हैं। ख्याल कीजिये कि "३३ उपवास" कहना आसान है, लेकिन करना, कितना मुश्किल है। हम लोगो मे ३० रोजे किये जाते हैं, जिसमे रात को खाया जाता है उस पर भी रोजे रखना मुश्किल का मैदान मालूम होता है। स्वामीजी ने दिन मे सिर्फ गर्म पानी से ही गुजारा किया। रात को वह भी नहीं लिया जाता। आपके धर्म मे इसकी मुमानियत है। मैं स्वामीजी का तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। मैंने यहाँ आकर यह सुना कि कसाइयो ने ब-रजामदी खुद बाहमी इत्तिफाक (पारस्परिक मेल) से आज के दिन जानवरो का कत्ल करना व गोश्त बेचना बन्द कर दिया, जिसमे कि सरकार की जानिब से कतई दबाव नहीं किया गया। मुझे इस बात से बहुत ही खुशी हासिल हुई। सरकार तो चोर, पापी, अन्यायी, दुराचारी आदि को चोरी, पाप, अन्याय और दुराचरण करने पर पकड कर दड देती है, लेकिन उससे उतना सुधार नही होता जितना स्वामीजी के व्याख्यान से।"

इसके पश्चात् मौलाना याद अली साहब ने सभा मे खडे होकर जाहिर किया कि स्वामीजी महाराज के व्याख्यान की तारीफ करने के लिए मेरे पास अल्फाज नही है।

दूसरे दिन तीन सौ अपाहिजो को भोजन कराया गया।

अट्ठाइसवाँ चातुर्मास (स० १९८०) इन्दौर

उज्जैन चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री देवास पधारे। देवास के महाराज सर मल्हारराव पवार (छोटी पाती) ने गुरुदेवश्री की बहुत सेवा-भक्ति की। प्रवचन आदि सुने।

एक दिन महाराजा मल्हारराव के मन मे गुरुदेव को आहार-पानी देने का विचार आया। महाराजा ने अपने मन की बात गुरुदेवश्री से कही। गुरुदेव ने कहा—'जैन मुनियो की गोचरी के कुछ विशेष नियम हैं। दोष टालकर अपने नियमो के अनुसार ही आहार-पानी ले सकते हैं।'

महाराजा ने कहा—"मेरा प्राइवेट सेक्रेटरी जैन है। मैंने जैन मुनियो के नियमो की जान-



कारी करली है। मैं आपके नियमो के अनुसार ही भिक्षा दूंगा।" दूसरे दिन गुरुदेव गोचरी हेतु पधारे। एक कमरे मे भोजन का थाल सजाकर रखा था।

गुरुदेव ने कहा—जहाँ भोजन रखा है, हम वहीं जाकर भिक्षा लेंगे। भोजन-गृह मे ले जाया गया। महाराजा स्वयं अपने हाथ से दान देना चाहते थे। गुरुदेव ने छोटा पात्र सामने रखा।

महाराजा ने कहा—"बडा पात्र रखिये। यहाँ भी परिवार बहुत है और आपका शिष्य समुदाय भी बडा है, फिर सकोच क्यो?"

गुरुदेव—"आवश्यकता से अधिक भोजन लेकर हम क्या करेंगे?" अत. छोटा पात्र ही रखा। महाराज ने अपने हाथ से केसरिया चावल दबा-दबाकर पात्र मे भर दिये। गुरुदेव गोचरी लेकर निकले तो महल के द्वार तक महाराजा पहुँचाने के लिए आये। महल के बाहर पहुँचकर महाराजा ने चरणो मे मस्तक रखकर नमस्कार किया तो दोनो हाथ धूल से भर गये।

गुरुदेवश्री ने कहा—"कच्चे पानी से हाथ न धोना।"

महाराजा ने हँसकर नम्रता के साथ कहा—मैंने पहले से ही आपका आचार-विचार मालूम कर लिया है। गर्म पानी भी तैयार है।

महल के बाहर निकलते ही बैंड बजने लगा। गुरुदेव ने कहा—यह क्या?

महाराजा—यह लोग आपश्री को सम्मानपूर्वक अपने स्थान तक पहुँचाने आयेंगे।

गुरुदेव—हम लोग बाजे के साथ नहीं चलते हैं।

महाराजा ने अपने अधिकारियो व बाजे वालो से कहा—आपको वैसे ही स्थान तक पहुँचा आओ।

देवास मे आपश्री कई दिन विराजे। महाराजा सर तुकोजीराव बापू साहेब पंवार (बडी पांति) दीवान राय बहादुर नारायण प्रसाद जो, श्री डी० आर० लहरी एम० ए०, श्री बी० एन० माजेकर वकील, डा० गणपतराव सितोले आदि अनेक सुशिक्षित व्यक्ति गुरुदेवश्री के संपर्क मे आये, प्रवचन सुनते। प्रवचन सभा मे अपार भीड़ होने लगी। पहले कन्यापाठशाला मे प्रवचन होते थे। श्रोताओ की उपस्थिति प्रतिदिन बढती ही जा रही थी। फिर तुकोजी गज के मैदान मे प्रवचन होने लगे। देवास के घटाघर और राजवाडे मे भी कई व्याख्यान हुए। महाराजा की ओर से बडे पेडे की प्रभावना की गई।

देवास के मुसलमान भाइयो मे भी आपश्री के प्रति अत्यन्त भक्ति जगी। उनकी प्रार्थना पर ईदगाह मे आपने प्रवचन दिया। शहर के काजी ताजुद्दीन ने आजीवन मास-मदिरा-परस्त्रीगमन आदि का त्याग किया। अन्य लोगो ने भी अनेक प्रकार के नियम लिये।

देवास से विहार कर आपश्री इन्दौर पधारे। वहाँ की रिवाज के अनुसार सैकड़ो पशुओ का बलिदान होने वाला था। आपश्री को पता चला तो आपने दया व करुणा पर वह हृदयस्पर्शी प्रवचन दिया कि बलिदानकर्ताओं का हृदय पिघल गया। लगभग १५०० पशुओ को जीवन दान मिला।

इन्दौर से रतलाम की ओर विहार किया। मार्ग मे किसानो के आग्रह से १०-१२ दिन हातोद गाँव मे रुकना पडा। डेढ हजार व्यक्ति प्रवचन मे उपस्थित हुए। उन्होंने निम्न नियम लिए। एकादशी और अमावस्या के दिन—

(१) भडभूजे भाड और तेली घानी बन्द रखेंगे।

(२) कुम्भकार (कुम्हार) चाक बन्द रखेंगे।



(३) किसान बैलो को नही जोतेंगे ।
(४) हलवाई भट्टी बन्द रखेंगे ।
(५) सुनार अग्नि सम्बन्धी कार्य नही करेंगे ।

हातोद से अनेक स्थानों पर होते हुए आप रतलाम पधारे। वहाँ पूज्यश्री मुन्नालालजी महाराज के दर्शन किये । फिर वहाँ से सैलाना पधारे और सैलाना से पिपलोदा । पिपलोदा मे प्रतिवर्ष माता के मन्दिर मे एक बकरे का बलिदान होता था । आपके उपदेश से ठाकुर साहब ने वह बन्द करा दिया और स्वय सूअर तथा शेर के अलावा अन्य पशु-पक्षियो का शिकार न करने का नियम लिया ।

पिपलोदा से अनेक स्थानो पर विचरते हुए मदसौर पधारे । जनकूपुरा और बजाजखाना के प्रवचनो से प्रभावित होकर पोरवाल बन्धुओ ने कन्या विक्रय न करने की प्रतिज्ञा ली । एक भाई ने (पिता ने) कन्या विक्रय के लिए कुछ रुपये ले लिये थे, और कुछ लेने बाकी थे । आपश्री के उपदेश से उसका हृदय बदल गया । उसने कहा—"जो रुपये ले लिए हैं वह रुपये भी लौटा दूंगा और अब भविष्य मे कन्या विक्रय का पाप सिर पर नहीं बांधूंगा ।" सुनारो ने चाँदी मे अधिक मिलावट न करने का नियम लिया ।

मन्दसौर से आप पालिया होते हुए नारायणगढ पधारे । वहाँ के जागीरदार हफीजुल्लाखाँ ने आग्रह करके प्रवचन कराया । ठाकुर रणजीतसिंहजी, रघुनाथसिंहजी तथा चैनसिंहजी ने मदिरा तथा परस्त्री का त्याग किया । वहाँ से आप महागढ पधारे । महागढ मे एक प्रवचन सुनकर अमावस्या के दिन किसानो ने हल न जोतने तथा वैश्यो ने दुकान न खोलने और कन्या विक्रय न करने की प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की । ठाकुर भवानीसिंहजी, रणछोडसिंहजी, कालूसिंहजी आदि ने जीवहिंसा का त्याग किया ।

महागढ से अनेक स्थानो पर प्रवचन फरमाते हुए आप इन्दौर पधारे ।

इन्दौर मे सर सेठ हुकमचन्दजी की धर्मशाला में आपश्री को ठहराया गया । व्याख्यान मे जनाब मुशी अजीजुर्रहमानखा बैरिस्टर, इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस तथा जनरल भवानीसिंहजी आदि अनेक उच्च अधिकारी बराबर आते थे ।

यहाँ पर तपस्वी मयाचन्द जी महाराज ने ३५ दिन की तपस्या की । तप के पूर के दिन कसाइयो ने अपनी दुकानें व कसाईखाने बन्द रखे । स्टेट मिल के कन्ट्रेक्टर सेठ नन्दलालजी ने भण्डारी मिल बन्द रखा । ३० हलवाइयो ने स्वत की प्रेरणा से अपनी भट्टियाँ बद रखी । लगभग दो हजार दीनो और याचको को भोजन कराया गया ।

एक दिन 'जीवदया' पर आपका सार्वजनिक प्रवचन हुआ । सुनकर नजर मुहम्मद कसाई ने उठकर भरी सभा मे प्रतिज्ञा की—'मैं कुरान-शरीफ की कसम खाकर कहता हूँ कि आज से किसी भी जीव को नहीं मारूंगा ।' कसाई के इस हृदय-परिवर्तन से सभी चकित रह गए । अन्य लोगो ने भी जीव हिंसा न करने की प्रतिज्ञा ली । श्री नदलालजी मटेवरा की दीक्षा आपके कर-कमलो से सम्पन्न हुई ।

पीपलगाव (महाराष्ट्र) के श्री सूरजमलजी हसराजजी झामड ने दीक्षा में काफी धन खर्च किया ।

इदौर चातुर्मास पूर्ण करके आप तुकोगंज पधारे । यहाँ श्री नेमिचदजी भवरलालजी के आग्रह से माणिक भवन मे ठहरे । प्रात राय बहादुर सेठ कल्याणमलजी की कोठी पर व्याख्यान



हुआ। कोठी शहर से दो मील दूर थी, फिर भी जनता बहुत बडी सख्या मे आई। दो व्याख्यान और देने का आग्रह करने पर आपश्री ने स्वीकृति दी। लाला जुगमन्दिरलालजी जैनी, दानवीर सर सेठ हुक्मचदजी, राय बहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी, श्री नेमिचन्दजी भँवरलालजी आदि सभी दिगम्बर जैन भाई सम्पन्न थे, फिर भी उनमे धर्म के प्रति अच्छा प्रेम था। व्याख्यान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे "आप जैसे २-४ उपदेशक भारत मे हो जायें तो जैन जाति की उन्नति होने मे कोई देर नही लगे।"

सर सेठ हुक्मचन्द जी ने अपने दशलाक्षणी पर्व के व्याख्यानो मे एक बार जनता से कहा था "मेरे बोलने का आप लोगो पर असर नही हो सकता, क्योकि आप भी भोगी मैं भी भोगी। असर होता है त्यागियो का। मैंने एक व्याख्यान श्री चौथमलजी महाराज का सुना है, जन्मभर नहीं भूलूंगा। स्कधक मुनि की कथा मेरे हृदय मे बस गई है। दो-चार व्याख्यान और उनके सुन लू तो मुझे मुनि ही बनना पडे।"

महाराजश्री का प्रवचन सुनने के लिए कुशलगढ के राव रणजीतसिंहजी इन्दौर आए। कुशलगढ मे पधारने और अपने उपदेशामृत से जनता का कल्याण करने की प्रार्थना की।

उन्तीसवाँ चातुर्मास (सं० १९८१) घाणेराव सादड़ी

इन्दौर से चातुर्मास पूर्ण करके आप हातोद की ओर प्रस्थित हुए किन्तु मार्ग मे ही देवास का श्री सघ मिल गया। अत्यधिक आग्रह के कारण आपके चरण देवास की ओर मुड़ गए। देवास मे 'गौरक्षा' और 'विद्या' विषय पर व्याख्यान हुए।

देवास से उन्हेल पधारे तो वहाँ के जागीरदार ने मुसलमान होते हुए भी प्रवचन लाभ लिया और अपनी सीमा मे किसी को भी जीव न मारने देने की प्रतिज्ञा की।

अनेक लोगो का अपने प्रवचन-पीयूष से हृदय परिवर्तन करते हुए भीलवाडा पधारे। यहाँ अनेक सत एकत्र हुए। महावीर जयती का उत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। यही सादडी (मारवाड) के श्री सघ ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई।

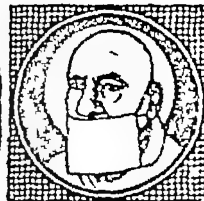
यहाँ से आप बनेडा पधारे। बनेडा-नरेश अमरसिंहजी आपका प्रवचन सुनने आये। प्रभावित होकर नजरबाग में व्याख्यान देने का आग्रह किया जिससे राज-परिवार की महिलाएँ भी लाभ ले सकें। नजरबाग मे प्रवचन होने के बाद बनेड़ा नरेश ने जिज्ञासा प्रगट की—

"महाराज ! क्या जैनधर्म, बौद्धधर्म की शाखा है ?"

महाराजश्री ने समझाया—

"जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है, अपितु एक स्वतन्त्र धर्म है। बौद्धधर्म का प्रारम्भ कुल ढाई हजार वर्ष पहले हुआ है। इसके आद्य प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे, जबकि जैनधर्म अनादि है। इस अवसर्पिणी काल मे इसके आद्य प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव थे जिनके काल की गणना वर्षो मे नही हो सकती। असंख्य वर्ष हो गए हैं उन्हें। चौबीसवे तीर्थंकर महावीर और महात्मा बुद्ध अवश्य समकालीन थे, लेकिन दोनो धर्मों की आचार-विचार पद्धति मे अन्तर रहा। स्वय बुद्ध भी तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ की परम्परा मे पहले दीक्षित हुए थे लेकिन श्रमणचर्या के कठोर नियमो का पालन न कर सकने के कारण अलग हो गए और अपना मध्यम मार्ग खोज निकाला। इस प्रकार जैनधर्म बौद्धधर्म की अपेक्षा बहुत प्राचीन है।"

नरेश ने दूसरा प्रश्न किया—



"जब जीव किसी के मारने से नहीं मरता तो हिंसा किसकी होती है और हिंसा करने वाले को क्यों रोका जाता है ?"

महाराजश्री ने उत्तर दिया—

"आपका सोचना किसी सीमा तक स्वाभाविक है। लेकिन संसारी जीव पाँच इन्द्रियों (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र) तीन बल (मन, वचन, काया), श्वासोश्वास और आयु इन दश प्राणो के आधार पर जीवित रहता है। इन स्थूल प्राणो के छेदन, भेदन, मारन, ताडन आदि से जीव को असह्य वेदना होती है। इसलिए किसी भी प्राणी को मारना या वेदना पहुँचाना हिंसा है। अपनी मृत्यु से प्राणी मरे यह बात अलग है, उसे अवधि से पूर्व शरीर से पृथक् करना हिंसा है। जैसे कोई मनुष्य अपनी इच्छा से आपके पास मे उठकर चला जाय तो कोई बात नही, किन्तु उसे धक्का देकर निकाला जाय तो दुःख होगा। इसलिए किसी प्राणी की हिंसा नही करना चाहिए। और सज्जनो को हिंसा रुकवानी भी चाहिए।

प्रश्न—जैनधर्म पृथ्वी, जल, वनस्पति आदि मे भी जीव मानता है। इनकी रक्षा कैसे हो सकती है ?

उत्तर—जैनधर्म के इन पृथ्वी, जल आदि मे जीव मानने के सिद्धान्त को तो आज विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है। वे भी इसमे जीव मानते हैं। गृहस्थी पूर्णरूप से इनकी हिंसा से तो नहीं बच सकते लेकिन अपनी शक्ति के अनुसार व्यर्थ की हिंसा से तो विरत हो ही सकते हैं।

प्रश्न—तो फिर पूर्णरूप से अहिंसा—दयाधर्म का पालन कौन करता है ?

उत्तर—जैन श्रमण करते हैं। वे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि से सर्वथा दूर रहते हैं। अपने आप भोजन आदि तो बनाते ही नहीं; अपने निमित्त बनाया हुआ भोजन आदि भी नहीं लेते। शुद्ध और प्रासुक भोजन-पानी आदि ही लेते हैं।

प्रश्न—यदि ऐसा भोजन-पानी न मिले तो ?

उत्तर—श्रमण समताभाव मे रहते हैं। वे अग्लान भाव मे उपवास कर लेते हैं। तिरस्कार-पुरस्कार, प्राप्ति-अप्राप्ति मे भी उनकी समता भग नही होती।

प्रश्न—बड़ी कठिन साधना है जैन साधुओं की ? अब आप यह बतावें कि जैनधर्म का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण शास्त्र कौन-सा है ?

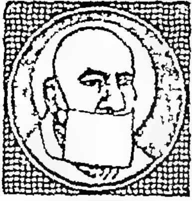
उत्तर—सभी शास्त्र महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन भगवती और प्रज्ञापना अधिक विशाल हैं।

राजा अमरसिंहजी ने और भी कई प्रश्न किये और अपने प्रश्नो का समाधान पाकर धन्य हो गये। गुरुदेव ने चन्दनबाला और अनाथी मुनि की कथा विस्तृत एव रोचक ढग से सुनाई। उसका भी राजा साहब पर बहुत प्रभाव पडा। राजा अमरसिंहजी ने भेंट देने का प्रयास किया तो आपने कह दिया—'हमारे लिए सबसे अच्छी भेंट यही है कि आप दया और उपकार के कार्य करिये।' राजा अमरसिंहजी ने दया विषयक पट्टा लिखा।

आपश्री माडल पधारे तो वहाँ व्याख्यान से प्रभावित होकर लोगो ने मास, मदिरा, तम्बाकू तथा झूठी गवाही देने का त्याग कर दिया।

कोशीथल पधारे तो वहाँ के ठाकुर साहब पद्मसिंहजी के सुपुत्र जुवानसिंहजी ने कितने ही त्याग किये और एक पट्टा दिया।

रायपुर पधारने पर आपकी प्रेरणा से एक जैन पाठशाला की स्थापना हुई। एक दिन व्याख्यान में एक विधवा स्त्री द्वारा भैरव के मन्दिर पर रखा हुआ नवजात शिशु लाया गया तो



उस करुण दृश्य से द्रवित होकर आपने 'विधवा का कर्तव्य' विषय पर विशद और सारगर्भित प्रवचन दिया।

करेडा के ठाकुर साहब के आग्रह पर आपने राजमहल मे व्याख्यान फरमाया। राजमाता ने रात्रिभोजन का त्याग किया और रानीजी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। दास-दासियो ने भी मांस-मदिरा-त्याग आदि कई प्रकार के नियम लिए। ठाकुर साहब उम्मेदसिंहजी ने भी महीने मे २२ दिन शिकार न खेलने का नियम लिया और तालावो मे मछलियाँ मारने का निषेध कर दिया। उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी ली कि वर्ष मे जितने भी बकरे राज्य मे आएँगे सबको अभयदान दूँगा।

थाणा के ठाकुर साहब ने पक्षियो की शिकार का त्याग किया। गोदाजी के गाँव मे रावत लोगो ने मदिरा-मास का त्याग किया।

लसाणी के ठाकुर साहब खुमाणसिंहजी ने चैत्र शुक्ला १३ के दिन किसी भी प्राणी को न मारने, मादा जानवर को कभी भी न मारने और भाद्रपद मास मे शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। साथ ही निरपराधी जीव को कभी भी न मारने का नियम लिया।

तदनन्तर आप देवगढ की ओर प्रस्थित हुए तो ठाकुर खुमाणसिंहजी अपने युवराज कुमार के साथ रियासत की सीमा तक पहुँचाने आये।

इसके बाद आपश्री घाणेराव (सादड़ी) पधारे और चातुर्मास करने लगे।

एक दिन मन्दिरमार्गी-सम्प्रदाय की आनन्दजी कल्याणजी की पेढी के सुयोग्य मुनीम श्री भगवानलालजी आपकी सेवा मे उपस्थित हुए और गाँव के बाहर माता के मन्दिर में प्रतिवर्ष होने वाली पाडा (भैंस का बच्चा) की बलि बन्द करवाने की प्रार्थना की। स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी दोनो सघ के सज्जनो के प्रयत्न एवं महाराजश्री के प्रभाव से वह बलि बन्द हो गई।

इस चातुर्मास मे तपस्वी मुनि मयाचन्दजी महाराज ने ३६ दिन की तपस्या की। पूर्णाहूति के दिन अनेक नगरो के सैंकडो नर-नारियो ने दर्शन और प्रवचन का लाभ लिया एव गरीबो को मिठाई और वस्त्र दान दिये गये।

पर्युषण के पावन दिवस मे फतहपुर के ठाकुर साहब ने प्रवचन लाभ लिया। कई अजैन भाइयो ने उपवासादि किये और मास-मदिरा तम्बाकू पीने आदि के त्याग किये।

एक दिन बूसी (मारवाड) के ठाकुर साहब व्याख्यान सुनने आये। उन्होंने हरिण और पक्षियो का शिकार बिल्कुल न करने और महीने मे १० दिन शिकार न करने का नियम लिया।

सादडी (मारवाड) का श्री सघ सम्पन्न और धर्मप्रेमी है। चातुर्मास मे गुरुदेव की सेवा का बहुत लाभ लिया एव स्वधर्मी बन्धुओ की प्रेमपूर्वक सेवा की।

तीसवाँ चातुर्मास (स० १९८२) : ब्यावर

घाणेराव (सादडी) का चातुर्मास पूर्ण कर आपश्री बाली, खीमेल आदि स्थानो पर विचरण करते हुए पाली पधारे। यहाँ जोधपुर से कैप्टेन केसरीसिंहजी देवड़ा, जागीरदार गलथनी (मारवाड) और ब्रह्मचारी लाल जी, ठाकुर लालसिंहजी, कुँवर कुचामण, व जगदीश सिंह जी गहलोत आदि ने दर्शन प्रवचन का लाभ लिया।

कैप्टन साहब ने कहा—"स० १९७३ मे जोधपुर में कुचामण की हवेली मे आपके उपदेश सुने थे, आपके प्रवचन रूप समुद्र में से अहिंसा के मोती लेकर जागीरी ठिकाणो और अन्य लोगो मे दारू-मास के त्याग का प्रचार कर रहा हूँ। वह अहिंसा के मोती लुटाने मे मुझे बहुत सफलता



मिली है। अनेक स्थानो पर मास-मदिरा, शिकार का व्यवहार वन्द हो चुका है प्रयत्न चालू है, ब्रह्मचारी लालजी महाराज भी इसी मे लगे हैं।"

पालीसघ इस समय दो गुटो में विभाजित था। आप पाली से विहार कर गाँव के बाहर रामस्नेही सम्प्रदाय के रामद्वारा मे आ विराजे। वहाँ भी आपका व्याख्यान सुनने के लिए श्रोता समूह उमड पडा। आपने 'एकता' पर ऐसा ओजस्वी व्याख्यान दिया कि पालीसंघ मे एकता स्थापित हो गई, मनोमालिन्य दूर हो गया। पाली श्रीसघ मे हर्ष की लहर दौड गई। आपको पुन. पाली नगर मे आना पडा। सघ ने इस खुशी मे प्रभावना बाँटी। ३५० बकरो को अभयदान दिया गया। गौओ के लिए घास का प्रबन्ध किया गया। इस एकता के शुभकार्य मे पाली श्रीसघ एव विशेषकर श्री मिश्रीमलजी मुणोत का अथक सहयोग रहा। जैन-अजैन सभी लोगो पर आपके उपदेश का अचूक प्रभाव होता था।

बनी और मगनी नाम की वेश्याओ ने आजीवन शीलव्रत पालने का नियम लिया और सिणगारी नाम की वेश्या ने एक पति-व्रत पालन करने का सकल्प किया।

पाली से विहार करके पोटिले पधारे। वहाँ से विहार करते समय ठाकुर अभयसिंहजी भी पहुँचाने आए। गुरुदेव जब पहले पधारे थे तब ठाकुर साहब ने श्रावण एव भाद्रपद मास मे मास खाने तथा शिकार खेलने का त्याग किया था और अब आषाढ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक शिकार न खेलने का नियम लिया। ठाकुर साहब के छोटे भाई मर्गासिह जी ने भी न स्वय शिकार करने का और न किसी दूसरे को शिकार बताने का नियम लिया।

आपश्री ने वहाँ से सैलावास की ओर विहार किया। मार्ग मे शिकारपुर (मारवाड) के ठाकुर साहब श्री नाहरसिंहजी की प्रार्थना पर प्रवचन दिया।

आपश्री जोधपुर पधारे। वहाँ की जनता आपसे परिचित थी। बड़े-बडे अधिकारी भी प्रवचनो मे आने लगे। आपका एक प्रवचन 'मनुष्य कर्तव्य' पर आहोर की हवेली मे हुआ। उसमे लगभग ५ हजार श्रोता सम्मिलित थे। श्री ठाकुर उगरसिंहजी (सुपरिन्टेन्डेन्ट कोर्ट आफ वार्डस) श्री किशनसिंहजी (होम मेम्बर कौन्सिल स्टेट), श्री हसराज जी (कोतवाल), श्री उदयराज जी (नायब कोतवाल) श्री मोतीलालजी (फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट), श्री रणजीतमल जी (वकील), श्री नवरत्नमलजी (भूतपूर्व मजिस्ट्रेट) श्री केवलचन्दजी (भूतपूर्व मजिस्ट्रेट) डा० अमृतलालजी, श्री सौनी प्रतापनारायणजी बार एटला, श्री काजी सैयद अली, श्री ममूतसिंहजी वकील आदि कई राज्य कर्मचारियो ने उपदेश का लाभ उठाया।

दि० १८ जनवरी १९२५ को 'ओसवाल यगमेन्स सोसाइटी' के सभासदो के आग्रह पर आपने 'एकता' पर प्रेरक उपदेश फरमाया। सभा के सेक्रेटरी राय साहब ने किशनलाल जी बाफना ने निम्न नियम लिए—

(१) मैं अपने स्वार्थ अथवा किसी आकाक्षा से कभी झूठ नही बोलूंगा।

(२) साल भर मे २४ दिनो के अतिरिक्त शीलव्रत पालूंगा।

(३) अपनी रक्षा के अलावा किसी से ईर्ष्या-द्वेषवश क्रोध नही करूंगा।

उनके सुपुत्र डा० श्री अमृतलालजी ने भी तास-चौपड आदि मे समय खराब न करने, वृद्ध विवाह की सम्मति न देने, ओसवाल भाइयो की चिकित्सा बिना फीस करने, महीने मे बीस दिन शीलव्रत पालने आदि के नियम लिए।



ब्रह्मचारी लालजी महाराज (वैदिक) के प्रयत्न से आपने सार्वजनिक प्रवचन जोधपुर के सरदार मार्केट (घटाघर) मे अहिंसा के महत्व पर फरमाया जिसका श्रोताओ पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

जोधपुर से आप झालामड होते हुए कांकेराव पधारे। वहाँ ब्राह्मणो की बारात आई हुई थी। उन्होंने महाराजश्री का नाम सुना तो अत्याग्रह करके व्याख्यान करवाया और बहुत प्रशसा की।

काकेराव से विहार कर विशालपुर विलाडे होते हुए व्यावर पधारे। वहाँ कोशीयल निवासी स्व० सेठ श्री जवाहरलालजी कोठारी के पुत्र प्यारचन्द, वक्तावरमल और उनकी माता कंकूवाई तीनो दीक्षार्थी थे। व्यावर श्रीसघ ने फाल्गुन शुक्ला ३ के शुभदिन बाहर गाँवो के श्री संघो को आमन्त्रित करके दीक्षा उत्सव किया। दोनो भाई जैन दिवाकरजी महाराज के शिष्य बने एव ककूवाई श्री महासती धापूजी महाराज की शिष्या बनी।

उस समय व्यावर मे दिगम्बर जैन महासभा एव खडेलवाल जैन महासभा के अधिवेशन हो रहे थे। उसमे रायबहादुर सेठ कल्याणमल जी इन्दौर, श्री सेठ भैया साहब मन्दसौर, श्री सेठ रिखबचन्द जी उज्जैन—ये सभी दिगम्बर बन्धु आये थे। जैसे ही उनको जैन दिवाकरजी के विराजमान होने की सूचना मिली, वे आपश्री के दर्शन करने आये। परन्तु महाराजश्री रायबहादुर श्री सेठ कुन्दनमलजी कोठारी के बगले पर ठहरे हुए थे अत गुरुदेव के दर्शन न हो सके।

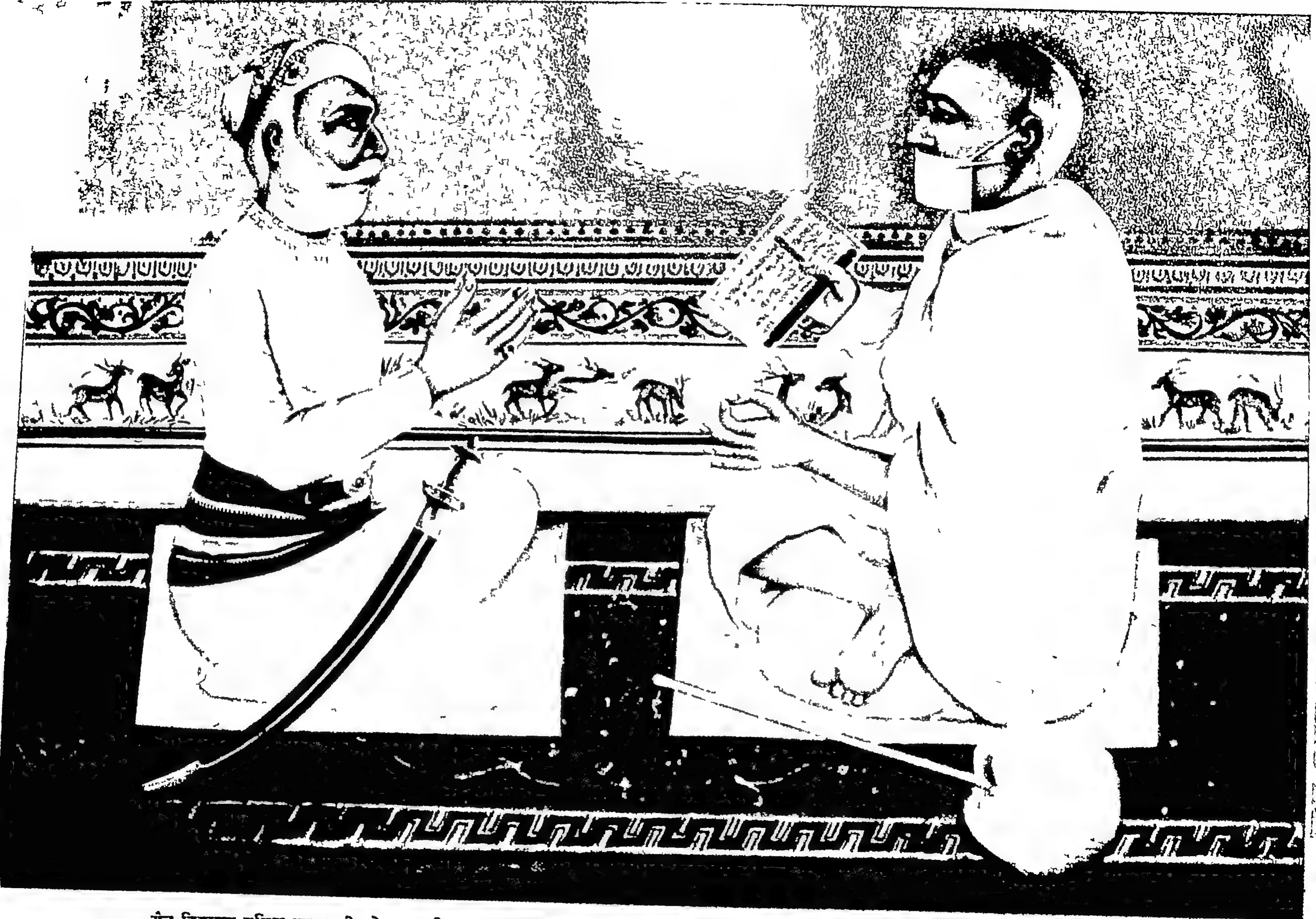
आप व्यावर से आनन्दपुर (कालू) पुष्कर होते हुए अजमेर पधारे। वहाँ एक सार्वजनिक प्रवचन हुआ। उसमें साहबजादा-अब्दुल वाहिद खाँ (सेशन जज), मुन्शी हरविलासजी (रिटायर्ड जज, मेम्बर लेजिस्लेटिव कौन्सिल), मुन्शी शिवचरणजी (जज) आदि राज्य कर्मचारी एवं बहुत बडी सख्या मे जनता ने भाग लिया।

चातुर्मास के दिन निकट आ रहे थे। जोधपुर से चातुर्मास के लिए तार आ रहे थे। जयपुर के श्रावकगण भी विनती कर रहे थे। परन्तु विशेष लाभ की दृष्टि से व्यावर श्रीसंघ को चातुर्मास की स्वीकृति मिली।

अजमेर से विहार करके आपश्री रघुनाथप्रसादजी वकील की कोठी पर ठहरे। वहीं दो व्याख्यान दिये। वहाँ से किशनगढ पधारे। फिर नसीराबाद, मसूदा होते हुए व्यावर पधारे। रास्ते के गाँवो मे अनेक राजपूतो ने शिकार, मदिरा और मांस आदि के त्याग किए।

कोटा सम्प्रदाय के प० श्री रामकुमारजी महाराज अपने शिष्यो सहित जैन दिवाकरजी महाराज की सेवा मे व्यावर चातुर्मास मे रहे। उनकी भावना बहुत वर्षों से गुरुदेव की सेवा मे रहकर विशेष ज्ञान-ध्यान सीखने की थी। उन्होंने इस चातुर्मास मे जैन दिवाकरजी महाराज से ज्ञान सीखा।

इस चातुर्मास मे तपस्वी मुनि मयाचन्दजी महाराज ने ३७ दिन का उपवास गर्म पानी के आधार पर किया। भादवा सुदी १० पूर्णाहुति का दिन था। इस दिन 'तपस्या का महत्व' पर आपका प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। अनेक लोगो ने अनेक तरह के नियम लिए। तपस्याएँ भी खूब हुई। अनेक बहिनो ने चार प्रकार के स्कन्ध (हरी वनस्पति, कदमूल एव रात्रिभोजनत्याग, कच्चे पानी का त्याग और शीलव्रत पालन) की प्रतिज्ञाएँ लीं। व्यावर निवासी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट दानवीर सेठ कुन्दनमलजी ने आगरा के जैन अनाथाश्रम को अनाथ बालको के लिए चार महीने का पालन-पोषण व्यय अपनी ओर से देने का वचन दिया। पारणे के दिन १०१ बकरो को



जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमल जी महाराज हिन्दू कुल सूर्य महाराणा श्री फतहसिंह जी (उदयपुर) को उपदेश प्रदान करते हुए।



अभयदान मिला। दीन-दुखी अपाहिजो को भोजन दिया गया। १,२२,८०० रुपये की राशि श्री सेठ रायबहादुर कुन्दनमलजी ने दान मे निकाली। इसका व्याज भी शुभ कार्यो मे लगाने का वचन दिया।

इस प्रकार चातुर्मास मे काफी धर्म प्रभावना हुई।

इकत्तीसवाँ चातुर्मास (स० १९८३) : उदयपुर

ब्यावर चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री वदनौर पधारे। वहाँ जोधा खटीक और जीवन खाँ मुसलमान ने जीवन पर्यन्त माँस न खाने का और जीव-हिंसा का त्याग किया।

आपश्री देलवाडा मे थे तभी उदयपुर के श्रावक लोग वहाँ आ पहुँचे और उदयपुर क्षेत्र मे पधारने का आग्रह करने लगे। इनकी प्रार्थना स्वीकार हुई। श्रावकगण प्रसन्न हो गए। आपके आगमन का समाचार उदयपुर मे विजली की भाँति फैल गया।

आपकी कीर्ति उदयपुरनरेश हिन्दूकुलसूर्य महाराणा फतेहसिंहजी के कानो तक जा पहुँची। उनके सुपुत्र श्री युवराजकुमार सर भूपालसिंहजी ने सुनी तो कुमार साहब ने डोडी वाले मेहताजी, श्री मदनसिंहजी कोठारी, श्री रगलालजी, श्री कारूलालजी आदि पदाधिकारियो को महाराजश्री के पास भेजा। प्रवचन सुनाने के लिए महलो मे पधारने की विनती की गई। प्रवचन **'सज्जन निवास'** उद्यान के समोद नामक महल मे हुआ। इस प्रवचन मे कई मुख्य अधिकारियो ने लाभ लिया। सदुपदेश से युवराजकुमार भूपालसिंहजी तथा अन्य सभी वहुत प्रभावित हुए। गुरुदेव श्री के उदयपुर पधारने और विहार करने के दिन जीव दया का पट्टा (सनद) लिख कर दिया।

उस दिन का उपदेश अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ।

उसके बाद हिन्दूकुलसूर्य श्री महाराणा फतेहसिंहजी की ओर से सन्देश लेकर श्री फतेहलालजी आये कि 'महाराणा साहव आपका उपदेश सुनना चाहते हैं।'

अपने चौदह शिष्यो सहित गुरुदेव 'शिवनिवास' नामक महल मे पधारे। महाराणा ने भक्तिपूर्वक महाराजश्री का स्वागत किया। महाराणा साहव वोले—

"आपने यहाँ पधारने की वहुत कृपा की।"

महाराजश्री ने उत्तर दिया—

"यह तो हमारा काम है।"

इसके बाद आपने प्रवचन फरमाया। प्रवचन समाप्त होने पर महाराणाजी ने पूछा—

"महाराज साहब ! आप कितने दिन यहाँ और रुकेंगे ?"

"चार-पाँच दिन और रुक सकते हैं अथवा कल भी विहार कर सकते हैं। किन्तु जिस दिन जायेंगे उस दिन का अगता पलवाने की सनद युवराजकुमार ने लिख दी है।" महाराजश्री ने वताया।

महाराणाजी वहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने उद्‌गार व्यक्त किए—

"आपके दर्शन करके मुझे वडी खुशी हुई। मुझे पहले से आपके आगमन की वात मालूम न थी।"

इसके वाद उदयपुर निवासियो ने चातुर्मास की प्रार्थना की।

बिहार से एक दिन पहले सायकाल के समय सलुम्बर के रावतजी ओनाडसिंहजी दर्शनार्थ आए। 'आया हूँ तो कुछ भेंट देना ही चाहिए' कहकर उन्होंने भिण्डर नाम के पशु का शिकार न करने की प्रतिज्ञा की।



पारसोली के रावत लालसिहजी ने भी व्याख्यान सुना।

विहार के एक दिन पहले उदयपुर मे राज्य की ओर से इस प्रकार की घोषणा कराई गई—

"काले चौथमलजी महाराज विहार करेगा सो अगतो राखजो। नहीं राखेगा तो सरकार को कसूरवार होवेगा।"

उदयपुर से विहार कर आपश्री डवोक पधारे तो वहाँ करजाली के महाराज साहव लक्ष्मणसिहजी आपके दर्शन करके धन्य हुए।

फिर अनेक गाँवो मे होते हुए आप रतलाम पधारे। उदयपुर श्रीसघ की चातुर्मास की विनती स्वीकार की।

वहाँ से सैलाना स्टेट पधारे तो वहाँ के सरकार दिलीपसिहजी ने तीन व्याख्यान सुने और वही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। लेकिन चातुर्मास उदयपुर मे निश्चित हो चुका था इसलिए उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई।

पिपलोदा मे आपके पधारने पर 'श्री जैन महावीर मडल' और एक 'जैन पाठशाला' की स्थापना हुई। पिपलोदा दरबार ने भी व्याख्यान श्रवण किया।

जावरा, मन्दसौर आदि गाँवो मे होते हुए आप वडी सादडी (मेवाड) पधारे। महाराज साहव के सार्वजनिक प्रवचन हो रहे थे। भारी सख्या मे हिन्दू-मुस्लिम-बोरा आदि बैठे थे। उसी समय राजराणा दुलहसिहजी कार मे बैठकर कही जा रहे थे। उन्होंने वहुत वडी सख्या मे लोगो को एक स्थान पर शातभाव से बैठे देखा तो ड्राइवर से पूछा—

"यह लोग यहाँ क्यो बैठे हैं? यह आवाज किसकी आ रही है?"

"यह जैन दिवाकरजी श्री चौथमलजी महाराज की आवाज है। उनका प्रवचन जनता सुन रही है।"—ड्राइवर ने बताया।

राजराणा साहव ने तुरन्त कार पीछे मुडवाई और सभा स्थान पर लोगो के समूह के बीच प्रवचन सुनने बैठ गए। अचानक अपने बीच मे राजराणा को देखकर लोग विस्मित रह गए।

राजराणा ने महलो मे भी आपका व्याख्यान करवाया और अभयदान का पट्टा दिया। उनके परिवारी-जनो, सगे-सम्बन्धियो एव कर्मचारी, छडीदार, हजूरिए आदि ने भी वहुत से त्याग किये।

राजराणा दुलहसिहजी आपके प्रवचनो से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने टैक्स देकर मास वेचने वाले कसाई को भी दुकान खोलने की भी आज्ञा न दी।

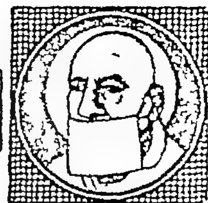
लूणदे के रावतजी जवानसिहजी और उनके सुपुत्र ने आपके प्रवचन से प्रभावित होकर अभयदान का पट्टा दिया।

कानोड मे वहाँ के रावतजी केशरीसिहजी ने आपका उपदेश सुनकर अभयदान का पट्टा दिया।

भिण्डर के महाराज साहव भूपालसिहजी ने तीन प्रवचन सुने और अभयदान का पट्टा दिया। अन्य सरदारो एव प्रजाजनो ने भी वहुत से त्याग किए।

वम्बोरे के रावत मोड़सिहजी ने आपकी सेवा मे अभयदान का पट्टा दिया। इनके सरदारो एव प्रजाजनो (लगभग १७ लोगो) ने अनेक नियम लिए।

कुरावड के रावत वलवन्तसिहजी और वाठरडे के रावत दिलीपसिहजी ने प्रवचनो से



प्रभावित होकर अभयदान के पट्टे दिए। २६ सरदारो और प्रजाजनो ने मद्य, मांस, परस्त्री, शिकार आदि के त्याग किए।

फिर आप अनेक ग्रामो को पावन करते हुए आहिड पधारे। उदयपुर नरेश ने घोषणा करा दी कि 'कल मुनिश्री चौथमलजी महाराज पधारेंगे। इसलिए सभी लोग अगता रखें।'

इस घोषणा को सुनते ही उदयपुर मे नव जागृति का सचार हो गया। आषाढ सुदी ६ के दिन आपके स्वागतार्थ हजारो नर-नारी एकत्र होकर महाराजश्री को उत्साह और हर्ष प्रकट करते हुए समारोहपूर्वक नगर मे लाए।

आषाढ़ सुदी ७ के प्रात काल ही आपके सार्वजनिक प्रवचनो का प्रारम्भ हो गया। बनेड़ा राजा साहब की हवेली में सभी जाति और धर्म के लोग प्रवचन सुनते थे।

अंग्रेज अधिकारी के नौकर का सुधार

एक दिन एक अंग्रेज अफसर का नौकर शाक-भाजी लेने बाजार जा रहा था। हवेली मे भीड को जाते देखा तो रुक गया। वह भी भीड के साथ हवेली मे पहुँचा और आपका प्रवचन सुनने मे तल्लीन हो गया। उसे प्रवचन मे बडा आनन्द आया। अब वह प्रतिदिन व्याख्यान सुनने लगा। प्रवचनो का उस पर प्रभाव भी हुआ। उसकी सभी बुरी आदतें छूट गईं। अपने नौकर के इस परिवर्तन से वह अंग्रेज अफसर चकित रह गया। उसने इस परिवर्तन का कारण नौकर से पूछा तो नौकर ने बताया—

"यह सब जैन मुनि श्री चौथमलजी महाराज की वाणी का प्रताप है। आजकल मैं उनका (लेक्चर) प्रवचन रोज सुनता हूँ।"

अंग्रेज अफसर का हृदय आपश्री के प्रति कृतज्ञता से भर गया।

श्रावण वदी ३ का दिन था। गुरुदेव दशहरे मैदान की तरफ पधार रहे थे। वह अंग्रेज अफसर भी घूमने आया था। कृतज्ञता प्रगट करते हुए बोला—

"मेरा नौकर पहले बहुत बदमाश था। आपकी प्रीचिंग्स (सदुपदेश) को सुनकर बिल्कुल नेक बन गया है। मैं आपका बहुत एहसानमन्द हूँ। थैंक यू सर!"

उस अंग्रेज अफसर का नाम था—सी० जी० चैनेविक्स ट्रेंच, आई० सी० एस०, सेटिलमेण्ट आफीसर तथा रेवेन्यू कमिश्नर।

गुरुदेव के वचनों के अद्भुत हितकारी प्रभाव को देखकर सभी जन दग रह गये। कुछ दिन बाद मि० चैनेविक्स ट्रेंच का एक पत्र गुरुदेवश्री की सेवा मे आया, जिसमे उन्होंने गुरुदेव की प्रवचन शैली की प्रशसा करते हुए दीर्घायुष्य की कामना की थी।

पत्र इस प्रकार था—

Udaipur, 12-10-1926

I have heard much good of Chothmalji Maharaj and believe him to be an influence for good lectures wherever he goes. His preachings seem to exercise much impression on young and old I trust he will long be spared to carry on his beneficient work

(Sd) C G. Chenwiks Trench,
I C S
Settlement Officer and Revenue Commissioner,
Mewar



श्रावण सुदी २ को तपस्वी श्री मोतीलालजी महाराज की ३३ दिन की तपस्या का पूर्णाहुति का दिन था। उस दिन दया, पौषध आदि धार्मिक कार्य खूब हुए, अगता पलवाया गया। पारणे के दिन ४५० बकरो को अभयदान मिला। ३५० गरीबो को मिष्ठान खिलाया गया।

एक दिन भगवानपुरा के रावत सुजानसिंहजी आपके दर्शनार्थ आये।

भाद्रपद शुक्ला ६ को तपस्वी श्री छोटेलालजी महाराज के ५४ उपवास के पारणे का दिन था। जैन दिवाकरजी महाराज, तपस्वीजी महाराज एवं अन्य मुनिगण पारणा लेने को स्थान से बाहर पधार रहे थे कि महाराणा साहब की ओर से शाह रत्नसिंहजी और यशवन्तसिंहजी मुनिश्री को बोले कि 'आप राजमहलो मे गोचरी हेतु पधारें। महाराणा साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' आप, तपस्वीजी एव चार सौ मनुष्यो के साथ शिवनिवास महल मे पधारे। स्वयं महाराणा साहब ने स्वागत करते हुए कस्तूर-गर्म दूध एव श्री एकलिंगजी का महाप्रसाद वहराया। आग्रह-भक्ति पूर्वक वहराने के बाद महाराणा साहब ने बडी प्रसन्नता प्रगट की।

उस दिन गुरुदेव ४ बजे स्वस्थान पर पधारे। अनेक जागीरदार, ठाकुर एवं अन्य-अन्य घरो मे जाने से समय लग गया। बहुत तरह के त्याग-प्रत्याख्यान हुए। ७०० बकरो को अभयदान मिला। गरीबो को मिष्ठान खिलाया गया। आगरा अनाथालय के अनाथ बच्चो के लिए सैंकडो रुपयो की सहायता दी गई।

गुरुदेव के पास इस चातुर्मास मे अनेक जागीरदार, राजकुमार बराबर प्रवचन सुनने और शका समाधान करने आया ही करते थे।

महाराणा साहब के भतीजे, करजाली महाराज श्री चतरसिंहजी, जगतसिंहजी, अभयसिह जी आदि, एव बनेडा राजकुमार श्री प्रतापसिंहजी, करजाली राजकुमार जगतसिंहजी धार्मिक वार्तालाप करने आये।

बनेडा, बदनोर, मैंगा, भदेसर, देलवाडा आदि महाराणा साहब के सोलह और बत्तीस उमरावो और अन्य सरदारो ने एक ही समय नहीं, अनेक बार व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया और अपने-अपने गाँवो मे पधारने की प्रार्थना की।

ब्यावर से सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी सपरिवार और श्री जैन वीर मण्डल के सदस्यगण मुनिश्री के दर्शनार्थ आए। सेठ कुन्दनमलजी ने 'श्री जैन महावीर मण्डल उदयपुर' को फर्नीचर के लिए ३५० रुपये दिये, 'श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम' को ५२०० रुपये का मकान खरीद कर दिया और 'आगरा अनाथालय' के बालको के भोजन के लिए ३००० रुपये का दान दिया। सेठजी उदार थे, उन्होंने परोपकार के बहुत से काम किये।

आश्विन शुक्ला ६ के दिन आपश्री गोचरी हेतु गणेशघाटी गये। हरिसिंह जी ने अपना घर पवित्र करने की प्रार्थना की थी। वहाँ किसी तरह आपश्री को ज्ञात हो गया कि इस हवेली मे प्रति वर्ष दशहरे के दिन बकरे की बलि दी जाती है। आपका हृदय दयार्द्र हो उठा। आपने हरिसिंहजी से कहा—

"मैं यहाँ आया हूँ तो आप मुझे कुछ भेंट दीजिए और मेरी भेंट यही है कि प्रतिवर्ष दशहरे के दिन होने वाली बकरे की बलि बन्द कर दी जाए।"

हरिसिंहजी ने बकरे को अभयदान देने की प्रतिज्ञा की।

उदयपुर की धानमण्डी में भी आप पधारे। लाधुवास की हवेली के सामने विशाल चौक मे व्याख्यान होने लगे।



महाराणा फतेहसिहजी, युवराज भोपालसिहजी ने चातुर्मास मे कई व्याख्यान श्रवण किये। महावीर जयन्ती एव पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने और अभयदान के पट्टे लिखकर दिये।

पुण्य-पाप का वर्णन सुनकर महाराणा साहब ने ६ पुण्यो और १८ पापो के नाम लिखवाकर मँगवाये एवं उनको पास मे रखा तथा अपना जीवन बदल लिया।

महाराणा साहब और युवराजकुमार ने आपसे उदयपुर फिर पधारने की कृपा करने की भावभरी विनती की।

एक दिन सूर्यगवाक्ष महल मे मुनिश्री को आमन्त्रित किया। भक्तिपूर्वक वस्त्र बहराने की इच्छा प्रगट की। महाराणा साहब के पास रहने वालो ने कहा—'आपके लिए नही मँगाया है। वस्त्र भण्डार मे तो एक लाख रुपये से अधिक के वस्त्र रहते ही हैं।' यह सुनने के बाद आपश्री ने अल्प वस्त्र लिया।

उदयपुर के उपनगरो मे भी विहार हुआ। वहाँ भी अनेक रावजी तथा जागीरदारो ने प्रवचन लाभ लिया।

श्री जीवनसिहजी मेहता के सुपुत्र श्री तेजसिहजी ने जीवदया आदि के कार्यों मे बहुत सहयोग दिया।

बत्तीसवां चातुर्मास (वि० सं० १९८४) जोधपुर

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण करके आप बोदला होते हुए भाणपुर (मारवाड) पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब श्री पृथ्वीसिहजी ने आजन्म प्रत्येक एकादशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन शिकार न करने का नियम लिया। वरकाणा पधारे तो वहाँ के ठाकुर साहब ने एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या और सोमवार के दिन शिकार न खेलने की, पार्श्वनाथ जयन्ती के अवसर पर होने वाले मेले मे जीवहिंसा न स्वयं करने और न होने देने की और प्रतिवर्ष ५ बकरो को अभय देने की प्रतिज्ञा की।

इसी प्रकार की प्रतिज्ञाएँ मोखमपुर के ठाकुर साहब श्री हमीरसिंह जी, मीखाडे के कुमार साहब श्री सरदारसिहजी, फतेहपुर के ठाकुर साहब कल्याणसिहजी आदि शासको ने ली।

कोट के ठाकुर साहब धोकलसिहजी और कोरडी के ठाकुर साहब फतेसिहजी ने परस्त्री-त्याग, पौष वदि १० तथा चैत सुदि १३ को शिकार-मासभक्षण आदि का त्याग, भादवा मास मे शिकार त्याग, प्रतिवर्ष दो बकरो को अभयदान देना आदि प्रतिज्ञाएँ ली। भारोडी के ठाकुर साहब श्री अमरसिहजी और यशवन्तसिहजी ने जीवनपर्यन्त जीवहिंसा न करने और मास-मदिरा का सेवन न करने का नियम लिया।

पलाणा मे माहेश्वरी बन्धुओ ने बहुत लाभ लिया। अब्दुल अली बोहरा ने ईद के सिवाय जीवहिंसा न करने का नियम लिया और रहमानबख्श मुसलमान ने जीवन भर जीवहिंसा करने का त्याग किया।

कोठारिया के रावत साहब श्री मानसिहजी सन्ध्या समय आपके दर्शनार्थ आये। अगले दिन प्रवचन सुना। प्रवचन समाप्त हुआ। जिस चौकी पर आपश्री बैठे हुए थे, उसे उठाया गया तो नीचे रुपये पडे मिले। एक साधु ने कहा—'रावतजी ने रखे होंगे।'

रावतजी गुरुदेव के सामने आए तब आपने गम्भीर स्वर मे कहा—

"रावतजी! जैन साधु को रुपयो की भेंट नहीं दी जाती। यदि कुछ देना ही चाहते हो



तो शराब छोड दो। शराब के कारण ही आपकी तीन पीढियाँ जवान आयु मे ही काल का ग्रास बन गई हैं।"

रावतजी ने पक्का मन करके आजीवन परस्त्रीगमन एव शराब का त्याग कर दिया। वे दीर्घायु तक सुखी और स्वस्थ जीवन विताते रहे।

कोठारिया के बाद अनेक गाँवो जैसे आमेट, सरदारगढ, लसाणी, ताल आदि के रावत जी एव ठाकुर साहब ने काफी लाभ लिया। ग्रन्थ के विस्तार भय से यहाँ संक्षिप्त वर्णन किया है, अधिक 'आदर्श मुनि' के गुजराती सस्करण मे है।

सारण, सिरियारी होते हुए सोजत पधारे। वहाँ से पाली पधारे। पाली मे ५ खटीको ने जीवहिंसा का त्याग किया।

महाराजश्री जोधपुर पधारने वाले थे परन्तु महामन्दिर ने महाराज गुमाननाथजी ने महामन्दिर पधारने की प्रार्थना की। वहाँ व्याख्यान सुनकर उन्होने दो प्रतिज्ञाएँ कीं—

(१) जीवनपर्यन्त शिकार नही करेंगे और इस पाप-कार्य के लिए किसी को इशारा भी नहीं करेंगे।

(२) महामन्दिर की सीमा मे कैसा भी पदाधिकारी हो, उसको शिकार नहीं करने दिया जायेगा।

जोधपुर मे चातुर्मास प्रारम्भ हो गया। प्रवचनो की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

एक पडितजी थे। वे विद्वान् तो थे पर स्वरो पर बहुत विश्वास करते थे। घर से चले तो सूर्य-स्वर चल रहा था। सोचा—'आज मुनिजी से ऐसा प्रश्न पूछूँगा कि उन्हें निरुत्तर कर दूँगा।' लेकिन जब तक महाराजश्री के समक्ष पहुँचे चन्द्र स्वर चलने लगा। वहे असमजस मे पडे। बार-बार स्वर देखने लगे। प्रश्न न पूछ सके। महाराजश्री ने हँसकर कहा—

"पडितजी! जो पूछना है, नि सकोच पूछिए। स्वर बदलने से ज्ञान लुप्त नही हो जाता है। आपका चन्द्रस्वर चल रहा है और मेरा सूर्यस्वर है तो इससे न प्रश्न मे अन्तर पड़ेगा, न उत्तर मे।"

पडितजी पर घडो पानी पड गया। श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के चरणो मे सिर झुकाकर चले गए।

अहिंसा का प्रभाव : जलवृष्टि

जोधपुर चातुर्मास की ही एक घटना है। श्रावण का महीना था। आकाश मे एक भी बादल नही, सावन सूखा जा रहा था। लोग चिन्तित हो गए। पानी नही बरसा तो अकाल पडेगा। जोधपुर स्टेट के प्राइम मिनिस्टर ने घोषणा कराई—"कल सभी नर-नारी अपने-अपने इष्टदेवो का स्मरण करते हुए चौबीस घटे विताएँ।"

प्रबुद्ध श्रावक श्री विलमचन्दजी भडारी ने यह घोषणा सुनी तो आकर जैन दिवाकर जी महाराज को भी सुनाई और कहा—

"आप भी लोगो को २४ घटे शाति-जाप की प्रेरणा दें।"

महाराजश्री ने फरमाया—

"जब तक कसाईखानो मे हिंसा होती रहेगी, इष्टदेवो के स्मरण मात्र से कुछ नही होगा। कल कसाईखाने भी बन्द रहने चाहिए। खून भरे हाथो की प्रार्थना कैसे सुनी जायेगी?"



"यह कैसे हो सकेगा ? रात के नौ बजे हैं। अब मैं क्या कर सकूँगा ?"—भडारी जी ने निराश स्वर मे कहा—

"निराश न बनो। अच्छे काम मे लग जाओ। सफलता मिलेगी।" आपने भडारी जी को साहस बँधाया।

"गुरुदेव ! आपके मागलिक पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मागलिक सुनाइये अवश्य सफलता मिलेगी।" भडारीजी ने आशा भरे शब्दो मे अपने उद्गार व्यक्त किये।

गुरुदेव ने मागलिक सुनाकर भडारीजी से कहा—

"जाकर हमारी तरफ से उस घोषणा करने वाले अधिकारी से साफ-साफ कह दो कि हिंसा से मलिन हृदयो की पुकार इष्टदेवो तक कभी नही पहुँच सकती। मूक पशुओ की गरदनो पर छुरी चलाने वालो की प्रार्थना कभी स्वीकार नही होती।"

श्री बिलमचन्दजी भडारी ने साहस करके स्टेट के प्राइम मिनिस्टर से महाराजश्री का सदेश कह दिया। पहले तो प्राइम मिनिस्टर कहने लगा कि अब कुछ नही हो सकता। लेकिन जैसे ही उसकी लेडी (धर्मपत्नी) ने सुना तो उसका हृदय पसीज गया, साहब से बोली—

"एक साधुजी महाराज ने कहा है तो उनकी बात माननी ही चाहिए। आपके हाथ मे कलम है। रात हो गई तो क्या हुआ, हुक्म तो आपका ही चलेगा।"

साहब को भी सद्बुद्धि जागी। उसने दूसरी घोषणा उसी समय कराई—

"जैन मुनि श्री चौथमलजी के सुझाव पर कल सभी कत्लखाने बन्द रहेगे। इस आज्ञा का दृढतापूर्वक पालन होगा।"

हजारो पशुओ के प्राण बच गए।

[कुछ वर्षों बाद श्री बिलमचन्द जी भडारी ने यह बात स्वय सुनाई थी जब हम लोग उनके बगले पर ठहरे हुए थे।]

सयोग अथवा अहिंसा का प्रभाव ! दूसरे दिन ही जमकर जलवृष्टि हुई। मेघो ने शाति की धारा ही बहा दी। जनता और धरती दोनो ही तृप्त हुए। लोगो ने अहिंसा भगवती के जयकारो से धरा-गगन गुँजा दिये।

गुरुदेव ने श्रावण सुदि १४ के व्याख्यान मे कहा कि तुम लोग पर्युषण पर्व मे जीवदया का पालन सरकार द्वारा या अन्य लोगो से करवाते हो, किन्तु तुम स्वय तो अपना धन्धा बन्द करते नहीं। तब जैनेतर लोग जीवदया पालने मे क्यो नहीं आनाकानी करें ? इसलिए सबसे पहले जब तुम धन्धा बन्द रखोगे और फिर अन्य लोगो को बन्द रखने को कहोगे तब तुमको इसमे सफलता मिलेगी।

जैन दिवाकरजी की इस बात का समर्थन जोधपुर मे विराजमान अन्य मुनिवरो ने भी अपने-अपने व्याख्यानों मे किया।

इन व्याख्यानो और गुरुदेव की वाणी से प्रेरित होकर ओसवाल भाइयो ने मिलकर लिखित नियम बना दिया कि—

'पर्युषण के दिनो मे ८ दिन या सवत्सरी अलग-अलग हो तो ९ दिन किसी भी प्रकार का व्यापार नहीं करना। कोई कदाचित् इस नियम का भंग करेगा तो उसको २१ रुपया दण्ड दिया जायगा जो जीवदया खाते मे भरना पड़ेगा।'

यह छपी हुई सूचना सोजत पहुँचने पर वहाँ के सज्जनो ने भी इसका अनुकरण किया। अपने गाँव मे पर्युषण पर्व के ९ दिनो के लिए ऐसा ही नियम बना दिया।



जोधपुर की जैन जनता जब इस कार्य में सफल हुई तब उसके पत्र-व्यवहार से दरबार ने पूरे राज्य के कोने-कोने मे भादवा सुदि चौथ और पचमी को जीवदया पालने का हुक्म जारी कर दिया। जैनियो को पर्युषण मे दफ्तरो मे सवेतन अवकाश भी दिया। इसके लिए जैन कान्फ्रेन्स की तरफ से धन्यवाद का तार भी दिया गया।

जोधपुर मे ओसवालो के हजारों घर है। भारत मे दो-तीन नगर ही ऐसे है जहाँ हजारो की सख्या मे ओसवाल रहते हैं। उसमें भी ओसवालो मे स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, तेरापथी और वैष्णव आदि अनेक सम्प्रदाय है। फिर भी यह निर्णय लिया गया, यह स्पष्ट ही श्री जैन दिवाकरजी महाराज के त्यागपूर्ण जीवन का प्रभाव है।

उस समय जोधपुर मे अनेक सत और सतियाँ विराजमान थे। जोधपुर मे उस समय ६ जगह व्याख्यान होते थे। जैन दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान सभी लोग सुनना चाहते थे। परन्तु अपने सम्प्रदाय के गुरु महाराज का व्याख्यान सुनकर फिर वे लोग जैन दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान सुनने आते थे। इसमे गुरुदेव का व्याख्यान बहुत देर तक चलता था। ग्यारह-साढे ग्यारह बज जाते थे। उपस्थिति भी बहुत होती थी।

'कन्या विक्रय निषेध' विषय पर व्याख्यान सुनकर कन्या विक्रय नहीं करना और करने वाले के यहाँ भोजन भी नही करना—ऐसा नियम बहुत से लोगो ने लिया।

'विद्यार्थी कर्तव्य' पर जो व्याख्यान हुआ उसका और महिलाश्रम मे व्याख्यान हुआ उसका बहुत प्रभाव पडा। महिलाश्रम के लिए ५००० रुपये के दान—वचन वही मिल गए।

भादवा वदी ६ को जोधपुर के तत्कालीन नरेश उम्मेदसिह जी के दादा फतेहसिहजी स्वयं महाराजश्री के दर्शनार्थ आये और श्रद्धापूर्वक चरणो मे सिर झुकाया।

इस चातुर्मास मे ५२ मोची परिवारो ने आजीवन मास-मदिरा का त्याग कर दिया। जैन-धर्म स्वीकार किया, नवकार मत्र, सामायिक सीखने लगे।

तेतीसवाँ चातुर्मास (स० १९८५) : रतलाम

जोधपुर से विहार कर आपश्री सोजतिया गेट के बाहर ठहरे। ठीक सोजतिया गेट के सामने मुनिश्री के व्याख्यान होते थे। यहाँ माली लोगो ने काफी भक्ति की।

वहाँ से कई गाँवो मे विहार करते हुए बडलू (भोपालगढ) पधारे। वहाँ 'जैन रत्न पाठशाला' महाराज साहब के उपदेश से चालू हुई। जो आज 'जैन रत्न विद्यालय' के रूप मे है एव वहाँ एक बोर्डिंग हाउस भी चल रहा है।

नागौर मे सार्वजनिक व्याख्यान हुए, फिर बीकानेर पधारे। बीकानेर मे करीब एक महीने रहे। रागडी चौक मे भी व्याख्यान हुआ।

स्थानकवासी मुनियो का सार्वजनिक प्रवचन यह पहला ही था। बीकानेर नरेश के भाई कर्नल श्री भेरूँसिह जी (बीकानेर) के साला श्री रामसिहजी, बीकानेर के राजकुमार शार्दूलसिहजी आदि ने भी लाभ लिया। बीकानेर से विहार कर कुचेरा होते हुए मेडता पधारे।

मेडता मे आपने 'पापो से मुक्त कैसे हो ?' विषय पर सार्वजनिक प्रवचन दिया। श्रोता समूह में मुस्लिम भाई भी थे। पैगम्बर साहब की बात कहने पर मुसलमानो की आँखो से आँसू बहने लगे। एक मुसलमान भाई तो बहुत जोर से रोने लगा। मुसलमानो पर जिनका ऐसा प्रभाव था तो अन्य जनो का क्या कहना ! उन पर कितना प्रभाव था इसकी तो कल्पना ही की जा सकती है।



अनेक गाँवो मे विचरण करते हुए आपश्री वदनौर पधारे। वहाँ के ठाकुर साहव भूपालसिंहजी ने आपके प्रवचन सुने और जीवदया का पट्टा दिया। इसी प्रकार के पट्टे केरिया के महाराज श्री गुलावसिंहजी, निम्वाहेडा के ठाकुर साहव, भगवानपुरा के कुमारसाहव आदि अनेक शासको ने दिये।

इन सभी ने जीवदया के वहुत काम किये। 'आदर्श उपकार' नामक पुस्तक मे सव वातें विस्तार पूर्वक लिखी हैं।

भगवानपुरा से माडल पधारे। वहाँ ओसवालो के सिर्फ ५ घर थे, फिर भी व्याख्यान मे करीव १५०० की जनसख्या उपस्थित होती थी। महेश्वरियो के १२५ घरो ने कन्या विक्रय बन्द किया और कन्या विक्रय करने वालो के साथ भी कोई व्यवहार नही रखा जायगा—ऐसा प्रस्ताव भी जाति से पास किया।

रानीवास के सरदारो ने पक्षियो और हरिणो का शिकार न करने की प्रतिज्ञा की।

मेजा रावतजी श्री जयसिंहजी, हमीरगढ रावतजी मदनसिंहजी आदि ने भी व्याख्यान सुने और जीवदया के पट्टे दिए।

मेजा से विहार करते हुए गुरुदेवश्री हमीरगढ होकर चित्तोड पधारे। वहाँ के मजिस्ट्रेट यशवन्तसिंह जी आपकी वाणी के प्रभाव से परिचित थे। उन्होने सोचा—'यदि महाराजश्री की वाणी इन वन्दियो को सुनवा दी जाये तो इनका हृदय-परिवर्तन हो जायगा। ये सुमार्ग पर लग जायेंगे।' उनने अपनी यह इच्छा आपश्री के समक्ष रखी। मजिस्ट्रेट की इच्छा स्वीकार करके आपने बन्दियो को उपदेश दिया। वन्दियो पर इच्छित प्रभाव हुआ। अपने दुष्कृत्यो पर उनको बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने भविष्य मे सदा सन्मार्ग पर चलने का सकल्प लिया।

देवास मे भी आपश्री ने इसी प्रकार कैदियो को उपदेश देकर त्याग करवाए थे।

यह था जैन दिवाकरजी का पतितोद्धारक रूप!

चित्तोड प्रवास के वाद आपश्री ओछडी पधारे। ओछडी मे घटियावली के ठाकुर साहब श्री शम्भुसिंहजी, रोलाहेडा के ठाकुर साहव श्री सज्जनसिंहजी, पुढोली के ठाकुर साहव श्री प्रतापसिंह जी और ओछडी के ठाकुर साहव श्री भूपालसिंहजी चारो एकत्र हुए। पुढोली के ठाकुर साहव ने पार्श्वनाथ जयन्ती और महावीर जयन्ती के दिन अपने सपूर्ण राज्य मे जीवहिंसा का निषेध करा दिया। नदी मे से कोई मछलियाँ न पकड सके इसलिए शिलालेख लगवा दिया। घटियावली के ठाकुर साहव ने भी ऐसा ही शिलालेख तालाव के किनारे लगवाया। रोलाहेडा के ठाकुर साहव ने वैसाख, श्रावण, भादवा और कार्तिक चार महीने शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली। महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती तथा जैन दिवाकर जी महाराज के आने-जाने के दिन जीवदया पालने का नियम लिया। शराव पीना तो उन्होंने चार वर्ष पहले ही त्याग दिया था। ओछडी के ठाकुर साहव ने प्रत्येक अमावस्या तथा महावीर जयन्ती एव पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली। इस प्रकार चारो ठाकुरो ने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दृढ संकल्प पूर्वक प्रतिज्ञाएँ ली।

ओछडी से निम्वाडा, मन्दसौर, जावरा, नामली आदि स्थानो पर होते हुए रतलाम पधारे।

रतलाम चातुर्मास मे तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज ने ३८ दिन की तपस्या की। तपस्या की पूर्णाहुति (श्रावण शुक्ला १०) के दिन महाराज श्री ने 'मनुष्य जीवन' पर सारगर्भित प्रवचन फरमाया। इस दिन हलवाई, तेली, कुम्हार, कसाई आदि ने अपना कारोवार वन्द रखा।

कार्तिक सुदी ७ के दिन राय बहादुर दानवीर सेठ कुन्दनमलजी और उनके सुपुत्र लालचन्दजी परिवार सहित दर्शनार्थ आए। सेठजी ने स० १९८२ मे रतलाम श्री सघ को ५२०० रुपये का भवन खरीद कर जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति के लिए दिया था। उनका निरीक्षण करके ११०० रुपये व्यवस्था हेतु और दिये। आगरा अनाथालय को भी ११०० रुपये दिये तथा रतलाम की पाठशाला को ३२०० रुपये दिये।

चौंतीसवाँ चातुर्मास (स० १९८६) जलगाँव

रतलाम चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री पीपलखूटा पधारे। वहाँ के ठाकुर साहब ने जीवदया सबधी पट्टा लिखकर दिया।

उमरणा की रानी साहिबा ने आपका प्रवचन सुनने की इच्छा प्रकट की। प्रवचन सुनकर रानी साहिबा तथा अन्य स्त्रियो ने रात्रि-भोजन का त्याग किया। उस समय ठाकुर साहब सैलाना गए हुए थे। रानी साहिबा ने वचन दिया कि ठाकुर साहब के आते ही चैत सुदी १३ (महावीर जयन्ती) तथा पौष वदी १० (पार्श्वनाथ जयन्ती) के दिनो मे जीवदया पलवाने का फरमान जारी कर दिया जायेगा।

उमरणा से आपश्री छत्रीवरमावर पधारे। वहाँ के ओसवाल समाज मे पुराना वैमनस्य था, वह आपके प्रवचनो से पूर्णरूप से धुल गया।

अनेक गाँवो मे विचरण करते हुए आप दमासी की ओर जा रहे थे। मार्ग मे एक भील ५ बकरो को कसाई को बेचने के लिए ले जाता हुआ मिला। श्रावको ने उन बकरो को छुडाया और सरकारी मवेशीखाने (पिंजरापोल) मे भेज दिया।

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज का सदेश श्रीसघ धूलिया द्वारा प्राप्त हुआ कि 'मुनिश्री से मिलने की इच्छा है।' गुरुदेव की भी बहुत दिनो से मिलने की इच्छा थी। मुनिश्री धुलिया पधारे। दोनो मुनिवरो का मिलन हार्दिक स्नेह भरा रहा।

पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज जैन श्रमणो मे पहले श्रमण थे जिन्होंने सपूर्ण ३२ आगमो का हिन्दी भाषा मे अनुवाद बहुत ही अल्प समय मे पूर्ण किया।

वहाँ से आपश्री अमलनेर पधारे। वहाँ आपकी प्रेरणा से महावीर जयन्ती का उत्सव दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी—तीनो सम्प्रदायो ने मिलकर मनाया।

धरण गाँव मे जैन दिवाकर जी महाराज का व्याख्यान मालीवाडा नामक स्थान पर सार्वजनिक रूप मे हुआ। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगो ने मास-मदिरा आदि दुर्व्यसन त्याग की प्रतिज्ञाएँ ली।

भुसावल मे आपका प्रवचन सुनने के लिए श्रोताओ की भीड तो होती ही थी, इस्लाम धर्म के पक्के अनुयायी मौलवी तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट श्री खान बहादुर भी आते थे। प्रवचन से प्रभावित होकर उन्हें कहना पडा कि 'हम सचमुच भाग्यशाली हैं कि आप हमारे नगर मे पधारे हैं। यदि कुछ दिन आप जैसे सन्तो का सम्पर्क लाभ मिल जाय तो हम लोगो का वैमनस्य मिट जाय और एकता स्थापित हो जाय।' मुस्लिम भाइयो का जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति इतना प्रेम था कि उन्होंने अपनी शवयात्रा का मार्ग बदल दिया जिससे कि आपके प्रवचन मे बाधा न पड़े।

भुसावल से आप जलगाँव पधारे। इस चातुर्मास मे तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने ४० दिन की और तपस्वी श्री विजयराज जी महाराज ने ४४ दिन की तपस्याएँ गर्म जल के आधार पर की। भादवा सुदी ६ को पारणा था। इस दिन नगर के सभी [illegible]



इस चातुर्मास मे आसपास के दर्शनार्थियो ने दर्शन एव प्रवचन का बहुत लाभ लिया। धर्म-ध्यान भी बहुत हुआ।

पैंतीसवाँ चातुर्मास (स० १६८७) अहमदनगर

जलगाँव चातुर्मास के बाद आपश्री भुसावल पधारे। वहाँ सेठ पन्नालालजी की सुपुत्री का विवाह था। विवाहमडप मे व्याख्यान होते थे। वर और वधू के पिताओ की ओर से हजारो रुपयों का दान किया गया। पाठशाला स्थापित की गई।

वहाँ से विहार करके आपने खेडग्राम, पाचोरा, भडगाँव, चालीसगाँव, मनमाड आदि स्थानो को पवित्र किया। सभी स्थानो पर लोगो ने मासाहार त्याग की प्रतिज्ञाएँ ली। मुसलमानो ने जुमे (शुक्रवार) के दिन हल नही चलाने की अनेक गाँवो मे प्रतिज्ञा ली। वाघली मे चमड़े का प्रयोग न करने, बूढ़े पशुओ को न वेचने और तम्वाकू आदि नशीली वस्तुओ का सेवन न करने की प्रतिज्ञाएँ अनेक व्यक्तियो द्वारा ली गईं। लोगो ने अपनी चिलमे तोड़ दी। इसी प्रकार बहुत से गाँवो मे कन्या विक्रय, चोरी, व्यभिचार, मदिरा-पान, मास भक्षण, भाँग-गाँजा आदि का त्याग किया गया।

अहमदनगर के चातुर्मास मे तपस्वी श्री विजयराजजी महाराज ने ४१ दिन की तपस्या की। पूर्णाहुति के दिन हिन्दू-मुस्लिम, माहेश्वरी, पारसी, आदि सभी भाइयो ने सहयोग दिया। आपश्री ने 'जीव दया' पर प्रवचन फरमाया। श्रोताओ मे वहाँ के कसाइयो का मुखिया भी उपस्थित था। स्थानीय सघ ने जीवदया का चन्दा लिखना शुरू किया। लोग अपने-अपने नाम के आगे धनराशि लिखवा रहे थे। आपके प्रवचन का उस कसाई मुखिया के हृदय पर इतना प्रभाव पडा कि वह भी उठ खडा हुआ और बोला—

"मेरी ओर से भी २१ रुपये लिख लीजिए।"

लोग उसकी तरफ देखने लगे तव उसने भरे गले से कहा—

> "मैं यहाँ के कसाइयों का मुखिया हूँ। मेरी आप सव लोगो से एक प्रार्थना है कि आप लोग लोभ छोड़ें। अपने वेकार और वूढे पशुओ को कसाइयो के हाथ न वेचें। जव तक आप लोगो का लोभ नहीं छूटेगा तव तक जीव-हिंसा भी वन्द नही हो सकती। आप लोग मेरी वात पर आश्चर्य न करें। मुझमे यह परिवर्तन महाराज साहव के उपदेश से आया है।"

कसाई की बात सुनकर सभी दग रह गए।

जैन दिवाकरजी का प्रवचन इतना प्रभावशाली होता था कि पाषाण-हृदयो से भी करुणा के स्रोत फूट पडते थे।

पाँच मोची परिवारो ने भी आजन्म मास-मदिरा का त्याग किया।

'ओसवाल निराश्रित सहायता फड मे १५००० रुपये की राशि एकत्र हुई और आपश्री के प्रवचनो से मृत्यु-भोज की प्रथा वन्द हो गई।

अहमदनगर मे 'जैन शिक्षा' सस्था की स्थापना हुई, ४० विद्यार्थी भी पढने लगे।

सतारा श्रीसघ सतारा के लिए विनती करने आया। माघुमाषा मे शेष काल के लिए स्वीकृति दी।

छत्तीसवाँ चातुर्मास (स० १६८८) : वम्वई

अहमदनगर चातुर्मास पूर्ण करके भिगार कैंप पधारे। वहाँ के मुसलमानो ने अपने मौहल्ले



मे व्याख्यान करवाया, जिससे उनकी महिलाएँ भी लाभ ले सकें। बहुत बड़ी संख्या मे मुसलमान भाई व्याख्यान मे सम्मिलित हुए। कइयो ने त्याग लिए। काजी ने आपकी बहुत प्रशसा की।

वहाँ से कई स्थानो पर विचरते हुए आपश्री पिपल गाँव पधारे। वहाँ एक भाई के पास सैंकडो ही बकरे थे। उसने कसाई को बकरे न बेचने की प्रतिज्ञा ली।

सतारा मे आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर अनेक लोगो ने दुर्व्यसनो का त्याग किया। वकील एव अग्रगण्य लोगो ने सार्वजनिक प्रवचन करवाए। कई शिक्षित लोगो ने मास-मदिरा का त्याग किया। ईनामदार साहब ने आजीवन मासाहार छोडा और भाऊराव पाटिल ने आजीवन कटु-भाषण न करने की प्रतिज्ञा ली।

आपका प्रवचन एक दिन हो रहा था। उसी समय एक व्यक्ति एक पिंजडे मे ५०-६० चूहे लेकर जा रहा था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह इन चूहो को मारने ले जा रहा है। समझा-बुझाकर लोगो ने उन चूहो को अभयदान दिलवाया।

भाऊराव पाटिल ने आपका प्रवचन सर्वजातीय बोर्डिंग मे कराया। सदुपदेश सुनकर विद्यार्थियो ने मास-मदिरा का जीवन-भर के लिए त्याग किया।

पूना मे आपने फर्ग्यूसन कालेज मे प्राकृत विद्यार्थियो के लिए रायपसेणीय सूत्र के रहस्य पर प्रवचन दिया। प्राध्यापको को कहना पडा कि 'आपने एक घटे मे जितना विशद विवेचन किया है, उतना हम भी नही कर सकते।'

चिंचवड मे आपके प्रभावशाली प्रवचन से प्रभावित होकर एक मुसलमान भाई ने अपना प्रेम प्रदर्शित किया—'यदि ये पुण्यशाली महात्मा यहाँ चातुर्मास करें तो मैं सारा खर्च सहन करने को तैयार हूँ।'

चिंचवड से आप कादावाड़ी पधारे। वहाँ तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज २१ दिन की तथा तपस्वी श्री विजयराजजी महाराज ने १३ दिन की तपस्याएँ कीं। पूर्णाहुति के दिन १९ गायो को अभयदान दिया गया। सतारा, जालना, बम्बई सघ ने चातुर्मास की विनती की। कादावाड़ी मे महावीर जयन्ती बहुत धूमधाम से मनाई गई। अनेक जीवो को अभयदान मिला। बालिकाओ के सवाद हुए।

बम्बई-कादावाड़ी से कोट, चिंचपोकली, दादर, शान्ताक्रुज, विलेपार्ले आदि उपनगरो मे आप पधारे। इन सभी उपनगरो मे आपके कई व्याख्यान हुए। विलेपार्ले सघ ने गाधी चौक मे आपका सार्वजनिक प्रवचन रखा, जिसमे जैन-अजैन भाइयो ने बहुत बड़ी सख्या मे उपस्थित होकर वाणी का लाभ लिया। आपके प्रवचनो की बम्बई नगर मे धूम मच गई। घाटकोपर मे आपने 'आत्मोन्नति' पर सार्वजनिक प्रवचन दिया। जैन-जैनेतर सभी भाइयो ने बडी सख्या में उपस्थित होकर आपकी अमृतवाणी का लाभ लिया। जैन प्रकाश मे 'दरिद्रता का नग्न नृत्य' नामक अपील छपी थी। जिसमें गरीबो की सहायता के लिए आह्वान था। उस सन्दर्भ मे गरीब भाइयो के लिए इस व्याख्यान मे अच्छी राशि मे चन्दा एकत्र हुआ।

चिंचपोकली के स्थानक मे कच्छी बीसा ओसवाल स्थानकवासी जैन पाठशाला के विद्यार्थियो को आपश्री ने 'सत्य की महिमा' पर उपदेश फरमाया। आप पनवेल पधारे। वहाँ २२ दिन धर्मोद्योत करके पुन आषाढ सुदी १ को चातुर्मास हेतु आप बम्बई (कादावाडी) मे पधारे। जनता ने बड़े उत्साहपूर्वक स्वागत किया। बम्बई श्रीसघ ने स्थानक के पास ही खुले मैदान मे सभामडप



की व्यवस्था की। वहाँ सभी जातियो के भाई आते और प्रवचन लाभ लेते। लोग दूर-दूर उपनगरो से भी आते। पर्युषण के दिनों मे तो त्याग तपस्याएँ खूब हुईं।

७ वर्ष के बाद वम्बई सघ की गुरुदेव के चातुर्मास कराने की इच्छा पूर्ण हुई थी। वम्बई के लोगो मे भारी उत्साह था। तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने अभिग्रह सहित ३४ दिन की तपस्या की। उस अवसर पर भी वहुत धर्मध्यान हुआ। वहुत से जीवो को अभयदान और हजारो केंकडो को जीवनदान मिला। जैन सघ ने एक निवेदन किया था—'वम्बई में रहने वाले प्रत्येक वहन-भाई विद्वान् मुनिश्री की अमृतवाणी का लाभ लेकर आत्मकल्याण करे।'

वम्वई के सुप्रसिद्ध जौहरी सूरजमल लल्लुभाई आपके दर्शनार्थ प्रतिदिन आते थे। एक दिन उनके साथ वौद्ध धर्म के अग्रगण्य विद्वान् नाइडकर भी आए। आपसे धर्मचर्चा करके वहुत प्रभावित हुए। इसी प्रकार गुजरात मे भिक्षुराज के नाम से प्रसिद्ध प्रखर देशभक्त माणिकलाल कोठारी ने भी आपका प्रवचन सुना और भूरि-भूरि प्रशसा की। देशभक्त वीर नरीमान ने भी आपके दर्शन का लाभ लिया।

१५ नवम्वर, १९३१ को आपका प्रवचन लेमिंग्टन सिनेमा-गृह मे हुआ—विषय था 'मानव कर्तव्य'। प्रवचन-समाप्ति पर प्रसिद्ध विद्वान् प० लालन ने अपने उद्गार व्यक्त किये—'महाराजश्री का प्रवचन सुनकर मैं हर्ष से भर गया हूँ। आपश्री अपने आपको भगवान महवीर का चौकीदार मानते हैं लेकिन वास्तव मे ये भगवान के वायसराय हैं।'

युवा जिज्ञासा प्रौढ़ समाधान

एक दिन कुछ युवक कादावाडी स्थानक मे आये। उनका आगमन ही उनकी आध्यात्मिक विषयो की ओर रुचि का परिचायक था। नमन-वन्दन करके वैठ गए। वे कई वार आपका प्रवचन सुन चुके थे और प्रभावित हो चुके थे। उन युवको ने जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा—

"महाराज साहव! आपकी वक्तृत्व शैली वडी प्रभावशालिनी है। सुनने वालो मे आत्म-स्फुरणा जागृत होती है। लेकिन आप लोगों का अधिकाश समय तो पदयात्रा मे ही चला जाता है। यदि जैन सन्त वाहनो का उपयोग करें तो वहुत लोगो का कल्याण हो सकता है, फिर आप लोग वाहनो का प्रयोग क्यो नही करते?"

महाराजश्री युवको की वात सुनकर प्रसन्न मुद्रा मे उन्हें मर्यादा का महत्व समझाते हुए वोले—

"यह जैन श्रमणो की मर्यादा है। मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। जिस प्रकार मर्यादा मे तट-सीमा मे वहती हुई नदी जन-जन का कल्याण करती है और मर्यादाहीन होकर भयकर विनाश कर देती है, उसी प्रकार साधु-जीवन भी है। मर्यादा-सूत्र मे वँधी पतग आकाश मे उडती है और सूत्र टूटते ही जमीन पर गिर जाती है, उसी प्रकार मर्यादाहीन साधु भी अपने उच्च स्थान पर नही रहता।

"वाहनो के प्रयोग न करने से अन्य भी लाभ हैं कि भारत गाँवो का देश है। वहाँ सव जगह वाहन नही पहुँच पाते। अत· पदयात्रा से ही अधिक जन-कल्याण सभव है। फिर तीव्रगति मे चलने वाले वाहनो द्वारा हिंसा की वहुत सम्भावना रहती है। अनेक जीव पहियो के नीचे दवकर मर जाते हैं। गाय, भैंस आदि वडे पशु भी टकरा जाते हैं, वायुकाय के जीवो की तो अत्यधिक हिंसा होती ही है। इसीलिए महाव्रती श्रमण वाहनो का प्रयोग नहीं करते। यह श्रमण सघ की मर्यादा और तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा है।"



युवको का समाधान हो चुका था। उन्होंने सिर झुका कर कहा—

"समझ गए गुरुदेव ! आपका ज्ञान विशाल है और समझाने का तरीका अति उत्तम।"

सैंतीसवाँ चातुर्मास (स० १९८९) : मनमाड

बम्बई चातुर्मास पूर्ण कर आपश्री नासिक की ओर प्रस्थित हुए। नासिक से कुछ ही दूर पहले सडक पर एक घर के सामने एक भाई खडा था। उसको कम दिखाई देता था, सडक पर चलने वाले लोगो से पूछ रहा था—'हमारे महाराज आने वाले हैं, तुमने देखे हैं क्या ?' थोड़ी दूर पर ही गुरुदेव अपने शिष्यो के साथ पधार रहे थे। उसने एक साधु जी से पूछा तो उन्होंने बताया-'हाँ, गुरुदेव पधार रहे हैं।' उसने वहीं से अपनी भाभी को आवाज देकर कहा—'महाराज साहब पधार रहे हैं, दर्शन करलो।' आवाज सुनकर उसकी भाभी बाहर आई। वह दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति थी। बदन के कपडे कई स्थानो से सिले हुए थे। उसका सारा शरीर ककाल-मात्र था। उसकी ऐसी दीन-दशा देख सतो के हृदय मे दया उमडी। घर के अन्दर जाकर देखा तो भोजन-सामग्री का भी अभाव था। सतो का करुण हृदय द्रवित हो गया। नासिक पहुँचकर अहमदनगर के श्रीमान् ढोंढीरामजी को उस भाई की करुण-दशा लिखाई और साधर्मी वात्सल्य की प्रेरणा दी। ढोंढीरामजी ने अहमदनगर चातुर्मास मे ही मृत्यु-भोज (मोसर) का त्याग करके ५००० रुपये ओसवाल निराश्रित सहायता के लिए निकाले थे। उन्होंने पत्र मिलते ही अपने मुनीम को भेज कर उस भाई के निर्वाह की समुचित व्यवस्था करवा दी। नासिक श्रीसघ ने भी साधर्मी भाइयो की सहायता करना अपना पहला कर्तव्य माना। नासिक मे आपके व्याख्यानो का अधिकारियो पर बहुत प्रभाव पडा। आपका व्याख्यान थिएटर हॉल मे होता था। जैन पाठशाला भी प्रारम्भ हुई।

भगवान या बिम्ब

नासिक से मनमाड होते हुए बीजापुर पधारे। वहाँ पर स्थानकवासी तथा मन्दिरमार्गी जैन समाज मे बहुत मनमुटाव चल रहा था। कुछ मन्दिरमार्गी भाई वितण्डावाद खडा करने के लिए आपके पास आए। उन्होंने प्रश्न किया—

"महाराज ! आप प्रतिमा को भगवान मानते हैं या ?"

आप समझ गए कि ये लोग व्यर्थ का वितण्डावाद खडा करना चाहते है, अत इन्ही के मुख से न्याय होना चाहिए। शान्त गम्भीर स्वर मे आपने प्रतिप्रश्न किया—

"आप लोग क्या मानते हैं ?"

"हम तो भगवान की प्रतिमा को भगवान ही मानते हैं।" उन लोगो ने तपाक् से उत्तर दिया।

"और मोक्ष स्थित भगवान को ?" महाराज श्री ने दूसरा प्रश्न किया।

"वे भी भगवान हैं।" उनका उत्तर था।

अब आपने सूत्र अपने हाथ मे लिया—

"मोक्ष स्थित भगवान और उनकी प्रतिमा मे आपकी दृष्टि से कोई अन्तर ही न रहा क्यो न ? यदि धातु-पत्थर की मूर्ति मे अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि आत्मिक गुणो का सद्भाव है तो हम भी उसे भगवान मान लेंगे और यदि ये गुण नहीं हैं तो प्रतिमा बिम्ब मात्र है और पुद्गल में आत्मिक-गुणो का होना असम्भव है। आप उसे भगवान मानें, हमे कोई आपत्ति नही है। लेकिन आप सब लोग विवेक रखते ही हैं, इसलिए स्वय ही सोच-विचार कर निर्णय कर



लीजिए।" वितडावादी निरुत्तर हो गए। उनके हृदय ने स्वीकार कर लिया कि प्रतिमा भगवान नहीं, बिम्ब मात्र है।

बीजापुर से आप औरगावाद पधारे। वहाँ भी सिनेमाहॉल मे व्याख्यान होते थे। हिन्दू-मुस्लिम सभी लोग बडी संख्या मे आते और प्रवचन लाभ लेते। कई त्याग प्रत्याख्यान हुए।

औरगावाद से आप जालना पधारे। वहाँ एक ऑइलमिल मे आपका सार्वजनिक प्रवचन हुआ। यह स्थान शहर से लगभग एक किलोमीटर दूर था। वहाँ भी हजारो की सख्या मे हिन्दू-मुस्लिम उपस्थित हुए। इस विशाल जन-समूह को देखकर लोग परस्पर कहने लगे कि—'पहले इतने लोग कभी भी व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र नही हुए। ऐसे अपरिचित गाँव मे इतनी बडी सख्या मे लोगों का उपदेश सुनने के लिए आना गुरुदेव के पुण्य और त्याग का प्रभाव है।'

अनेक स्थानो पर भ्रमण करते हुए आप मनमाड (महाराष्ट्र) पधारे। वर्षावास शुरू हो गया। धर्म की धारा बहने लगी।

चुडैल भागी

एक दिन प्रात काल आप बाहर भूमि से लौट रहे थे। एक सकरी गली मे होकर आपके कदम स्थानक की ओर बढ रहे थे। गली के नुक्कड पर ही एक मकान था। इस मकान मे एक जैनेतर परिवार रहता था। घर में काफी शोर-गुल हो रहा था। आपके कदम उसी की ओर मुड़ गए। शोर-गुल का कारण यह था कि उस घर की गृहस्वामिनी चुडैल के प्रकोप से काफी दिन से ग्रसित थी। इस बाधा के कारण वह दुर्बल भी बहुत हो गई थी। इस समय भी चुडैल उसे तग कर रही थी। अनेक जन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने कराए गए, लेकिन चुडैल पर कोई प्रभाव न पडा। वह अह-कार मे भरकर बार-बार एक ही बात कहती थी—'इसने मल-मूत्र त्याग कर मेरा अपमान किया है, अब इसे साथ लेकर ही जाऊँगी।' लोग विवश थे और गृहस्वामी निरुपाय। चुडैल उत्पात करती थी और वे निरीह बने रहते थे।

महाराजश्री के चरण उस घर की ओर मुडे तो चुडैल चीखने लगी—

"जाती हूँ, जाती हूँ। फिर कभी इधर को मुँह भी नही करूँगी।"

उपस्थित जन चकित होकर पूछने लगे—

"अब क्यो जाती है? अभी तक तो इस स्त्री को साथ ले जाने की रट लगाए हुई थी। "अब क्या विशेष बात हो गई?"

चुडैल का भयभीत स्वर निकला—

"किसी मन्त्र-यन्त्र का प्रभाव मुझ पर नही होता, लेकिन ये मुँहपत्ती वाले साधु जो इधर ही आ रहे हैं उनके सामने मैं पलभर भी नहीं टिक सकती। अरे कोई रोको उन्हे। यहाँ मत आने दो।"

अब लोग क्यो उसकी बात मानते! महाराज को क्यो रोकते! तुरन्त महाराज साहब को आदर सहित बुला लाये। अहिंसा के सामने हिंसा नही टिक सकती, प्रकाश के सामने अन्धकार भाग जाता है। घर मे आपके चरण पडते ही चुडैल छूमन्तर हो गई। भूमि पर पडी महिला को आपने मगल पाठ सुनाया। वह सचेत होकर उठ-बैठी। अस्त-व्यस्त वस्त्र ठीक करके गुरुदेव को वन्दन किया। सभी उपस्थित जनो ने श्रद्धा से नत-मस्तक होकर चरण स्पर्श किये।

चुडैल सदा को चली गई थी। गृहिणी स्वस्थ हो गई। पूरा परिवार आपके प्रवचनो मे आने लगा।



बृहत्साधु-सम्मेलन

मनमाड के वर्षावास मे वम्बई के स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के अग्रगण्य पदाधिकारी श्री वेलजी लखमशी नप्पू, दुर्लभजी भाई जौहरी आदि ने आपको अजमेर मे होने वाले बृहत्साधु-सम्मेलन मे पधारने का निमत्रण दिया। उस पर आपने अपनी स्वीकृति दे दी। लेकिन इस सम्मेलन से पहले अपने सम्प्रदाय के साधुओ का सम्मेलन आवश्यक समझा गया। इस सम्मेलन का स्थान भीलवाडा निश्चित हुआ।

जैन दिवाकरजी महाराज मनमाड चातुर्मास पूर्ण करने के पश्चात् धूलिया आदि स्थानो को पवित्र करते हुए भीलवाडा पधारे। अन्य सन्त पहले ही आ चुके थे। पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज, भावी पूज्यश्री खूबचन्दजी महाराज भी उपस्थित थे। अजमेर सम्मेलन मे भाग लेने वाले सन्तो का चुनाव हुआ। उनमे आप भी थे।

भीलवाडे से अनेक नगरो मे होते हुए आप व्यावर पधारे। वहाँ सम्मेलन मे भाग लेने के लिए पजाव, काठियावाड, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तो से मुनिराज पधारे हुए थे। सभी के साथ आपका प्रेम वात्सल्य रहा। फिर आप अजमेर पधारे।

अजमेर के वृहत्साधु-सम्मेलन मे आपने अपने सम्प्रदाय के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया। सम्मेलन की प्रत्येक कार्यवाही मे उचित राय देते रहे। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दोनो सम्प्रदाय भी आपकी प्रेरणा से ही एक हुए। इस सम्मेलन मे आपकी समन्वयकारी दृष्टि ही प्रमुख रही।

साधु-सम्मेलन समाप्त होने के वाद कान्फ्रेंस के खुले अधिवेशन मे आपने जैन समाज मे फैली कुरीतियो पर प्रहार किया। जैन समाज मे जागृति लाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर वल दिया। अनमेल-विवाह, फिजूलखर्ची, दहेज आदि प्रथाओ से होने वाली हानियो पर प्रकाश डाला।

अड़तीसवा चातुर्मास (स० १९९०) . व्यावर

अजमेर से आप किशनगढ पधारे। तत्कालीन नरेश श्री यज्ञनारायणसिंह जी ने आपका प्रवचन सुना। प्रभावित होकर राज्य भर मे वैसाख वदी ११ तथा चैत सुदी १३ को अगता पलवाने का वचन दिया। दरवार ने आहार और वस्त्र वहराने की भावना प्रकट की। सूर्यास्त का समय निकट होने मे आहार तो नही लिया किन्तु दरवार की उत्कृष्ट भावना देखकर थोडा वस्त्र लिया।

यहाँ श्री जैन सागर पाठशाला चल रही थी। मुनिश्री ने छात्रो की परीक्षा ली। उसमे हिन्दू, मुसलमान, हरिजन आदि की छूआछूत रहित पढाई और जैनधर्म के प्रति छात्रो का पूज्य भाव देख कर मुनिश्री ने प्रसन्नता प्रकट की।

अनेक गाँवो मे विचरण करते हुए चातुर्मास के लिए व्यावर पधारे। रायली कम्पाउण्ड मे आपका चातुर्मास हुआ। तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने यहाँ भी तपस्या की। अच्छा धर्मध्यान हुआ। सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी कोठारी, सेठ कालूरामजी कोठारी, सेठ सरूपचन्दजी तलेसरा, श्री [illegible]जी टोडरवाल, श्री छगनमलजी बस्तीमलजी, श्री चाँदमलजी कोठारी, सेठ अभयराज जी [illegible], श्री पूनमचन्द जी [illegible] आदि ने धर्मध्यान का बहुत लाभ लिया।



पुण्यलाभ या मर्यादा-पालन

व्यावर चातुर्मास की ही घटना है। एक दिन एक तेरापंथी श्रावक ने आपके पास आकर एक कुटिल प्रश्न किया—

"महाराज ! आप तो पुण्य का बहुत उपदेश देते हो। फिर अपने पात्र मे से किसी विस-भोगी याचक को अन्न-जल आदि देकर पुण्यलाभ क्यो नही करते ?"

श्री जैनदिवाकरजी उस श्रावक की कुटिलता समझ गए। आपने उससे प्रतिप्रश्न किया—

"श्रावकजी ! पहले तो आप एक वात वताइये, यदि कोई साधु-साध्वी आपके आचार्य कालूगणी के दर्शन करे तो उसे पुण्य होगा या पाप ?"

"पुण्य ही होगा।"

"तो फिर वरसात के महीनो मे विहार कर या वाहनो का प्रयोग करके वे अधिकाधिक और शीघ्रातिशीघ्र पुण्यलाभ क्यो नही करते ?"

"यह तो मर्यादा है।"

"क्या मर्यादा का महत्व पुण्यलाभ से अधिक है ?"

"हाँ महाराज ! मर्यादा सर्वोपरि है। उसका पालन अवश्य होना चाहिए। मर्यादा पर ही तो जिनशासन टिका हुआ है।"—श्रावक ने मर्यादा का महत्व स्वीकार कर लिया।

अब आपने उस श्रावक के मूल प्रश्न का उत्तर दिया—

"श्रावकजी ! आप स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर दे चुके है। पुण्यलाभ से बढकर आपने मर्यादा को वताया है। भूखे को अन्न-जल देने से पुण्यलाभ तो होता है, लेकिन यह साधु-मर्यादा के विपरीत है।"

श्रावकजी निरुत्तर हो गए।

चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आप जैन गुरुकुल व्यावर मे पधारे। साथ मे पडित मुनि श्री मणिलालजी भी थे। गुरुदेव ने ब्रह्मचारियो को सारगर्भित उपदेश दिया। धर्मशास्त्र की परीक्षा ली और सतोष प्रगट किया।

जब आप बदनौर पधारे तो सरकारी स्कूल मे आपके प्रवचन होने लगे। चौथे दिन वहाँ के ठाकुर साहब सुनने आए। महल मे भी व्याख्यान देने की प्रार्थना की जिससे रानियाँ भी लाभान्वित हो सकें। महल मे प्रवचन हुआ। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर सदा से होने वाली पाडा (भैंस का बच्चा) की बलि को तुरन्त बन्द करवा दिया गया। ठाकुर साहब ने पुन. एक व्याख्यान सुना तथा अभयदान का पट्टा लिखकर दिया।

आप उदयपुर पधारे तो महाराणा ने अगता पलवाया, प्रवचन सुना और चातुर्मास वही करने की प्रार्थना की।

उन्तालीसवा चातुर्मास (स० १९९१) : उदयपुर

स० १९९१ का चातुर्मास उदयपुर मे घटाघर के निकट बनेडा नरेश की हवेली मे हो रहा था। उदयपुर के महाराणा ने भी कई बार आपके प्रवचनो का लाभ उठाया। तपस्वी छोटेलालजी महाराज की तपस्या के पारणे के दिन सारे नगर मे अगता पलवाया गया और सैकडो बकरो को अभयदान मिला।



हृदय-रोग का आध्यात्मिक उपचार

एक वार प्रवचन मे अलवर निवासी डा० राधेश्याम जी भी उपस्थित थे। प्रवचन समाप्त होने पर भाव-भरे कठ से कहने लगे—

"उपस्थित सज्जनो ! मैं ९ वर्ष से हृदय-रोग से पीडित था। स्वयं भी डाक्टर हूँ इसलिए चिकित्सा मे कोई कमी न रखी। फिर भी कोई लाभ न हुआ। रात के ग्यारह वजे से दो वजे तक निश्चेष्ट पडा रहता था। अलवर महाराज ने भी वहुत-सी विदेशी दवाइयाँ मँगवाई लेकिन सब वेकार। मरने का विचार किया लेकिन उसी रात ६ फरवरी, १९३४ को रात को मुझे स्वप्न मे ऐसा लगा, जैसे कोई कह रहा था—'क्यो व्यर्थ ही इधर-उधर भटकता है ? कुछ नहीं होगा। जैन मुनि चौथमलजी महाराज की शरण मे जा। वीमारी का नाम-निशान भी न रहेगा।' प्रात होते ही मैंने महाराजश्री का पता पूछा और चित्तौडगढ जा पहुँचा। दर्शनमात्र से ही मैं नीरोग हो गया और अब पूर्ण स्वस्थ हूँ। आप लोगो का सौभाग्य है जो वार-वार आपको महाराजश्री के दर्शन प्राप्त होते हैं।"

ऐसे ही दिव्य प्रभावो के लिए एक कवि ने कहा है—

कहने की जरूरत नहीं आना ही वहुत है।
इस दर पै तेरा शीश झुकाना ही वहुत है॥

साहित्य-रचना कव ?

जैन दिवाकरजी महाराज की प्रतिभा वहुमुखी थी। वे जितने कुशल वक्ता थे उतने ही सिद्धहस्त रचनाकार। गद्य-पद्य दोनो मे उनकी समान गति थी। उदयपुर के श्रावको को उनकी वहुमुखी प्रतिभा को देखकर वहुत आश्चर्य था। एक दिन वे पूछ ही वैठे—

"गुरुदेव ! दिनभर तो आप श्रद्धालु-भक्तो से घिरे रहते हैं, जन जन के कल्याण के उपदेश फरमाते हैं, धार्मिक क्रियाएँ भी करते हैं। फिर आपको समय ही कव मिलता है, जो साहित्यसर्जना कर लेते हैं।"

गुरुदेव ने श्रद्धालु भक्तो की भावना को समझा। उत्सुकता शान्त करते हुए वोले—

"लोग श्रद्धा-भक्ति और स्नेह से प्रेरित होकर मेरे पास आते हैं, उन्हे निराश करना क्या उचित है ? श्रद्धालुओ की शकाओ का उचित समाधान भी श्रमण-जीवन का एक अंग है। रही साहित्य-सर्जना की वात, सो मैं अपने आराम मे कटौती कर लेता हूँ।"

"कटौती कव कर लेते हैं, गुरुदेव !"

"निद्रा कम लेता हूँ। रात्रि मे भी चिन्तन मे समय देता हूँ। जो विचार आते हैं उन्हे मस्तिष्क मे केन्द्रित कर लेता हूँ और फिर दिन के किसी समय कागज पर उतार देता हूँ।"

जैन दिवाकर जी महाराज के समय के सदुपयोग को जानकर श्रद्धालु भाव विभोर हो गये।

एक दिन उदयपुर के महाराणा श्री भूपालसिंह जी शिकार खेलने जयसमुन्द गये। वहाँ एक वडा भारी साँभर दरवार के सम्मुख आया। पास वालो ने कहा—'शिकार कीजिए।' दरवार ने सांकेतिक स्थान पर साँभर के आने पर वन्दूक उठाई किन्तु तुरन्त ही वन्दूक रख दी और श्री गिरधारीलाल जी से वोले—'चौथमल जी महाराज को सूचित कर देना कि मैंने इस जीव को अभयदान दिया है।'

चालीसवाँ चातुर्मास (स० १९९२) . कोटा

उदयपुर चातुर्मास पूर्ण कर आप मन्दसौर पधारे। वहाँ पूज्यश्री खूवचन्द जी महाराज के



पावन नेतृत्व मे मंगलमय धार्मिक महोत्सव हुआ। इसमे सर्वश्री चौथमल जी महाराज, पण्डित श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, पण्डित श्री प्यारचन्द जी महाराज, पण्डित श्री हजारीमल जी महाराज, बडे श्री नाथूलाल जी महाराज, पण्डित श्री हीरालाल जी महाराज, मैं (श्री केवलमुनि जी महाराज) आदि अनेक सन्त एव विदुषी महासती हगामकुंवर जी महाराज, श्री धापू जी महाराज आदि सतियाँ विराजमान थी। सभी के समक्ष श्री चौथमल जी महाराज को चतुर्विध सघ ने 'जैन दिवाकर' की पदवी से अलकृत किया। इस अलकरण से समाज ने अपनी 'गुणिषु प्रमोद' की भावना को ही व्यक्त किया। आप तो अपनी प्रवचन रश्मियो से वैसे भी दिवाकर के समान दीपित थे।

जैन दिवाकर जी महाराज सीतामऊ पधारे। सीतामऊ दरबार, राजकुमार और महारानियो ने प्रवचन सुने। वे बहुत प्रभावित हुए।

माटखेड़ी मे आप पधारे तो गाँववासियो ने मगल-गीतो से आपका स्वागत किया। यहाँ के राव साहब श्री विजयसिंह जी स्वय आपके स्वागतार्थ गाँव के बाहर तक आए। प्रभावित होकर एक प्रतिज्ञापत्र भेंट किया जिसमे महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने का वचन था।

२३ मई, १९३५ के दिन आपके चरण रायपुर (इन्दौर स्टेट) मे पड़े। स्वागत के लिए वहाँ के रावजी आये। उन्होंने भी प्रवचनो से प्रभावित होकर जीवदया का पट्टा दिया।

आषाढ शुक्ला ५ को आप कुमाड़ी पधारे। कप्तान दौलतसिंह जी दोपहर को सेवा मे उपस्थित हुए। प्रवचन से प्रभावित होकर अनेक लोगो ने यथाशक्ति त्याग किये।

स० १९९२ का चातुर्मास कोटा मे हुआ। कोटा के यादघर (क्रोसवेट इंस्टीट्यूशन) मे 'अहिंसा' पर आपका भाषण हुआ। इस समय कोटा नरेश हिम्मत बहादुरसिंह जी महाराज कुमार, मेजर जनरल ओंकारसिंह जी आदि अनेक प्रतिष्ठित-जन उपस्थित थे। कोटा नरेश १० मिनट के लिए सुनने आये और ५० मिनट तक मत्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। कोटा मे चार मास तक धर्म-प्रभावना होती रही।

इकतालीसवाँ चातुर्मास (१९९३) · आगरा

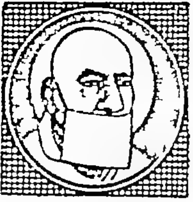
सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा मे पूर्ण कर आप इन्द्रगढ पधारे। इन्द्रगढ के ब्राह्मण समाज मे ४० वर्ष से फूट अपना डेरा जमाए हुए थी। नरेश ने फूट मिटाने का प्रयास किया तो ब्राह्मणों ने स्पष्ट जवाब दे दिया—'अन्नदाता! इस बारे मे आप कुछ भी न कहें।' निराश होकर इन्द्रगढ नरेश चुप हो गये। आपश्री वहाँ पधारे तो प्रवचन सुनने के लिए विशाल जनमेदिनी उमड पडी। ब्राह्मण समाज के दोनो विरोधी दलो के मुखिया भी आते थे। एक दिन आपने 'एकता' पर ऐसा जोशीला भाषण दिया कि दोनो दलो के मुखिया खडे होकर बोले—'सघर्ष मे तो हम बरबाद हो गये। अब तो एकता की इच्छा है।'

आपने दोनो मुखियाओ को अपने पास बुलाकर कहा—

"सच्ची एकता चाहते हो तो एक-दूसरे से हार्दिक क्षमा माँगकर अपने मन का कलुष बाहर निकाल दो और बोलो आज से हम एक हैं।"

दोनो ओर के मुखियाओं ने एक-दूसरे से क्षमा माँगी। उनके हृदय का कलुष मिट चुका था। ब्राह्मण समाज मे एकता हो गई।

इस दृश्य से प्रभावित होकर राज्य के मन्त्री ने नरेश को बम्बई बधाई का तार भेजा—



'यहाँ पर एक जैन साधु आये हैं। इन्होंने अपनी वाणी के जादू से ब्राह्मणों का झगडा मिटा दिया है।'

इस चमत्कार से नरेश भी चकित रह गए। तुरन्त तार भेजा—'साधुजी को रोको। उनके दर्शन के लिए मैं आ रहा हूँ।'

इन्द्रगढ नरेश आए। अपनी बागवाली कोठी मे प्रवचन कराए। इन्द्रगढ़ नरेश ने महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन पशुवध बन्द कराने का वचन दिया।

इन्द्रगढ मे ही एक जिज्ञासु ने आकर निवेदन किया—

"महाराज ! मेरी कुछ शकाएँ हैं। उनके समाधान के लिए अनेक साधु-सतो, दार्शनिको, विद्वानो के पास भटका हूँ। कही भी सतोषजनक समाधान नही मिला। कृपा करके आप ही मेरी शकाओ का समाधान कर दें।"

आपश्री ने फरमाया—

"प्रवचन सुनो, समाधान हो जायगा।"

जिज्ञासु ने प्रवचन सुने और उसकी सभी शकाओ का समाधान हो गया।

वास्तव मे आपके प्रवचन इतने सारगर्भित होते थे कि जिज्ञासुओ की शकाओ का समाधान स्वत. ही हो जाता था।

आप गेंता पधारे तो शासक और जनता सभी ने प्रवचन लाभ लिया। महल मे प्रवचन हुआ तो माँ साहिबा, रानी साहिबा आदि सभी ने प्रवचन सुना। गेंता सरदार श्री तेजसिंहजी और उनके छोटे भाई यशवन्तसिंहजी ने मदिरा का त्याग किया। महावीर जयन्ती तथा पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगता पलवाने का पट्टा दिया।

२६ फरवरी, १९३६ को जैन दिवाकर जी महाराज उणियारा पधारे। सार्वजनिक प्रवचन हुए। लोगों ने कन्या विक्रय का त्याग तो किया ही, साथ ही कन्या विक्रय करने वाले के यहाँ भोजन करने का भी त्याग किया। अनेक ने परस्त्रीगमन तथा तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का त्याग किया। उणियारा नरेश ने उद्गार व्यक्त किए—'हमारा सौभाग्य है कि आपश्री के दर्शन हुए। आपको जैनधर्म के तत्त्वज्ञान का विशद अध्ययन है। आप उसी पर उपदेश फरमावें।' आपश्री ने तत्त्वज्ञान पर ही दो घटे तक प्रवचन फरमाया। प्रभावित होकर नरेश ने महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगते पलवाने का वचन दिया।

७ मार्च १९३६ को आप वणजारी पधारे। प्रवचन सुनने वेडोला के ठाकुर सग्रामसिंहजी भी उपस्थित हुए। ठाकुर साहब ने स्वय शिकार न खेलने और राज्य-भर में प्रत्येक अमावस्या, महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन अगता पलवाने की प्रतिज्ञा ली।

टेकले के मार्ग में एकडा के ठाकुर साहब मोहनसिंह जी मिले। उन्होंने वहीं चैत्र सुदी १३, पौष वदी १०, पर्युषण के आठ दिन और वैसाख के महीने मे अगता रखने तथा शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा ली। उनके कामदार कर्णसिंहजी ने आजीवन हिंसा का त्याग कर दिया।

वाष्प-शक्ति पर आत्मबल का प्रभाव

आपश्री के चरण आगरा की ओर बढ रहे थे। साथ मे अनेक श्रद्धालु भी थे। रास्ता बडा ऊबड-खाबड और ककरीला-पथरीला था। मालूम हुआ कि आगे सडक पर पानी भरा हुआ है। रेलवे लाइन के बगल से सभी चले लेकिन पत्थर पाँवो मे शूल की तरह गड़-गड जाते। पर आप



तो समता-रस के रसिक थे। निस्पृह भाव से चलते रहे। आगे एक रेलवे पुल आया। उसे पार करना जरूरी था।

सहसा पैसेंजर ट्रेन की गर्जना सुनाई पडी। कुछ लोग घबडाकर पीछे लौट गए, कुछ जल्दी-जल्दी पुल पार करने लगे और कुछ ने वही पुल पर ही सुरक्षित स्थान देखकर शरण ले ली। किन्तु आप तो धुन के धनी और निश्चय के पक्के थे। ईर्यापथ शोधते हुए गज-गति से चलते रहे। सीटी वजाती हुई ट्रेन निकट आ पहुँची। लोगो के दिल धक् से रह गए। आपश्री ने अपना एक हाथ ऊँचा किया—मानो वाष्पशक्ति को रुकने का आदेश मिला। ट्रेन अत्यन्त धीमी चाल से चली और रुक गई। ड्राइवर आश्चर्य मे डूव गया—'विना ब्रेक लगाए इजन कैसे रुक गया? यात्रीगण डिब्बों से सिर निकालकर उत्सुकतापूर्वक देखने लगे। आपने पुल पार कर हाथ नीचा किया—जैसे इजन को चलने का संकेत किया। गाडी चलने लगी और शीघ्र ही उसने गति पकड ली।

श्रद्धालु तो चकित थे ही। इजन ड्राइवर और यात्री भी आपके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो गए। सभी ठगे से देख रहे थे। लेकिन आप तो अपनी सहज गति से ऐसे चले जा रहे थे जैसे कुछ हुआ ही न हो।

सवाई माधोपुर के कई भाई साथ मे थे। आज भी उनमे से कुछ प्रत्यक्षदर्शी लोग हैं जो यह जानते हैं।

सवत् १९९३ का वर्षावास आगरा मे हुआ। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' आदि अनेक कार्यक्रमो से प्रभूत धर्म प्रभावना हुई। आपके प्रवचनो से लोगो मे धर्म उत्साह जाग उठा।

आगरा मे लोहामडी के वाद मानपाडा, धूलियागज, वेलनगज आदि मे आपश्री के प्रवचन हुए। सर्वत्र जनता में एक अपूर्व उत्साह उमड पडा था। हजारो अजैन भक्त डाक्टर, वकील, प्रोफेसर आदि भी इन सभाओ मे प्रवचन सुनने आते थे।

आगरा से विहार कर आपश्री हाथरस पधारे। यहाँ जैन समाज के घर कम है, पर अजैन समाज मे वडा उत्साह जाग उठा। वाजार मे आपके प्रवचनो की धूम मच गयी। वहाँ से आप जलेसर पधारे।

चौर कर्म का त्याग

जलेसर में आपश्री का सार्वजनिक प्रवचन हो रहा था। विषय था—चोरी का दुष्परिणाम। श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। प्रवचन समाप्त होते ही एक व्यक्ति ने खडे होकर कहा—

"महाराज! मुझे चोरी का त्याग करा दीजिए। मैं आज से चोरी कभी नहीं करूँगा।"

उसके मुख पर पश्चात्ताप स्पष्ट था। आँखो मे करुणा साकार थी, वे भीगी हुई थी।

श्रोता-समूह ने मुडकर पीछे की ओर देखा तो सभी चकित रह गए। वह व्यक्ति दुर्दान्त हत्यारा और वेरहम था। कितनी डकैतियाँ उसने डाली, गिनती नही। इस समय निरीह वना करबद्ध खडा था।

महाराजश्री ने उसे चोरी का त्याग कराया। लोग आपकी चमत्कारी वक्तृत्व-शक्ति के प्रति श्रद्धानत हो गए। उपस्थित जन धन्य-धन्य कह उठे।

बयालीसवाँ चातुर्मास (स० १९९४) · कानपुर

उत्तर प्रदेश के अनेक क्षेत्रो को स्पर्शन करते हुए कानपुर मे वर्षावास करने से पहले आप लखनऊ पधारे। वहाँ सिर्फ एक ही स्थानकवासी जैन परिवार था। ४० वर्ष वाद लखनऊ मे किसी



स्थानकवासी साधु का पदार्पण हुआ था, अत स्वागत फीका ही रहा। लेकिन आपके व्याख्यानो ने ऐसी धूम मचाई कि लोग वही चातुर्मास करने की प्रार्थना करने लगे, लेकिन कानपुर चातुर्मास निश्चित हो जाने के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकृत नही हुई।

लखनऊ मे प्रवेश करते समय तो आपका स्वागत साधारण रहा था, लेकिन विदाई के समय अपार जनसमूह जयघोष कर रहा था। काफी दूर तक लोग आपको पहुँचाने आए थे।

विष-निर्विष हुआ

वर्षावास हेतु आपके चरण कानपुर की ओर बढ रहे थे। मार्ग मे मुनि सघ को रात्रि विश्रामार्थ रुकना पडा। अचानक समीप के देवी मन्दिर मे करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि 'खेत मे काम करते हुए एक युवक किसान को किसी भयकर सर्प ने डस लिया है। उसे माता के मन्दिर मे लाए हैं। लेकिन पुजारी ने देखते ही उसे मृत घोषित कर दिया। अब उसके परिवारी जन विलाप कर रहे हैं।' आपके हृदय मे करुणा जागी। उस युवक के शरीर को देखने की इच्छा प्रगट की। तुरन्त शरीर वहाँ लाया गया। परिवारीजन कातर स्वर मे पुकार करने लगे—'बाबा जिला दो, बाबा जिला दो।'

आपने अनुमान लगा लिया कि युवक का शरीर सर्पविष से ग्रस्त होकर निश्चेष्ट हो गया है, लेकिन अभी तक प्राण नही निकले हैं। सात्वना देते हुए कहा—

"घबडाओ मत ! मैं भगवान का नाम सुनाता हूँ, शायद यह ठीक हो जाय। अब तुम सब लोग बिलकुल शात हो जाओ।"

सभी शात हो गए। गुरुदेव ने तन्मय होकर भक्तामर के ४१वें काव्य का पाठ शुरू किया—

> **रक्तेक्षणं समद कोकिल कंठनीलं**
> **क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तं।**
> **आक्रामति क्रमयुगेन निरस्त शंकस्**
> **त्वन्नाम नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः॥**

पाठ चलने लगा। ज्यो-ज्यो पाठ चला युवक के शरीर मे चेतना के लक्षण प्रगट होने लगे। युवक ने एक जोरदार वमन किया। सारा विष निकल गया। उसने आँखें खोलीं और उठकर बैठ गया। लोग गुरुदेव के चरणो मे आ गिरे। जय-जयकारो से वातावरण गूंज गया। सोने-चाँदी की वर्षा होने लगी।

आपने गम्भीर स्वर मे कहा—

"हम लोग जैन साधु हैं। कचन-कामिनी से सदा दूर रहते है। आप लोग ये सब माया ले जाइये। हमे यही संतोष है कि युवक के प्राण लौट आये और आप लोगो को शाति मिली।"

सभी लोग आपकी इस निस्पृहता से बहुत प्रभावित हुए।

आपश्री कानपुर पहुँचे और सं० १९९४ का वर्षावास कानपुर मे हुआ।

कानपुर मे ४० वर्षो के बाद स्थानकवासी जैन मुनि का पधारना हुआ था। लाला फूलचन्द जी ने अपनी धर्मशाला मे चातुर्मास कराया।

चातुर्मास के पश्चात् आपश्री ने देहली की तरफ प्रस्थान किया। अनेक गावो-नगरो मे होते हुए आप मथुरा पधारे।

मथुरा नगरी दिगम्बर जैनो का गढ़-सा है। यहाँ अनेकानेक पंडित भी रहते हैं। विश्रान्ति हेतु आप यहाँ ठहरे। दो प्रवचनो की स्वीकृति भी दे दी और शंका-समाधान के लिए समय भी



निश्चित कर दिया। दिगम्बर धर्मशाला मे ही आपके प्रवचन हुए। शका-समाधान के कार्यक्रम से उत्साहित होकर कुछ विशिष्ट विद्वान् एकत्र होकर आए। उन्होंने प्रश्न किया—

"आप स्त्री-मुक्ति स्वीकार करते है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते है, किन्तु साथ ही इस बात को भी मानते हैं कि स्त्री १४पूर्वों का ज्ञान प्राप्त नही कर सकती। फिर उसे केवल-ज्ञान, केवलदर्शन कैसे हो सकते हैं ? जब केवलज्ञान ही नही होता तो मुक्ति कैसे सभव है ? आपका यह सिद्धान्त कैसे ठहरेगा ?"

महाराजश्री के मुख पर गम्भीरतापूर्ण मुस्कान खेल गई। सहज शात स्वर मे बोले—

भद्रजनो ! तुम्हारे इस प्रश्न मे दो प्रश्न निहित हैं—'एक स्त्री मुक्ति और दूसरा १४पूर्वों के ज्ञान के अभाव मे केवलज्ञान न होना। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर सुनिये—

इतना तो आप भी मानते हैं कि मुक्ति आत्मा की होती है, शरीर की नही, और आत्मा न पुरुष है, न स्त्री। पुरुष और स्त्री तो शरीर है और शरीर की रचना नामकर्म के उदय से होती है। नामकर्म अघाती कर्म है, इसलिए केवलज्ञान प्राप्ति मे बाधक नही है। केवलज्ञान के उपरान्त तो मुक्ति का द्वार खुला हुआ है ही।

अब अपने प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर सुनिये—

ऐसा कोई नियम नही है कि १४पूर्वधर ही मुक्त हो सके। आगम की एक गाथा का ज्ञान रखने वाला भी मुक्त हो सकता है। माष-तुष जैसे अनेक मुनियो के उदाहरण आपके शास्त्रो मे भी आते है। यद्यपि बात यह बराबर नही है, फिर भी यह मानें कि १४पूर्वों का ज्ञाता ही मुक्त हो सकता है तो १४पूर्वों का सार नवकार मन्त्र मे है, ऐसा आप लोग भी मानते हैं। इस तरह एक नवकार मन्त्र के माध्यम से स्त्री भी उस सार को जान सकती है।

धर्म-साधना, मनोबल और दृढता की दृष्टि से विचार करे तो भी स्त्री हीन नहीं, वरन् कुछ अधिक ही प्रमाणित होती है। वह एक बार जो मन मे निश्चय कर लेती है, उसे अवश्य पूरा करके ही रहती है। बेले-तेले यहाँ तक कि मास-मास का व्रत-तप वही कर पाती है, जबकि पुरुष हिचकता है। अब आप ही बताइये—बल, वीर्य, उत्थान आदि किसका तेजस्वी है ?

युक्तियुक्त समाधान पाकर विशिष्ट विद्वान् बगलें झाकने लगे। फिर दूसरा प्रश्न किया—

"वस्त्र आदि अन्य उपकरण आप लोग रखते हैं। क्या इससे पाँचवाँ महाव्रत अपरिग्रह दूषित नहीं होता ?"

महाराज श्री ने समाधान दिया—

"परिग्रह को आप लोगो ने सर्वांग दृष्टि से नही समझा। वस्त्र, पात्रो को नही, वरन् मूर्च्छा-भाव को परिग्रह कहा गया है। दिगम्बर मुनि भी पीछी, कमण्डल का परिग्रह रखते हैं। पूर्ण अपरि-ग्रही कोई नही होता। अति आवश्यक उपकरणो को रखने की आज्ञा आगम मे दी गई है। **'मूर्च्छा परिग्रह'** सूत्र के आधार पर आप स्वय ही निर्णय कर लीजिए।"

विद्वान् निरुत्तर हो गये। जिनमे सत्य को समझने की वृत्ति थी, वे सतुष्ट भी हो गये और गुरुदेवश्री की विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।

तेतालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९५) दिल्ली

यह चातुर्मास आपका भारत की राजधानी दिल्ली मे हुआ। यहाँ आपने एक जर्मन प्रोफेसर को आत्मा के बारे मे बडे ही सरल शब्दो में ज्ञान कराया।

जर्मन प्रोफेसर को आत्मा का ज्ञान

दिल्ली चातुर्मास की घटना है। बोर्ड पर सूचना अकित थी—'अध्यात्म व्याख्याता जैन



दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज यहाँ विराजमान हैं।' एक कार रुकी। उसमे एक जर्मन प्रोफेसर था। वह भारत-भ्रमण के लिए आया था। पार्श्व मे बैठे भारतीय सज्जन से पूछा—'बोर्ड पर क्या लिखा है?' उन्होंने अँग्रेजी मे अनुवाद करके सुना दिया। जर्मन प्रोफेसर उतरा। भारतीय सज्जन के साथ महाराजश्री के पास पहुँचा। उस समय महाराजश्री का प्रवचन हो रहा था। श्रोता-समूह मन्त्रमुग्ध-सा सुन रहा था। जर्मन प्रोफेसर ने भारतीय सज्जन के माध्यम से जिज्ञासा रखी—

"आत्मा है या नहीं? है तो उसका क्या प्रमाण है? मुझे थोड़े मे ही बता दीजिए, क्योंकि मैं बहुत जल्दी मे हूँ।"

"क्या इन (जर्मन प्रोफेसर साहब) के पिता जीवित हैं?—महाराजश्री ने प्रतिप्रश्न किया।

"नही, वे जीवित नहीं हैं।"

"जब वे जीवित थे तो क्या करते थे?"

"खाने-पीने, बोलने-चालने आदि के सभी काम करते थे।"

"आपने कैसे जाना कि वे मर गए हैं?"

"उनकी ये सब क्रियाएँ बन्द हो गईं।"

"शरीर के सारे अग-उपागो के ज्यो की त्यो रहने पर भी ये क्रियाएँ बन्द क्यो हो गईं?"

अब जर्मन प्रोफेसर चुप हो गया। वह सोचने लगा। महाराजश्री ने समझाया—

"जिसके आदेश से शरीर द्वारा ये सब क्रियाएँ हो रही थीं, वही आत्मा है। उसके निकल जाने के बाद शरीर ज्यो का त्यो पड़ा रह जाता है। वह अमूर्त, अविनाशी और अतीन्द्रिय है। उसे इन आँखो से देखा नहीं जा सकता, केवल अनुभव ही किया जा सकता है।"

समाधान पाकर प्रोफेसर सन्तुष्ट हुआ। आभार व्यक्त किया—

Alright, I understood it The director of all the activities is the soul or Atman That is an unseen element. I could not get anyone who ought to have clarified such a serious subject in so a simple way Thanks

—बहुत अच्छा, मेरी समझ मे आ गया। जो सभी क्रियाओ का संचालक है, वही आत्मा है। वह आत्मा अदृश्य तत्त्व है। मुझे इतने गम्भीर विषय को सीधे-सादे शब्दो मे समझाने वाला आज तक कोई नहीं मिला। धन्यवाद!

अपनी जिज्ञासा का उचित समाधान पाकर उस जर्मन प्रोफेसर ने जैन दिवाकरजी महाराज के सम्मुख अपना सिर झुका दिया।

उदयपुर के महाराणा भूपालसिंहजी ने दिल्ली चातुर्मास मे आपके दर्शन किए और अगला चातुर्मास उदयपुर मे करने की भाव-भरी प्रार्थना भी की।

चवालीसवाँ चातुर्मास (सं० १९९६) : उदयपुर

दिल्ली चातुर्मास पूर्ण करके आप अलवर पधारे। जगत टाकीज मे प्रवचन हुए। वकील ऐसोसिएशन ने भी प्रवचन कराया। अलवर नरेश श्री तेजसिंहजी प्रवचनों से प्रभावित हुए। उन्होंने जीवदया का पट्टा दिया।

आपश्री ने उदयपुर मे चातुर्मास शुरू किया। आपके प्रवचन सुनकर लोगो ने मदिरापान का त्याग किया। महाराणा भूपालसिंहजी ने साँभर के शिकार का त्याग किया। महाराणा की जिज्ञासा पर एक प्रवचन मे आपने रक्षाबन्धन के रहस्य प्रगट किए जिसे सुनकर सभी चकित रह गए।

उदयपुर से विहार करके कई गाँवों मे होते हुए ...



साथ १७ साधु और थे। राजराणा कल्याणसिंहजी ने प्रवचन सुने। आने के दिन अगता पलवाया। वडे साथ ओसवालो के झगडे का अन्त किया।

निम्बाहेडा पधारने पर हिन्दू-मुस्लिम भारी सख्या मे आपके व्याख्यान मे उपस्थित हुए। मुस्लिम भाइयो ने माँस खाने का त्याग किया। वहाँ से चित्तौड पधारे। करीब ७००० मनुष्यो की उपस्थिति मे महावीर जयन्ती वडी धूमधाम से मनाई गई। यहाँ श्री वृद्धिचन्द ढक डूँगला वालो ने दीक्षा ली, उनका नाम विमल मुनि रखा गया।

अनेक मनुष्यो ने मद्य-मास, तम्वाकू-सेवन आदि के त्याग लिए। श्री पुखराजजी भडारी, श्री सुकनराजजी गोलिया मैसर्स हीराचन्द भीकमचन्द, लाडजी महेश्वरी आदि ने अगला चातुर्मास जोधपुर मे करने की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई।

चित्तौड से विहार करते हुए आपश्री भीलवाडे पधारे। यहाँ हाकिम श्री केशरीसिंहजी, जज दुलेसिंहजी ने भी प्रवचन का लाभ लिया। सार्वजनिक प्रवचन मे लगभग २००० व्यक्ति उपस्थित होते थे। यहाँ जेल के कैदियो को भी उपदेश दिया। उन वन्दियो ने भी चोरी, जीव-हिंसा के त्याग किये। वहाँ मे विहार कर गुडले पधारे। जागीरदार श्री शुर्मसिंहजी ने उपदेशो से प्रभावित होकर भैंसे का वलिदान वन्द किया। श्रावण मे शिकार करने का और हिंसक पशुओ के सिवाय अन्य पशुओ का शिकार करने का त्याग किया। वर्ष मे दो वकरे अमरिए करना आदि अनेक त्याग किए।

कोसीथल होकर नादसा पधारे। नादसा जागीरदार के काका जयसिंहजी ने जीवहिंसा करने का त्याग किया। ताल ठाकुर साहव श्री रणजीतसिंहजी ने अनेक जीवो की हिंसा का त्याग किया। कुंवर दौलतसिंहजी ने पक्षी, हिरण एव वकरे की हिंसा स्वय न करना और न अन्य से कहकर करवाना—यह नियम लिया। सुरतपुर के ठाकुर सवाईसिंहजी ने सुअर के सिवाय अन्य सभी जानवरो की हिंसा त्याग दी। वरार मे भी उपकार हुआ। लसाणी के ठाकुर साहव ने जीवन भर के लिए शिकार का त्याग किया। महीने मे १५ दिन ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम लिया। ठेकरवास, देवगढ, हरियारी आदि में भी इसी प्रकार के उपकार हुए।

चडावल के ठाकुर श्री गिरधारीसिंहजी प्रवचनो से वहुत प्रभावित हुए। इन्होंने अपनी जागीर के छह गाँवो मे पर्युपण के प्रथम और अन्तिम दिन, महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती के दिन पूर्णरूप से अगते पालने का पट्टा लिखकर दिया।

पाली मे प्रवचनो मे जैन-अजैनो ने वडी सख्या मे लाभ लिया। सेठ सिरेमलजी काठेड की ओर से विद्यादान और अकाल पीडितो के लिए भी सहस्रो रुपये दिए गए।

वहाँ से आपश्री जोधपुर पधारे।

पंतालीसवाँ चातुर्मास (स० १९९७) : जोधपुर

स० १९९७ का चातुर्मास १५ मुनियो के साथ मे जोधपुर मे हुआ। आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर अनेक वेश्याओ ने वेश्यावृत्ति का त्याग कर दिया।

इस चातुर्मास से पूर्व जैन दिवाकरजी सरदारहाईस्कूल मे पधारे। वहाँ प्रवचन दिए। एक व्याख्यान आर्यसमाज मे भी हुआ। फिर आहोर के ठाकुर साहव की हवेली मे व्याख्यान होने लगे। लगभग ५००० मनुप्यो की उपस्थिति मे अनेक राज्याधिकारी, वकील एव गणमान्य व्यक्ति उपस्थित होते थे। सार्वजनिक व्याख्यान मे करीब ७००० की उपस्थिति होती थी।



इसी चातुर्मास में 'ॐ शान्ति' जप के साथ लगभग २१०० आयविल हुए। श्री रूपराजजी सचेती (आयु ३५ वर्ष) ने यावज्जीवन ब्रह्मचर्य व्रत लिया।

जोधपुर सघ मे सिंहपोल को लेकर जो उग्र विवाद चल रहा था उसमे आपके शाति-प्रेरक प्रवचनो ने शाति का वातावरण बनाया। एकता के प्रयत्न प्रारम्भ हो गए। तीन वर्षों से द्वन्द्व चल रहा था। भादवा वदी १४ को व्याख्यान मे जोरदार शब्दों मे जैन समाज मे चल रहे झगडे को मिटाकर शाति का सन्देश दिया। एक पक्ष ने श्री मगरूपजी भंडारी (सिटी कोतवाल) श्रीजसवन्तराज जी मेहता को पच बना दिया। श्री चन्दनमल मूथा ने इनको स्वीकार किया और पचो ने व्याख्यान मे फैसला सुनाया जिसे सुनकर दोनो पक्षो के साथ हजारो व्यक्ति पंचो की बुद्धिमत्ता की प्रशसा करने लगे।

फैसले के बाद गुरुदेव ने फरमाया कि समाज मे शाति हो गई, सो तो प्रसन्नता की बात है। आप लोग यहाँ क्षमायाचना कर लेवें। जिन मुनिराजो का अपमान किया है उनके पास जाकर क्षमायाचना करनी चाहिए। दोनो पक्षो की तरफ से शाहजी नवरतनमलजी मोदी, शंभुनाथजी चदनमलजी मूथा, सेठ लक्ष्मीरामजी साड, भँवरलालजी जालोरी, नारमलजी पारख, मोतीलालजी, रातडिया, मूलचन्दजी लूकड, सलेराजजी मुणोत आदि नेताओ ने सभास्थल पर ही प्रेम के साथ हाथ मे हाथ डालकर खमत-खामना किये। इस दृश्य से जनता बहुत हर्षित हो गई। इस कार्य मे राय साहब विलमचन्दजी भण्डारी और हुक्मीचन्द जैन का सहयोग प्रशसनीय रहा।

भादवा सुदी ७ के व्याख्यान मे श्री रा०रा० नरपतसिंहजी (मिनिस्टर इन वेटिंग) ठाकुर बख्तावरसिंहजी आदि विशिष्ट नागरिको ने दोनो पक्षो, पचो और शाति-सहयोगियो को धन्यवाद दिया। सभी ने जैन दिवाकरजी महाराज का हार्दिक आभार माना। इस सप की खुशी मे दयाव्रत का आयोजन किया गया जिसमे समाज के कई मुख्य व्यक्ति सम्मिलित हुए।

चरणोदक

जोधपुर चातुर्मास की ही घटना है। भोपालगढ (मारवाड) के निकटवर्ती कूडी गाँव की पुत्रवधू सौ० कल्याणबाई कर्णावट अपने पीहर जोधपुर आई। महाराजश्री के प्रवचन वह भी बडी श्रद्धाभक्ति से सुनती। एक दिन वह शीशी मे गुलाबजल भर लाई और एक भाई को कहकर गुरुदेव के पाद प्रक्षालित करके पुन शीशी मे भरवा ही लिया। महाराजश्री मना करते ही रह गए। यथासमय वह अपनी ससुराल पहुँची। उसकी ससुराल मे घर का कामकाज करने के लिए एक वृद्धा आती थी। एक दिन उसने कल्याणबाई को अपनी व्यथा सुनाई—

"सेठानीजी ! आपके पीहर जाने के बाद मेरे लडके की आँखें दुखने आ गईं। बहुत इलाज कराया पर कोई फायदा न हुआ। वह अन्धा हो गया है। अब मैं मेहनत मजदूरी करके पेट भरू या उसकी सेवा करू। मैं तो बडी मुसीबत मे फँस गई हूँ।"

कल्याणबाई के हृदय मे करुणा जागी। वृद्धा और उसके पुत्र की कल्याणकामना करते हुए उसने चरणोदक वाली शीशी देकर कहा—

"माँजी ! जोधपुर से मैं बहुत अच्छी दवाई लाई हूँ। इसे लगातार विश्वासपूर्वक लडके की आँख मे डालो। उसे दीखने लगेगा।"

वृद्धा ने दवाई डाली और १५-१६ दिन मे ही उस लडके की नेत्रज्योति लौट आई। वृद्धा ने कल्याणबाई को भरपेट आशीषें दीं। कल्याणबाई गुरुदेव की कल्याणकारी शक्ति से विभोर हो गई। दीपावली के बाद कल्याणबाई उस वृद्धा और उसके पुत्र को साथ लेकर गुरुदेव के



दर्शनार्थ आई। उसने समस्त घटना लोगो को सुनाई। गद्‌गद कठ से लोगो ने कहा—

"यह गुरुदेव की साधना का प्रभाव है।"

चातुर्मास समाप्ति के दिन गुरुदेव के गुणगान भाइयो ने तो किए ही, एक वेश्या ने भी किए। उसने भी विभोर होकर श्रद्धापूर्वक गुरुदेव के गुण गाए।

आहोर के ठाकुर साहब ने पर्युषण पर्व, महावीर जयन्ती और पार्श्वनाथ जयन्ती पर अगते रखने का निश्चय जाहिर किया। श्री विलमचन्दजी भण्डारी ने अहिंसा प्रचारक सभा की स्थापना को शुभ सन्देश दिया।

चातुर्मास पूर्ण करने के बाद गुरुदेव जोधपुर से समदडी होते हुए गढ सिवाना पधारे। उनके उपदेशो से प्रभावित होकर अनेक लोगो ने हाथ के कते-बुने कपडे के प्रयोग करने का नियम लिया और कुछ ने विदेशी वस्त्र का त्याग कर दिया। होली पर धूल उडाने और गन्दे गीत नहीं गाने के नियम लिए। वहाँ गुड-शक्कर और एक चबूतरे के झगडे थे वे भी जैन दिवाकरजी के उपदेशो से समाप्त हो गए।

मोकलसर, जालौरगढ आदि गाँवो मे भी अच्छे उपकार हुए। हाथी-दाँत के चूडे और रेशम पहनने का कई बहनो ने त्याग किया।

छयालीसवाँ चातुर्मास (स० १९९८) : ब्यावर

स० १९९८ का चातुर्मास पूज्यश्री खूबचन्दजी महाराज के साथ ब्यावर मे हुआ। आपके प्रवचनो से अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। निराश्रित भाइयो की सेवा तथा सहायता के निमित्त 'जैन सेवा सघ' की स्थापना भी हुई। यहाँ शान्तिनाथ भगवान का अखण्ड जाप और 'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' मनाया गया।

राजा-महाराजाओ को सप्ताह की पूर्ति के दिन हिंसा बन्द रखने का श्रीसघ ने निवेदन-पत्र भेजा। अनेक गाँवो मे जीव-हिंसा बन्द रही। दि महालक्ष्मी मिल और एडवर्ड मिल बन्द रखे गए। तपस्वी श्री नेमीचन्दजी महाराज ने ४५ दिन की और तपस्वी श्री मयाचन्दजी महाराज ने ३५ दिन की तपस्याएं कीं। इसमे बहुत धर्मध्यान हुआ। तपस्याएँ भी खूब हुईं।

गुरला के महाराज, रायपुर (मारवाड) तथा सिगडा (जयपुर) के ठाकुर साहब ने व्याख्यान का लाभ लिया। सिगडा (जयपुर) के ठाकुर साहब ने मास-मदिरा का त्याग पहले ही कर दिया था, अब जैन दिवाकरजी महाराज से रात्रि-भोजन के त्याग का नियम लिया। उसी दिन आप जयपुर लौटने वाले थे। स्टेशन पहुँचे, टिकिट ले लिए। गाडी आने मे देर थी। साथ के लोग खाने की चीजें लाए। नित्य की आदत के अनुसार ठाकुर साहब ने भी मुँह मे खाने की वस्तु डाल ली, तभी उन्हें याद आया कि 'मैंने तो रात्रि-भोजन का त्याग लिया है।' तुरन्त उन्होंने खाई हुई वस्तु को थूक दिया और गुरुदेव के पास प्रायश्चित्त लेने को जाने लगे। आपके साथ वाले लोगो ने कहा—'शहर मे जाकर आओगे तो गाडी छूट जायेगी।' ठाकुर साहब ने उत्तर दिया—'गुरुदेव से ली हुई प्रतिज्ञा भग हो गई तो प्रायश्चित्त भी उन्ही से लूँगा। गाडी मिले या न मिले। टिकिट के पैसे ही तो जायेंगे। क्षत्रिय के लिए धन से अधिक महत्व प्रतिज्ञा का है।'

यह कहकर ठाकुर साहब ताँगे मे बैठकर गुरुदेव के पास आए और उनसे प्रायश्चित्त माँगा। गुरुदेव ने कहा—'भूल से हो गया है।' ठाकुर साहब ने कहा—'भूल से ही सही, पर इसके प्रायश्चित्त स्वरूप एक निर्जल उपवास अवश्य करूँगा।'

इसके बाद ताँगे मे बैठकर स्टेशन पहुँचे। तब तक गाडी आई नहीं थी, लेट थी। ठाकुर साहब के विश्वास से साथी लोग आश्चर्यचकित हो गए।



इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि गुरुदेव से प्रतिज्ञा लेने वाले व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा में कितने दृढ रहते थे।

ब्यावर चातुर्मास पूर्ण कर आप वहाँ से विहार करके सुमेल पधारे। सुमेल के ठाकुर साहब ने रनिवास सहित व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया। प्रवचन से प्रभावित होकर पार्श्वनाथ जयन्ती, महावीर जयन्ती को अगता रखने के और पौष, कार्तिक, वैशाख आदि महीनो मे शिकार न खेलने की लिखित प्रतिज्ञा ली।

सुमेल से जैन दिवाकरजी मसूदा होते हुए अरनिया पधारे। वहाँ बलिदान बन्द हुआ। कोटड़ी के कई मुसलमान भाइयो को मास खाने का त्याग करवाकर माडलगढ़ पधारे। वहाँ कई वर्षो से चले आए वैमनस्य को दूर किया। शाहपुरा मे अनेको ने मास-मदिरा के त्याग किये।

मीचोर मे कई मुसलमान भाइयो ने नशा व गोश्त (मास) खाने के त्याग किए। वेगू मे आपश्री के उपदेश मे ओसवालो का वैमनस्य दूर हुआ। फिर कदवासा पधारे। वहाँ ३७ जमीदारो ने जैनधर्म स्वीकार किया।

अनेक गाँवो मे विचरण करते हुए २५ सन्तो सहित सिंगोली पधारे। महावीर जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनाई गई। पारसोली, सरवाणिया, नन्दवई, वेगू, सिंगोली आदि के राज्याधिकारियो ने लाभ लिया। सिंगोली मे ५ दिन अगता पलवाया गया।

नीमच सावण होते हुए भाटखेडी पधारे। वहाँ की महारानी श्रीमती नवनिधि कुमारी के अत्याग्रह से तीन व्याख्यान राजमहल मे हुए। महारानीजी ने प्रभावना बाँटी। महारानीजी विदुषी थीं। आपने ३००० पृष्ठ का एक ग्रन्थ लिखा था। उनकी जैनधर्म पर अटूट श्रद्धा है। मुँहपत्ति बाँधकर ७ बार भगवतीसूत्र पढ़ चुकी हैं। अन्य अनेक शास्त्रो एवं ग्रन्थो का अध्ययन किया है। आप बडी दया-प्रेमी हैं।

रामपुरा, सजीत आदि गाँवो को पावन करते हुए महागढ पधारे। वहाँ आपकी वाणी से प्रभावित होकर कई लोगो ने रात्रि-भोजन के त्याग किए, ब्रह्मचर्यव्रत लिए। राजपूत, गावरी, चमार आदि ने मास-मदिरा के त्याग किए।

जावरा मे २६ सन्तो सहित आप पधारे तो लोगो ने आपका भावभीना स्वागत किया। यहाँ स्थानकवासी समाज मे झगडा था। अनेक सन्तो एव मुनिवरो के समझाने पर भी वह झगडा मिट न सका, किन्तु आपके प्रभाव से शात हो गया। व्याख्यान मे चीफ मिनिस्टर, रेवेन्यु सेक्रेटरी, पुलिस अधिकारी आदि लाभ लेते थे। सेजावता के ठाकुर साहब ने जीवनभर शिकार करने का त्याग किया।

सैंतालीसवाँ चातुर्मास (स० १६६६) : मन्दसौर

वि० सं० १६६६ मे आपश्री विचरण करते हुए रतलाम पधारे। महावीर जयन्ती का दिन समीप था। पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के सम्प्रदाय वाले प० मुनिश्री किशनलालजी महाराज, मालवकेशरी प० मुनि श्री सौभाग्यमलजी महाराज आदि भी वहीं विराजमान थे। विचार चला कि महावीर जयन्ती सम्मिलित रूप से मनाई जाय या अलग-अलग। जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—

"भगवान महावीर के जन्म दिवस पर क्या मतभेद ? वे तो सभी के आराध्य हैं। उनका जन्म-दिवस तो सभी को मिलकर मनाना चाहिए।"



आपके इन वचनो ने निर्णय ही कर दिया । महावीर जयन्ती सम्मिलित रूप से ही मनाई गई ।

इसी चातुर्मास मे आपकी प्रेरणा से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज सम्प्रदाय के हितैषी मडल की स्थापना 'समाज हितैषी श्रावक मण्डल' के नाम से हुई ।

सच्चा वशीकरण

मन्दसौर चातुर्मास की ही एक घटना है । जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन होते थे । प्रवचनो मे श्रोताओ की अपार भीड एकत्र होती थी । एक दिन एक वृद्धा भीड को चीरती हुई आई और कहने लगी—

"गुरुजी ! आपकी बात तो सब लोग मान लेते हैं, मेरी कोई नही मानता । सभी मुझे चिढ़ाते हैं । मेरी बात तक नही सुनते । अपना वशीकरण मन्त्र मुझे भी दीजिए ।"

महाराजश्री ने कुछ क्षण सोचा और गम्भीर स्वर मे बोले—

"माताजी ! सच्चा वशीकरण है मधुर वचन, कठोर शब्दो का त्याग । आप सदा मधुर वचन बोलिए । चिढाने वालो से या तो मौन धारण कर लीजिए या उनसे भी मीठे शब्दो मे बोलिए । कुछ ही दिनो मे सब लोग आपकी बात सुनने लगेंगे, मानने लगेंगे ।"

वृद्धा उनकी बात मान गई । दो ही महीने बाद आकर बोली—

"महाराज साहब ! आपका मन्त्र अचूक है । इसका प्रभाव अमोघ है । मैं सुखी हो गई । मुझे सच्चा वशीकरण मिल गया ।"

"अच्छी बात है, अब इसका जीवन भर प्रयोग करना, कभी मत छोडना । सुख के साथ-साथ तुम्हें शाति भी मिलेगी ।"

वृद्धा ने सिर झुकाकर सहमति व्यक्त की ।

महाराजश्री की यह प्रेरणा **'बहुयं मा य आलवे', 'मियं भासेज्ज पन्नवं', 'न य ओहरिणी वए'** आदि शास्त्र वचनो का अनुभवमूलक सन्देश थी ।

अगुष्ठोदक का चमत्कार

मन्दसौर के जीयागज मोहल्ले मे जैन दिवाकरजी महाराज अपने प्रवचनो से दयाधर्म की गगा बहा रहे थे । एक दिन मनासा निवासी श्री भँवरलाल जी रूपावत अपने दु साध्य रोग से पीडित पुत्र शातिलाल को लेकर आपकी सेवा मे उपस्थित हुए ।

शातिलाल जब चार मास का ही था तभी से वह उदरशूल से पीडित था । दर्द इतना तीव्र था कि वह तड़पता रहता था । चार मास के शिशु की पीडा से माता-पिता दोनो की नीद हराम हो गई थी । रूपावतजी ने सभी तरह के उपचार करा लिए थे । माता-मसानी, पीर-फकीर, पडित-मौलवी, वैद्य-हकीम, डाक्टर, तान्त्रिक-मान्त्रिक सभी विफल हो गए थे । माता-पिता अब निरुपाय हो गए थे । वे अपने पुत्र के जीवन से निराश हो चुके थे । एक दिन रूपावतजी के किसी मित्र ने उन्हें सलाह दी—'रूपावतजी ! आप मन्दसौर जाकर जैन दिवाकरजी महाराज की शरण लें तो मुझे विश्वास है आपका बच्चा नीरोग हो जायगा ।'

मित्र की सलाह मानकर रूपावतजी मन्दसौर पहुँचे । सतीवर्ग को शिशु की व्यथा कह सुनाई । करुण व्यथा सुनकर महासतीजी का हृदय करुणार्द्र हो उठा । उन्होंने उपाय बताया—'एक गिलास मे प्रासुक गरम जल लेकर आप महाराजश्री के दाहिने पांव का अगूंठा प्रक्षालित कर लीजिए । उस प्रक्षालित जल को शिशु को पिलाइये । शिशु नीरोग हो जायगा ।'



रूपावतजी ने वही किया। गुरुदेव के मना करते-करते भी अंगुष्ठोदक ले ही लिया। इस जल को दो-चार बार ही पिलाने से बालक सर्वथा नीरोग हो गया। जो रोग दुनिया-भर की औषधियो और उपचारो से ठीक न हो सका, वह महाराजश्री के अंगुष्ठोदक से मिट गया।

शातिलाल आज भी मनासा मे सकुशल है।

मन्दसौर मे ३३ वर्षो के बाद चातुर्मास हो रहा था। विशाल मण्डप मे धारावाही प्रवचन होने लगे। राजकर्मचारी, वोहरे और मुसलमान भाई भी व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लगे। यहाँ तपस्वी मेघराजजी महाराज ने ३१ दिन की तपस्या की। महासतियाँ जी एवं भाई-बहनो ने भी तपोव्रत किया।

चातुर्मास बाद महाराज साहब प्रतापगढ़ पधारे। वहाँ जितने भी राज्याधिकारी थे, सभी व्याख्यान का लाभ लेते थे। प्रतापगढ़ दरबार एव राजमाता ने दो व्याख्यान राजमहल मे करवाए। प्रभावना भी दी। महावीर जयन्ती के दिन अगता रखने का वचन दिया। दशहरे पर होने वाले पाडे का बलिदान बन्द कर दिया। महाराजश्री के विहार के दिन कसाईखाना बन्द रखा।

प्रतापगढ से आपश्री वरियावद पधारे। रावजी साहब पहाडी रास्ते मे भी साथ रहे। चार मील पैदल चले। गुरुदेव की तबियत वहाँ खराब हो गई।

अडतालीसवाँ चातुर्मास (सं० २०००) : चित्तौड़

स० २००० का चातुर्मास चित्तौड मे हुआ। अपने प्रवचनो द्वारा आपश्री ने वृद्धो, अपाहिजो की सेवा करने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप 'चतुर्थ वृद्धाश्रम' की स्थापना हुई, जहाँ वृद्ध लोगो के भरण-पोषण और आध्यात्मिक साधना हेतु समुचित साधन जुटाए गए।

चित्तौड मे आपश्री ने १७ मुनियो के साथ चातुर्मास किया। पधारने के दिन महाराणा साहब ने अगता पलवाया। तपस्वी नेमिचन्दजी महाराज ने ५० दिन की और तपस्वी वक्तावरमलजी महाराज ने ५७ दिन की तपश्चर्या की। दोनो तपस्वियो के पारणे आनन्द से हो गए परन्तु पारणे के दिन तपस्वी वक्तावरमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। १२ हजार जनता की उपस्थिति मे चन्दन और हजारो नारियलो के साथ संस्कार हुआ।

इस वर्ष नदियो मे बाढ़ आने से बाढ़ पीड़ितो के लिए काफी आर्थिक सहायता दी गई।

उनपचासवाँ चातुर्मास (स० २००१) : उज्जैन

स० २००१ मे महावीर जयन्ती का अवसर आ गया। जैन दिवाकरजी महाराज ४० सन्तो सहित वहाँ विराजमान थे ही। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के व्याख्यान वाचस्पति श्री विद्याविनयजी महाराज भी विराज रहे थे। आपकी उदारता से दोनो सतो के प्रवचन एक ही मच मे हो रहे थे। वहाँ मूर्तिपूजक सघ का उपधान तप भी चल रहा था। बाहर से १०-१५ हजार नर-नारी प्रवचन लाभ लेने आए हुए थे। महावीर जयन्ती उत्सव सभी लोगो ने मिलकर आनन्द पूर्वक मनाया।

उज्जैन मे यह प्रथम अवसर था जब श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और दिगम्बर बन्धुओ ने मिलकर महावीर जयन्ती उत्सव मनाया। जैन बोर्डिंग के लिए १५००० रुपये का चन्दा भी हुआ।

भवन; स्थानक बना

गुरुदेवश्री की वाणी मे एक आश्चर्यजनक शक्ति थी कि जब भी आप किसी को कोई उपदेश



या प्रेरणा देते तो एक बार तो पत्थर भी पिघल जाता। नया और अनजान व्यक्ति भी आपके उपदेश से प्रभावित होकर सकल्पवद्ध बन जाता।

उज्जैन चातुर्मास की घटना है। सुन्दरवाई नाम की एक राजपूत महिला आपके उपदेशो से प्रभावित होकर जैन श्राविका बन गई। एक दिन उसने आपसे सामायिक का नियम लिया। नियम दिलाने के बाद आपने कहा—

"तुमने नियम ले तो लिया है किन्तु धर्म-क्रियाओ के लिए शात-एकात स्थान की आवश्यकता होती है। स्थानक ही उपयुक्त होता है।"

महिला विचार मे पड गई, वोली—

"ऐसा स्थान यहाँ फ्रीगज में तो कोई नही है।"

"है तो नही, लेकिन होना अवश्य चाहिए, जहाँ सभी भाई धर्म-क्रियाएँ कर सकें।"

सुन्दरवाई कुलीन महिला थी। गुरुदेवश्री के इन शब्दो से उसकी धर्म-भावना जागृत हुई, वोली—

"गुरुदेव ! मेरे पास कई भवन है। उनमे से एक मैं श्रीसघ (उज्जैन) को समर्पित करती हूँ। साथ ही २५०० रुपये भी, जिससे उसका रख-रखाव भी होता रहे।"

सुन्दरवाई का भवन स्थानक बन गया। उज्जैन श्रीसघ ने आभार प्रदर्शित किया तो सुन्दरवाई ने इसे गुरुदेव की कृपा कहकर अपनी विनम्रता का परिचय दिया।

चातुर्मास के दिनो मे आप नमकमडी और नयापुरा दोनो स्थानो पर विराजे। एक दिन जैन दिवाकरजी महाराज एव दिगम्बर प० मुनि श्री वीरसागरजी महाराज दोनो एक स्थान पर मिले और वहुत देर तक प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप हुआ। यह पहला ही सुअवसर था। इस मिलन से दोनो सम्प्रदायो के श्रावको मे एकता की भावना बढी।

इस प्रकार उज्जैन चातुर्मास के समय काफी धर्म-प्रभावना और जैन सघ मे ऐक्य स्थापित हुआ।

चातुर्मास के बाद आपश्री देवास पधारे। हिन्दू-मुस्लिम सभी ने मिलकर व्याख्यान का लाभ लिया। कैदियो ने भी व्याख्यान सुने और अपने पापो के लिए पश्चात्ताप किया एव शराब, चोरी आदि का त्याग किया।

पचासवाँ चातुर्मास (सं० २००२) : इन्दौर

इन्दौर मे जैन दिवाकरजी के चार व्याख्यान राय वहादुर भण्डारी मिल मे हुए। नागरिक एव मिल मजदूरो ने काफी संख्या मे उपदेश श्रवण का लाभ लिया। छह-सात हजार के लगभग श्रोता हो जाते थे। मिल मजदूरो ने सैंकडो की सख्या मे मास-मदिरा सेवन और पर-स्त्रीगमन के त्याग किये।

पिछले दो व्याख्यानो के लिए मिल मजदूरो ने भण्डारी साहव के द्वारा जैन दिवाकरजी महाराज से आग्रह करवाया था।

वशी प्रेस के समीप कई गरीवो की झोपडियाँ जल गई थी। उनकी सहायता के लिए भडारी साहव ने व्याख्यान मे काफी चन्दा करवा दिया।

भण्डारी हाईस्कूल मे जव गुरुदेव पधारे तो दर्शन करने के लिए झाबुआ दरवार आए। वार्तालाप कर दरवार ने प्रसन्नता प्रकट की।

गुरुदेव के इन्दौर पधारने पर जनता एव मिलो के मजदूर वहुत वडी सख्या मे आए। वहुत



लम्बा जुलूस था। एम० टी० क्लोथ मार्केट के वाईंड वेअर हाउस मे गुरुदेवश्री का चातुर्मास हुआ।

२७ सत एव २७ ही महासतीजी महाराज के विराजने से वहुत ही धर्मध्यान हुआ। पर्युषण पर्व मे वाहर के करीव ढाई हजार वन्धु आए थे। व्याख्यान में ६ हजार से अधिक की उपस्थिति हो जाती थी। तपस्याओ की झडी लग गई। एक दिन से लगाकर २१ दिन तक की तपस्याएँ हुई। अनेक पचरगिए हुई। घोरतपस्वी श्री नेमीचन्दजी महाराज ने ४८ दिन की, घोर तपस्वी श्री सागरमलजी महाराज ने २८ दिन की एव घोर तपस्वी श्री माणकचन्दजी महाराज ने ३६ दिन की तपस्याएँ की। इन तपस्याओ की पूर्णाहुति समारोहपूर्वक मनाई गई। एक हजार गरीवो को भोजन दिया गया।

श्री सुगनमलजी मण्डारी की प्रेरणा से श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम को दस हजार रुपये के वचन मिले तथा समाज के अन्य दानवीर श्रीमतो एव सद्गृहस्थो ने मुक्तहस्त से २०००० रुपये का दान देकर इस सस्था की जडें मजवूत की। अन्य सस्थाओ को भी दान दिया गया।

'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' मनाया गया। लोकाशाह जयन्ती आपके सान्निध्य मे वडी धूमधाम से मनाई गई। राय वहादुर सेठ कन्हैयालालजी मण्डारी व श्री नन्दलालजी मारू ने भी भाषण किया। महिला सम्मेलन एव वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी हुई।

इस चातुर्मास में सेठ श्री भँवरलालजी धाकड ने भी सेवा का खूव लाभ लिया।

एक वार एम० टी० क्लोथ मार्केट के प्रागण मे जैन दिवाकरजी महाराज का सार्वजनिक प्रवचन हो रहा था। इन्दौर के वडे-वडे लोग सम्मिलित थे। सर सेठ हुकमचन्दजी भी आए थे। सेठजी ने गुरुदेव को वन्दन किया, तो आपने कहा—'दया पालो सेठजी!' लेकिन दूसरे ही क्षण गुरुदेव ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—'सेठजी को दया पालो कहा है तो आप लोग यह न समझें कि इनसे हमें कुछ स्वार्थ है। साधुओ को इनसे किसी प्रकार की कामना नही है। किन्तु ये धर्मप्रिय व्यक्ति हैं। इनके पास कोरा धन ही नही है, धन के साथ धर्म भी है। इनका धर्म-प्रेम देखकर ही हमने इन्हे सेठजी कहा है। अत 'गुणिषु प्रमोद' के नाते कहा है।' यह थी आपकी वाणी की जागरूकता!

इक्यावनवां चातुर्मास (स० २००३) घाणेराव सादडी

सवत् २००३ का आपश्री का चातुर्मास घाणेराव सादडी मे हुआ। प्रवचनो मे वहाँ के ठाकुर साहव भी उपस्थित होते थे।

बावनवां चातुर्मास (स० २००४) ब्यावर

जैन दिवाकरजी महाराज का स० २००४ का वर्षावास व्यावर मे हुआ। खूव धर्म-प्रभावना हुई। यहाँ आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर खटीक जाति का एक किशोर नाथूलाल जीवहिंसा से विरत हो गया।

इस चातुर्मास मे भारत विभाजन के कारण हजारो जैन परिवार पाकिस्तान से भारत आये। उनकी दशा वडी हृदयद्रावक थी। आपश्री के उपदेशो से विपद्ग्रस्त जैन वन्धुओ की सहायता की गई।

व्यावर चातुर्मास पूर्ण करने के वाद अनेक स्थलो को पवित्र करते हुए आप जूनिया पधारे। जूनिया महाराज ने भावभरा स्वागत किया, प्रवचन सुने और त्याग किये। सरवाड़ पधारने पर एक



व्याख्यान मुसलमानो के आग्रह पर दरगाह मे भी हुआ। मुसलमान स्त्रियो ने भी भाषण सुना। कइयो ने त्याग किए।

गांधी स्मारक की चर्चा चल रही थी। गुरुदेव के सन्देशानुसार श्रावको ने प्रधान मन्त्री और गृहमन्त्री को तार दिया कि—'गांधीजी की स्मृति को अहिंसक रूप देना है तो सम्पूर्ण भारत मे दूध देने वाले (दुधारु) और कृषि योग्य पशुओ का वध बन्द कर दिया जाय।'

आप जहाँ-जहाँ पधारे, सर्वत्र हिन्दू-मुसलमानो ने आपके प्रवचनो मे समान रूप से भाग लिया। सभी मे धर्म-जागृति होती। उन दिनो आपके प्रवचन 'बदले की भावना छोडो' इस विषय पर होते थे। इन प्रवचनो का हिन्दू-मुसलमान दोनो पर काफी प्रभाव पडा तथा साम्प्रदायिक द्वेष की अग्नि शान्त करने मे बडा सहयोग मिला।

चातुर्मास के बाद विहार करते हुए आपश्री पाली पधारे। श्रमण-सगठन के लिए कान्फ्रेंस के प्रयत्न चल रहे थे। यहां गुरुदेवश्री के प्रयत्नों से सघ ऐक्य की योजना बनी।

सघ ऐक्य योजना

जैन कान्फ्रेन्स सघ ऐक्य के लिए बहुत समय से प्रयत्नशील था। सघ ऐक्य कैसे हो? उसका आधार क्या हो? प्रारम्भ मे क्या करना चाहिए? इन सब बातो की चर्चा चल रही थी। कान्फ्रेन्स के नेताओ के विचार थे—

"साम्प्रदायिक मतभेद और ममत्व के कारण स्थानकवासी जैन समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है। साधु-साध्वीओ मे और श्रावक-श्रावको मे मतभेद मौजूद हैं और बढ़ते जा रहे हैं। समाज-कल्याण के लिए ऐसी परिस्थिति का अन्त कर ऐक्य और सगठन करना आवश्यक है। साधु और श्रावक दोनो के ही सहकार और शुभ भावना द्वारा ही यह कार्य सफल होगा। अत' साधु-साध्वी और कान्फ्रेन्स को मिलकर इस कार्य मे लगना चाहिए। इस कार्य के लिए तात्कालिक कुछ नियम ऐसे होने चाहिए कि जिससे ऐक्य का वातावरण उत्पन्न हो और साथ-साथ एक ऐसी योजना बनानी चाहिए कि सगठन स्थायी और चिरजीवी बने।"

गुरुदेव उस समय पाली मे विराजमान थे। कान्फ्रेन्स का डेपुटेशन सघ ऐक्य की भावना लेकर गुरुदेव के पास आया। आपश्री ने पूछा—

"आप लोगों के पास क्या योजना है? प्राथमिक योजना क्या है?"

गुरुदेव के इस प्रश्न पर डेपुटेशन के लोग चुप रह गए। तब गुरुदेव ने फिर पूछा—

"बिना योजना के संघ ऐक्य का कार्य आगे कैसे बढ़ेगा?"

डेपुटेशन ने कहा—

"आप ही बताइये।"

तब गुरुदेव ने कहा—

"आप लोग यह बातें सन्तो से मनवा सकें तो आगे का सघ ऐक्य का कार्य पूरा हो जायगा। नही तो आपका यह सब विचार व्यर्थ ही रहेगा।"

नेताओ ने जब पूछा कि 'वे बातें कौन सी हैं जिनसे कि सतगण निकट आ सकें?' तब गुरुदेव ने निम्न बातें उन लोगो को लिखवाई—

(१) एक गाँव मे एक चातुर्मास हो।

(२) एक गाँव मे एक ही व्याख्यान हो।

(३) सब साधु, श्रावक कान्फ्रेन्स की टीप के अनुसार एक सवत्सरी करें।

(४) सब साधु-साध्वी अजमेर सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार एक प्रतिक्रमण करें।



(५) किसी सम्प्रदाय की तरफ से अन्य सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे निन्दात्मक लेखन नहीं होना चाहिए।

(६) सम्प्रदाय मडल या समितियां मिटा दी जायें।

(७) कोई साधु-साध्वी अपने सम्प्रदाय को छोडकर अन्य सम्प्रदाय में जाना चाहे तो इनके पूज्य प्रवर्तक या गुरु की स्वीकृति बिना न लिया जाय।

यह सात बातें गुरुदेव ने लिखवाकर अपने सम्प्रदाय के सभी मुनियो की ओर से इनके लिए सर्वप्रथम स्वीकृति भी फरमाई।

(१) जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने उपरोक्त बातो की स्वीकृति फरमाई।

मिती पौष वदी १०, स० २००५ —द देवराज सुराना

ता० २५-१२-४८, पाली

तारीख २५ के बाद ही अन्य मुनियो की स्वीकृतियाँ प्राप्त हुई हैं।

बम्बई से निकलने वाले जैन प्रकाश के ता० ८-१२-४६ वर्ष ३७, अक ७ से पता चलता है कि १२ मास के प्रयास के बाद भी स्वीकृतियाँ होना बाकी थी। सघ-एकता के लिए सर्वप्रथम कदम उठाने वालो मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज अग्रणी थे।

तिरेपनवां चातुर्मास (स० २००५) : जोधपुर

स० २००५ का आपश्री का चातुर्मास जोधपुर मे हुआ। आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर अनेक लोगो ने वेश्यावृत्ति आदि व्यसनो का त्याग कर दिया।

इस चातुर्मास मे तपस्वी श्री नेमीचन्दजी महाराज ने ४३ दिन की तपस्या की। पूर्ति के दिन पुस्तको और श्रीफलो की प्रभावना की गई। बहुत त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

जोधपुर मे गुरुदेव के खास भक्तजनो की एक मीटिंग हुई। उसमे स्थानकवासी साधुओ मे सगठन एव प्रेम बढाने के लिए और एक समाचारी बनाकर सगठन को सुदृढ करने के प्रस्ताव पास किये गए।

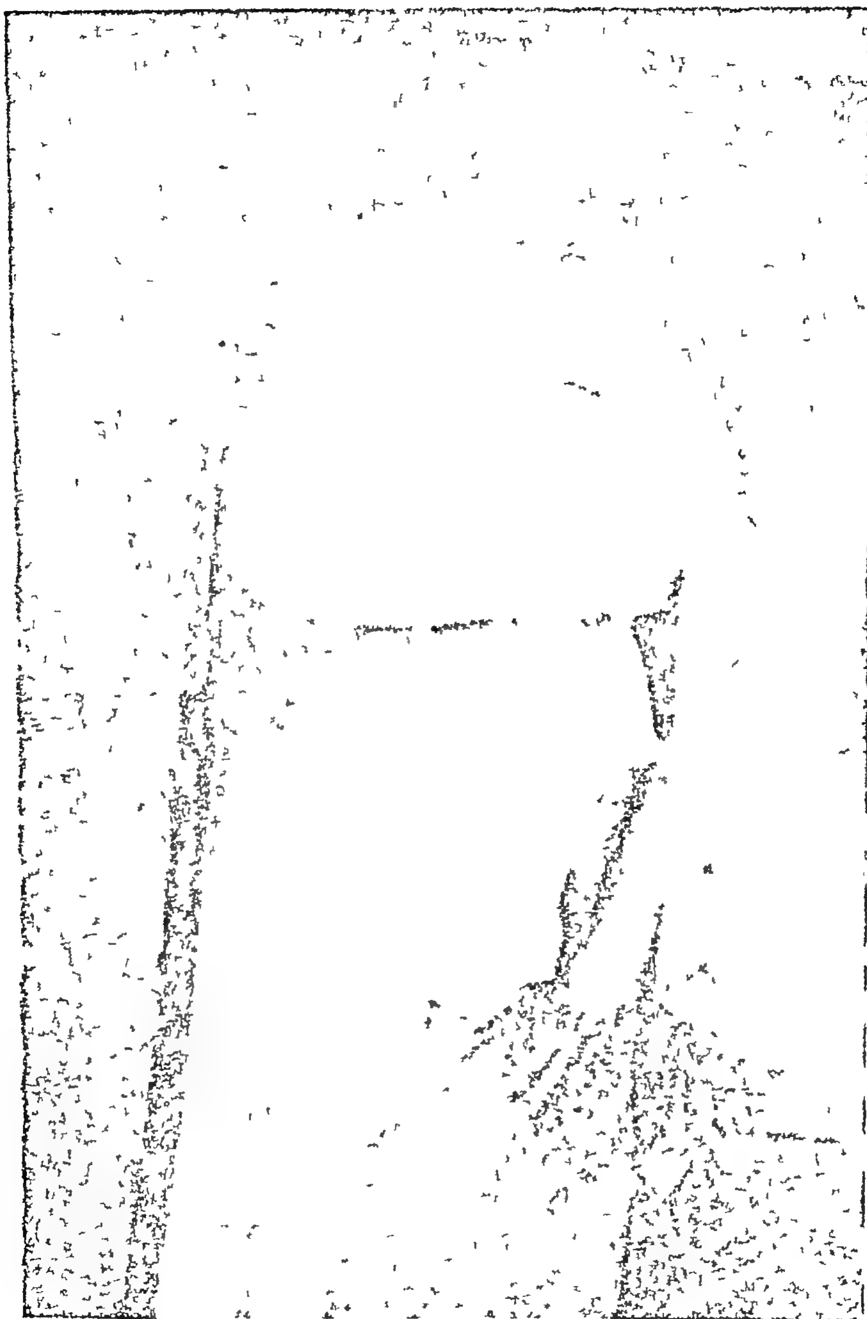
जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके जैन दिवाकरजी महाराज ने अनेक ग्रामो में भ्रमण करते हुए चारभुजाजी की ओर प्रस्थान किया।

रतलाम निवासियो की उत्कट इच्छा आपका चातुर्मास रतलाम मे कराने की थी, परन्तु वहां (रतलाम में) के लोग तीन सघो मे विभक्त थे—(१) पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज के अनुयायी, (२) पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के अनुयायी, और (३) पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज के अनुयायी। अत कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधि श्री खीमचन्द भाई वोरा, श्री दुर्लभजी भाई खेतानी आदि ने तीनो अनुयायियो मे से चुन कर एक कमेटी बनाई। इस कमेटी ने सर्वानुमति से जैन दिवाकरजी महाराज से रतलाम चातुर्मास की प्रार्थना की। विरोध में समन्वय का मार्ग प्रस्तुत किया। प्रमुख रूप से इस सघ के समन्वय की कडी को जोडने मे श्री नाथूलालजी सेठिया, श्री लखमीचन्दजी मुणत और श्री बापूलालजी बोथरा ने अपना बहुत योगदान दिया।

श्री बापूलालजी बोथरा, श्री मांगीलालजी बोथरा, सेठ चांदमलजी चाणोदिया के अथक प्रयासों से २१ वर्षों के बाद जोधपुर मे रतलाम स्पर्शने की स्वीकृति मिली थी और चैत्र कृष्णा ४, सं० २००५ को चातुर्मास की स्वीकृति मिली।

इस स्वीकृति से रतलाम श्रीसघ में अपार हर्ष छा गया। बाहर गांव के धर्म-प्रेमियो को भी तार और पत्रो द्वारा समाचार दे दिया गया।

सांध्य वेला · [वि० स० २००७ कोटा]



महाप्रयाण से पूर्व श्री जैन दिवाकर महाराज की रुग्णावस्था का एक चित्र
रोग व जरा ने शरीर को शिथिल बना दिया, पर आत्मबल आज भी प्रचंड है।



और यह है अन्तिम महायात्रा का दृश्य [वि० स० २००७ कोटा]
हजारो-हजार शोकाकुल नर-नारी गुरुदेव की अन्तिम यात्रा (श्मशान यात्रा)
मे वैकुण्ठी के साथ चल रहे है।



चौवनवाँ चातुर्मास (सं० २००६) : रतलाम

गुरुदेव जब रतलाम पधार रहे थे तो रतलाम से २ मील दूर तीनो सम्प्रदायो के तीन-चार सौ नर-नारी सेवा मे उपस्थित हुए। वार्तालाप किया। बडा ही मधुर वातावरण रहा।

हजारो नर-नारियो के जयघोष के साथ गुरुदेव ने रतलाम मे प्रवेश किया।

जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन नीमच चौक मे होने लगे। श्रोताओ की सख्या बढ़ने लगी। पडाल पहले से ही बहुत बडा था। लेकिन उपस्थिति जब नगर के छह हजार और बाहर के पाँच हजार—इस तरह लगभग १०-११ हजार श्रोताओ की होने लगी तो पडाल और भी बढाना पडा। प्रवचनो मे हिन्दू, मुसलमान, बोहरे, जैन-जैनेतर एव अधिकारीगण सभी समान रूप से भाग लेते और वाणी का लाभ उठाते। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के सम्प्रदाय के श्रावक-श्राविका भी प्रवचन लाभ लेते थे। इस विशाल उपस्थिति को देखकर श्री सोमचन्द तुलसीभाई को कहना पडा कि—'रतलाम मे प्रवचनो मे इतनी उपस्थिति मेरे देखने मे नही आई।'

'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' मनाया गया। तपस्वी श्री माणकचन्दजी महाराज ने ३८ दिन की तपस्या की। इसके उपलक्ष मे कसाईखाने बन्द रहे, गरीबो को मिष्ठान्न खिलाया गया और विभिन्न सस्थाओ को दान दिया गया। तपस्वी श्री वसन्तीलालजी महाराज ने पचोले-पचोले पारणे किये।

आसोज सुदि में जैन दिवाकरजी महाराज की सेवा मे ब्यावर, उदयपुर, मंदसौर, जावरा, इन्दौर आदि अनेक स्थानो के मुख्य-मुख्य व्यक्ति उपस्थित हुए थे। उस समय महाराजश्री के मस्तिष्क मे एक विचार आया कि—'पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज का सम्प्रदाय कई वर्षों से दो भागो मे विभक्त है। उनमे ऐक्य किस प्रकार हो सकता है ?' आपने कुछ प्रमुख लोगो के सामने अपने विचार व्यक्त किये।

उस समय पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज जयपुर मे विराजमान थे।

श्री देवराजजी सुराणा ब्यावर, श्री बापूलालजी बोथरा, श्री सुजानमलजी मेहता, जावरा; श्री सौभागमलजी कोचेट्टा, जावरा, श्री चाँदमलजी मारू, श्री चाँदमलजी मुरडिया, मन्दसौर,—ये छह व्यक्ति जयपुर पहुँचे। वहाँ करीब ५ दिन ठहरे। पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज को श्री जैन दिवाकरजी महाराज का सन्देश दिया। उस पर विचार करके पूज्यश्री गणेशीलाल जी महाराज ने सात बातें एकीकरण के सम्बन्ध मे लिखवाई। उनमे एक बात यह थी कि एक आचार्य होना चाहिए।

जैन दिवाकरजी महाराज ने सभी बातो के साथ एक आचार्य की बात भी स्वीकार कर ली। किन्तु पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज को आचार्य बनाने की सहमति देकर अपनी उदारता भी प्रदर्शित की। लेकिन साथ ही साथ यह सुझाव भी दिया कि—'क्योकि अनेक वर्षों से अलग रहे हैं इसलिए आचार्यश्री के सम्मिलित सघ संचालन मे पूज्यश्री मन्नालालजी महाराज के सम्प्रदाय के मुख्य मुनिराज की सम्मति अवश्य ले ली जाय।'

यह सन्देश लेकर श्री चपालालजी बव जयपुर पहुँचे। परन्तु पूज्यश्री गणेशीलालजी महाराज ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया, और चातुर्मास बाद अलवर की ओर विहार कर दिया।

कार्तिक शुक्ला ९ को जैन कान्फ्रेंस का एक डेपूटेशन (शिष्टमडल) अध्यक्ष श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया के नेतृत्व मे आया। महामत्री श्री चीमनलाल पोपटलाल शाह, सयुक्त मत्री

श्री गिरधरभाई दामोदर दफ्तरी, श्री धीरजलालभाई तुरखिया, श्री महासुखभाई, सेठ देवराजजी सुराना आदि सज्जन इस शिष्टमडल मे सम्मिलित थे। शिष्टमडल के सभी सज्जन तीन दिन तक रतलाम मे रहे। सघ ऐक्य योजना का शेष कार्य पूर्ण करने के उद्देश्य से जैन दिवाकरजी महाराज ने सघ ऐक्य योजना की महत्ता एव डेपूटेशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामना प्रगट की। ऐक्य के सम्बन्ध मे चर्चा होने पर उनको सात बातें और उन बातो पर सुझाव बताए। श्री कुन्दनलालजी फिरोदिया ने यह सब जानकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि 'श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने बडी उदारता के साथ सात बातें स्वीकार की—यह बहुत प्रसन्नता की बात है। आपकी जितनी प्रशसा की जाय कम है। सातवी कलम (बात) मे दिया हुआ आपका सुझाव वास्तविक है कि इतने दिनो से अलग रहे हैं तो सघ ऐक्य बराबर निभे इसके लिए आचार्यश्री एक मुनिराज की सम्मति से सघ सचालन करें तो श्रेष्ठ है।'

अध्यक्ष श्री फिरोदियाजी ने आपसे आशीर्वाद की याचना करते हुए कहा—

"आपने पहले पहल पाली (मारवाड) मे हमे शुभाशीष प्रदान की थी। उसी प्रकार अब इस योजना के दूसरे वाचन के समय भी हम आपकी सेवा मे उपस्थित हुए हैं।"

जैन दिवाकरजी महाराज ने डेपूटेशन एव कान्फ्रेंस के सद्कार्यों की प्रशंसा की एव अपना पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया तथा रतलाम सघ को भी प्रेरणा दी कि समय को पहचान कर सगठन करना चाहिए।

कार्तिक शुक्ला १३ को गुरुदेव की ७३वीं जयन्ती मनाई गई। अनेक मुनियो एव श्रावको के भाषण-भजन आदि हुए। गुरुदेव के गुणगान किये, चरणो मे श्रद्धा-भक्ति के पुष्प चढ़ाए, दीर्घायु के लिए कामना की। अनेक तरह के त्याग-प्रत्याख्यान, तपस्याएँ भी हुईं।

जैन दिवाकरजी महाराज ने फरमाया कि 'गुणगान तो भगवान महावीर एवं जैनधर्म के होने चाहिए। मैं तो चतुर्विध सघ का सेवक हूँ और यथाशक्ति सेवा कर रहा हूँ और करता रहूँगा।"

रात्रि को सेठ 'कन्हैयालालजी भडारी इन्दौर की अध्यक्षता मे सभा हुई जिसमे विद्वान् वक्ताओ और कवियो ने गुरुदेव के गुणगान किये।

कई सस्थाओ की मीटिंगें भी हुईं।

इस चातुर्मास मे श्री कन्हैयालालजी फिरोदिया आपश्री के सम्पर्क मे आए। फिरोदियाजी ने साम्प्रदायिक कारणो से किसी संत के प्रवचन सुनने की तो बात ही क्या, ३५ वर्ष की आयु तक किसी सत के दर्शन भी नहीं किये थे। ऐक्य का वातावरण बना, चातुर्मास मे आना-जाना प्रारम्भ हुआ। प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण करते ही उनकी कवि-वाणी फूट पडी—

मेरा प्रणाम लेना—

(तर्ज—ओ! दूर जाने वाले)

ओ जैन के दिवाकर! मेरा प्रणाम लेना।
आया हूँ मैं शरण मे, मुझको भी तार देना ॥टेक॥
करके कृपा पधारे, गुरुवर नगर हमारे।
उपकार ये तुम्हारे, भूलेंगे हम कभी ना ॥ १ ॥
वाणी अति सुहानी, निशदिन सुनाते ज्ञानी।
समझाते हैं खुलासा, है साफ-साफ कहना ॥ २ ॥



चमके सभा के अन्दर, तारो मे चाँद जैसे।
सूरत निरख-निरख कर, तरपत हुए हैं नयना ॥ ३ ॥'
तारन-तरन तुम्ही हो, प्यारे गुरु जहाँ मे।
तुमको जो कोई छोड़े, उसका कहाँ ठिकाना ॥ ४ ॥
गफलत मे सो रहा था, बरबाद हो रहा था।
अब खुल गई है आँखें, हीरे का मोल जाना ॥ ५ ॥
करना कसूर मेरा, सब माफ अन्न-दाता।
अर्जी करे "कन्हैया", माफी जरूर देना ॥ ६ ॥

रतलाम श्रीसघ के अध्यक्ष श्री नाथूरामजी सेठिया ने चातुर्मास समाप्ति पर नीम चौक श्रीसघ की ओर से 'श्री महावीर नवयुवक मडल' एव 'श्री धर्मदास मित्रमडल' को चाँदी की तश्तरी भेंट दी। कर्मचारियो, जैन स्कूल की अध्यापिकाओ तथा स्वयसेवको आदि को वस्त्र एव नकद रकम से सम्मानित किया।

विहार के दिन श्री चाँदमलजी गाँधी ने सपत्नीक शीलव्रत धारण किया। खुशी मे २०१ रुपये उछाल किये। निषेध करने पर भी अन्य जैन-अजैन बन्धुओ ने लगभग १००० रुपये उछाल दिये।

स्टेशन पर जैन-अजैन जनता एव सिनेमा मालिक मुल्ला नजर अलीजी ने व्याख्यान देने की पुरजोर प्रार्थना की। परिणामस्वरूप दो-तीन व्याख्यान वहाँ हुए।

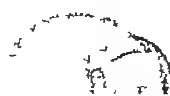
इस प्रकार जैन दिवाकरजी महाराज का रतलाम (स० २००६) का चातुर्मास अत्यन्त गौरवशाली रहा। इसमे सघ ऐक्य योजना में प्रगति हुई, कान्फ्रेंस के डेपूटेशन को सफलता मिली। गुरुदेव के प्रवचनों मे श्रोताओ की अत्यधिक सख्या रही। आपके उपदेशो से नवयुवको में अपूर्व उत्साह भरा तथा धर्म जागृति हुई। पर्युषण मे चार-पाँच हजार दर्शनार्थी बाहर से आए। इन सब कारणो से इसे ऐतिहासिक चातुर्मास की सज्ञा दी गई है।

रतलाम चातुर्मास में ही आपको ज्ञात हुआ कि ब्यावर मे स्थानकवासी सम्प्रदाय के मुनिवरो का सम्मेलन होने की चर्चा चल रही है। इस सम्मेलन मे सगठन पर विचार-चर्चा होनी थी। नागदा मे मालवकेसरी प० मुनि सौभागमलजी महाराज का मिलन होने पर विचार-विमर्श करके उपाध्याय प० प्यारचन्दजी महाराज तथा मालवकेसरीजी महाराज का सम्मेलन मे जाने का निश्चय हुआ। उपाध्याय प० मुनि प्यारचन्दजी महाराज को ब्यावर भेजते समय जैन दिवाकरजी महाराज ने अपना सन्देश दिया—

"सघ के कल्याण के लिए अपने सम्प्रदाय की सभी उपाधियो का त्याग कर देना। यदि सभी मुनिवर एकमत हो जायें तो आचार्य अपने सतो मे से मत बनाना। आचार्यश्री आनन्द ऋषिजी महाराज को ही आचार्य स्वीकार कर लेना।"

उपाध्यायजी महाराज ब्यावर पहुँचे। ६ सम्प्रदायो के मुनिवरो ने विचार-विमर्श करके एक समाचारी का निर्माण कर लिया, किन्तु एक आचार्य स्वीकार करने मे गतिरोध उत्पन्न हो गया। ५ सम्प्रदाय तो सहमत हो गए, किन्तु चार सहमत नही हुए। फलत 'श्री वीर वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ' की स्थापना हुई। श्री आनन्दऋषिजी को आचार्य बनाया गया।

उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने रामपुरा में गुरुदेव के दर्शन किए। यहाँ महावीर जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई।





एक दिन एक शिष्य ने आपसे कहा—

"गुरुदेव ! अपनी सम्प्रदाय की आचार्य आदि पदवियाँ समर्पित करके हमें क्या मिला ? हम तो घाटे मे ही रहे।"

आपने समझाया—

"हमे वणिक्वृत्ति से घाटा-नफा नही सोचना चाहिए। संघ-ऐक्य के लिए सर्वस्व समर्पण करना भी उचित है। आज का वीज जब वृक्ष बनेगा तब एकता के मधुर फल आएँगे।"

इन शब्दो से प्रकट होता है कि जैनदिवाकरजी महाराज का हृदय कितना उदार था और कितनी निष्ठा थी संघ एकता के प्रति !

अगर बात मान लेता

रामपुरा की ही एक घटना है। प्रभात वेला मे एक श्रावक आपके पास आया और चरण-स्पर्श करके मांगलिक सुनने की इच्छा प्रगट की। आपने मांगलिक सुनाकर कहा—'भद्र ! जाने से पहले नवकार मन्त्र की एक माला फेर लो।' श्रावक जल्दी मे था, बोला—"मैं नित्य सामायिक करता हूँ। उसी समय नवकार मन्त्र की माला भी फेर लेता हूँ। इस समय जल्दी मे हूँ।' और वह चला गया।

घर पहुँचा तो दरवाजे पर पुलिस का सिपाही खड़ा मिला। 'दरोगाजी बुला रहे हैं' सिपाही के मुँह से ये शब्द सुने तो उसके साथ जाना ही पड़ा। थाने मे उस समय दरोगाजी नही थे। श्रावक को बैठना पड़ा। शाम को चार वजे जब दरोगाजी आए तब पता चला कि उन्होंने तो उसके नाम-राशि किसी अन्य व्यक्ति को बुलाया था, लेकिन नाम-भ्रान्ति के कारण पुलिस वाले उसे ही बुला लाये। आखिर सायंकाल छुट्टी मिली। अब श्रावकजी को ध्यान आया कि 'महाराज साहब ने तो पहले ही भविष्य की ओर संकेत कर दिया था। मेरी ही भूल हुई। अगर गुरुदेव की बात मान लेता' ।' उसने स्थानक मे आकर अपनी भूल स्वीकार की और सतो के वचन के अनुसार आचरण करने का निश्चय कर लिया।

रतलाम से नागदा सुमेल होकर आपश्री भाणपुरा पधारे। तीनो जैन सम्प्रदायो ने मिलकर ऋषभ जयन्ती मनाई। ऋषभदेव भगवान को किसी न किसी रूप में सभी धर्म मानते हैं—यह आपने विस्तृत रूप मे यहाँ बताया।

सौंधवाड के अनेक गाँवो मे त्याग, प्रत्याख्यान और धर्म-प्रचार हुआ।

समता के सागर

स० २००७ का चातुर्मास करने के लिए आपके चरण कोटा की ओर बढ़ रहे थे। मार्ग मे आपश्री रामगंज मंडी में रुके। प्रवचन होने लगे। उसी समय श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के एक आचार्य भी वहाँ पधारे। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के कुछ प्रतिष्ठित सज्जनो ने एक मंच से प्रवचन देने की प्रार्थना की। आपने सहर्ष स्वीकृति दे दी। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्यश्री ने जैन दिवाकरजी महाराज की कुछ अनर्गल आलोचना की। उसके बाद आपका प्रवचन हुआ। आलोचना के प्रति आपने एक शब्द भी न कहा, केवल वीतराग वाणी ही सुनाई। आपके व्याख्यान से श्रोता बहुत प्रभावित हुए।

दोपहर को मुनि श्री मनोहरलालजी महाराज (मस्तरामजी) ने आपसे पूछा—'आपने खोटी आलोचना का उत्तर क्यो नही दिया ?' तो आपने फरमाया—'मुनिजी ! जनता वीतराग

↑ गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी महाराज के विहार का एक दृश्य

एक मच पर प्रवचन करते हुए श्वे० मू० आचार्य श्री आनन्दसागरजी
↓ गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी म० एव दिगम्वर आचायश्री सूर्यसागर जी।

↑ नन्दभवन के सामने अपार जन-समूह गुरुदेव के पार्थिव शरीर का अन्तिम दर्शन करने उमड रहा है।

कोटा मे स्थित श्री जैन दिवाकर जी महाराज के स्मारक का विहगम दृश्य। ↓



वाणी सुनने के लिए आती है, राग-द्वेष की बातें सुनने नही। जब उनका मन निर्मल होगा तो वे अपने शब्दो के लिए खुद ही पश्चात्ताप करेंगे।'

कितनी समता थी जैन दिवाकरजी के मन-मस्तिष्क मे !

दिगम्बर जैन आचार्य के साथ सम्मिलित व्याख्यान

झालरा पाटन—इस क्षेत्र मे मुनिराजो का आगमन कम ही होता है। वृद्धावस्था होते हुए भी जैन दिवाकरजी महाराज पधारे। उनके दस व्याख्यान हुए। इससे वहाँ काफी जागृति आई। जैन-अजैन सभी लोगो ने काफी सख्या मे प्रवचन लाभ लिया। त्याग प्रत्याख्यान भी हुए।

आप माँडक पधारे। दिगम्बर जैन आचार्यश्री सूर्यसागरजी महाराज वहाँ पहले से विराजमान थे। उन्होंने कुछ श्रावको द्वारा सम्मिलित व्याख्यान की इच्छा प्रगट की। आपने सहर्ष स्वीकृति दे दी। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्यश्री आनन्दसागरजी महाराज भी वही थे। सम्मिलित व्याख्यान होने लगे। इन व्याख्यानो का श्रोताओ पर बहुत अधिक अच्छा प्रभाव पड़ा। प्रवचन समाप्ति पर आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज ने आपसे कहा—

"जिस समय आप रामगज मडी मे प्रवचन दे रहे थे उस समय मैं गोचरी हेतु निकला था। मेरी इच्छा थी कि यदि आप आमत्रित करें तो मैं भी दो शब्द कहूँ।"

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन सकोच का कारण यह रहा कि किसी अन्य दिगम्बर साधु ने हमारे साथ आप जैसा सद्व्यवहार नही किया था।"—आपश्री ने बताया।

इसके बाद तीनो सतो मे स्नेहपूर्ण बातचीत होती रही।

जैन दिवाकरजी महाराज मडला मे एक भवन की दूसरी मजिल मे विराज रहे थे। आचार्यश्री सूर्यसागरजी महाराज नीचे से निकले। जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—

"मैं तो बडी देर से आपकी प्रतीक्षा मे था।"

आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज ने नीचे से ही उत्तर दिया—

"आप हमसे बडे है, अब तो कोटा मे ही मिलन होगा।"

अन्तिम चातुर्मास (स० २००७) . कोटा—ऐक्य का आधार

इस चातुर्मास मे तपस्वी श्री माणकचन्दजी महाराज ने ४२ उपवास किये। उस दिन भी तीनो सम्प्रदायो के आचार्यों का व्याख्यान सम्मिलित हुआ।

श्री मोहनलालजी गोलेच्छा हमीरगढ़ वालो की दीक्षा गुरुदेव के पास हुई। पत्नी और पुत्र तथा परिवार छोडकर आपने दीक्षा ली।

स० २००७ मे कोटा मे दिगम्बर जैन आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आनन्दसागरजी महाराज और जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज—तीनो का वर्षावास हुआ।

प्रत्येक बुधवार को सम्मिलित प्रवचन होते। तीनो सत परस्पर वात्सल्यभाव प्रदर्शित करते।

जैन दिवाकरजी महाराज एकता की कड़ियाँ जोडने मे लगे।

कलकत्ता से तेरापथ समाज के अग्रगण्य दानवीर सेठ सोहनलालजी दुग्गड दर्शनार्थ आए। तीनो सतो मे सौहार्द देखकर हर्षविभोर हो गए। प्रसन्न होकर हृदयोद्गार व्यक्त किए—

"पूज्य महाराज श्री ! आप तीन सतो के मिलन से तीन दिशाओ मे तो उजाला हो गया है,



एक दिशा अभी बाकी है। यहाँ से आप तीनो ही जयपुर पधारें। मैं वहाँ आचार्यश्री तुलसी को लाने का पूरा-पूरा प्रयास करूँगा। यदि मैं सफल हो गया तो चारो दिशाएँ जगमगा उठेंगी। जैन सघ के चारो सम्प्रदाय एक मच पर आ जायेंगे और जिनशासन का विगुल चारो दिशाओं में बज उठेगा।"

तीनो सतो ने भी जयपुर पधारने की भावना व्यक्त की।

लेकिन कौन जानता था कि दुग्गडजी की भावना पूरी नहीं हो सकेगी। भवितव्यता कुछ और ही थी। कोटा वर्षावास जैन दिवाकरजी महाराज का अन्तिम चातुर्मास होगा और सघ ऐक्य की योजना धरी-की-धरी रह जायगी।

दिवाकरजी का ऊर्ध्वगमन

कोटा चातुर्मास पूर्ण होने मे अभी १५ दिन शेष थे। आपकी नाभि के नीचे एक फुन्सी हो गई। पीडा बढती गई। ज्वर भी हो गया। श्रद्धालुभक्तो ने चातुर्मास के बाद भी विहार न करने की प्रार्थना की। लेकिन आपका तन ही अस्वस्थ था, आत्मा नही। स्वस्थ-सबल आत्मा साधुचर्या मे ढील नही आने देती।

चातुर्मास का समय पूरा होते ही कोटा नगर से विहार करके आप नयापुरा के नन्द-भवन मे पधारे। यहां स्वास्थ्य और गिरा। लघुशका परठते समय श्रीचन्दन मुनिजी को उसमे रक्त-विन्दु दिखाई दिए। तुरन्त उपाध्याय श्री प्यारचदजी महाराज को सूचित किया गया। उपाध्यायश्री ने डाक्टर बुलवाया। डॉक्टर मोहनलालजी ने पेट में फोडे की आशका की। कोटा श्रीसघ चिन्तित हो गया। सभी सत सेवा मे जुट गए, लेकिन रुग्णता बढ़ती गई। रुग्णता का समाचार विजली के समान भारत भर मे फैल गया। श्रद्धालुभक्त मोटर, रेल, विमान आदि के द्वारा आने लगे।

स्वर्गवास से तीन दिन पहले आपने उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने दवाई लेने की अनिच्छा प्रगट की।

इस अवसर पर कई सन्त आपकी सेवा मे तन-मन मे लगे हुए थे। सेवामूर्ति तपस्वी श्री मोहनलालजी ने जो अग्लान भाव से सेवा की, वह चिरस्मरणीय रहेगी।

मार्गशीर्ष शुक्ला ६, रविवार की प्रात. वेला मे प० मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज, प्रवर्त्तक प० श्रीहीरालालजी महाराज के परामर्श से जैन दिवाकरजी महाराज को उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने सथारा करवा दिया। कुछ मुनिगण शौच आदि शारीरिक कृत्यो से निवृत्त होने गए। उनके लौटने से पहले ही गुरुदेव ने शरीर त्याग दिया।

दिवाकर अस्त होता है, नीचे को गमन करता है और जैन दिवाकरजी महाराज के ज्ञानपुज आत्मा ने ऊपर की ओर ऊर्ध्वगमन किया।

आपश्री के देह की अन्तिम यात्रा नन्दभवन से प्रारम्भ होकर नयापुरा, लाडपुरा, सदर वाजार, घण्टाघर आदि स्थानो पर होती हुई स्वर्गीय सेठ केसरीसिंह जी बाफना की बगीची मे उनकी छतरी के निकट चम्बल के तट पर पहुँची। अन्तिम यात्रा मे १५-२० हजार से अधिक श्रद्धालुजनो की भीड थी। सभी ने श्रद्धा के पुष्प और आँसुओ का अर्घ्य दिया। मुनि श्री चौथमलजी महाराज का पार्थिव शरीर भस्म हो गया।

ऑल इण्डिया रेडियो पर आपके स्वर्गगमन का समाचार प्रसारित हुआ तो सबके मुख से ऐसे उद्गार निकले—'ऐसे सन्त सैकडों वर्षों मे अवतरित होते हैं।'



जन-जन मे व्याप्त सस्कार-स्मृति · एक झलक

आज के युग मे शोक-सवेदनाएँ प्रगट करने का फैशन-सा हो गया है। विरोधियो के प्रति भी दो शब्द कहना आधुनिक शिष्ट और सभ्य समाज मे आवश्यक-सा माना जाने लगा है, रीति-सी हो गई है यह, लेकिन वास्तविक सवेदना जन-हृदय का उद्गार होती है। ऐसी ही सवेदना स्मृति मौलाना नूरुद्दीन ने जैन दिवाकरजी के प्रति व्यक्त की थी। मौलाना मन्दसौर के निवासी थे और उनका पुत्र विक्टोरिया स्टेशन के पास बम्बई मे घडीसाज का काम करता था। मौलाना एक बार बम्बई गए तो कादावाडी जैन स्थानक के बाहर लगे मडप को देखकर श्रावको से पूछने लगे—

"क्या बाबा साहब जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज आने वाले हैं। उनका व्याख्यान कब होगा, कितने दिन रुकेंगे ? मुझे बता दें तो मुझ नाचीज को भी सुनने का मौका मिल जाया करेगा।"

"उनका तो कुछ साल पहले कोटा मे स्वर्गवास हो चुका है।" श्रावको ने शोक-भरे शब्दो मे बताया।

"या खुदा ! यह तूने क्या किया ?" मौलाना का शोकाकुल स्वर निकला—"ऐसी रूहानी ताकत हम से जुदा हो गई। काश ! उस सच्चे फकीर का दीदार मुझे नसीब हो जाता। नेक दिल फरिश्ते तुझे मेरा सलाम ! बार-बार सलाम !!"

कहते-कहते मौलाना की आँखें टपक पडी, आवाज भर्रा गई। भारी कदमो से चले गए।

मौलाना की ओर श्रावकगण देखते ही रह गए।

यह थी वास्तविक सवेदना, जो इस्लाम धर्म के अनुयायी मौलाना के दिल से जुबान पर आ गई थी।

इसी प्रकार का प्रसंग पजाबकेसरी प्रखरवक्ता श्रद्धेय श्री प्रेमचन्दजी महाराज के जीवन मे स० २००६ मे आया। वे अपने शिष्य परिवार के साथ कुथुवास की ओर गमन कर रहे थे। मध्यप्रदेश के एक जगल मे मार्ग भूल कर भटक गए थे। चारो ओर बीयावान जगल था। नगे पाँवो मे काँटे चुभ रहे थे, लेकिन मुनिवर समता भाव से चल रहे थे। अचानक ही एक भील सामने आया और हाथ जोडकर बोला—

"मत्यएण वंदामि' महाराज साहब ! आप लोगो को कहाँ जाना है। इस बीहड जगल मे कैसे आ फँसे ? मुझे बताएँ तो मैं आपको मार्ग पर लगा दूँ।"

वनवासी भील को इतनी शिष्ट भाषा बोलते देख श्रद्धेय मुनिजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपना गंतव्य स्थान 'कुथुवास' बताया। भील बोला—

"बापजी साहब ! वह रास्ता तो आप काफी दूर छोड आये हैं। चलिए, मैं बताता हूँ।"

भील आगे-आगे चल रहा था। श्रद्धेय श्री प्रेमचन्दजी महाराज ने पूछा—

"भील तू तो निर्जन वन मे रहता है। लेकिन तेरे दिल मे हम लोगो के प्रति इतनी सहानुभूति कैसे है ? क्योकि तुम लोग तो मास-मदिरा आदि के सेवन करने वाले हो।"

"राम-राम केहिए बापजी ! मास-मदिरा का नाम भी मत लीजिए।"

मुनिगण और भी चकित रह गए। भील ने ही आगे कहा—

"बापजी ! चौथमलजी महाराज ने मेरा जीवन ही बदल दिया। वे ही मेरे गुरुदेव थे। आप लोगो ने उनका नाम तो सुना ही होगा। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने शिकार, मास-मदिरा का त्याग कर दिया है। अब खेती करके सुख-सतोषपूर्वक जीवन बिताता हूँ।"



भील की बात सुनकर मुनिगण भाव-विह्वल हो गए।

इतना ही अन्तर है गगन मे चमकने वाले दिवाकर और धर्मरूपी प्रकाश फैलाने वाले जैन दिवाकरजी महाराज मे। गगन दिवाकर के अस्त होने पर चारो ओर अन्धकार फैल जाता है, लेकिन जैन दिवाकरजी महाराज के स्वर्गगमन के पश्चात् भी लोगो के हृदय मे अन्धकार प्रवेश नहीं कर सका, जो शुभ सस्कार उस ज्ञान के प्रकाश पुज ने लोगो के हृदय मे भरे वे दमकते रहे, चमकते रहे।

शास्त्रीय शब्दो मे व्यक्त करें तो हमारी भावना है—

इह सि उत्तमो भन्ते, पच्छा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तम ठाण, सिद्धि गच्छसि नीरओ॥

—पूज्यवर! इस लोक मे आपका जीवन उत्तम है, परलोक मे भी आपका जीवन उत्तम रहेगा और जो उत्तमोत्तम स्थान मोक्ष है, वहाँ भी आप कर्मरहित होकर जायेंगे।

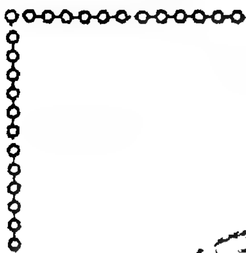
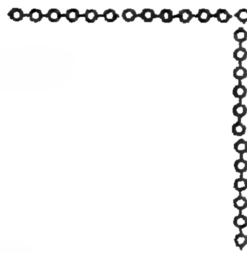


दिवाकरोऽयम्

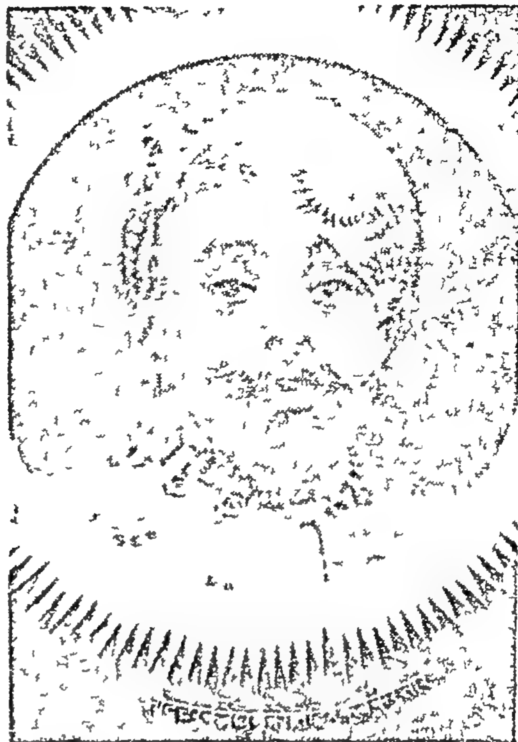
दिव्याकरो द्युतियुतोऽपि दिवाकरोऽयम्।
भव्याकरो विजित ज्ञान निशाकरोऽयम्॥
शिक्षाकरो हिमविचार सुधाकरो यम्।
विद्याधरो नरवरोऽपि दिवाकरोऽयम्॥
व्याख्यान-ज्ञान-जगतामधिकार स्वामी।
व्याख्यान-कोश-परितोष सुधारनामी॥
दिव्याकरो रुचिकरोऽत्र चतुर्थमल्ल.।
सत्यार्थ-ध्यान-चरितार्थ विकासमल्ल॥

—श्रीधर शास्त्री

स्व० श्री जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज के सदुपदेशो से प्रभावित तथा प्रतिबोधित विशिष्ट शासक वर्ग तथा श्रीमंत जन


हिन्दू-कुल-सूर्य हिज हाइनेस महाराजाधिराज महाराणा सर फतहसिंह जी साहब बहादुर, जी सी एस आई, जी सी आई ई, जी सी व्ही ओ ऑफ उदयपुर (मेवाड)



हिन्दू-कुल-सूर्य हिज हाईनेस महाराजाधिराज महाराणा सर भूपालसिंह जी साहब बहादुर के. सी. आई ई ऑफ उदयपुर (मेवाड)



नवाब साहब श्री सर शेर मुहम्मदखां जी बहादुर, के जी सी आई ई पालनपुर (गुजरात)



हिज हाइनेस महाराजा सर मल्हारराव बाबा साहेब पवार, के सी एस आई. देवास (मालवा)



जैन दिवाकरजी महाराज
के
सम्पर्क में आए विशिष्ट व्यक्तियों की सूची

राणा-महाराणा

(१) हिन्दूकुल सूर्य उदयपुर नरेश महाराणा फतेहसिंहजी
(२) „ „ „ श्री भूपालसिंहजी
(३) श्री हिम्मतसिंहजी, उदयपुर नरेश श्री फतेहसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता
(४) जोधपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी, Lieutenant General, Sir, G C S I, G C V O, G C B, L D D, C L, A D C, Knight of Saint John of Jerusalem, Regent of Marwar State
(५) रतलाम नरेश श्री सज्जनसिंहजी
(६) कोटा नरेश श्री हिम्मत बहादुरसिंहजी
(७) देवास नरेश (सीनियर) श्रीतुकोजीराव बावा साहब पँवार
(८) देवास नरेश (जूनियर) श्री मल्हारराव बावा साहब पँवार
(९) किशनगढ नरेश श्री मदनसिंहजी
(१०) बनेड़ा नरेश श्री अमरसिंहजी
(११) भिण्डर के महाराज श्री भूपालसिंहजी
(१२) बडी सादडी के राजराणा श्री दुलहसिंहजी
(१३) केरिया के महाराज श्री गुलाबसिंहजी
(१४) करजाली के महाराज श्री लक्ष्मणसिंहजी
(१५) पालणपुर के नवाब श्री शमशेरबहादुर खाँ
(१६) पालणपुर नवाब श्री शमशेर बहादुर खाँ के दामाद श्री जबरदस्त खाँ
(१७) वेडोला नरेश ठाकुर सग्रामसिंहजी
(१८) शिकारपुर (मारवाड) के ठाकुर श्री नाहरसिंहजी
(१९) एकडा के ठाकुर श्री मोहनसिंहजी
(२०) ओछडी के ठाकुर श्री भूपालसिंहजी
(२१) पुढोली के ठाकुर श्री प्रतापसिंहजी
(२२) रोडाहेडा के ठाकुर श्री सज्जनसिंहजी
(२३) घटियावली के ठाकुर श्री शम्भूसिंहजी
(२४) बदनौर के ठाकुर श्री भूपालसिंहजी
(२५) मारोडी के ठाकुर श्री अमरसिंहजी तथा श्रीयशवन्तसिंहजी
(२६) कोरडी के ठाकुर श्री फत्तेसिंहजी
(२७) कोर के ठाकुर श्री घोकलसिंहजी
(२८) फतेहपुर के ठाकुर श्री कल्याणसिंहजी
(२९) मोखमपुर के ठाकुर श्री हमीरसिंहजी
(३०) पाली के ठाकुर श्री अभयसिंहजी और उनके छोटे भाई श्री मानसिंहजी

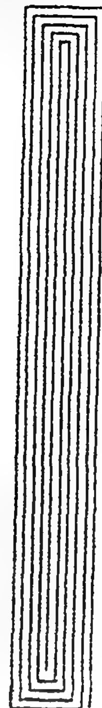


(३१) लसाणी के ठाकुर श्री खुमानसिंहजी
(३२) करेडा के ठाकुर श्री उम्मेदसिंहजी
(३३) पिपलोद के ठाकुर ··· ····
(३४) साहरगी के ठाकुर जोरावरसिंहजी
(३५) नीमली के ठाकुर श्री महीपालसिंहजी और उनके भाई श्री राजेन्द्रसिंहजी
(३६) घटियावली के ठाकुर श्री यशवन्तसिंहजी और उनके काका श्री जालिमसिंहजी
(३७) कोशीथल के ठाकुर श्री पद्मसिंहजी तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जुवानसिंहजी
(३८) जावरा के ठाकुर ···· ····
(३९) ताल के ठाकुर श्री उम्मेदसिंहजी
(४०) अरणोदा के ठाकुर श्री हिम्मतसिंहजी
(४१) अठाणा के ठाकुर रावत विजयसिंहजी
(४२) पारसोली के राव श्री रत्नसिंहजी (मेवाडाधीश के १६ जागीरदारों में से एक)
(४३) माटखेडी के राव श्री विजयसिंहजी
(४४) गोगू दा के राव श्री पृथ्वीसिंहजी और उनके पौत्रश्री दलपतसिंहजी
(४५) वाहेडा के राव श्री नाहरसिंहजी और उनके सुपुत्र श्री नारायणसिंहजी
(४६) भगवानपुरा के रावत श्री सुजानसिंहजी
(४७) वाठरडे के रावत श्री दिलीपसिंहजी
(४८) कुरावड के रावत श्री बलवन्तसिंहजी
(४९) बम्बोरे के रावत श्री मोडसिंहजी
(५०) पारसोली के रावत श्री लालसिंहजी
(५१) सलुम्बर के रावत श्री ओमाडसिंहजी
(५२) देवगढ के रावत श्री विजयसिंहजी (मेवाडाधीश के सोलह उमरावों में से एक—तीन लाख के जागीदार)
(५३) हमीरगढ के रावत श्री मदनसिंहजी
(५४) कोठारिया के रावत श्री मानसिंहजी
(५५) लूणदे के रावत श्री जवानसिंहजी
(५६) कानोड़ के रावत श्री केसरीसिंहजी
(५७) गैंता सरदार श्री तेजसिंहजी और उनके छोटे भाई श्री यशवन्तसिंहजी
(५८) कुनाडी के कप्तान श्री दौलतसिंहजी
(५९) नारायणगढ के जागीरदार श्री हफीजुल्ला खाँ
(६०) गलथनी रियासत के जागीरदार श्री केसरीसिंहजी देवडा
(६१) नन्दराय के जागीरदार · · ·
(६२) मोरवडे के कुमार साहब श्री सरदारसिंहजी
(६३) दासफा परगना (मारवाड) के कुंवर श्री चमनसिंहजी
(६४) कोठारी बलवन्तसिंहजी (उदयपुर स्टेट के प्रसिद्ध जागीरदार और महाराज के दीवान)

अधिकारी

(६५) श्री सी० एस० चैनेविक्स ट्रेन्स, सेटिलमेण्ट आफीसर तथा रेवेन्यू कमिश्नर मेवाड





(६६) श्री एफ० जी० टेलर चित्तौड के अफीम विभाग के चीफ इस्पैक्टर
(६७) अँग्रेज कर्नल (सेनाध्यक्ष)
(६८) मेजर सी० डब्लू० एल० हार्वे, चीफ मिनिस्टर, अलवर
(६९) दीवान वहादुर उम्मेदमलजी, लोढा
(७०) जोधपुर स्टेट के दीवान के सुपुत्र श्री कान्हमलजी
(७१) सैलाना स्टेट के सरकार श्री दिलीपसिंहजी
(७२) श्री वालमुकुन्दजी भैया साहव, उज्जैन के सरसूघा राज्याधिकारी
(७३) कुँवर गोपाललालजी कोटिया (सुपुत्र श्री केसरीलालजी कोटिया, बूंदी)

विद्वान्

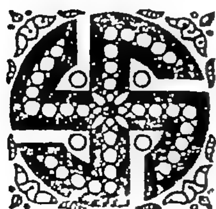
(७४) भुसावल के आनरेरी मजिस्ट्रेट मौलवी श्री खानवहादुरजी
(७५) जर्मन प्रोफेसर............ ...
(७६) स्याद्वादवारिधि पडित गोपालदासजी वरैया (मुरैना निवासी)
(७७) आनरेरी मजिस्ट्रेट दानवीर सेठ कुन्दनमलजी कोठारी, व्यावर
(७८) श्री किल्ला (चित्तौडगढ) के चारभुजाजी मन्दिर के महन्त श्री लालदास जी
(७९) श्री कन्नोमलजी सेशन जज, (धौलपुर निवासी)
(८०) सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् प० लालन
(८१) श्री वाडीलाल मो० शाह, वम्बई

सेठ-साहूकार

(८२) राय वहादुर सेठ श्री छगनमलजी
(८३) सेठ दामोदरदासजी, राठी
(८४) सरसेठ हुकमचन्दजी, इन्दौर
(८५) श्री अम्वादासजी डोसाणी (श्वेताम्वर जैन, स्थानक० कान्फ्रेन्स के जन्मदाता)
(८६) श्री लालचन्द जी कोठारी, व्यावर
(८७) श्री सेठ स्वरूपचन्दजी भागचन्दजी, कलमसरा
(८८) श्री सेठ कालूरामजी कोठारी

[नोट—श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सम्पर्क मे आये विशिष्ट व्यक्तियो की सूची वहुत लम्बी है। यहाँ तो कुछ नाम ही दिये जा सके हैं।]

—सम्पादक



"मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की भी समीक्षा करनी चाहिए। प्रत्येक को सोचना चाहिए कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिए? वर्तमान मे कैसा है? उसमे जो कमी है, उसे दूर कैसे किया जाए? यदि यह कमी दूर न की गयी तो क्या परिणाम होगा? इस प्रकार जीवन की सही-सही आलोचना करने से आपको अपनी बुराई-भलाई का स्पष्ट पता चलेगा। आपके जीवन का सही चित्र आपके सामने उपस्थित रहेगा। आप अपने को समझ सकेंगे।

ब्यावर, ८ सितम्बर १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी महाराज



"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातो से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयो के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध मे वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया-तले अंधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरो को देखती है, अपने-आपको नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यो पर तो बहस कर सकते हैं, मगर अपने को नही जानते।

ब्यावर, ८ सितम्बर १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी महाराज



'जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नही रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नही रह सकता और सूरज के साथ रात नही रह सकती, उसीप्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान मे दो तलवारें कैसे समा सकती हैं? इसी प्रकार जहाँ सत्य का तिरस्कार होगा, वहाँ झूठ का प्रसार होगा। —मुनिश्री चौथमलजी महाराज



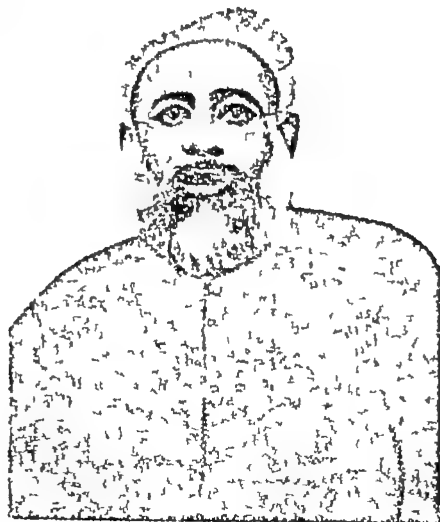
हिज हाईनेस महाराजा श्री दिलीपसिंह जी साहब बहादुर, सैलाना (मालवा)



रावत जी साहब श्री केशरीसिंह जी कानोड (मेवाड)



श्रीमान रायबहादुर नहारसिंह जी साहब बेदला (मेवाड)

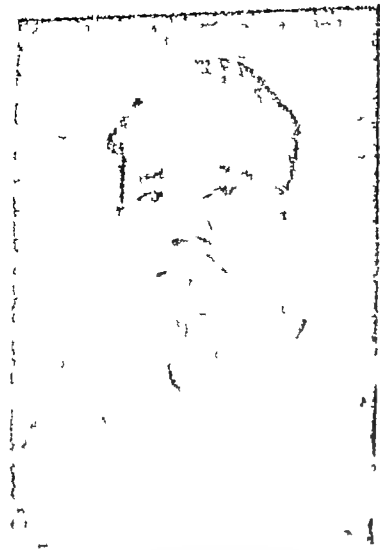


खान साहब सेठ नजरअली अलावक्स मिल (उज्जैन) के मालिक सेठ लुकमान भाई (उज्जैन)

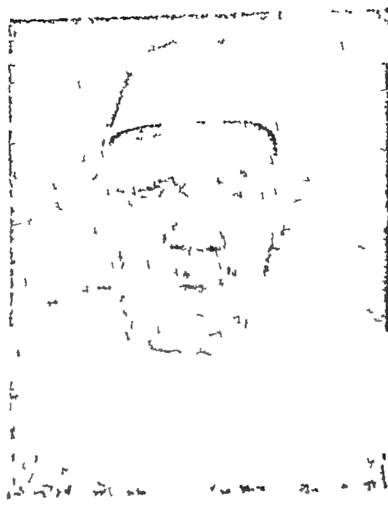


दानवीर रायबहादुर सेठ कुन्दनमलजी कोठारी आनरेरी मजिस्ट्रेट, ब्यावर

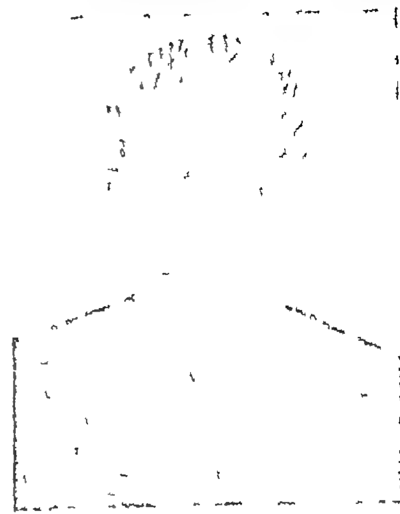
श्री जैन दिवाकर जन्म शताब्दी महासमिति के कार्यकर्तागण



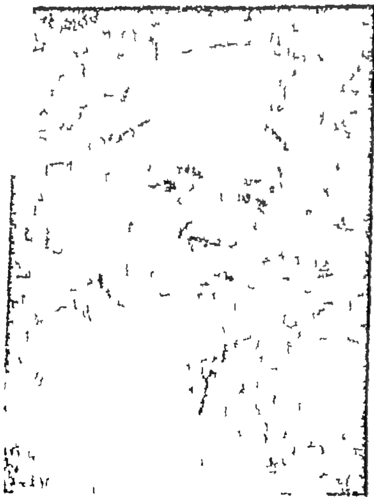
श्रीमान फकीरचन्दजी मेहता
(इन्दौर-भुसावल)



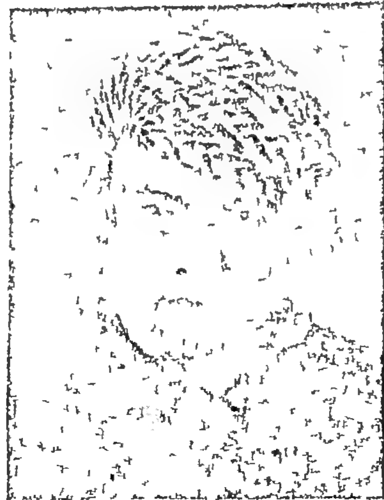
श्रीमान सौभाग्यमलजी कोचेट्टा
(जावरा)



श्रीमान कन्हैयालालजी नागौरी
(उदयपुर)



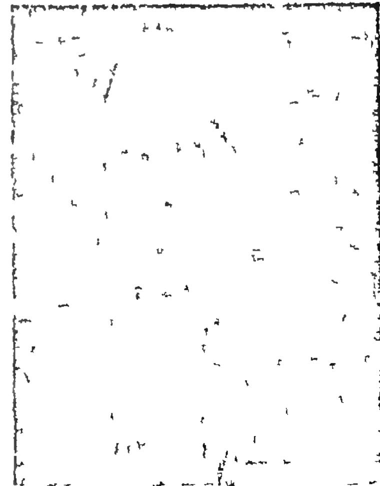
श्रीमान सुजानमलजी मेहता
(जावरा)



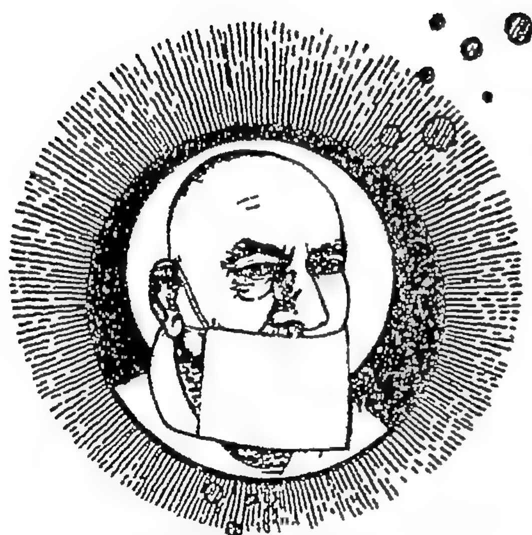
श्रीमान गेहरीलालजी मेहता
(उदयपुर)



श्रीमान चांदमलजी मारू
मन्दसौर (म प्र)



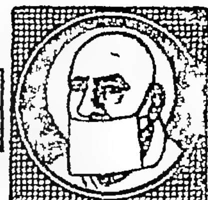
श्रीमान बापूलालजी बोथरा
रतलाम (म प्र)



घटनाओं में बोलता व्यक्तित्व

स्मृतियों के स्वर

श्री जैन दिवाकर - स्मृति - ग्रन्थ



वाणी के देवता

✡ अशोक मुनि साहित्यरत्न



परम श्रद्धेय गुरुदेव जैन दिवाकर जी महाराज वाणी के जादूगर थे। उनकी वाणी श्रोताओ पर अजब प्रभाव छोड जाती थी, उनके स्वय के अनुभव जब उनकी वाणी के द्वारा मुखर उठते थे तो श्रोताओ का मानस झकझोर देते थे और जीवन सुधारने को तत्पर कर देते थे।

जिनेन्द्र देव की वाणी जब बरसती थी तो वह खाली नही जाती थी, उस वाणी को सुनकर कोई न कोई प्राणी देशव्रती या सर्वव्रती बनता ही था। जिनेन्द्रदेव के दर्शन हमने नही किये, उनके श्रीमुख से वाणी नहीं सुनी किन्तु गुरुदेव के दर्शन किये हैं, उनकी वाणी सुनने का महिनो तक स्वर्णिम अवसर मिला है। उनकी वाणी से कई लोगो का हृदय बदला है, और अपने पापों का पश्चात्ताप करते देखा है। लोगो को करुणार्द्र हो आंखो से सावन-भादो बरसाते देखा है, हृदय प्रक्षालित करते देखा है। पापियो को जीवन सुधारते देखा है। वारागनाओ को सन्नारी बनते देखा है। शिकारियो को शस्त्र फेंकते देखा है। मद्यपायी को बोतलें छोडते देखा है, बीडी-सिगरेट वालो को बण्डल और पेकेट फेंकते देखा है। सम्पन्न श्रेष्ठियो को वैरागी बनते देखा है। अधार्मिको को धर्मशीतल छाया मे आते देखा है। नास्तिको को आस्तिक बनते देखा है।

वाणी के प्रभाव के कतिपय : चमत्कारी प्रसंग

इन्दौर का प्रसग सवत् १९८० की साल का चातुर्मास गुरुदेव का इन्दौर था, इन्दौर के इतवारी बाजार मे सेठ हुक्मीचदजी के रग महल मे गुरुदेव चातुर्मासस्य विराजमान थे, व्याख्यान भी वहीं होते थे। इन्दौर की जनता मे व्याख्यानो की खूब चर्चा थी और जनता भादो की घटा के समान उमड़ती थी। व्याख्यानोपरात जनता जब स्थान से निकलती तो मार्ग ऐसा अवरुद्ध हो जाता कि वाहन रुक जाते थे।

व्याख्यान की महिमा सेठ हुक्मीचन्दजी तक भी पहुँची, सेठजी स्वय जैन तत्वो के जानकार थे तथा दश लक्षणी पर्व पर प्रवचन भी करते। गुरुदेव का व्याख्यान सुनने एक बार सेठ जी आतुर बने और समय निकाल कर गुरुदेव के व्याख्यान मे आये।

व्याख्यान धारा-प्रवाह चल रहा था। सेठजी भी उस वाणी-प्रवाह मे अवगाहन करने लगे और हृदय पर उस वाणी का ऐसा असर हुआ कि उस वर्ष के दस-लक्षणी पर्व के प्रवचनो मे कहने लगे कि प्रवचन सुनना हो तो चौथमलजी महाराज का सुनना चाहिए। उनका मैंने एक प्रवचन सुना है और एक ने ही मेरे हृदय पर गहरा असर किया है। अगर उनके दो-तीन प्रवचन और सुन लूं तो सम्भव है मुझे ससार छोड कर सयम-पथ पर लगना पडे, उनकी वाणी मे ऐसा ही प्रभाव है।

जोधपुर राजस्थान मे जैन समाज का बडा क्षेत्र है। मध्य प्रदेश और राजस्थान मे इतना बडा जैन समुदाय अन्यत्र मिलना कठिन है। यो जोधपुर का जैन समाज भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो, उप-सम्प्रदाय मे बँटा हुआ है। गुरुदेव का संवत् १९८४ की साल का चातुर्मास जोधपुर था। जोधपुर मे अन्य जैन सम्प्रदायो के चातुर्मास भी थे, पर गुरुदेव के व्याख्यानो मे जनता उमड पड़ती थी।



पर्युषण के दिन निकट आने वाले थे। लोगो ने अजैनो से अगता पलाने की बात छेड़ी, गुरुदेव ने स्पष्ट कहा—"जैनी अपना आरम्भ सम्भारम्भ छोड़े नही, अपना व्यापार बन्द करे नहीं, अपना धन्धा चालू रखकर दूसरो का धन्धा बद कराने की आशा रखे यह कैसे सम्भव है? दूसरो से त्याग की अपेक्षा रखने वालो को स्वय भी त्याग करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।"

वाणी का वह जादुई प्रभाव पड़ा कि आपकी प्रेरणा से वहाँ सम्पूर्ण जैन समाज ने व्यापार बद रखा। और आज भी प्रत्येक वर्ष गुरुदेव की वह वाणी अपना रग दिखाती है अर्थात् अभी भी जोधपुर मे पर्युषण मे सम्पूर्ण जैन समाज का बाजार बंद रहता है। इसी का ही परिणाम है कि सेठो के साथ मुनीमो को तथा वेतन-भोगियो को भी धर्म-ध्यान करने का सहज अवसर मिलता है।

एक प्रसंग मेरा भी है—

सवत् १९९७ का गुरुदेव का जोधपुर चातुर्मास था। मेरी जन्मभूमि जोधपुर है और मेरा ससारी परिवार सनातनी है, इसलिए गुरुदेव के सम्पर्क का तो प्रसग ही नहीं। हाँ, राम मदिर या कृष्ण मदिर मे जाने के प्रसग तो आते ही थे। मेरी छोटी उम्र थी और बचपन मे स्वभाव चचल रहता है। एक बार प्रात मैं पुरानी धानमंडी में घनश्यामजी के मदिर जा रहा था, मदिर के पास एक अर्ध-विक्षिप्त व्यक्ति को हमउम्र बच्चे छेड रहे थे, मजाक उड़ा रहे थे। वह ज्यो-ज्यो उत्तेजित होता हम खुशियाँ मनाते। बचपन की उम्र, अज्ञान दशा और सत्सग का अभाव, क्या समझे दूसरो की पीडा को। वह वहाँ से हटकर मार्ग की ओर बढता जा रहा था और हम उसे छेडते जा रहे थे। वह वहाँ से चलते-चलते गुरुदेव के व्याख्यान स्थल आहोर की हवेली में चला गया। हम भी उनके पीछे-पीछे हवेली मे चले गये, वहाँ हजारो की मानव-मेदिनी गुरुदेव का व्याख्यान श्रवण कर रही थी।

मैंने पहली बार गुरुदेव को सुना, और सुनते ही नयन-श्रवण एव मन उसमे रम गया। महात्मा तुलसीदास के शब्दो मे—

> **धाये धाम काम सब त्यागे**
> **मनहू रंक निधि लूटन लागे।**

एक वाणी सुनी और पागल का पीछा छोड उस वाणी का चिन्तन करने लगा। वाणी का चस्का लगा और अब रोज व्याख्यान सुनने को जाने लगा। उस वाणी का ही प्रभाव था कि आज मैं जैनधर्म की पतितपावनी श्रमण दीक्षा प्राप्त कर उत्तम मार्ग को प्राप्त कर सका।

यह प्रसग सवत् २००५ का है। उन दिनो गुरुदेव अपने शिष्य समुदाय के साथ जोधपुर का ऐतिहासिक वर्षावास चादी हॉल के सामने सचेती बन्धुओ की हवेली मे बिता रहे थे। व्याख्यान भी वहीं होते थे, क्योकि हजारो व्यक्तियों के बैठने की वहाँ जगह थी। गुरुदेव के प्रभावपूर्ण व्याख्यानो की धूम मच गई। बाजारो मे, गली, मे घरो मे एव जनता में काफी चर्चा थी। उपदेशो को सुनने स्वत. ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण, तम्बोली, माली, मोची, मुसलमान आदि अनेक जाति वाले लाभ उठा रहे थे।

जीवनस्पर्शी व्याख्यानो की महक धीरे-धीरे वेश्याओ के मौहल्ले तक पहुँची। उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री चौथमलजी महाराज के मर्मस्पर्शी व्याख्यान चाँदी हॉल के सामने होते हैं, हजारो नर-नारी व्याख्यान सुनने को उपस्थित होते हैं, बैठने के लिए जगह भी कठिनता से मिलती है, कोई भी जाति, कुल, परिवार वाला उस ज्ञान गंगा मे पावन हो सकता है। वहाँ उपदेश सुनने की किसी को रोक-टोक नहीं है।



एक दिन अचानक वेश्याओ का समूह व्याख्यान मे आया और व्याख्यान सुनने लगा, गुरुदेव की वाणी ने वह जादू दिखाया कि अब वेश्याएँ रोज व्याख्यान मे आने लगी। कई वेश्याओ ने उस वाणी के प्रभाव से अपना जीवन ही वदल दिया। सदा-सदा के लिए वेश्यावृत्ति को त्यागकर सद्-गृहस्थ वन गईं। जोधपुर की इस ऐतिहासिक घटना को अभी काफी नर-नारी याद करते हैं।

ऐसा था गुरुदेव की वाणी का प्रभाव और ऐसे थे वे वाणी के जादूगर! जिस वाणी ने हजारो बुझते दीपक जला दिये, भटकती आत्माओ को कल्याण-पथ पर अग्रसर कर दिया, उस वाणी देवता गुरुदेव को शत-शत वन्दना!



(१) वशीकरण मंत्र

✡ श्री रमेशमुनि 'सिद्धान्ताचार्य'

मानव स्वभाव वडा विचित्र होता है, पूछिये कैसे? वह अपने स्वच्छन्द स्वभाव, वहके हुए मन और अनियत्रित इन्द्रियो पर लगाम लगाने की वात कभी सोचता ही नही है। हुई न विचित्र वात?

इससे भी विचित्र वात तो यह है कि वह दूसरो की स्वाधीनता पर नियन्त्रण और अकुश लगाने के लिए सदैव तैयार रहता है। सत्पुरुषो और शुद्धात्माओ के मन को यह प्रसग निरन्तर आन्दोलित करता रहता है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का वर्षावास मन्दसौर (म० प्र०) मे चल रहा था, वात आज से ५८ वर्ष पूर्व (सन् १६१८ ई०) की है। कहने की आवश्यकता नही, श्रोताओ की भीड इस कदर हुई कि—विशाल मण्डप मे तिल धरने की जगह नही वची। सामायिक चिन्तन चल रहा था इतने में भीड को दूर हटाती हुई एक वुढिया, जो जैन समाज से सम्वन्धित नही थी, महाराज श्री के विलकुल नजदीक पहुँच गई और कहने लगी—

"गुरुजी! आपके पास हजारो लोग आते हैं, आपकी वात मानते है आप जो कहते हैं उसे करने के लिए तैयार रहते हैं, आखिर इसका कारण क्या है कि—सभी आपके वश मे हो जाते हैं? मुझे भी आप ऐसा वशीकरण मत्र वता दीजिए, जिससे शान्ति मिले, क्योकि भगवान का दिया हुआ मेरे पास सब कुछ है, केवल अन्दर की शान्ति नही है। सो, आपकी वडी कृपा होगी।"

महाराज श्री थोडे से मुस्कराये और वोले—"माताजी! अन्दर की शान्ति को ढूँढना वहुत ही अच्छा काम है। इसके लिए सवसे पहले आपको अपने क्रोध पर कावू पाना होगा।"

वात सुन वुढिया आश्चर्य मे पड़ गई कि—'महाराज श्री कैसे यह वात जान गए कि—लोग मुझे चिढाते हैं तव क्रोध मे आकर मेरे मन में जो भी आता है, गालियो और श्राप की वौछार करती हूँ।'

थोडी देर रुककर महाराजश्री ने अपनी वात को और आगे वढाते हुए कहना जारी रखा, "और दूसरी वात यह कि—गालियाँ वकना एकदम वन्द कर दो, तुम्हें यदि कोई चिढावे भी तो मौन-धारण कर लिया करो, चिढ़ाने वाला स्वय ठण्डा पड जायगा और आखिरी वात यह है कि—यदि कोई आपसे वातचीत करे तो उससे प्रेम-पूर्वक मीठे वचन वोला करो, सारी वेचैनी और परेशानी इस वशीकरण मत्र से जाती रहेगी।"



जादू की तरह महात्मा की मूल्यवान वाणी का प्रभाव उस वृद्धा के मन पर पड़ा।

देखा गया कि उस दिन के बाद लोगो के चिढाने के बावजूद उसने कभी उबाल नही खाया, बल्कि प्रेमपूर्ण व्यवहार और वाणी की मिठास को नहीं छोडा और दो माह बाद जब महाराज श्री से वही वृद्धा मिली तो कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उसने सूचना दी कि—वह आपश्री द्वारा दिये गए वशीकरण मत्र की साधना के द्वारा कैसे सुखी हो गई थी।

"इस मत्र को कभी नहीं भूलना माँ ! दिनोदिन तुम शान्ति के पथ पर अग्रसर होती जाओगी।" गुरुवर्य ने अपना अनुभव-जन्य सन्देश सुनाया।"

क्यो न हम भी उस मंत्र से लाभ उठाएँ।

☆

(२) सन्त-वाणी का असर

☆ श्री रमेशमुनि, सिद्धान्ताचार्य

पूज्य गुरुदेव के व्याख्यान का मधुर प्रभाव हृदय-पटल पर कैसा अचूक होता था, उसका यह एक निदर्शन भी आनन्दकारी होगा।

गुरुदेव श्री उदयपुर मे विराजमान थे। एक गरीब की झोपडी से लेकर राजमहलो तक उनके व्याख्यान की चर्चा थी। व्याख्यान-श्रवण कर कतिपय व्यक्ति अपनी जीवन-दशा बदल चुके थे, बहुत से सन्मार्गी बन गए थे।

एक अँग्रेज अफसर का नौकर शाक-भाजी लेने बाजार जा रहा था, जन समूह देखकर ठहर गया। महाराजश्री का प्रवचन चल रहा था। नौकर सुनने मे तल्लीन हो गया, सुध-बुध भूल गया। यही नही, अब वह रोजाना का नियमित श्रोता बन गया, उसकी विविध प्रकार की बुरी आदतें स्वयमेव छूटती गई, जीवन मे एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया। वह बडा शरीफ बन गया। इस परिवर्तन को देखकर मालिक अँग्रेज हैरत (आश्चर्य) मे था।

"तुम्हारी बडी बुरी आदतें आखिर कैसे छूट गईं ?" अंग्रेज साहब ने उस नौकर से पूछा—सकुचाते हुए उत्तर मे नौकर बोला—"सर ! यह जैनमुनि गुरु श्री चौथमलजी महाराज का प्रताप है, मेरे जीवन परिवर्तन का कारण दूसरा कुछ भी नहीं है। मैं आजकल उनका लेक्चर सुनता हूँ।"

महाराज श्री शौचार्थ जिस मार्ग से जाते थे उसी मार्ग पर उस अँग्रेज अफसर का बगला था। एक दिन मुलाकात होने पर अंग्रेजी के साथ-साथ थोडी-थोडी हिन्दी और उर्दू मिलाकर वह अँग्रेज बोला—"सन्त जी, मेरा नाउकर बड़ा बादमाश था। मगर आपके प्रीचिंग्स को सुनकर उसका जिंदगानी मे टैब्डिली हो गया है। अब मेरे को वह एक नेक चलन इन्सान माफिक लगता है। हम आपका ऐशानमद है, थैंक्यू सर।"

दूर-दूर खडे जिज्ञासु-जन देखते ही रह गये, एक सत की वाणी का कितना व्यापक और हृदयस्पर्शी असर है, जो हर सुनने वाले के अन्दर परिवर्तन की लहर पैदा कर देता है।

☆



अनुभूत-प्रसंग

☆ नरेन्द्र मुनि विशारद

(१) बीमारी मिट गई

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज विक्रम सवत् १९९३ के वर्ष मे अपने शिष्य परिवार के साथ विचरते हुए आगरा शहर मे पधारे।

चातुर्मास के दिन थे। लोहामण्डी जैन स्थानक मे दर्शनार्थियो का तान्ता लगा हुआ था। विशाल आयोजन के तौर पर 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन सप्ताह' मनाया जा रहा था। उसी अवसर पर मारवाड के चोटेलाव (पाली) निवासी श्रीमान् रावतमलजी चौपडा अपने कुछ मित्रो के साथ दर्शन के लिए आगरा उपस्थित हुए।

विक्रम संवत् १९७२ के वर्ष मे श्रीमान् चौपडाजी ने जैन दिवाकरजी महाराज को अपना गुरु बनाया। तभी से आप गुरुदेव के अधिक सम्पर्क मे आये और अनन्य भक्त बने। पूर्ण निष्ठावान और श्रद्धावान् रहे। बीच में गुरु-दर्शन का सम्पर्क टूट-सा गया। काफी वर्षों के बाद गुरु-दर्शन कर रावतमलजी फूले नही समाये।

वंदना कर चौपडाजी बोले—"गुरुदेव ! बुरी तरह मैं बीमारी से पीडित हूँ। बडी मुश्किल से यहाँ तक आ सका हूँ, मन मे एक ही उत्कण्ठा थी कि—मरता-पडता गुरुदेव का दर्शन करलूँ। उसके बाद भले यह शरीर रहे या जाय। आज मैं धन्य हो गया। बहुत वर्षों की भावना आज सफल हुई।"

गुरुदेवश्री ने पूछा—"कैसी बीमारी है रावतमल जी ?"

"गुरुदेव ! क्या बताऊँ ? पसली मे पानी भर जाता है, लगभग १२ वर्षो से। बार-बार पानी निकलवाया गया, फिर भी आराम नही हुआ। अब डाक्टरो ने भी हाथ खींच लिया है, इसका मतलब यही है कि अब मेरी जिन्दगी कुछ ही दिनो की है। आपके दर्शन हो गए। अब मुझे कोई चिन्ता नही।"

गुरुदेव—रावतमलजी ! घबराना नही चाहिए। शरीर रोगो का घर है। बीमारी आती और जाती है, लो माँगलिक सुनलो—

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्ना,
शोच्यांदशामुपगताश्च्युतजीवताशा।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपा ॥

भक्तामर स्तोत्र का ४५वाँ श्लोक सुनाकर माँगलिक पाठ श्रवण कराया। फिर गुरुदेव बोले—"घर जाने के बाद ४५ दिन तक इस श्लोक को १०८ बार सदैव जपना, आनन्द मगल होगा।"

श्री रावतमलजी को उक्त गुरु-वचन की महान् उपलब्धि पर बेहद खुशी हुई। सानन्द घर आये। धीरे-धीरे बीमारी स्वत ही अन्दर की अन्दर सूखती गई। फिर कभी भी बीमारी नही उभरी।

☆



(२) अभिवृद्धि

सुश्रावक श्री रावतमलजी चोपड़ा ने हमें सुनाया—विक्रम संवत् १९९७ के दिनो मे जैन दिवाकरजी महाराज चातुर्मास करने के लिए जोधपुर जाते समय पाली से विहार कर चोटेलाव पधारे। मुनियो के लिए आहार-पानी का प्रश्न बिल्कुल नही था। क्योकि—गाँव मे जैन परिवार के अलावा अन्य कई उत्तम परिवार गुरुदेव की वाणी के रसिक थे। वे आहार-पानी वहराने के लिए लालायित रहा करते थे।

प्रश्न था बिना सूचना दिये आये हुए दो सौ दर्शनार्थियो का। माना कि सामान सामग्री की कमी नही थी। गाँव की दृष्टि से व्यवस्था करने वालो की और यातायात साधनो की अवश्य कमी थी। मैं कुछ क्षणों के लिए विचार मे डूबा रहा—गुरुदेवश्री के पदार्पण से इस छोटे से गाँव में दर्शनार्थियो का मेला जुडा हुआ है पर इनके भोजन की व्यवस्था कैसे बनेगी ? चूंकि कार्यकर्त्ताओ की कमी है।

खैर, गुरुदेव यहाँ विराजमान है मुझे क्या चिंता। गुरुदेव के समीप आकर मैंने कहा—'गुरुदेव ! दर्शनार्थियो के भोजन की व्यवस्था एक समस्या बन गई है। धन की कमी नहीं, साधन की कमी है। कदाच् सामान घट गया तो क्या होगा ? पाली शहर भी दूर है मोटर की व्यवस्था है नहीं।

महाराजश्री—रावतमलजी ! क्या तुझे देव-गुरु-धर्म पर विश्वास नहीं है ? गौतम स्वामी की स्तुति और मांगलिक सुनो—आनन्द मंगल'

घर आकर सोचा, भोजन नही, सभी को थोड़ा-थोड़ा नास्ता करवा दिया जाय, ऐसा विचार कर जो मौजूदा सामग्री थी उसे तैयार करवा दी। भोजन के लिए पक्ति शुरू हुई। न मालूम गुरुदेव की क्या कृपा हुई कि—सभी पेट भर भोजन कर गए। उसके बाद पचास भाई और भोजन कर सकें उतनी सामग्री बची रही।

सभी के आश्चर्य का पार नही था। जबकि मूल मे पचास भाई भोजन करे, केवल उतनी सामग्री थी। वह सामग्री सारी ज्यो-की-त्यो बच गई। दो सौ भोजन कर गये वह सामग्री कहाँ से आई ? यह गुरुदेव ही जानें।

नोट—गुरुदेव श्री रमेश मुनिजी महाराज साहब आदि हम चारो मुनि चोटेलाव गए तब श्री रावतमलजी साहब चोपडा ने बडी श्रद्धापूर्वक उक्त दोनो प्रसंग हमे सुनाये।

(३) वाणी का अमिट असर

जैन दिवाकरजी महाराज की सरल सुबोध व्याख्यान-शैली सीधी श्रोताओ के मानस-पटल पर असर किया करती थी। फिर श्रोताओ को अपने आपको समझने मे और जैनधर्म के सिद्धान्तो को समझने मे काफी आसानी हो जाया करती थी।

सरल सुबोध व्याख्यान श्रवण कर जोधपुर निवासी एक मोची परिवार ने सहर्ष जैन धर्म स्वीकार किया। नियम-उपनियमो से उस परिवार को अवगत किया। नवकार महामंत्र, सामायिक और प्रतिक्रमण के स्वरूप को भी बताया। काफी दिनो तक गुरुदेव की ओर से उस परिवार को ठोस संस्कार मिलते रहे। ताकि भविष्य मे यह इमारत धराशाही न होने पावे।



एक वार उसी परिवार का वह अगुआ भाई अपने जाति वालो की वरात मे भूपालगढ पहुँचा। उस समय आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित वही विराजमान थे। तव वह जिनवर (मोची) भाई व्याख्यान मे उपस्थित हुआ। और सन्ध्या के समय मुखवस्त्रिका आसन-पुजनी आदि धार्मिक उपकरण लेकर प्रतिक्रमण करने के लिए महाराज श्री के सान्निध्य मे पहुँचा तो मुनिमडल को भारी आश्चर्य हुआ।

पूछा—तुम कहाँ के रहने वाले हो ?

ओसवाल तो मालूम नही पड रहे हो ?

—गुरुदेव ! मैं जोधपुर निवासी मोची परिवार का हूँ।

मोची और प्रतिक्रमण ? किसने दी यह प्रेरणा ?

"गुरुदेव ! जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज मे मेरे सकल परिवार ने समकित रत्न स्वीकार किया है। अव नियमित रूप से प्रतिक्रमण करता हूँ। उन्ही गुरुदेव का यह उपकार इस तुच्छ मानव पर भी हो गया है।"

सभी को वेहद प्रसन्नता इस वात मे हुई कि विवाह मे आया हुआ मोची अपनी मित्र मण्डली से अलग रह कर प्रतिक्रमण करने से चूका नही। नियमोपनियम की कितनी दृढता ? उनके समक्ष प्रतिज्ञा करने वाले गडरिया प्रवाह मे नही, किन्तु वहुत सोच-समझकर करते और करके उसमे दृढ रहते थे। उनकी दृढता अनुकरणीय है।



समय की बात...

आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए जनता को धर्मोपदेश कराते हुए पडित रत्न श्री दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहव मेवाड प्रदेश के ग्राम वोहेडा पधारे तो इस ग्राम मे जैनियो का स्थानक नही था, न कोई पचायती नोहरा ही। इस पर महाराजश्री को वड़ा विचार हुआ और यह फरमाया कि इस ग्राम मे जाटो का चोरा, जणवोका चोरा, डागियो का चोरा है, परन्तु महाजनो का गवोरा है।

इस पर सभी उपस्थित जैन भाइयो को वात चुभगई व उसी समय प्रण किया कि हम शीघ्र ही अपना स्थानक भवन वनायेंगे व उसी समय एक कच्चा मकान वनवाया गया व उसी प्रेरणा-स्वरूप ग्राम के श्रावको व अन्य सघो के सहयोग से एक तिमजिला भवन वना है जो सामायिक-सवर व विश्राम आदि के काम आता है।

यह थी दिवाकर जी महाराज साहव की प्रेरणा !

गणेशलाल धींग — सचिव

छोगालाल धींग — अध्यक्ष

(साधुमार्गी जैन सघ वोहेडा, जिला चित्तौडगढ (राजस्थान))





व्यक्तित्व की अमिट छाप

☆ श्री ईश्वर मुनिजी महाराज
(स्व० पूज्य गुरुदेव श्री सहस्रमलजी महाराज के सुशिष्य)

☐

वीर प्रसवनी वसुन्धरा पर लाखो-करोड़ो मानव जन्म लेते हैं, वे सभी जन्म के साथ ही शुभाशुभ कर्म बाध कर आते हैं। उनमे शुभ नामकर्म वाले मानव तेजस्वी, ओजस्वी एव प्रभाविक व्यक्तित्व के धनी होते हैं। उनका जगतीतल पर 'व्यापक प्रभाव होता है, जहाँ कही पर पहुंचते हैं उनकी यशकीर्ति दिग्दिगन्त मे व्याप्त होती चली जाती है। उनका नाम श्रवण करने मात्र से ही मानव का क्रोध एव अभिमान ओले की तरह गल जाता है।

बात विक्रम सवत् २००६ की है मुझे दीक्षित हुए एक ही वर्ष हुआ था। स्थानकवासी समाज के एकीकरण के लिए सादडी (मारवाड) मे वृहत्साधु सम्मेलन की व्यापक तैयारियाँ चल रही थीं। पूज्य गुरुदेव श्री सहस्रमलजी महाराज भी अपनी शिष्य मण्डली सहित सम्मिलित होने के लिए पाली से विहार कर सादडी पधार रहे थे। मैं भी गुरुदेव के साथ था। मुन्डारा एवं वाली के मध्य मे छोटा-सा गाँव आता है जहाँ अजैनो की वस्ती है। हम सभी मुनिवृन्द स्कूल के प्रागण मे ठहरे हुए थे। प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रिया से निवृत्त हुए ही थे कि एक व्यक्ति ने आकर क्रोध मिश्रित स्वर मे पुकारा—

यहाँ कौन ठहरे हुए हैं ?"

अन्धेरे मे उसकी मुखाकृति स्पष्ट नही दिखाई दे रही थी।

गुरुदेव ने अत्यन्त शान्त एव मधुर स्वर मे कहा—भाई ! हम जैन साधु हैं तथा अध्यापक की आज्ञा से यहाँ ठहरे हैं। जैन साधु का नाम सुनते ही उसने टार्च का प्रकाश किया, एव हम सभी मुनिवरो को देखने लगा। तत्पश्चात् बोला—

आप किनके शिष्य है ?

गुरुदेव बोले—हमारे गुरु जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज हैं।

इतना सुनते ही वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सभी मुनिवरो के चरणो मे श्रद्धा युक्त वन्दन करने लग गया और बोला—मैं उदयपुर राज्य का रहने वाला राजपूत हूँ। मेरे भी गुरु जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज हैं, उन्होंने मुझे गुरु-मन्त्र दिया था एव आजीवन मद्य-मांस भक्षण न करने की प्रतिज्ञा दिलाई थी जिसे मैं आज तक निभा रहा हूं, उन्ही की असीम कृपा के फलस्वरूप आज मैं थानेदार की पोस्ट पर कार्य कर रहा हूँ। आज मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ कि आज मेरे उपकारी गुरुदेव के शिष्यो का मुझे दर्शन-लाभ मिला। मैं यहाँ रात्रि निवास करने के लिए स्थान की तलाश मे आया था किन्तु आप जैसे मुनिवरो का अनुपम सयोग मिल गया। अब अन्य जगह विश्राम करूँगा आप आनन्द से रहे।

यह था जैन दिवाकरजी महाराज का जन-मन मे व्यापक प्रभाव।

☆

↑ श्री जैन दिवाकर जी म० की वृद्धजनो के प्रति असीम करुणा का जीवित प्रतीक
श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम, चित्तौडगढ (राजस्थान)

↓ श्री जैन दिवाकर स्मारक ट्रस्ट (कोटा) चिकित्सा केन्द्र



प्रशस्ति

जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज की समाधि स्थल (कोटा)
पर लगा प्रशस्ति प्रस्तर



अन्तिम दर्शन

✡ कविरत्न केवल मुनि

जिस भूमि पर फूल खिलते है, जहाँ अपनी सौरभ लुटाते हैं वह वन-खण्ड भी 'उपवन' कहलाता है। जिस घोर जगल या पर्वत कन्दरा मे बैठकर साधक अपनी साधना मे लीन होता है, जहाँ तप व ध्यान की अलख जगाता है, वह अरण्य भी 'तपोवन' के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। भगवान् महावीर ने जिस नगरी की पवित्र भूमि पर अपना अन्तिम प्रवचन दिया और देह-त्याग कर परम निर्वाण प्राप्त किया वह सामान्य पावापुरी आज 'पावा तीर्थ' के नाम से जग-विश्रुत है। इसी प्रकार आज 'कोटा' शहर भी एक पवित्र नगर के रूप मे प्रसिद्ध हो रहा है। इस भूमि पर भारत के एक महान् सन्त जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने अपनी महायात्रा का अन्तिम पडाव लिया था। साधना-तपस्या-जनकल्याण की अनवरत लौ जलाते-जलाते वह ज्योतिपुज इस नगर मे अपनी अन्तिम प्रकाश किरण बिखेर कर देह का त्याग कर अमरलोक की ओर प्रस्थान कर गया था। उस ज्योति के अन्तिम दर्शन ससार को इस नगर मे हुए थे, इसलिए कोटा नगर भी एक तीर्थस्थान की तरह इतिहास मे सदा याद किया जायेगा।

उस महापुरुष की झोली मे अमृत भरा था, जो भी उसके चरणो मे आया, वह कभी खाली हाथ नही लौटा, अपनी शक्ति के अनुसार अमृत की दो-चार बूंदें प्राप्त कर कृतकृत्य होकर ही लौटा। हजारो लोह-जीवन कचन हो गये थे। दया, करुणा, सदाचार और सात्विकता की भगीरथी वहती थी उस देव-पुरुष के सान्निध्य मे। आज भी कुछ स्मृतियाँ मन को गुदागुदा रही हैं, जब मैं उस महापुरुष के अन्तिम दर्शनो के लिए लम्बा विहार कर कोटा पहुँचा था। सूर्यास्त से पहले ही पहुँच गया, पर तब तक जैन जगत् का वह धर्म सूर्य अस्त हो चुका था और मैं अस्ताचल की ओर गये सूर्यबिम्ब की सुनहरी आभा को ही एक टक देखता रहा, उदास। विचारलीन!

वि० स० २००७ का चातुर्मास गुरुदेवश्री की आज्ञा से रतलाम मे किया था और चातुर्मास समाप्त कर दक्षिण की ओर जाने का विचार किया था।

उन्ही दिनो मन्दसौर मे मालवरत्न उपाध्याय श्री कस्तूरचदजी महाराज विराजमान थे। उनके भ्राता प० रत्न श्री केशरीमलजी महाराज का जयपुर मे स्वर्गवास हो गया था। गुरुदेवश्री की आज्ञा हुई कि मैं पहले मन्दसौर जाकर उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज मे गुरुदेव की तरफ मे सुखसाता पूछकर सान्त्वना सदेश दूं।

मैं मन्दसौर पहुँचा। प्रात कृत्य से निवृत्त हो दूध पीने के लिए बैठा था। पात्र जैसे ही मुँह के निकट लगाया कि बाहर से आवाज आई—'कोटा मे गुरुदेवीश्री अस्वस्थ है।' सवाद सुनते ही दूध का पात्र नीचे रख दिया। बाहर आकर पूछा तो पता चला कि गुरुदेव का स्वास्थ्य काफी बिगड रहा है। मन क्षुब्ध हो गया, उस दिन दूध नही पिया।

कोटा से सुबह-शाम समाचार मिलते रहते थे कि डाक्टर-वैद्य आदि गुरुदेव की चिकित्सा कर रहे हैं, पर कोई लाभ नहीं है। श्री चादमलजी मारु ने कहा—'गुरुदेव के दर्शन करने हो तो विहार कर जाओ। मार्ग मे गुरुदेवश्री के समाचार आपको मिलते रहेंगे।' उसी समय पाँच साधुओ ने कोटा की तरफ विहार कर दिया। दो तो उसी दिन पीपलिया मण्डी पहुँच गये। हम तीन सन्त पीछे रह गये। श्री इन्द्रमलजी मुनि चलने मे कुछ ढीले थे।



विहार करते हुए रामपुरा पहुँचे। करीब ग्यारह बजे वहाँ से विहार करने का विचार था, किन्तु रामपुरा श्रीसघ ने रुकने का व एक व्याख्यान देने का बहुत आग्रह किया। रामपुरा श्रीसंघ साधु-सन्तो के प्रति अत्यन्त भक्तिभाव रखता है। पिछले वर्ष भी चातुर्मास की बहुत आग्रह भरी विनती उन्होने की थी, पर कुछ कारणो से चातुर्मास न कर सके। संघ ने प्रार्थना की कि 'चातुर्मास न किया तो न किया, कम से कम एक व्याख्यान तो सुना दीजिये।' गुरुदेव के स्वास्थ्य की स्थिति के विषय मे हमने सघ के अग्रगण्यो को समझाया कि अभी तो एक-एक मिनट का विलम्ब भी खटकने वाला है। हम गुरुदेव के दर्शनो के लिए तेजी से कदम-कदम बढाये जा रहे है, उस स्थिति मे व्याख्यान के लिए रुकना बहुत ही अटपटा लगता है। आखिर अनेक प्रकार से समझाने पर वे लोग मान गये और हम विहार करके गाँव के बाहर आये। वहाँ मागलिक सुनाने के लिए जैसे ही रुके तो चित्तौड श्रीसघ की बस उधर से आ पहुँची। वे लोग गुरुदेव के दर्शन कर वापस लौट रहे थे। उन्होंने बताया—'गुरुदेव की तबियत पहले से ठीक है।' बस, अब तो रामपुरा श्रीसघ ने और भी आग्रह किया—'चलिए अब तो एक व्याख्यान सुनाकर ही विहार कीजिए।' किन्तु हम लोग वापस नही लौटे, और आगे बढ गये।

लम्बा विहार ! सडक का ककरीला मार्ग। मन मे गुरुदेव के स्वास्थ्य की चिन्ता और शीघ्र पहुँचने की अकुलाहट। पर रास्ता तो काटे ही कटता था। रामगज मण्डी पहुँचे, तब तक श्री इन्द्र मुनिजी के पाँव के तले घिस गये थे। चमडी छिल गई और खून टपकने लग गया। विहार की गति मन्द हो गई। आखिर साथी मुनि को छोड़कर कैसे आगे जायें। वहाँ पर एक छपा हुआ पर्चा मिला जिसमे लिखा था—'गुरुदेव को पहले से आराम है, चिन्ता जैसी कोई बात नही है। बाहर से दर्शनार्थ आने वाले भाई-बहन अपने साथ डाक्टर आदि लेकर न आवें, यहाँ व्यवस्थित चिकित्सा चल रही है।"

हम लोग मोडक होकर दर्रा स्टेशन पहुँचे। रात भर वहाँ विश्राम लिया। प्रात.काल प्रतिक्रमण करने को उठे तो श्री इन्द्रमुनि जी ने कहा—मुझे एक स्वप्न आया है—काला साँप निकला है, अँधेरे मे किसी को डस कर चला गया है। मैंने ऊपर से तो उनको समझाया, सान्त्वना दे दी। पर भीतर से मेरा मन आशकित हो उठा। मन के एक कोने मे एक तीखी अकुलाहट उठी—गुरुदेव ' पर फिर मन को शान्त किया—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। गुरुदेव का वरदहस्त अभी तो दीर्घकाल तक समाज एव शिष्यो पर बना रहेगा

सूर्योदय होने पर विहार करने की तैयारी की। सोचा—कल शाम को भी आहार नही लिया था और प्रात भी कम ही हुआ था, अत अभी कुछ मिल जाय तो लेकर सीधे चलते रहे, मजिल पार कर मडाने तक पहुँच जाय। प्रात चार घरो मे गये, पर सयोग ऐसा बना कि कहीं भी आहार-पानी का योग नहीं बना। साधु-जीवन की यही तो मौज है, 'कभी घी घना, कभी मुठी चना और कभी वह भी नहीं बना।' दर्रा स्टेशन से चल पडे, मडाने का मार्ग जिस मेन रोड से अलग होता था उस पर कुछ कदम आगे बढ़े ही थे कि कोटा की तरफ से एक कार आती हुई नजर पडी। लौट कर मेन रोड पर वापस आये कि कार वालो से गुरुदेव के कुछ समाचार पूछे। हमे देखकर कार भी रुकी, उसमे रतलाम वाले श्री बापूलाल जी बोथरा, श्री हस्तीमलजी बोरा आदि थे। वे उतरकर निकट आये और बताया कि गुरुदेव ने सथारा कर लिया है। आप जल्दी कोटा पहुँचिए।

'हम लोग जल्दी तो चल ही रहे हैं, मगर आखिर पाँव से चलने वाला कितना जल्दी



पहुँचेगा—मैंने कहा। कार वापस कोटा लौट गई। मैंने श्री सागर मुनि (प० चम्पालालजी महाराज के सुशिष्य) से कहा—"गुरुदेव ने सथारा कर लिया है तो अब आज हम लोग भी आहार नही करें, और जल्दी से जल्दी कोटा पहुँचने की चेष्टा करें।"

सागर मुनि तैयार हो गये, पर इन्द्रमुनिजी से चला नही जा रहा था, वे पीछे आ रहे थे, उनको पीछे छोड़ा। कभी-कभी साथी को भी छोड देना पडता है, विशेष कार्य की सिद्धि के लिए। हम दोनो चलते गये। लगभग १५ मील चलने के बाद कसार गाँव आया। दो दिन से भूखे थे, पेट मे आंटें पडने लगे, प्यास भी जोर की लग रही थी। सागर मुनि बोले—"अब तो चला नही जा रहा है। आहार न मिले तो कोई बात नही, पर पानी तो पीना पडेगा। प्यास से गला सूख रहा है।" हमने गाँव मे प्रासुक पानी की गवेषणा की। पता चला श्वेताम्बर आचार्य श्री आनन्दसागरजी महाराज यहाँ ठहरे हुए हैं। इन्होंने भी कोटा मे चातुर्मास किया और गुरुदेव के साथ एक मच पर ही व्याख्यान दिया था। वे गुरुदेव के प्रति बहुत ही आदर व स्नेह भाव रखते थे, हम उधर ही गये। उनके दर्शनार्थ कोटा से रायबहादुर सेठ केशरसिंहजी बुधसिंहजी बाफना के परिवारजन आये हुए थे। सागर मुनि को एक स्थान पर बिठाकर मैं पात्र लेकर जल लेने उनके वहाँ गया। आचार्यजी भीतर ठहरे थे और रायबहादुर का परिवार बाहर बरामदे मे ठहरा था। मुझे देखकर उन लोगो ने आहार-पानी के लिए विनती की। मैंने कहा—"बाई! गुरुदेव ने सथारा किया है, अत हम आहार तो आज नहीं लेंगे, पर प्यास लगी है, और विहार करना है अत प्रासुक पानी हो तो ले लेंगे।" सेठानी ने कहा—"महाराज! गुरुदेव का तो ८ बजे ही स्वर्गवास हो चुका है, हम लोग वही से तो आये है। पालकी निकलने की तैयारी हो रही है, हम भी वापस जाकर उसमे (शोभा-यात्रा मे) सम्मिलित होंगे।"

सुनते ही मेरे हाथो के तोते उड गये। सवासौ मील की यह दौड आखिर निरर्थक हो गई। जिस कार्य के लिए चले थे, वह न हो सका। गुरुदेव के अन्तिम दर्शनो की अभिलाषा मन की मन मे ही रह गई। मेरे सामने पाडव मुनियो का वह दृश्य घूम गया, जब वे भगवान नेमिनाथ के दर्शनो के लिए जा रहे थे और मार्ग मे ही भगवान के निर्वाण का सम्वाद सुनकर स्तब्ध रह गये। उन्होंने भी आहार-पानी का त्यागकर सथारा स्वीकार कर लिया। हम लोगो मे इतनी शक्ति नही थी, पर भक्ति तो थी, गुरुदेव के दर्शनो की तीव्र भावना थी। इसलिए स्वर्गवास का समाचार सुनकर हाथ-पाँव ठण्डे हो गये। मैं बिना पानी लिये ही लौट आया। अब पानी पात्र मे नही, आँखो मे उमड आया था। सागर मुनि को बताया तो उनकी भी आँखो मे अश्रुधारा बहने लगी। एक महान उपकारी गुरु का वियोग हृदय को टूक-टूक कर रहा था। कुछ क्षण सुस्ताकर अब सोचने लगे—"अब क्या करें? कोटा पहुँचने पर भी गुरुदेव के दर्शन नही होगे, और यहाँ बैठे-बैठे भी आखिर क्या करेंगे। चलना तो है ही, चलना ही जीवन है, रुककर कहाँ बैठना है।' मन का उत्साह तो ठण्डा पड चुका था पर फिर भी दोनो साथी भूखे-प्यासे उठे और सामान कन्धो पर लेकर चल पडे कोटा की तरफ।

सुबह चले थे, अब दोपहर ढल रही थी, चलते ही रहे, पर चलने का अर्थ व्यर्थ हो गया, जिस लिए चले थे वह लक्ष्य बिन्दु ही सामने न रहा। इसलिए चलने मे न उत्साह था, न आनन्द। पर चलना तो पड ही रहा था। यात्रा बीच मे ही रोक दें तो वह यात्री कैसा! आखिर कोटा ५ मील रहा। तब कुछ अजैन लोग मिले। कहने लगे—"जल्दी जाओ! एक बहुत बडे महात्मा की



शवयात्रा निकल रही है, बडे धूमधाम से। हजारो आदमी साथ हैं, गाँव बाहर से वापस गाँव की ओर चली है, वहाँ से सेठ केसरसिंहजी की बगीची मे दाह-सस्कार होगा।"

कोटा ज्यो-ज्यो नजदीक आ रहा था, विचारों की उथल-पुथल बढ रही थी। गुरुदेव के दर्शन तो अब स्वप्न रह गये। कदम-कदम पर उस दिव्य आत्मा की छवि आँखो मे घूम रही थी, मन श्रद्धा से नत हो रहा था। लगभग आधा घटा दिन रहा होगा कि हम नयापुरा बाबू गणेशलालजी के नन्द भवन मे पहुँच गये। यही पर गुरुदेव का स्वर्गवास हुआ था। कुछ लोग दाह-सस्कार देखकर लौट रहे थे। उनके चेहरो पर छाई उदासी और व्याकुलता देखकर सहसा दिल भारी हो उठता था, वेदना की कसक और तीखी हो जाती थी। सहमे-सहमे कदमो से हम नन्द भवन की ऊपरी मजिल पर पहुँचे। वहाँ उपाध्याय प्यारचन्दजी महाराज आदि श्रमण समुदाय उदास-सुस्त बैठा था। श्री प्यारचन्दजी महाराज की आँखो से तो अब तक भी गगा-यमुना प्रवाहित हो रही थी। गुरु का वियोग शिष्य के लिए सर्वाधिक असह्य होता है। गुरु की सन्निधि मे शिष्य को जो आनन्द, उल्लास और आध्यात्मिक पोषण मिलता है, वह अकथनीय है। गुरु-वियोग की गहन पीडा शिष्य की आँखो मे घनीभूत रहती है, उसे कोई शिष्य ही पढ सकता है। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज की मानसिक वेदना, देखकर भगवान महावीर के परिनिर्वाण पर हुई गणधर गौतम की मनोवेदना की स्मृति होने लगी। प्राचीन आचार्यो ने भगवान महावीर और गणधर गौतम के अपूर्व स्नेह-सम्बन्धो का मार्मिक वर्णन किया है, जिसे पढकर आज भी हृदय रोमाचित हो उठता है और महावीर निर्वाण के बाद की गौतम-विलाप की कविताएँ मन को गद्-गद् कर डालती हैं। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज को भी कुछ वैसी ही स्थिति हो रही थी। गुरु का असीम वात्सल्य और शिष्य का सर्वात्म समर्पण भाव यह सम्बन्ध जिसने देखा, वही उनकी पीडा की मार्मिकता को समझ सकता था। हम जब वहाँ पहुँचे और वातावरण मे तैरती गम्भीरता, उदासीनता से अभिभूत हुए तो आँखें स्वत ही छलछला उठी। गुरुदेव के अन्तिम दर्शनो की मन की अतृप्त प्यास बार-बार कसक बनकर मन को कचोट रही थी। पर खैर, इतना लम्बा विहार कर कम से कम स्वर्गवास के दिन वहाँ पहुँच गये।

तपस्वी मोहनलाल जी मुनि ने भी अत्यन्त निष्ठापूर्ण तन्मय होकर गुरुदेव की सेवा की थी। जिसने भी उनकी सेवा-भावना देखी वह प्रशसा किये बिना नही रहा, वे भी आज उदास और वेदना पीडित थे। सभी सन्तो व आने वाले भक्तो की आँखो से अश्रु धार बह रही थी। यह देखकर मुँह से निकल पडता था—

> दिवाकर उस पार है, छाया अन्धकार है।
> सावन जलधर की तरह, बह रही अश्रु-धार है॥

प्रात हुआ, सूर्य की किरणो ने अन्धकार की सघनता को तोडा, समय के विधान ने पीडा की सघनता भी कुछ कम की। दूसरे दिन मुनिवरो के साथ वार्तालाप हुआ तो मालूम हुआ कि गुरुदेव श्री ने अन्तिम समय मे पूछा था—"केवल आ गया क्या ?"

गुरुदेव ने अन्तिम समय मे मुझे याद किया यह जानकर हृदय भर आया। उनकी असीम करुणा और अपार कृपा का स्मरण होने पर आज भी मन-विभोर हो उठता है।

दोपहर को आचार्य सूर्यसागरजी महाराज नन्द भवन मे पधारे। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी



महाराज को साश्रुनयन देखकर वे कहने लगे—'आप क्यो चिन्ता करते हैं ? श्री जैन दिवाकरजी महाराज का अधूरा कार्य हम लोग मिलकर पूरा करेंगे।' आचार्यजी के विशाल हृदय से निकले ये शब्द सभी के लिए सान्त्वनादायक सिद्ध हुए।

कोटा का वह चातुर्मास जैन इतिहास मे अमर हो गया। गुरुदेवश्री के अन्तिम समय मे प० मेवाड भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज, प्रवर्तक श्री हीरालालजी महाराज भी पहुँच गये थे। उन्होंने भी अन्तिम दर्शन-सेवा का लाभ प्राप्त कर लिया था। कोटा श्रीसघ ने, बाबू गणेशीलाल जी ने तथा अन्य अनेक श्रावको ने गुरुदेव एव श्रमण वर्ग की सेवा तो तन-मन से की ही, दर्शनार्थ आने वाले यात्रियो की भी तन-मन-धन से जो सेवा की उसे लोग आज भी स्मरण करते हैं। और कोटा नगरी को 'तीर्थ' की भाँति मानते हैं।

☆

नजर भर देखा तो

☆ मोतीसिंह सुराना, भीलवाड़ा

वीर भूमि मेवाड की औद्योगिक नगरी भीलवाडा मे एक बार पूज्य गुरुदेव का पदार्पण हुआ। उस समय प० रत्न श्री नन्दलालजी महाराज, प० रत्न श्री देवीलालजी महाराज, पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज अपने शिष्यो सहित पधारे थे। सयोग से यहाँ गुरुदेव के पास मे तीन भागवती दीक्षाओ का भव्य आयोजन हुआ।

तालाब के किनारे पर बडे मैदान मे एक प्राचीन वट-वृक्ष के नीचे दीक्षा होना निश्चित किया गया। गुरुदेव उसी विशाल बरगद के नीचे ऊँचे पाट पर विराजमान थे। कई सन्त-सतियाँ भी पास मे ही सुशोभित थे। भीलवाडा निवासियों के अलावा सवासौ गाँवो के ५ हजार नर-नारी रगविरगे परिधानो से सुसज्जित होकर यह दीक्षा महोत्सव देखने आये थे। पूरा मैदान खचाखच भरा हुआ था। कुछ नौजवान और बच्चे उपयुक्त स्थान न मिलने से उसी पुराने वट-वृक्ष पर चढ़कर दीक्षा-महोत्सव और मुनिदर्शन का आनन्द ले रहे थे।

अचानक उस वट-वृक्ष की एक विशाल भीमकाय शाखा, जिस पर कई व्यक्ति चढ़े हुए थे, जोर से चरमराई। उसके चरमराने का शब्द सुनकर नीचे बैठे नर-नारी घबरा उठे। सब के होश उड गये और एक भयकर अनिष्ट की आशंका से कुहराम मच गया। उसी समय पूज्य गुरुदेव ने अपनी नजर ऊपर की ओर उठायी और जलद-गम्भीर ध्वनि से तीन बार शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! उच्चारण किया। वट-वृक्ष की वह भीमकाय शाखा ज्यो-की-त्यो ठहर गई।

दीक्षा समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ। सब नर-नारी गुरुदेव का जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान के लिए प्रस्थान कर गये। सभी सन्तगण भी प्रस्थान कर चुके थे और देखते-देखते वह स्थान पूर्णत. मानव रहित हो गया। जब एक भी व्यक्ति उस वट-वृक्ष के नीचे नही रहा, तब वही भीमकाय शाखा जोर से चरमराहट करते हुए धराशायी हो गई।

इस आश्चर्यजनक अद्भुत चमत्कार से लोग दग रह गये और गुरुदेव के चारित्र-बल की सर्वत्र मुक्त कण्ठ से प्रशसा होने लगी। इस विचित्र दृश्य को अपनी आँखो से देखने वाले कुछ बडे-बूढ़े लोग आज भी भीलवाडा मे विद्यमान हैं, जो बडे गर्व मे इस घटना का वर्णन यदा-कदा करते रहते हैं।

☆



लोहामंडी सोनामंडी बन गई

✡ सोहनलाल जैन
(भूतपूर्व अध्यक्ष शहर कांग्रेस कमेटी, आगरा)

श्रद्धेय जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज सचमुच मे एक महापुरुष थे।

सम्वत् १९९४ (सन् १९३६) मे आप लोहामण्डी आगरा पधारे तथा यहाँ का चातुर्मास मनाया। जिस समय आप विहार करते हुए भरतपुर पधार गये थे तो लोहामण्डी से सेठ रतनलालजी जैन के नेतृत्व मे आगरा के नवयुवको का एक प्रतिनिधि मडल भरतपुर से आगरा तक साथ-साथ आया था। मुनिजी के साथ उस समय चौदह सत थे। विशेष उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज सब कार्यों का नेतृत्व करते थे। चातुर्मास मे विशेष रूप से 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का हिन्दी-उर्दू मे प्रकाशन लोहामण्डी, आगरा मे ही हुआ। और निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह का आयोजन सर्वप्रथम यहीं पर किया गया। जिसमे भारत के कोने-कोने से हजारो नर-नारियों ने इस सप्ताह मे उत्साह पूर्वक भाग लिया।

जैन दिवाकरजी महाराज के चातुर्मास मे प्रत्येक दिन हिन्दू-मुसलमान आदि सभी धर्मों के अनुयायी सैकडो की सख्या मे पधारकर मुनिजी के उपदेशो मे लाभ लेते थे। मुनिजी की इतनी तेज आवाज थी कि बिना लाउडस्पीकर के ही शान्तिपूर्वक श्रोता प्रवचन का लाभ लेते थे। उनके उपदेशो से प्रभावित होकर कितने ही मुसलमान तथा मासाहारियो ने शराब व मांस का त्याग कर दिया था।

भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र का अंग्रेजी मे अनुवाद कराकर प्रकाशित किया गया। जैन रामायण का भी प्रकाशन यहीं से किया गया। जैन भवन लोहामण्डी मे प्रात ६ बजे से रात के १० बजे तक बराबर स्थानीय तथा बाहर के भाइयो का तांता लगा रहता था। जैन दिवाकरजी महाराज के चातुर्मास मे डाक-तार का इतना आदान-प्रदान होता था कि भारत सरकार को लोहामण्डी मे जैन भवन के पास ही लोहामण्डी डाकघर की स्थापना करनी पड़ी जो अब तक कार्यरत है।

जैन दिवाकरजी महाराज के चातुर्मास मे ही कुछ विशेष घटनाएँ उल्लेखनीय हैं।—सेठ रतनलाल जैन मीतल आगरा निवासी की सुपुत्री शीलादेवी जैन का सम्बन्ध साहू रघुनाथदास (धामपुर निवासी) के सुपुत्र महावीर प्रसाद गुप्ता के साथ हो गया था। इसी बीच मे विवाह के कार्य मे अड़चन आई, इसी सम्बन्ध मे सेठजी को धामपुर जाना पडा। धामपुर से लौटते समय बरेली एक्सप्रेस बरहन और टूंडला के बीच मे ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो गई। इसी ट्रेन से सेठजी आगरा आरहे थे। इस समाचार को सुनकर लोहामण्डी के जैन-अजैन भाइयो मे बडी हलचल मच गई। जैन दिवाकर जी महाराज ने भाइयो को शान्त करते हुए घोषणा की कि सेठजी सकुशल हैं और स्टेशन पर दूसरो की सहायता कर रहे है बहुत से प्रेमी लोग कार से व डाक्टर सरकार अपनी एम्बुलेंस से घटनास्थल पर पहुँचे। जैसा जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा, वैसा ही सत्य पाया। उनके आशीर्वाद से ही शादी का भी संकट दूर हुआ और सकुशल विवाह का कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह के उपलक्ष मे जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से सेठ रतनलालजी ने पुस्तकालय का महत्व समझा एवं पुस्तकालय के भवन का निर्माण करोया, जो आज तक वीरपुस्तकालय के रूप मे जनता की सेवा कर रहा है। लाला मुंशीलालजी बाग अन्ता लोहामण्डी के सन्तान होकर मर जाती थी। ऐसा चार



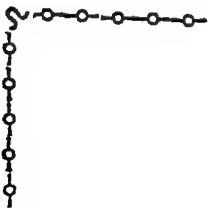
बार हो गया था, गुरुदेव पधारे तब एक लड़का हुआ। उसे लालाजी ने जैन दिवाकरजी महाराज के चरणो मे डाल दिया। महाराज साहब ने मागलिक सुनाई। वह बालक अब श्रवणकुमारजी के नाम से है, इस समय ४२ वर्ष के हैं।

जैन दिवाकरजी महाराज ने चातुर्मास उठने के अन्तिम प्रवचन मे आशीर्वाद के रूप मे लोहामण्डी के सोना मण्डी के रूप मे परिवर्तित होने की शुभकामना प्रकट की। कुछ ही दिनो के पश्चात् वास्तव मे लोहामण्डी सोनामण्डी हो गई। यहाँ के जैन समाज मे धन-धान्य की वृद्धि होती ही चली गई।

आगरा के चातुर्मास मे ही लाला फूलचन्दजी जैन कानपुर निवासी तथा चौ० किशनलालजी कानपुर ने कानपुर मे चातुर्मास की विनती की। कानपुर मे चातुर्मास हेतु वहाँ जैन भवन की भी व्यवस्था नही थी और न अपने भाइयों के घर ही थे। यह विनती व्यक्तिगत आधार पर थी। यह विनती दिवाकरजी महाराज ने सेठ रतनलाल जैन तथा लोहामण्डी के भाइयो से सलाह करके स्वीकार कर ली। चातुर्मास के पश्चात् ही हाथरस से होते हुए शिष्य-मण्डली के साथ कानपुर पधार गये। हाथरस मे श्रीचन्दन मुनिजी महाराज की दीक्षा धूमधाम से हुई।

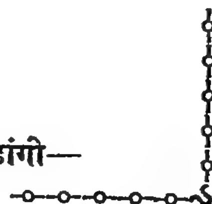
मार्ग मे जैनधर्म का उपदेश देते हुये दिवाकरजी महाराज ने लछमनदास बाबूराम की धर्मशाला मे चातुर्मास मनाया। जोकि श्री फूलचन्दजी की ही धर्मशाला थी। इस कानपुर के चातुर्मास मे निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह का भी कार्यक्रम बडे उत्साह के साथ मनाया गया। लाला फूलचन्दजी (कानपुर निवासी) ने स्वय अपने आप ही पूरे चातुर्मास का व्यय वहन किया और ठहरने व भोजन का ऐसा प्रबन्ध किया कि स्थानकवासी जैन समाज के लिये एक आदर्श उपस्थित किया। जिसकी प्रशंसा दिवाकारजी महाराज के दर्शनार्थ आने वाले लोगो ने मुक्त-कठ से की। उसी समय जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से जैन भवन की स्थापना की गई। लाला फूलचन्दजी जैन ने भवन बनाने के लिये अपना बहुत बडा भवन दे दिया जोकि "माता रुक्मिणी जैन भवन" खोआ बाजार, कानपुर के नाम से प्रसिद्ध है तथा साधु व साध्वियो के समय-समय पर चातुर्मास होते रहते हैं। एस० एस० जैन सघ की स्थापना भी उसी चातुर्मास मे हुई थी जिसकी व्यवस्था सुचारु रूप से अब तक चल रही है।

☆



बाहुबलि सतयुग हुए,
प्रथम मल्ल पहिचान।
हनुमत श्री वज्रांग प्रभु,
द्वितीय मल्ल सुजान।
द्वितीय मल्ल सुजान,
तृतीय मल्ल सुभीम है।
चतुर्थ मल्ल श्रीदिवाकर,
विश्व श्रमण सुसीम है।

—सूर्यभानुजी डांगी—





अफीम भी गुड़ बन गया

☆ गणेशमुनि शास्त्री

मानवता के महा मसीहा, जैनदिवाकर संत महान्।
सर्व हिताय सुखाय विरति का, जीवन जीया त्याग-प्रधान ॥
झोपडियो से महलो तक की, जिनको श्रद्धा प्राप्त हुई।
बनकर वही अनन्त लोक मे, कीर्ति रूप मे व्याप्त हुई ॥

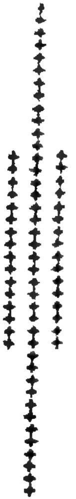
× × ×

अफीमची ने कहा सेठ से, पैसे लो दो मुझे अफीम।
किसे चाहिये ? कारण वतला, फिर हम देंगे तुझे अफीम ॥
रोगी को देते हैं देते— अफीमची को कभी न हम।
गुस्सा करके चला गया वह, झूठा करता हुआ अहम् ॥
लाइसेन्स शुदा नर ही कर— सकता था इसका व्यापार।
रखा सेठ के पास पुराना, जिससे कुछ करते उपकार ॥

× × ×

कोटा जाते हुए पधारे, सुवासरा—मंडी मे आप।
जैन दिवाकर संत चौथमलजी, का भारी पुण्य प्रताप ॥
मिश्रीमल जी ही मुखिया थे, इन ने ही सब किया प्रबन्ध।
साधार्मिक सेवा से मिलता, धर्मोत्साह अपूर्वानन्द ॥

× × ×



आया हुआ पुलिस इन्स्पैक्टर, कभी जाँच के लिए यहाँ।
अफीमची बदला लेने को, पहुँच गया है तुरत वहाँ ॥
सेठ अफीम वेचता है पर, लाइसेन्स न उसके पास।
देखो, चलो, अभी पकड़ा दूँ, जो न करो मेरा विश्वास ॥
अपनी उन्नति हो जाएगी, जो पकड़ूँगा ऐसे केस।
अफीमची को साथ ले लिया, और ले लिए पुलिस विशेष ॥

× × ×

कहा इन्स्पैक्टर ने आकर, हमे तलाशी लेनी है।
कहा सेठजी के लडके ने, हमे तलाशी देनी है ॥



हम न अफीम बेचते केवल, गुड ही बेचा करते हैं।
किसी इन्स्पैक्टर से हम, नही कभी भी डरते हैं ॥
लगे तलाशी लेने लेकिन, कही न आई नजर अफीम।
रोग नाड मे पकडा जाये, तो देता है दवा हकीम ॥

× × ×

गये हुए थे सेठ कथा मे, और जहाँ बनता भोजन।
घटनास्थल पर जो देखा वह, कहा किसी ने जा फौरन ॥
सेठ गये गुरुदेव पास मे, लेने अन्तिम मंगल पाठ।
स्थिति बतलाकर बोले गुरुवर ! भय ने मुझको खाया काट ॥
गुरु बोले सब अच्छा होगा, बैठो गिनो मन्त्र नवकार।
इससे बढकर और न कोई, हो सकता दुख मे आधार ॥

× × ×

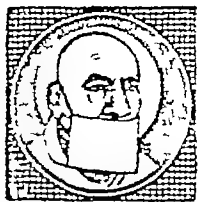
जिनमे भरी अफीम पुलिस को, नजर आ रहा गुड ही गुड।
लगी सफलता हाथ नही जब, मन ही मन वे रहे सिकुड ॥
आई गध अफीम की, किन्तु न मिली अफीम।
फैल हो गई पुलिस ने, जो सोची थी स्कीम ॥
क्षमा याचना कर गये, बोल रहे सब लोग।
गुड बन गया अफीम का, देखो मन्त्र प्रयोग ॥

× × ×

सुना सेठ ने सारा किस्सा, बोला श्रीगुरुवर की जय।
उठा जाप से गुरु-चरणो मे, झुक गया, रहा न कुछ भी भय ॥
गुड कैसे बन गया बताओ, रखा हुआ था जहाँ अफीम।
यही धर्म का फल होता है, मीठा हो जाता है नीम ॥

× × ×

जैन दिवाकर जी के ऐसे,
कितने ही हैं पुण्य-प्रसग।
"मुनि गणेश" शास्त्री देता है,
इनको नव-कविता का रंग ॥



आध्यात्मिक-ज्ञान की जलती हुई मशाल

✡ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज जैन समाज के एक तेजस्वी मनीषी मुनिराज थे। उनका बाह्य और आभ्यन्तर व्यक्तित्व हृदय को लुभाने वाला और मन को मोहने वाला था। ऊँचा कद, गौरवर्ण, भव्यभाल, ऊँची और उठी हुई नाक, पीयूष रस बरसाते हुए नेत्र-युगल, बड़े कान, लम्बी भुजाएँ, भरा हुआ आकर्षक भव्य मुखमण्डल, यह था दिवाकरजी महाराज का बाह्य व्यक्तित्व, जिसे देखकर दर्शक आनन्द-विभोर हो उठता था। वह कभी उनकी आकृति की तुलना स्वामी रामतीर्थ से करता और कभी विवेकानन्द से, कभी बुद्ध से, तो कभी श्रीकृष्ण से। बाह्य व्यक्तित्व जहाँ इतना आकर्षक था, वहाँ आन्तरिक व्यक्तित्व उससे भी अधिक आकर्षक था। वे एक सम्प्रदाय विशेष के सन्त होने पर भी, सभी सम्प्रदायों की महानता का आदर करते थे। स्नेह-सद्भावना के साथ उनमें मैत्री स्थापित करना चाहते थे। वे धर्मसंघ के नायक थे तथापि उनमें मानवता की प्रधानता थी। वे जन-जन के मन में सुसंस्कारों का सरसब्ज बाग लगाना चाहते थे। स्वयं कष्ट सहन कर दूसरों को आनन्द प्रदान करना चाहते थे। उनमें अपार साहस था, चिन्तन की गहराई थी, दूसरों के प्रति सहज स्नेह था। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुमुखी था। उन्होंने व्यवहार-कुशलता से जन-जन के मानस को जीता था और संयमभावना के द्वारा अन्तरंग को विकसित किया था। जो भी उनके निकट सम्पर्क में आता वह उनके स्वच्छ हृदय, निश्छल व्यवहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज श्रमण-परम्परा के एक ओजस्वी और तेजस्वी प्रतिनिधि सन्त थे। वे विशिष्ट व्याख्याता, अग्रणी ध्वजवाहक ही नहीं अपितु सर्वोपरि नेता थे। उन्होंने नवीन चिन्तन दिया। उनमें धर्म और जीवन के मर्म को समझने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने जीवन को आचार की उत्कृष्टता, विचारों की निर्मलता और नैतिकता से सजाने की प्रेरणा दी। जातिवाद, पंथवाद, प्रान्तवाद से ऊपर उठकर उन्होंने मानव को महामानव बनने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने बताया—धर्म, संस्कृति और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। जब तक ये तीनों खण्ड-खण्ड रहेंगे वहाँ तक जीवन में अखण्डता नहीं आ सकती।

मैंने सर्वप्रथम उनके दर्शन उदयपुर में सन् १९३६ में किये थे। मैं अपनी मातेश्वरी तीजबाई के साथ पहुँचा था, जिनका दीक्षा के पश्चात् महासती प्रभावतीजी नाम है। माताजी को आगम साहित्य व स्तोक साहित्य का गम्भीर ज्ञान है। उन्होंने दिवाकरजी महाराज से अनेक जिज्ञासाएँ प्रस्तुत कीं। माताजी ने पूछा—"अंगप्रविष्ट' और 'अंग-बाह्य' में क्या अन्तर है?"

दिवाकरजी महाराज ने कहा—"जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य में अंग-प्रविष्ट श्रुत उसे माना है, जो श्रुत गणधर महाराज के द्वारा सूत्र रूप में रचा गया हो, तथा गणधरों के द्वारा प्रश्न करने पर तीर्थंकर भगवान् जिसका प्रतिपादन करते हैं और जिसमें शाश्वत सत्य रहा हुआ होता है। अंगप्रविष्ट सदा शाश्वत रहता है। कभी ऐसा नहीं कि वह नहीं था। वह नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। वह था, और है तथा भविष्य में भी रहेगा। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित और नित्य है ऐसा समवायांग और नन्दीसूत्र में स्पष्ट रूप से बताया गया है।

अंग-बाह्य वह है, जिसके अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर भगवान हैं, और जिस सूत्र के रचयिता



स्थविर हैं तथा जो विना प्रश्न किये ही तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित है। तात्पर्य यह है कि अग प्रविष्ट के प्ररूपक भी तीर्थंकर हैं और अग-बाह्य के प्ररूपक भी तीर्थंकर है। पर मूल वक्ता एक होने पर भी सकलनकर्ता पृथक् होने से अग-प्रविष्ट और अग-बाह्य ये भेद किये गये है।

माताजी ने पूछा—"'मूल सूत्र' और 'छेदसूत्र' किसे कहते हैं ?"

दिवाकरजी महाराज ने उत्तर देते हुए बताया—"जिन आगमो मे मुख्य रूप से साधु के आचार-सम्बन्धी मूल गुण—महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि का वर्णन हो और जो साधु-जीवन के लिए मूलरूप से सहायक बनते हो और जिनका अध्ययन सबसे पहले किया जाय वे 'मूलसूत्र' हैं। इसीलिए सबसे पहले साधु को दशवैकालिक सूत्र पढाया जाता है। उसके बाद उत्तराध्ययन सूत्र पढाया जाता है।

" 'छेदसूत्र' प्रायश्चित्त सूत्र हैं। पाँच चारित्र मे दूसरा चारित्र 'छेदोपस्थापनीय' है। दस प्रकार के प्रायश्चित्तों मे छेद सातवाँ प्रायश्चित्त है। आलोचनार्ह प्रायश्चित्त से छेदार्ह प्रायश्चित्त सातवाँ प्रायश्चित्त है। ये सातो प्रायश्चित्त उस श्रमण को दिये जाते हैं जो श्रमण-वेष मे होते हैं। और शेष तीन अन्तिम प्रायश्चित्त वेष-मुक्त श्रमण को दिये जाते हैं। छेद प्रायश्चित्त से उसके पूर्व के जितने भी प्रायश्चित्त हैं उनको ग्रहण किया गया है। इन्ही प्रायश्चित्तो के साधक अधिक होते है। छेदसूत्रो के अर्थागम के प्ररूपक भगवान महावीर है। अन्य सूत्रो के रचयिता स्थविर भगवान हैं। छेदसूत्रो मे एकसूत्र का दूसरे सूत्र से सम्बन्ध नहीं होता। सभी सूत्र स्वतन्त्र अर्थ को लिये हुए होते हैं। इसीलिए भी इन्हे छेदसूत्र कहा है।"

माताजी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—"नन्दीसूत्र को मूलसूत्र क्यो कहा है ? उसमे तो चारित्र का कोई निरूपण नही है।" जैन दिवाकरजी महाराज ने समाधान दिया—"पाँच आचार मे सबसे पहला आचार ज्ञान है। ज्ञान के बिना अन्य आचार का सम्यक् पालन नहीं हो सकता। नन्दीसूत्र मे ज्ञान का निरूपण होने से इसे मूलसूत्र मे स्थान दिया गया है।"

माताजी ने पूछा—"उत्तराध्ययन सूत्र मे अकाममरण और सकाममरण का वर्णन है। इस अकाममरण और सकाममरण का तात्पर्य क्या है ?"

जैन दिवाकरजी महाराज ने उत्तर देते हुए कहा—"जो व्यक्ति विषय कषाय मे आसक्त होने के कारण मरना नही चाहता, किन्तु आयु पूर्ण होने पर वह मृत्यु का वरण करता है, उसका मरण विवशता से होता है, अत वह अकाममरण है। उसे दूसरे शब्दो मे 'बाल-मरण' ही कहते हैं। सकाममरण वह है जिस व्यक्ति के मन मे विषयो के प्रति आसक्ति नही है, जीवन और मरण दोनो आकाक्षाओ से मुक्त है, मत्यु का समय उपस्थित होने पर भी जिसके अन्तर्मानस मे तनिक मात्र भी भय का सचार नहीं होता, किन्तु मृत्यु के क्षणो को भी जीवन की तरह प्रिय मानकर आनन्दित होता है, सकटपूर्ण उन क्षणो मे भी मन मे सकल्प-विकल्प न कर पापो का परिहार कर, आत्म-साधना के लिए अशन आदि का परित्याग करता है, वह सकाममरण है। इसे 'पडितमरण' भी कहते हैं। और यह मरण 'विरतिमरण' भी कहा जाता है।"

माताजी ने पूछा—"षडावश्यक मे एक आवश्यक 'कायोत्सर्ग' है, और बारह प्रकार की निर्जरा मे अन्तिम निर्जरा का नाम कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग का शाब्दिक अर्थ काया का परित्याग है। काया का परित्याग कैसे किया जा सकता है ?"

जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—"कायोत्सर्ग का अर्थ केवल काया का परित्याग नही है, कायोत्सर्ग का वास्तविक अर्थ है—'काया की ममता का त्याग'। उसकी चचलता का विसर्जन है। कायोत्सर्ग मे केवल श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म प्रवृति रहती है, अन्य सभी प्रवृत्तियो का निरोध किया जाता है। कायोत्सर्ग खडे होकर और बैठकर किया जा सकता है।"



इस प्रकार माताजी ने दिवाकरजी महाराज से अनेक प्रश्न पूछे और योग्य समाधान पाकर वे बहुत ही प्रमुदित हुई। इन प्रश्नो के उत्तरो मे दिवाकरजी महाराज का गम्भीर आगम-ज्ञान स्पष्ट रूप से झलक रहा है। सक्षेप मे और सारगर्भित जो उन्होंने उत्तर दिये, वे उनकी विद्वत्ता के परिचायक हैं। मैं भी उनके उत्तर देने की शैली पर मुग्ध हो गया।

वि० स० १९३९ मे उदयपुर वर्षावास मे माताजी सद्गुरुणी जी विदुषी महासती श्री सोहन कुवरजी के साथ कभी-कभी मध्याह्न मे दिवाकरजी महाराज जहाँ विराजे हुए थे, वहां जाती थीं और ज्ञान-चर्चा कर बहुत ही आह्लादित होती थी।

उदयपुर मे दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो मे सहस्राधिक व्यक्ति उपस्थित होते थे। जैनियो की अपेक्षा भी अजैनो की सख्या अधिक होती थी। हिन्दू, मुसलमान सभी लोग उनके प्रवचनो में उपस्थित होते और उनके प्रवचनो को सुनकर वे दुर्व्यसनो का परित्याग कर अपने जीवन को धन्य अनुभव करने लगते। वे वाणी के देवता थे। कब, कितना और कैसा बोलना चाहिए यह भी वे खूब अच्छी तरह से जानते थे। उनके प्रवचनो की यह विशेषता थी कि वे चाहे जैसा भी विषय लेते, उसे उतना सरल और सरस बनाकर प्रस्तुत करते कि श्रोता ऊबता नहीं थकता नहीं। प्रवचनो के बीच मे इस प्रकार सूक्तियाँ, उक्तियाँ और दृष्टान्त देते थे कि श्रोता आनन्द मे नाचने लगता। और चुम्बक की तरह श्रोता को इस तरह से खींचते थे कि वह सदा के लिए उनके प्रवचनो को सुनने के लिए लालायित रहता। वे जिधर से विहार करके भी निकलते चाहे छोटे से छोटा भी ग्राम क्यो न हो, वहाँ लोगो की अपार भीड उनके प्रवचन सुनने के लिए एकत्र हो जाती। चाहे साक्षर हो चाहे निरक्षर, सभी उनके प्रवचनो को सुनकर अपूर्व तृप्ति का अनुभव करते। वे अपने प्रवचनो मे सामाजिक-धार्मिक और जीवन-सम्बन्धी गूढ पहेलियो को इस प्रकार सुलझाते थे कि जन-जीवन ही बदल जाता। वे कभी-कभी कु-रूढियो के परित्याग हेतु तीव्र व्यग्य भी करते थे। राजस्थान मे होली पर्व के अवसर पर कुछ अध-श्रद्धालु लोग नग्न देव की उपासना करते हैं उनकी बडी-बडी मूर्तियाँ बनाकर उन्हे सजाते हैं। वे "ईलाजी" के नाम से विश्रुत हैं। दिवाकरजी महाराज का एक ग्राम में प्रवचन था। होली का समय होने से बाजार मे ईलाजी को सजाकर रखे थे। इस अभद्र और अश्लील मूर्ति की उपासना करते हुए मूढ लोगो को देखकर उनका दिल द्रवित हो गया। उन्होंने प्रवचन मे ही उपदेश देने के पश्चात् श्रोताओ से पूछा—कि ईलाजी आपकी किस पीढी मे लगते हैं ? इस प्रकार कामोत्तेजक व्यक्ति की उपासना करना भारतीय सस्कृति के प्रतिकूल है। विकारवर्द्धक कोई भी देव के रूप मे उपास्य नही हो सकते। आप सभी नियम ग्रहण करें कि हम इस प्रकार उपासना आदि न करेंगे। जो नियम ग्रहण नहीं करेगा वह उनका पुत्र कहलाएगा।

यह सुनते ही सभी श्रोताओ ने खडे होकर नियम ग्रहण कर लिया। सदा सर्वदा के लिए उस ग्राम से ईलाजी को निष्कासित कर दिया। इस तरह प्रत्येक कुरीतियो पर वे सटीक आलोचना करते। अपने श्रोताओ को उन कुरीतियो के दुर्गुण समझाकर उनसे मुक्त करवाते। उनके निकट सम्पर्क मे आने वाले अनेक क्षत्रियो ने तथा शूद्रो ने मासाहार, मत्स्याहार और मदिरापान का त्याग किया। और हजारो ने शिकार जैसे दुर्व्यसन से मुक्ति पायी। अनेक महिलाएँ दुराचार के आधार पर अपना जीवन-यापन करती थी, उन्होंने दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो को सुनकर सदा के लिए अपना जीवन ही परिवर्तित कर दिया। वासना को छोडकर वे उपासना करने लगी।



यह था उनकी वाणी का चमत्कारी प्रभाव। मैंने उदयपुर मे अनेक वार उनके प्रवचन सुने। उनकी वाणी मे ओज था, तेज था। वे शेर की तरह दहाड़ते थे। वे केवल वक्ता ही नहीं चरित्र-सम्पदा के धनी थे। उनका चारित्र तेजोमय था। कथनी के पूर्व वे अपनी करनी का निरीक्षण करते थे। इसलिए उनके उपदेश का असर बहुत ही गहरा होता था, वह सीधा हृदय मे पैठ जाता था। जो बात हृदय से निकलती है वही बात दूसरो के हृदय मे प्रवेश करती है। दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो की यही विशेषता थी।

मैंने परम श्रद्धेय महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज और उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के सन्निकट आर्हती दीक्षा ग्रहण की सन् १९४० मे। उस समय दिवाकरजी महाराज अपने अनेक शिष्यो सहित जोधपुर का यशस्वी वर्षावास पूर्णकर मोकलसर पधारे। परमात्मा कहाँ है? इस विषय पर उनका मार्मिक प्रवचन हुआ। उन्होंने अपने प्रवचन में बताया कि आत्मा जब तक कर्मों से बद्ध है वहाँ तक वह आत्मा है, कर्मों से मुक्त होने पर वही आत्मा परमात्मा बन जाता है।

आत्मा परमात्मा मे कर्म ही का भेद है।
काट दे गर कर्म तो फिर भेद है, न खेद है।

"अप्पा सो परमप्पा" कर्म के आवरण को नष्ट करने पर आत्मा का सही स्वरूप प्रगट होता है। वही परमात्मा है। आत्मा के असख्य प्रदेश हैं। एक-एक आत्म-प्रदेश पर अनन्त कर्मों की वर्गणाएँ लगी हुई हैं जिसके कारण आत्मा अपने सही स्वरूप को पहचान नही पाता। जैसे एक स्फटिक मणि के सन्निकट गुलाब का पुष्प रख देने से उसकी प्रतिच्छाया स्फटिक मणि मे गिरती है जिससे स्फटिक मणि गुलाबी रग की प्रतीत होती है, पर वस्तुत वह गुलाबी नहीं है। वैसे ही कर्मों के गुलाबी फूल के कारण आत्मा रूपी स्फटिक रंगीन प्रतीत हो रहा है। वह अपने आपके असली स्वरूप को भूलकर विभाव दशा मे राग-द्वेष मे रमण कर रहा है। परमात्मा बनने का अर्थ है, आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति। जब तक पर-भाव रहेगा, वहाँ तक पर-भाव मिट नही सकता जब तक स्व-दर्शन नही होता वही तक प्रदर्शन की इच्छा होती है। जैन धर्म का विश्वास प्रदर्शन मे नहीं, स्व दर्शन मे है। उसकी सारी साधना-पद्धति स्वदर्शन की पद्धति है। आत्मा से परमात्मा बनने की पद्धति है।

इस प्रकार उनका मार्मिक प्रवचन सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मध्याह्न मे पूज्य गुरुदेवश्री के साथ मैं उनकी सेवा मे पहुँचा। मैंने देखा वे उस वृद्धावस्था मे भी कलम थामे हुए लिख रहे थे। उनकी लेखनी कागज पर सरपट दौड रही थी। हमे देखकर उन्होने कलम नीचे रख दी और मुस्कराते हुए कहा—"आज का दिन बड़ा ही सुहावना दिन है। आज मुनिवरो से मिलकर हार्दिक आह्लाद हुआ है।"

मैंने निवेदन किया—"स्थानकवासी समाज मे इतनी सम्प्रदायें पनप रही हैं जिनमें तनिक मात्र भी मौलिक भेद नही है। जरा-जरा से मतभेद को लेकर सम्प्रदायवाद के दानव खड़े हो गए हैं और वे एक-दूसरे को नष्ट करने पर तुले हुए है। ऐसी स्थिति मे आप जैसे मूर्धन्य मनीषियो का ध्यान उन दानवो को नष्ट करने के लिए क्यो नही केन्द्रित होता? इन दानवो ने हमारा कितना पतन किया है? हम एक होकर भी एक-दूसरे के दुश्मन बने हुए हैं। हमारी इस दयनीय स्थिति को देखकर आज का प्रबुद्ध वर्ग विचार कर रहा है कि ये धर्म-ध्वजी किधर जा रहे हैं? केशीश्रमण और गौतम के बीच मे तो कुछ व्यावहारिक और ऊपरी सैद्धान्तिक मतभेद भी थे, पर स्थानकवासी समाज में तो जो इतनी सम्प्रदाय हैं उनमें किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं है। केशीश्रमण और



गौतम दोनो विभिन्न परम्पराओ के थे। उन्होने मिलकर एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया। क्या हम ऐसा आदर्श उपस्थित नही कर सकते ? एक दिन सम्प्रदायें विकास का मूल रही होगी, पर आज वे ही सम्प्रदायें विनाश का मूल बन रही हैं। निर्माण के स्थान पर हमारे मुस्तैदी कदम निर्वाण की ओर बढ रहे हैं। क्या आपका मानस इससे व्यथित नही है।"

दिवाकरजी महाराज ने कहा—"देवेन्द्र, तुमने मेरे मन की बात कही है। तुम जैसे बालको के मन मे भी ये प्रश्न कचोट रहे है—यह प्रसन्नता की बात है। जब हम छोटे थे, उस समय का वातावरण और था, तब सम्प्रदायवाद को पनपने की धुन अनेको मे सवार थी, हमारा विरोध होता था, हमारे प्रतिद्वन्द्वी हमारे को कुचलने को तुले हुए थे और हम उस विरोध को विनोद मानकर धर्म प्रभावना एव उच्च चारित्र-पालन के साथ चलते थे। मैं इस सत्य तथ्य को स्वीकार करता हूँ कि हमारी पूज्य हुक्मीचन्द-सम्प्रदाय के दो विभागो ने काफी समाज को क्षति भी पहुँचाई है। यदि हम दोनो एक होते तो आज जितनी इस सम्प्रदाय ने धर्म की प्रभावना की है उससे कई गुनी अधिक धर्म की प्रभावना होती, इस सम्प्रदाय को अजमेर सम्मेलन मे भी एक बनाने के लिए बहुत प्रयास हुआ। पर दुर्भाग्य है, हम एक बनकर भी बने न रह सके। आज मेरे मानस मे ये विचार-लहरियाँ तरगित हो रही हैं कि सम्प्रदायवाद को खतम कर एक आदर्श उपस्थित करूँ। मैं स्वय किसी पद का इच्छुक नही हूँ। मैंने अपनी सम्प्रदाय के आचार्य पद को लेने के लिए भी स्पष्ट शब्दो मे इन-कारी कर दी। मेरी यही इच्छा है कि सम्पूर्ण जैन समाज एक मच पर आये। सभी अपनी परम्परा के अनुसार साधनाएँ करते हुए भी कुछ बातो मे एकता हो। स्थानकवासी समाज एक आचार्य के नेतृत्व मे रहकर अपना विकास करें। मैं इस सम्बन्ध मे प्रयास कर रहा हूँ। वह प्रयास कब मूर्त रूप ग्रहण करेगा यह तो भविष्य ही बताएगा।"

जैन दिवाकरजी महाराज के साथ दो दिन तक विविध विषयो पर वार्तालाप हुआ। मुझे यह लिखते हुए गौरव अनुभव हो रहा है कि उन्होंने अपनी सम्प्रदाय को कुछ समय के पश्चात् सगठन की भव्य-भावना से उत्प्रेरित होकर विसर्जित किया और पाँच सम्प्रदायो को एक रूप प्रदान किया। उन पाँच सम्प्रदायो मे सबसे अधिक तेजस्वी और वर्चस्वी व्यक्तित्व दिवाकरजी महाराज का था, और साथ ही सबसे अधिक साधु-समुदाय भी दिवाकरजी महाराज का था, तथापि उन्होंने आचार्य पद को स्वीकार नही किया। यह थी उनकी महानता। जिस पद के लिए अनेक लोग लालायित रहते है उस पद को प्राप्त होने पर भी ठुकरा देना यह उनके उदात्त मानस का प्रतीक है।

जैन दिवाकरजी महाराज से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। उनके अनेक संस्मरण आज भी मेरे स्मृत्याकाश मे चमक रहे हैं। मैं कजूस की भाँति उन सस्मरणो को सहेज कर रखने मे ही आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

जैन दिवाकरजी महाराज वक्ता थे, लेखक थे, कवि थे, चिन्तक थे, आगम साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे, समाज-सुधारक थे, सगठन के सजग प्रहरी थे। उनके जीवन मे एक नही, अनेक विशेषताएँ थी। जब भी उनकी विशेषताओ का स्मरण आता है, त्यो ही श्रद्धा से सिर नत हो जाता है। उनका स्मरण सदा बना रहे। मैं उनके मगल आशीर्वाद से आध्यात्मिक धार्मिक साहित्यिक सभी क्षेत्रो मे निरन्तर प्रगति करता रहूँ यही मगल मनीषा है।





प्रेरणा पुञ्ज

✡ महासती श्री प्रभावतीजी

सारे नगर मे एक विचित्र चहल-पहल थी। सभी के चेहरे खिले हुए थे। उनके मन मे अपूर्व प्रसन्नता थी। मैंने अपनी सहेली से पूछा—"वहिन, आज इतना उल्लास क्यो है ? सभी लोग कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हैं ?"

सहेली ने वताया—"क्या तुझे पता नही ? आज जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज हमारे नगर मे आ रहे हैं। यह उसकी तैयारी है। महापुरुषो का दर्शन और उनका सत्सग महान् भाग्य से मिलता है। एकक्षण का भी महापुरुषो का सत्सग जीवन का आमूल-चूल परिवर्तन कर देता है। एकक्षण काला-कलूटा लोहा पारस का स्पर्श करता है, तो वह चमकने लगता है। उसके मूल्य मे परिवर्तन हो जाता है। वही जीवन की स्थिति है। महापुरुषो के सग से जीवन का रग भी वदल जाता है। उसमे निखार आता है।" इसी पवित्र भावना से उत्प्रेरित होकर मैं भी अपनी सहेली के साथ जैन दिवाकरजी महाराज के स्वागत हेतु पहुँची। मैंने देखा एक विशालकाय, तेजस्वी चेहरा और उस पर आध्यात्मिक तेज लिए सन्त पुरुष सामने हैं। प्रथम दर्शन मे ही मेरा हृदय श्रद्धा से नत हो गया।

उस समय मैं उदयपुर मे स्थिरवास विराजी हुई परम विदुषी साध्वी रत्न सद्गुरुणी जी श्री सोहन कुवरजी महाराज के पास धार्मिक अध्ययन करती थी। मेरा पुत्र धन्नालाल जो उस समय गृहस्थाश्रम मे था, वाद मे प० रत्न देवेन्द्र मुनिजी वने और मेरी पुत्री महासती पुष्पावतीजी, वे दोनो भी सद्गुरुणीजी के पास धार्मिक अध्ययन करते थे। मैं सद्गुरुणी के साथ जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन सुनने पहुँची। उनके प्रवचन मे एक अनूठी विशेषता थी कि सभी विचारधारा के लोग उपस्थित होते थे। उनकी वाणी मे ऐसा गजव का अतिशय था कि सुनी-सुनायी वात भी जव वे कहते थे, तो ऐसा प्रतीत होता था कि विलकुल नयी वात सुन रहे हैं। अपने विचारो को प्रस्तुत करने का ढग उनका अपना था जिसमे श्रोता ऊवता नही था। वह यही अनुभव करता था। कि प्रवचन जितना अधिक लम्वा हो उतना ही आनन्द की उपलव्धि होगी। आप सफल प्रवक्ता थे।

जैन दिवाकरजी महाराज प्रवक्ता के साथ एक सरस कवि भी थे। उनकी कविता मे शव्दो की छटा, अलकार आदि का अभाव था। पर वे सीधे, सरल और सहज हृदय से निकली हुई थीं। उसमे साधुता का स्वर मुखरित था, भावो का प्रभात था, विचारो का वेग था। यही कारण है आपकी सैकडो पद्य रचनाएँ लोगो को कण्ठस्थ है। वे झूमते हुए गाते हैं। मेरा अपना अनुभव है जिन कविताओ या पद्य-साहित्य मे पाडित्य का प्रदर्शन होता है, सहज हृदय से जो नही निकली हुई होती हैं, उनका जन-मानस पर स्थायी प्रभाव नही पडता।

दिवाकरजी महाराज का प्रवचन व कविताएँ ही सरल नही थीं, उनका जीवन भी सरल था। जो मन मे था वही वचन मे था और वही आचरण मे भी। उनके जीवन मे बहुरूपियापन नहीं था। उनका यह स्पष्ट मन्तव्य था कि सीधे वने विना सिद्ध गति मिल नही सकती। उदयपुर के महाराणा फतेहसिंहजी और भोपालसिंहजी आपके उपदेशो से प्रभावित थे।

जैन दिवाकरजी महाराज के साथ मेरी जैनागम, जैनदर्शन को लेकर चर्चाएँ भी अनेक



वार हुई जिसमे उनका गम्भीर सैद्धान्तिक ज्ञान झलकता था। कठिन विषय को सरल और सरस शब्दो मे वे प्रस्तुत करते थे जिससे प्रश्नकर्त्ता को वह विषय सहज ही समझ मे आ जाता था।

यह बडे हर्ष और गौरव का विषय है कि जैन दिवाकर शताब्दी वर्ष मे उनसे सम्बन्धित अनेक कृतियाँ प्रकाश मे आई है और अब स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। स्मृति-ग्रन्थ के माध्यम से एक साहित्यिक महत्त्वपूर्ण कृति प्रस्तुत की जा रही है। मैं उस स्वर्गीय ज्योतिपुन्ज क्रान्तदर्शी युगपुरुष के चरणो मे अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करती हूँ और आशा करती हूँ कि उनका पवित्र जीवन हम सभी के लिए सदा प्रेरणा-पुन्ज बना रहे।

क्या ये चमत्कार नहीं है?

☆ श्री चाँदमल मारु (मंदसौर)

गुरुदेव का वि० स० १९९९ का चातुर्मास मन्दसौर मे था। इसी वर्ष गांधीजी के सान्निध्य मे 'भारत छोडो आन्दोलन' का आरम्भ हुआ। मुझे तथा मेरे साथियो को पुलिस गिरफ्तार करके ले गयी। हमारे सघ-प्रमुख श्री मिश्रीलालजी बाफना ने गुरुदेव से इस सम्बन्ध मे निवेदन किया। उन्होंने सहज ही कहा—'चिन्ता मत करो, सब आठ-दस दिन मे छूटकर घर आ जाएँगे'। यही हुआ। हम लोग नवें दिन बिना शर्त के छोड दिये गये।

इसी चातुर्मास मे एक और अविस्मरणीय घटना हुई। एक सहधर्मी भाई का इकलौता पुत्र, जिसकी उम्र करीब बीस साल रही होगी, डबलनिमोनिया मे फँस गया। उसे गुरुदेव के पास मागलिक सुनवाने ले गये। मैं भी साथ गया। सब दुखी थे, सब की आँखें डबडबाई हुई थी, किन्तु गुरुदेव ने शान्तिपूर्वक मागलिक सुनाया और कहा सब ठीक हो जायेगा। सवेरे वह स्वय उठकर व्याख्यान मे आ जाएगा। सारा वातावरण ही बदल गया। मैंने उचित दवा लाकर दी और कम्बल ओढाकर सुला दिया। वह सो गया, और सवेरे व्याख्यान मे आ गया।

इसी चातुर्मास मे एक और प्रसग इसी तरह का सामने आया। स्थानक मे गुरुदेव विराजमान थे, उसके पीछे की गली मे एक बाई भयकर प्रसव-पीडा से कराह रही थी। डाक्टर, वैद्य, दाई, नर्स सब ने उपचार किया किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ, दर्द ज्यो-का-त्यो बना रहा। ऐसे खिन्न वातावरण मे वहाँ खडे एक भाई ने कहा कि एक कटोरी जल ले जाओ और गुरुदेव का अँगूठा छुआ लाओ और बाई को पिला दो। यही हुआ और दर्द बिजली की गति से भाग गया। प्रसविनी उठ बैठी। दूसरे दिन उसने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जो मुनिश्री चौथमलजी के व्यक्तित्व को उजागर करती हैं। वस्तुत ये चमत्कार नही हैं, ये हैं उनकी आध्यात्मिक साधना से निर्मित निर्मल वातावरण के प्रभाव। उनकी साधना इतनी महान्, उज्ज्वल और लोकोपकारी थी कि चारो ओर का वातावरण, जहाँ भी वे जाते, रहते या प्रवचन करते थे, निर्मल, रुजहारी और आह्लादपूर्ण हो उठता था। वे महान् थे।



'क्या चौथमलजी महाराज पधारें हैं ?'

☆ श्री रिखवराज कर्णावट; एडवोकेट (जोधपुर)

मेरे गाँव भोपालगढ की बात है। लगभग पचास वर्ष पहले जब मैं बच्चा था प्रसिद्धवक्ता चौथमलजी महाराज पधारे। मुझे याद है सारा-का-सारा गाँव महाराजश्री के प्रवचन सुनने उमड पडता था। एक छोटे से गाँव मे हजारो स्त्री-पुरुषो का अपना काम-धन्धा छोडकर एक जैन मुनि का प्रवचन सुनने आ जाना एक असाधारण घटना थी। सैकडो अजैन भाई-बहिन अपने को जैन व महाराज के शिष्य कहलाने मे गौरव अनुभव करने लगे थे। महाराजश्री की प्रवचन-सभा मे गाँव के जागीरदार से लेकर गाँव के हरिजन बन्धु तक उपस्थित रहते थे। कुरान की आयतें सुनकर मुसलमान भाई धर्म का मर्म समझने मे प्रसन्नता अनुभव करते थे। समस्त ग्रामवासियो का इस तरह का भावात्मक एकीकरण हो जाने का कारण महाराजश्री के प्रति सबकी समान श्रद्धा थी। अनेक वर्षों तक उनका प्रभाव बना रहा। जब कभी ग्रामवासी जैन लोगो को मुनियो के स्वागतार्थ जाते हुए भारी सख्या मे देखते तो बडी श्रद्धा-भावना से पूछते, "काई चौथमलजी बापजी पधारिया ?" (क्या चौथमलजी महाराज पधारे है ?)। इस प्रकार का अमिट प्रभाव प्रसिद्ध वक्ताजी ने अपने प्रवचनो मे सर्वत्र पैदा किया था।

जोधपुर मे महाराजश्री के दो चातुर्मास हुए। दूसरे चातुर्मास मे मैं जोधपुर रहने लगा था। महाराजश्री के परिचय मे भी आया। मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति को भी महाराजश्री ने, जो स्नेह प्रदान किया वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। जोधपुर शहर मे भी ऐसा वातावरण था जैसे सारा शहर महाराजश्री का भक्त बन गया हो। विशाल व्याख्यान-स्थल पर भी लोगो को बैठने की जगह मुश्किल से मिल पाती। हजारो नर-नारी, जिसमे सभी जातियो और सभी वर्गों के लोग होते थे, महाराजश्री का उपदेश सुनने बिला नागा आते थे। किसान, मजदूर और हरिजन भी इतना ही रस लेते थे जितना बुद्धिजीवी, सरकारी अहलकार एव व्यापारी। महाराजश्री की प्रवचन-शैली इतनी आकर्षक एव जनप्रिय थी कि उनके उपदेश का एक-एक शब्द बडी तन्मयता से लोग सुनते थे। उनके उपदेश का प्रभाव था कि हजारो राजकर्मचारियो ने रिश्वत लेने का त्याग किया। हजारों ने दारू-मास छोडा। व्यापारियो ने मिलावट न करने की व पूरा माप-तौल रखने की प्रतिज्ञाएँ ली। वेश्याओ ने अपने घृणित धन्धे छोडे। कठोर-से-कठोर दिलवाले लोग भी उनके जादू-भरे वचनो से मोम की तरह पिघल जाते थे।

समाज-उत्थान के बडे-बडे काम भी उनके उपदेशो से हुए। अनेक विद्यालयो की स्थापना हुई। वात्सल्य-फण्ड स्थापित हुए। अनेक अगते कायम हुए। जोधपुर मे स० १९८४ से पर्युषण के दिनो मे नौ दिनो तक सारे व्यापारियो ने अपना काम-काज बन्द रखकर धर्म-ध्यान के लिए मुक्त समय रखने का निर्णय लिया गया। यह निर्णय आज तक भी कायम है। सभी सम्प्रदायो के लोग इस निर्णय का पालन करते हैं।

वास्तव में जैन दिवाकरजी महाराज एक युग-पुरुष थे। उन्होंने जाति-पाँति के बन्धनो को तोडा, अस्पृश्यता का निवारण किया, व्यसन एव बुराई मे पडे लोगो को निर्व्यसनी बनाया। शुद्ध समाज के निर्माण मे उनका अद्भुत योगदान रहा। उनका व्यक्तित्व एव कृतित्व कभी भुलाया नहीं जा सकता।

☆



एक सत्य कथा—

जैसी करनी, वैसी भरनी

✡ श्रीमती गिरिजा 'सुधा'

माधू खटीक आज फिर बुरी तरह से ठर्रा पीकर पत्नी पर हाथ उठा बैठा था। गालियो का प्रवाह वदस्तूर जारी था। उस वेचारी ने आज सिर्फ यही कहा था पडौसिन से कि 'इन अन-वोले जीवो की हाय हमारा सुख-चैन छीनकर ही मानेगी। कितना कमाते हैं ये, पर पाप की लछमी मे वरकत कहाँ ? तभी घर-खेंच मोची के मोची हैं हम।'

पाप की लक्ष्मी की वात सुनते ही मावू के तन-वदन मे आग लग गयी। वह चीख उठा घरवाली की पीठ पर दो-चार मुक्के जमाकर—"... 'वडी पुण्यात्मा वनी फिरती है। अरे खटीक वकरों का व्योपार नहीं करेंगे तो क्या गाजर-मूली वेचकर दिन काटेंगे हम अपने। खटीक वंश का नाम डुवोऊँगा क्या मैं माधो खटीक !" ... और आग्नेय नेत्रो से उसे घूरता मूँछो पर वल देता पीडा से कराहती छोड वह वाहर चल दिया।

पत्नी उसकी सात पीढियो को कोसती रही। थोडी देर वाद वह वापिस आया और वोला—"मैं वकरो को वेचने ले जा रहा हूँ। अभी तो वलि चढाने वाले ऊपर-त्तरी पड रहे हैं। अच्छे दाम मिलने की उम्मीद है। दो तो वेच ही आता हूँ आज।"

आत्मव्यथा से कराहती पत्नी ने कुछ भी नही कहा और वह उसी क्षण वाहर हो गया। वकरो को वाडे से लेकर वह आगरा के एक कस्वे की ओर चल दिया। चलते-चलते दोपहर हो गयी तो उसने वकरो को एक छायादार जगह मे वैठा दिया और खुद भी सुस्ताने की गरज मे एक पेड के पास जा टिका।

उधर आगरा की ओर से जैन सन्त श्रीचौथमलजी महाराज अपनी मण्डली के साथ कदम वढ़ा रहे थे। उन्होने उसे सोते और पास मे वकरो को चरते देखा, तो उनके मन में अनायास ही दया उमड आयी। उन्होंने मन-ही-मन उस कसाई को आज सही रास्ता वतलाने का निर्णय किया और आप भी वही वृक्षो की छाया मे विश्राम करने लगे। जैसा कि स्वाभाविक था, कुछ ही देर वाद माधू नींद से जागा और वकरे लेकर चलने लगा।

तभी करुणामूर्ति श्रीचौथमलजी महाराज ने उसने पूछा—"क्यो भैया, इन्हें कही वेचने ले जा रहे हो क्या ?"

"वेचूंगा नही तो खाऊँगा क्या ?" वह एकदम रुखाई से वोला और चलने की तैयारी करने लगा।

महाराजश्री ने अपनी मधुर वाणी मे उसको समझाते हुए कहा—"भाई, तू यह पापकर्म आखिर किसलिए करता है ? जीवन-निर्वाह के तो छोटे-वडे अनेक साधन मिल सकते हैं। तुझे यह कहावत पता नहीं है क्या—'जैसी करणी वैसी भरणी ?' अरे, इस तरह मूक पशुओ की हिंसा करेगा तो उनकी हाय आखिर किस पर पडेगी ? दूसरो को दुःख देकर ससार में आज तक कौन सुखी हुआ है ? अव तुम यह सव पाप भी कर रहे हो और सुखी भी नहीं हो, हो क्या ? देखो, न तो शरीर पर अच्छे कपडे हैं, न वढिया खाना-पीना मयस्सर है। फिर ऐसी पाप की कमाई के पीछे पडे रहने मे क्या सार है भैया ? सिर्फ पेट भरने के लिए क्यो पाप की गठरी वाँध रहे हो, वोलो वाँध रहे हो या नहीं ?"



"महात्माजी ! मैं आपके सामने जरा भी झूठ नही बोलूंगा ! पर यह बात आपने सच ही कही है कि 'जैसी करनी, वैसी भरनी'। मैं सुखी जरा भी नहीं हूँ। आमदनी भी भरपूर है, वैसे, पर उसमे बरकत जरा भी नही है।" माधू ने अपनी बात झिझकते-झिझकते भी कह ही डाली।

महाराजश्री ने तभी अपना उपदेश आगे बरकरार रखते हुए कहा—"भाई, अब तुम समझ गये हो कि सुखी नही हो, इस धन्धे की कमाई मे बरकत भी नही है, फिर इस धन्धे को छोड क्यो नहीं देते ? तुम्हें ध्यान है क्या कि सवाई माधोपुर के खटीको ने ऐसा जघन्य पाप करना छोड दिया है। वे अब दूसरे धन्धो मे लगे हुए हैं और ठाठ से अपनी रोटी कमा-खा रहे हैं, उनके घरो मे आनन्द-ही-आनन्द है।"

माधू खटीक को यह मालूम था, अत वह बोला—"जी हाँ महात्माजी ! मुझे पता है कि वे दूसरे धन्धे मे लग गये हैं। मैं भी इस धन्धे से पिण्ड छुडाना चाहता हूँ पर ।"

"पर ! क्या ?"—उन्होंने पूछा।

"बात यह है गुरु महाराज कि मैं कोई धनवान आदमी तो हूँ नही, गरीब हूँ, जैसे-तैसे पेट पाल रहा हूँ। मेरे पास बत्तीस बकरे हैं। यदि ये बिक जाएँ तो इनकी पूंजी से मैं कोई-न-कोई छोटा-बडा धन्धा शुरू कर दूंगा। आप मेरा यकीन कीजिये प्रभो ! मैं कभी भी अपने प्रण से नही टलूंगा। पापी पेट भरने के लिए मैं किसी जीव को जरा भी नही सताऊँगा।"

महाराजश्री ने श्रावको से कहकर उसके बकरो के दाम दिलवा दिये। माधू खटीक का जीवन उस दिन जो बदला तो उसकी सारी आस्थाएँ ही बदल गयीं। जिन्दगी की रौनक बदल गयी। वह महाराजश्री के चरणो मे गिर कर अपने कुकृत्यो के लिए क्षमायाचना करता अश्रु-बिन्दुओ से उनके चरण-कमल प्रक्षालित कर रहा था।

हिंसा पर अहिंसा की इस विजय का सारे शिष्य एवं श्रावक-समुदाय पर बडा व्यापक प्रभाव हुआ। कोई गुनगुना उठा तभी—**सग संता किं न मगलमातनोति—**

(सन्तो की संगति क्या-क्या मगल नही करती ?)

माधू घर आया तो उसका आचरण बदला हुआ था। उसने एक छोटी-सी दुकान लगाकर पाप की कमाई से छुटकारा पाकर घर मे बरकत करने वाली खरे पसीने की कमाई लाने की राह तलाश ली थी। उस राह पर बढ गया वह। अब उसकी पत्नी उस पर नाराज नहीं रहती। बदलती आस्थाओ के साथ वह उसकी सच्ची जीवन-सगिनी बन गयी है, हर पल प्रतिक्षण हीर-पीर की भागीदार।

पाँच मिनट में भीड़

✡ सौभाग्यमल कोचट्टा (जावरा)

नीमच की एक घटना का स्मरण मुझे है। बात वि० सं० १९९९ की है। गुरुदेव अपनी शिष्य-मण्डली के साथ नीमच पधारे थे। मैं भी उनके दर्शन-लाभ का लोभ नही रोक सका। दर्शनार्थ नीमच गया। वे चौरड़िया गुरुकुल मे विराजमान थे। रात्रि मे अपने अनुयायियो को अपनी अमृतवाणी का रसपान कराते रहे। प्रात काल विहार पर निकले। मैं भी साथ हो गया। चलते-चलते मैंने प्रश्न किया—"नीमच तो आपकी जन्म-भूमि है, फिर भी विहार मे आपके साथ तीन-चार भक्तो से अधिक नही हैं ?" प्रश्न सुनकर वे दो मिनट ध्यानस्थ हो गये। मैं स्तब्ध देखता रहा। चारो ओर से जन-समूह उमड पडा। मुझे याद है अधिक-से-अधिक पाँच मिनट मे वहाँ एक हजार से अधिक भक्तो की भीड जमा हो गयी थी। मेरे लिए निश्चित ही यह एक अद्भुत-अपूर्व घटना थी।



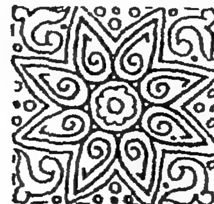
युग का एक महान् चमत्कार

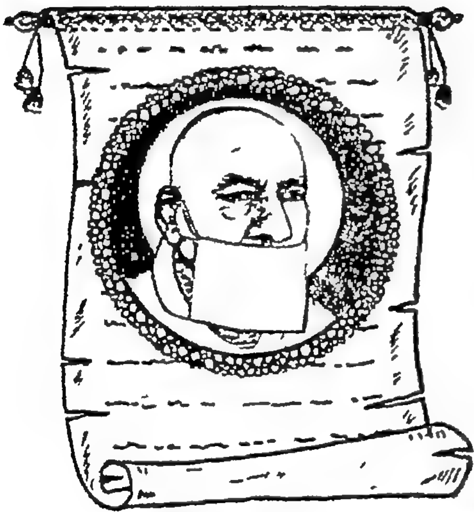
✡ बापूलालजी बोथरा, रतलाम

जिस महान् विभूति का जन्म-शताब्दि-वर्ष सारे देश मे मनाया जा रहा है, वह केवल जैन समाज का ही नही वरन् सम्पूर्ण भारत का एक असाधारण संतपुरुष था। भारत की जनता के नैतिक जीवन को ऊँचा उठाने और अहिंसा के प्रचार-प्रसार की दिशा मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने जो योगदान किया है, वह अविस्मरणीय है। उन्होंने अपने अनूठे व्यक्तित्व और अपनी असाधारण वक्तृता से बड़े-बड़े राजा-महाराजाओ को प्रभावित किया और यथाशक्ति जीव-दया तथा अहिंसा का व्यापक प्रसार किया। सैंकडो राजाओ और जागीरदारो ने जीव हिंसा-निषेध के पट्टे लिख कर उन्हें समर्पित किये। यह उस युग का एक महान् चमत्कार था। वस्तुत वे मेरे परम आराध्य गुरु हैं।

जब मैं ९ वर्ष का ही था, तब उनसे मैंने गुरु-आम्नाय (सम्यक्त्व) ली थी। एक लम्बी अवधि के बाद जोधपुर-चातुर्मास मे मैं उनके दर्शनार्थ गया था। तब मैं बीस वर्ष का तरुण था। पूरे ११ वर्षो के बाद मैंने यह दर्शन-लाभ किया था। गुरुदेव प्रवचन दे रहे थे। दस हजार से अधिक लोग एकटक, मन्त्र-मुग्ध उन्हे सुन रहे थे। व्याख्यान के बाद मैं भी उनके साथ-साथ चलने लगा। मार्ग मे उन्होने मुझसे पूछा—"बापू, थने याद है, सवत् १९८५ मे गुरु-आम्नाय ली थी ?" इस आत्मीय स्वर ने मुझे नखशिख हिला दिया। ११ वर्ष के अन्तराल के बाद भी वे मुझे नही भूले थे। सैंकडो लोगो के बीच चलते हुए उन्होंने मुझसे यह प्रश्न किया था। इस एक ही बात से मैं इतना अभिभूत हुआ कि फिर प्रतिवर्ष उनकी सेवा मे उपस्थित होने लगा।

वि० स० १९९६ से ही मेरा प्रयास रहा कि श्री जैन दिवाकरजी का एक चातुर्मास रतलाम कराऊँ। अपने प्रयत्न मे मुझे सफलता मिली सवत् २००० मे। उनका यह चातुर्मास सघ की एकता की दृष्टि से चिरस्मरणीय रहा। रतलाम के बाद संवत् २००७ मे उनका चातुर्मास कोटा में हुआ। जैन-समाज की भावात्मक एकता के सदर्भ मे यह चातुर्मास अद्वितीय रहा। इसके बाद ही वे उदर-व्याधि से पीडित हुए। १४ दिन उन्हें यह पीडा रही। मैं लगभग १२ दिन उनकी सेवा मे अन्तिम क्षणो तक रहा। मुझे उनकी अन्तिम वन्दना का सौभाग्य मिला था।





अहिंसा और सदाचार की प्रेरणा के साक्ष्य

ऐतिहासिक दस्तावेज़

श्री जैन दिवाकर - स्मृति - ग्रन्थ

[illegible] जी, श्री[illegible]
[illegible]
२१२१६

(सीधश्री श्री पोलीस जोगराजश्री
महकमे खास ताली. उपरस्या चोथमल
जी महाराज ने पोलसीद ५० अपी पासथ
मार्गसर गामलनु [illegible] होगे से
हमेस कि लीपे अगता पलाने [illegible]
मकराई सो मोत [illegible] को हमेस राज
गता पलाइ जोगा [illegible]
द २ला [illegible]



(सीधश्री श्री पोलीस जोगराजश्री मह
कमाखास ताली उपरंच चौथमलजी मा
हराज ने मालुम कराई के चेत सुद १३
श्री महावीर स्वामी जी का जन्म दीन होता
है सो अगता पालने का हुकम फरमाया
जावेली सो जाली मे जोवे है के चेत सुद
१३ को हमेसा अगता राखा जाया करे ३
[illegible] ता २६-११-१९२६



(श्रीलिखमा) (सीगमा)
[illegible]

(श्रीएकलिंगजी) (सीगमा)
[illegible]

(सीधश्री श्री पुलीस जोगराजश्री महकमे
खास [illegible]
[illegible] चोथमल
जी महाराज [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

६८४१

सिधश्री श्री पुलीस जोग राजश्री महकमे
खास लि. अपरंच। चोथमल जी माहाराज का
चातुरमास सेहर मे होने से वो यहां श्रावे-
काम रोज अगता पलाने जाने बाबत स्टु
डान्स महावीर मंडल जैन स्टेडियुर पेश होक
र लिखी जावे है के ये आने दीन को
अगता पलावोगा। १९८३ का असाढ़ वीद
१० ता० २ जोलाई सन १९२६ ई०



जैन-दिवाकर प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमल जी महाराज के उपदेश से हिन्दु-कुल-सूर्य महाराना जी साहब और उनके युवराज महाराजकुमार साहब की तरफ से अगते पालने के हुक्म की नकल।



जीवदया और सदाचार के अमर साक्ष्य

ऐतिहासिक दस्तावेज

जैनधर्म 'अहिंसाधर्म' के रूप मे विश्व विश्रुत है। यद्यपि भारत के समस्त धर्म-प्रसारको ने अहिंसा, दया, करुणा आदि पर वल दिया है, दया का प्रचार किया है, तथापि जितनी सूक्ष्मता, तन्मयता और निष्ठा के साथ जैनाचार्यों ने अहिंसा-करुणा का प्रचार किया है, वह तो अद्भुत है, अनिर्वचनीय है। जीवदया के लिए यहाँ तक कह दिया गया है—

जीववहो अप्पवहो,
जीवदया अप्पदया।

—जीव-वध आत्मवध है, जीवदया आत्म-दया है। किसी भी जीव को मारना अपने आपको मारना है, किसी जीव की रक्षा करना, अपनी आत्म-रक्षा है। इससे वढकर जीवदया की प्रेरणा और क्या होगी कि साधक अन्य जीवो की रक्षा व दया के लिए अपने प्राणो को वलिदान भी कर देता है, धर्मरुचि अणगार, मेघरथ राजा तीर्थंकर अरिष्टनेमि, तीर्थंकर पार्श्वनाथ और तीर्थंकर महावीर के अमर उदाहरण इतिहास के अमर साक्ष्य हैं।

भगवान महावीर से जव पूछा गया कि "आप (तीर्थंकर) उपदेश किसलिए देते है ?" तो उन्होने उत्तर दिया—"**सव्वजग-जीव-रक्खण दयट्ठयाए**"—जगत् के समस्त जीवो की रक्षा और दया के लिए ही मेरा (तीर्थंकरो का) प्रवचन होता है।"

भगवान् महावीर का पहला प्रवचन अहिंसा की महान् प्रतिष्ठा का प्रमाण है। मध्यम पावा मे जहाँ हजारो पण्डित और हजारो-हजार यज्ञप्रेमी-जन विशाल यज्ञ मण्डप की रचना कर अगणित मूकपशुओ का वलिदान करने की तैयारी कर रहे थे, वही पर भगवान् महावीर ने अपना पहला प्रवचन दिया, जीव-हिंसा, प्राणिवध के कटु परिणामो की हृदयद्रावक चर्चा करके उन यज्ञ समर्थक पण्डितो के हृदयो को झकझोरा, जीवदया के सुप्तसस्कारो को जगाया और जीवहिंसा से विरत कर अहिंसा की दीक्षा दी। लाखो प्राणियो को जीवनदान मिला। हजारो पशुओ की रक्षा हुई। करुणा की शीतल-धारा प्रवाहित हुई।

भगवान महावीर को आज भी ससार मे सबसे वडे हिंसा-विरोधी और जीवदया के प्रवल प्रचारक के रूप मे याद किया जाता है।

भगवान् महावीर के पूर्व भी अनेक प्रभावशाली श्रमणो ने जीवहिंसा के निषेध और जीव-दया के प्रचार मे महान् योगदान दिया।

श्रमण केशीकुमार ने प्रदेशी जैसे नास्तिक व हिंसक राजा को परम अहिंसक व दयालु वनाकर जीवदया का महान् कार्य किया था। महामुनि अनाथी श्रमण ने मगधपति श्रेणिक को शिकार व जीवहिंसा के दुष्परिणामो का बोध कराकर अहिंसा का परम उपासक वनाया था। तपोधन ऋषि गर्दभिल्ल ने सयति राजा को आखेट से त्रस्त मूक-जीवो की करुण-दशा का वर्णन कर उसका हृदय वदल दिया और जीवदया की भावना से ओतप्रोत कर उसे '**अभयदाया भवाहि**'—'समस्त संसार को अभयदान दो' का मत्र दिया था।



भगवान् महावीर के बाद जब याज्ञिक हिंसा ने राज्याश्रय ग्रहण किया तो आचार्यों ने भी राजाओ को हिंसा से विरत कर अहिंसा की घोषणाएँ, अमारिपटह आदि के द्वारा जीवदया की भावना को सदा जीवित रखा।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने सम्राट् कुमारपाल को प्रवोध देकर देवी-देवताओ के समक्ष होने वाली नृशस पशुहिंसा तथा मनोरजन के लिए किया जाने वाला शिकार आदि हिंसक-प्रवृत्तियो को उपदेश के द्वारा प्रतिवन्धित करवाया और आचार्यश्री की प्रेरणा से सम्राट् ने अमारि घोषणाएँ की, राजाज्ञा से हिंसा को प्रतिवन्धित किया।

अन्य अनेक आचार्यो ने अपने-अपने क्षेत्रो मे राजाज्ञाओ द्वारा इस प्रकार की सामूहिक हिंसाओ को रोकने के महान् प्रयत्न किये हैं।

सम्राट् अकवर के समय मे आचार्य श्री हीरविजय सूरि ने अहिंसा और करुणा की शुष्क-धारा को पुन जलप्लावित कर दिया था। स्थान-स्थान पर, पर्वतिथियो आदि पर पशुवध के निषेध की घोषणाएँ की गई। जीवहिंसा पर सरकारी प्रतिवन्ध लगाये गये और अहिंसा की भावना जनव्यापी वनी।

यद्यपि भगवान् महावीर के पश्चात् भी प्रभावक आचार्यों ने जीवदया प्रचार मे कोई कमी नही आने दी, पर जिस तीव्रता व व्यापकता के साथ शिकार, पशुवलि, प्राणिवध आदि प्रवृत्तियाँ वढी, उतनी व्यापकता के साथ उसका प्रतिवन्ध करने के प्रयत्न नही हुए। हिंसा, मद्य-पान, मास-भक्षण आदि वुराइयाँ जनव्यापी वनती गई, और इनके प्रतिकार के प्रयत्न अपेक्षाकृत कमजोर रहे।

वीसवी शताव्दी के उत्तरार्ध मे जैन-जगत् मे एक महाप्राण व्यक्तित्व का उदय हुआ जिसकी चारित्रिक प्रभा से भारत का पश्चिमाचल आलोकित हो उठा। वह महाप्राण व्यक्तित्व जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज थे। उनके अलौकिक प्रभाव, व्यापक प्रचार क्षेत्र व सर्वजनप्रियता का वर्णन पाठक पिछले पृष्ठो पर पढ ही चुके है। अहिंसा व दया के प्रचारहेतु उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था।

उन्होंने देखा कि जीवहिंसा, शिकार, पशुवध, वलि, मद्य-मांस सेवन आदि दुर्व्यसनों से यद्यपि अमीर-गरीव, राजा-प्रजा सभी ग्रस्त हैं, पर इन वुराइयो को प्रोत्साहन उच्च वर्ग से ही मिलता है। निम्न वर्ग तो विवशता की स्थिति मे वुराई का आश्रय लेता है, पर उच्च वर्ग सिर्फ मनोरजन, शान-शौक या परम्परा के नाम पर इन वुराइयो का पोषण करता है। फिर जनता का मनोविज्ञान तो 'यथा राजा तथा प्रजा' रहा है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी जनमानस की इसी मूल-वृत्ति को व्यक्त किया था—

यद्यदाचरति श्रेष्ठ लोकस्तदनुवर्तते।

वडे आदमी जो आचरण करते हैं सामान्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। समाज के वडे लोग, शासक या अधिकारी सुधर जायें तो छोटे या प्रजा-जन का सुधरना सहज है। इस नीति के अनुसार जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने समाज-सुधार या मानस-परिवर्तन का एक व्यापक तथा सामूहिक प्रयत्न प्रारम्भ किया था। वे जहाँ भी पधारते, वहाँ के उच्चवर्ग—शासक या श्रीमंत वर्ग को जीवदया, अहिंसा, सामाजिक वात्सल्य तथा शिकार-मद्य-मास त्याग की व्यापक



प्रेरणा देते और उनकी तरफ से आज्ञाएँ या घोषणाएँ प्रसारित की जाती ताकि आम जनता उनसे प्रेरणा ग्रहण करे।

उस समय के शासक वर्ग मे शिकार, मद्य-मास, पशु-बलि आदि व्यापक बुराइयाँ थी और उनका प्रतिषेध करने, उन्हे धीरे-धीरे समाज से मिटाने के लिए सामूहिक परिवर्तन की अपेक्षा थी। श्री जैन दिवाकरजी महाराज जहाँ भी जाते, उनके प्रवचनो से शासकवर्ग प्रभावित होते और आम रिवाज के अनुसार गुरु-चरणो मे कुछ भेंट रखने की पेशकश करते, तब श्री जैन दिवाकरजी महाराज उनसे यही भेंट माँगते, "त्याग करो! दया और सदाचार प्रचार मे सहयोगी बनो।" आपश्री की प्रेरणा पाकर स्थान-स्थान पर ठाकुर-जागीरदार शासक, राजा, महाराजा आदि ने स्वयं, जीव-हिंसा, शिकार, मद्य-मास सेवन का त्याग किया और प्रजा मे भी कुछ विशेष पर्व दिवसो पर, जैसे पर्युषण, महावीर जयन्ती, पार्श्वनाथ जयन्ती, जन्माष्टमी, अमावस्या, आदि दिनो मे हिंसा आदि की निषेधाज्ञाएँ प्रसारित की। भगवान महावीर के बाद २५०० वर्ष मे इस प्रकार का सामूहिक प्रयत्न पहली बार हुआ था, जब गाँव-गाँव मे इस प्रकार की अहिंसा-घोषणाएँ होने लगी थी। जनता मे जीवदया की प्रेरणाएँ जग रही थी। एक अच्छा वातावरण बन गया था। अगर श्री जैन दिवाकर जी महाराज १०-२० वर्ष और विद्यमान रहते, तो सम्भवत ये अमारिघोषणाएँ पूरे भारत मे गूँज उठती।

राजस्थान, मालवा, मध्य प्रदेश के विभिन्न ठिकानो मे हुई वे घोषणाएँ ऐतिहासिक महत्त्व के दस्तावेज हैं, जो युग-युग तक अहिंसा की गाथा को दुहरायेंगे, और जीवदया की प्रेरणा देंगे। आप पाठको की जानकारी के लिए उन दस्तावेजो की अविकल प्रतिलिपियाँ अगले पृष्ठो पर प्रस्तुत है।



प्रतिलिपि—सनदें और हुक्मनामे

[आदर्श–उपकार : पुस्तक के अनुसार]

नम्बर १५२१

माननीय महाराज चौथमलजी,

जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी की मेवा मे ।

राजेश्री ठाकरा जोरावरसिंहजी साहरङ्गी लिखी प्रणाम पहुँचे अपरञ्च आप विहार करते हुए हमारे गांव साहरगी मे पधारे और धार्मिक व अहिंसा विषयक आपके व्याख्यान सुनने का मुझको भी सौभाग्य हुआ इसलिए मैंने इलाके मे चरन्दे व परन्दे जानवरान की जो शिकार आम लोग किया करते थे। उनकी रोक के वास्ते और मछलियो की शिकार धार्मिक तिथियो मे न होने के दो सरकुलर नं० १५१९-१५२० जारी करके मनाई करदी है। नकलें उनकी इस पत्र के जरिये आपकी सेवा मे भेजता हूँ कारण के यह आपके व्याख्यान का सुफल है। फक्त ता० २३-१२-२१ ई०

—ठाकरां साहरंगी

✡

॥ श्री ॥

सरकुलर ठिकाना साहरगी व इजलास राजेश्री ठाकरा जोरावरसिंहजी साहब—

ता० २३-१२-२१ ई०

नकल मुताबिक असल के

मोहर छाप

जो कि धार्मिक तिथि एकादशी, पुनम, अमावस्या, जन्माष्टमी और रामनवमी और जैन-धर्मावलम्बियो के पजूसनो मे प्रगणे हाजा मे शिकार मछलियो की कोई गरूश नहीं करे इसका इन्तजाम होना जरूर लि०

न० १५१९

हुक्म हुआ के

मारफत पुलिस प्रगणा हाजा मे उन तमाम लोगो को जो अक्सर शिकार मछली किया करते है मुमानियत करदी जावे के खिलाफ वर्जी करने वाले पर सजा की जावेगी। फक्त बाद कारवाई असल हाजा सामिल फाईल हो।

तारीख मजकुर

सही हिंदी मे बहादुरसिंह

कामदार साहरगी

सही हिंदी मे ठाकरा

साहरगी

✡



॥ श्री ॥

सरकुलर ठिकाना साहरंगी वाइजलास राजेश्री ठाकरा जोरावरसिंहजी साहव ।

तारीख २३-१२-२१ ई०

नकल मुताविक असल के

मोहर छाप

नं० १५२०

जो के ठिकाने हाजा की हद मे ऐसा कोई इन्तजाम नही है। जिसकी वजह मे हर शख्स शिकार वे-रोक-टोक किया करते हैं। यह वेजा है इसलिए यह तरीका आयदा जारी रहना ना मुनासिव है। लिहाजा

हुक्म हुआ के

आज तारीख से प्रगणे हाजा मे विला मजूरी ठिकाना शिकार खेलन की मुमानियत की जाती है। इत्तला इसकी मारफत पुलिस तमाम मवाजेआत के मवइयान या हवालदारान के जर्ये आम लोगो को करा दी जावे के कोई शख्स इसकी खिलाफवर्जी करेगा वह मुस्तेहक सजा के होगा। फक्त वाद काररवाई असल हाजा शामिल फाइल हो।

सही हिंदी में वहादुरसिंह
कामदार साहरगी

सही हिंदी मे ठाकरा
साहरंगी

॥ श्री रामजी ॥

श्री गोपालजी।

मोहर छाप
वोहडा

आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमलजी ने कृपया व्याख्यान उपदेश किया। परमेश्वर स्मरण, दया, सत्य, धर्म जीव-रक्षा न्याय विषय पर जो प्रशसनीय व पूरा हितकारी सर्वजनो के लाभदायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आपके उपदेश से चित्त प्रसन्न होकर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

(१) मादीन जानवरो की इरादतन शिकार न की जायगी।

(२) छोटे पक्षी चिडियाओ की शिकार करने की रोक की जायगी।

(३) मोर, कवूतर, फाक्ता (सफेद डेकड) जो मुसलमान लोग मारते है न मारने दिये जायेंगे।

(४) पजूसणो मे व श्राद्ध-पक्ष मे आमतौर पर वेचने को जो वकरे आदि काटते हैं, उनकी रोक की जायगी।

(५) पजूसणो मे कतई दारू की भट्टियाँ वन्द रखी जायेंगी।

स० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ५ भोमे।

(द०) नाहरसिंह



॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
वडी सादडी

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी ज्येष्ठ कृ० ६ को वडी सादडी मे पवारे। कुछ समय व्याख्यान श्रवण होने से उत्कण्ठित हुआ अतएव महलो मे पधार व्याख्यान दिया आपके धर्मोपदेश प्रभावशाली व्याख्यान से वहुत आनन्द प्राप्त हुआ। मुनासिव समक्ष प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) पक्षी जीवो की शिकार इच्छा करके नही करेंगे।

(२) मादीन जानवरो की भी इच्छा करके शिकार नहीं की जायगी।

(३) तालाव मे मच्छियाँ आर्डा आदि जीवो की शिकार विला इजाजत कोई नही कर सकेंगे। इसके लिए एक शिलालेख भी तालाव की पाल पर मुनासिव जगह स्थापित कर दिया जायगा।

हु० नंवर १५६४

मुलाजमान कोतवाली को हिदायत हो कि तालाव मे किसी जानवर की शिकार कोई करने न पावे। यदि इसके खिलाफ कोई शख्स करे तो फौरन रिपोर्ट करें। आज के व्याख्यान में कितनेक जागीरदार हजूरिये आदि ने हिंसा वैगरह न करने की प्रतिज्ञा की है उम्मेद है वे मुवाफिक प्रतिज्ञा पावद रहेगे। नकल उसकी सूचनार्थ चौथमलजी महाराज के पास भेज दी जावे। संवत् १६८२ ज्येष्ठ शुक्ला ३ ता० १३-६-१६२६

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
वम्वोरा

जैन सम्प्रदाय के मुनिमहाराज श्री चौथमलजी के दर्शनो की अभिलाषा थी। वह आसाढ कृ० ६ को वंवोरे पधारे और कृष्णा १० रविवार को महाराज का विराजना वाजार मे था। वहाँ पर सुवह ८ वजे से १० वजे तक श्री महाराज के व्याख्यान श्रवण किये। चित्त को आनन्द प्राप्त हुआ। मैं भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से चित्त आग्रह होकर नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ—

(१) मैं अपने हाथ से खाजरु, पाडा नही मारूँगा, न मच्छी मारूँगा।

(२) हमेशा के लिए इग्यारस के दिन मेरे रसोडे मे मास नही वनेगा। न ही खाऊँगा। और ववोरे मे खटीको की दूकानें व कलालो की दूकानें वन्द रहेंगी व कुम्हारो के अवाडा नही पकेगा। अगता रहेगा।

(३) नदी मे भमर दो के नीचे से वडुवा तक कोई भी मच्छी नही मारेगा।

(४) इग्यारस के रोज ववोरे मे ऊँट पोठी नही लादने दिये जावेंगे।

(५) आपका ववोरे मे पधारना होगा उस रोज व वापिस पधारना होगा उस रोज अगता पलेगा यानी खटीको की, कलालो की दूकानें वन्द रहेंगी व कुम्हार अवाडा नहीं पकावेगा। वगैरह-वगैरह।

(६) सात वकरे अमरिये किये जावेंगे।

ऊपर लिखे मुजिव प्रतिज्ञा की गई है और मेरे यहाँ कितनेक सरदार वगैराओ ने भी प्रतिज्ञा की है जिसकी फेहरिस्त उनकी तरफ से अलग नजर हुई है। इति शुभम् स० १६८२ अषाढ कृष्णा १०।



॥ श्री नर्तगोपालजी ॥

Banera, Mewar

राजा रञ्जयति प्रजा.

जैन मजहव के मुनि महाराज श्री देवीलालजी व श्री चौथमलजी महाराज वनेडा मे वैशाख वदी ११ को पधारे। और श्री ऋषभदेवजी महाराज के मन्दिर मे इनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने नजर वाग व महलो मे भी व्याख्यान दिये आपके व्याख्यानो से वडा ही आनन्द प्राप्त हुआ जिससे मुनासिव समझ कर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

१—पजुसणो मे हम शिकार नही खेलेंगे।

२—मादीन जानवरो की शिकार इरादतन कभी नही करेंगे।

३—चैत सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म दिन होने से उस दिन तातील रहेगी ताकि सव लोग मन्दिर[1] मे शामिल होकर व्याख्यान आदि सुनकर ज्ञान प्राप्त करें व नीज उस रोज शिकार भी नहीं खेली जावेगी।

४—खास वनेडे व मवजिआत के तालावो मे मच्छी आड वगैरह की शिकार विला इजाजत कोई नहीं करने पावेगा। लिहाजा—

न० ६७४५

जुमले सहेनिगान की मारफत महक्मे माल हिदायत दी जावे कि वह असामियान को आगाह कर देवे कि तालावो मे मच्छी आड वगैरह का शिकार कोई शख्स विला इजाजत न करने पावे। खिलाफ इसके अमल करे, उसकी वाजाप्ता रिपोर्ट करे तातील वावत हर एक महक्मेजात मे इत्तला दी जावे नीज इसके जरिये नकल हाजा मुनि महाराज को भी सूचित किया जावे। फक्त १९८० वैशाख सुदी २, ता० ६ मई सन् १९२४ ई०।

द० राजा साहव के

॥ श्री रामजी ॥

नकल

॥श्री हींगला जी ॥

हुकमनामा अज् ठिकाना कोशीथल वाकै वैशाख सुदी १५ का जवानसिंह १९८०
न० ५४

मोहर छाप

जो कि अक्सर लोग जानवरो की अपना पेट भरने के लिए शिकार खेल कर जीवहिंसा के प्राश्चित्त को प्राप्त होते हैं इसलिए हस्व उपदेश साधुजी महाराज श्री चौथमलजी स्वामी के आज की तारीख से महे हुक्मनामा खास कोशीथल व पटा कोशीथल के लिए जारी कर सब को हिदायत की जाती है कि शिकार खेल कर जीवहिंसा करने से पूरा परहेज करें। अगर कोई खास वजह पेश आवे तो मजूरी हासिल करे। अगर इसके खिलाफ कोई करेगा और उसकी शिकायत पेश आवेगा तो उसके लिए मुनासिव हुक्म दिया जावेगा। इसलिए सवको लाजिम है, कि निगरानी करते रहे। और किसी के लिए विला मन्जूरी शिकार खेलना जाहिर मे आवे, तो फौरन इत्तला करें। फक्त

---

१ वनेडे (मेवाड) में जो भी श्वेताम्वर स्थानकवासी साधु जाते हैं वे सव ऋषभदेवजी के मन्दिर मे ही ठहरते हैं। और चातुर्मास का निवास भी उसी मन्दिर मे करते हैं। अत व्याख्यान भी उसी मन्दिर मे होता है। और सव श्रावक-गण सामायिक, प्रतिक्रमणादि दया पौषध वही करते हैं। अतएव 'राजा साहिव' ने श्री महावीर स्वामी के जन्म दिन तातील रखने की जैन-दिवाकरजी से प्रतिज्ञा कर सव जैन लोगो को इजाजत दी कि मन्दिरजी मे इकट्ठे होकर उस दिन व्याख्यान सुनकर ज्ञान प्राप्त करें।



॥ श्री रामजी ॥

श्री केरेश्वरजी !

मोहर छाप
लूणदा

आज यहाँ जैन सम्प्रदाय के महाराज चौथमलजी ने कृपया व्याख्यान उपदेश किया, जो प्रशसनीय व पूरा हितकारी सर्व-जनो के लाभदायक पूरा परमार्थ पर हुआ। आपके उपदेश से चित्त प्रसन्न होकर प्रतिज्ञा की जाती है कि—

(१) छोटे पक्षी की शिकार करने की रोक की जाती है।

(२) वैशाख मास मे खरगोश की शिकार इरादतन न की जायगी।

(३) मादीन जानवरो की इरादतन शिकार नही की जायगी।

(४) नदी गोमती व महादेवजी श्री केरेश्वरजी के पास श्रावण मास मे मच्छियो की शिकार की रोक की जायगी। स० १९८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार

(द०) जवानसिंह 

॥ श्री एक लिंगजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
कुरावड

जैन सम्प्रदाय के श्रीमान् महाराज श्री चौथमलजी का दो दिन कुरावड महलो मे मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा, परोपकार, क्षमा, आदि विषयो पर हृदयग्राही व्याख्यान हुआ, जिसके प्रभाव से चित्त द्रवीभूत होकर निम्नलिखित प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) कुरावड में नदी तालाब पर जलचर जीवो की हत्या की रोक रहेगी।

(२) आपके शुभागमन व प्रस्थान के दिन यहाँ पर जीव-हिंसा का अगता रहेगा।

(३) मादीन जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) पक्षियो मे सात जातियो के जानवरो के सिवाय दूसरे जाति के जीव की हिंसा नही की जावेगी। इन सातो की गिनती इस तरह होगा कि जिस तरह से इत्तफाक पड़ता जावेगा। वो ही गिनती मे शुमार होंगे।

(५) भाद्रपद कृष्णा अष्टमी से सुदी पूर्णिमा तक खटीको की दुकानें बन्द रहेगी।

(६) श्राद्ध-पक्ष मे पहले से अगता रहता है सो वदस्तूर रहेगा और इसमे सर्व हिंसा व खटीको की दूकानें भी बन्द रहेंगी।

(७) प्रतिमास एकादशी दो, अमावस्या, पूर्णिमा को अगतो हमेशा सूं रेवे है सो वदस्तूर रहेगा और खटीको की दूकानें बिल्कुल बन्द रहेगा।

(८) आश्विन मास की नवरात्रि मे एक दिन।

(९) दरवाजे नवरात्रि मे एक पाडो हमेशा वलिदान होवे वो बन्द रहेगा।

(१०) नवरात्रि में माताजी कारणीजी पागलीजी के पाडा नही चढ़ाया जावेगा।

(११) दस बकरा अमरीया कराया जावेगा।

ऊपर लिखे मुआफिक अमलदरामद रहना जरूरी लिहाजा

हु० नम्बर २६३

नकल इसकी तामिलन कोतवाली मे भेजी जावे। दूसरी नकल महाराज चौथमलजी के पास सूचनार्थ भेजी जावे। दूसरे सरदार वगैरों ने भी बहुत-सी प्रतिज्ञा की है। उसकी फेहरिश्त अलग है। संवत् १९८२ असाढ कृष्णा १४।



॥ श्री रामजी ॥

श्रीरघुनाथजी

मोहर छाप
वेदला

जैन साधु २२ सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का शुभागमन मगसिर कृष्णा ६ को वेदले हुआ। गाँव मे व राज्यस्थान मे तीन दिन व्याख्यान हुए। जिसमे प्रजा को व मुझे आनन्द हुआ। नीचे लिखे मुआफिक यहाँ भी अगते पलाये जावेंगे।

(१) पहले से यहाँ अगते रखे जाते हैं। फिर पजूसणो से मिति भादवा सुदी १५ तक अगते पलाये जावेंगे गरज के उदयपुर के मुजिब पूरे अगते पालेंगे।

(२) दोयम चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर जयन्ति पौष वदी १० श्री पार्श्वनाथ जयन्ति के अगते भी पलाये जावेंगे।

(३) श्री चौथमलजी महाराज के वेदले पधारना होगा तब भी आने व जाने की मिति का अगता पलाया जावेगा। ऊपर मुजिब हमेशा अमलदरामद रहेगा।

लिहाजा हु० न० ३६०

महाफीज दफ्तर मुत्तला होवे कि यह अगते पलाये जाने का नोट दर्ज किताब कर लेवे। नामेदार इस माफिक अमल रखाने की काररवाई करे। नकल इसकी बतौर सूचनार्थ,श्री चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे।

स० १६८३ मिगसर बदी १२ ता० २-१२-१६२६ ई०

॥ श्री एकलिंगजी ॥ श्री रामजी ॥

सही

जैन सम्प्रदाय के पण्डित मुनि महाराज श्री चौथमलजी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर सुदी ४ को व्याख्यान ततोली पधारने पर सुना। व्याख्यान परोपकार व जीवन-सुधार के बारे मे हुआ। जिसके सुनने से मुझको व रिआया को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है इस मुताबिक—

(१) तीतर की शिकार मेरे हाथ से नही करूंगा।

(२) बटेर लावा की शिकार मेरे हाथ से नही करूंगा।

(३) ग्यारस, अमावस, पूनम शिकार नही करूंगा। न ततोली पटे मे करने दूंगा।

(४) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी के आने के दिन व जाने के दिन अगता पाला जावेगा।

(५) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म व चैत सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म होने से अगता रखा जावेगा।

(६) रामनवमी, जन्माष्टमी को भी अगता रक्खा जावेगा।

(७) नोरता में पाडा वध नहीं किया जावेगा।

स० १६६० का मृगशिर सुदी ४

रामसिंहजी और जोरावरसिंहजी ने जीवन-पर्यन्त किसी जीव की हिंसा नही करने के त्याग किये और ढीकरे कुवर अमरसिंहजी ने हिरण की शिकार नही करने के त्याग किये।

द० रूपा साहब ततोली



॥ श्री रामजी ॥

श्री महालक्ष्मीजी ।

मोहर छाप
कानोड

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी का हवा मगरी के महल मे आज व्याख्यान हुआ। जो श्रवण कर बहुत आनन्द हुआ। अहिंसा धर्म का जो महाराज ने उपदेश किया वह पूर्ण सत्य और वेद सम्मत है, जिससे इस प्रकार प्रतिज्ञा की गई है।

(१) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(२) पच्चीस बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(३) यहाँ के तालाब और नदियो मे बिला इजाजत मच्छियें आम लोग नही मार सकेंगे।

(४) मादीन जानवरो की इरादतन शिकार नही की जायगी इसी तरह से पक्षियो के लिए विचार रक्खा जायगा।

हु० न० १५१२

अगता पलने और मच्छियें मारने की रोक के लिए कोतवाली मे लिखा जावे और २५ बकरे अमरिये कराने के लिए नाथूलालजी मोदी को मुतला किया जावे। नकल इसकी सूचनार्थ चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे संवत् १६८२ का ज्येष्ठ शुक्ला ८ ता० १८-६-२६ ई०।



॥ श्री रामजी ॥

श्री गोपालजी ।

मोहर छाप
भिण्डर

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी का भिण्डर पधारना होकर आज मीति असाढ कृष्णा ५ को महलो मे धर्म व अहिंसा के विषय मे व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव अच्छा पड़ा और मुझको भी इस प्रभावशाली व्याख्यान से बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) हिरन व छोटे पक्षियो की शिकार नही की जायगी।

(२) इन महाराज के आगमन व प्रस्थान के दिवस भिण्डर मे खटीको की दूकाने बन्द रहेगी। उपरोक्त प्रतिज्ञाओ की पाबदी रहेगी लिहाजा—

हु० न० २३४२

खटीकों की दूकानो के लिए मुआफिक सदर तामील बाबत थानेदार को हिदायत की जावे। और नकल उसकी चौथमलजी महाराज के पास भेजी जावे। संवत् १९८२ असाढ़ कृष्णा ५ ता० ३० जून को सन् १९२६ ई०।

न० १३





॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

रावतजी साहिब के हस्ताक्षर (अँग्रेजी लिपि मे)	मोहर छाप बाठरडा	Batharda Udaipur Rajputana

स्वस्ति श्री राजस्थान बाठरडा शुभस्थाने रावतजी श्री दलीपसिंहजी वचनात् । जैन साधु-मार्गीय २२ सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का शुभागमन यहाँ आसाढ़ विदी ३० को हुआ । यहाँ की जनता को आपके धर्म-विषयक व्याख्यानो के श्रवण करने का लाभ प्राप्त हुआ । आपका व्याख्यान राजद्वार मे भी हुआ । आपने अपने व्याख्यान मे मनुष्य जन्म की दुर्लभता, आर्यदेश मे, सत्कुल मे जन्म पूर्णायु सर्वाङ्ग सम्पन्न होने के कारणभूत धर्माचरण को बताकर धर्म के अग स्वरूप क्षमा, दया, अहिंसा, परोपकार, इन्द्रिय-निग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्य, तप, ईश्वर स्मरण भजन आदि सदाचार का विशद रूप से वर्णन करके इनको ग्रहण करने एव अधोगति को ले जाने वाले हिंसा, क्रोध, व्यभिचार, मिथ्याभाषण परहानि विषय परायणता आदि दुराचारो को यथाशक्य त्यागने का प्रभावोत्पादक उपदेश किया जो कि सनातन वैदिक धर्म के ही अनुकूल है । आपके व्याख्यान सार्वदेशिक, सार्वजनिक, सर्व धर्म सम्मत किसी प्रकार के आक्षेपो रहित हुआ करते हैं । यहाँ से आपके भेंट स्वरूप निम्नलिखित कर्त्तव्यपालन करने की प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं ।

१—हिंसा के निषेध मे—

(१) नारी जानवर की आखेट इच्छा पूर्वक नही की जायगी ।

(२) पटपड का मास भक्षण नही किया जायगा ।

(३) मोर कबूतर आदि पक्षियो की शिकार प्राय मुसलमान लोग करते हैं उनको रोक करा दी जायगी ।

(४) नवरात्रि दशहरे पर जो चौगान्या वा माताजी के बलिदान के लिए पाडे वध किये जाते हैं । वे अब नहीं किये जावेंगे ।

(५) तालाब फूल सागर मे आडें नही मारी जायेंगी ।

२—निम्नलिखित तिथियो तथा पर्वों पर अगते रखाये जायेंगे । यानी खटीको की दुकानें, कलालो की दुकानें, तेलियों की घाणियें, हलवाइयो की दुकानें, कुम्हारो के आवे आदि बन्द रहेंगे ।

(१) प्रत्येक मास मे दोनो एकादशी, पूर्णिमा का दिन ।

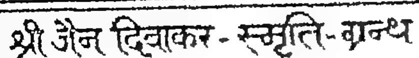
(२) विशेष पर्वों पर जन्म अष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि बसंतपचमी । चैत्र सुदी १३, ज्येष्ठ वदी ५ ।

(३) श्राद्ध पक्ष मे ।

(४) स्वामी श्री चौथमलजी महाराज के यहाँ आगमन व प्रयाण के दिन ।

३—अभयदान मे ५ पाँच बकरो को जीवदान दिया जायगा ।

उपरोक्त कर्त्तव्यो का पालन कराने के लिए कचहरी मे लिख दिया जावे । इसकी एक नकल श्री चौथमलजी महाराज के भेंट हो और एक नकल समस्त महाजन पचों को दी जावे । शुभ मिती स० १९९२ का आसाढ सुदी ३ ।



॥ श्री चतुर्भुजजी ॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध उपदेशक मुनि महाराज श्री चौथमलजी का इस नगर बदनोर मे स० १९९० का मृगशिर कृष्णा सप्तमी को पधारना हुआ। आपके व्याख्यान गोविन्द स्कूल मे मृगशिर कृष्णा ११ व १२ को श्रवण किये। अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्रोताओ को भी पूर्ण लाभ हुआ। आपका कथन बडा प्रभावशाली है। जहाँ कही आपका उपदेश होता है, जनता पर बडा भारी असर पडता है। यहाँ भी यह नियम किया गया है कि आसोजी नवरात्रि मे पहले से पाडे बलिदान होते है उनमें से आइन्दा के लिये दो पाडे बलिदान कम किये जावें जिसकी पाबन्दी रखाया जाना जरूरी है लिहाजा—

हु० न० ४४४

के वास्ते तामील अमल बरस्ते खास मे व एक-एक नकल महकमे माल व हिसाब दफ्तर मे दी जावे और यह एक नकल इसकी मुनि महाराज श्री चौथमलजी की भेंट की जावे। स० १९९० का मृगशिर कृष्णा १२ मगलवार तारीख १४ नवम्बर सन् १९३३ ईस्वी। ✡

श्री एकलिंगजी ! ॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
मुलम्बर

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज का भिण्डर की हवेली मु० उदयपुर मे आज व्याख्यान हुआ सो श्रवण कर चित्त बडा आनन्दित हुआ। अहिंसा धर्म का महाराज श्री ने सत्य उपदेश दिया वह बहुत प्रभावशाली रहा। इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) श्रीमान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन सुलम्बर मे आम अगता रहेगा।

(२) चैत्र शुक्ला १३ भगवान श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता रहेगा।

(३) पौष कृष्णा १० भगवान पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(४) ✡नवरात्रि मे पाडा को लोह होवे है सो हमेशा के वास्ते एक पाडे को अमर्‍या किया जावेगा।

(५) मादा जानवर की शिकार जान करके नही की जावेगी।

(६) मुर्गा जगली व शहरी, हरियाल, धनेतर, लावा, आड और भाटिया के अलावा दीगर पखेरू जानवरो की शिकार नही की जावेगी और जीमण मे नही आवेगा।

(७) खास सुलम्बर मे तालाव है उसमे बिला इजाजत कोई शिकार न खेले। इसकी रोक पहले से है और फिर भी रोक पूरे तौर से रहेगी। —लिहाजा

हुक्म न० ४१४

असल रोवकार हाजा सदर कचहरी मे भेज लिखी जावे के मुन्दरजे सदर कलमो की पाबन्दी पूरे तौर रखने का इन्तजाम करें और नकल इसकी सूचनार्थ श्रीमान् प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भेंट स्वरूप भेजी जावे और निवेदन किया जावे के कितनीक जीव हिंसा वगैरा बातें आपके सुलम्बर पधारने पर छोडने का विचार किया जावेगा। फक्त स० १९८३ मार्गशीर्ष कृष्णा ११ सोमवार ता० ३०-११-२६ ई०। ✡

✡ नवरात्रि और दशहरे मे जितने पाडे मारे जाते हैं उनमे एक पाडे की कमी की जावेगी। याने हमेशा के लिए एक पाडे को अमर्‍या कर दिया जावेगा।



॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री आदि माताजी ॥

मोहर छाप
देलवाडा (मेवाड)

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज के व्याख्यान उदयपुर के मुकाम वनेडा की हवेली मे मिति आसोज सुदी १४ को श्रवण करने का सुअवसर हुआ। जब से यह इच्छा थी कि श्रीमहाराज का कभी देलवाडे में पधारना हो और यहाँ की प्रजा को भी आपका व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिले। ईश्वर कृपा से श्री महाराज का यहाँ पर परसो पधारना हुआ और यहाँ की जनता को आपके धर्म-विषयक व्याख्यानो के श्रवण करने की अभिलाषा पूर्ण हुई तथा आज आपने कृपा कर राज्यद्वार मे पधार जालिम निवास महल मे व्याख्यान दिया। आपका फरमाना बहुत ही प्रभावशाली सर्वधर्म सम्मत रहा इसलिये नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

१—नीचे लिखी तिथियो पर यहाँ अगते रहेंगे।

(१) श्री चौथमलजी महाराज के यहाँ पधारने व वापिस पधारने के दिन।

(२) पौष वदी १० श्री पार्श्वनाथजी महाराज के जन्म दिवस के दिन।

(३) चैत सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी के जन्म दिवस के दिन।

(४) महीने मे दोनो एकादशी अमावस तथा पूर्णिमा के दिन।

२—पक्षी जानवरो मे लावा और जल के जानवरो मे माटिया की शिकार नही की जावेगी।

३—मादीन जानवर की शिकार इरादतन नही की जावेगी लिहाजा।

हु० न० १६७३

असल कचहरी मे मेज लिखी जावे कि न० १ की कलमो की पाबन्दी पूरे तौर से रखाई जावे और नकल इसकी सूचनार्थ मुनि महाराज श्री चौथमलजी के पास भेजी जावे। सवत् १९८३ फागण सुदी ६, ता० ९-३-१९२७ ई०

॥श्री हींगलाजी॥

॥ श्रीरामजी ॥

श्री जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनिजी महाराज श्री चौथमलजी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज पौष वदी १ को असीम कृपा करके कोसीथल को पवित्र कर व्याख्यान फरमाया। जिसके सुनने से दिलचस्पी हुई और निम्न भेंट की—

(१) ग्यारस, अमावस, पूनम महीने की सुदी ४ हर महीने की विदी ९ व श्रीमान् का पधारना होगा जिस दिन व वापस पधारे जिस दिन अगता रहेगा।

(२) तीतर पर गोली नही चलावेंगे।

(३) पाडो १ चोगानियो छूटे सो नही छोडागा।

स० १९९० पौष विदी १

द० राजचन्द्रसिंह

मुकरिया यह शिवसिंह वल्द पदमसिंहजी ने भेंट नजर की

(१) खाजरू, मीडा को लोह नहीं करूँगा।

(२) हिरण पर गोली नही चलाऊँगा।

—शिवसिंह मु० ठिकाना कोसीथल

॥ श्री ॥

मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज मिति पौष सुदी ७ सम्वत् १९९१ को वनेडिया मे पधारना हुआ। व्याख्यान सुन करके वहुत आनन्द हुआ। भेंटस्वरूप निम्नलिखित वातो का प्रतिज्ञा-पत्र लिख करके महाराज श्री के नजर किया जाता है।

(१) जहाँ तक बन सकेगा महीने की दोनो एकादशी का व्रत (उपवास) वा अमावन्या के रोज एक वक्त भोजन किया जायगा।

(२) महीने की दोनो एकादशी माहवारी वा अमावस को अगता रक्खा जायगा।

(३) पौष विदी १० चैत सुदी १३ को अगता रक्खा जायगा।

(४) जन्माष्टमी, राधाष्टमी, सक्रान्ति, गणेश चौथ को अगता रक्खा जायगा।

(५) कार्तिक, श्रावण, वैशाख, अलावा पामणा परि के इन महिनो मे अगता रक्ना जावेगा।

(६) शिकार इरादतन जरूरी के सिवाय नहीं की जावेगी।

(७) पर्यूषण हमेशा निभे जी माफिक निभाया जावेगा।

(८) एकादशी अमावस्या चडस हलगाडी वगैरा वैलो से जोताई का काम नही लिया जावेगा।

(९) जो कुछ भी रकम मुनासिव होगा हर माह किसी नेक काम मे लगाई जावेगा।

—भोपालसिंह वनेडिया

॥ श्री लक्ष्मीनाथजी ॥

॥ श्री रामजी ॥

मोहर छाप
मोही (मेवाड)

जैन सम्प्रदाय के सुप्रसिद्धवक्ता प० मुनि श्री चौथमलजी महाराज का राजस्थान मोही मे आज भाषण हुआ। वह श्रवण कर चित्त वडा आनन्दित हुआ। अहिंसा विषयक जो श्री महाराज ने सत्य उपदेश दिया वह प्रभावशाली ही नहीं प्रत्युत प्रशसनीय एव उपादेय रहा है। इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) चैत्र शुक्ला १३ भगवान् श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता रहेगा।

(२) पौष कृष्णा १० भगवान श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(३) श्रीमान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन मोही मे आम अगता रहेगा।

(४) मादा जानवर की शिकार जानकर नहीं की जावेगी।

(५) कोई पखेरु जानवर की शिकार निज हाथ से नही की जावेगी न जीमण मे काम आवेगा।

(६) हरिण की शिकार नही की जावेगी, न जीमन मे काम आवेगी।

(७) निज हाथ से कोई जीव हिंसात्मक कर्म नहीं किया जावेगा। अलावा श्रीजी हुजूर के हुक्म के।

ऊपर लिखे मुआफिक पूरे तौर से अमल रहेगा लिहाजा

हुक्म नं० ८२

असल ही कचहरी ठि० हाजा मे भेज कर लिखा जावे कि अमूरात मुन्दरजा सदर की पावन्दी वावत खटीकान को हिदायत करा देना और नकल इसकी सूचनार्थ भेंट स्वरूप श्री चौथमलजी महाराज की सेवा मे भेजी जावे स० १९८३ वैशाख कृष्णा १५ ता० १-५-२७ ई०



॥ श्री रामजी ॥

॥श्री एकलिंगजी॥

जैन-सम्प्रदाय के श्रीमान् प्रसिद्धवक्ता स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज गोगुन्दे पधारे और मनुष्य जन्म के लाभान्तर्गत अहिंसा परोपकार क्षमा आदि अनेक विषयो पर हृदयग्राही प्रभावशाली व्याख्यान हुए। जिनके प्रभाव से चित्त द्रवीभूत होकर श्रीमती माजी साहिबा श्री रणावत जी की सम्मति से जिन्होंने कृपा कर दयाभाव से यह भी फरमाया है कि इन प्रतिज्ञाओ की हमेशा, बाद मुनसरमात भी पाबन्दी रखाई जावेगी। निम्नलिखित प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) तालाव पट्टे हाजा मे मच्छियाँ आडा आदि जीवो का शिकार बिला इजाजत कोई नही कर सकेंगे। इसके लिए एक शिलालेख भी तालाव की पाल (पार) पर मुनासिब जगह स्थापित कर दिया जायगा।

(२) छोटे पक्षी चिड़ियाँ वगैरा की शिकार करने की रोक की जावेगी।

(३) मोर, कबूतर, फाख्ता, न मारने दिये जावेंगे।

(४) पर्यूषणो मे व श्राद्ध-पक्ष मे आमतौर पर बकरे आदि बेचने को काटे जाते है उनकी रोक की जावेगी।

(५) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(६) विशेष पर्व जन्माष्टमी, रामनवमी, मकर सक्रान्ति, वसन्त पचमी, शिवरात्रि, पौष वदी १० पार्श्वनाथ जयन्ति, चैत्र शुक्ला १३ महावीर जयन्ति और इनके अतिरिक्त हर महीने की ग्यारस, प्रदोष, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन बकरे आदि जानवर आमतौर पर बेचने को नही काटने दिये जावेंगे। इनके अलावा ठिकाने मे जो-जो मामूली अगते पाले जाते हैं वे भी पलते रहेंगे।

(७) कुम्हार लोग श्रावण और भादवा मे अवाडे नही पकावेंगे।

(८) श्रीयुत स्वामीजी श्री चौथमल जी महाराज के शुभागमन मे ग्यारह ११ बकरे इस समय अमरिया कराये जावेंगे।

हु० न० १८०६

नकल इस माफिक लिख श्रीयुत स्वामी जी श्री चौथमलजी महाराज के सूचनार्थ भेजी जावे। और यह परचा सही के वहिड़ा मे दरज होवे और इसमे मुत्तला थानेदार, जमादार, हवलदार को कहा जावे और साहेबलालजी को ये भी हिदायत हो कि शिलालेख कारीगर को तलब कर उससे लिखवा कर तालावो पर पट्टे हाजा मे रुपाइ जावे। दर्ज रजिस्टर हो स० १९८२ का मगसर सु० १३ तारीख १०-१२-२६ ई०

✡

॥ श्री ॥

नम्बर २८

राजेश्री कचेहरी ठि० नामली।

महाराज श्री चौथमलजी की सेवा मे—

आज रोज नामली मुकाम पर जैन-सम्प्रदाय के पूज्य श्री मुन्नालाल जी महाराज की सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज के व्याख्यानो का लाभ हमे और प्रजा को मिला। उपदेश सुनकर बडी खुशी हासिल हुई। अतएव भेंटस्वरूप हम हमारे ठिकाने में हुक्म देते हैं कि मिति चैत सुदी १३ भगवान् महावीरजी का जन्म दिन है तथा पौष विदी १० भगवान् पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है। यह दोनो दिवस हमेशा के लिए अगता याने (पलती) रक्खी जावेगा। फक्त तारीख २४ माहे जनवरी सन् १९३३ स० १९८९।

—मान महिपालसिंह

॥ श्री परमात्मने नमो नमः ॥

मोहर छाप
पाली (मारवाड)

श्रीमान् मुनि महाराज श्री श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज श्री का सेखेकाल पाली स० १९८३ का ज्येष्ठ शुक्ला १४ चतुर्दशी को पधारना हुवा और श्रीमहाराज ने उपदेश फरमायो तिण पर श्रीमान् हाकिम साहिब कुवरजी श्री सवाईसिहजी साहिब की मौजूदगी मे शहर रा समस्त पत्र ओसवाल पोरवाल, माहेश्वरी, अगरवाल, फतेपुरिया, पुष्करणा ब्राह्मण और समस्त कोम भेली होय ने धर्मरी वृद्धिकरण सारु माल एक यानी मास १२ बारे मे अगता चार नीचे मुजब राखणा मजुर किया अगर नही राखसी तो रूपिया ११ इग्यारा गुने-गारीरा देसी। मिती आषाढ कृष्णा ७ सप्तमी सम्वत् १९८३ रा तारीख २१ जून सन् १९२५ ई०।

(१) मिती चैत्र सुदी १३ श्री महावीर स्वामीजी रो जन्म दिन।
(२) मिती ज्येष्ठ सुदि ११ निर्जला इग्यारस।
(३) मिती भाद्रपद कृष्णा ८ श्री कृष्णचन्द्रजी रो जन्म दिन।
(४) मिती पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी रो जन्म दिन।

ऊपर लिखिया मुजब अगता चार जीवसाई सारा जणा पालसी, जरूरत माफक शहर मे दूकान एक-एक हरएक किश्मरा व्योपारी री खुली रेवेला सो अपने व्योपारिया मे रजा लेन्र खोलेला जिणमे कोई धर्मदिरो कफन समझ कर व्योपारी उणसु लेलेवेला और हुडी चिट्ठीरी भुगताण वन्द रेसी। पजूसणारा अगता सदा वन्दसु पाले है उणी तरह पलसी। इत्यलम्।

अज हकुमत पाली

आज यह नकल सरदारान की तरफ से श्री महाराज के पेश करने के लिए पेश हुई। लिहाजा असल नकल श्रीमान् पूज्य मुनिवर श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज साहिब के चरण-कमलो मे नजर हो। फक्त ता० २५-६-२७।

(सही) सवाईसिंह
हाकिम—पाली

☆

॥ श्री एकलिंगजी ॥ श्री रामजी ॥

जैन सम्प्रदाय के पण्डित मुनि महाराज श्री चौथमल जी के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर सुदी ५ को व्याख्यान आमदला पधारने पर सुना। व्याख्यान परोपकार व जीवन-सुधार के बारे मे हुआ। जिसके सुनने से मुझको व रियाया को बड़ा आनन्द हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है इस मुताबिक—

(१) तीतर व लावा बाटपड या जनावरा पर मैं बन्दूक नही चलाऊँगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम का पहले से ही अगता रहता है और अब भी अगता राखूंगा।

(३) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी के आने के दिन अगता पाला जावेगा।

(४) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म, चैत्र सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म है। इसलिए उस रोज अगता रखा जावेगा।

(५) वैशाख, श्रावण, कार्तिक इन तीन ही महीनो मे मेरे हाथ से गोली नही चलाऊँगा।



॥ श्री रामजी ॥

श्री एकलिंगजी ।

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता महा मुनिश्री चौथमलजी महाराज का केरिया मे वैशाख शुक्ला ५ पाचम सं० १९८४ मे पधारना हुआ और ३ तीन दिन तक केरिया मे विराज कर उपदेश दिया सो आपरा उपदेश सुनने से गाम को व मुझको वडा आनन्द हुआ। क्योकि ऐसे महा मुनियो का पधारना बड़े सौभाग्य की बात है। इसलिए उपदेश के सुनने से नीचे लिखे मुजब प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) वैशाख मइना आधा तो पहिले से ही शिकार खेलना छोड रखा है। अब आपका उपदेश सुनने से सम्पूर्ण वैशाख तक केरिया मे रहूंगा जतरे शिकार कतई नही खेलूंगा।

(२) श्राद्ध पक्ष मे तीतर पटपड खरगोश वगैरा नही मारूँगा।

(३) चैत्र शुक्ला १३ तेरस श्री महावीर स्वामी का जन्म व पौष कृष्णा १० दशम श्री पार्श्वनाथजी का जन्म होने से अगता हमेशा रखा जावेगा।

(४) चैत्र शुक्ला ९ नवमी का अगता रखा जावेगा।

(५) श्रीमान् मान्यवर चौथमलजी महाराज का जब केरिया पधारना होवेगा तब अगता रखा जावेगा और वापिस विहार करती वक्त भी रखा जावेगा।

(६) अमावश, पूनम, ग्यारस इन तिथियो का भी अगता रखा जावेगा।

(७) भादवा विद १२ से लगाय सुद ५ तक पजूसणा को अगतो हमेशा रखा जावेगा।

नकल इसकी स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के सूचनार्थ भेंट की जावे और अगते पालने की हमेशा याद मे राखी जावेगा। फक्त स० १९८४ का वैशाख शुक्लो ६।

—द० गुलाबसिह केरिया ✡

॥ श्री रामजी ॥

श्री चतुर्भुजजी

न० १०

मोहर छाप
सावत

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी महाराज का पधारना वैशाख शुक्ला ७ को निम्बाहेडे हुआ और ८-९ को व्याख्यान हुए जिसमे प्रजा को व मुझको आनन्द हुआ। नीचे लिखे माफिक प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) शराब वैशाख मे नहीं पीऊँगा।

(२) तीतर, वटेर, हरेल, धनतर ये वैशाख में शिकार नही की जावेगी और दूसरे शिकारियो को भी मना कर दिया जावेगा।

(३) पजूसण मे अगते पाले जावेंगे। दुकानदार खटीक लोगो को हिदायत करदी जावेगा। ८ दिन उदेपुर मे पलते हैं—वा माफिक।

(४) चेत शुक्ला १३ महावीर जयति का व पौष विद १० के भी अगते पलाये जावेंगे।

(५) चौथमलजी महाराज का कभी पधारना होवेगा तो एक रोज आने का एक रोज जाने का अगता रखाया जावेगा।

(६) ११ के रोज तो पहले शिकार खेलना छोड रखा है मगर अमावस्या के रोज भी शिकार खेलना वन्द कर दिया जावेगा। स० १९८४ का वैशाख शुक्ला ९

द० जगन्नाथ पचोली का श्री रावला हुक्मसु



॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री रूपनारायणजी ॥

दस्तखत अंग्रेजी मे
ठाकुर साहिब के

मोहर छाप
लसाणी (मेवाड़)

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का लसाणी मे यह तीसरी मरतबा पधारना हुआ। और इस मौके पर तीन दिन विराज कर जो उपदेश फरमाया उससे चित्त प्रसन्न होकर नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) परिन्दे जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(२) श्रावण व भाद्रव मास मे इरादतन शिकार नही की जावेगी।

(३) मादिन जानवर इरादतन नहीं मारे जावेंगे।

(४) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(५) स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन अगता पलाया जावेगा।

(६) ग्यारस, अमावस्या के दिन शिकार जमीन मे नही की जावेगी।

(७) श्रावण मास के सोमवारो को हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(८) श्राद्ध-पक्ष में पहले से शिकार की दुकान का अगता पलता है वह अब भी बदस्तूर पलेगा। इसके अलावा पजूसणों मे भी शिकार की दूकान का हमेशा के लिए अगता रहेगा।

(९) मच्छी व हिरन की शिकार नही की जावेगी।

(१०) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी का यहाँ पधारना हुआ इस खुशी मे इस मरतवा ५ बकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(११) वैशाख मास मे पहले से शिकार की रोक है उस माफिक अमल हमेशा के लिए रहेगा। लिहाजा—

हु० न० ५६

नकल इसकी स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के सूचनार्थ भेंट की जावे अगते पलाने की खटिकान को हिदायत कराई जावे। अमरिये बकरे कराने की नामेदार हस्व शरिस्ता काररवाई करे स० १९८३ ज्येष्ठ कृष्णा ४ शुक्रवार ता० २० मई, सन् १९२७ ई०

✡



७४ ॥ रामजी ॐ

श्री चतुर्भुजजी
सही
ठाकुर साहिब की

मोहर छाप
ताल मेवाड

जैन-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के मुखारविन्द का भाषण सुनने की इच्छा थी कि ईश्वर की कृपा से ता० २० मई सन् १९२७ ई० को पधारना हो गया। आपका उपदेश सुनकर चित्त बडा प्रसन्न हुआ इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है।

(१) कार्तिक, वैशाख महीने मे शिकार नही खेली जावेगी बाकी महीनो मे से प्रत्येक महीनो मे ८ रोज के सिवाय शिकार वन्द रहेगी। अर्थात् २२ दिन शिकार वन्द रहेगी।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(३) स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज के पधारने व विहार करने के दिन अगता पलाया जावेगा।

(४) प्रत्येक महीने की ग्यारस व अमावस के दिन शिकार जीमन मे नही ली जावेगी।

(५) श्रावण मास के सोमवारो को हमेशा के लिए अगता पलाया जावेगा।

(६) श्राद्धपक्ष मे हमेशा अगता पलाया जावेगा और शिकार भी नही खेली जायगी।

(७) स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी का ताल पधारना हुआ इस खुशी मे इस मर्तवा इस साल के लागत के आने वाले करीब ६०-७० सब वकरे अमरिये कराये जावेंगे।

(८) पहले भी महाराज श्री से त्याग किये हैं वे बदस्तूर पाले जायेंगे।

(९) पजूसणो मे कतई अगता पाला जावेगा।

लिहाजा हुक्म नम्बर १११

नकल इसकी स्वामीजी महाराज श्री चौथमलजी के सूचनार्थ भेंट की जावे और अगता पालन की खटिकान को हिदायत कराई जावे। अमरिये वकरे कराने की हस्ब शरिस्ते काररवाई करने की हिदायत वीडवान नाथू भाटी को की जावे। वि० स० १९८३ का ज्येष्ठ कृष्णा ६ ता० २२ मई सन् १९२७ ई० रविवार।

☆



॥श्री रामजी ॥

॥ श्रीवाणानाथजी ॥

मोहर छाप
मेजा (मेवाड़)

मेजा—मेवाड
ता० ४-५-२८

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज मेजे मे सं० १९८४ के वैषाख शुक्ला १५ पधारे और सुवह व्याख्यान महलो मे दो दिन हुआ जो श्रवण कर वहुत आनन्द प्राप्त हुआ। अहिंसा धर्म का जो महाराज ने सत् उपदेश दिया वह वहुत प्रभावशाली है इसलिए प्रतिज्ञा की जाकर नीचे लिखी तिथियो पर जीवहिंसा का अगता भी रहेगा।

(१) पौष कृष्णा १० श्रीपार्श्वनाथजी महाराज का जन्मदिवस के दिन।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्मदिवस के दिन।

(३) आपके पधारने व विहार करने के दिन अगता रहेगा।

(४) आपके शुभागमन मे ११ ग्यारा वकरे इस समय अमरिया कराए जावेगा।

(५) यहाँ के तालाव मे विना इजाजत मच्छिएँ आम लोग नही मार सकेंगे।

(६) आसोज शुक्ला ९ के दिन दश वकरो का वध होता है उसकी जगह पाँच को अभयदान दिया जावेगा।

(७) धर्मवीर श्रीमान् महाराज साहव सुरतसिंहजी के आज्ञानुसार हीरन की शिकार खुद के हाथ से नही की जाती, जिनके

(८) वैषाख शुक्ला १२ के जन्म दिवस के उपलक्ष मे ५ पाँच वकरो को अभेदान दिया जावेगा।

हुक्म न० २९५

असल हू वास्ते तामील के सरिस्ते मे दिया जावे और एक नकल इसकी मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भेंट की जावे। सवत् १९८४ का वैषाख शुक्ला १५

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री चतुर्भुजजी ॥

श्री जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का खेरावाद मे ज्येष्ठ कृष्णा ३ सं० १९८४ को पधारना हुआ। आपके उपदेश से मुझे वडा आनन्द हुआ जिससे नीचे लिखे माफिक प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) चैत्र शुक्ला १३ को श्री महावीर जयन्ती होने से व पौष कृष्णा १० को श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिवस होने से अगता पलाया जावेगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम को शिकार का प्रयोग नहीं किया जावेगा।

(३) मैंने आज दिन तक शिकार नहीं की और अव भी नहीं करूँगा।

(४) श्री चौथमलजी महाराज का जिस दिन खेरावदा मे पधारना होगा और वापिस विहार होगा उस दिन अगता रखा जावेगा।

स० १९८४ का ज्येष्ठ कृष्णा ३

(द०) म० बागसिंह—खेरावदा



॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

जैन सम्प्रदाय के परम पूज्य प्रसिद्धवक्ता मुनिजी महाराज श्री चौथमलजी का वैशाख शुक्ला ६ शनीश्चर स० १९८४ को भगवानपुरे मे पदार्पण हुआ। आपका भाषण साम्प्रदायिक विवाद रहित अहिंसा ब्रह्मचर्यादि सरस भाषा में हृदयग्राही दृष्टान्तो युक्त साधारण गायन के सम्मेलन से सुशोभित होने के कारण जन-साधारण पर विशेष प्रभावशाली हुआ। और मैंने भी सुना तो अहिंसा वेद सम्मत है। जिससे निम्नलिखित प्रतिज्ञाओ के लिए यह विचार किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य निज के विचारो से, शारीरिक क्रियाओ को रोकने मे स्वतत्र है। तथापि यावज्जीवन प्रतिज्ञाओ का यथावत् निर्वाह होना दैवाधीन होने के कारण परतन्त्र भी है। प्रार्थना है ईश्वर निभावे।

(१) छर्रे से शिकार नही की जावेगी कि जिससे सहज ही मे छोटे जीवो की हिंसा विशेष न होवे।

(२) भगवानपुरा पास के तालाब सरूपसागर मे और झरणा महादेवजी के स्थान पर भगवानपुरे की सरहद की नदी मे भी मच्छिऐं मारने की मनाई करादी जावेगी।

(३) पजूषणों मे खटीक-कसाइयो को जीव हिंसा नहीं करने की हिदायत करादी जावेगा।

(४) शेर, चीते के सिवाय निज इच्छा से जहां तक पहचाना जा सके मादिन की शिकार नही की जावेगी।

(५) मच्छी की शिकार नही की जावेगी।

(६) मच्छी का गोस्त भी खाने के काम मे नही लाया जायगा।

(७) चैत्र सुदि १३ व पौष विद १० के दिन अगता रखा जावेगा।

स० १९८४ का वैपाख सुद ११

(सही) रा० सुजानसिंह, भगवानपुरा

॥ श्री ॥

जा० न०
२४

Thikana Raipur H S

१६-५-१९३५ ई०

जैन सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन की हमे अत्यन्त आकाक्षा थी। ईश्वर की कृपा से आपका पदार्पण ता० १५-५-१९३५ ई० को रायपुर ग्राम में हुआ। आपके यहाँ दो बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुए। आपके द्वारा उपदेशामृत पान करके हम और हमारे यहाँ का कुल समाज अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आप वास्तव मे अहिंसावाद के प्रभावशाली व्याख्यान देने वाले महात्मा हैं। मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप निम्नाकित प्रतिज्ञाएँ करके प्रतिज्ञापत्र महामुनि को समर्पित करता हूँ।

(१) इस ग्राम में पर्यूषण पर्व व जन्माष्टमी पर धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से इन तिथियो पर भी धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(३) शराब एक दूषित पदार्थ है। इसका सेवन हम कभी आजन्म पर्यन्त नहीं करेंगे।

(सही अंग्रेजी मे)

राव जगन्नाथ सिंह



॥श्री चतुर्भुजजी॥ ॥ श्री रामजी ॥

नकल

मोहर छाप
वदनोर

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्धवक्ता मुनिश्री चौथमलजी महाराज का व्याख्यान सवत् १६८४ का वैशाख कृष्णा १४ को सुवह गोविन्द स्कूल व तीसरे पहर को व वैशाख कृष्णा अमावस्या को भी गोविन्द स्कूल वदनोर मे श्रवण किया। बडी प्रसन्नता हुई। श्रोताओ को भी पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। आप बड़े प्रभावशाली हैं। जहाँ कही आपका व्याख्यान होता है उसका जनता पर बडा असर होता है। यहाँ भी नीचे लिखे नियम किये जाते हैं—

नीचे लिखी तिथियो पर यहाँ अगते रहेंगे—

(१) पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी महाराज का जन्म दिवस के दिन चैत्र शुक्ला १३ श्रीमहावीर स्वामीजी के जन्म दिवस के दिन।

(२) यहाँ चादरास के केशर सागर तालाव मे मच्छी की हिंसा कोई न करे, इसकी रोक की गई है। लिहाजा—

हुक्म

के अमल वास्ते तामिल शिरस्ते मे दिया जावे और एक नकल इसकी मुनिश्री चौथमलजी महाराज के भेंट की जावे। १६८४ का वैशाख कृष्णा अमावस्या, शुक्रवार ता० २० अप्रेल सन् १६२८ फक्त।

✡

॥ श्री चतरभुज जी॥ ॥ श्रीरामजी ॥

सावत

श्री जैन-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनिजी श्री चौथमलजी महाराज के व्याख्यान सुनने की अर्से से अभिलाषा थी कि आज मृगशिर शुक्ला १४ तदनुसार ता० ३०-११-३३ ई० को असीम कृपा फरमाकर नांदिसमा जागीर को पवित्र कर व्याख्यान फरमाया जो जीव-सुधार व दया पर था, जिसके सुनने से वडी दिलचस्पी हुई। नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) हिरण, खरगोश, नार, सुअर, मगर, बकरा, मेढा के सिवाय किसी जानवर को मेरे हाथ से वध नहीं करूँगा।

(२) ग्यारस, अमावस, पूनम व श्रीमान् के पधारने व वापसी जाने के दिन अगता रहेगा।

(३) पौष विदी १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म व चैत्र सुदी १३ महावीर स्वामी का जन्म होने से अगता रहेगा।

(४) रामनवमी, जन्माष्टमी, कार्तिक, वैशाख, श्रावण, भादवा को अगता रहेगा।

(५) महीने मे चार दिन के सिवाय शराव काम मे नही लूंगा।

(६) इसी तरह काकाजी जयसिंह ने भी अपने हाथ से किसी जानवर को वध नहीं करेंगे। अपने दिली चाह से परस्त्रीगमन भी नही करेंगे। ऐसा नियम लिया।

स० १६६० का मृगशिर सुदी १४ ता० ३०-११-३३ ई०

द० जयसिंह
द० नारायणसिंह





॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

नकल

मोहर छाप
हमीरगढ

जैन सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज का हमीरगढ मे व्याख्यान हुआ वह श्रवण कर चित्त वडा आनन्दित हुआ। हिंसा धर्म का जो महाराज ने सत्य उपदेश दिया वह वहुत प्रभावशाली रहा इसलिए नीचे लिखी प्रतिज्ञा की जाती है—

(१) श्रीमान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पधारने के रोज से वापिस विहार करने के रोज तक हमीरगढ मे अगता रहेगा।

(२) चैत्र शुक्ला १३ भगवान् महावीर स्वामी का जन्म दिन है, सो उस रोज हमेशा के लिए अगता रहेगा।

(३) पौष कृष्णा १० भगवान् पार्श्वनाथजी का जन्म दिन है सो हमेशा के लिए आम अगता पलाया जावेगा।

(४) दशरावे के दिन चोगान्यो पाडो नही मार्‌यो जावेगा।

(५) जंगल मे छोटी शिकार पखेरु हिरण वगैरा की शिकार नही किया जावेगा।

(६) पजूसणा मे अगतो पलायो जावेगा।

(७) ई साल की फसल उनाले की लागत का वकरा करीव ३५-४० आवेगा वो सव अमरे करा दिये जावेगा लिहाजा।

हु० नम्वर ७४८

असल स्वकार हाजा कचहरी मे भेजकर लिखी जावे के मुन्दरजे सदर कलमो की पावन्दी पूरे तौर रखने का इन्तजाम करें। और नकल इसकी सूचनार्थ श्रीमान् प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के भेंट स्वरुप भेजी जावे। सवत् १९८४ का ज्येष्ठ विदि ५ शुक्रवार।

नकल हुक्म इजलासी महाराज तेजराजसिंहजी साहव सरकार गेंता ता० ८-१-३६ ई०

श्री राघवजी महाराज

मोहर छाप
गेंता

(सही अंग्रेजी मे) न० ४८७
तेजराजसिंह नकल है

अज इजलास श्री सरकार साहव, गेंता

ता० ८-१-३६

श्री चौथमलजी महाराज के फरमाने के मुआफिक कि श्री महावीर स्वामीजी के जन्म दिन चैत्र सुदी १३ व श्री पार्श्वनाथजी भगवान् जी के जन्म दिन पौष वदी १० को अगता पाला जावे लिहाजा ये वात महाराज की मन्जूर की जाती है।

हुक्म हुआ कि

तामील को कामदारी मे जावे। और एक नकल महाराज को भेजी जावे। फक्त

—रामगोपाल
सरिश्तेदार



Page 266

Vol. 65
No 21

NOTICE

Dated Jodhpur, the 18th February 1930

2309 Sec 2/7 It is hereby notified for general information that His Highness the Maharaja Sahib Bahadur has been pleased to approve of the suggestion of the Agta Committee in the matter of observance of Agtas in the city of Jodhpur, that Agtas should be observed on two of the Paryushan dayr, Viz Bhadwa Sudi 4th & Bhadwa Sudi 5th and on Janm-Ashtami by butchers only. They will be paid a sum of Rs 300/- for the above three Agtas (Rs 100/- per Agta)

(Sd) C. J Windhaw
Vice President,
State Council Jodhpur.

नोटिस

हर खास व आम को जरिये नोटिस हाजा इत्तला दी जाती है कि श्रीजी साहिब ने अगता कमेटी की राय जोधपुर शहर मे अगते पालने बावत मन्जूर फर्माया है। लिहाजा हस्ब जेल हुक्म दिया जाता है कि—

(१) जैन पजूषण पर्व मे दो दिन याने भादवा सुदी ४ व भादवा सुदी ५ को अगते पाले जावें।

(२) वैष्णव धर्म के उत्सवो मे श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन अगता पाला जावे।

ये अगते केवल कसाई लोग पालेंगे और उनको मुआवजा फी अगते १००) रु० के हिसाब से राज्य से दिया जावेगा।

(Sd.) C. J Windhaw
Vice President,
State Council Jodhpur

डाई छाप

Raja's Fort
Mainpuri
ता० १६-३-३७

श्री पूज्यवर श्री मुनि चौथमलजी महाराज मेरा प्रणाम स्वीकार हो—

मैं बहुत-बहुत धन्यवाद आपकी कृपा का करता हूँ कि आप कष्ट करके यहाँ पधारे। और उत्तम उपदेश सुनाये जिससे चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। सौभाग्य से आपके दर्शन हुए (बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता) अब आपकी आज्ञानुसार कुछ लेख सेवा में भेज रहा हूँ। उदेपुर व रतलाम के महाराजा लोग स्वतन्त्र हैं, वो कानून अपने यहाँ हर तरह की जारी कर सकते हैं। यहाँ विशेष अधिकार गवर्नमेण्ट का है। यह आपको विदित ही है। जहाँ तक मुमकिन होगा आपके उपदेश के मुआफिक कोशिश की जावेगी। विशेष क्या लिखूं। कृपा बनाये रखिये।

राजा बहादुर राजा शिवमंगल सिंह



नकल रूवकार इजलास खास राज्य इन्द्रगढ वाके २३-१-३६

मोहर छाप
इन्द्रगढ

(सही अँग्रेजी मे)
कामदार इन्द्रगढ

आज मुनि श्री चौथमलजी का उपदेश कोठी खास पर हमारे सामने हुआ। उसके उपलक्ष मे मुनि महाराज की इच्छानुसार साल मे दो तिथियो पौष बुदी १० व चैत्र सुदी १३ पर राज्य इन्द्रगढ मे अगता यानी पशु-वध न किया जाना स्वीकार किया जाता है—

हुक्म हुआ

पुलिस निजामत व तहसील बारह गाँव को इत्तला दी जावे कि इस हुक्म की पाबन्दी होती रहनी चाहिए। एक नकल इसकी मुनि महाराज को दी जावे। कागज दर्ज रजिस्टर मुतफरकात माल होकर दाखिल दफ्तर हो। (सही अँग्रेजी मे)

[आवाराज]

श्री हुजूर की आज्ञानुसार आपको विनम्र सूचना दी जाती है कि आपकी इच्छानुसार चैत्र सुदी १३ को जहाँ तक श्रीमान् आवागढ नरेश का प्रभाव चल सकेगा जीवहिंसा रोकने की चेष्टा की जायगी। श्री स्वामी श्री चौथमलजी को विदित हो कि हमारा राज्य जमीदारी है। और हमको कानून बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिए हुक्मन यह आज्ञा जारी नहीं की जा सकती। केवल प्रभाव से ही काम लिया जाना सम्भव है। ता० १-३-३७ ई०

॥ श्री ॥

मोहर छाप
भाटखेडी

नम्बर १३
ता० २८-३-३५

जैन सम्प्रदाय के जगत्वल्लभ जैन दिवाकर सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित प्रवर मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के दर्शनो की मेरे दिल मे बहुत अभिलाषा थी। सौभाग्य से महाराज श्री का भाटखेड़ी मे तारीख २६-३-३५ को पदार्पण हुआ और कचहरी मे आपके दो दिन प्रभावशाली व्याख्यान हुए। उपदेशामृत सुनकर चित्त बडा ही प्रसन्न हुआ। इसलिये मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप नीचे लिखी प्रतिज्ञाओ के विषय मे यह प्रतिज्ञापत्र सादर नजर करता हूँ। इन प्रतिज्ञाओ का पूरी तौर से पालन सदैव होता रहेगा—

(१) इस ग्राम मे पहिले से पर्यूषण पर्व व जन्माष्टम्यादि के धार्मिक अगते पाले जाते हैं उसी मुजब सदैव पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से ये दो अगते भी अब आयन्दा सदैव पाले जावेंगे।

सदर प्रमाणे सदैव अमल रहेगा। शुभ मिती चैत्र कृष्णा ८ स० १९९१ वि०

रावत विजयसिंह

Page 266

Vol. 65
No. 21

NOTICE

Dated Jodhpur, the 18th February 1930

2309 Sec 2/7 It is hereby notified for general information that His Highness the Maharaja Sahib Bahadur has been pleased to approve of the suggestion of the Agta Committee in the matter of observance of Agtas in the city of Jodhpur, that Agtas should be observed on two of the Paryushan dayr, Viz Bhadwa Sudi 4th & Bhadwa Sudi 5th and on Janm-Ashtami by butchers only They will be paid a sum of Rs 300/- for the above three Agtas (Rs 100/- per Agta)

(Sd) C. J Windhaw
Vice President,
State Council Jodhpur

नोटिस

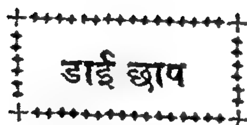
हर खास व आम को जरिये नोटिस हाजा इत्तला दी जाती है कि श्रीजी साहिब ने अगता कमेटी की राय जोधपुर शहर मे अगते पालने बावत मन्जूर फर्माया है। लिहाजा हस्व जेल हुक्म दिया जाता है कि—

(१) जैन पजूषण पर्व मे दो दिन याने भादवा सुदी ४ व भादवा सुदी ५ को अगते पाले जावें।

(२) वैष्णव धर्म के उत्सवो मे श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन अगता पाला जावे।

ये अगते केवल कसाई लोग पालेंगे और उनको मुआवजा फी अगते १००) रु० के हिसाब से राज्य से दिया जावेगा।

(Sd) C. J Windhaw
Vice President,
State Council Jodhpur





Raja's Fort
Mainpuri
ता० १६-३-३७

श्री पूज्यवर श्री मुनि चौथमलजी महाराज मेरा प्रणाम स्वीकार हो—

मैं बहुत-बहुत धन्यवाद आपकी कृपा का करता हूँ कि आप कष्ट करके यहाँ पधारे। और उत्तम उपदेश सुनाये जिससे चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। सौभाग्य से आपके दर्शन हुए (बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता) अब आपकी आज्ञानुसार कुछ लेख सेवा में भेज रहा हूँ। उदेपुर व रतलाम के महाराजा लोग स्वतन्त्र हैं, वो कानून अपने यहाँ हर तरह की जारी कर सकते हैं। यहाँ विशेष अधिकार गवर्नमेण्ट का है। यह आपको विदित ही है। जहाँ तक मुमकिन होगा आपके उपदेश के मुआफिक कोशिश की जावेगी। विशेष क्या लिखूँ। कृपा बनाये रखिये।

राजा बहादुर राजा शिवमंगल सिंह



नकल रूवकार इजलास खास राज्य इन्द्रगढ़ वाके २३-१-३६

मोहर छाप
इन्द्रगढ

(सही अँग्रेजी मे)
कामदार इन्द्रगढ

आज मुनि श्री चौथमलजी का उपदेश कोठी खास पर हमारे सामने हुआ। उसके उपलक्ष मे मुनि महाराज की इच्छानुसार साल मे दो तिथियो पौष बुदी १० व चैत्र सुदी १३ पर राज्य इन्द्रगढ मे अगता यानी पशु-वध न किया जाना स्वीकार किया जाता है—

हुक्म हुआ

पुलिस निजामत व तहसील वारह गाँव को इत्तला दी जावे कि इस हुक्म की पावन्दी होती रहनी चाहिए। एक नकल इसकी मुनि महाराज को दी जावे। कागज दर्ज रजिस्टर मुतफरकात माल होकर दाखिल दफ्तर हो।

(सही अँग्रेजी मे)

[आवाराज]

☆

श्री हुजूर की आज्ञानुसार आपको विनम्र सूचना दी जाती है कि आपकी इच्छानुसार चैत्र सुदी १३ को जहाँ तक श्रीमान् आवागढ नरेश का प्रभाव चल सकेगा जीवहिसा रोकने की चेष्टा की जायगी। श्री स्वामी श्री चौथमलजी को विदित हो कि हमारा राज्य जमीदारी है। और हमको कानून बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिए हुक्मन यह आज्ञा जारी नहीं की जा सकती। केवल प्रभाव से ही काम लिया जाना सम्भव है। ता० १-३-३७ ई०

☆

॥ श्री ॥

मोहर छाप
माटखेडी

नम्बर १३
ता० २८-३-३५

जैन सम्प्रदाय के जगत्वल्लभ जैन दिवाकर सुप्रसिद्ध वक्ता पण्डित प्रवर मुनि श्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज के दर्शनो की मेरे दिल मे बहुत अभिलाषा थी। सौभाग्य से महाराजश्री का माटखेडी में तारीख २६-३-३५ को पदार्पण हुआ और कचहरी मे आपके दो दिन प्रभावशाली व्याख्यान हुए। उपदेशामृत सुनकर चित्त बडा ही प्रसन्न हुआ। इसलिये मैं महाराज श्री के भेंट स्वरूप नीचे लिखी प्रतिज्ञाओ के विषय मे यह प्रतिज्ञापत्र सादर नजर करता हूँ। इन प्रतिज्ञाओ का पूरी तौर से पालन सदैव होता रहेगा—

(१) इस ग्राम मे पहिले से पर्यूषण पर्व व जन्माष्टम्यादि के धार्मिक अगते पाले जाते हैं उसी मुजव सदैव पाले जावेंगे।

(२) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से ये दो अगते भी अब आयन्दा सदैव पाले जावेंगे।

सदर प्रमाणे सदैव अमल रहेगा। शुभ मिती चैत्र कृष्णा ८ स० १९९१ वि०

रावत विजयसिह

☆



॥ श्री नाथजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नकल हुक्म

अजतरफ पेशगाह श्रीमान् ठाकुर साहेब सरदारगढ मेवाड वाके असाढ़ विद ४ ता० ६-६-३६ ई० स० १९९५

मोहर छाप
सरदारगढ

आज दिन जैन सम्प्रदाय के मुनिराज श्री चौथमलजी महाराज साहब का व्याख्यान धर्म विषय में किले पर हुआ। भगवान् पार्श्वनाथजी का जन्म पौष विदि १० व भगवान् महावीर स्वामी का जन्म चैत्र सुदि १३ का होने से इन दोनो तिथियो पर अगता रखाने का परवाना रियासत से भी इनको हुआ है और महाराज साहब जब कभी यहाँ पधारें और वापस पधारे उस तारीख को भी अपने अगता रखना स्वीकार किया लिखा।

॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

जगद्वल्लभ जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित रत्न मुनिश्री १००८ श्री चौथमलजी महाराज साहब का पदार्पण गाँव थाणा (मेवाड़) मिति ज्येष्ठ शुक्ला ४ सोमवार स० १९९६ को हुआ। उस मौके पर श्रीमान् ठाकुर साहब राजश्री मदनसिंहजी साहब ठिकाना थाणा की तरफ से—

हमारा अहोभाग्य है कि ज्ञानाभ्यासी संतजी का पदार्पण हमारे गाँव मे हुआ। आपने निहायत सरल भाषा मे उपदेश दिया। आपका उपदेश गोश गुजार होते ही मेरी जनता के ज्ञान की झलक उमड़ उठी और मैंने हस्त्रजेल प्रतिज्ञा की—

(१) हिरन की शिकार कभी नही करूँगा।

(२) हिरन के अलावा भी रोज-सावर व तीन किस्म के परदे, पाँच किस्म के जानवरो पर गोली नहीं चलाऊँगा।

(३) मेरे यहाँ होलिका का एहडा[1] चढता है सो हमेशा के लिए बन्द कर दिया है।

(४) मेरे भाई जीवनसिंहजी ने भी हमेशा के लिए जीवो का अभय-दान दिया कि अपने हाथ से कभी शिकार नही करेंगे।

(५) चैत्र शुक्ला १३ श्री महावीर स्वामी का व पौष कृष्णा १० श्री पार्श्वनाथजी का जन्म दिन होने से इन तिथियो पर धार्मिक अगते पाले जावेंगे।

(६) नवरात्रि पर सात बकरे देवताओ के चढाये जाते हैं सो अब दो को अभयदान दिया गया सिर्फ पाँच बकरे काम मे लाये जावेंगे।

(७) नानालाल धायभाई कामदार ठिकाना थाणा ने भी अपने हाथ से किसी जानवर को न मारने का त्याग किया अलावा इसके कार्तिक वैशाख मे मास का बिल्कुल त्याग किया।

उपरोक्त नियमो की पूरे तौर से पाबन्दी की जावेगी। आयन्दा मुनिराज के यहाँ पधारने पर अगता पलाया जावेगा।

ता० २२-५-३९ ई०

(द०) मदनसिंह थाणा

(द०) नानालाल धाभाई
कामदार ठिकाना थाणा (मेवाड)

---

१ सौ-पच्चास सशस्त्र मनुष्य इकट्ठे होकर जंगल मे जाते हैं वहाँ जिन्हे जो भी जानवर मिला उसे मार कर लाते है।



हुक्म

असल वास्ते तामिल कचहरी मे भेज लिखा जावे के इन तारीखों को पटे मर अगते रखने की तामील करावें। फक्त

(द०) ठाकुर साहब का
ता० ६-६-३६

हुक्म कचहरी

न० २७७

वास्ते तामीलन पोलिस मे लिखा जाकर नकल इतलान महाराज साहब चौथमलजी की सेवा मे ईरसाल हो स० १९९५ का असाढ विदी ४ ता० ६-६-३६

द० मीरजाअबदुलवेग
ता० ६-६-३६



॥ श्री रामजी ॥

॥ श्री एकलिंगजी ॥

मोहर छाप
कुतवास

न० ५१ रजीस्टर

पटा अज तरफ ठिकाना कुतवास राज श्री माधोसिहजी मगतावत (माणावत) ई० मेवाड, उदयपुर।

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी आज मिती कुतवास मे पधारना होकर विराजे और व्याख्यान हुवे और मैं भी सेवा को हाजिर हुआ मेरा मन वहुत प्रसन्न हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ।

पौष विदि १० श्रीपार्श्वनाथजी भगवान् का जन्म गाठ के दिन सालोसाल अगता पालेंगे। और पट्टा मे पलावेंगे।

चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म गाठ दिन भी अगता पलेगा।

चौमासा में चार महिना सन्त विराजेगा अगता पालेंगे व पट्टा मे पलावेंगे।

श्री महाराज साहव को पधारवो होवेगा और पाछो पधारवो होवेगा दोई दिन अगता पाला जावेगा।

अधिक महिना मे हिंसा नही की जावेगा और कोई करेगा तो रोक कर दी जावेगा रोक रहेगा।

छोटा जानवर जो बच्चा है नही मारा जावेगा और दूसरो को भी पट्टा मे नही मारने दिया जावेगा।

ऊपर लिखा कलमवार सही सावत रहेगा यह पट्टा लिख मुनि महाराज के सेवा मे पेश हो सनद रहे। स० १९९६ पौष सुदि ९ गुरुवार।

(द०) कामदार ठि० कुतवास
श्री रावला हुकम से





॥ श्री गोपालजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नम्बर ११ द० महाराज मानसिंह

मोहर छाप
मीण्डर

सिद्ध श्री महाराजाधिराज महाराज श्री मानसिंहजी मीण्डर (मेवाड) वचनातु जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज महासुद १ शुक्रवार सम्वत् १९९६ तदनुसार तारीख ९ फरवरी सन् १९४० ई० को वाडी महलो मे जीव दयादि अनेक विपयो पर व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव मेरे पर तथा मेरी जनता पर अच्छा पडा। मुझको महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा। और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूं कि—

(१) इन महाराज के आगमन तथा प्रस्थान के दिन मीण्डर मे आमतौर से सदैव अगता रखाया जावेगा।

(२) सिह, चीता तथा सूअर के अतिरिक्त किसी जीव की हिंसा मैं नही करूंगा।

(३) चैत सुदि १३ जो श्री महावीर स्वामी का जन्म दिवस है और पौष विदि १० जो श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का जन्म दिन है इन दोनो दिनो सदैव आम अगता रखाया जावेगा।

(४) आपके मीण्डर पधारने तथा विहार करने के दिन अमर्‍या कराया जावेगा।

(५) अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) के अवसर पर तमाम महिना खटीको की दुकानें बन्द रहेंगी।

उपरोक्त प्रतिज्ञाओ की पावन्दी रहेगी।

सम्वत् १९९६ का महा सुद १ शुक्रवार ता० ९-२-४० ई०

(द०) जगन्नाथसिंह चौहान का श्री हुजूर का हुक्म से लिख्यो

॥श्री रामजी॥

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज खोडीप से नकूम पधारते थे वीच मे सिडाणा (टोक स्टेट) मे १५ उपदेश होने से मेरे और मेरी रियाया पर बहुत अच्छा उपदेश का असर पड़ा जिस पर नीचे लिखी बातो पर पावन्द रहेगे.

(१) गांव सिडाणे मे जीवहिंसा नही करूंगा औरो को भी जीवहिंसा नही करने दूंगा।

(२) शराव नही पीऊंगा।

(३) श्रावण मे लिलोती नही खाऊंगा।

(४) श्रावण, कार्तिक, वैशाख इन महिनो मे शिकार नहीं खाऊंगा।

(५) कुवर हिम्मतसिंहजी साहब भी श्रावण, कार्तिक, वैशाख महिनो मे जीवहिंसा नही करेंगे, शराव नही पीयेंगे श्रावण मे लिलोती नहीं खाएगे। एक दिन की छूट और पखेरू जानवर की शिकार नही करेंगे।

इस प्रकार की पावन्दी होती रहेगी। सं० १९९६ फागुण सुदी ८।

द० दीपसिंह का

द० कुं० हिम्मतसिंह का

द० चौ० नन्दलाल नलवाया का ठाकुर साहब व
कुंवर साहब का हुक्म से लिखा।



सिद्धश्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज हमारे गाँव बढोली पधारे। जिनके उपदेश सुनने से इस मुजब प्रतिज्ञा कि—

(१) हमारी कुलदेवी के नवरात्रि मे कोई जीव हिंसा नही करागा बल्कि किसी भी दिन बिलकुल बन्द रहेगा।

(२) हमारी तरफ से जानकर शिकार नहीं खेलेंगे। राजगत देवगत दूसरा का हुक्म की बात अलग है।

यह प्रतिज्ञा मैं व कुवरजी भूपालसिंहजी करते हैं वह आपके भेंट रूप मे है। सं० १९९६ का फागण सुदि १०।

द० पृथ्वीसिह का

द० कु० भोपालसिह का

द० केसरीमल पटवारी गलुण्डवाला का ठाकुर साहब पृथ्वीसिंहजी कुवर साहब भूपालसिंहजी का केवा से लिखा।



॥श्री एकलिंगजी॥ ॥श्रीरामजी॥

मोहर छाप
विनोता (टोक स्टेट)

नम्बर ८

सिद्ध श्री महाराजाधिराज महारावतजी साहेब श्रीमदनसिंहजी राजस्थान ठिकाना विनोता वचनात्।

जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज फाल्गुन सुदि ६ शुक्रवार सवत् १९९६ तदनुसार तारीख १५ मार्च सन् १९४० ई० को जीव-दयादि अनेक विषय पर व्याख्यान हुआ जिसका प्रभाव मेरे पर तथा मेरी जनता पर अच्छा पडा मुझको महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आगमन तथा प्रस्थान के दिन विनोते मे आम-तौर से अगता रखाया जावेगा।

(२) भादवा विदि ११ से सुदि १५ तक पर्यूषणों के दिनो मे व श्राद्ध-पक्ष मे कसावी दुकान का अगता रखाया जावेगा।

(३) पौष विदि १० जो श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का जन्म दिन है और चैत्र सुदि १३ जो महावीर स्वामी का जन्म दिन है। इन दोनों दिन अगता रखाया जायगा।

(४) नवरात्रि के दिनो मे ८ आठ बकरा और एक पाडा बलिदान होता है। उसमे से तीन बकरे कमी कर दिये गये।

(५) तेहवा तथा सुअर के अलावा जहाँ तक हो सकेगा जीव हिंसा मैं नहीं करूँगा।

राजगत देवगत के अलावा उपरोक्त प्रतिज्ञाओ की पाबदी रहेगी। फक्त १५-३-१९४० मिति फागुण सुदि ६ स १९९६।

द० सुखलाल पटवारी का श्रीजी हुजूर का हुक्म से।





॥ श्री गोपालजी ॥

॥ श्री रामजी ॥

(द०) नहारसिंह का

(द०) कुवर दौलतसिंह का

सिद्ध श्री ठाकुर साहेब श्री नहारसिंहजी कुवर साहेव श्री दौलतसिंहजी करमाणा (टोक) का वचनासु—

जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज का आज महा सुदि ६ शनिवार सवत १९९६ तदनुसार तारीख १७ फरवरी सन् १९४० ई० को रावले मे जीवदया आदि अनेक विषयो पर व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव मेरे तथा मेरी जनता पर अच्छा पडा। मुझको महाराज का उपदेश वहुत प्रिय लगा और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) इन महाराज के आगमन तथा प्रस्थान के दिन अगता रखाया जायगा और १३ तेरा वकरा अमर्‌या किया जावेगा।

(२) ग्यारस, अमावस के दिन वैल नहीं जोतने दिए जाएँगे व शिकार नही करेंगे, खटीको की दुकान भी वन्द रहेगी।

(३) हमारे गाँव मे नवरात्रि के दिनो मे माताजी फुलवाई, लालवाई, चावडाजी, शीतलाजी आदि के स्थान पर जीव हिंसा नही होगी, जव तक हमारा वश रहेगा वहाँ तक पालन होगा।

(४) पर्यूषण पर्व मे ८ आठो ही दिन अगता रहेगा मय खटीको की दुकानें सहित।

(५) श्राद्ध-पक्षो मे अगता रहेगा।

(६) ठाकुर साहेव व कुवर साहेव झटके से जानवर नही मारेंगे।

(७) और हमारे गाँव मे कोई भी जानवर व वैल वगैरह खसी नही करेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञाओ की पावन्दी हमेशा के लिए रहेगी। सवत् १९९६ का महा सुदि ६ शनिवार ता० १७-२-४० ई०

(द०) भैरूलाल मेहता का ठाकुर साहेब कुवर साहेव तथा माँ साहेव के हुक्म से लिखा।

(द०) राणावत प्रतापसिंह



॥श्री परमेश्वरजी॥

द० कारुसिंह का

जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में ठाकुर कारुसिहजी वामणियावाला की तरफ से नमस्कार मालूम होवे और अर्ज करे कि आज ता० २४-३-४० मिति चैत्र विदि २ स० १९९६ के रोज आपके व्याख्यान सुने जिससे नीचे मुजव नियम धारण किया—

(१) नवरात्रि मे जो जीव हिंसा होवे है ठीकाणा तथा दीगर जगा सो अब आयन्दा होगा नहीं—

(२) मैं अपने हाथ से कोई शिकार करूँगा नही।

यह पत्र मुनि श्री की सेवा मे भेंट कर देवे स० १९९६ चैत्र विदि २

द० सौभागमल जावरावाला



॥श्री॥

जावक नम्बर

७६०—११।४।४०

अज ठिकाना अठाना

पट्टा

मोहर छाप
अठाणा रि ग्वालियर

श्रीमान् स्वामिजी चौथमलजी साहव की सेवा मे।

आज आपने कृपा करके अठाना पधारे और धर्मोपदेश सुनाया उससे हम वहुत प्रसन्न हुवे व इसी सिलसिले मे आपने हमको यह उपदेश दिया कि आपकी जानिव से पौष विदि १० व चैत्र सुदि १३ को हिंसा न होना चाहिए यानी कोई जानवर वगैरह का शिकार या इस किस्म की दूकान न हो इसकी पावन्दी रक्खी जावे तो वेहतर होगा। चुनाचे हस्व फरमाने आपके आपकी आज्ञानुसार पावन्दी रक्खी जावेगी लिहाजा यह पट्टा सेवा मे पेश किया जाता है। ता—११-४-४०

हेड क्लार्क

सही अँग्रेजी मे
सरदार रावत विजयसिंह ठिकानेदार
ठिकाना अठाना, ग्वालियर स्टेट
सही अँग्रेजी मे

क्लार्क

नायव कामदार

॥ श्री एकलिंगजी ॥

॥ श्री रामजी ॥

नम्वर ३६

पट्टा अजतरफ ठिकाना सीहाड राजे श्री भूपालसिंहजी
सक्तावत (असलावत) ई० मेवाड़—रा० उदयपुर

जैन सम्प्रदाय के मुनि महाराज श्री चौथमलजी आज मिति सीहाड मे पधारना होकर विराजें और व्याख्यान हुवे और मैं भी सेवा मे हाजिर हुआ। मेरा मन वहुत प्रसन्न हुआ। नीचे लिखी प्रतिज्ञा करता हूँ।

पौष विदि १० श्री पार्श्वनाथजी भगवान् की जन्म गाँठ के दिन सालोसाल अगता पलावेंगे और प्रगना में पलावेंगे।

चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामीजी का जन्म उस दिन भी अगता पलावेंगे।

चौमासा मे चार महिना सत विराजेगा अगता पलावेंगे व प्रगना मे पलावेंगे।

श्री महाराज साहेव को पधारवो होवेगा और पाछो पधारवो होवेगा दोई दिन अगता पाला जावेगा।

अधिक मास में हिंसा नही की जावेगा और कोई करेगा तो रोक कर दी जावेगा सो रोक रहेगा।

छोटा जानवर जो वच्चा है, नही मार्‌या जावेगा और दूसरे को भी पट्टा मे नहीं मारने दिया जावेगा।

ऊपर लिख्या कलम वार सही सावत रहेगा। यह पट्टा लिख मुनि श्री चौथमलजी महाराज की सेवा मे पेश हो सनद रहे। स० १९९६ का महा वदि ७ वुधवार।

(द०) खुमानसिंह सक्तावत श्री रावला हुक्म से लिखा।



॥ श्रीचतुर्भुजजी ॥ ॥श्रीरामजी॥

सही

द० म० नहारसिंह

सिद्धश्री महाराज श्रीनहारसिंहजी वचनातु। जैनधर्म सम्प्रदाय के मुकटमणि आचार्य कुल-कमल दिवाकर श्री पूज्यजी महाराज श्री श्री १०८ श्रीचौथमलजी साहव को पदार्पण शुभ मिति वैशाख विद १४ सं० १९९७ मारे गाँव मँगरोप मे हुवो और धर्मोपदेश व्याख्यान गढ मे हुवो जिससे मारा व जनता पर बहुत आच्छो प्रभाव पड्यो। मारी तरफ सूं नीचे लिख्या प्रमाणे धर्म पलायो जावेगा।

(१) वैशाख सुद १५ पूर्णिमा ही से हर पूर्णिमा को मैं व्रत कर एक वक्त भोजन करूंगा श्रीभगवान के गुणानुवाद की अमृतरूपी कथा श्रवण होगी।

(२) नवरात्रि मे हमेशा से गढ पर माताजी के १ भैंसे का बलिदान होता है सो अव कतई वन्द रहेगा।

(३) एक माह मे ५ रोज हमेशा हर माह के लिए शिकार खेलना, खाना, मदिरा-पान करना विलकुल वन्द रहेगा।

(४) चैत्र सुदि १३ भगवान् महावीर के जन्म दिन और पौष विदि १० भगवान् पार्श्वनाथजी के जन्म दिन का पट्टे के सभी गाँवो मे अगता रहेगा।

(५) पूज्यवर श्रीचौथमलजी महाराज के इस गाँव मे आगमन और प्रस्थान के दिन का भी अगता रहेगा।

इस मुजव धर्म की पावन्दी रहेगी। ॐ शांतिः शांतिः
सं० १९९७ वैशाख शुक्ला १ ता० ८-५-१९४० ई०

श्री रावला हुक्म से
केसरीलाल ओजा कामदार ठिकाना



॥श्री एकलिंगजी॥ ॥श्रीरामजी॥

मोजा वड़ोदा
पट्टे विजयपुर (मेवाड़)

श्रीमान् जैन दिवाकर स्वामिजी साहव श्री १०८ श्री चौथमलजी महाराज की सेवा मे।

आज आप घटावली पधारे व धर्मोपदेश सुनाया इससे वडी खुशी हुई। इस सिलसिले में पौष विदि १० श्रीपार्श्वनाथजी का जन्म दिन और चैत्र सुदि १३ श्रीमहावीर स्वामी का जन्म दिन होने से दोनों दिन किसी किस्म की हिंसा न होगी अगता रखा जावगा। और हो सका तो नवरात्रि मे भी वलिदान की वजाय अमर्‍या कर देंगे। यह पट्टा सेवा में नजर है। स० १९९६ चैत्र सुदि ७ ता० १४-४-४०

द० रतनसिंह शक्तावत



।।श्री एकलिंगजी।। ।।श्रीरामजी।।

श्रीमान् जैन दिवाकर स्वामिजी महाराज श्री चौथमलजी महाराज की सेवा मे।

आज आप कृपा करके घटावली पधारे और धर्मोपदेश सुनाया इससे हम वहुत प्रसन्न हुए व इसी सिलसिले मे आपकी जानिव से मिति पौष विदि १० श्रीपार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिन होने से और चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामी का जन्म दिन होने से दोनो दिन किसी किस्म की हिंसा न होगी और अगता रक्खाया जायगा। लिहाजा यह पट्टा सेवा मे पेश है। स० १९९६ चैत्र सुदि ७ ता० १४-४-४०

(द०) जगमालका ठिकाना घटावली



।।श्री एकलिंगजी।।श्री रामजी।।

द० लालखाँ का भालोट

सिद्धश्री ठाकुर साहव श्री लालखानजी श्री कुवर साहव सुलतानखांजी गाँव भालोट रियासत उदयपुर का वचनात नीचे लिखी कलमवार हरसाल के वास्ते है।

जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी महाराज का आज दिन फागुन सुदि ६ शुक्रवार सं० १९९६ तदनुसार तारीख १५ मार्च सन् १९४० ई० को गाँव विनोते मे व्याख्यान मे ९ वजे पट्टा भेंट किया नीचे मुजव।

(१) मेरा गाँव मे पधारवो वेगा जीदिन अगतो पारागा जावेगा।

(२) दो ग्यारस एक अमावस महिना मे तीन दिन गाडी चलावागा नहीं।

(३) मारा जीवमु कोई शिकार कर जानवर मारूँ नही और को भी मारने के लिए कहूंगा नही।

(४) और महिना मे दो ग्यारस एक अमावस मारा हिम मे जीव हिंसा होवा देवागा नही।

(५) पजूसण व श्राद्ध मे कोई जीव हिंसा होवा देवागा नही गाँव मे।

(६) गाँव मे नोरता मे कोई वलिदान देवता के देवागा नही।

(७) मारा जीव के वास्ते चवदस आठम कोई लिलोती हरि वस्तु खाऊँगा नही।

(८) मारा जीवसु श्रावण महिना में कोई शिकार खाऊँगा नही।

(९) पौष विदि १० चैत्र सुदि १३ दोई दिन मारा गाव मे जीव हिंसा होवा देवागा नही।

ऊपर लिखी कलम नोई नजर कीधी सो मु और मारी वस्ती का कुल इण पर पावन्दी से रहेगा। सवत् १९९६ फागुन सुदि ६।

द० नानालाल वोडवत का ठाकुर साहव लालखानजी साहव व गाँव का पटेल पचाका केवासु लिखा।





॥ श्री एकलिंगजी ॥ ॥ श्री रामजी ॥

नम्बर ३४

सिद्ध श्री राज श्री प्रतापसिंहजी ठीकाना जलोदा मेवाड वचनातु जैन सम्प्रदाय के जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज का फाल्गुन सुदि १ स० १९९६ दितवार तदनुसार ता० १० मार्च सन १९४० ईस्वी को ठिकाने जलोदा मे जीवदयादि अनेक विषयो पर व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव मेरे पर तथा मेरी जनता पर अच्छा पडा। मुझको श्री मुनिराज महाराज का उपदेश बहुत प्रिय लगा और व्याख्यान से प्रभावित होकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

(१) इन श्री मुनि महाराज के आगमन तथा प्रस्थान के दिन जलोदे मे अगता रखाया जावेगा।

(२) श्राद्ध पक्ष मे, पर्युषणो मे व हर माह की ग्यारस, अमावस बीज, बारस, चारो सोमवार को अगता रखाया जायगा।

(३) मवर बापु मानसिंह के जन्म गाठ पर बकरा अमर्‌या होगा एक साल का।

(४) चैत्र सुदि १३ जो श्री महावीर स्वामीजी का जन्मदिवस है और पौष विदि १० जो श्री पार्श्वनाथजी भगवान् का जन्म दिवस है सो इन दोनो माह की तिथि की याददास्ती ओसवाल जैन आकर ठिकाने मे दिलाता रहेगा तो अगता पाला जावेगा।

ऊपर लिखे मुजब अगता की पाबन्दी रखावागा स० १९९६ का मिति फागन सुदि ३ मगलवार। (द०) मगलसिंह कामदार ठिकाना जलोदा श्री रा० हु० से

☆

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

मोहर छाप
खेजडला (मारवाड)

ठाकुर सा राज श्री १०५ श्री भैरुसिंहजी ठिकाणा खेजडला परगना विलाडा (मारवाड) मारा खास ठिकाणा मे व पट्टारा गाँवो मे चैत्र सुदि १३ व पौष विदि १० ने जीव हिंसारो अगतो रहसी। श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराजरो उपदेश सुणियो जिणसु मे सावण, भादवा मे शिकार करसू नहीं ने पट्टारा गाँव मे भी जीव हिंसा होवण देसा नही ने महाराजरो पधार नो ठिकाणा मे तथा पट्टारा गाँव मे होसी उण दिन जीव हिंसा होसी नही। सम्वत् १९९७ रा काति सुद ४ रविवार ता० ३-११-४०। दस्तकत—मुथा करणराजरा छे श्री ठाकुर साहेब के हुक्म सु

(Sd) Bhairu Singh, 3–11–40

☆

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

मोहर छाप
साथीण (मारवाड)

ठाकुर सा राज श्री १०४ श्री कालुसिंहजी ठिकाणा साथीण परगणा विलाडा (मारवाड) मारे खास ठिकाणा साथीण व पट्टे के गाँव मे चैत्र सुदि १३ व पौष विदि १० ने जीव हिंसा होसी नहीं अगता रहसी। श्री श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराजरो उपदेश सुण्या जिणनु श्रावण, भाद्रवा मे शिकार करसू नही ने महाराज रो पधारनो ठिकाना मे तथा पट्टारा गाँवो मे होसी उणदिन जीव हिंसा होसी नही। सम्वत् १९९७ रा काती सुद ४ रविवार ता० ३-११-४०।

दस्तकत—मुथा करणराजरा छे। श्री ठाकुर साहेब के हुक्म सू। (Sd) Kalu Singh 3–11–40

☆



॥ श्री ॥ श्री चारभुजाजी ॥ ॥ श्री करनीजी ॥

मोहर छाप
सीरियारी (मारवाड)

नकल नम्बर ३४ स० १९९६

स्वरूप श्री ठाकुरा राजश्री नाथूसिंहजी कुवरजी श्री खगारसिंह जी लिखावता जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी रो आगमन सीरियारी मे हुवो तिणमु कर अगता राखणा मजूर किना पजूषणा मे बैठता पजूषणा ने छमछरी जुमले दिन २ दोय तो पजूपणा मे व स्वामीजी श्री चौथमलजी रो आगमन सीरियारी मे होसी उण दिन ने वापिस विहार होसी उण दिन अगता राखिया जावसी। अगता अठे रेवे जिण माफिक राखिया जावेला। फक्त ता० १३ जून सन् १९४० मुताविक मिति ज्येष्ठ सुदि ६ सवत् १९९६।

द० गुमानसिंह
कामदार ठिकाना सीरियारी



॥ श्री ॥

श्रीचारभुजाजी

[ठिकाना श्री बगड़ी टीकायत, जोधपुर स्टेट]

मोहर छाप
ठि० बगडी (मारवाड)

स्वारूप श्री ठाकुर साहेव श्री भैरुसिंहजी साहेव श्री सज्जनसिंहजी साहेव वचनायत जैन स्वामीजी श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराज का आगमन जोधपुर मे स० १९९७ के चातुर्मास में हुआ और मैंने भी व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजव प्रतिज्ञा की है।

(१) श्रावण मास मे किसी जानवर की शिकार नही करूंगा और मेरे पट्टे के गांवो में इस माह मे कोई शिकार नहीं कर सकेगा।

(२) पौष विदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने मे हमारे पट्टे के गांवो मे कोई जीव हिंसा नही होगी।

(३) चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांवो मे कोई जीव हिंसा नही होगी।

(४) भादवा सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा।

(५) श्री पूज्य स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गांवो में आगमन और विहार होगा तव आगमन और विहार के दो अगते पाले जावेंगे।

(६) पजूसनो मे मेरे पट्टे के गांवो मे शिकार वगैरह व घाणी वगैरह चलाना विलकुल वन्द रहेगा व कसाई अपना पेशा नहीं करेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञा का सदैव के लिये पालन किया जावेगा।[1]

सवत् १९९७ रा पौष विदि २ ता० १६ दिसम्बर सन् १९४०

(सही) भैरुसिंह
ठाकुर साहव

---

१ **नोट**—उपरोक्त बातें मेरे पट्टे के गांव चौकडी मे पाली जायगी क्योकि मैं वही रहता हूँ।



॥श्री नरसिंहजी॥ ॥श्री रामजी॥

सही

सिद्धश्री महाराज श्री शम्भूसिंहजी राजस्थान ठिकाना गुरला वचनातु।

श्री जैन सम्प्रदाय के पूज्यजी महाराज साहब श्री चौथमलजी साहब को पधारवो वैशाख सुदि १३ को हुआ व १४ दोई दिन व्याख्यान हुआ। जिपर मारी तरफ से त्याग किया जिरी तफसील—

(१) महाराज साहब श्री चौथमलजी बाईस सम्प्रदाय वा पधारे व जावे दोई दिन जीव हिंसा नही होगी।

(२) श्रावण मे शिकार नही खेलूंगा और न करूंगा। कार्तिक वैशाख मे भी शिकार नही करूंगा। हिंसक पशु की बात अलग है।

(३) भादवा मे पजूषण मे जीव नही मारेंगे।

(४) परस्त्रीगमन के कतई त्याग।

(५) बारा महिना मे दो बकरा अमरिया कराऊंगा।

(६) मैं अपनी जान मे तालाव मे मच्छी नही मारने दूंगा।

(७) पौष विधि १० व चैत्र सुदि १३ दो दिन जीव हिंसा नही करागा।

(८) दशराया के दिन इस साल के लिए एक पाडो अमरियो करायो जावेगा।

(९) वैशाख श्रावण व कार्तिक मे कोई देवी-देवता के पाड़ो बकरो नही मरेगा।

ऊपर लिखे मुजब अगता रख्या जावेगा। और ये सब सौगन्ध मारे लिए है यानि इमे लिख्या हुआ ने निभावणो मारी ही मोजूदगी तक है। सवत् १९९६ का वैशाख सुदि १४।

द० शम्भूसिंह

वही पाने २२-२३

मोहर छाप
गारासणी (मारवाड

स्वरूप श्री सर्वगुण निधान अनेक औपमा परम पूज्य श्री श्री १००८ श्री श्री जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री श्री चौथमलजी महाराज साहेब की सेवा मे अरज १ गाराणसी ठाकुर राठोर भीमसिंह शिवदान सीधोतरी मालुम होवे कि आपके व्याख्यान-उपदेश से मैंने अपनी खुस हो हस्वजेल प्रतिज्ञा की है जिसमे मैं और मेरी ओलाद पावन्द रेवेगा।

(१) पौष विदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिन होने से मेरे पट्टे के गांव मे कोई शिकार नही होगी और अगता पाला जावेगा।

(२) चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान् का जन्म दिवस होने से उपर मुजब अगता रहेगा।

(३) मेरे गांव पजूसणा मे शिकार और अगतो बहुत वर्षो से पाले जाते हैं उस मुआफिक ही बदसतुर हमेशा पाले जावेंगे।

(४) श्री पूज्यजी महाराज का पधारना मेरे गांव होगा उस रोज और विहार होगा उस रोज अगता पाला जावेगा। स० १९९७ रा मिती काती सुद १५ द्वितीया ता० १५-११-४०।

(सही) भीमसिंह ठाकुर
ठिकाना गारासणी



॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

॥ श्री मुरलीधरजी ॥

मोहर छाप
चण्डावल (मारवाड़)

स्वस्ति श्री राव बहादुरजी ठाकुर साहब राजश्री गिरधारी-सिंहजी साहब कुँवरजी साहब श्री गोपालसिंहजी साहब वचनात लिखत ।

जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज रो आगमन राणावास मे सवत् १९९६ रा ज्येष्ठ सुदि ९ ने हुवो ने श्रीमान् राव बहादुरजी साहब ने श्री भवरजी साहब गोविन्दसिंहजी साहब ने व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना तिणसु श्रीमान् खुश होय इण मुजब अगता पलावण रो हुक्म फरमाया है सो चण्डावल पट्टा-रा गाँव अगता नीचे मुजब पलसी ।

२ जैन पजूषणा मे १ वैठता व १ छमछरी ।

१ पौष विदि १० श्री पार्श्वनाथजी भगवान्जीरे जन्म दिवस ने ।

१ चैत्र सुदि १३ श्री महावीर स्वामीजी भगवान्रो जन्म दिवस ने ।

२ पूज्य महाराज श्री चौथमलजी रो आगमन व विहार जिण गावा मे होसी जद अगता पलसी ।

६ उपर लिखिया हुवा दिनारा अगता इण मुजब पलसी ।

१ शिकार व कसाईखाना बन्द रेसी । १ घाणिया अगता मे बन्द रेसी ।

१ कुम्हारा-रा नीवाव अगता मे बन्द रेसी ।

१ कन्दोईरी भट्टियाँ भी बन्द रेमी व गाडोलिया लुवार वगैरारी आरण बन्द रेसी ।

उपर लिखिया मुजब अगता सदा बन्द पलसी । स० १९९६ रा ज्येष्ठ सुदि ११ निरजला एकादशी वार सूरज ता० १५-५-४० द० चादमल रा छे श्री राव बहादुरजी साहब रा हुक्म से ।

भारतसिंह—कामदार ठिकाना श्री चण्डावल मुकाम राणावास

॥ श्री ॥

मोहर छाप
काणाणा (मारवाड)

स्वारूप की ठाकुरा राजश्री साहब श्री विजयकरणसिंहजी साहब कुवर साहब श्री शिवकरणसिंहजी वचनायत जैन स्वामी श्री १०५ श्री श्री चौथमलजी महाराज का आगमन काणाणा मे सवत् १९९७ रा के फाल्गुन कृष्णा १० को यहाँ पर पधारना हुआ । व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है ।

१ श्रावण मास मे किसी जानवर की शिकार नही करूँगा और मेरे पट्टे के गावो मे इस माह में कोई शिकार नही कर सकेगा ।

२ पौष कृष्णा १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गावो मे कोई जीव हिंसा न होगी ।

३. चैत्र शुक्ला १२ को श्री महावीर भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांवो मे जीव हिंसा नही होगी ।

४. भाद्रव शुक्ला १४ को अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा ।

५ श्री पूज्य स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गांवो मे आगमन और विहार के दिन अगते पाले जावेंगे ।

(सही) विजयकरणसिंह ठि० काणाणा

॥ श्री ॥

मोहर छाप
सराणा (मारवाड)

स्वारूप श्री ठाकुरा राजश्री सरदारसिंहजी साहव कुवर माहेव श्री जोरावरसिंहजी वचनायत जैन स्वामी श्री १०५ श्री चौथमलजी महाराज का आगमन काणाणा मे सवत् १९९७ फागुण वदि १० को यहाँ पधारना हुआ। व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिमसे खुश होकर नीचे मुजब प्रतिज्ञा की है।

१. श्रावण मास मे किसी जानवर की शिकार नही करूँगा और मेरे पट्टे के गाव मे इस माह मे कोई शिकार नही कर सकेगा।

२ भाद्रव वदि ८ शुक्ला १३-१४-१५ अगता पाला जावेगा।

३ काती विदि ३० पौष विदि १० की श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने मे हमारे पट्टे के गांवो मे कोई जीव हिंसा नही होगी।

४ चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान् का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गावो मे जीव हिंसा नही होगी।

५ श्री पूज्य स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गावो मे आगमन और विहार के दिनो अगते पाले जावेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञा सदैव के लिए पाली जायगी।

स० १९९७ रा फागुण विदि १० ता० २१।२।४१ (सही) मरदारसिंह

✡

॥ श्री ॥ श्री मुकन्दजी सहाय छे

रजिस्टर न० ४५।३९-४०

मोहर छाप
रोहीट (मारवाड)

स्वारूप श्रीमान् राव बहादुर करनल ठाकुर साहेव राज १०८ श्री दलपतसिंहजी साहेव कवरजी श्री १०५ श्री विक्रमसिंहजी साहेव वचनातु जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराजरो आगमन तारीख १-७-४० ने रोहाट खास मे हुवो और इणरो धर्म उपदेशरो व्याख्यान सब सरदारो ने सुणायो जिस सु सब सरदारों ने व पब्लिक ने वडी भारी खुशी हुई जिण पर श्रीमान् राव बहादुर साहेब ने हस्व-जेल अगता अपना ठिकाना मे नियुक्त करणरो फरमायो है।

(१) जैन पजूसण बैठता दिन और छमछरी दिन।

(२) पौष विदि १० ने। (३) चैत्र सुदि १३ ने।

(४) पूज्य महाराज श्री चौथमलजी रण गांव मे आगमन व विहार कराव उन दोनों दिन अगता पलावेंगे।

ऊपर मुजव दिनेंरा अगता पट्टा मट्टा भर मे पालिया जावसी और शिकार वगैरा भी ऊपर मुजव अगता मे करावसी नही। स० १९९६ रा आषाढ विदि १२ मगलवार ता० २-६-४०

द० शिवप्रसाद श्री रावला हुक्मसु लिखियो छे
भागीरथजी ओज्झा, कामदार ठिकाना रोहट, (मारवाड़)

✡



॥ श्री ॥ ॥ श्री गुरुदेवायनम. ॥

स्वारूप श्री ठाकुर साहव राज श्री सवाईसिंहजी साहव वचनातु जैन स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज रो आगमन आज चोटीले हुवो सवत् १९९६ विक्रम मिति आषाढ विदि १० वार रवि ता० ३०–६–४० को श्रीमान ठाकुर साहव सवाईसिंहजी ने धर्म उपदेश सुणियो तिणसु श्रीमान् खुश होकर अगता पालना व पलावणा को हुक्म फरमायो है सो चोटीलारे गांव मे नीचे मुजव अगता पलसी—

(१) खुद ठाकुर साहव ग्यारस, अमावस, पुनम ने शिकार नही करसी।

(२) आम गांव मे चैत्र सुदि १३ ज्येष्ठ सुदि ११ भाद्रव विदि ८ पौष विदि १० शिकार, कसाई खानो, घाणिया, कुमारा का निवाव, आरण और कदोइया की भटियो वद रेसी।

ऊपर लिखिया मुजव अगता सदा वद पलसी। स० १९९६ विक्रम आषाढ विदि १० रविवार ता० ३०-६-४०।

द० सवाईसिंह

॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥

॥ श्री आदिनाथजी ॥

मोहर छाप

स्वारूप श्री महाराज साहेव श्री विजयसिंहजी साहव महाराज कुमार साहेव श्री रणवहादुरसिंहजी साहेव वचनायत जैन स्वामीजी श्री १०५ श्री श्री चौथमलजी महाराज का आगमन जोधपुर मे स० १९९७ के चातुर्मास मे हुआ और मैंने व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजव प्रतिज्ञा की है।

(१) श्रावण मास मे किसी जानवर की शिकार नही करूंगा और मेरे पट्टे के गांवो में इस माह मे कोई शिकार नही कर सकेगा।

(२) पौष विदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान् का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांव मे कोई जीव हिंसा न होगी।

(३) चैत्र सुदि १३ को श्री महावीर भगवान् का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गांवो मे जीव हिंसा नही होगी।

(४) भाद्रव सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा।

(५) श्री पूज्य स्वामी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गांवो मे आगमन और विहार होगा तव आगमन और विहार के दोनों अगते पाले जावेंगे।

उपरोक्त प्रतिज्ञा का सदैव के लिये पालन किया जावेगा। स० १९९७ रा आसोज सुदि ५ ता० ६ अक्टूवर सन् १९४० ई०

—विजयसिंह महाराज साहेब

सवत् १९९८ के चैत्र मे जैन दिवाकरजी आहोर पधारे। कामदार साहेब एव जोधपुर के जज शमुनाथजी साहेव ने मुनि श्री का पब्लीक व्याख्यान कराया। आहोर ठाकुर साहेव उस समय वहाँ नही विराज रहे थे। जोधपुर थे। वहाँ से ठाकुर साहेव का सन्देश आया कि मैं जैन दिवाकरजी के उपदेश का लाभ नहीं ले सका इसका मुझे दु ख है। यहाँ आवश्यकीय कार्य होने से रुका हुआ हूँ, नही तो अवश्य वह इस समय आता आदि आदि—

मुनिश्री को आहोर ठाकुर साहेव ने भेंट स्वरूप मे जीवदया का पट्टा लिख कर भेजा।

वहाँ से विहार कर जैन दिवाकरजी चण्डावल पधारे। चण्डावल ठाकुर साहेव ने एव



कुवर साहेव ने मुनिश्री का उपदेश श्रवण कर वडी प्रसन्नता प्रकट की और मेंट स्वरूप मे एक जीव दया का पट्टा कर देने का अभिवचन दिया।

वहाँ से जैन दिवाकरजी वूसी (मारवाड) पधारे। ठाकुर साहेव ने उपदेश श्रवण का लाभ लिया और जीव दया का एक पट्टा कर देने का अभिवचन दिया।

वहाँ से मुनिश्री विहार कर सवत् १९९८ के चैत्र शुक्ला मे वगडी सज्जनपुर (मारवाड) पधारे। वहाँ के जागीरदार कुवर साहेव ने दो वार उपदेश श्रवण का लाभ लिया और उस उपदेश से वहुत प्रसन्न हुए मेंट स्वरूप मे एक जीव दया का पट्टा किया। ✡

॥ श्री ॥   ॥ श्री परमेश्वरजी सहाय छे ॥   ॥श्री मुकंद जी॥

मोहर छाप
आहोर (मारवाड)

श्री जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता मुनिश्री चौथमलजी महाराज का चौमासा सम्वत् हाल मे जोधपुर मे हुआ और मैंने व्याख्यान और धर्मोपदेश सुनकर नीचे मुआफिक प्रतिज्ञा की है—

(१) हर साल के पौष सुदि १० को पारसनाथ भगवान् की जयन्ति।
(२) हर साल चैत्र सुदि १३ को भगवान् महावीर स्वामी की जयन्ति।
(३) पजुसन के आठ दिन तक।
(४) आपका आगमन और विहार आहोर पधारना होगा उस समय।

उपर मुजव मितियो मे अगता आहोर खास व मेरे पट्टे के कुल गाँवो मे रखा जावेगा।

स० १९९८ रा चैत्र वदि ७   Sd Rawat Singh ✡

॥ श्री ॥ श्री चार भुजाजी॥

मोहर छाप
ठि० वगडी (मारवाड)

ठि० श्री वगडी टीकायत जोधपुर स्टेट स्वरूप श्री ठाकुरा साहेव श्री मैरूसिहजी साहव कुवर श्री सज्जनसिहजी साहव वचनायत जैन स्वामी श्री १०८ श्री चौथमलजी महाराज का आगमन वगडी मे स० १९९८ चैत सुदि १२ को हुआ और मैंने भी व्याख्यान व धर्मोपदेश सुना जिससे खुश होकर नीचे मुजव प्रतिज्ञा की है।

(१) श्रावण मास मे किसी जानवर की शिकार नही करूगा और मेरे पट्टे के गाँव मे इस मास मे कोई शिकार नही कर सकेगा।

(२) पौष वदि १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँव मे कोई जीव हिंसा नही होगी।

(३) चैत सुदि १३ को श्री महावीर का जन्म दिवस होने से हमारे पट्टे के गाँव मे कोई जीव हिंसा नही होगी।

(४) भादवा वदि ८ जन्माष्टमी को हमारे पट्टे के गावो मे कोई जीव हिंसा नहीं होगी।

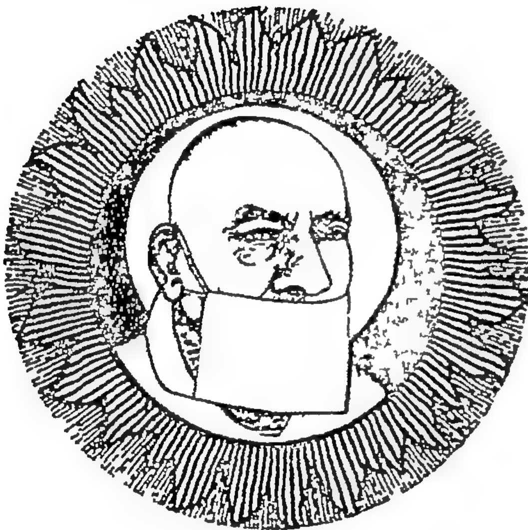
(५) भादवा सुदि १४ अनन्त चतुर्दशी का अगता पाला जावेगा।

(६) श्री पूज्य स्वामीजी श्री चौथमलजी महाराज का पट्टे के गावो मे आगमन व विहार होगा तव पट्टे के गाँवो मे अगता पलाया जावेगा।

(७) पजूषणो मे मेरे पट्टे के गाँवों मे शिकार वगैरा व घाणी चलाना विल्कुल वन्द रहेगा व कसाई अपना पेशा नहीं करेगा।

उपरोक्त प्रतिज्ञा का सदैव के लिये पालन किया जावेगा। सम्वत् १९९८ मिति चैत सुदि १३

✡   द वारठ शोलराज श्री कुवर साहवरा हुक्म सु



शाश्वत दिवाकर को श्रद्धा का अर्घ्य

भक्ति भरा प्रणाम



श्रद्धा का अर्घ्य : भक्ति-भरा प्रणाम

शताब्दी-पुरुष को प्रणाम !

✡ आचार्य श्री आनन्द ऋषि

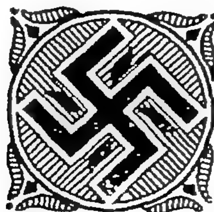
जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। वे एक शताब्दी पुरुष थे। ईसा की उतरती उन्नीसवी शताब्दी मे उनका जन्म हुआ और चढती बीसवीं शताब्दी मे उनके साधक जीवन का विकास हुआ। उनका तपस्तेज, वाणी-वैभव और आध्यात्मिक बल शताब्दी के साथ-साथ निरन्तर चढता ही गया। दो शताब्दियो पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पडी है। इतना तेजस्वी, निर्भीक, निर्मल और मधुर, कोमल स्वभाव एक ही व्यक्ति में देखकर लगता है, प्रकृति कितनी उदार है, जिसे देती है, सब गुण दिल खोलकर देती है।

जैन समाज पर ही नही, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय व भारतीयेतर वर्ग पर भी उनके अगणित—असीम उपकार हैं। हजारो दलित-पतित जीवनों का उद्धार उन्होंने किया और उनको सन्मार्ग का बोध दिया। लाखो जीवन उनके पारस-स्पर्श से कचन हो गये।

जीवदया, सदाचार-सस्कार-प्रवर्तन, तथा सघ एकता के हेतु किए गए उनके महनीय प्रयत्न इतिहास की एक यशोगाथा है।

मैं महाराष्ट्र-मध्यप्रदेश-राजस्थान-हरियाणा-पजाब आदि प्रान्तो मे विचरण करके आया, श्री जैन दिवाकरजी महाराज की सर्वत्र प्रशसा सुनी, कहीं पर भी उनके विषय मे अपवाद का एक शब्द भी नही सुना, उनके जीवन की यह बहुत बडी विशेषता है।

मैं अपनी असीम हार्दिक-श्रद्धा के साथ शताब्दी के उस महान् सन्त-पुरुष को प्रणाम करता हूँ।





हमारी सच्ची श्रद्धांजलि

✡ महामहिम उपराष्ट्रपति श्री ब० दा० जत्ती

मुनि श्री चौथमलजी महाराज के जन्म शताब्दी समारोह मे उपस्थित होने का जो अवसर आपने मुझे दिया, उसके लिए मैं महोत्सव समिति को धन्यवाद देता हूँ। ऐसे अवसरो पर जब भी मैं हाजिर हुआ, सन्त-महात्माओ के सम्बन्ध मे कुछ अधिक सुनने और जानने का मैंने लाभ पाया है।

आज से एक सौ वर्ष पहले मुनि श्री चौथमलजी का जन्म मध्यप्रदेश मे नीमच नामक स्थान पर हुआ था। अठारह वर्ष की आयु मे उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। अपने ५५ वर्ष के दीक्षा जीवन मे उन्होंने भगवान महावीर के सत्य, अहिंसा, सयम और अपरिग्रह के असूलों को अपने जीवन मे उतार कर, उनका जन-जन तक प्रचार-प्रसार किया। उसके लिए साहित्य लिखा, पद-यात्रायें की, शिक्षण सस्थाओ की स्थापना की। वास्तव मे उनका सारा जीवन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा मे ही बीता। वह साधक थे, आध्यात्मिक उन्नति के लिए उन्होने हमेशा समन्वय का सिद्धान्त अपने सामने रखा और इसके लिए सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि भाषाओं के ज्ञान मे उन्होंनें जैनधर्म ग्रन्थो, गीता, रामायण, भागवत, कुरान-शरीफ, बाइबल आदि धर्म-ग्रन्थो के अध्ययन मे लाभ उठाया।

सन्त-महात्मा तो अविराम सदाप्रवाही उस नदी के समान होते है जिनका जल सभी जगह निर्मल रहता है। सभी उसे पी सकते हैं। ऐसे पुरुष प्रत्येक दृष्टिकोण का सम्मान करते हैं और यह स्वीकार करते है कि पर्वत की चोटी पर पहुँचने के लिए कई मार्ग हो सकते हैं, कई दिशाओ और मार्गों द्वारा उस चोटी पर पहुँचा जा सकता है।

हमारे देश के ऋषि-मुनियो, सूफी-सन्तो ने अपने चिन्तन, तप और अनुभव से समय-समय पर हमें जो चीजे बतायी, उनका यही आशय रहा है कि सुख और शान्ति के लिए हमे उस तत्व को, जिससे यह मानव को स्थाई रूप मे मिल सकते हैं, अपने भीतर खोजने की कोशिश करनी चाहिए। उसके लिए उन्होने हमारे सामने महान् आदर्श रखे। अपने जीवन मे इन जीवन मूल्यो को अपनाकर यह बताया कि मन, वचन और कर्म की साधना उच्च आदर्श जीवन के लिए कहाँ तक सम्भव है।

आज के युग मे विज्ञान ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। मनुष्य को सुख-सुविधा के लिए भौतिक साधनो मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसके साथ विज्ञान ने मनुष्य के हाथ मे विनाश के जो अस्त्र-शस्त्र जुटा दिये है, यह दोनो चीजें विज्ञान ने मनुष्य को दी। इससे वह ऐहिक सुख भी प्राप्त कर सकता है और आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया है, अपने साथ उन सभी को खत्म भी कर सकता है। इसलिए विचारवान् व्यक्ति इस चीज को स्वीकार करते हैं कि मानव मात्र की रक्षा और कल्याण अहिंसक सस्कृति के विकास और उन्नयन द्वारा ही सम्भव है तथा जब तक मनुष्य अहिंसा के व्यापक और लोकोपयोगी अर्थ को समझ नही लेता, उसे पूरी तरह अपना नही लेता, स्थाई शान्ति का मार्ग प्रशस्त नही होता। दुनिया के लोगो मे, परस्पर मे सद्भावना और मैत्री पर जितना अधिक विश्वास दृढ होगा, अहिंसा का क्षेत्र उतना ही विस्तृत और बड़ा होता



जायेगा। अहिंसा का यही अर्थ है कि विश्व-बन्धुत्व की भावना अधिक समृद्ध हो, लोकोपकार के लिए सभी अपना योगदान दें और अच्छे गुणो को बढायें। मानव मात्र के कल्याण का ख्याल रखें। जमाने के जो प्रश्न हैं, उन्हें विचारपूर्वक इन्सानी कदरो की प्रतिष्ठा द्वारा हल करने का प्रयास करें। आज भी दुनिया के सामने गरीबी, सामाजिक और आर्थिक असमानताओ आदि के मसले है। हमारा अधिक ध्यान इन चीजो का समाधान ढूंढने की ओर होना चाहिए।

भगवान महावीर ने हमे सत्य, सयम, अहिंसा और अपरिग्रह के जो असूल बताए, मुनिश्री चौथमलजी का सारा जीवन इन्हीं की साधना और प्रचार-प्रसार मे बीता था। उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि यही होगी कि समाज-सुधार और मानव-उत्थान का जो कार्य उन्होंने किया था, उसको आगे बढावें और अपने आचार-विचार मे रचनात्मक शक्ति का विकास कर दूसरो को प्रभावित करें।

इन्हीं शब्दो के साथ अब मैं मुनि श्री चौथमलजी महाराज को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूं।

[जन्म शताब्दी महोत्सव दिनाक ५ नवम्बर को देहली मे प्रदत्त भाषण
इसका साराश अकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर भी प्रसारित हुआ।]

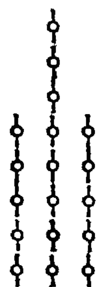
चौथमुनि चारु-चतुर

☆ श्रमणसूर्य प्रवर्तक मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

छप्पय

मृदु वाणी मतिमत महाज्ञानी मनमोहक,
मद मत्सरता मार ममत्त मिथ्या मदमोडक॥
मागलीक मुख शब्द महाव्रती महामनस्वी,
मर्यादा अनुसार प्रचारक परम यशस्वी॥
मुनि गुणी मुक्ता मणी, जन जीवन के हिय हारवर,
गगा–सुत केसर–तनय चौथ मुनि चारु-चतुर॥

कुण्डलिया



भरी जवानी मे करी, हरी विषय की झाल।
मरि तिय फिर भी ना वरी, धरी शील की ढाल।
धरी शील की ढाल, काम कइ कीना नामी।
नही रति-भर चाह, पदविये केइ पामी।
अध्यात्मिकता पायके करी साधना हर घडी।
उत्तम लोक मे चौथ ने सुन्दर यश झोरी भरी॥





जग-वल्लभ जैन दिवाकर

✡ कविभूषण श्री जगन्नाथ सिंह चौहान 'जगदीश' साहित्यरत्न, भिण्डर (राज०)

दोहा

आकर आतम-ज्ञान के, भाकर भव्य महन्त।
चौथमल्ल मुनि पूज्य थे, जैन सिताम्बर सन्त॥
हिन्दू-मोमिन-जैन पै, चौथ सत की छाप।
मानव-धर्म महान् के, पूर्ण समर्थक आप॥
हलपति, धनपति, महीपति, सदा जोडते हाथ।
दत्तचित्त सुनते सभी, चौथ गुरुवर बात॥
'जैन दिवाकर' दिव्य थे, जगवल्लभ श्रीखण्ड।
दीक्षित कर सुरभित किये, जो थे अमित उदड॥

सुन्दरी सवैया

अरहत अराधक थे 'जगदीश' व साधक सम्यक् के अवरेखे।
सब धर्म गुणग्राहक थे अनुमोदक बोधक केवल ज्ञान के लेखे।
खल दानवता प्रतिरोधक थे भल मानवता प्रतिपादक पेखे।
हितकारक शुद्र-अछूत सुधारक, जैन दिवाकर चौथ को देखे॥

दोहा

'डीमो'[1]-सम वक्ता बडे, मुनि 'दिनकर' ससार।
शुद्ध सस्कृति श्रमण का, किया विपुल विसतार॥
'जैन दिवाकर' की गिरा, सुनि स्वय 'जगदीश'।
शीश झुकाते थे उन्हे, बडे-बडे अवनीश॥

घनाक्षरी

वाणी पर ध्यान देते यवन, ईसाई-हिन्दू
डालते प्रभाव युवा-उर अनुदार पै।
आदिवासी देवदासी शक्ति के उपासी आदि
प्रमुदित होते गुरु-विमल विचार पै।

---

१ प्राचीन ग्रीन का महान् वक्ता 'डिमोस्थिनिज' था। जिसकी टक्कर के भाषण देने वाले ससार में गिने-चुने व्यक्ति ही हुए हैं।



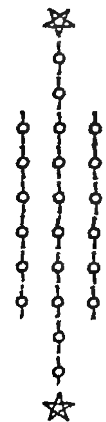
शपथ दिलाते हिंसा, मद्य, मांस, घूंस की तो
देते उपदेश उच्च आतम उद्धार पै।
संयम-नियम सदाचार का प्रचार कर
अमल किया था चौथमल वर्ण चार पै।

दोहा

'निर्ग्रन्थ प्रवचन भाष्य' को, 'धम्मपद'-'गीता' जान।
अन्तःकरण विशुद्ध का, नया निरूपण मान॥
जनमे थे रविवार को, दीक्षा ली रविवार।
रविदिवस गये स्वर्ग को, रविवासर 'रवि'प्यार॥
आगम-निगम-निधान थे, सम्पन्न शील नदीश।
चौथ संत की चरण-रज, शीश वरी 'जगदीश'॥
बहुत धर्म का वर्ष[1] तो, है यह भारतवर्ष।
आदर्श धर्म के योग्य तो, जैनधर्म उत्कर्ष॥

देखा मैंने

☆ कविवर श्री अशोक मुनि



देखा मैंने संत रूप, सत्पथ दिखलाते मानव को
तप.अस्त्र से मार भगाते, पाप-पुंज के दानव को॥१॥
देखा मैंने वृद्ध-जनों में, वृद्धों-सी करते बातें
नवयुवकों में देखा, नव सामाजिक विप्लव फैलाते॥२॥
बच्चों में बचपन की स्मृतियाँ, देखा तन्मय हो कहते
वीरकेशरी दृढ़-प्रतिज्ञ हो, कठिन परिषह भी सहते॥३॥
देखा मैंने कवि रूप, पद सरस ललित चुन-चुन धरते
व्याख्यानों में देखा वाग्मी, बन जन गण मोहित करते॥४॥
अर्हत दर्शन के प्रकाण्ड, पण्डित हो दर्शन समझाते
प्रभु स्मरण में देखा मैंने, व्यय करते पूरी रातें॥५॥
देखा "जैन दिवाकर" बनकर संघ सुमन को विकसाते
आत्म-लग्न से सत्य, अहिंसा को जीवन में अपनाते॥६॥
"अशोक मुनि" गुरुदेव चरण में, मेरा हो शत-शत प्रणाम
शत-शत वर्षों जिन-शासन में, रहे आपका अविचल नाम॥७॥

---

१ पृथ्वी के खण्ड को भी कहते हैं।



एक महकता जीवन पुष्प

✡ मालवरत्न उपाध्याय प० श्री कस्तूरचन्दजी महाराज (रतलाम म० प्र०)

यह ससार एक विराट् उद्यान की भाँति है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के मानव रूपी पुष्प विकसित, पल्लवित होते रहते हैं। फूलो ही की भाँति कोई आकार मे तो सुन्दर सुगठित होता है तो सुगुणो की सुगन्ध उनमे नहीं होती। कोई देखने मे तो अप्रिय लगते हैं, पर उनमें चारित्रिक सुवास होती है। कोई गुलाब के फूल की भाँति देखने मे सुन्दर व गन्ध मे भी प्रियकारी होते हैं। गुलाब की तरह सुरभित जीवन ससार मे कितने लोगो का होता है? गिने-गिने लोगो का। ऐसा जीवन जीने वाले मानव अपने जीवन मे तो दूसरो को प्रफुल्लित-आनन्दित करते ही हैं, मरने के बाद भी उनकी उत्कृष्ट-चारित्र की महक लोगो के मन में सदा-सदा के लिए बस जाती है। जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन ही एक पूर्ण विकसित महकते गुलाब की भाँति था। अपने जीवनकाल मे तो वे शीतल, सुरभित मलय की भाँति सारे देश में विचरते हुए अहिंसा, सत्य, प्रेम की धारा प्रवाहित करते ही रहे, पर स्वर्गवासी बनने के बाद भी आज उनके उच्चादर्श, सदुपदेश जन-जन के जीवन को मंगलमय बनाने मे लगे हुए हैं।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के जीवन का उद्देश्य था—श्रमण सस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करते हुए मात्र धर्म-प्रचार, यही नही वरन् ऊँच, नीच, छोटे-बड़े के भेदभाव को मिटाकर, जातिगत बन्धनो की जजीरो मे जकडे समाज को व्यापक परिवेश देकर उन्हें यह समझाना कि कोई भी व्यक्ति मानव पहले है, बाद मे जैन, हिन्दू, मुसलमान या हरिजन। सबसे बडा धर्म है—मानव-मात्र की सेवा करना, दीन-दु खियो की सहायता करना, गिरते को ऊँचा उठाना। अपने इस पावन उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे जीवनभर सतत कार्य करते रहे, वे सफल रहे। यही कारण है कि उनके इन मानवता हितैषी कार्यों की वजह से, वे आज मात्र जैन समुदाय मे ही नही वरन् समस्त वर्गों मे पूजनीय-वन्दनीय व श्रद्धा के पात्र हैं।

आज हम उस मनस्वी महासन्त का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य मे अपनी एक नजर समाज-ससार पर भी डाले। क्या हम यह अनुभव करते हैं कि श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने जिस समाज रचना की कल्पना की थी, उसे हम यथार्थता प्रदान कर सके है? साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर सामाजिक उत्थान के साथ-साथ हमने दीन-दु खी साधर्मी, भाई-बहनो के लिए क्या अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है? इस मनीषी को अपने हृदयगत श्रद्धा सुमन अर्पित करने की दिशा में पहला कदम होना चाहिए—अपने दिलो मे साधर्मी-वात्सल्य भाव को जागृत करना, एक भेदभाव मुक्त सुन्दर, आनन्दमय समाज का निर्माण करने के लिए प्रयास करना। यदि हम इस दिशा मे पैर बढायेंगे, तभी श्री जैन दिवाकरजी महाराज को अपनी वास्तविक श्रद्धाजलि समर्पित करेंगे।

औरो को बदलने के लिए, खुद को बदलना सीखो
शंकर बनना हो अगर, विष घू ट निगलना सीखो।
उजाले की परिभाषा न, मिलेगी किताबो मे तुम्हे,
उसको पाने के लिए खुद, दीपक बन जलना सीखो॥

✡



वह, कालजयी इतिहास-पुरुष !

☆ उपाध्याय अमरमुनि, वीरायतन, राजगृह (बिहार)

जैन दिवाकर, जगद्वल्लभ श्री चौथमलजी महाराज वस्तुत. जैनसघ रूपी विशाल आकाश के क्षितिज पर उदय होने वाले सहस्रकिरण दिवाकर ही थे। उनका ज्योतिर्मय व्यक्तित्व जैन-अजैन सभी पक्षों मे श्रद्धा का ऐसा केन्द्र रहा है कि जन-मन सहसा विस्मय-विमुग्ध हो जाता है।

उनकी जनकल्याणानुप्राणित बोधवाणी राजप्रासादो से लेकर साधारण झोपडियो तक मे दिनानुदिन अनुगुजित रहती थी। प्रवचन क्या होते थे, अन्तर्लोक से सहज समुद्भूत धर्मोपदेश के महकते फूलो की वर्षा ही हो जाया करती थी। परिचित हो या अपरिचित, गाँव हो या नगर, जहाँ कहीं भी पहुँच गये, उनके श्रीचरणो मे श्रद्धा और प्रेम की उत्ताल तरगो से गर्जता एक विशाल जन-सागर उमड पड़ता था। न वहाँ किसी भी तरह का अमीर, गरीब आदि का कोई भेद होता था और न जाति, कुल, समाज या मत, पथ आदि का कोई अन्तर्द्वन्द्व ही। उनकी प्रवचन-सभा सचमुच मे ही इन्द्रधनुष की तरह बहुरगी मोहक छटा लिये होती थी।

श्री जैन दिवाकरजी करुणा की तो साक्षात् जीवित मूर्ति ही थे। इतने पर-दु खकातर कि कुछ पूछो नही। अभावग्रस्त असहाय वृद्धो की पीडा उनसे देखी नही गयी, तो उनकी कोमल करुणावृत्ति ने चित्तौड-जैसे इतिहास-केन्द्र पर वृद्धाश्रम खोल दिया। अनेक स्थानो पर पुराकाल से चली आती बलि-प्रथा बन्द कराकर अमारी घोषणाएँ घोषित हुईं। हजारो परिवार मद्य, मास, द्यूत तथा अन्य दुर्व्यसनो से मुक्त हुए, धर्म के दिव्य सस्कारो से अनुरजित हुए। शिक्षण के क्षेत्र मे बालक, बालिका तथा प्रौढो के लिए धार्मिक एव नैतिक जागरण के हेतु शिक्षा-निकेतन खोले गए। मातृजाति के कल्याण हेतु कितनी ही प्रभावशाली योजनाएँ कार्यरूप मे परिणत हुईं। बस, एक ही बात। जिधर भी जब भी निकल जाते थे, सब ओर दया, दान, सेवा और सहयोग के रूप मे करुणा की तो गगा बह जाती थी।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज शासनप्रभावक महतो महीयान् मुनिवर थे। अनेक आचार्यों से जो न हो सकी, वह शासनप्रभावना दिवाकरजी के द्वारा हुई है। जितना विराट् भव्य एव ऊँचा उनका तन था, उससे भी कही अधिक विराट्, भव्य एव ऊँचा उनका मन था, आज की समग्र सकीर्णताओ तथा क्षुद्रताओ से परे। सघ-सगठन के शत-प्रतिशत परखे हुए सूत्रधार। सम्प्रदाय विशेष मे रहकर भी साम्प्रदायिक घेराबन्दी से मुक्त। अपने युग का यह इतिहास पुरुष कालजयी है। युग-युग तक भावी प्रजा अपने आराध्य की अविस्मरणीय जीवन-स्मृति मे सहज श्रद्धा के सुमन अर्पण करती रहेगी और यथाप्रसग अपने मन, वाणी तथा कर्म को ज्योतिर्मय बनाती रहेगी।

जन्म-शताब्दी के मगल प्रसग पर उनके प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व एव कृतित्व को शत-शत वन्दन, अभिनन्दन!

☆☆

पवित्र प्रेरणा

✡ प्रवर्तक श्री अम्बालालजी महाराज

परम आदरणीय भारत प्रख्यात जगद्वल्लभ जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब की पावन स्मृति मे आयोजित इस शताब्दी समारोह के अवसर पर मैं उस विराट लोकवल्लभ ज्योतिर्मयी चेतना के पवित्र चरणो मे हार्दिक श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

जैन दिवाकरजी महाराज ने पूरे जीवन संयम-साधना करते हुए लोकमंगल की सर्जना की, जो युगयुग तक अविस्मृत रहेगी।

झोंपडी से लेकर राजमहलो तक जिनशासन की कीर्तिध्वजा लहराने वाले जैन दिवाकरजी महाराज को भुलाना असम्भव है।

जैन दिवाकरजी महाराज ने जैनधर्म को लोकधर्म का स्वरूप प्रदान किया, उन्होंने इस महान् वीतराग-मार्ग को महाजन समाज से अलग अन्य वर्ग के लोगो मे इसे फैलाकर भारत मे जैन-धर्म की व्यापक उपयोगिता को सिद्ध कर दिया।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने जिनशासन की सभी सम्प्रदायों के बीच सौजन्यता स्थापित करने का बडा काम किया। उन्होंने ऐसे समय मे ऐक्य संगठन और पारस्परिक सहयोग का बिगुल बजाया जब चारो तरफ साम्प्रदायिक कट्टरता और खडन-मडन का वातावरण फैला हुआ था।

उनकी इस विशेषता को हमे वर्तमान सन्दर्भ मे और अधिक उत्साह के साथ अपनाने की आवश्यकता है। जैन समाज के सभी फिरके तो परस्पर स्नेह और सहयोग पूर्वक रहे ही, साथ ही स्थानकवासी समाज को अपने भीतर मजबूत एकता की स्थापना कर लेना चाहिए।

हम बहुत अधिक बिखरे हुए हैं, यह बिखराव समाज के लिए घातक बन रहा है।

हमारा स्थानकवासी समाज केवल साधु-साध्वियो के सहारे टिका है। समाज को इनका ही आधार है अत॰ हमारा त्यागी वर्ग जितना अधिक चारित्रवान्, आचारनिष्ठ और शास्त्रानुगामी होगा उतना ही यह समाज प्रगति करेगा। यह ज्वलन्त सत्य है जिसे एकक्षण के लिए भी नहीं भुला सकते। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के पावन जीवन मे हमे वही प्रचण्ड प्रेरणा मिले—ऐसी आशा करता हूँ।

✡

श्री जैनदिवाकरो विजयताम्

✡ उपाध्याय श्री मधुकर मुनि

धर्मोद्धार-पर सदा सुख-करो लोक-प्रियो यो मुनि॰।
प्राप्त येन यश. कृता च सतत सघोन्नति. सर्वदा ॥
यस्याऽऽनन्द-करा शुभा प्रियतरा श्री चौथमल्लाऽभिधा।
स श्री जैन-दिवाकरो विजयता सिद्धि च सम्प्राप्नुयात् ॥



मुनिवर तुमने जन-मानस में, मनहर बीन बजाई

☆ रमाकान्त दीक्षित (भिवानी)

मुनिवर, तुमने जन-मानस मे, मनहर बीन वजाई।
जप, तप, साहस, वल, सयम के, सपने टूट रहे थे,
पावन धर्म-ध्वजा को पामर, मिलकर लूट रहे थे,
धर्म-दिवाकर, तुमने वढकर, उनको फिर ललकारा,
हमे आज भी दिशा वताते, वनकर तुम ध्रुवतारा,
ग्राम-नगर की गली-गली मे, रस की धार बहाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस मे, मनहर बीन वजाई॥

प्रेय मार्ग को छोडा तुमने, श्रेय मार्ग अपनाया,
नया उजाला दिया जगत् को, तम का तोम भगाया,
पतझड ने वगिया लूटी थी, फिर से फूल खिले हैं,
भेद-भाव के नाग लहरते, अव तो गले मिले हैं,
धर्म-नीति के गठवघन पर, गूँज उठी शहनाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस मे, मनहर बीन वजाई॥

अव कुठा, सत्रास, घुटन की, सिमट रही है माया,
ज्ञान-प्रदीप जलाकर तुमने, भ्रम का भूत भगाया,
जन-जीवन के अन्तर्मन का, दर्पण सवर रहा है,
घर के आँगन मे खुशियो का, कुमकुम बिखर रहा है,
युग से भटक रही मानवता को, सीधी राह दिखाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस मे, मनहर बीन वजाई॥

मिला तुम्ही से गौरव हमको, जीवन को परिभाषा,
अध्यात्म-गिरि पर चढ जाने को, जगती को नव आशा,
शाश्वत ज्ञान, कर्म, भक्ति को, तुम-सा पूत मिला जव,
चमके नभ मे चाँद-सितारे, सुख का भान मिला तव,
दीपित तम का कोना-कोना, ऐसी ज्योति जगाई।
मुनिवर, तुमने जन-मानस मे, मनहर वीन वजाई॥

☆



जन-जन के हृदय मन्दिर के देवता...

✡ उपाध्याय श्री मधुकर मुनिजी

अभी सीमित युग ही बीत पाये हैं, जिन्हे स्वर्गवासी हुए। यदि युग पर युग भी बीतते जावेंगे, तो भी जिनका नाम यत्र-तत्र-सर्वत्र गूंजता रहेगा, वे थे अविस्मरणीय अभिधा वाले परम श्रद्धेय प्रसिद्ध वक्ता पूज्य जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज प्रबल पुण्य प्रकृति के धनी थे। इसलिए वे जन-जन के हृदय-मन्दिर के देवता बने हुए थे। साधारणजन से लेकर बडे-बडे जागीरदार व नरेश भी उनकी भक्त मडली के सदस्य थे।

जब प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज प्रवचन-पट्ट पर विराजमान हो जाते और वहाँ पर उपस्थित जन-समाज की ओर उनका दक्षिण कर-कमल घूम जाता, तब आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष उनसे प्रभावित हो जाते थे और वे भक्त उनके बन जाते थे।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन सीधी-सादी भाषा मे अतीव सुमधुर होते थे। उनके प्रवचनो का प्रभाव जितना साधारण जनता पर पड़ता था उतना ही विद्वत् समाज पर भी पडता था। उनके प्रवचन सुनकर सभी मत्र-मुग्ध से बन जाते थे।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने प्राणि-हित और जन-हित के अनेक कार्य किये। यत्र-तत्र जीव हत्याएँ बन्द करवाईं। पर्व के दिनो मे अगते पलवाए। अनेक जागीरदारो से हत्या बन्द करने के पट्टे लिखवाये। ये कदम उनके सदा-सदा के लिए सस्मरणीय रहेंगे।

छोटी-छोटी जातियो पर भी उनका बहुत अच्छा प्रभाव था। तेली-तबोली, घाची-मोची, हरिजन आदि जातियो के लोग भी उनसे पूर्णत. प्रभावित रहते थे। उनके प्रभाव मे आकर उन लोगों ने आजीवन मास-मदिरा शिकार आदि दुर्व्यसनो के प्रत्याख्यान किये। इससे अनेक प्राणियो को अभयदान मिला।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज एक सफल कवि भी थे। उनकी प्राय सभी रचनाएँ सरल, सरस व सुमधुर बनी हुई हैं। उन्होंने अनेक चौपाइयो का निर्माण किया तथा विविध रागो मे अनेक भजन भी बनाए। उनके प्राय. सभी भजन अतीव लोकप्रिय बने, लोक गीतो की तरह उनके भजनो की कडियाँ आज भी जन-जन के मुँह से निकलती रहती हैं।

यद्यपि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के दर्शनो का लाभ मुझे अवश्य मिला था, परन्तु उनके सत्संग का लाभ मुझे यथोचित कभी नहीं मिल पाया। यह सयोग की बात है, फिर भी मेरे हृदय मे उनके प्रति अपार श्रद्धा है।

आज उनकी जन्म-शताब्दी के स्वर्णमय सुअवसर पर उनके सयमी जीवन के श्रीचरणो मे मेरी शत-शत श्रद्धाजलि समर्पित है।

✡



शत-शत तुम्हें वन्दन

☆ मुनि लाभचन्द्रजी (जम्मू तवी)

तुम थे सत महंत, तुम्हारा नाम सुनते जोश आता है।
रगों मे हमारे अफसानों से, चक्कर खून खाता है ॥

आपका नाम व आपका काम दोनो ही महान् थे। नाम जपने से निराशा शान्त होती है, आपके उपकार याद आते हैं।

आप जिनेश्वरदेव के मार्ग पर नर से नारायण बनने वाले अगणित साधको मे से एक हैं। आपने वह प्रकाश, वह आभास प्राप्त किया—जो अतीव कठिन था। आपने सारे जहान को रोशनी दी। शान्ति दी। मुझे भी श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सान्निध्य मे काफी अर्से तक रहने का मौका मिला। कई बार कहा करते थे, लाभ मुनि ! तुमने बाल्यकाल मे सयम-पथ लिया है, यह असीम पुण्योदय का फल है।

एक बार उनके साथ मे देहली का वि० स० १९९५ का चातुर्मास उठाकर लुहारासराय स्थानक पर चढने वाले कलश के उत्सव मे जा रहे थे। रास्ते मे एक खेखडा गाँव आया, एक जन्माध बालक किसी के बहकाने पर जैन दिवाकरजी महाराज के समीप आकर अप्रासगिक चर्चा करने लगा। गुरुदेव बोले—'आज तो तुम दूसरो के बहकावे मे बहककर इस प्रकार बोल रहे हो, पर एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम्हारे दरवाजे पर बडे-बडे सेठो की कारे खडी रहेंगी।'

ठीक वही बात हुई। हम दो हजार आठ का देहली का चातुर्मास उठाकर लुधियाने की ओर देहली से बडौत कांधला होते हुए करनाल जा रहे थे तो देहली से बडौत जाने वाले मार्ग मे वही खेखडा गाव पडा, एक भाई के मकान मे ठहरे, वह बालक भी आया जिसे गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त था, कहने लगा—'महाराज ! मेरा विकास गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज की कृपा से हुआ है। मैं पामेस्ट्री हस्तरेखा विज्ञान का प्रखर ज्ञाता बना हूँ। प्रश्नकर्त्ता के हाथ की रेखाओ पर केवल अगुली फेरकर सारा भविष्य बता देता हूँ। कई दिन तक सेठ लोग मेरे दरवाजे पर पडे रहते हैं।'

हाँ तो उनकी वाणी ब्रह्म-वाक्य थी।

यह तो सुनिश्चित है कि श्रमण सस्कृति के जीवन विधायक श्रमण सत होते हैं।

श्री चौथमलजी महाराज श्रमण सस्कृति के सरक्षक, सवर्धक थे। उनकी वाणी मे मधुरता थी, आँखो मे प्यार था। जीवन मे दुलार था। उनका जीवन-मन समाहित था। वे जीवन-साधना की परिधि मे हमेशा अग्रसर रहते थे। वास्तव मे उनकी जीवन-साधना समग्र रूप से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र से युक्त थी। जिनके विचारो में विश्वमगल निहित था।

जिनके आनन पर रहती थी, मधुर हास्य की रेखा।
हर व्यक्ति ने कठिन समय मे, आपको देवरूप मे देखा ॥
स्वय सफलता ही उनकी, गोदी मे खेला करती थी।
विजयश्री उनके मस्तक पर तिलक लगाया करती थी ॥
उनके चरण चूमने अगणित जनता आती थी।
वो जीवन धन्य समझते थे जब थोडी-सी चरण-रज मिल जाती थी ॥

ऐसे थे वे चारित्र चूडामणि, विश्वमगल के प्रतीक श्री चौथमलजी महाराज। जिनकी साधना स्वय के लिए तथा सर्वजनहिताय थी।

उन्होंने राजा से रक तक की बात सुनी। झोपडी से महल तक प्रभु महावीर के सदेश को फैलाया। जन-जन के मन को परखा। वे मानव-जीवन के चिकित्सक थे। दु ख-परेशानियो की व बीमारियो की औषधी उनके पास थी। लाखो का कल्याण किया, पीडा तथा चिन्ताएँ मिटाई।

भगवान महावीर ने सत की कसौटी बतलाते हुए सुन्दर एव महत्त्वपूर्ण भाव भाषा मे कहा—

"दोहिं ठाणेहिं अणगारे संपन्ने अणादिय, अणवदग्ग, दीह मध्द च उरत संसारकतार वीति एवज्जा तं जहा—विज्जाए चेव चरणेण चेव।"

—अर्थात दो महान् तत्त्वो के माध्यम से साधक इस अनादि-अनन्त चतुर्गति रूप ससार अटवी से पार हो जाते है। वे हैं ज्ञान और चारित्र।

श्री दिवाकरजी महाराज भी प्रभु के बताए हुए मार्ग पर एक दृढ़प्रहरी की भांति चले और अपनी मजिल को निकट की। निरतिचार चारित्र की साधना मे वे हमेशा सलग्न रहे। उनकी वाणी मे एक ऐसा असरकारक जादू था, चमत्कार था कि मानो साक्षात् देवदूत हो, जिनके मन वाणी, काया मे धर्म का रग रम चुका था। उनका बोलना बैठना, सोना, सोचना सब धर्म के माध्यम से होता था।

श्रुतज्ञान के प्रगाढ अध्ययन-चिन्तन-मनन से वाणी को मुखरित होने की शक्ति उन्हे मिली थी। अर्थात् वे श्रुतज्ञान के ज्योतिर्धर थे।

जहाँ-जहाँ उनके चरण पडे वहाँ-वहाँ की वह भूमि स्वर्ग-सी बनी। धन्य बनी। जिस पर आपकी दृष्टि पडी वह कृत्य-कृत्य बना।

वे धर्म के दिवाकर तन की ज्योति से चाहे हमारे समाने नही है। पर उनके पवित्र जीवन की अमर ज्योति से आज भी प्रत्येक घट-घट आलोकित है।

आज भी हम स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की पावन गाथाएँ सुनते है तो हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है।

हे हृदयेश ! हे जीवनेश ! आप मानव ही नहीं महामानव थे।
वन्दन स्वीकार करो गुरुवर, आप तो जीवन के सृष्टा थे॥

☆

युगप्रवर्तक श्री जैन दिवाकरजी महाराज

☆ भण्डारी श्री पदमचन्दजी महाराज (पजाब)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने मानव समाज को सदाचार और सुसस्कार की ओर प्रेरित करने मे एक अद्भुत कार्य किया था। ऐसा कौन मानव होगा, जो उनकी चरण छाया मे पहुँचा हो, उनकी वाणी सुनी हो और उसका हृदय न बदला हो। पापी से पापी और पतित से पतित मनुष्य भी उनके सम्पर्क से पवित्र बन गये, धर्मात्मा बन गये ऐसे अनेक उदाहरण सुनने मे आये हैं।

जैन इतिहास के ही नही, किन्तु सम्पूर्ण भारतीय इतिहास के इन २५०० वर्षों मे ऐसे मनस्वी, तेजस्वी प्रभावशाली सत बहुत ही कम हुए है जिन्होंने युग की बहती धारा को अपनी वाणी से मोड दिया हो। असदाचार को सदाचार व कुसस्कारो को सुसस्कार मे बदलना वास्तव मे ही युग-प्रवर्तन का कार्य है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने यह ऐतिहासिक कार्य किया। अत उन्हें एक युगप्रवर्तक महापुरुष कहा जा सकता है।

☆



(लोकगीत की धुन पर रचित एक मेवाड़ी गीत)

गंगारामजी री आंख्यां रा उजाला रो

✡ श्री मदन शर्मा, शिक्षक डूंगला, (राज०)

आज उजाली या रात,
मारो हिवडो हरषात,
जोड़ू कुण्या कुण्या हाथ,
टेकूं पगा माही माथ,
कथ गाऊँ जामण जाया केशर लाला रो।
गगारामजी री आख्या रा उजाला रो॥

म्हारो हिवडो हरषावे,
म्हारो मनड़ो गीत गावे,
मुरझ्या फूलड़ा ने खिलावे,
म्हारी आतड़िया उचकावे,
गीत गाऊँ आज धर्म रा रुखाला रो।
गगारामजी री आख्या रा उजाला रो॥

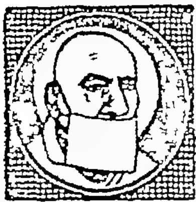
जैन दिवाकर री शान,
पडित रतना री या खान,
जगद् - वल्लभ गुणगान,
नाम चौथमलजी महान्,
निकल्यो सूरज वो तेजरा तमाला रो।
गगारामजी री आख्या रा उजाला रो॥

सम्वत् चोतीसा मझधार,
कार्तिक तेरस ईतवार,
मालव देश के मजार,
हुयो नीमच मे अवतार,
धन-धन भाग वी भूमि पर रैवण वाला रो।
गगारामजी री आख्या रा उजाला रो॥

सोलह साल मे जव आये,
व्याह बेड़ी मे बँधाये,
पूनमचद लगन पठाये,
वरात प्रतापगढ मे जाये,
बाई मानकुँवर सू फेरा लेवण वाला रो।
गगारामजी री आख्या रा उजाला रो॥

लिख्या विधाता रा लेख,
कुण फेरे जापे रेख,
पेर्‌यो साधुवा रो भेख,
छोड़ चाल्या छाती टेक,
छोड्यो जग छोड्यो प्रेम घर वाला रो।
गगारामजी री आंख्या रा उजाला रो॥

श्रीमान श्री एक सौ ने आठ,
गुरू हीरालालजी रो ठाट,
जासूँ करी साँठ-गाँठ,
दीक्षा लीनी वैठा पाट,
सम्वत् वावन्या मे लोच कीनो वाला रो।
गगारामजी री आख्या रा उजाला रो॥



बोलता भाषा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी।
मालवी, गुजराती, राजस्थानी बोलचाल री ॥

भण्या जैन-धर्म प्रमाण,
गीता, भागवत, पुराण,
वेद, उपनिषद्, रामा'ण,
बाइबल गुलिस्तां कुराण,

पंडितरत्न रो तुजरबो पावण वाला रो।
गंगारामजी री आंख्या रा उजाला रो ॥

प्रेमसु गरीबा री झोपड्या मे जावता।
महलवाला भी वाने झोपड्या ज्यू भावता ॥

झुक्या राजा रा दरबार,
जमीदार, जागीरदार,
नवाब ने नरेश सरदार,
काम्प्या धाडाती, गद्दार,

मेट्यो म्हूं पणो—केई मुछाला रो।
गंगारामजी री आंख्या रा उजाला रो ॥

अबे आगे मध्यदेश—मालवा मे चालिया।
मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, इन्दौर देखिया ॥

लखनऊ, आगरा ने कानपुर,
बम्बई ने पूना भी मशहूर,
दिल्ली, पालनपुर री ट्यूर,
घूम्या भारत मे भरपूर,

घर-घर मे ज्ञान रा दिवला जोवणवाला रो।
गंगारामजी री आंख्या रा उजाला रो ॥

मीठी मीठी बोली मू वी उपदेश झाडता।
हजारो श्रावक सुण आत्म्या न टमकारता ॥

वाण्या, ब्रामण, कुम्हार,
खाती, अहीर, पाटीदार,
जाट, तेली ने लुहार,
ढेड, बोला[1] ने चमार,

सभी सुणता व्याख्यान ज्ञान माला रो।
गंगारामजी री आंख्या रा उजाला रो ॥

राजस्थान पूरो देख्यो, गाँव-गाँव शोभावडी।
भीलवाडा, चित्तौड, कानोड-बडी सादडी ॥

उदयपुर ने जोधपुर, आमेर,
अलवर, नागोर, बीकानेर,
कोटा, ब्यावर ने अजमेर,
करली अरावली री सैर,

ठोकर खाता ने गडारे[2] लावण वाला रो।
गंगारामजी री आंख्याँ रा उजाला रो ॥

कोटा मे चौमासो कीनो घणा सुख पावता।
दया न आई राम अस्या संत ने ले जावता।

सम्वत् साला मगसर मास,
नवमी रविवार भाई त्रास,
कीनो आप स्वर्गा वास,
आंख्या आयो भादव मास,

दुनिया रोई भदुडाजल वहियो नेणनाला रो।
गंगारामजी रा आंख्या रा उजाला रो ॥

---

१ रेगर

२ - रास्ते पर





सच्चे सन्त और अच्छे वक्ता

☆ उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी

महामनीषी मुनिपुंगव जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज स्थानकवासी जैन समाज के एक मूर्धन्य सन्तरत्न थे। वे ऐसे सन्त थे जिन्होंने अपना पथ अपने आप बनाया था। उन्होने दूसरो के सहारे पनपना, बढना उचित न समझकर अपने ही प्रबल पुरुषार्थ से प्रगति की थी। एक व्यक्ति पुरुषार्थ से कितना आगे बढ सकता है और अपने अनुयायियो की फौज तैयार कर सकता है, यह उन्होने प्रत्यक्ष रूप से बता दिया। वे जहाँ भी पहुँचते वहाँ विरोधी तत्त्व उनकी प्रगति के लिए बाधक बनता, पर विरोध को विनोद मानकर उसकी उपेक्षा करके बरसाती नदी की तरह निरन्तर आगे बढ़े, पर कभी भी कायर पुरुष की भाँति पीछे न हटे।

जैन दिवाकरजी महाराज सच्चे वाग्मी थे। वे जहाँ कही भी प्रवचन देने के लिए बैठ जाते, वहाँ धीरे-धीरे प्रवचनस्थल श्रोताओ से भर जाता। उनकी आवाज बुलन्द थी। उसमे ओज था, तेज था। शैली अत्यन्त मधुर थी और विषय का प्रतिपादन बहुत ही स्पष्ट रूप से करते थे। प्रवचनो मे आगमिक रहस्यो के उद्घाटन के साथ ही समाज-सुधार, राष्ट्र-उत्थान व जीवन की पवित्रता किन सद्गुणो के कारण से हो सकती है, इन पर वे अधिक बल देते थे। अपने विषय के प्रतिपादन हेतु रूपको का तथा सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू के सुभाषित, सूक्तियो, दोहे, श्लोक, शेर, गजलें और भजन का प्रयोग भी करते थे। उनके साथ उनके शिष्य ऐसे भजन-गायक थे, जो उनके साथ जब गाने लगते तो एक समाँ बँध जाता और श्रोता मस्ती से झूमने लगता। उनके प्रवचनो की सबसे बडी विशेषता थी कि वे किसी का खण्डन करना कम पसन्द करते थे। समन्वयात्मक शैली से वे अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। यही कारण है कि जैन मुनि होने पर भी उनके प्रवचनो मे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी धर्मावलम्बी बिना सकोच के उपस्थित होते और उनके उपदेशों को सुनकर अपने आपको धन्य अनुभव करते। मैंने स्वय ने उनके प्रवचनो को सुना, मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि साक्षात् सरस्वती पुत्र ही बोल रहा है। वाणी मे इतना अधिक माधुर्य था कि सुनते-सुनते श्रोता अघाता नही। प्रवचनो मे ऐसी चुटकियाँ लेते कि श्रोता हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाता। वे सदा प्रसन्न रहते थे और अपने श्रोताओ को भी मुहर्रमी सूरत मे देखना नही चाहते थे। उनका मन्तव्य था—"तुम खिलो, तुम्हारी मधुर मुस्कान के साथ ससार का साथ है, यदि तुम रोओगे तो तुम्हारे साथ कोई भी रोना पसन्द नही करेगा। हँसते हुए जीओ और हँसते हुए मरो। और उसका राज है विकारो को कम करना, वासनाओ को नष्ट करना और साधनामय जीवन व्यतीत करना। आप किसी जीव को न सताओगे तो आपको भी कोई न सताएगा। प्रसन्नता बाँटो।"

वे अपने प्रवचनो मे सदा सरल और सरस विषय को लेना पसन्द करते थे। गम्भीर और दार्शनिक प्रश्नों को वे इस तरह से प्रस्तुत करते थे कि श्रोताओ के मस्तिष्क मे भारस्वरूप न प्रतीत हो। वे मानते थे कि प्रवचन केवल वाग्विलास नही है, वह तो जीवन-निर्माण की कला है। यदि प्रवचन सुनकर श्रोताओ के जीवन मे परिवर्तन न आया, उनका सामाजिक और गार्हस्थिक जीवन न सुधरा, तो वह धार्मिक व आध्यात्मिक-साधना किस प्रकार कर सकेगा ? अत जीवन को सुधारना आवश्यक है। आज जन-जीवन विविध प्रकार की कुरूढियो से जकडा हुआ है। वह प्रान्तवाद, पथ-वाद के सिकजो मे बन्द है, अत उसका जीवन एक विडम्बना है। हमे सर्वप्रथम मानव को उससे



मुक्त करना है। उसके पश्चात् ही हम उसमे धर्म का बीज-वपन कर सकेंगे, आध्यात्मिक भावना पैदा कर सकेंगे।

जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचन जीवन-निर्माण की पवित्र प्रेरणा देने वाले होते थे। यही कारण है कि उनके प्रवचनो को सुनकर हजारो व्यक्ति आध्यात्मिक-साधना की ओर अग्रसर हुए। हजारो व्यक्तियो ने मास-मदिरा का परित्याग किया और हजारो व्यक्तियो ने सात्त्विक जीवन जीने का व्रत स्वीकार किया। कसाई जैसे क्रूर व्यक्ति भी अहिंसक बने। शूद्र कहलाने वाले व्यक्तियो ने नियम को ग्रहण कर एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया।

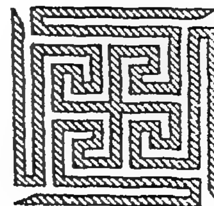
मैंने अपने जीवन मे अनेक वार उनके दर्शन किये। उनसे विचार-चर्चाएँ की। मुझे सदा उनका स्नेहपूर्ण सद्व्यवहार प्रभावित करता रहा। वे वार्तालाप और चर्चा मे कभी भी उग्र नही होते। वे सर्वप्रथम शाति से प्रश्न को सुनते और फिर मुस्कराते हुए उत्तर देते। उत्तर सक्षेप मे और सारगर्भित होता। निरर्थक वकवास करना उन्हे पसन्द नही था।

प्रवचनो के साथ ही साहित्य निर्माण के प्रति भी उनकी सहज अभिरुचि थी। जब भी समय मिलता उस समय वे लिखा करते। कभी पद्य मे, तो कभी गद्य मे, दोनों ही विधाओ मे उन्होंने लिखा। किन्तु गद्य की अपेक्षा पद्य मे अधिक लिखा। उनका मन्तव्य था, पद्य साहित्य सहज रूप से स्मरण हो जाता है। उसमे लय होती है, उसको गाते समय व्यक्ति अन्य सभी को भूल जाता है। गद्य साहित्य पढा जा सकता है, पर उसे स्मरण नही रख पाता। इसीलिए सन्त कवियो ने कविताएँ अधिक लिखी।

उनका पद्य और गद्य साहित्य सच्चा सन्त-साहित्य है। उसमें भाषा की सजावट, बनावट और अलकारो की रमणीय छटा नहीं है और न कल्पना के गगन मे ही उन्होंने विचरण किया है। सीधी-सादी सरल भाषा में उन्होंने जीवन, जगत्, दर्शन, धर्म और सस्कृति के वे तथ्य और सत्य प्रस्तुत किये हैं कि पाठक अपने जीवन का नव-निर्माण कर सकता है।

जैन दिवाकरजी महाराज एक पुण्य पुरुष थे। वे जिधर से भी निकलते उधर टिड्डीदल की तरह भक्तो की भीड जमा हो जाती। उनके नाम मे ही ऐसा जादू था कि जनता अपने आप खिंची चली आती। एक बार जो आपके सम्पर्क मे आ जाता वह भुलाने का प्रयत्न करने पर भी आपको भुला नही पाता।

आपके जीवन से सम्बन्धित अनेक सस्मरण स्मृत्याकाश मे चमक रहे हैं। दिल चाहता है कि सारे सस्मरण लिख दूँ। परन्तु समयाभाव और ग्रन्थ की मर्यादा को सलक्ष्य मे रखकर मैं सक्षेप मे इतना ही निवदेन करना चाहूँगा कि वे एक सच्चे सन्त थे, अच्छे वक्ता थे और समाज के तेजस्वी नेता थे। उन्होंने समाज को नया मार्ग-दर्शन दिया, चिन्तन दिया। ऐसे महापुरुष के चरणो मे स्नेह-सुधा-स्निग्ध श्रद्धार्चना समर्पित करते हुए मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।





विश्व वन्दनीय जैन दिवाकर

☆ साध्वी कमलावती

श्रद्धेय जैन दिवाकरजी महाराज आज प्रत्यक्ष रूप से हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी उनके मुखारविन्द से निकली हुई अमृतवाणी जन-जन को जीने की सच्ची राह दिखा रही है। उनके सारगर्भित उपदेश जीवन को महान् बनाने की उत्तम औषधि है।

महामहिम जैन दिवाकरजी महाराज सर्वगुण सम्पन्न थे। विद्वत्ता के साथ-साथ धैर्यता, गम्भीरता, सरलता, समता, सहिष्णुता, विशालता, मृदुता, वात्सल्यभाव, करुणा आदि उनके सहज गुण थे। उनके दर्शन मात्र से रोगी रोग मुक्त हो जाते थे, उनके चरणोदक से असाध्य रोग भी नष्ट हो जाते थे, उनकी वाणी के प्रभाव से पतित भी पावन बनते थे। उनकी वाणी का प्रभाव सचमुच जादुई था, जोकि झोपडी से लेकर राजमहलो तक को अपनी ओर आकर्षित किए हुए था।

पूज्य गुरुदेव तो एक ऐसे महापुरुष थे कि यदि उन्हे पारसमणि की उपमा दी जाय तो भी गलत होगी। क्योंकि कहा है—

लोहे को सोना करे, वो पारस है कच्चा।
लोहे को पारस करे, वो पारस है सच्चा॥

पारस का स्पर्श पाकर लोहा सोना बनता है। पर पारस नही, लेकिन गुरुदेव तो एक सच्चे पारस-पुरुष थे। जिनके चरणस्पर्श मात्र मे ही पतित भी पावन बन जाता था एव दुखी, असहाय मनुष्य भी अपने को सर्वप्रकार से सुखी अनुभव करते थे। लोहे को सोना नहीं, पारस ही बना देते थे, अर्थात् उसे भी अपना ही रूप दे देते थे।

जैन दिवाकरजी ने अपना ही रूप औरों को भी दिया—आज प्रत्यक्ष देख रहे है—जैन दिवाकरजी की प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले, उनकी आन, मान और शान को कायम रखने वाले ज्ञान दिवाकर, प्रवचनकेशरी, कविकुलभूषण पण्डितरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज हैं, जोकि भारत के विभिन्न प्रान्तो मे भ्रमण करके जन-जीवन मे धर्मदीप प्रज्वलित कर रहे है। आपकी प्रेरणा से समाज के कई रचनात्मक कार्य प्रगति-पथ पर हैं। आप श्रद्धेय गुरुदेव की ख्याति मे अभिवृद्धि करते हुए चार-चाद लगा रहे हैं।

अन्त मे मैं हृदय की असीम आस्था के साथ विश्व-वन्दनीय जैन दिवाकरजी को शतश प्रणाम करती हुई चन्द पक्तियाँ लिखकर विराम लेती हूँ—

जयन्तियाँ उन्हीं की मनाते हैं, जिन्हें जय हार मिला है।
गद्दी पर उन्हीं को बिठाते हैं, जिन्हें अधिकार मिला है॥
जीवन के सफर मे न जाने कितने मिले और बिछुडे—
याद उन्हीं की करते हैं, जिनसे कुछ प्यार मिला है॥





शतश : प्रणाम !

डॉ० शोभनाथ पाठक
एम ए. (हिन्दी-संस्कृत), पी एच. डी. साहित्यरत्न (मेघनगर)



जै—सा नाम दिवाकर वैसी दीव्य ज्योति अभिराम।
न—ही तुला पर कोइ गुरुतर, शतश वार प्रणाम ॥
दि—या जगत को ज्ञान-धर्म, थाती अनुपम न्यारी।
वा—तावरण सुवासित करती, मुनिवर कृपा तुम्हारी ॥
क—रते हम गुणगान, गौरवान्वित जिससे ससार।
र—म्य रूप तप से है निखरा, सवको मिला सवार ॥
श्री—मुख से ज्ञानोदधि उमडा, जन-जन हित की वाणी।
चौ—रासी योनी वन्धन से, मुक्त हुए कई प्राणी ॥
थ—मा, पाप-अन्याय, अहिंसा-अपरिग्रह उफनाएँ।
म—हा पुरुष के प्रति, श्रद्धा सागर उर मे नही समाए ॥
ल—क्ष्य जगत-कल्याण, धरा पर धर्म, कर्म उपकारी।
जी—वन भर युगवोध, वन्दना हो स्वीकार हमारी ॥
म—नुज मनुजता को परखे, ससार सवरता जाये।
हा—हाकार शमन हो जाए, आकुल हृदय जुड़ावे ॥
रा—ग-द्वेष, उन्माद-विषमता, कर वाणी से भागे।
ज—प-तप-योग-साधनाओ से, भाग्य हमारे जागे ॥
सा—नन्दित श्रद्धाञ्जलि अर्पित, करो इसे स्वीकार।
ह—म विनयानत वन्दन करते, सवका हो उद्धार ॥
व—नी समन्वयमयी साधना, सुखी वने ससार।





धण्णो य सो दिवायरो

☆ श्री उमेश मुनि 'अणु'

धण्णा नीमचभूमी सा,
धण्ण त उत्तम कुल।
धण्णो, कालोय सो जंमि,
जाओ मुणी दिवायरो ॥१॥

केसर – जणणी वीरा,
जाए स–प्पिय-णदणो।
ठाविओ मोक्ख–मग्गमि,
चोथमल्लो मुणी वरो ॥२॥

जिण – सासण – मगणे,
हुकुम - गच्छ - पगणे।
उग्गओ हारओ जड्ड,
भत्त - कुल - दिवायरो ॥३॥

मजुला सरला वाणी,
जण - मण - विआसगा।
जस्साहिणदणिज्जा ऽऽसी,
धण्णोय सो दिवायरो ॥४॥

जण - भासाइ सत्तत्त,
गीय हिअय - हारिय।
कल्लाण - पेरग जेण,
धण्णो य सो दिवायरो ॥५॥

सासण - रसिआ जेण,
कारिआ वहुणो जणा।
जणाण वल्लहो खाओ,
धण्णो य सो दिवायरो ॥६॥

पयावइव्व पत्ताइ,
धीरो सीसे घडीअ जो।
पहावगो सुधम्मस्स,
धण्णो य सो दिवायरो ॥७॥

कया कया सुकालम्मि,
णिप्फज्जइ जणप्पिओ।
वाणी-पहू जई सेट्ठो,
साहू धम्म - धुरन्धरो ॥८॥

वरिसाण सय एय,
जम्मस्स जस्स मगल।
कल्लाण सरण तस्स,
चेइअ - अणुणा कय ॥९॥

नयनों के तारे

☆ श्री मूलमुनि जी

जैन जगत के पावन सत महान् थे।
जन-जन के प्यारे थे, नयनो के तारे थे ॥
गगाराम तात थे, केशरवाई मात के—
कुल उजियारे थे, नयनो के तारे थे ॥१॥
तज जग के जजाल वे, गुरुवर हीरालाल से
महाव्रत धारे थे, नयनो के तारे थे ॥२॥
सव शास्त्रो का सार ले, वनकर गुण भडार वे,
अघ हरनारे थे, नयनो के तारे थे ॥३॥
'मूल' दया की खान थे, प्रेम के वरदान थे।
कष्ट निवारे थे, नयनो के तारे थे ॥४॥

☆



श्रद्धा के सुमन

☆ श्री दिनेश मुनि

परमादरणीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। यह आल्हाद का विषय है। दिवाकरजी महाराज स्थानकवासी समाज के एक वरिष्ठ सन्तरत्न थे। यद्यपि मैंने उनके दर्शन नही किये हैं, पर श्रद्धेय सद्‌गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज एव साहित्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनिजी से उनके सम्बन्ध मे सुना है और दिवाकरजी महाराज के सम्बन्ध मे प्रकाशित पुस्तकें पढी हैं। इसके आधार से मैं यह निस्संकोच लिख सकता हूँ कि वे एक वरिष्ठ सन्त थे। वे सच्चे दिवाकर थे। उनका प्रभाव राजा से लेकर रक तक, हिन्दू से लेकर मुसलमान तक, साक्षर से लेकर निरक्षर तक समान रूप से था। उनके सत्संग को पाकर अनेक व्यक्तियो के चरित्र मे निखार आया। अनेको ने हिंसा और दुर्व्यसन जैसे जघन्य कृत्यो का परित्याग कर एक आदर्श-जीवन जीने की प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की। अनेको ने मानवता का भव्य रूप जन-समस्त के समक्ष प्रस्तुत किया कि जिन्हे लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे वे भी पवित्र जीवन जीकर सच्चे मानव बन गए।

आज भी जन-मन के सिंहासन पर जैन दिवाकरजी महाराज आसीन है। लोग उन्हें श्रद्धा से स्मरण करते हैं। उन्होने जिनशासन की अत्यधिक प्रभावना की। ऐसे महान् प्रभावक महापुरुष के श्रीचरणो मे मैं श्रद्धा के सुमन समर्पित करता हूँ।





(१)

आपदाओ मे कभी ना डगमगाये।
साधना सयम के तुमने गान गाये।
गगन मे चमका "दिवाकर" जब।
धरा ने वन्दना के गीत गाये॥

(२)

जिन्दगी के जहर को अमृत बनाकर तुम पी गये हो।
शूल मे भी फूल जैसे मुस्कुराकर तुम गये हो।
मौत बेचारी तुम्हे क्या छू सकेगी।
लाखो दिलो मे प्यार बनकर बस गये हो॥



चंदनमल 'चांद'
प्रधान मन्त्री—
भारत जैन महा-
मण्डल, बम्बई।
सम्पादक—
'जैन जगत'

(३)

एकता और प्यार का पैगाम लाये।
धर्म के व्यवहार से जन-मन पे छाये।
साम्य, समता, सौम्य के आदर्श तुम।
युग-युगो तक कैसे कोई भूल पाये॥



बहुमुखी प्रतिभा के धनी

☆ महासती श्री पुष्पावती, 'साहित्यरत्न'

जैन दिवाकर श्रीचौथमलजी महाराज बहुमुखी प्रतिभा के धनी, प्रसिद्धवक्ता, विचारक, सन्त-रत्न थे। मैंने सर्वप्रथम उनके दर्शन उदयपुर मे किये और उनके प्रवचन भी सुने। उनके प्रवचनो की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वे गम्भीर से गम्भीर विषय को इस तरह सरस शैली मे प्रस्तुत करते थे कि श्रोता उस गम्भीर विषय को सहज ही हृदयगम कर लेता। उनके प्रवचनो मे जैन आगम के रहस्यो के साथ वैदिक-परम्परा के ग्रन्थो के सुभाषित, सूक्तियाँ, उक्तियाँ और उर्दू की शायरी तथा सगीत का ऐसा मधुर समन्वय होता था कि श्रोता कभी ऊबता नही, थकता नही था। कभी-कभी वे जैन लोक-कथाएँ, बौद्ध-कथाएँ, भी प्रस्तुत करते। उसमे सामाजिक रूढियो पर, लोक धारणाओ पर करारे व्यग्य होते जो तीर की तरह हृदय को भेदते। कभी वीर-रस की गगा प्रवाहित होती तो कभी हास्यरस की यमुना बहने लगती और कभी शान्तरस की सरस्वती का प्रवाह प्रवाहित होता। वे वस्तुत वाणी के जादूगर थे। उनके प्रवचनो मे हिन्दू और मुसलमान, ईसाई, पारसी, सभी भेद-भाव को भूलकर उपस्थित होते और प्रवचन को सुनकर उनके हृदय के तार झनझनाने लगते। वे कहने लगते कि हमने जैन दिवाकरजी महाराज की जैसी प्रशसा सुनी थी उससे भी अधिक उनका तेजस्वी व्यक्तित्व है। ये जैन साधु हैं, पर उनके प्रवचनो मे मानवता की बातें हैं, कोई भी साम्प्रदायिक विचार-चर्चा नही है। सरिता की सरस-धारा की तरह उनकी वाणी का प्रवाह चलता रहता है अपने लक्ष्य की ओर। मैंने अनेक बार उदयपुर वर्षावास मे उनके प्रवचन सुने। मैं स्वय भी उनसे बहुत प्रभावित हुई। जैन दिवाकरजी महाराज की दूसरी विशेषता मैंने देखी कि वे एक ऊँचे साधक थे। नवकार महामत्र के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। वे जीवन के कल्याण के लिए, विचारों की निर्मलता के लिए, हृदय की शुद्धि के लिए उसका जप आवश्यक मानते थे। एक दिन वार्तालाप के प्रसग मे उन्होंने मुझे बताया—कि नवकार मन्त्र का जाप सविधि किया जाय तो उसके जप का अपूर्व आनन्द आ सकता है। जप एक साँस मे करना चाहिए। जप करते समय केवल एक पद को लेना चाहिए, साथ ही उस पद के रग का भी चिन्तन करना चाहिए। जैसे **"नमो अरिहंताण"** इस पद को लें। इस पद का वर्ण है श्वेत। इस पद का स्थान मस्तिष्क है जिसे योगशास्त्र मे सहस्रार चक्र कहा है। उस समय श्वास की स्थिति अन्तर्कुम्भक होनी चाहिए। इसी तरह **"नमो सिद्धाण"** पद को लेकर भी जाप किया जाय। सिद्धो का रग लाल बताया गया है, ध्यान करते समय लाल रग चिन्तन रूप मे रहना चाहिए। जाप करते समय ललाट के मध्य भाग में ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। जिसे आज्ञा चक्र कहते हैं। सभी पद के ध्यान करते समय अन्तर्कुम्भक की स्थिति होनी चाहिए। **"नमो आयरियाण"** पद का जप करते समय उसके पीले रग की कल्पना करनी चाहिए उसका स्थान गला है जिसे विशुद्धि चक्र कहते हैं। हमारे आवेगो को यह स्थान नियन्त्रित करता है। **"नमो उवज्झायाण"** इस पद का रग नीला है, इसका स्थान हृदयकमल है। इसे मणिपूर चक्र कहते हैं। **"नमो लोए सव्व साहूण"** इस पद का रग कृष्ण है और इसका स्थान नाभि है। इस प्रकार एक-एक पद को लेकर जप करने से मन चचल नही होता तथा ध्यान और जप का विशिष्ट आनन्द आता है।" मुझे अनुभव हुआ कि जैन दिवाकरजी महाराज इस सम्बन्ध के अच्छे ज्ञाता हैं।

मैं अपनी सद्गुरुणीजी विदुषी महासती श्री सोहनकुवरजी महाराज के साथ अनेक बार



वर्षावास मे आपश्री के दर्शन करने गयी। खाली गयी और ज्ञान की झोली भरकर लाई वे समन्वय के सजग प्रहरी थे। जैन समाज मे एकता हो यह उनकी तमन्ना थी। यही कारण है कि उन्होंने सर्वप्रथम पहल की और ब्यावर मे पांच सम्प्रदायो का एक सगठन बना, पर उस समय पांचो सम्प्रदायो मे सबसे अधिक तेजस्वी व्यक्तित्व आपश्री का ही था, पर आपश्री ने कोई भी पद या अधिकार न लेकर और दूसरो को अधिकार देकर निस्पृहता का जो ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया वह अपूर्व कहा जा सकता है।

मैं उस स्वर्गीय महापुरुष के चरणो मे अपने श्रद्धा के सुमन समर्पित करती हुई गौरव का अनुभव करती हूँ।



जिनके पद में...

—कवि श्री अशोक मुनि

●

जिनके पद मे बीता मेरा प्यारा बचपन।
जिनके पद मे प्राप्त हुआ महाव्रतो का धन ॥
जिनके पद मे प्राप्त हुई थी विद्या रेखा।
जिनके पद मे मैंने नूतन जीवन देखा ॥
जिनके पद सरसिज पर, मुग्ध बना दिन रैन।
वे सुरभित पद कहाँ गये, खोजें प्यासे नैन ॥

जिनके पद मे होता था, सज्जन सम्मिलन।
जिनके पद मे चमका था कइयो का जीवन ॥
जिनके पद मे होता नव सामाजिक सर्जन।
जिनके पद मे होता था नूतन आकर्षण ॥
जिनके पद मे जन कई, कहलाते थे धन्य।
आज वे ही पद तज हमे, चले गये कही अन्य ॥

जिनके पद रज से, कइयो ने कष्ट मिटाया।
जिनके पद रज से, कइयो ने जीवन पाया ॥
जिनके पद रज से, कइयो ने अघमल खोया।
जिनके पद रज से, कइयो ने अन्तर धोया ॥
तीर्थराज उन पदो पर, भक्तो की थी भीड।
"अशोक मुनि" उन पद बिना नैना बरसे नीर ॥

✡



एक क्रान्तदर्शी युगपुरुष

—राजेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के मैंने दर्शन नही किये। उनके स्वर्गवास के चार वर्ष पश्चात् मेरा जन्म हुआ। काश, यदि उस महापुरुष के दर्शन का सौभाग्य मुझे भी मिलता तो कितना अच्छा होता। वे लोग धन्य हैं जिन्होंने उस महापुरुष के दर्शन किये हैं, उनके प्रवचन सुने हैं, उनकी सेवा का लाभ लिया। मैंने श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थानकेसरी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज साहब तथा साहित्य मनीषी श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज मे उनके सम्बन्ध मे सुना कि जैन दिवाकरजी महाराज एक बहुत ही तेजस्वी क्रातदर्शी युगपुरुष थे। उन्होंने अपने दिव्य प्रभाव से, साधना से, अत्यधिक धर्म की प्रभावना की। ऐसे पुरुष वर्षों के पश्चात् होते है। जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व इतना निखरा हुआ होता है कि वे जन-मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपने सदाचरण से एक ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं जिससे भूले-भटके जीवन-राही सही मार्ग पर चलने लगते हैं। उनकी वाणी मे ऐसा अद्भुत तेज होता है कि उसके प्रभाव से जनता दुर्व्यसनो का सहज ही परित्याग कर देती है और ऐसा पवित्र जीवन जीने लगती है कि जिसे देखकर सहज ही आश्चर्य होता है।

मैंने सुना और पढा है कि श्री दिवाकरजी महाराज के सम्पर्क को पाकर पतित से पतित व्यक्ति भी पावन बन गया, हिंसक व्यक्तियो ने हिंसा का परित्याग कर दिया और वे अहिंसक जीवन जीने लगे। शराबियो ने शराब पीना छोड दिया, वेश्याओ ने अपना अनैतिक व्यापार बन्द कर दिया तथा ठाकुर, राजा और महाराजाओ ने शिकार आदि खेलना बन्द कर दिया। यह थी उनकी वाणी की अद्भुत शक्ति। आज भी राजस्थान और मध्य प्रदेश के किसी भी ग्राम मे चले जायें तो वहाँ पर आपको सहज रूप से लोगो के मानस मे जैन दिवाकरजी के प्रति जो गहरी निष्ठा है वह सुनने को मिलेगी। काल का प्रवाह भी उनकी स्मृतियो को धुंधली नही कर सका है।

मुझे अपार प्रसन्नता है कि स्मृति-ग्रन्थ के माध्यम से मुझे भी उस सन्तरत्न के चरणो मे अपने श्रद्धा के सुमन समर्पित करने का पवित्र प्रसग प्राप्त हुआ है। मैं अपनी अनन्त श्रद्धा उनके चरणो मे समर्पित करता हूँ।

☆

महायोगी को वंदन !

—श्री टेकचन्दजी महाराज, (चण्डीगढ़)

श्री चौथमलजी महाराज उस राजतन्त्र के युग मे पैदा हुए जो पर्दानशीनी और घुटन का युग था। रजवाड़ा शक्ति का बोलबाला था। उस वक्त शाही महलो मे, राजभवनो मे परिन्दा भी पर नहीं मार सकता था। यही श्रीचौथमलजी महाराज का पुण्य प्रभाव था जो गुजरात मे पालमपुर के नवाब, मेवाड मे उदयपुर नरेश महाराणा फतहसिंह के राजभवन मे प्रवेश किया और विलासो में डूबे राजा-रानियो को भगवान महावीर की वाणी का सन्देश सुनाया। उन्होने गरीबो की झोपडियों से लेकर राजमहलो तक अहिंसा की ज्योति फैलायी। उस महान् योगी महापुरुष के चरणो मे कोटि-कोटि वदन !

☆



जैन-दिवाकर ज्योति

☆ मुनि श्री कीर्तिचन्द्रजी 'यश' (शक्ति नगर, दिल्ली)

(१)

आप एक चमकते मोती थे,
आप एक जगमगाती ज्योति थे।
आप एक महकते हुए गुलशन थे,
आप एक जलती हिंसा को चुनौती थे ॥

(२)

तेज आँखो मे, मुँह पे लाली थी,
शान्त मुद्रा, जवाँ रसीली थी।
क्या-क्या वतलाऊँ आपकी सिफ्तें,
आपकी हर अदा निराली थी ॥

(३)

सच्चे साधक थे, सत्यरक्षी थे,
सत्य वक्ता थे, आत्मलक्षी थे।
सीधा-सादा सा, सच्चा जीवन था,
आप मुनिराज ! शुक्लपक्षी थे ॥

(४)

जिनवाणी के आप अध्येता थे,
अनेक ग्रन्थो के आप प्रणेता थे।
सन्त निस्पृह थे, सच्चे साधु थे,
आप सच्चे समाज नेता थे ॥

(५)

तूने अन्धो को रोशनी वख्शी,
तूने दुनिया को ताजगी वख्शी।
तेरे फैजो-कदम के क्या कहने !
तूने मुर्दों को जिन्दगी वख्शी ॥

(६)

जगद्वल्लभ थे, सबके प्यारे थे,
सन्त-सतियो के तुम सहारे थे।
राजमहलो से झोपडी तक मे,
हमने चर्चे सुने तुम्हारे थे ॥

(७)

जैन दिवाकर, चौथमल मुनि,
आत्म-तेज की ज्योति चिरन्तन।
पुण्यमयी इस जन्म-शती पर,
स्वीकृत कर लीजे अभिनन्दन ॥

☆



जैन दिवाकर : जग दिवाकर

✡ रतन मुनि
(मेवाड भूषण श्री प्रतापमलजी महाराज के सुशिष्य)

जैनधर्म के प्रसिद्ध तथा सफल सिद्धान्तो पर चलकर जिन महामुनियो ने अपना उत्थान किया। जिनके उद्बोधन से सैकडो-हजारो बल्कि लाखो प्राणियो के जीवन मे परिवर्तन आया। जन-जन मे जिनके सयम की सौरभ सदा सुवासित रही, उन्ही महान् सन्तो मे से एक शताब्दि पूर्व जन्म लेने वाले हमारे स्वर्गीय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज हुए हैं।

साधना के क्षेत्र मे जिनकी आत्म-चेतना काफी सबल और सक्रिय तथा गतिशील थी। आज भी जिनके विमल विशुद्ध व्यक्तित्व की मनोहर झाकी जन-जन के हृदय मे छाई हुई है।

आप एक सफल चरित्रकार भी हुए थे। कई भव्य सुन्दर, सरस, सारगर्भित तथा वैराग्य-रस से ओत-प्रोत चरित्र आपने बनाये हैं।

आपके प्रवचनो मे उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कुरान-शरीफ, धम्मपद, जैनागम तथा धर्म-सम्मत नीतियो का बडा ही सुन्दर विवेचन-युक्त ज्ञान का सागर लहराता था। यही कारण रहा है कि आपके उपदेशो को सुनने के लिए जैन ही नही ३६ ही कौम लालायित रहती थी।

आपकी वाणी का असर महलो से लेकर झोपडी तक, राजा से लेकर रक तक तथा सैकडो-हजारों राणा-महाराणा, जागीरदार, उमराव, इन्स्पेक्टर, एलकार, नवाब तथा अंग्रेजो पर पडा। जिन्होने आपके सन्देशो से प्रभावित होकर जीवन-भर के लिए मद्य-मास, शिकार, जूआ इत्यादि अनिष्ट व्यसनो के त्याग किये। ऐसी एक नहीं अनेक विशेषताएँ आपमे विद्यमान थी। जिसके कारण आप प्रसिद्ध वक्ता, जगत्वल्लभ तथा जैन के ही नही जन-जन-मानस के दिवाकर बन गये। हालाकि" ' मैंने आपके दर्शन तथा वाणी का लाभ नही लिया, फिर भी आपके इस दिव्य तेजस्वी प्रभाव ने मेरे अन्तर-हृदय को प्रभावित कर दिया।

आप एक सफल कवि, लेखक, सुवक्ता, चरित्रकार, सुगायक, सम्पादक, धर्मप्रचारक आदि इन सभी गुणो से भरे-पूरे थे।

जगत्वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर स्वर्गीय गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज के चरणो मे श्रद्धा के साथ चन्द भाव-शब्द-सुमन अर्पित करता हूँ।

✡

श्रद्धा सुमन

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज एक तेजस्वी समाज-सुधारक सन्त थे। उन्होने अपना समूचा जीवन मानव-कल्याण मे समर्पित कर दिया। उन्हें वस्तुत जैन सन्त नहीं, बल्कि एक राष्ट्रसन्त के रूप मे प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। मुनिश्री का हर पल राष्ट्र मे व्याप्त असमानता, अव्यवस्था, अन्धविश्वास एव अधार्मिक वातावरण को दूर करने मे लगा था। ऐसे महामानव के चरण-कमलो मे मैं अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाता हूँ।

—डॉ० भागचन्द्र जैन 'भास्कर'
—अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय



संत-परम्परा की एक अमूल्य निधि !

✡ मुनि श्री प्रदीपकुमार 'शशांक'

भारतीय जन-जीवन की पृष्ठभूमि के निर्माण मे ऋषियो, मनीषियो और मनस्वी चिन्तको का महान् योगदान रहा है। समय-समय पर सन्तो ने इस देश मे ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की त्रिवेणी मानव-हृदय मे प्रवाहित कर, जनमानस को आध्यात्मिक चेतना का अमूल्य अवसर प्रदान किया है। वैसे भी भारतवर्ष का लोक-जीवन सदैव धर्म एव संस्कृति से आवद्ध रहा है। जिसमे श्रमण सस्कृति का भी अद्वितीय योगदान रहा है।

श्रमण सस्कृति सदैव आचार प्रधान रही है। जिसके सरक्षक प्रायः जैन सन्त रहे हैं, जिनका मुख्य ध्येय मोक्ष और साधना धर्म है। भारतीय इतिहास के शौर्यपूर्ण अनेक स्वर्णिम-पृष्ठ महातपस्वी नर-रत्नो की गौरव-गाथाओ से भरे हुए हैं।

आध्यात्मिक योगी, स्वनामधन्य, जैन दिवाकर स्वर्गीय श्री चौथमलजी महाराज जैन जगत की सन्त-परम्परा के एक अमूल्य निधि के रूप मे श्रमण संघ को गौरव-प्रदाता एक महान् संत हुए है। निःसन्देह आपका भव्य-ललाट, ओजस्वी, तेजस्वी, यशस्वी, वचस्वी अनेकानेक सद्गुणो से ओत-प्रोत सत्य-सादगी की साकार मूर्ति रूप हुए। आपने जैन जगत् के दिव्य-भाल पर एक अनूठी आकर्षक व्यक्तित्व की अमिट छाप डाली। आपने अपने साधनाकाल मे स्व-पर-कल्याण की बहुमुखी विराट् भावना को लेकर जो ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किए। उन्हे शब्द-जाल मे बाँधना अशक्य है।

वस्तुत वे जैन समाज के महान् सन्तरत्न थे। अन्त मे मैं उनकी जन्म शताब्दी के पावन उपलक्ष्य के पावन प्रसग पर उनके अमूर्त, अपार्थिव व्यक्तित्व को यह श्रद्धा का सुमन अर्धविकसित रूप मे हार्दिक भावाजलि के स्वरूप मे समर्पित कर अपने आप को धन्य एव परम भाग्यशाली समझ रहा हूँ।

✡

श्रद्धा के दो सुमन

✡ संगीत प्रेमी, बाबा विजयमुनि

(गोरे गाँव, बम्बई)

पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भारत के एक महान् सन्त थे। एक सम्प्रदाय के गुरु होकर भी आपने सब सम्प्रदायो का प्रेम अर्जित किया इससे स्पष्ट होता है कि आप एक सम्प्रदाय मे रहकर भी साम्प्रदायिकता से ऊपर रहते थे।

आपकी संयम-साधना ने आपको जन-जन के आकर्षण का केन्द्र बना दिया। आपकी वाणी मे अलौकिक प्रभाव था। आपका जीवन, वाणी तथा चारित्र के प्रभाव का एक प्रकार से संगम-स्थल था।

आपने भगवान महावीर के अहिंसा धर्म का चहुँमुखी प्रचार कर, जैन शासन की जो अनुपम सेवा की है उसकी स्मृति लोक-मानस मे सदैव सुरक्षित रहेगी।

सोजत तथा जोधपुर मे मुझे आपके भव्य दर्शन करने का सौभाग्य मिला। आपके व्यक्तित्व ने मुझे अति प्रभावित किया।

आपका दर्शन मेरे जीवन-क्षेत्र मे दीक्षा के दृढ सकल्प का एक प्रकार से बीजांकुर बन गया। उस महान् मुनीश्वर के चरण-सरोजो मे मैं अपने श्रद्धा के सुमन अर्पण करके सन्तोष करता हूँ।



प्रेम की हिलोरें उठीं···

✤ उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्रजी महाराज

जब तक देह मे जीवन की ज्योति रही,
त्याग की प्रखर ज्योति जलती रही जगमग
अन्धकार आया नही वासना का पास कभी
दिवाकर घिरता है तम से कभी नही।
मूक पशुओ के प्रति
करुणा का झरना बहा
बस, ठौर-ठौर फूँका
दया का अमर शख
बलिदान बन्द हुए, मासाहार बन्द हुआ
विलासी राज-भवनो मे
दया-शून्य सदनो मे
गूँज उठा दया का
सब ओर सिंहनाद !
भूल कौन सकता है।
दया का प्रचार यह ?
जिधर भी निकल गये
जन-मानस मे
प्रेम की हिलोरें उठी,
श्रद्धा और भक्ति की।
राजा आए
ज्ञानी आए
मूढ आए
जो भी आए
सभी लोग
गद्-गद् हो गए
प्रेम मे विभोर हो !
सीधी-सादी भाषा थी
सीधा-सादा उपदेश
किन्तु क्या वह जादू था,
जो भी हृदय मे बैठ जाता था !
वाणी की मिठास
बस, मिसरी-सी घुली होगी,
जो भी सुन लेता
फिर भूल नही पाता था
बूढे, बाल, युवाजन
नर और नारी सब
मग्न ही बैठे रहते
झूम-झूम जाते थे !
सहस्र-सहस्र कण्ठ
जय-जय-जयकार करते
गगन और भूमि तब
गूँज-गूँज जाते थे।

परोपकारी जीवन

परमप्रसिद्ध जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज के स्वर्गवास के समाचार से देहली मे विराजमान जैनाचार्य पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज तथा उनके अनुयाइयो को परम दु ख हुआ। पूज्य जी ने उनके निधन को जैन समाज की एक महान् क्षति बताया। उन्होने आगे दिवगत आत्मा के पुनीत एव आदर्श-जीवन की चर्चा करते हुए कहा कि गृहस्थावस्था मे मैंने स्वत उनसे उनके पद सीखे थे। उनका व्यक्तिगत जीवन परोपकार मे रत रहा, उनके प्रभावशाली उपदेशो से जैन समाज का बडा कल्याण और जैनधर्म का व्यवस्थित प्रचार हुआ।

—स्व० आचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज

[स्वर्गवास के प्रसग पर प्राप्त पत्र से]



भावांजली

✡ रंगमुनिजी महाराज

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व एक सदावहार फूल भारत के उद्यान मे खिला था। जिसने झोपडी से लेकर राजमहल तक अहिंसा की खुशबू फैलाई थी। मद्य, मास, जूआ, शिकार आदि दुर्व्यसनो मे लिप्त मानव ससार को वीतराग वाणी का मधुर-मकरद-पान कराकर सन्मार्ग बताया तथा अज्ञानियो को सम्यक् पथ मे लगा जीवन उद्धार किया वह मानव ही नही महामानव था जिसका व्यक्तित्व विराट् था, जिसका जीवन गगा की धारा से भी महा पावन था। जिसका मनोवल मेरु-पर्वत-सा अचल एव अडोल था। जिसकी वाणी मे अमृत का अक्षय स्रोत प्रवाहित होता था। जिसकी दृष्टि मे राजा, सेठ, साहूकार, अमीर, गरीव सभी एक समान थे। जिनका तेज सूर्य-सा प्रकाशमान था। चन्द्र जैसी जीवन मे सौम्यता थी। वह जन-जन का हृदय दुलारा, सघ ऐक्यता का अग्रदूत, जगद्वल्लभ, जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पण्डित रत्न श्री चौथमलजी महाराज साहव के नाम से ख्याति प्राप्त राष्ट्र-सन्त था।

जिसने इठलाती युवावस्था मे सासारिक विषय-भोगो पर विजय प्राप्त कर, सच्ची शूरवीरता का परिचय दिया। हजारो मूक प्राणी, जो धर्म के नाम पर अज्ञानग्रस्त व्यक्तियो के द्वारा वलि चढाये जाते थे, उनकी करुण चित्कार-भरी वाणी को श्रवण कर आपने हजारो व्यक्तियो को ज्ञान-दान देकर हजारो प्राणियो के प्राण वचाये। वह अमरता एव अहिंसा का पुजारी था। निर्ग्रन्थ सस्कृति का सन्देशवाहक था। जैन समाज का उन्नायक था। एकता का प्रवल हिमायती था।

आप निरभिमानी, संगठन प्रेमी थे, क्षुद्र साम्प्रदायिक दायरे से वाहर थे। आपके विचार वहुत उन्नत थे। आपकी कथनी एव करणी मे तनिक भी अन्तर नही था। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपने कोटा के अन्तिम वर्षावास काल मे श्वेताम्बर, दिगम्बर, मुनि आचार्यों के साथ एक ही स्टेज पर आदर्श त्रिवेणी सगम कर दिखाया, साथ ही एक ही मच पर व्याख्यान दिया। यह आपकी महानता का द्योतक है।

आपका जीवन गागर मे सागर था। आपके शताब्दि वर्ष की मगलमय शुभ वेला मे आपके परमपावन चरण सरोजो मे मैं अपनी श्रद्धाजलि चढाकर अपना जीवन गौरवान्वित मानता हूँ! आपके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर मैं भी अपना जीवन धन्य बना सकूँ यही मगलमय शुभकामना करता हूँ। ✡

एक अद्भुत पुरुष

✡ प श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

श्री जैन दिवाकरजी महाराज का वियोग सारी जैन जाति के लिए एक ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति के लिए न जाने कितने युगो को प्रतीक्षा करनी पडेगी, फिर भी कौन जाने क्षति पूर्ति होगी भी या नही ?

बारहवी शताब्दी मे आचार्य श्री हेमचन्द्रजी हुए। उनके करीव चार सौ वर्ष वाद श्रीहीरविजय सूरि हुए और इतने ही समय के पश्चात् इस वीसवी शताब्दी मे जैन दिवाकरजी प्रगट हुए थे, जिन्होंने जैनधर्म की जैनेतर ससार मे वडी प्रभावना की। वे पुण्यशाली महात्मा थे। उनका सारा जीवन यशोमय रहा, मगर अपने अन्तिम समय मे तो वे अपने यश पर शानदार कलश चढा गये हैं। ✡





जीवन के सच्चे कलाकार

✡ श्री जिनेन्द्रमुनि 'काव्यतीर्थ'

महापुरुष की जन्म जयन्ति, आती लाती नव सन्देश।
दूज चाँद ज्यूँ बढे निरन्तर, देती पावन यह उपदेश ॥
भव्य भावना लिये भक्तगण, यश-गुण-गाथा गाते हैं।
ज्ञानी-मुनि-गुण गाने वाले, भव-सागर तर जाते है ॥
जैन दिवाकर जगवल्लभ श्री चौथमल जी हुए महान।
पुण्यवत गुणवत मुनीश्वर, जान रहा है सकल जहान ॥
कलाकार जीवन के सच्चे, काति-शाति के पुञ्ज परम।
ज्ञान-ध्यान की विविध विधा से, पावन जीवन उच्च नरम ॥
प्रवहमान गगा का निर्मल, नीर सभी का उपकारी।
प्रवचन की निर्मल धारा से, तरे अनेको ससारी ॥
मोह-मान से मस्त बने जो, उनको मार्ग दिखाते थे।
मुक्ति-महल पहुँचाने वाला, उत्तम श्रुत सिखलाते थे ॥
आत्म-ज्ञान के अनुपम साधक, चमके जैसे नभ मे चद।
भारतीय जन-जन के मन मे, बसे सुमन मे यथा सुगध ॥
राजा राणा रक सभी जन, चरणो मे पाते आनन्द।
वाणी भूषण, कुशल प्रवक्ता, सुनकर लेते गुणमकरन्द ॥
जन्म शती के पुण्य पलो मे, "मुनि जिनेन्द्र" गुण गाता है।
महापुरुष के चरणकमल मे, सविनय शीश झुकाता है ॥





✡ श्री सुभाषमुनि 'सुमन'

दिव्य दिवाकर जैन जगत के, ज्योतिर्धर थे सन्त महान्।
मानवता के स्वर सघायक, करते थे निज-पर कल्याण ॥
आये थे आलोक लिए वे, आलोकित जन को करने।
सत्य-अहिंसा-करुणा, मैत्री का पावन अमृत भरने ॥
दिव्य भव्य व्यक्तित्व सुहाना, जन-मन खूब लुभाया था।
गए जिधर भी उधर खूब ही, प्रेम पराग लुटाया था ॥
लोकनायक सन्तप्रवर थे, जग-वल्लभ जय-जय गुरुदेव।
जय-जय वाणी के जादूगर, जैन दिवाकर जय गुरुदेव ॥
उद्धारक थे पतित-जनो के, आश्रय-दाता थे गुरुदेव।
सब जीवो पर करुणा निर्झर, झर-झर बहता था नितमेव ॥
जग जीवो के प्रति मैत्री हो, यह सन्देश तुम्हारा प्यारा था।
विरल-विभूति विश्व प्रभाकर, सच्चा श्रेष्ठ सहारा था ॥
महक उठा था एक सुमन वह, आर्यावर्त की धरती पर।
कुसुमाकर सौरभ लुटा गया, स्वर्ग-लोक सी अवनी पर ॥
जय-जय जीवन प्यारे गुरुवर, जय-जय सुर-गण भी करते।
महायोगी युगश्रेष्ठ के, पाद-पद्म मे मस्तक धरते ॥
जय-जय गुरुवर चौथमलजी, जय समता गुण के धारी।
चरणो मे शत्-शत् वन्दन, स्वीकार करो हे! अवतारी ॥



प्रणाम, एक सूरज को

✡ डॉ० नेमीचन्द जैन
(सपादक—तीर्थंकर)

मुनि श्री चौथमलजी को श्रद्धाजलि अर्पित करना सचमुच एक बहुत कठिन कार्य है। वह इसलिए कि उनका सारा जीवन श्रमण-सस्कृति की उत्कृष्टताओ पर तिल-तिल न्योछावर था, वे उसके जीवन्त-ज्वलन्त प्रतिनिधि थे, उनका सारा जीवन उन लक्ष्यो की उपलब्धि पर समर्पित था जिनके लिए भगवान् महावीर ने बारह वर्षों तक दुर्द्धर तप किया, और जिन्हे सदियो तक जैनाचार्यों ने अपनी कथनी-करनी की निर्मलता द्वारा एक उदाहरणीय उज्ज्वलता के साथ प्रकट किया।

मुनिश्री असल मे व्यक्ति-क्रान्ति के महान् प्रवर्त्तक थे, उन्होने अहसास किया था कि समाज मे व्यक्ति के जीवन मे कई शिथिलताओ, दुर्बलताओ तथा विकृतियो ने द्वार खोल लिए हैं, और दुर्गन्धित नालियो द्वारा उसके जीवन मे कई अस्वच्छताएँ दाखिल हो गयी है, अत उन्होंने सबसे बडा एव महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि इन दरवाजो को मजबूती से बन्द कर दिया, तथा नैतिकता और धार्मिकता के असख्य उज्ज्वल रोशनदान वहाँ खोल दिये। इस तरह वे जहाँ भी गये, वहाँ उन्होने व्यक्ति को ऊँचा उठाने का काम किया। एक बड़ी बात जो मुनि श्री चौथमलजी के जीवन मे जुडी हुई है, वह यह कि उन्होंने जैनमात्र को पहले आदमी माना, और माना कि आदमी फिर वह किसी भी कौम का हो, आदमी है, और फिर आदमी होने के बाद जरूरी नही है कि वह जैन हो (जैन तो वह होगा ही) चूँकि उन्होंने इस बात का लगातार अनुभव किया कि जो नामधारी जैन हैं उनमे से बहुत सारे आदमी नही हैं।

क्योकि वे इस बात को बराबर महसूसते रहे कि भगवान् महावीर ने जाति और कुल आधार पर किसी आदमी को छोटा-बडा नही माना, उनकी तो एक ही कसौटी थी—कर्म, कर्मणा यदि कोई जैन है तो ही वे उसे जैन मानने को तैयार थे, जन्म से जैन और कर्म से दानव व्यक्ति को उन्होंने जैन मानने से इनकार किया। यह उनकी न केवल श्रमण-सस्कृति को वरन् सम्पूर्ण भारतीय सस्कृति को एक अपूर्व देन है, इसीलिए वे भील-भिलालो के पास गये, पिछडे और पतित लोगो को उन्होंने गले लगाया, उनके दु ख-दरद, हीर-पीर को जाना-समझा, उन्हें अपनी प्रीति-भरी आत्मीयता का पारस-स्पर्श दिया, और इस तरह एक नये आदमी को जन्मा। हो सकता है कई लोग जो गृहस्थ, या साधु हैं, उनके इस महान् कृतित्व को चमत्कार मानें, किन्तु मुनिश्री चौथमलजी का सबसे बडा चमत्कार एक ही था और वह यह कि उन्होंने अपने युग के उन बहुत से मनुष्यो को, जो पशु की बर्बर भूमिका मे जीने लगे थे, याद दिलाया कि वे पशु नही हैं, मनुष्य हैं, और उन्हे उसी शैली-सलीके से अपना जीवन जीना चाहिये।

मनुष्य को मनुष्य की भूमिका से स्खलित होने पर जो लोग उसे पुन मनुष्य की भूमिका मे वापस ले आते है, सन्त कहलाते हैं।

मुनिश्री केवल जैन मुनि नही थे, मनुजो मे महामनुज थे। वे त्याग और समर्पण के प्रतीक थे। निष्कामता और निश्छलता के प्रतीक थे। निर्लोभ और निर्वैर, अप्रमत्तता और साहस, निर्भीकता और अविचलता की जीती-जागती मूर्ति थे। क्या यह सच नहीं है कि ऐसा मनस्वी सन्त पुरुष हजारों-हजार वर्षों में कभी-कभार कोई एक होता है, और बड़े भाग्योदय से होता है।



मुनि यदि वह केवल मुनि है तो उसका ऐसा होना अपर्याप्त है, चूँकि मुनि समाज से अपना कायिक पोषण ग्रहण करता है, उसे अपनी साधना का साधन बनाता है अत उस पर समाज का जो ऋण हो जाता है, उसे लौटाना उसका अपना कर्त्तव्य हो जाता है, माना समाज इस तरह की कोई अपेक्षा नही करता (करना भी नही चाहिये), किन्तु जो वस्तुत मुनि होते हैं, वे समाज के सम्बन्ध मे चिन्तित रहते हैं और उसे अपने जीवन-काल मे कोई-न-कोई आध्यात्मिक-नैतिक खुराक देते रहते है, यह खुराक प्रवचनो के रूप मे प्रकट होती है।

मुनिश्री चौथमलजी एक वाग्मी सन्त थे, वाग्मी इस अर्थ मे कि वे जो-जैसा सोचते थे, उसे त्यो-तैसा अपनी करनी मे अक्षरश जीते थे। आज बकवासी सन्त असख्य अनगिन हैं, क्या हम इन्हें सन्त कहें ? वाने मे भले ही उन्हें वैसा कह लें, किन्तु चौथमल्ली कसौटी पर उन्हे सन्त कहना कठिन ही होगा। जिस कसौटी पर कसकर हम मुनिश्री चौथमलजी महाराज को एक शताब्दि-पुरुष या सन्त कहते हैं, वास्तव मे उस कसौटी की प्रखरता को बहुत कम ही सहन कर सकते है।

उन जैसा युग-पुरुष ही समाज की रगो मे नया और स्वस्थ लहू दे पाया, अन्यो के लिए वह डगर निष्कण्टक नही है, कारण बहुत स्पष्ट है, उनकी वाणी और उनके चारित्र मे एकरूपता थी, जो जीभ पर था, वही जीवन मे था, उसमे कही-कोई दुई नही थी, इसीलिए यदि हमे उस शताब्दि पुरुष को कोई श्रद्धाजलि अर्पित करनी है तो वह अजलि निर्मल-प्रामाणिक आचरण की ही हो सकती है, किसी शब्द या मुद्रित ग्रन्थ या पुस्तक की नही। उस मनीषी ने साहित्य तो सिरजा ही, एक सास्कृतिक सामन्जस्य स्थापित करने के प्रयत्न भी किये। इस प्रयत्न के निमित्त वे स्वय उदाहरण बने, क्योकि वे इस मरम को जानते थे कि जब तक आदमी स्वय उदाहरण नहीं बनता, तब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। अधिकाश लोग उदाहरण देते हैं, उदाहरण बन नही पाते, आज उदाहरण देने वाले लोग ही अधिक हैं, उदाहरण बनने वाले लोगो का अकाल पड गया है। लोग कथाएँ सुनाते हैं, और सभा मे हँसी की एक लहर एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ जाती है, बात आयी-गयी हो जाती है, किन्तु उससे न तो वक्ता कुछ बन पाता है, न श्रोता।

प्रसिद्धवक्ता मुनिश्री चौथमलजी वक्ता नही थे, चरित्र-सम्पदा के स्वामी थे, उनका चारित्र तेजोमय था, वे पहले अपनी करनी देखते थे, फिर कथनी जीते थे, वस्तुत सतो का सम्पूर्ण कृतित्व भी इसी मे है, इसलिए क्रान्ति के लिए जो साहस-शौर्य चाहिये वह उस शताब्दि-पुरुष मे जितना हमे दिखायी देता है, उतना उनके समकालीनो और उत्तरवर्तियो मे नही। यही कारण था कि वे एकता ला सके और एक ही मच पर कई-कई सम्प्रदायो के मुनिमनीषियो को उपस्थित कर सके, उनका यह अवदान न केवल उल्लेखनीय है वरन् मानव-जाति के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे अकित करने योग्य है। अग्न्यक्षरो मे उत्कीर्णित उनका वह पुरुषार्थ आज भी हमारे सन्मुख एक प्रकाश-स्तम्भ की भाँति वरदान का हाथ उठाये खडा है उस कवच-जैसा जो किसी भी संकट मे हमारी रक्षा कर सकता है। सब जानते हैं कि जब कोई आदमी महत्त्वाकाक्षाओ की कीच से निकल कर एक खुले आकाश मे आ खडा होता है, तब लगता है कि कोई युगान्तर स्थापित हुआ है, युग ने करवट ली है, कोई नया सूरज ऊगा है, कोई ऐसा कार्य हुआ है, जो न आज तक हुआ है, न होने वाला है, कोई नया आयाम मानव-विकास का, उत्थान का, प्रगति का खुला है, उद्घाटित हुआ है।



मुनिश्री चौथमलजी इसी तरह के महापुरुष थे, जो महत्त्वाकाक्षाओ के पंक मे से कमल खिलाना जानते थे। उसे किसी पर उलीचना नही जानते थे, वे चिन्तन के उन्मुक्त आकाश-तले अकस्मात् ही आ खडे हुए थे और उन्होंने अपनी वरदानी छाँव से अपने समकालीन समाज को उपकृत—अनुगृहीत किया था।

हमारी समझ मे शताब्दियो वाद कोई ऐसा सम्पूर्ण पुरुष क्षितिज पर आया जिसने राव-रक, अमीर-गरीव, किसान, मजदूर, विकसित-अविकसित, साक्षर-निरक्षर, सभी को प्रभावित किया, सवके प्रति एक अभूतपूर्व समभाव, ममभाव रखा, कोई कुछ देने आया तो उससे दुर्गुण माँगे, धन-वैभव नही माँगा, व्यसन माँगे, असन या सिंहासन नही माँगा, विपदा माँगी, सम्पदा नही माँगी, उन्हे ऐसे लोग अपना सर्वस्व अर्पित करने आये जिनके पास शाम का खाना तक नही था, और ऐसे लोग भी सव कुछ सौंपने आये जिनके पास आने वाली अपनी कई पीढियो के लिए भरण-पोषण था, किन्तु उन्होंने दोनो से, अहिसा माँगी, जीव दया-व्रत माँगा, सदाचरण का सकल्प माँगा, वहुमूल्य वस्त्र लौटा दिये, धन लौटा दिया, इसीलिए हम सतत्व की इस परिभाषा को भी सजीव देख सके कि सन्त को कुछ नही चाहिए, उसका पेट ही कितना होता है? और फिर वह भूखा रह सकता है, प्यासा रह सकता है, ठण्ड सह सकता है, लू झेल सकता है, मूसलाधार वृष्टि उसे सह्य है, किन्तु यह सह्य नही है कि आदमी आदमी का शोषण करे, आदमी आदमी का गला काटे, आदमी आदमी को धोखा दे, आदमी आदमी न रहे। उसका सारा जीवन आदमी को ऊपर और ऊपर, और ऊपर, उठाने मे प्रतिपल लगा रहता है। सतो का सवमे वडा लक्षण है उनका मानवीय होना, करुणामय होना, लोगो की उस जुवान को समझना जिसे हम दरद कहते हैं, व्यथा की भाषा कहते हैं। मुनिश्री चौथमलजी की विशेषता थी कि वे आदमी के ही नही प्राणिमात्र के व्यथा-क्षणो को समझते थे, उनका आदर करते थे, और उसे दूर करने का प्राणपण से प्रयास करते थे। आयें, व्यक्ति-क्रान्ति के अनस्त सूरज को प्रणाम करें, ताकि हमारे मन का, तन का और धन का आँगन किसी सास्कृतिक धूप की गरमाहट महसूस कर सके, और रोशनी ऐसी हमे मिल सके जो अवुझ है, वस्तुत. मुनिश्री चौथमल एक ऐसे सूर्योदय हैं, जो रोज-व-रोज केवल पूरव से नही सभी दिशाओ से उग सकते हैं।

✡

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

✡ प्रकाशचन्द जैन (लुधियाना)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की महानता व त्याग अनूठा था, सभी ने अपने को सजोया, सँवारा। उन्होने गरीव-अमीर के दु खो को देखा, परखा और उसके निराकरण का मार्ग वतलाया। एक शायर ने कहा है—

वे सन्त वने, वे महन्त वने
चढती हुई भरी जवानी मे।
वे शूर वने, वे वीर वने
जीवन के यकता थे, अपनी शानी मे॥

✡



सफल जीवन का रहस्य

✡ श्री रतन मुनि (चन्द्रपुर)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु—
ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

जन्म है वहाँ मृत्यु भी है, मृत्यु है वहाँ जन्म भी निश्चित है। चार अरब की मानवी दुनियाँ मे हजारो मनुष्य प्रतिदिन जन्म लेते हैं और हजारो ही मृत्यु के मुख मे प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन उनके जन्मने और मरने का कोई महत्त्व नही है। इन मनुष्यो मे विरल मनुष्य ऐसे भी महत्त्वपूर्ण अवतरित होते हैं, जिनका जन्मना लाखो प्राणियो के कल्याण के लिए और परम ध्येय की पूर्ति के लिए होता है। वे जीते हैं, लेकिन अपने लिए नही, परमार्थ की सिद्धि के लिए। उनके जीने मे एक निरालापन होता है। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण दीपक के समान तिल-तिल जल कर भी दुनियाँ में प्रकाश फैलाता है। ऐसे पुरुषो के लिए मृत्यु भी अमरता का वरदान बन जाती है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज —

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जीवन भी सफलता की एक कथा है। उनका देहावसान भी जीवन का विश्राम है। जीवन मे सफलता का अमृतपान किया और जन-मन मे अध्यात्म जागृति का शखनाद किया। जिसकी आज भी हजारो आदमियो मे गूँज मौजूद है। युगो-युग तक उनकी साधना की सफल जीवन-गाथाएँ गायी जाती रहेंगी।

१८ वर्ष की आयु मे ही वैराग्य का किरमिची रग चढना और भौतिक सुखो को अपनी ओर आकर्षित करने मे असफल पाना कम महत्त्व नही रखता। जिन चौथमलजी महाराज को पूर्ण यौवन मे नारी का मादक मोह बाँधने मे असमर्थ रहा और माता-बहनें-परिवार का वात्सल्य-भरा मधुर-प्रेम भी रोक न सका! उनकी गुणगरिमा का क्या व्याख्यान ?

उनके वैराग्य भाव को देखकर शास्त्रज्ञ महामुनि श्री हीरालालजी महाराज ने श्री चौथ-मलजी को दीक्षित किया तो सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सुमार्ग का बोध कराके जीवन को और प्रगाढ बना दिया।

गम्भीर व्यक्तित्व, प्रखर वक्तृत्व कला, निरहकारता, नि:स्पृहा और सहज-सरल स्वभाव, साम्प्रदायिक रूढियों से निर्लिप्त, समन्वयात्मक विवेचन शैली, अद्भुत काव्य शक्ति आदि विशेष-ताओ के धनी थे। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सदुपदेश ने समाज को अनेक रचनात्मक प्रवृत्तियो मे जोड दिया।

धर्म पर जो है फिदा, मरने से वो डरते नहीं।
लोग कहते मर गये, दरअसल वह मरते नही॥

✡



विराट् व्यक्तित्व के धनी

✡ साध्वी श्री कुसुमवती

श्रमण-परम्परा मे जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व बहुत विराट् व उर्ज्जस्वल था। लघुवय मे ही जब मैं साधना-पथ पर कदम बढाने की तैयारी मे थी। आपश्री के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त किया था। आपके ओजस्वी-तेजस्वी व्यक्तित्व से मैं अत्यधिक प्रभावित थी। यही कारण था कि मैं अपनी माँ से प्रवचन श्रवण हेतु बार-बार उन्हे आग्रहित करती व उन्हे साथ लेकर प्रवचन-स्थल पर पहुँच जाती थी। आपश्री की सुमधुर वाणी का अमृत-पान कर मैं अपने आप को धन्य मानती थी।

साध्वी पद स्वीकार करने के पश्चात् भी मुझे कई बार आपश्री के ज्ञानगर्भित एव मंगलमय प्रवचन सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। आपके प्रवचन मे मुझे इतना आनन्द आता था कि मैं यही सोचती रहती कि प्रवचन पीयूष-धारा निरन्तर चलती रहे तो अच्छा ! आपकी वाणी मे तेज था। जब आप सभा के बीच मे निर्भीक होकर बोलते उस समय ऐसा प्रतीत होता मानो सिंह की गर्जना ही हो रही है। झोपडी से लेकर महलो तक आपकी जादुई वाणी का प्रभाव था। प्रत्येक व्यक्ति के जुबान पर आपका नाम सुनाई पडता था।

मैने देखा, जब आप उदयपुर पधारते तो आपकी अगवानी करने हेतु महाराणा श्री फतेह-सिंहजी स्वय पधारते और उस दिन सारे नगर मे अमारिपटह उद्घोषित करवाते। "आज के दिन कही भी हिंसा नही होगी ! कत्लखाने बन्द रहेंगे !" यह था आपका प्रभाव।

आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व मे जैन समाज ही नही अपितु छोटे-छोटे ग्रामो की अबोध व अजैन जनता भी प्रभावित थी। आप जहाँ भी जाते वही एक मेला-सा लग जाता था। आपका ग्रामवासियो से बहुत प्रेम था। उनकी भावुकता से प्रभावित होकर कई दिनो तक आप ग्रामो मे ही रहते। आपका दृष्टिकोण था कि ग्रामवासियो के नीतिपरक अनाज से जीवन मे शुद्ध विचार रह सकते हैं और सयम-जीवन की आराधना-साधना भी सम्यक् प्रकार से हो सकती है।

आप मानवतावादी थे। किसी भी दु:खी प्राणी को देखकर आपका करुणाशील हृदय शीघ्र ही द्रवित हो उठता था। उनके दु:ख को दूर करने हेतु आप सदा तत्पर रहते। अपने जीवन मे हजारो मूक-प्राणियो को अभय-दान दिलवाया था। इस दृष्टि से आपको हम मानवता के महा-मसीहा भी कह सकते हैं।

ऐसे विराट् व्यक्तित्व के धनी महामहिम श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज के चरण-कमलो मे उनकी जन्म शताब्दी वर्ष मे पुण्य पलो में मैं हृदय की अनन्त आस्था के साथ श्रद्धा-कुसुम समर्पित करती हूँ।

✡



हे जन जागृति के दिव्य दूत!

—प्रो० श्रीचन्द्र जैन एम ए, एल एल बी (उज्जैन)

जय जय जय श्री जैन दिवाकर।
आगम-ज्ञान-कोश, गुण सागर ॥

हे तप. पूत ! हे अमर संत !
हे जन जागृति के दिव्य दूत !
हे संयम साधक ! जग प्रहरी !
हे सत्य सनातन ! विभु-विभूत !
तुम थे मानवता के प्रतीक।
तुम कल्पवृक्ष थे दीनो के।
तुम शरणागत के प्रतिपालक।
तुम ऋद्धि-सिद्धि थे हीनो के ॥
तुम भ्रमितो के विश्वास बने।
हे महत् मनस्वी जीवन के।
जग का उन्माद सदा हरते।
मुनिराज ! स्वयं सेवक बन के ॥
जग-वल्लभ ! प्रबल प्रबोधक थे।
हे पारस पुरुष ! पतित पावन।
हे सत्यान्वेषी ! संत प्रवर !
थे मनुहारो के सुख-सावन ॥
जय प्रसरणशील ! दया सागर।
अभिनन्दनीय ! नयनाभिराम।
हे ज्ञान ज्योति ! हे मधुविहान !
थे परिपोषक घनश्याम श्याम ॥
तुम खरे रहे खारे न बने।
ईमान बचाया जन-जन का।
तुम जिये सदा परहित मे ही।
तुम मे प्रतीक है कण-कण का ॥
हे महामहिम ! आराध्य देव।
थे वाणी-जादूगर अनूप।
थे वक्ता प्रखर प्रताप धनी।
जयदेव ! कर्मयोगी स्वरूप ॥

आलोक-पुंज ! मैत्री साधक।
थे सुरभित मंगलमय उदार।
थे ज्ञान-कर्म-भक्ती-संगम।
हे स्याद्वाद के कर्णधार !
जय-जय हे ज्ञान-गंग धारा।
जय जय जगती के ध्रुवतारा।
जय बोल रहा अम्बर सारा।
शोषक पापी तुमसे हारा ॥
तुम सिद्ध रूप के समुपासक।
निर्ग्रन्थ ग्रन्थ के निर्माता।
साहित्य-मनीषी सद्वाग्मी।
उद्वेलित जग के प्रिय त्राता ॥
तुम चन्दन थे बस इसीलिए।
तव पद-पंकज मे तन जिनके।
वे भाग्यवान् हो गए सतत।
ज्यो बोधिवृक्ष बनते तिनके ॥
युग पुरुष ! युगान्तर किया सदा।
चारित्र सम्पदा के स्वामी।
चिरजीवित हो इतिहासो में।
तुम तेजोमय थे निष्कामी ॥
हे पतितोद्धारक ! समभावी।
वरदानी थे लघु मनुजो के।
तुमने अपनाए दलितो को।
रक्षक बनकर इन तनुजो के ॥
आंधी तूफान डिगा न सके।
चट्टान चमेली बन महकी।
हे गौरवमयी ! विरत विघना।
सौ बार यहां श्यामा बहकी ॥

मृदुल मेघ गर्जन सी वाणी। वाग्मी इन्द्रधनुष सी कविता ॥
सत्य शिव सुन्दर प्रतिमा। तेरी आलोकित गति सविता ॥

☆



जैन दिवाकर दिव्य द्वादशी

☆ कविरत्न चन्दन मुनि, पजाबी

(१)

जिनके जप के तप के आगे
झुकता गया जमाना।
जैन दिवाकर चौथमल्ल की
मुश्किल महिमा गाना॥

(२)

जैन दिवाकर दया दिवाकर-
ही थे इक वह दुजे।
जिनके पावन चरण कमल को
प्रजा प्रेम से पूजे॥

(३)

नाम अमर है, काम अमर है
उनका जग के अन्दर।
निर्मल यश कीर्ति से उनकी
गुँजित धरती-अम्बर॥

(४)

ज्ञान-ध्यान का दया-दान का
शुभ सन्देश दिया था।
दुष्कर्मों से दानव थे जो
मानव उन्हे किया था॥

(५)

अपना या बेगाना है यह
भेद नही था मन मे।
राना-रक सभी थे सम ही
उनके मधु जीवन मे॥

(६)

सात्विक-आत्मिक उन्नति कारक
परिमित लेते भिक्षा।
श्रावक, श्रमण अनेक बनाये
दे करके हित शिक्षा॥

(७)

आतम-भेद खेदहर मिलता
मिलता पथ अविनाशी।
चातक-सी थी दुनियाँ उनकी
वचनामृत की प्यासी॥

(८)

शान्त, दान्त, निर्भ्रान्त बड़े थे
गहरे आगम - वेत्ता।
दुनिया को है दुर्लभ ऐसे
न्याय—नीति के नेता॥

(९)

सफल आप थे वक्ता, लेखक
सफल आप इक कवि थे।
जन-जन के जो मन को मोहे
सत्य छिमा की छवि थे॥

(१०)

जब तक रहे जगत के अन्दर
चन्द्र सूर्य से साजे।
उत्तम सयम पाल अन्त मे
जाकर स्वर्ग विराजे॥

(११)

जनम, निधन, दीक्षा तीनो को
सूरज वार सहाया।
बन तेजस्वी सूरज-से ही
दुनियां को दिखलाया॥

(१२)

पार अपार गुणो का उनके
"चन्दनमुनि" न पाता।
चारु-चरण में चार-पांच ये
श्रद्धा सुमन चढाता॥



सम्पूर्ण मानवता के दिवाकर

☆ मेवाडभूषण मुनि श्री प्रतापमलजी

'दिवाकर' शब्द सूर्य, का प्रतीक रहा है। फलस्वरूप विराट् विश्व के विस्तृत अचल मे व्याप्त अन्धकार की इति करके जो यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रकाश से परिपूर्ण हजार किरणो को बिखेरता है, उसे दिवाकर नाम से पुकारा जाता है।

दिवाकर की तरह अनेक शिष्यो से सुशोभित एक सन्त-शिरोमणि भी कुछ वर्षों पहले मालवा, मेवाड, मारवाड की पवित्र भूमि पर विचर रहे थे। जिनकी पीयूषवर्षी वाणी मे जादू, बोली मे एक अनोखा आकर्षण, चमकते चेहरे पर मधुर-मुस्कान, विशाल अक्षिकाएँ, सुलक्षणी भुजाएँ, गौर वर्ण एव मनमोहक गज-गति चाल जिनका बाह्य वैभव था।

जिनकी ज्ञान-ध्यान-साधना मे चुम्बकीय आकर्षण था, सहज मे हजारो नर-नारी उपदेशामृत का पानकर अपने आपको सौभाग्यशाली मानते थे। जिनके अहिंसामय उपदेशो का प्रभाव राजमहलो से लेकर एक टूटी-फूटी कुटिया तक एव राजा से रंक पर्यंत और साहूकार से चोर पर्यन्त व्याप्त था। जिन्होने सैकडो-हजारो मानवो को सच्ची मानवता का पाठ पढाया, भूले भटके राहगीरो को सही दिशा-दर्शन प्रदान किया, जन-जीवन मे जिन-धर्म का स्वर बुलद किया, छिन्न-भिन्न सामाजिक वातावरण मे स्नेह-सगठन का उद्घोष फूँका और जैन समाज मे नई स्फूर्ति, नई चेतना जागृत की। जिनके द्वारा स्थानकवासी जैन समाज को ही नही, अपितु अखिल जैन समाज को ज्ञान-प्रकाश, नूतन साहित्य एव प्रेममैत्री की प्रबल प्रेरणा प्रदान की है। वे थे एकता के सस्थापक जैन जगत् के वल्लभ स्व० जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज।

इस जन्म शताब्दी वर्ष समारोह के पुनीत क्षणो मे मैं भी अपनी ओर से उस महामनस्वी के चरणो मे श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ। ☆

दिवाकर—एक आधार

☆ निर्मलकुमार लोढ़ा (निम्बाहेडा)

एक मुसाफिर बीहड जगलो मे मार्ग भूलकर, थका-मादा, भूख से व्याकुल किसी सहायता की अपेक्षा से चला जा रहा है, अचानक मीलो दूर उस निर्जन वन मे एक टिमटिमाते दीपक की रोशनी उसमे स्फूर्ति का सचार कर देती है। वह अपनी सारी कठिनाइयो को भूलकर उस नवीन सहारे की तरफ तीव्रगती से अग्रसित होने लगता है। ठीक उसी प्रकार हमारे देश, समाज, धर्म और मानवता पर सकट के बादल मँडराते रहे हैं और रहते है। इन सकटो को दूर करने हेतु समय-समय पर कुछ ऐसी पवित्र आत्माएँ भी हमारे बीच उपस्थित होती रहती हैं, जो हमारा जीवन का मार्ग-दर्शन करती हैं। सौभाग्य से इन्ही महापुरुषो मे लोकनायक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज भी इस धरती पर अवतरित हुए और अपने दिव्य आलोक से जन-मानस के जीवन को नवीन दिशा प्रदान की। अन्धकार में भटकती हुई जनता को प्रकाश-पथ की ओर प्रस्फुटित किया।

जैन दिवाकरजी महाराज को जन्मे सौ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं, परन्तु उनकी स्मृतियाँ आज भी जन-मानस के मन-मस्तिष्क मे इतनी तरो-ताजा हैं कि मानो वह आज भी हमारे बीच प्रत्यक्ष विद्यमान हो। उन्होंने एकता के लिए जो पहल एव कदम समाज हेतु उठाये थे, वे सदैव चिरस्मरणीय रहेंगे। सामाजिक ऐक्यता-सर्वधर्मसमभाव की हार्दिक विशालता को कभी भुलाया नही जा सकता। ☆



शत-शत प्रणाम

—श्री उदयचन्दजी महाराज 'जैन सिद्धान्ताचार्य' (रतलाम)

श्री जैन दिवाकर जी के चरणो मे, शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
इस शुभ शताब्दी के अवसर पर, गुरुवर को मेरा प्रणाम शत-शत प्रणाम ॥

कलियुग के मोह मलिन तम मे, जनता जब भ्रात विमूढ रही।
तब दिव्य ज्योति का दे प्रकाश, कर दिया नये युग का विकाश ॥१॥

नीमच नगरी मे जन्म लिया, जननी थी केसर कीर्तिमती।
श्री गगाराम थे पुण्य जनक, परिवार हुआ सब धन्य-धन्य ॥२॥

जब पूर्व जन्म के पुण्य उदय, अष्टादश पापो का होता क्षय।
तब हीरालाल गुरुदेव मिले, दीक्षित होकर हो गये निहाल ॥३॥

जैनागमो का अध्ययन किया, शारदा माँ का सुप्रसाद मिला।
व्याख्यान दान उपदेश दिया, जग मे निज महिमा सुमन खिला ॥४॥

आध्यात्मवाद का कर प्रचार, सत् शिक्षा का करके प्रसार।
तब जैन ज्योति का कर विकास, निज नाम दिवाकर का प्रचार ॥५॥

राजा-महाराजा और रक, सब जनता को उपदेश दिया।
धर्म-परायण शिक्षा देकर, सबके हिय मे स्थान किया ॥६॥

जगह-जगह विचरण करके, निर्वेद मार्ग का कर प्रचार।
ससार ताप का शमन किया, अमृत का निर्झर बहा दिया ॥७॥

गुरुवर्य आपके चरणो मे, नत मस्तक हो रहे आज।
कर पुण्य 'उदय' सब पर भव के, कृत-कृत हुए सब धन्य आज ॥८॥

☆

अद्भुत योगी

—श्री मगन मुनि 'रसिक'

अद्भुत योगी जैन दिवाकर,
जगमग जग में चमके थे।
विरल विभूति जिनशासन मे,
प्यारे अनुपम दमके थे ॥

जन-जन के थे वल्लभकारी,
महा महिम गुण वारे थे।
हृदयस्पर्शी ज्ञान अनूठा,
श्रमण-श्रेष्ठ सितारे थे ॥

भारत के महिपालो को,
अहिंसा का पाठ पढाया था।
जो भूल गये थे मानवता,
सन्मार्ग उन्हे दिखलाया था ॥

गाँव-गाँव और नगर-नगर मे
उपदेशामृत बरसाया था।
शुष्क हो गया था जनमानस,
पल्लवित सरस बनाया था ॥

आज देश के सभी भक्त-गण, गीत तुम्हारे गाते हैं।
अनुनय विनय-श्रद्धा-भक्ति युत, करबद्ध शीश झुकाते हैं ॥



धर्म-ज्योति को नमन !

—श्री मिश्रीलालजी गगवाल, इन्दौर

परम श्रद्धेय मुनि श्री चौथमलजी महाराज की गणना इस युग के उन महान् सन्तो मे है, जिन्होंने पीडित मानवता के क्रन्दन को सुना, समझा और उसके निदान मे अपना जीवन अर्पित कर दिया। वे श्रमणधारा के तेजस्वी साधक थे। उनके उपचार के साधन भी अहिंसा-मूलक थे। उनका हृदय विशाल तथा कार्यक्षेत्र विस्तृत था। वे झोपडी से लेकर महलो तक पहुँचते थे। उनकी दृष्टि मे राजा-रक, धर्म-जाति का भेद नही था। सबको समताभाव से वीरवाणी का अमृत-पान कराकर हजारो लोगो को भेदभाव बिना सन्मार्ग पर लगाने का मानवीय कार्य जिस निर्भयता और दृढता से मुनिश्री ने किया, वह अलौकिक है। दुखियो, पीडितो, पतितो और शोषितो के वे सहज सखा थे। उनके कष्टो से द्रवित होते थे। ज्ञानदान द्वारा उनके दुखो को मिटाने का पुरुषार्थ करते थे।

पर-उपकार ही उनकी पूजा थी। जिसे वे सहज धर्म के रूप मे जीवन भर करते रहे। 'तुलसीदासजी' ने कहा है—

"पर उपकार वचन, मन, काया
सत सहज स्वभाव खगराया।
सत विपट सहिता गिर धरणी
पर हित हेत इनकी करनी॥'

मुनिश्री के जीवन मे सत का यह दिव्य चरित्र पग-पग पर भरा-पूरा नजर आता है। मुनिश्री जैन तत्त्वज्ञान के परम उपासक और साधक थे। प्रबल प्रवक्ता थे। उनकी ओजस्वी वाणी मे मानव-मन की विकृतियो को नष्ट करने की अद्भुत कला थी। अहिंसा, मैत्री, एकता और प्रेम का सन्देश घर-घर फैला कर उन्होने मानव-समाज और देश की अनुपम सेवा की। मनुष्यो मे शुद्ध जीवन जीने की निष्ठा का स्नेह, वात्सल्य से अखड दीपक जलाया। ऐसे निस्पृह तपस्वी साधु अध्यात्म-जगत् मे विरले ही होते हैं। मुनिश्री की प्रथम जन्म-शताब्दी भारत भर मे मनाई जा रही है इस रूप में हम उस महान सत को अपनी पूजा अर्पित कर रहे हैं। यह हमारा परम सौभाग्य है। शताब्दी के पावन-पुनीत अवसर पर मैं उस धर्म-ज्योति को अपनी आतरिक श्रद्धा अर्पित करता हूँ। उन्हें शत-शत नमन करता हूँ।

समर्पित व्यक्तित्व

—श्री सुगनमलजी भडारी, इन्दौर

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज अपने युग के महान् सन्त थे। जैन इतिहास मे आपका धर्म-प्रचारक के रूप मे अद्वितीय स्थान रहा है। चेहरे की प्रसन्न मुद्रा देखकर श्रोता का मत्रमुग्ध हो जाना आपके चरित्र की मुख्य विशेषता रही है। यही कारण था कि तात्कालीन राणा-महाराणा, राजा-महाराजा, एव समाज के अन्य वर्ग के लोगो पर आपके हितकारी वचनो का चमत्कारिक प्रभाव पडा। आपके सदुपदेश से बहुत से राजाओ और जागीरदारो ने अपने-अपने राज्यो मे हिंसा-निषेध की स्थायी आज्ञाएँ प्रसारित की। मुनिश्री का सम्पूर्ण जीवन प्राणिमात्र की रक्षा के पवित्र उद्देश्य के प्रति समर्पित था।



जगत्-वल्लभ मुनिश्री चौथमलजी का दृष्टिकोण सदैव व्यापक रहा है। उन्होंने राजा और रक मे भेदभाव न रखते हुए सभी श्रेणियो की जनता मे भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का समान रूप से प्रचार किया। मुनिश्री ने समाज मे घृणास्पद समझे जाने वाले मोची, चमार, कलाल, खटीक और वेश्याओ तक को अपना सदेश सुना कर उनके जीवन को ऊँचा उठाने की दिशा मे भगीरथ प्रयास किया। कितने ही हिंसक कृत्य करने वाले व्यक्तियो ने आपके उपदेशो मे प्रभावित होकर आजीवन हिसा का त्याग किया एव कई लोगो ने शराब, मास, गाजा, भाग तथा तम्बाकू नही सेवन करने की प्रतिज्ञाएँ की। इस प्रकार मुनिश्री ने अपने आपको धर्मोपदेश एव जीवदया के महान् कार्य मे लगा दिया।

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का शताब्दी-वर्ष हमारे जीवन का मगलमय प्रसग है। हमे चाहिये कि हम उनके आदेशो के अनुरूप मानव-जाति के कल्याणकारी दिशा मे रचनात्मक कदम उठा कर उस महापुरुष के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करें।

तेजस्वी पुण्यात्मा

—बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर

परमपूज्य जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने सौ वर्ष पूर्व भारत भूमि मे जन्म लेकर भगवान् महावीर के सदेश को जन-जन तक पहुँचाने का जो कार्य किया, वह सदैव स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा।

उन्होंने धर्म-प्रचार हेतु जिस क्षेत्र को चुना, उसे आज की भाषा में पिछड़ा हुआ क्षेत्र कहते हैं। भगवान् महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपनी दिव्य ज्योति द्वारा उस समय व्याप्त कथित उच्चवर्णीय वर्गों द्वारा समाज मे धर्म के नाम पर फैलाये जा रहे वितण्डावाद एवं हिंसा का मुकाबला निम्न से निम्न अर्थात् अन्तिम आदमी की झोपडी तक जाकर करने को प्रोत्साहित किया। राज्यवश मे जन्म लेकर जिस महामानव ने भेद-विज्ञान प्राप्त कर आत्म-शक्ति को जागृत किया, स्वय वीतरागी हुए व विश्व को विनाश से बचाया।

एक सौ वर्ष पूर्व जन्मे मुनिश्री चौथमलजी ने आदिवासियो के बीच जाकर उनसे मांस व शराब छुडवाई तथा उन्हे मनुष्य बनने की प्रेरणा दी। मुनिश्री के समक्ष राजा एव रक का कोई भेद नहीं था। वे निस्पृह भाव से, समान रूप से समताभाव धारण किये हुए राजाओ और रको को भगवान् का उपदेश देते थे। सरल, मनोहारी, ओजस्वी वाणी जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को छूती थी, उनके उपदेश की शैली हृदयस्पर्शी थी। स्वय त्याग कर दूसरो को प्रेरित कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह एव ब्रह्मचर्य व्रत को झोपडियो तक पहुँचाने वाले उस महान् तेजस्वी पुण्यात्मा का शताब्दी-महोत्सव मना कर हम स्वय अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलने को अग्रेषित हो रहे हैं।

पूज्य मुनिश्री के चरणो मे मेरा शत-शत वन्दन।

अहिंसा-धर्म के महान् प्रचारक

—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर स्वर्गीय मुनिश्री चौथमलजी महाराज श्वेताम्बर स्थानकवासी शाखा से सम्बद्ध, वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्घ मे एक महान् प्रभावक जैन सन्त हो गये हैं। सन् १८७७ ई० मे नीमच (मध्यप्रदेश) मे जन्मे और १८९५ ई० मे मात्र १७-१८ वर्ष की किशोर वय मे साधु-दीक्षा ग्रहण करने वाले इन महात्मा का ५५ वर्षीय सुदीर्घ मुनि-जीवन अहिंसा एव नैतिकता



का जन-जन मे प्रसार करने तथा जिनशासन की प्रभावना मे व्यतीत हुआ। उत्तर भारत, विशेषकर राजस्थान एव मध्यप्रदेश के प्राय प्रत्येक नगर व ग्राम मे पदातिक विहार करके उन्होंने निरन्तर लोकोपकार किया। उनकी दृष्टि उदार थी और वक्तृत्व शैली ओजपूर्ण, सरल-सुबोध एव प्रभावक होती थी, छोटे-बड़े, जैन-अजैन, सभी के हृदय को स्पर्श करती थी। यही कारण है कि उस सामती-युग मे राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि के अनेक राजा, ठिकानेदार, जागीरदार, मुसलमान नवाव, कई अंग्रेज उच्च अधिकारी तथा जैनेतर विशिष्ट व्यक्ति भी उनके व्यक्तित्व एव उपदेशो से प्रभावित हुए। छोटी जातियो—यथा मोची (जिनधर) जैसे लोगो मे से अनेको को मद्य-मास-त्याग की महाराज ने प्रतिज्ञा कराई।

मुनि श्री चौथमलजी के दीक्षाकाल के ५१ वर्ष पूरे होने पर अव से ३१ वर्ष पूर्व रतलाम की श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने 'श्री दिवाकर अभिनन्दनग्रन्थ' प्रकाशित किया था, जिसमे महाराज साहव से सम्वन्धित सामग्री भी वहुत कुछ थी। हमारा भी एक लेख 'राज्य का जैन आदर्श' उस ग्रन्थ मे प्रकाशित हुआ था। उसके तीन वर्ष पश्चात् ही, सन् १९५० ई० मे मुनिश्री का ७३ वर्ष की आयु मे निधन हो गया। उनके साधिक अर्धशताव्दीव्यापी महत्त्वपूर्ण कार्यकलापों को देखते हुए वह ग्रन्थ अपर्याप्त था। उनकी विविध साहित्यिक रचनाओ का भी समीक्षात्मक विस्तृत परिचय अपेक्षित था।

जिनधर्म की सार्वभौमिकता को जन-जन के हृदय पर अकित करने के सद्‌प्रयासी मुनिश्री चौथमलजी महाराज की पुण्य स्मृति मे इस शुभावसर पर मैं अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।



उच्चकोटि के व्याख्यानदाता

—सेठ अचलसिंह, आगरा भू० पू० एम० पी०

श्री चौथमलजी महाराज उस जमाने मे भारत के जैन समाज मे विख्यात साधुओ मे एक थे। आगरा समाज ने विनती करके आगरा मे चातुर्मास के वास्ते आमन्त्रित किया और आप यहाँ पधारे, आपका वडा स्वागत किया गया था। दिवाकरजी का वडा नाम था और वे वड़े अच्छे दर्जे के व्याख्यानदाता थे। आपका जीवन एकता, मैत्री, शान्ति, अहिंसा और वात्सल्य का अपूर्वशंखनाद था। आपके आगरा मे कई सार्वजनिक व्याख्यान हुए। उनका आगरा की जनता पर मुख्यतया सन्त वैष्णव-सम्प्रदाय के लोगो पर जो जैनधर्म के वारे मे भ्राति थी, वह दूर हो गयी और वडा प्रभाव पडा।

उस समय लाउडस्पीकर नही था। आपके प्रतिदिन के व्याख्यानो मे सैकडो आदमी जाते थे और सार्वजनिक व्याख्यानो मे हजारो श्रोता होते थे, आपकी आवाज इतनी वुलन्द थी कि हर व्यक्ति तक आसानी से पहुँच जाती थी। उस जमाने मे आगरा मे दिवाकरजी के व्याख्यानो की वडी सोहरत थी। आपके प्रभाव से अनेक लोग जैनधर्म के अनुयायी वने।

मुझे भी उस समय श्री दिवाकरजी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। ऐसे महान् आत्मा के चरणो में मेरा भक्तिभरा वन्दन!





चौमुखी व्यक्तित्व के धनी

—पारस जैन (सिकन्द्राबाद)

भगवान् महावीर २५००वी शताब्दी मे जैन एकता, समन्वय एव सम्प्रदायो मे परस्पर सद्‌भावना का सुन्दर वातावरण निर्माण हुआ। साम्प्रदायिक विद्वेष अब अतीत काल की बात हो गयी है। इसका श्रेय उन सन्तो व सामाजिक कार्यकर्ताओ को है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियो मे भी एकता का नाद गुंजाये रखा। ऐसे ही विरल सन्तो मे जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है।

उस समय एक सम्प्रदाय के साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधुओ के साथ मेल-मिलाप रखें, ऐसा वातावरण नहीं था। उस समय जैन दिवाकरजी ने दिगम्बर आचार्य श्री सूर्यसागरजी तथा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य श्री आनन्दसागरजी के साथ कई सम्मिलित कार्यक्रम किये। उस समय यह बडा ही कठिन साहस का कार्य था। इस प्रकार मुनिश्री के हाथो एकता का बीजारोपण हो गया, जो काल-प्रभाव के साथ आज एक सघन वटवृक्ष की तरह शान्ति व शीतलता की अनुभूति दे रहा है।

मुनिश्री चौमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। सरस्वती उनकी वाणी से प्रस्फुटित होती थी। मानवीय अहिंसा मे उनकी प्रगाढ आस्था थी। अठारह वर्ष की उम्र मे उन्होने मुनि-जीवन स्वीकार किया। ५५ वर्षों तक कठिन साधनामय जीवन बिताया। साधना-काल में जो उपलब्धियां होती रहीं, उन्हे वे निरन्तर मानवकल्याण के लिए उपयोग करते रहे। उन्हें अपने जीवन-काल मे ही अपरिमित प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी। उनका प्रभाव साधारणजन, श्रेष्ठिवर्ग तथा राज-परिवारो पर भी था। मेवाड के महाराणा, देवास नरेश तथा पालनपुर के नवाब आदि आपके परम भक्त थे।

मालवभूमि मे मुनिश्री के रूप मे विश्व को अद्‌भुत देन दी है। उनकी वाणी आज भी दिवाकर की तरह मानव-जीवन को प्रभावित करती है। ऐसी महान् आत्मा को भावभीनी श्रद्धा-जलि अर्पित करता हूँ।

पतितोद्धारक सन्त

—भूरेलाल बया, उदयपुर

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के सान्निध्य मे आने का मुझे जब भी सुयोग मिला, उनकी स्नेहसिक्त अनुग्रहपूर्ण दृष्टि रही और यह भी एक सयोग ही नहीं, जीवन की सुखद स्मृति रहेगी कि मुनिराजश्री के निधन से पूर्व कोटा मे जब दर्शन हुए, तो वे बहुत आह्लादपूर्ण थे। जैन मुनियो मे ऐसे प्रखर प्रवक्ता, पतितोद्धारक और व्यक्तित्व के धनी मुनिराजश्री का होना सारी जैन-परम्परा के लिए गौरव की बात है। उनकी चुम्बकीय वाणी भी कइयो के हृदय मे गूंजती है और अंधेरे क्षणो मे प्रकाश देती रहती है।

मैं इस महान् दिवगत मुनिराजश्री के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

शुभकामनाएँ और प्रणाम

—द्वारिकाप्रसाद पाटोदिया, उदयपुर

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज के स्मृतिग्रन्थ की सफलता के लिए श्रीमान् महाराणा साहब (उदयपुर) अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करते हैं तथा उपस्थित आचार्य, साधु एव साध्वियों की सेवा मे अपना प्रणाम निवेदन करते है।



दुखियारो के परमसखा

यह जानकर बडी खुशी हुई कि समन्वय के महान प्रेरक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्म-शताब्दी मना रहे हैं।

महाराजश्री का जीवन एकता, मैत्री, शान्ति और वत्सलता की विजय का अपूर्व शखनाद था। वे पतितो-दुखियारो के परमसखा थे। उनका जीवन पढ कर हमे मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। मैं हार्दिक सफलता चाहता हूँ। —प्रतापसिंह वैद, बम्बई (अध्यक्ष—'भारत जैन महामण्डल')

वात्सल्य के प्रतीक

दिल्ली मे मुनिश्री चौथमलजी महाराज के चातुर्मास हुए। उस समय उनके कई बार प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी वाणी द्वारा भगवान् महावीर के मुख्य-मुख्य आदर्श की व्याख्या सुनने को मिली। उनके व्याख्यान ओजस्वी और हृदयस्पर्शी होते थे। उनके प्रवचन खडन-कुतर्क आदि मे अछूते रहते थे। उन्होंने सदैव सामाजिक एकता और वात्सल्य को सुदृढ बनाने का प्रयास किया। वे लोकैषणा मे कोसों दूर थे। उन्होंने पद-प्रतिष्ठा आदि को महत्व नही दिया।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जीवन हमारे लिए प्रेरणा-स्रोत है। मैं अपने श्रद्धा सुमन उनके चरणो मे समर्पित करता हूँ। —भगतराम जैन, दिल्ली

जाज्वल्यमान नक्षत्र

पूज्य जैन दिवाकरजी अपनी पीढी के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उनका जीवन स्वय के लिए नही, मानवता के लिए उन्होंने जिया। जिन्होंने उन्हे देखा और उनका सान्निध्य प्राप्त किया, वे तो उनसे प्रेरणा प्राप्त करते ही हैं, परन्तु भावी पीढियाँ भी उस प्रेरणामृत का पान करके लाभान्वित हो, इस दृष्टि से आप का प्रकाशन सफल और यशस्वी हो। —सुन्दरलाल पटवा, मन्दसौर

एकता-संवेदना-करुणा की त्रिवेणी

जैन दिवाकर पूज्य मुनिश्री चौथमलजी के दर्शनो का सौभाग्य तो मुझे नही मिला, किन्तु उनके कार्यों की सुवास एव साहित्यसौरभ से आकर्षित अवश्य रहा हूँ। जैन एकता, मानवीय सवेदना और प्राणिमात्र के प्रति करुणा की त्रिवेणी उनके जीवन मे थी।

उस सन्तपुरुष के चरणो मे हार्दिक वन्दना करता हूँ। —चन्दनमल 'चाँद', बम्बई

लोकोपयोगी मार्ग-दर्शन

भारतीय संस्कृति मे सन्तो का बहुत बडा योगदान रहा है। उन्होने झोपडियो से महलो तक पहुँच कर लोगो की धार्मिक एव नैतिक जागृति की है। उन्ही सन्तो की शृखला मे जैन दिवाकर, प्रसिद्ध वक्ता पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भी हैं।

उनके दर्शन का मुझे लाभ नही मिला, किन्तु उनके कार्य और साहित्य आदि को पढने तथा सुनने से उनका व्यक्तित्व बहुत ही ऊँचा मालूम हुआ। जो परिवर्तन शासन तथा कानून से मनुष्य के अन्तरग मे नही हो सका, वह उन महान् सन्त के लोकोपयोगी मार्गदर्शन से हुआ।

वे एक महान् ओजस्वी वक्ता भी थे। उन्होने महाराष्ट्र की भूमि को पावन करके लोकोद्धारक उपदेश दिये, जिसके हम सब ऋणी हैं।

उन महान् पुण्यात्मा की जन्म-शताब्दी मनाने का निर्णय उचित और स्वागत योग्य है। उनके कार्य से लोगो की चारित्र्य शुद्धि हो और नैतिकता बढती रहे, यही मेरी शुभकामना है।

—चन्द्रभान रूपचन्द डाकले, श्रीरामपुर (अहमदनगर)



स्वर्गवास के अवसर पर व्यक्त, पर जो आज भी ताजी है—

कुछ श्रद्धांजलियाँ

(१)

श्री जैन दिवाकरजी के अवसान से गुरुकुल परिवार मे सन्नाटा-सा छा गया। मुझे वज्रपात-सा दुःख हुआ। सघ ऐक्य के युग मे यह असामयिक वियोग से स्थानकवासी जैन की ही नही, समस्त जैन समाज की अमिट क्षति हुई। ऐक्य साकल की कडी टूटी। दयाधर्म और उदार-भाव के अद्वितीय उपदेशक की जनसाधारण को खोट पड गयी। कुछ समझ मे नही आता, मगज अव्यवस्थित-सा हो रहा है। दिवगत महान् आत्मा की शान्तिकामना पूर्वक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

—धीरजलाल के० तुरखिया

(२)

जैन दिवाकर पण्डित मुनि श्री चौथमलजी महाराज के स्वर्गवास के समाचार जानकर गहरा शोक हुआ है। जैन दिवाकरजी की कमी से जैन समाज मे जो हानि हुई है उसकी पूर्ति निकट भविष्य मे नही हो सकेगी। सघ ऐक्य योजना के प्रति उनकी हार्दिक लगन और कान्फ्रेन्स के साथ उनका अपूर्व सहयोग प्रशसनीय था। कान्फ्रेन्स की 'संघ ऐक्य योजना' की प्रगति मे इनका बहुत बडा साथ था। उनकी वाणी मे ऐसा आकर्षण था कि आम जनता जैनेतर समाज भी उनकी तरफ बरबस आकर्षित हो जाता था। अहिंसा के प्रचार मे उनका जो हिस्सा रहा वह जैन समाज के इतिहास मे अमर रहेगा। कई राजा-महाराजाओ को उन्होंने अहिंसक बनाया था और मद्य-मासादि का त्याग कराया था। संघ ऐक्य के समय मे जैन दिवाकरजी के अवसान से कान्फ्रेन्स की गहरी क्षति हुई है। शासनदेव उनकी आत्मा को शान्ति दें और चतुर्विध सघ उनकी सघ ऐक्य की भावना पूर्ण करे यही कामना है।

—जैन प्रकाश

—खीमचन्द्र वोरा (बम्बई)

मानद मन्त्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेंस

(३)

जैन दिवाकर जी महाराज के निधन के दुःखद समाचार सुने, अत्यन्त दुःख हुआ जैन शासन मे एक चमकता सितारा अस्त हो गया, जिसकी पूर्ति अलभ्य है। हजारो लोग इस समाचार को दुःख से सुनेंगे, किन्तु परमात्मा महावीर के वचनानुसार बरदास्त के सिवा कोई चारा नही।

उस सौम्यमूर्ति ने अपने अन्तिम निकट समय मे त्रिदल सम्मेलन मे एक अग्रगण्य का कर्तव्य अदा कर जैन सघ पर स्मरणीय उपकार किया है।

—श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनाचार्य श्री आनन्दसागर सूरीजी महाराज, मंडाला (राजस्थान)

(४)

स्थानकवासी जैन साधुओ मे जो कतिपय प्रतिभाशाली मुनिराज हैं, उनमे से एक तेजस्वी प्रतिभाशाली और विद्वान् मुनिराज प्रसिद्ध वक्ता पं० मुनिश्री चौथमलजी महाराज का ता० १७-१२-५० को कोटा में अवसान हो जाने के समाचार देते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है। मुनिश्री के अवसान से चतुर्विध संघ को गहरी क्षति हुई है।



मुनिश्री की व्याख्या शैली बडी आकर्षक और प्रभावशाली थी। आपके व्याख्यान मे जैन-जैनेतर सभी वर्ग के श्रोतागण आते थे। अधिकारी वर्ग और राजा-महाराजा भी हाजिर होते थे।

आपके उपदेश से कई राजा-महाराजाओ ने शिकार खेलना और मांस खाना छोड दिया था। शराव पीना कइयो ने बन्द कर दिया था।

उनके प्रभावशाली प्रवचनो का ही यह परिणाम है कि आज कई जगह हिंसक प्रवृत्तियाँ बन्द कर दी गई है।

इन कार्यो मे भी उनका एक प्रशस्त-कार्य जोकि स्थानकवासी इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायगा 'सघ ऐक्य योजना' को वेग देने का है। स्थानकवासी समाज मे फैली हुई ३२ सम्प्रदायो को दूर कर एक आचार्य, एक समाचारी, एक श्रमणसघ और एक श्रावक सघ की जो योजना कान्फ्रेन्स ने बनाई थी, उसकी स्वीकृति के लिये माननीय श्री फिरोदियाजी के नेतृत्व मे एक डेप्युटेशन सर्वप्रथम जैन दिवाकरश्री चौथमलजी महाराज के पास गया था। तब आपने इस योजना पर अपनी स्वीकृति देकर इसे आगे वढाने के लिए क्रान्तिकारी कदम भी उठाया था। व्यावर मे जिन पाँच सम्प्रदायो ने अपनी शास्त्रोक्त पदवियो और सम्प्रदायो का त्याग कर वीर वर्धमान श्रमण सघ की स्थापना की और एकत्रित हुए उसमे जैन दिवाकरजी महाराज का अग्रगण्य भाग रहा है।

—चुन्नीलाल कामदार

श्रद्धा के सुमन

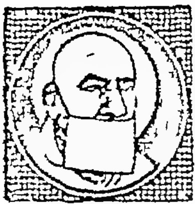
☆ मदन मुनि 'पथिक'

सामाजिक जीवनोत्थान की गरिमा मे परिपूर्ण मानवता का विकास ही उसकी चरम स्थिति है। जिस प्रकार किसी मजिल को प्राप्त करने के लिए सीढियो की आवश्यकता होती है उसीप्रकार मानवता की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करने के लिए एक सवल साधन की आवश्यकता है जो साधना विना मार्ग-दर्शन के प्राप्त नहीं हो सकती।

मार्ग-दर्शन उन्ही प्रकाश से मिल सकता है जो स्वय प्रकाश-पुञ्ज हो।

जिस समय जैन समाज मे बिखराव की कडियाँ उग्र-से-उग्रतर होने जा रही थी उस समय ऐसे एक महापुरुष की वाणी कर्ण गह्वरो मे गूँजी, फलश्रुति यह हुई कि हम नजदीक आ गये। उन महान् आत्मा का नाम था जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ संगठन योजना के अग्रदूत श्री चौथमलजी महाराज साहव।

यौवन की पगडण्डी पर कदम रखा ही था, भोग की वहार छनछनाहट करके सामने हाथ पसारे खडी थी, तभी वैराग्य की आवाज उठी कि चौथमल! तू एक सीप मे वँधने के लिए यहाँ नही आया है। तेरा तो अखिल विश्व ही साधना-स्थल है। "उत्तिष्ठ जागृत! प्राप्य वरान्नि वोधत" उठो, जागो व सोइ हुई मानव-जाति को अपने कर्तव्य का वोध कराओ। यह उद्घोषणा सुनकर के चतुर्थमल को कर्तव्य-वोध की झकार सुनायी दी। सर्वस्व का परित्याग करके विरोध की परवाह न करके निकल पडे। स्वय को तपाया, खपाया और ससार को मानवता का अमर सदेश सुनाया। मानवता के उस सन्देशवाहक को कोटिश. प्रणाम!



जय बोलो जैन दिवाकर की

✡ श्री केवल मुनि

(तर्ज—जय बोलो महावीर स्वामी की)

जय बोलो जैन दिवाकर की, शान्ति समता के सागर की ।।टेर।।
माता केशर के नन्दन हैं, श्री गगाराम कुल चन्दन हैं।
नीमच के नाम उजागर की ।।१।।
फूलो की सेज को दिया त्याग, जम्बू स्वामी जैसा वैराग।
दीक्षा-धारी गुण आगर की ।।२।।
कई जीवन बने शुद्ध निर्मल, नाली भी वन गई गगा जल।
—से अमृत निर्झर की ।।३।।
वाजार-महल और पर्ण कुटी, जिनकी वाणी से गूँज उठी।
उस वाणी के जादूगर की ।।४।।
शदियो से सत ऐसे आते, जो सोया जगत जगा जाते।
जय करुणानिधि करुणा कर की · ।।५।।
सम्प्रदायो के घेरे तोड़े, शदियो से विछुड़े मन जोड़े।
गुरु चौथमल जी सगम कर की· ।।६।।
जय जय जिन-शासन के सपूत, जय संघ ऐक्य के अग्रदूत।
जय 'केवल मुनि' ज्योतिर्धर की" · ।।७।।

✡

जैन जग के दिवाकर की

✡ साध्वी श्री चन्दना 'कीर्ति'

(तर्ज—मेरा जीवन कोरा कागज)

जैन जग के दिवाकर की जय वुलाइये।
भक्ति के दीपक हृदय मे जगमगाइये
धन्य जननी, धन्य नगरी, धन्य है वह वश।
कितना सुन्दर, कितना मोहक, खिला वह अवतन्श ।।
छा गई ऽऽ-२ खुशियाँ, वो खुशियाँ अव भी लाइये
माँ की ममता तोडी छोडा, पत्नि का भी प्यार।
मुक्ति-पथ के वने राही, तज दिया ससार ।।
नाम प्यारा-प्यारा चौथमलजी गुन गुनाइये · ···
जगत्वल्लभ, प्रसिद्धवक्ता, गुणो के आगार।
वहुश्रुत, मुनिश्रेष्ठ, जन-जन के हृदय के हार ।।
आराध्य जन-जन के उन्हे, दिल मे विठाइये ·
अय दयालु! अय कृपालु! विश्व की ए शान!
आज तेरे दर्शनो को 'कमला' व्याकुल प्राण ।।
द्वार आई 'चन्दना' भव से तिराइये ····



मानवता की सेवा में निरत : मुनिश्री चौथमलजी

✲ दुर्गाशंकर त्रिवेदी (कोटा)

उनका जीवन सामाजिक एकता, मैत्री, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, अहिंसात्मक आचरण और सहज वात्सल्य की विजय का अपूर्व शखनाद था।

वे वाग्मिता, यानी सहज वक्तृत्व कला के अद्भुत धनी थे, उनकी गुरु-गम्भीर वाणी मे एक विरल किस्म की अपरिमित चुम्बकीय ऊर्जा व्याप्त थी, जो चित्त को सहज ही बीध लेती थी।

वे हिंसा, अशान्ति, वैर और अविश्वास की दुर्दम शक्तियो को पराजित करके 'एकला चलो रे' के मार्ग-दीप को सदीप्त कर चलने वाले युग-पुरुष थे।

पतितो, शोषितो, दीन-दुखियो, पीडितो और तरह-तरह के कष्टो से सत्रस्त जन-सामान्य की पीडा-पूरित अश्रु-विगलित आँखो के आंसू पोंछने को सन्नद्ध अहर्निश सेवारत सन्त थे।

ये तथा ऐसे कितने ही प्रशस्ति परक वाक्यो की पक्तियो के समूह जिस किसी आदर्श जैन सन्त के लिए लिखे जा सकते हैं, उनमे जैन दिवाकर सन्त श्रीचौथमलजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज-सेवा को समर्पित ऐसा सत्यान्वेषी सन्त इस युग मे दुर्लभ ही है। उन्होने अपने अप्रतिम व्यक्तित्व के माध्यम से अज्ञानियो, अशिक्षितो, भूले-भटके सशयग्रस्त मनुष्यो के मन-मन्दिर मे साधना और सच्चरित्रता का अखण्ड दीपक प्रज्वलित किया। विश्व-मगल के लिए तिल-तिल समर्पित इस महामानव का व्यापक प्रभाव आज भी उसी तरह से कायम है। श्रद्धा का सैलाव जन-जीवन मे उसी तरह उफनता नजर आता है उनके नाम पर।

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी, रविवार सवत् १९३४ को मध्यप्रदेश के नीमच नगर मे जन्म लेकर श्री चौथमलजी महाराज ने १८ वर्ष की वय मे ही बोलिया (मन्दसौर, मध्य प्रदेश) मे श्री हीरालालजी महाराज से दीक्षा लेकर 'वसुधा, मेरा कुटुम्ब' की घोषणा की थी। जिसे आजीवन निभाकर आपने मानवोद्धार का मार्ग जन-जीवन मे प्रशस्त किया। अपने जीवन के ५५ चातुर्मासो मे आपने अपनी सहज बोधगम्य धाराप्रवाही अन्दर तक छूकर उद्वेलित करने वाली गुरु-गम्भीर वाणी द्वारा छोटे-बडे, राव-रक सबको अभिषिक्त किया। विभिन्न धर्मावलम्बियो के प्रति आपका सहज स्नेह इसी भावना का पोषक रहा है।

आपकी वक्तृत्व-शैली श्रोताओ को अपनी ओर खींचे बिना नही रहती थी। वह व्यक्तित्व को अन्दर से झकझोर कर रख दिया करती थी। श्रोता सोचने, करने की ऊहापोह मे उलझकर कुछ कर गुजरने का साहस जुटा लिया करता था।

प्रसग वि० स० १९७२ का है। मुनिश्री पालनपुर मे चातुर्मास कर रहे थे। आपके मार्मिक प्रवचनो की चर्चा नवाब तक पहुँची तो वह भी तारीफ को कसौटी पर कसने प्रवचन सुनने आया, और अभिरुचि जागृत हो उठने से बराबर आता ही रहा। चातुर्मास की समाप्ति पर एक दिन नवाब साहब एक बेशकीमती शाल महाराजश्री के चरणो मे अर्पित करके बोले—"बराये करम, मेरा यह अदना-सा तोहफा कुबूल फर्मायें, मश्कूर हूँगा।"

चौथमलजी महाराज यह देखकर नवाब साहब से स्नेहपूर्वक बोले—'नवाब साहब, हम जैन



साधु हैं! मर्यादित उपकरण रखते हैं। आज यहाँ, कल वहाँ, कभी जंगल मे, तो कभी झोपडी मे, कभी महल मे, तो कभी टूटे-फूटे मन्दिर मे, मठो मे रात गुजारनी होती है, इसलिए ऐसी कोई भी बहुमूल्य वस्तु हम नही स्वीकारते।"

नवाब साहब उनकी निर्लोभवृत्ति से और अधिक प्रभावित होकर बोले—"क्या मैं इतना बदकिस्मत हूँ कि मुझे खिदमत करने का मुतलक मौका भी किबला नही देंगे?"

प्रसन्न मुद्रा मे मुनिश्री बोले—"नही, आप जैसे नरेश बदकिस्मत नही भाग्यशाली हैं कि सत्सग मे आपकी रुचि है। साधु चाहे वह भी किसी धर्म का अनुयायी हो, समाज को तो कुछ-न-कुछ देता ही है न! आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो अपनी कुछ एक दुष्प्रवृत्तियाँ ही दे दीजिये। जीवन-पर्यन्त आप जीवो का शिकार और मद्य-मासादि सेवन का त्याग कर दें।"

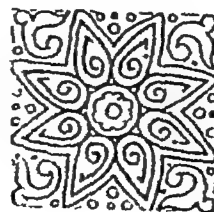
नवाब साहब ने मुनिश्री चौथमलजी महाराज के समक्ष तीनो का ही त्याग का अहद लिया। रियासत मे महाराजश्री के प्रवचनो मे आम जनता से रुचि लेने की अपील भी उन्होंने की। ऐसी थी उनकी वृत्ति जो सहज ही हृदय-परिवर्तन की भाव-भूमिका उत्पन्न कर दिया करती थी।

'कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है'—वाली स्थितियाँ जीवन मे सामान्यतया बनती नही है। काव्य-प्रसव प्रकृति की अनुपम देन है। आपने इस सन्दर्भ मे भक्तिरस के हजारो पद, उपदेशात्मक स्तवन और सामाजिक रूढियो के खिलाफ कविताएँ, दोहे, कवित्त आदि लिखकर उन्हें जनसामान्य मे पर्याप्त लोकप्रिय बना दिया था। आज भी मेवाड, मालवा और हाडौती अचलो मे ऐसे लोग सैकडो की तादाद मे मिल जाएँगे जिन्हे उनकी रचनाएँ कण्ठस्थ हैं। उनके सुधारमूलक गीत बहुत से समारोहो मे आज भी गाये जाते हैं।

सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी और मालवी के वे अधिकृत विद्वान् थे और अपने लेखन और प्रवचनो मे इनका बराबर उपयोग किया करते थे। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन', 'भगवान् महावीर का आदर्श जीवन', 'जम्बूकुमार', 'श्रीपाल', 'चम्पक', 'भगवान नेमिनाथ चरित्र', 'धन्ना चरित्र', 'भगवान् पार्श्वनाथ', 'जैन सुबोध गुटका' आदि अनेक गद्य-पद्य कृतियो का प्रणयन आपने किया।

इन साहित्यिक सास्कृतिक-कृतियो पर किसी शोध-छात्र को कार्य करना चाहिये। शताब्दि-वर्ष में उनके साहित्य का अधिकाधिक एव व्यवस्थित प्रचार-प्रसार होना चाहिये, उस पर चर्चा-गोष्ठियाँ आयोजित करना भी सामयिक होगा।

वे वाग्मिता के अन्यतम धनी थे। उनकी वाणी मे श्रोताओ को उद्वेलित कर देने वाली अद्वितीय चुम्बकीय शक्ति थी। गहरे पैठ जाने वाली उपदेशात्मक प्रवृत्ति से अभिप्रेरित होकर उन्होंने अज्ञानियों, अशिक्षितो, भूले-भटको, सशयग्रस्तो के मन मे सच्चरित्रता और निष्ठा का अखण्ड दीपक प्रदीप्त किया।





जीवित अनेकान्त

जो दीपक घर मे ही प्रकाश करता है उसकी अपेक्षा खुले आकाश मे प्रज्वलित स्व-पर-प्रकाशक दीपक का महत्त्व अधिक है।

✡ पं० नाथूलाल शास्त्री

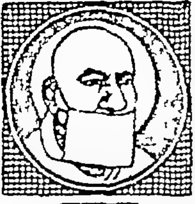
जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पडित मुनिश्री चौथमलजी महाराज के प्रभावशाली प्रवचनो के श्रवण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अभी उन्हें दिवगत हुए २८ वर्ष हुए हैं। अपनी सुमधुर व्याख्यान-शैली द्वारा इस विशाल भारत मे लगभग ५२ वर्षों तक धर्म का प्रचार-प्रसार उन्होंने किया है। उनकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व एव उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओ और जागीरदारों ने अपने राज्य मे होने वाली पशु-पक्षियो, जलचरो आदि के बलिदान, शिकार आदि हिंसा-कार्यों को स्वय व प्रजा द्वारा वन्द कराने की प्रतिज्ञा व हुक्मनामे निकाले गये। जोकि इसी ग्रन्थ में पृष्ठ १३३ से १७२ तक दिये गये है।

कहा जाता है कि सभी तरह के सासारिक सम्बन्धो का परित्याग कर केवल आत्मकल्याण के लिए ही मुनि दीक्षा ली जाती है। पर इस उद्देश्य को मैं एकान्तिक मानता हूँ। जो दीपक घर मे ही रहकर प्रकाश करता है उसकी अपेक्षा खुले आकाश मे प्रज्वलित स्व-पर-प्रकाशक दीपक का अधिक महत्त्व है। साधुगण का भी स्वकल्याण के साथ लोकहित सम्पादन करना मणि-काचन सयोग के समान है।

महाराजश्री न केवल प्रभावक वक्ता ही थे, वरन् प्रखर चिन्तक एव कुशल लेखक भी थे। उनकी अनेकान्त आदि विषयो पर विद्वत्तापूर्ण रचनाएँ पढ़ने से उनके उच्च शास्त्रज्ञान, अनेकान्त तत्त्व के मनन एव परिशीलन का परिचय मिलता है। आज से ३९ वर्ष पूर्व की उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अन्य दर्शनो की समालोचना के साथ अनेकान्त, नयवाद और सप्तभगीवाद का विशद विवेचन है। विश्व-शान्ति के लिए 'जीओ और जीने दो' इस सिद्धान्त के अनुकरण की आवश्यकता है, उसी प्रकार दार्शनिक जगत् की शान्ति के लिए 'मैं सही और दूसरे भी सही' का अनुसरण अनेकान्त की खूबी है। हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरे के विचारो को समझें, उसकी अपेक्षा को सोचें और तब अमुक नय से उसे सगतियुक्त स्वीकार कर लें। इस अनेकान्त को जीवन मे उतारकर एक बौद्ध विद्वान् के शब्दो मे 'घुमक्कड भगवान् महावीर' के समान महाराजश्री ने भी घुमक्कड और कष्ट-सहिष्णु बनते हुए धर्मोपदेश के साथ ही पिछड़े वर्ग मे सहस्रो पुरुषो एव महिलाओ को मद्य और मास आदि दुर्व्यसनों का त्याग कराया तथा वेश्याओ को उनके व्यवसाय का परित्याग कराकर सदाचारपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित किया। आपने सामाजिक कुरीतियो मे भी सुधार कराकर समाज को आर्थिक कष्ट से मुक्ति दिलाई है।

कोटा मे तीनो जैन-सम्प्रदायो के साधुओ का, जिनमे महाराजश्री भी सम्मिलित थे, एक साथ बैठकर प्रवचन देने की घटना अपनी विशिष्टता रखती है। वर्तमान मे जैन संगठन का यह एक आदर्श उदाहरण है। इसी का अनुकरण उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी के इन्दौर चातुर्मास के समय हमने प्रत्यक्ष देखा है।

साधुपद की गरिमा सर्व प्रकार की दीवारो—साम्प्रदायिक विचारो के परित्याग मे ही है।



साधु वही धन्य है जो कर्तरिका (कैंची) के समान समाज को छिन्न-भिन्न न कर सूचिका (सुई) के समान जोड़ने का काम करता है। जैसे—'मारने वाले से बचाने वाला महान् है', उसीप्रकार तोडने वाले से जोडनेवाला महान् है।' महाराजश्री इसके आदर्श उदाहरण थे। वे अत्यन्त सहृदय और उदार थे। करुणा उनके रोम-रोम से टपकती थी। उन्हे देखकर और सुनकर ऐसा मालूम पडता था मानो सर्वधर्मसमन्वयात्मक अनेकान्त का मूर्तिमान रूप हो।

✡



दिवाकर

✡ मोतीलाल जैन कोटा

मानव मानव मे भेद नही, करते थे जैन दिवाकर।
कोटि-कोटि वन्दन है तुमको, जगवल्लभ जैन दिवाकर।१।
मानवता के अमर पुजारी, धन्य धरा हुई तुमको पाकर।
श्रद्धा सुमन चढाऊँ तुमको, जगदवल्लभ जैन दिवाकर।२।
काम-क्रोध-मद-लोभ न जिनको, सत्य-अहिंसा-अमरपुजारी।
वीतराग ! वदन है तुमको, हे ! अखण्ड महाव्रतधारी।३।
धन मालव, धन राजपूताना, पावन-पद-परसे मुनीश।
अगता पाले हुक्म निकाले, नतमस्तक हुए अवनीश।४।
जीवनदान दिलाया तुमने, हिंसा के प्रवल तूफानो मे।
ऊँच-नीच का भेद न पाया, तेरे पावन अरमानो मे।५।
विश्व-बन्धु ! हे महामानव ! भव-तिमिर के तुम हो प्रभाकर।
कोटि-कोटि वदन हम करते, जगद्वल्लभ जैन दिवाकर।६।
धन्य धरा तट चम्वल जिस पर, मुनि का हुआ महाप्रयाण।
पावन तीर्थ बना है कोटा, अभ्यागत सव करते वखान।७।
वर्ष सप्ताधिक सहस्रद्वय, चतुर्मास कोटा अनुकूल।
तेरे पावन पद की रज मे, रोग भयकर हुआ निर्मूल।८।
काती सुद तेरस के दिन, तिमजिल से गिरा शिशु जवाहर।
गुरु-चरणो मे हँसता पाया, मोती ने लाल जवाहर।९।
सघ ऐक्य के प्रेरक वन कर, पावन ध्येय फैलाया।
करी प्रशस्ति सकल सघो ने, मिलकर श्रमण संघ वनाया।१०।
रवि मे जन्मे रवि मे दीक्षित, रवि समाधिस्थ जैन दिवाकर।
अमर रहे यश-गाथा तेरी, जव लग चमकें चन्द्र-दिवाकर।११।

✡



श्री जैन दिवाकर जी

एक देवदूत की भूमिका में

—हस्तीमल झेलावत (इन्दौर)

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का एक धर्मप्रचारक के रूप मे वहुत ऊँचा स्थान है। आपकी वाणी मे अनुपम वल था। हजार-हजार श्रोता मन्त्रमुग्ध, मौन-शान्त वैठे रहते थे। चारो ओर सन्नाटा छा जाता था और अन्त मे प्रवचन-सभाएँ गगनभेदी जयघोषो से गूज उठती थी। मुनिश्री के इस प्रभाव का कारण वहुत स्पष्ट था। वे जैन तत्त्व-दर्शन के असाधारण वेत्ता थे और उन्होंने जैनेतर धर्म और दर्शनो का भी गहन अध्ययन किया था। उनकी भाषा सरल-सुगम थी, और वे अमीर-गरीव, ऊँच-नीच, छोटे-वडे, जैन-अजैन का कोई भेद नही करते थे। उनके प्रभाव का क्षेत्र विस्तृत था। जैन मुनियो की शास्त्रोक्त मर्यादा के अनुरूप पैदल घूमते हुए उन्होंने भारत की सुदूर यात्राएँ कीं। मेवाड़, मारवाड, मालवा तो उनकी विहार-भूमि वने ही, इनके अलावा वे दिल्ली, आगरा, कानपुर, पूना, अहमदावाद, लखनऊ आदि सघन आवादी वाले वडे शहरो मे भी गये और वहाँ की जनता को अपनी अमृतोपम वाणी से उपकृत किया। आपके मधुर, स्नेहिल और प्रसन्न व्यक्तित्व ने अहिंसा और जीवदया के प्रसार मे वहुत सहायता की।

जैन दिवाकरजी ने मानव-जाति के नैतिक और सास्कृतिक उत्थान के लिए एक देवदूत की भूमिका निभायी। समकालीन राणे-महाराणे, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार सवने स्वय को उनका कृतज्ञ माना और उनकी वाणी से प्रभावित होकर वह किया जिसकी ये कल्पना भी नही कर सकते थे। शराव छोडी, मास-भक्षण का त्याग किया, शिकार खेलना वन्द किया और एक विलासी जीवन से हटकर सदाचारपूर्ण जीवन की ओर अग्रसर हुए। यह काम किसी एक वर्ग ने नही किया। चमार, खटीक, वेश्यावर्ग भी उनसे प्रभावित हुए और अनेक सुखद-जीवन की ओर मुड गये। अनेक उपेक्षित जातियो ने भाग-चरस, गाजा-तम्वाखू, मास-मदिरा जिन्दगी-भर के लिए छोड दिये। उनकी करुणा और वत्सलता की परिधि इतनी ही नही थी, वह व्यापक थी, उसने न केवल मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर मोडा वरन् उन लाख-लाख मूकपशुओ की जाने भी वचायी जो शिकार, वलि और मास-भक्षण के दुर्व्यसन के कारण मारे जाते थे। कई रियासतो और जागीरो के निषेधादेश इसके प्रमाण हैं।

मुनिश्री आरम्भ से ही मौलिक वक्तृत्व के धनी थे। आपने वालविवाह, वृद्धविवाह, कन्या-विक्रय, हिंसा, मासाहार, मदिरापान, शिकार, अनैतिकता—जैसी कुप्रथाओ और दुर्व्यसनो पर तो प्रभावशाली प्रवचन दिये ही, अहिंसा, कर्त्तव्य-पालन, गृहस्थ-जीवन, दर्शन, सस्कृति इत्यादि पर भी गवेषणापूर्ण विवेचनाएँ प्रस्तुत की। आपके सार्वजनिक प्रवचन इतने धर्मनिरपेक्ष और मानवतावादी होते थे कि उनमे विना किसी भेदभाव के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी सम्मिलित होते थे। जैन साहित्य के साथ आपको कुरान-शरीफ, वाइविल, गीता इत्यादि का भी गहन अध्ययन था अतः सभी विचारधाराओ के और सभी धर्मों के व्यक्ति आपके व्यक्तित्व और ज्ञान से प्रभावित होते थे। सक्षेप मे, वे वाणी और आचरण के अभूतपूर्व सगम थे, कथनी-करनी के मूर्तिमन्त तीर्थ।

☆

उनका अविनाशी यश

☆ गेंदमल देशलहरा, गुण्डरदेही (म० प्र०)

स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब ने अपने कठिन से कठिन तपस्या-उत्कृष्ट त्याग, सयममय जीवन द्वारा—जो देश के अनेक प्रान्तो मे विहार कर अपने अमूल्य प्रवचनो एवं स्वरचित अनेक नैतिक भावपूर्ण स्तवनो द्वारा जो सेवा बजाई—उनकी तारीफ में मेरे पास शब्द नहीं जो कि वर्णन कर सकूँ।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने साधु जीवन मे अनेक भारी कष्टो—परिषहो-बाधाओ को सहन करते हुए—जो समाज की भारी सेवाएँ की उनका हम कैसे मूल्याङ्कन करें ?

ऐसे आत्म समर्पित सन्तो का जीवन क्या एक ही जैन समाज के लिये ही होता है ? उनके द्वारा निर्ग्रन्थ-जिनवाणी देश को विभिन्न मतावलम्वी समाजो के लिये तो क्या ? जैसा कि मेरा विश्वास एव अनुभव है—लोक-कल्याण व विश्व-कल्याण के लिये ही होता है। चाहे ऐसे सन्त कार्य करके चले जायँ—लेकिन उनके पश्चात् भी—इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखने लायक अजर, अमर एव स्मृति रूप मे अविनाशी होता है।



वन्दना तुमको...

☆ श्रीमती सुधा अग्रवाल
एम० ए०, बी० एड्०, वाराणसी



हे मुनिवर तुमको शत प्रणाम।
हे गुरुवर तुमको शत प्रणाम।
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।
शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम।१।
ज्ञानाधिदेव तुमको मानूँ।
मैं अमृत-सिंधु तुमको जानूँ।
तुमने दरसाया मोक्ष याम।
हे गुरुवर तुमको शत प्रणाम।२।
अध्यात्म-ज्ञान के प्रखर दीप।
तुमसे आलोकित सभी द्वीप।
अज्ञान-तिमिर के तड़िद्धाम।
हे मुनिवर तुमको शत प्रणाम।३।
हे शान्त-क्षमाधारी विधुवर।
तुम भक्त चकोरो के प्रियतर।
श्रद्धा नत होवे नाथ माथ।
हे मुनिवर तुमको शत प्रणाम।४।





अभिनन्दन

☆ श्रीमती कमला जैन (वीर नगर, दिल्ली)

सतजन विश्व की महान् विभूति होते है, ऐसी विभूति जो कभी नष्ट नही होती। जिसकी छत्र-छाया मे प्राणीमात्र सुख और आनन्द का अनुभव करता है। संतो के चरण जहाँ पड़ते हैं, वहाँ की मिट्टी भी सोना उगलने लगती है। उनके तप-सयम की पावन सुगन्धि से दूर-दूर का वातावरण पावन और सुगधित हो जाता है।

श्री चौथमलजी महाराज ऐसे ही महान् सन्त थे। जिन्होंने अपने तन, मन और वाणी से दु खी मानव को सुख का पथ दिखलाया। जन-जन मे अध्यात्म-जागृति उत्पन्न की। उनकी वाणी मे जादू का सा प्रभाव था। उनके प्रवचनो को सुनकर कई दस्युओ और वेश्याओ ने अपना सुधार किया। राजाओ के राज-प्रासादो और भीलो की कुटियो मे अहिंसा का प्रचार करना उन्हीं का कार्य था। कई विद्यालयो और वात्सल्य-फण्ड की स्थापना उन्ही के उपदेशों द्वारा हुई।

समाज सुधार के लिये जो कार्य उन्होंने किया वह अनुपम है। परम्परा से चले आते अन्ध-विश्वासो और रूढियो को उन्होने समाप्त करवाया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह जैसी कुप्रथाएँ सदा के लिये बन्द हो गई। कन्या-विक्रय और मृतक-भोज बन्द हुये। समाज मे व्याप्त कुरीतियो को दूर करने का उनका भागीरथ प्रयत्न सदा स्मरणीय रहेगा।

उन्होंने गाव-गाव भ्रमण कर अपने कष्टो की परवाह न करते हुये जन-जन का कल्याण किया। उनके कई शिष्य बनें, जो आज भी उन्ही की भाँति जन-जागरण करते हुये उनके नाम को जीवित रखे हुये हैं।

आज उनकी जन्म-शताब्दी पर, उस युग-पुरुष को स्मरण कर, उनके महान् कार्यों को स्मरण कर नतमस्तक वन्दन करते हैं, अभिनन्दन करते हैं।

भारत के नूर थे

☆ पं० जानकीलाल शर्मा

मोह-ममता को छोडा साधु का बाना पहना।
काम, क्रोध, मद, लोभ जीतने मे शूर थे॥
वाणी मे ओजस्विता, तेजस्विता दिदार मे थी।
कलह अशांति से, रहते सदा दूर थे॥
सरलता को सौम्यता को, रखते सदैव पास।
अधर्म को पापो को, करते चूर-चूर थे॥
जानकी शर्मा कहे, ज्ञानमयी दिवाकर।
जैन सघ के ही नही, भारत के नूर थे॥

☆



केवल स्मृतियाँ शेष

—श्री रामनारायण जैन, डांगी

आगरा से मेरा सम्बन्ध बहुत ही निकट का है क्योंकि यहाँ मेरे कुटुम्बीजन भी हैं, और मेरी ससुराल भी है जिसके कारण जाना-आना लगा ही रहता है। सन्तों व साध्वियों के दर्शन होने का सौभाग्य प्राप्त होता ही है। मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि मैं सन्तों के परिचय में आ सका हूँ, और उनकी दिव्य वाणी भी सुनने को मिली है इस शृंखला मे मैं जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के सम्पर्क मे भी आया। उस समय मेरा विद्यार्थी जीवन था। मुनिश्री का आगरा चातुर्मास था।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का संघ उस समय आगरा मे ही विराजमान था। पन्द्रह या बीस साधु-सन्त होंगे ही। श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व कितना महान् था, यह किसी से छिपा नहीं है। जिन्होंने देखा है, वे भली-भाँति जानते हैं। चमकता-दमकता चेहरा, उन्नत ललाट, एकदम गौर वर्ण कितना आकर्षण और ओज था उनमे। व्याख्यान में व्याख्यान के समय स्त्री-पुरुषो का विशाल जमघट होता था। कितनी बुलन्द आवाज थी। वे बिना लाउडस्पीकर के भी व्याख्यान जन-समुदाय के बीच भली-भाँति दिया करते थे। व्याख्यान के समय कितना शात वातावरण, एकदम स्तब्धता-सी महसूस होती थी। उनकी पुण्याई बडी जबर्दस्त थी जिसके कारण इतनी प्रसिद्धि पाई और जन-समुदाय उमड पडता था।

आगरा के चातुर्मास मे व्याख्यान मे श्री चौथमलजी महाराज ने कहा था कि आगरा की लोहामण्डी, लोहामण्डी न होकर सोनामण्डी है, वह वाणी सच सिद्ध हुई। उस समय लोहामण्डी मे आर्थिक रूप मे इनेगिने ही सम्पन्न व्यक्ति थे—आज जैसी स्थिति उस समय नहीं थी। श्री चौथमलजी महाराज शका-समाधान भी बडी उत्सुकता के साथ करते थे। उनका अध्ययन-चिंतन-मनन काफी गम्भीर था। सभी धर्मों की पुस्तकें उन्होंने पढी थी। भाषा पर उनका अधिकार था। उनके तर्क-वितर्क सुनने-समझने योग्य होते थे।

कानपुर मे श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास था वहाँ भी दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ भी अपार जन-समूह था। उस समय कानपुर के कुछ लोहा व्यापारियो ने हृदय खोलकर चातुर्मास मे बहुत बडा सहयोग दिया था। समाज-सुधार पर उनका विशेष ध्यान रहता था। कुरीतियो के निवारण मे सदैव उनका सहयोग रहता था। उस समय सुनने मे आता था कि श्री चौथमलजी महाराज ने सैंकडो व्यक्तियो से मास व शराब का त्याग करवाया है। उनके प्रवचन सुनने अमीर-गरीब सभी आते थे।

उस दिव्य सन्तपुरुष के चरणो मे कोटि-कोटि वन्दना!





दिवाकर

✡ मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'कमल'

हमारे अस्तित्व मे
ढला हुआ है
एक और आकार !
जो हमे,
सौंपता है विशदता
हमे
अपनी अवस्थिति की चेतना से
परिपूर्ण करता है !
हम
अपनी शरीर सीमाओ से भी परे
और विस्तृत स्वय को
महसूस करने लगते है।
हमारी श्रद्धा का
अनुकुम्भ है वह
भरता है हममे
अनुपमेयता !
हम एक-एक
अतिदिव्य हो उठते हैं
ऐसा अनूठा है
वह आकार
जो साकार नही
फिर भी हमारे अतस की
गहराई मे विद्यमान है।
'दिवाकर'
क्या सार्थक नाम दिया है
बीते हुए कल ने उसे !
आज भी
वह सूरज-सा
देदिप्यमान है !
आज भी वह हमे
निराशा के अधकार से बचाता है !
आज भी हमारे जीवन को
आंदोलित करती है
उसकी अनुप्रेरणा !
एक कर्तव्य के दायरे मे
रहकर भी
एक सिमटे हुए आकाश मे
उदित होकर भी
कितना उदार था वह
कि उससे हर कोई
कुछ न कुछ पा सका !
सूरज,
जाति वर्ग के भेदो मे
कभी नही पडता।
धनी, निर्धन राजा-रक
उच्च निम्न
सभी सूरज से एक समान
लाभान्वित होते !
चमार, खटिक, हरिजन, वेश्या
किसे नही दी उसने दिव्यता।
अपनी भव्यता से उसने
राजाज्ञाएँ प्रसारित करवाईं
और पशुओ को
सरक्षण दिया।
वह यश शरीर बन चुका है
वह स्थिरता का
एक मानदण्ड बन चुका है।
हमारे अस्तित्व मे
ढल गया है सूर्य
उसने हमे सौंपी हैं
अपार सक्षमता !
आओ
हम दिवाकर की
उज्ज्वल परम्परा को
आगे और आगे
बढाते चले जाएँ।



भाव-प्रणति

☆ श्री अमरचन्द लोढा, पाली
(राजस्थान)

पूजा व्यक्ति की नही होती, व्यक्तित्व की होती है। आकर्षण शब्दो मे नहीं, उनके पीछे त्याग में होता है। दुनिया फूल नहीं, मकरन्द चाहती है। व्यक्तित्व के बल पर ही व्यक्ति विश्ववद्य बनता है किन्तु व्यक्तित्व निखार के लिए अपेक्षित है—पुरुषार्थ, सहिष्णुता, आत्मानुशासन, वात्सल्य एव उज्ज्वल चरित्र जैसे महान् गुणो की। इस प्रकार की श्रेष्ठ विशेषताओ को प्राप्त कर सामान्य मानव भी अलौकिक व्यक्तित्व सम्पन्न महामानव बन जाता है।

जब मैंने श्री जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व पर दृष्टिपात किया तो पाया कि वे लौकिक युग मे—अलौकिक व्यक्तित्व के धनी महामानव थे। पूज्यश्री का विराट् व्यक्तित्व ज्ञान, दर्शन और चारित्र की पावन-त्रिपथगा से अभिस्नात था। आपका अनन्त प्रवाही व्यक्तित्व अपने आप में एक अपूर्व उपलब्धि थी।

पूज्य श्री बडे प्रभावशाली और पुण्यवान् सन्त थे। गेहुँआ वर्ण, लम्बा कद, गठा हुआ शरीर, प्रशस्त ललाट और गोल-गोल चमकती वात्सल्य-भरी आँखे, यह था उनका प्रभावशाली बाह्य व्यक्तित्व। आपका व्यक्तित्व विविधताओ का पुञ्ज था। आप में जहाँ गुरुत्व की शासना थी वहाँ साधक की मृदुता भी थी। आप कवित्व की रस-लहरी मे निमग्न रहते थे। आप जहाँ जन-जन को आकृष्ट करने वाले वाग्मी थे वहाँ एकान्तवासी मौन भी थे। आपके व्यक्तित्व एव कर्तृत्व से समाज को नया आलोक मिला। आपके अलौकिक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आप बडे-बडे राणा, राजा-महाराजा, जागीरदार, दार्शनिक, साहित्यकार, उच्चाधिकारी व शिक्षा-शास्त्रियो के साथ वार्तालाप करने मे जितना आनन्द लेते थे उतना ही आनन्द गरीब, अशिक्षित जनता, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई के साथ वार्तालाप मे लेते थे। यही कारण था कि आपके प्रवचनो की आवाज मजदूर की झोपडी से लेकर राजा-महाराजा के महलो तक पहुँची थी।

पूज्यश्री का चिन्तन सकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओ से बहुत दूर था। समन्वय आपके जीवन का मूल मन्त्र था। आपने इस मन्त्र को न केवल विचारो तक सीमित रखा, अपितु जीवन के हर व्यवहार मे चरितार्थ भी किया था। आपके प्रवचनो मे रामायण, बाइबिल और कुरान की आयतें सुना-सुनाकर जैन आगमो द्वारा समन्वय कर हजारो-लाखो लोगो को मन्त्र मुग्ध कर देते थे इसी का सुपरिणाम है कि जैन ही नहीं, अपितु अन्य धर्मावलम्बी भी आपको मानवता का मसीहा मानकर समादर करते थे। इन्हीं उदात्त भावनाओ के फलस्वरूप आपको 'जैन दिवाकर' की उपाधि से विभूषित किया।

आपश्री ने अलौकिक दिव्य प्रज्ञा के अनेक महत्त्वपूर्ण कल्पनाओ को मूर्तरूप दिया था। कई ज्ञान-साधना के सस्थान स्थापित किये थे। आपकी स्पष्टवादिता और उसमें झलकते चारित्र के तेज-पुञ्ज के सम्मुख प्रत्येक व्यक्ति नतमस्तक हो जाता था। आपकी पुण्यवत्ता अद्वितीय थी। जो कार्य सैकडो व्यक्तियो के परिश्रम और धन से भी सम्भव नहीं होता, वह उनकी पुण्यवत्ता से स्वयं ही हो जाया करता था। राजस्थान के विभिन्न रियासतो के नरेश और बडे-बडे जागीरदार आपके वर्चस्वी व्यक्तित्व और प्रवचनो से अत्यन्त प्रभावित हुये और उन्होने अपनी-अपनी रियासतो एवं



जागीरी मे शिकार वन्द, मास वन्द एव दारू वन्दी के पट्टे लिख दिये, जिसका पालन वर्तमान मे भी हो रहा है।

पूज्यश्री ने कई सघो मे फूट को मिटाकर आपस मे वात्सल्य-भाव स्थापित किया। कई शहरो मे अगते, पर्व दिनो मे रखवाये जिमका पालन आज भी हो रहा है। पाली मे चार अगते उनकी स्मृति को आज भी हरी करते हैं। यह था उनका अपूर्व पुण्यवाणी का प्रभाव।

आपश्री वेजोड़ प्रवचनकार थे। आपका प्रवचन का स्रोत जीवन–निर्माण की दिशा मे प्रवाहित हुआ और उसने न जाने कितनी वजर मनोभूमियो को उर्वरा मे वदल दिया। वे आजीवन जैन शासन को विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करते रहे। उनके वहुमुखी रग-विरगे व्यक्तित्व के शीतल निर्झर से अनगिनत धारायें फूटी, विविध दिशागामिनी वनी जिनसे क्षेत्र, धार्मिक दृष्टिकोण से उर्वर और वीजापन के योग्य वन गये। विकास के अनेक आयाम स्वत उद्घाटित हो गये। साधु-साध्वियो की वृद्धि हुई। विहार-क्षेत्र व कार्यक्षेत्र विस्तार पाने लगे।

आपश्री ने स्वय उच्चकोटि का साहित्य और साहित्यकारो का सृजन किया था। आगम शोधकार्य आपकी अलौकिक मेधा और दूरदर्शिता का सुपरिणाम था। ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देने का प्रयास अज्ञ व्यक्ति की नक्षत्र गणना जैसा है। उनके आभावलय की तेजोमय रश्मियाँ युग-युग तक हमारे जीवन-पथ को प्रकाशित करती रहेगी। उनकी अमिट छवियाँ चिरकाल तक हमारे हृदय-पटलो पर अकित रहेगी।

अत उस ज्योतिर्मय दिव्यपुज की इस जन्म शताब्दी पर हृदय की समस्त शुभ भावनायें श्रद्धाञ्जली रूप अर्पित कर, मैं अपने आपको धन्य और कृतकृत्य अनुभव करता हूँ।

☆

जैन दिवाकर अभिनन्दन है

—श्री विपिन, जारोली (कानोड)

जैन दिवाकर अभिनन्दन है।
जप-तप-सयम शम के साधक,
महा मुनीश्वर वन्दन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है॥
श्रमण सस्कृति के उन्नायक,
सत्य-अहिसा के चिर गायक,
मुक्ति-मार्ग के अमर पथिक तव, कोटि कोटि जन का वन्दन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है।
राव-रक के तुम उपदेशक,
शूद्र जाति के तुम उद्धारक,
मूक-प्राणियो के तुम रक्षक, जिनवाणी के जीवन-धन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है।
प्रसिद्ध वक्ता, पण्डित, मुनिवर,
जैन-जगत के पूज्य दिवाकर
जन्म-शती पर गुरुवर तुमको, वन्दन है—अभिनन्दन है।
जैन दिवाकर अभिनन्दन है।



अपनी आप मिसाल थे

—स्वामी नारायणानन्दजी

जय जय जय मुनिराज जैन जग के हितकारी,
स्वय प्रेम साकार प्रेम के परम पुजारी।
रहे सुनाते सदा कथायें प्यारी प्यारी,
निज जीवन मे किये प्रेम के चश्मे जारी।
जिन शासन के अग्रणी अतिशय हृदय विशाल थे।
जैन दिवाकर चौथमल अपनी आप मिसाल थे॥

निरत रहे वे सदा धर्म ही के विचार मे,
था उनका विश्वास रूढियो के सुधार मे।
जीव दया ही सार समझ इस जग असार मे,
लगे रहे सानन्द अहिंसा के प्रचार मे।
सिद्ध सयमी सरल चित महा मनस्वी धीर थे,
पर्वत सम वे अटल थे सिंधु सरिस गम्भीर थे॥

वरसाते थे सुधा सदा निज प्रवचन द्वारा,
करते थे उपकार निरन्तर तन मन द्वारा।
प्राप्त किया सम्मान लोक मे जन-जन द्वारा।
किया जगत-कल्याण तपस्वी जीवन द्वारा।
मिटा गये अज्ञान तुम सम्य के ज्ञान प्रकाश से,
आलोकित जग हो उठा अलि अविद्या नाश से॥

शास्त्रो का सिद्धान्त धर्म का मर्म बताया,
गुमराहो के लिए सत्य का पथ दिखलाया।
मानव, मानव-विश्व प्रेम पीयूष पिलाया,
स्नेह सलिल से सीच हृदय का सुमन खिलाया॥
कोमल चित करुणायतन राग रहित स्वच्छन्द थे,
धन्य-धन्य मुनिवर अमर आनन्दी आनन्द थे।

पूज्य पिलाते रहे सदा प्रेमामृत प्याले,
जागृत किया समाज खोल निद्रा के ताले।
साधु-मार्ग के सन्त अमित गुणवन्त निराले,
धन्य-धन्य मुनिराज परम पद पाने वाले।
भरावोर हो प्रेम में मुनि व्रत पूर्ण निभा गये,
भक्तो को कर मुदित मन आप मोक्ष पद पा गये॥





श्री जैन दिवाकर जी महाराज का समाज के प्रति योगदान

—चांदमल मारु, मन्दसौर
महामन्त्री अ० भा० जैन दिवाकर सगठन समिति
एव जन्म शताब्दी महासमिति

अनेक बार यह देखा गया है कि मानव जहाँ अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए अग्रसर रहता है, वहाँ दूसरी ओर मानव ने अपने मनन-चिन्तन से वह अनुभव किया कि शारीरिक सुखो की उपलब्धि ही सब कुछ नही है। अत ऐसी स्थिति मे महान् सन्तो ने जगत् के कल्याण के लिए वास्तविक स्थिति को जनता के सामने रक्खा। उन महामुनियों ने अपने चिंतन के द्वारा जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं तथा अति सूक्ष्म दृष्टि से देखा उसे अपने विचार देकर जन-जन के समक्ष रक्खा।

आज के युग मे धर्म के नाम पर अनेक व्यक्ति नाक-भौंह सिकोडने लगते हैं तथा धर्म को साम्प्रदायिकता का पुट देने लगते हैं। लेकिन वास्तविकता मे ऐसी बात नही है। धर्म वह पवित्र सिद्धान्त है, जो मानव को मानव के पास लाकर मानवता सिखाता है। धर्म मानव को हिंसावृत्ति से दूर करके सही अर्थों मे अहिंसावादी बनाता है तथा मानव बने रहने की शिक्षा देता है। आज ससार मे सर्वत्र अशान्त वातावरण बना हुआ है, भ्रष्टाचार फैला हुआ है उसे एकमात्र धर्म ही दूर कर सकता है।

धार्मिक नियमो का उपदेश त्यागी, महान् सन्त ही दे सकते हैं और ऐसे ही सन्तो के उपदेश का प्रभाव भी जन-मानस पर पड सकता है। भारतवर्ष मे प्राय अनेक स्थानो पर ऐसे महान् सन्तो के योगदान से ही अहिंसा एव सत्य धर्म का प्रचार-प्रसार होता रहा है। हमेशा यह बात देखी गई है कि महान् सन्तों का प्रादुर्भाव परोपकार के लिए होता है उनका अपना व्यक्तिगत कोई स्वार्थ नहीं होता।

ऐसे महान् त्यागी सन्तो मे श्री जैन दिवाकर, जगत्वल्लभ, प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज की गणना की जाती है। वास्तव मे जैनधर्म के प्रचार व प्रसार के लिए श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही दे दिया था। श्री जैन दिवाकरजी महाराज की बाल्यकाल से ही बहुमुखी प्रतिभा रही है। बहुत छोटी अवस्था मे ही अनेक भाषाओं के वे पारगत हो गये थे। प्राय देखा जाता है कि उपदेशक और गुरु योग्य व्यक्ति होता है, तो उसकी योग्यता का दूसरो पर अच्छा प्रभाव पडता है और सब ही समाज उसकी प्रतिभा का महत्व स्वीकार करता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज जैन सिद्धान्तो के पारगत विद्वान् तो थे ही, अन्य दर्शनो के भी तलस्पर्शी जानकार थे। इसके साथ-साथ अच्छे वक्ता, सुलेखक, कवि, विद्याप्रेमी, धर्मरक्षक दया से द्रवित परोपकारी भी थे। अपना जीवन उन्होंने दूसरो के कल्याण के लिये ही समर्पित कर दिया था। आपके प्रवचनो से श्रद्धालु आनन्द-विभोर हो जाते थे। ऐसा कोई भी प्रवचन नहीं होता जिसमे अनेक जीवो को अभयदान एव अनेक त्याग प्रत्याख्यान नही होते।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज महान् अहिंसावादी महात्मा पुरुष थे। आपके समस्त गुणो का



वर्णन करना लेखनी से बाहर है तथा अत्यन्त दुष्करत कार्य है, लेकिन आपका जीवन एव कार्य ससार के प्राणियो के लिए प्रेरणादायक रहा है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने सचमुच मे अहिंसा व सत्य के सिद्धान्तो द्वारा जैनधर्म के प्रचार व प्रसार मे योगदान तो दिया ही है, किन्तु इन महान् सन्त ने हजारो मील की पद-यात्रा करके राजा-महाराजा जागीरदार, सेठ एव मध्यम वर्ग के लोगो को अपने व्याख्यानो से लाभान्वित किया है। इतना ही नही, असख्य जीवो को अभयदान भी दिलवाया तथा अनेक राजा-महाराजा, जागीरदारो से अगते पलवाने के पट्टे भी लिखवाये।

अन्त मे गुरुदेव के प्रति अपनी भावपूर्ण अश्रुपूरित श्रद्धाजली अर्पित करता हुआ समाज से निवेदन करता हूँ कि उनकी जन्म शताब्दी मे उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण कर कार्य करने की ओर अग्रसर हो।



सद्धंजली



श्री रमेश मुनि शास्त्री
[उपाध्याय श्री पुष्करमुनि के सुशिष्य]

जीवरायो महारायो,
गुणाण रयणागरो।
साहाए तस्स सजाओ,
चोथमल्लो मुणीसरो।१।

समणसघ सिंगारो,
सोमो ससीसमो सया।
धम्म - धुरंधरो धीरो,
धण्णो सो य तवोधणो।२।

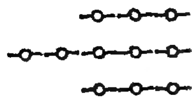
सन्तो जिइदियो दन्तो,
जिणसासण पंगणे।
सूरो सहस्सरस्सी सो,
उग्गओ निम्मलो अहो।३।

मंजुल वयण गीयं,
सरण यावि मंगलं।
सज्झाणं जीवण जेसा,
हिअयहारियं अहो।४।

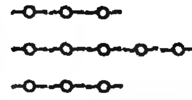
जियमोह महामल्लो,
निस्सल्लो जणवल्लहो।
जइणागम विण्णू जो,
वाणीपहू पहावगो।५।

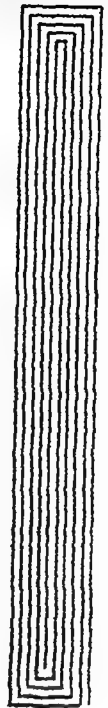
गुणीवराणं गुरु पोक्खराण,
बुहाण सीसो य मुणी रमेसो।
सुभत्ति भावेण पुणो मुणिंद,
अह पि वन्दे सिरसा सुवीरं।६।





महामानव





✡ श्री अक्षयकुमार जैन, जोधपुर

महामानव नही होते हैं माता से पैदा
महामानव निर्माण होते
विश्व की कर्मशाला मे !!
यूं तो इस जग मे
कई जन्म लेते और चले जाते,
कुछ ऐसे भी महामानव होते हैं
जो कुछ देकर
अमरता पाते।
गुजर जाता है उनका जमाना
फिर भी हम जन्म लेने वाले
उन्हें याद करते,
उन्ही के आदर्शों
और सिद्धान्तो को
जानकर,
अमरता की राह की ओर
अग्रसर होते !
ऐसा ही एक महामानव !
इस पुण्य भूमि पर
एक नया प्रकाश देकर,
'जैन दिवाकर' के नाम से
अपनी अद्भुत छवि से
'जगद्वल्लभ' बन कर
भव्यी जीवों को
सत्‌बोध दिया था।
विश्व मे फिर से एक बार
जैन धर्म का मर्म बताकर,
भटके हुये पथिकों को,
राह पर लाकर,
कई राजाओ, महाराजाओ,
जमींदारों, जागीरदारो को
अहिंसा का उपदेश सुनाकर,
डके की चोट के साथ

जैन धर्म के जयनाद से
एक नया
उद्‌घोष किया था।
जग वैभव तुम्हे
छल न सके,
विचारो को न
बदल सके,
तुम ऐसे जिनधर्म
मर्मी थे,
सच्चे अटल कर्मी थे,
पर-प्रकाशी
तुम्हारा जीवन था,
जिसे सच्चे दिल से
जीया था।
अनूठा चमत्कार
तुमने दिखलाया,
पत्थर दिल भी
आंसू ले आया।
जब विकराल मौत भी
तुम से हार गई,
तब मौत को
गले लगाया था।
जग का क्रम निभाया था,
प्रकृति ने भी
तुम्हारे लिये
अश्क बहाया था।
तुम्हारे, महा सुकर्मों से
आज याद तुम्हारी
जिन्दा है।
पढ-सुनकर,
तुम्हारे जीवन को
पाखण्डी होते



शर्मिन्दा हैं।
नित्य तेरा
स्मरण मात्र करने से,
जन, जीवन
आच्छादित होता है,
तेरे आदर्शों मे
एक मानव,
महा मानव बनने की,
राह पर,
अग्रसर होता है।
महामानव !
न कभी मरते,
साया बन
साथ है चलते।
निरुत्साह मे
उत्साह बन,
नया पथ
दिया करते।
है यही आकाक्षा मेरी
कि हे ! पूज्य दिवाकर।
तुम-सम इस भूमि पर
फिर से एक नया
दिवाकर बना दो
या फिर,
तुम्ही एक बार
फिर से
नव प्रकाश देकर,
दिवाकर के नाम को
"अक्षय" बना दो।



वर समणो जिण दिवायरो

✡ प्राचार्य माधव श्री० रणदिवे, सतारा
(प्राकृत भाषा प्रचार समिति)

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्मि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मो त्ति विसेसिदो समणो॥

सिरीकुदकुदायरिएण पवयणसारम्मि समणवरस्स ज वण्णण कय त सव्व सिरीचउहमलमुणिणो विसए सच्च होइ। जया जुव्वणोज्जाणम्मि मणुस्सो सुहेण विहरइ विसयसुहम्मि रमइ य, तया चउहमल्लो ससाराओ विरत्तो जाओ। अट्ठारसमम्मि वरिसे सो सिरीहिरालालायरियसमीवे पव्वज्जइ। तेण अप्पमत्तेण मुणिधम्मो पालिओ।

सिरीचउहमलमुणी सत्त भासासु पारगओ। आगमकुसलेण तेण सव्वधम्मसत्थाइं पढियाइं। महुरवाणीए धम्मोवएस काऊण तेण अणेगा जणा आवज्जिया। जिणाणुयाई सावगसाविगाओ अन्ने वि इत्थीपुरिसा तस्स पावयाण सोउ जिणठाणगसि आगच्छंति।

सिरीचउहमल मुणी अप्पणो तवोतेएण अविरयसाहणाए य दिप्पतो सूरो व्व पगासेइ। सो य रट्ठसतो त्ति पसिद्धो। तेण जिपदिवायरपय विभूसिय। अओ जिण-दिवायरो सिरीचउहमलमुणी नामेण सो जाणिज्जइ।

तस्स मुणिवरस्स सूरियस्स उवमा दिज्जइ। जहा सूरो अधयार नस्सइ, तहा तेण जणाण अन्नाणवयारो विणासिओ। जहा सूरो किरणेहि पउमाइँ वियासेइ, तहा सो जिण दिवायरो सुवयणेहि नरणारीकमलाइ पप्फुल्ल करेइ।

जिणदिवायरो तेयस्सी समणो। सो पचसमिओ तिगुत्तो पचेदियसंवुडो जियकसाओ दंसणणाण चारित्त समग्गो सजदो य। नमो तस्स जिण दिवायरस्स।



दिवाकर-पचीसी

✡ श्री विजय मुनि 'विशारद'
[मेवाडभूषण श्री प्रतापमलजी महाराज के शिष्य]

[१]
दिव्य-दिवाकर दिव्य-विभूति,
दिव्य-देशना पथ - दर्शक।
दिव्य तेजस्वी चौथमुनि जो,
बने जगत् मे आकर्षक॥

[२]
सुरभि युत शुभ सुमन चमन मे,
खिलता है आनन्द दाई।
वैसे ही गुरुवर की महिमा,
जीवन मे गौरव लाई॥

[३]
नीर निरन्तर रहे प्रवाहित,
करता है सरसब्ज धरा।
धन्य-धन्य सुत गगाराम है,
हीरालाल गुरुवर निखरा॥

[४]
केशर पिसकर रग देती है,
जिसको जग ने शुभ माना।
वैसे ही पच महाशील से
अपनापन भी पहचाना॥

[५]
मनुज अरे क्या महा मनुज थे,
उसमे भी थे महा मुनिवर।
सम्प्रदाय से मुक्त मनस्वी,
सफल-सबल शासक गुणिवर॥

[६]
'नीमच' नगरी पुण्य पु ज है,
जहाँ जन्म गुरु ने पाया।
माता 'केशर' का मन फूला,
देख-देख कर हरषाया॥

[७]
सम्वत् उन्नीसौ चौंतीस का,
सूर्योदय लेकर आया।
वंश चोरड़िया उज्ज्वल करने
दिवाकर ये प्रगटाया॥

[८]
योग्य पिता के योग्य पुत्र थे,
शिक्षा का पाया शुभ योग।
मिला सुहाना सस्कारों का,
जिनको सुखदाई सयोग॥

[९]
फाल्गुन शुक्ला दसमी चौपन,
मगलकारी है प्रियकार।
रविवार की सुखद घडी में,
बने आप त्यागी अणगार॥

[१०]
गुरु सेवा-भक्ति से पाया,
अतुल ज्ञान का जो नवनीत।
सरल सौम्य पाई आकृति—,
कोई नहीं होता भयभीत॥

[११]
बने विज्ञ-विद्वान आप पर,
गर्व नहीं जिनको लवलेश।
सागर से गम्भीर आप थे,
महा मनस्वी मुनि महेश॥

[१२]
जैनागम के ज्ञाता पूरे,
गीता - महाभारत जानो।
रामायण कुरान भागवत्,
पुरान गुलिस्तां-विज्ञानी॥



[१३]

सस्कृत - प्राकृत-हिन्दी - उर्दू,
गुजराती भाषा जानी।
राजस्थानी और फारसी,
मेवाड़ी के गुरु ज्ञानी ॥

[१४]

था उपदेश प्रभावी जिनका,
अद्भुत रस से भरा हुआ।
धर्मावलम्बी मानव का जहाँ,
सुन-सुन मानस हरा हुआ ॥

[१५]

महलों से कुटिया तक पहुँचा,
जैन दिवाकर का सन्देश।
'प्रसिद्ध वक्ता' कहलाये जो,
उदित हुआ जिन-पथ का सन्देश ॥

[१६]

सभी वर्ग जाति के बन्धु,
सुनते थे संदेश सदा।
छोड़ व्यसन बनते पावन,
वाणी मे था स्नेह लदा ॥

[१७]

वक्ता थे गुरुदेव कवि थे,
लेखक भी थे गायक थे।
संतों के गुण से परिपूरित,
भक्तों के उन्नायक थे ॥

[१८]

चरित्रकार थे रचे आपने,
कई सुहाने महाचरित्र।
जिनको पढ़कर कइयों के,
मानस बन गये यहाँ पवित्र ॥

[१९]

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई—
में भी धर्म-प्रचार किया।
अधः ओर जाने वालों—
का, गुरु ने उद्धार किया ॥

[२०]

कई विरोधी आये थे बस,
उल्टा-सीधा ले अभियान।
गुरुदेव की तेजस्विता ने,
उनसे भी पाया सम्मान ॥

[२१]

झुके चरण मे उनके मस्तक,
झूठ-कपट सब छोड़ दिया।
सम्यक् श्रद्धा मार्ग दिखाया,
आया उनमे मोड़ नया ॥

[२२]

कइयों ने दी भेंट आपको,
सप्त-व्यसन छोड़ मन से।
कइयों के पथ-सुपथ बने हैं,
कई सरसब्ज बने धन से ॥

[२३]

सुमन चमन से चला गया पर—
जग मे छोड़ गया शुभ वास।
उपदेशों का नीर बहाया,
मिटा गया भवियों की प्यास ॥

[२४]

ऐसे जैन दिवाकर जग के,
महा दिवाकर कहलाये।
ऐसे गुरुवर के चरणों मे
श्रद्धा सुमन चढ़ायें ॥

[२५]

स्मृति ग्रन्थ रहे हृदय बीच मे,
पूज्यनीय बन जायेगा।
जय-जयकार रहेगी उसकी,
जो नित गुरु को ध्यायेगा ॥





गुलाब-सा सुरभित जीवन

सौ० मंजुलाबेन अनिलकुमार बोटाद्रा, (इन्दौर)
[बी. ए, अध्यापन विशारद]

भारत सतो का देश है। अर्थात् भारत का गौरव, भारत की शोभा महान् विभूति, सत, महात्मा हैं। अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सत्साहित्य-अमृत वाणी रूप पराग से अनेक भवीजनो को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जिनवाणी के माध्यम से चारगति मे फँसे अज्ञानी जीवो को बाहर निकालते हैं उनमे से आज अनेक सन्त इस अवनी पर नही हैं किन्तु उनकी सुरभि से उनके कार्यों से आज भी हमारा हृदय-विभोर हो जाता है।

गगन मे सूर्य उदय होता है धरातल चमक उठता है। उद्यान मे वृक्ष पर पुष्प विकसित होते हैं, वातावरण मे सुगंधि भर देता है। मानव समाज भारतीय ऐसे ही नर-रत्नो से परिपूर्ण हो जाता है। जिन्होंने जीवन को तप, त्याग की साधना के पथ पर आगे बढाया है। वहाँ समाज और धर्म को भी अलौकिक ज्ञान का ज्वलत प्रकाश दिया है।

स्थानकवासी समाज का इतिहास ऐसे ही एक-दो नही, सैकडो सन्तो को आदरणीय, वदनीय स्तुत्य जीवन और उनके ज्ञान का अलौकिक प्रभा से भरा है। उन्हीं महापुरुषो मे है 'जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब।'

गुलाब अपना सर्वस्व अर्पण करके वातावरण को सुरभिमय बना देता है। अगरबत्ती स्वय जलकर सारे वातावरण को शुद्ध बनाती है। उसी तरह सन्त स्वय अपने लिये ही नहीं जीते, किन्तु अपने अलौकिक ज्ञान का प्रकाश से भव्यात्माओ के हृदय की अँधियारी गुफा मे अज्ञान को नष्ट करते हैं और ज्ञान की ज्योति ज्वलित रखते है।

उस महान् आत्मा को जन्म शताब्दी के इस सुअवसर पर हम भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त किये बिना नहीं रह सकते। सच्ची श्रद्धा के पुष्प तो हम उनके गुणो को अपने जीवन मे धारण करके ही बढा सकते हैं। इस भावना से मैं श्रद्धा के मधुर क्षणो मे उस विराट् आत्मा के प्रति अपनी भाव पूर्ण श्रद्धाजलि अर्पण करती हूँ।



पूज्य गुरुदेव जैन दिवाकर जी

—प्रकाशचन्द मारु (मदसौर)

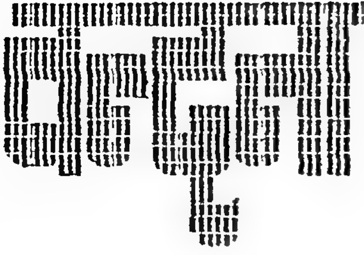
जैन दिवाकर-प्रसिद्ध वक्ता प० मुनि श्री चौथमलजी महाराज साहब एक महा सन्त थे जिन्होंने इस भारत-भूमि में जन्म लेकर अपना समस्त जीवन विश्व-कल्याण के लिये एव मानव-जाति की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था।

महलो से लेकर झोपडी तक के मानव को ज्ञानरूपी प्रकाश से देदीप्यमान करते हुए अनेक दुर्व्यसनो से छुडाकर हजारो जीवो को अभयदान दिलाया। गुरुदेव के सान्निध्य मे स्वर्ण जयन्ति महोत्सव चित्तौडगढ किले पर हुआ। यह उत्सव स्वर्णाक्षरो में लिखा गया है।

अन्त मे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज साहब की जन्म शताब्दी पर उनके श्रीचरणो में अपनी भावपूर्ण श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।









श्री गोपीकृष्ण व्यास, एम० ए०
साहित्याचार्य, नव व्याकरण शास्त्री, 'काव्यतीर्थ'

जैत्र वृत्तमुपास्य विश्वविजयी योऽजायताऽखण्डिते
नव्ये भव्यपुराणके जगति सत्कीर्त्तिप्रभाभास्कर ॥
दिव्यश्वेत - सिताम्वर. सकलवागर्थप्रकाराग्रणीर्
वाग्वैदग्ध्यधनोऽत्र चौथमलजी जीव्याज्जनाना हृदि ॥१॥

कष्ट शिष्टजनेषु सूक्ष्मसुधिया सृष्ट प्रकृत्या यदि
रञ्जन्मञ्जयति स्म मिष्ट सुगिराऽनायासतोऽशेषत. ॥
प्रज्ञाप्रज्ञसमस्तमानवगणे यो मानवत्व दधत्
सिन्धुस्रोत इवात्र चौथमलजी प्रोह्याज्जनाना हृदी— ॥२॥

द्वक्रोध मतभेदज व्यशमय द्वह्निन्तुराषाडिव
वन्द्योऽभूदत एव सर्वजगत. सत्सम्प्रदायैर्जनैः ॥
क्तान्तोऽर्चि. प्रतिपूजनार्थ विमलो धातु. सुवर्णोऽर्चित.
पण्ये पण्य जनैर्विविच्य सुवचोविद्वन्महार्घ्यो मणि ॥३॥

डिण्डिन्नादमवादयड्डमरुणा वर्णाञ्शिवस्तान्त्रिकान्
तद्वद्यो न्यवदत्सदैव विबुधान्धर्मं पर श्रावकान् ॥
रम्य बोधमवाप्य यः सुगुरु हीरालालतश्चा सप—
त्नद्वेषद्विपवारणार्थदमहिंसाख्यं व्रत प्राणयत् ॥४॥

प्रापद्यो जनिमत्र केसर सुदेव्या. स्वर्णदीरामतोऽ-
त सोऽभूद्विमलांशुचन्द्रपट धृत्तसघस्य सस्थापकोऽ— ॥
स्मच्छन्दप्रतिपादितार्थनयविद्धौरेयता सन्दधत्
रक्षार्थं प्रददौ सुकाव्यनयन सघाय नव्य सताम् ॥५॥

णोधातोस्तृचि जायते किमपि यद्रूप स शब्दो महान्
यस्मै युक्तमदायि तेन जिनसामर्थ्येन जैनागमे ॥
गुण्य पुण्ययुत ततो मुखरितं वृत्त च सघे महत्
रुष्टानप्यतिहर्षितान्प्रकुरुतेस्माध्यात्म शक्त्या यत. ॥६॥

देवा अप्यतिमानुषत्वगुणमाकर्ण्यास्य कर्णस्य तेऽ—
वश्य गोचरमालभन्त परमक्षणो विवाद पुन ॥



श्री अर्हत्कृपया विशामयितु मा जग्मुर्भुव भावुका
चौर्यंच्छद्ममनुष्यवेषमपिधायात्मीयता द्यामिवाऽ— ॥७॥
यत्प्राचीनयुगे यथा भुवि सुराश्चित्र चरित्र गुरो
मध्य लोकमुपागतस्य परया भक्त्याऽऽप्तुमेवाक्षिभि ।
लब्ध्वा भूरि सुख तथैव दिविषद्यूथोऽर्यगेह ययौ
जीवाऽऽनन्त्यभवान्विविक्त पथगान्कैवल्यमाप्तु सुखम् ॥८॥
मन्द मन्दमसौ मघव्य वचनैरोवोढ हव्यादवत्
हात्वाऽष्टादशवर्ष आयुपि गृह दीक्षा गृहीत्वा मुनी— ॥
राष्ट्रेऽराजत भारते सशरदा षट्के मरुत्सयुते
जय्य यस्य समस्त भूतलमनस्त्वासीद्वचो-गगया ॥९॥
कीर्तिर्यस्य ससार सागरदिशा सीमानमुल्लङ्घ्य च
जग्ध्वा नीलतल नभ खगतलेष्वाकाशते चन्द्रवत् ॥
यस्याभूच्चरित सुगन्धिसुमन कुन्दारविन्दे इव
होतेव भ्रमरान्द्विजान्यदवसङ्कृष्यस्थित भूरिव ॥१०॥
गोपीकृष्ण कृत वच सुमनसा गुच्छ गले धारयेत्
पीन· स्यान्मनसि स्वय स पुरुष सत्सङ्गतो भक्तिमान् ॥
कृत्वा सर्वशुभानि धर्मचरितान्यादाय पुण्य वितृ—
ष्णः सज्ज्ञानरत कुसङ्ग-विजयी विभ्राडिवाऽऽदीव्यति ॥११॥



भावार्थ

ॐ अपने विजयशील चरित्र स्वरूप रथ पर आरूढ होकर जिसने नये और पुराने सभी वर्गों के मानव मन पर विजय प्राप्त की, और अपनी सच्ची कीर्ति-पताका फहराते हुए विश्वसाहित्य के गहन अध्ययन तथा विशिष्ट रूप से जैनागमाऽध्ययन द्वारा प्रखर वाग्मिता-धन प्राप्त कर विश्व के प्रवक्ताओ मे अग्रस्थान-लाभ किया, वह श्री चौथमलजी महाराज जनमानस मे निरन्तर जीवित रहे ॥१॥ जिसने, कदाचित् स्वभाववश शिष्टजनो के मन मे कही कटुता आ गई तो उसे अपने सत्य और मधुर वचनो द्वारा इस प्रकार धो दिया जिस प्रकार सिन्धुनद का प्रवाह कीचड़ को धो देता है और जन-जन के मन को अनुरञ्जित करते हुए उन्हे मानवत्व का पाठ पढाया वह श्री चौथमलजी महाराज सदा निर्मल गङ्गाजल की भाँति प्रवाहि होते रहे ॥२॥



जिन्होने जनो के हृदय मे मतभेद के कारण उमडते हुए तथा भड़कते हुए क्रोध को, अग्नि को इन्द्र की भाँति शान्त कर जगत मे वन्दनीयता पाई और सभी सम्प्रदायो से आदर प्राप्त किया और सुवर्ण हीरे की भाँति जडकर अतुल शोभा पायी वह श्री चौथमलजी म० जनमानस मे जीवित रहे ॥३॥

जिस प्रकार शिवजी ने डमरू बजाकर पाणिनि मुनि को प्रबुद्ध किया ठीक उसी प्रकार श्रावको को श्री जैन दिवाकरजी ने भी अपने उपदेशो से जागृत किया। अपने सद्गुरु श्री हीरालालजी महाराज से सद्बोध प्राप्त कर आत्म-द्वेषी हाथी रूपी मद को दूर करने के लिए अहिंसा महाव्रत स्वय पालन करते हुए सर्वत्र अनुप्राणित किया। श्री जैन दिवाकरजी ने श्रीमती केसर देवी और श्री गङ्गारामजी से जन्म प्राप्त कर तथा अपने गुरुदेव से आशीर्वाद पाकर श्री श्वेताम्बर जैनसघ के प्रमुख सचालक बने और आत्मज्ञान के प्रचार और प्रसारार्थ अति सुन्दर साहित्य का निर्माण किया, जिससे सङ्घ को अति सुदृढ बनाया ॥४॥५॥ उन्होंने अपने उदात्त और उदार अध्यात्म-ज्ञान के द्वारा माननीय नेता बनकर जैनागम को ऐसा मुखरित किया, जिससे कई सज्जन अपने रागद्वेष को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर आत्मानन्द विभोर हो उठे ॥६॥ उनके देवोपम यश को सुनकर देवलोक से देवता भी मनुष्य जैसा कपट वेष धारण कर अपनी आँखो के विवाद को मिटाने के लिए पृथ्वी पर आये और उनके दर्शन कर बहुत ही आनन्द लाभ किया ॥७॥८॥ उन्होंने अनन्त जन्मो से आ रहे जीवो को कैवल्य सुख की उपलब्धि का साधन उपलब्ध कराने की इच्छा से ही अपने अट्ठारहवे वर्ष की आयु मे ही दीक्षा ग्रहण कर भारतराष्ट्र मे ५५ वर्षों तक चन्द्रवत् प्रकाश करते हुए मीठे-मीठे वचनो द्वारा सन्मार्ग प्रदर्शित किया ॥९॥

श्री जैन दिवाकरजी महाराज की कीर्ति सातो समुद्रो और सातो आसमानो को पार कर चन्द्रमा की भाँति चमक रही है। उनका सुगन्धिमय सच्चरित्र गुलाब और मोगरे के पुष्पो की भाँति भँवरे रूपी श्रावको के झुण्डो को आकर्षित करने मे कुशल है ॥१०॥ गोपीकृष्ण द्वारा रचित इन श्लोक-सुमनो को गले मे फूलो के हार की भाँति जो पहनेगा उसका मन मस्त हो जायगा तथा सत्सङ्गति का व्यसनी बनकर समस्त शुभकार्य करता हुआ कुसङ्ग का परित्याग कर स्वय दिवाकर की भाँति चमकने लग जायगा ॥११॥



जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज को सम्प्रदाय में न बाँधें

✡ श्री मानवमुनि (इन्दौर)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस युग के एक महान् राष्ट्रसन्त हो गये हैं, उन्होंने जैन समाज की एकता के लिए सभी सम्प्रदाय मुनिराजो को सगठित बनाने का प्रयास कोटा चातुर्मास मे किया। यह बड़ा पुरुषार्थ का काम हुआ। वे जैन समाज के ही नही अपितु मानव समाज के कल्याण के लिए ही अवतरित हुए थे। उनके प्रवचन मे जैनो के अलावा हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख तथा राजा-महाराजा, ठाकुर, जमींदार सब आते थे और एक साथ समान भाव से धर्मस्थान पर बैठते थे, किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था।

धर्मोपदेश के प्रभाव से हजारो व्यक्तियो से शराब, मास, पशुवलि का त्याग करवाया तथा लाखो पशुओ को अभयदान दिलाया।

भगवान महावीर के सिद्धान्तो को स्वय के जीवन मे अपनाया जिनके रग-रग मे सत्य-प्रेम, करुणा, अहिंसा का भाव भरा था। जैन समाज का गौरव बढाया। आज उनका नश्वर शरीर नहीं है, पर उनके समन्वय विचार आज भी अमर हैं।

जैन दिवाकरजी महाराज सम्प्रदाय के सन्त-सतियाँ उनके मानव समाज के कल्याणकारी कार्य को उठा लें तो विज्ञान युग मे महान् क्रान्तिकारी कार्य होगा।

उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि श्रद्धा-भक्ति से अर्पित कर सकेंगे।

दिवाकर स्तुति

✡ श्री गौतम मुनि

(१)

इस धवल धरा पर जैन दिवाकर,
कल्प तरु सम पल्लवित हुए।
तमाच्छादित ससार बीच मे,
आलोक पुज सम उदित हुए॥

(२)

विमल था व्यक्तित्व जिनका,
निर्मल था सयम—महा !
आचार—था उज्ज्वल रविसम,
धैर्य धरती सा अहा !

(३)

मानवता के थे उद्धारक,
कैसे नर-नारी भूल पाएँगे।
एकता के अग्रदूत मनस्वी,
गौरव - गाथा गाएँगे।



अनुकरणीय आदर्श : शतशः नमन

✡ आचार्य राजकुमार जैन
एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)
एच० पी० ए०, दर्शनायुर्वेदाचार्य
साहित्यायुर्वेद शास्त्री, साहित्यायुर्वेद रत्न
टेक्नीकल आफीसर (आयुर्वेद)
भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद, दिल्ली

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज समाज की उन दिव्य विभूतियो मे से है जिन्होंने आत्महित चिन्तन के साथ-साथ परहित की भावना से समाज को बहुत कुछ दिया है। वे करुणापुज और दया के सागर थे। उनका हृदय विशाल और लोक-कल्याण की भावना से ओतप्रोत था। वे आधुनिक काल के एक ऐसे आध्यात्मिक सन्त थे जिनकी वाणी में गजब का माधुर्य और अद्भुत आकर्षण क्षमता थी। उनके चरित्र मे विवेक और व्यवहार का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण था जो अन्यत्र दुर्लभ ही देखने को मिलता है। सहजता और स्वाभाविकता उनके रोम-रोम मे समाई हुई थी। यही कारण है कि उनके जीवन मे, आचरण मे या व्यवहार मे आडम्बर और कृत्रिमता कही देखने को नही मिली। आध्यात्मिकता उनकी जीवन-सगिनी थी और वे उसमे ही रँगे हुए थे। उन्होंने अपने उपदेशो मे केवल उन्ही बातो को कहा जिनका उन्होंने स्वय अनुभव किया और अपने आचरण मे उतारा। उन्होंने मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता को समझते हुए संसार मे नश्वरता के मध्य जीवन की सार्थकता और सफलता के उस केन्द्र विन्दु को भी समझने का प्रयत्न किया, जिसका प्रतिपादन आप्त वाक्य में निहित है। यही कारण है कि वे समाज मे मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए सदैव जागृत और तत्पर रहे।

वस्तुत. वे न केवल समाज के लिए, अपितु मानवमात्र के एक अनुकरणीय आदर्श थे। उन्होंने समाज को बहुत कुछ दिया है और समाज ने उनके उपदेशो से बहुत कुछ ग्रहण किया है। उनके उपदेशो के द्वारा समाज को जो दिशा निर्देश प्राप्त हुआ है उसके लिए समाज उनका चिर-ऋणी रहेगा। वे समाज मे रहते हुए भी जल मे रहने वाले कमल की भाति अलिप्त रहे। मोह और परिग्रह को उन्होंने सदैव त्याज्य मानकर उससे विरत रहे। वे वास्तव मे सन्त पुरुष थे, उनकी आत्मा महान् और उच्चतम गुणो के उद्रेक से आपूरित थी। ऐसे तपस्वी साधक को मेरा शतशः नमन है और उनके श्रद्धार्चन हेतु विनयपूर्वक कुसुमाजलि अर्पित है। ✡

जैन दिवाकर : दिवाकर का योग

✡ वैद्य श्री अमरचन्द जैन (बरनाला)

श्री जैन दिवाकरजी की उत्कृष्ट सयम तथा योग-साधना का जादू तो अकथनीय था। वड़े से वड़ा विरोधी आपके समक्ष नतमस्तक हो जाता था। आपके हृदय-मन्दिर मे चर-अचर जीवों के लिए क्षमा-शान्ति की लहर लहरा रही थी।

आप इस धरा-धाम पर भानु भास्कर की भाँति उदय हुए। उसी तरह साधना-पथ ग्रहण कर चमके, प्रकाश किरणें विखेरीं। अन्त मे भानु भास्कर की भाँति अलोकमय हो गये। ✡



वन्दना हजार को···

—श्री विमलमुनि 'धर्म भूषण'

लाखो मे नही थी वह दिव्य ज्योति आप मे थी,
भक्तो के सुहृदय भवन मे समाई है।
अथक परिश्रम से गाँव गाँव घूमकर,
घर घर जड़ जैन धर्म की जमाई है।
गद्य-पद्य ग्रन्थो द्वारा वीर वाणी का प्रचार,
किया झोपडी से लेके राज-महलो माँई है।
"विमल" श्री जैन भानु हो गया अदृश्य आज,
उन्ही के ज्ञान की रह गई यहाँ ललाई है ॥

दिव्य ज्ञानवान मार्तण्ड मुनि चौथमल,
लेकर जन्म कियो काम उपकार को।
बोले या न बोले पर दर्शक इच्छते यही,
देखते सदा ही रहे इनके दीदार को।
श्रोताओ को छोड गये सुखो मे तल्लीन हुए,
आप सा सुनावें कौन सुज्ञान ससार को।
मेरे देव होंगे जहाँ, वही पे स्वीकार लेंगे,
आशा है "विमल" मेरी वन्दन हजार को ॥

दिव्य ज्ञान की खान

✡ श्री जीतमल चौपडा (अजमेर)

दिव्य ज्ञान की खान दिवाकर, दिव्य ज्ञान की खान ॥टेर॥
इस कलयुग मे खूब बढ़ाई, जैन धर्म की शान ॥दिवाकर॥
जग जजाल समझकर छोडा, किया आत्म-कल्याण।
हीरालालजी से गुरुवर से, खूब वढाया ज्ञान ॥दिवाकर ॥१॥
देश-देश मे विचर-विचर कर, तारे जीव महान।
राजा-राणाओ तक पहुँचे, वीर का ले फरमान ॥दिवाकर॥२॥
वडे-वड़े लिख ग्रन्थ कविता, घर घर गुजाया ज्ञान।
सघ ऐक्य योजना मे फूकी, सबके पहले जान ॥दिवाकर ॥३॥
शोक ? शोक हा महा शोक है, कैसे करूँ वयान।
कोटा मे उस महापुरुष ने कर दिया महा प्रयाण ॥दिवाकर॥४॥
मर कर के भी अमर रहेगे, 'चौथ मुनि' गुणवान।
'जीत' शातिमय हो आत्मा, यही विनय भगवान ॥दिवाकर॥५॥



तप-त्याग की महान् ज्योति—

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

✲ श्री मदनलाल जैन [रावल पिण्डी वाले, जालन्धर (पजाब)]

महान् साधक तपोमूर्ति दिव्य ज्योति पु ज जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की शताब्दि मनाने का अभिप्राय यही है कि हम सब उनके महान् गुणो का अनुसरण करने की प्रेरणा लें। दिवाकरजी महाराज का जीवन विशेषताओ से युक्त था साधु समाज मे सगठन एव एकता की तीव्र तडप उनके जीवन की महान् विशेषता रही है। दिवाकर प्रवर श्री चौथमलजी महाराज एक महान् त्यागी सन्त तथा सरल सयमी, मृदु सौम्य, सुख-दु ख से निरपेक्ष, परम सेवा-भावी युग प्रवर्तक थे। आपश्री के आलोकमय महान् जीवन का लक्ष्य सत्य-प्राप्ति और आध्यात्मिक विकास था। वे जीवन भर आचरण मे पवित्रता, सात्विकता एव उदार-भाव विकसित करने के लिए कषाय-भावो तथा दुर्गुणो से सघर्ष करते रहे। आपश्री ने लोक-कल्याण एव समाज उत्थान और मानवता के विकास के लिए स्वय को समर्पित कर दिया था।

परम श्रद्धेय स्वर्गीय श्री दिवाकरजी महाराज के सयमी जीवन के सद्गुणो का कहाँ तक वर्णन करू ? मेरी तुच्छ लेखनी मे इतना बल ही कहाँ है, जो उस महान् आत्मा के दिव्य गुणो का चित्रण कर सके, फिर भी श्रद्धावश ज्योति-पुञ्ज-रत्न के प्रति कुछ अपने भाव लिख पाया हूँ, जो श्रद्धाजलि के रूप मे उन्हें ही समर्पित हैं।



हीरे की कनी थी

— मुनि श्री लालचन्द्रजी (जय श्रमण)

हीरे की कनी थी, 'मन' मोहन मनी थी जग,
चमत्कृति घनी थी मानो आभ बीज थी।
ख्याती की खनी थी "खूब" खूबी भी ठनी थी अति
जनता की मानी हुई सदा शुक्ल बीज थी।
'हुक्म दल' चौगुणो पुजाय 'वर्धमान' मिल्यो,
सुनते हैं काहू से न रीझ और खीज थी।
दो हजार सात मार्गशीर्ष सुद नौम आय,
कह दिया "दिवाकर चौथ" भुवि चीज थी॥

रिक्ता नवमी ने किया, पूर्णा बनन उपाय।
अवगुण रिक्ता "चौथ ग्रसि, रहि है अब पछताय।
सुद नवमी को था नही, शशि प्रकाश सन्तोष।
"चतुर दिवाकर" ले चली, पृथ्वी कर तम तोष॥



सार्थक नाम

☆ श्री अमरचन्द मोदी
(मन्त्री—'महावीर जैन नवयुवक संघ', ब्यावर)

स्वर्गीय जैन दिवाकर, जगत्वल्लभ, प्रसिद्धवक्ता, पूज्य गुरुदेव प० मुनि श्री चौथमलजी महाराज साहब एक महान् तेजस्वी पुण्यात्मा सत थे।

आपने सूर्य के समान, ज्ञान रूपी प्रकाश से जैनधर्म को भारत के कोने-कोने मे चमकाया अतः आप "जैन दिवाकर" कहलाये। आप अहिंसा, सत्य व क्षमा की दिव्य मूर्ति थे, आपकी यश-कीर्ति सारे जग मे फैली अत आप "जगत् वल्लभ" कहलाये। आपकी वाणी के प्रभाव से हजारो-लाखो जीवों को अभयदान मिला। आपके सदुपदेशो से हजारो-लाखो लोगो ने शराब, मास आदि कुव्यसनो के त्याग किए। आपके व्याख्यान मे जैन-अजैन, राजा, महाराजा आदि छत्तीसो कौम के लोग सम्मिलित होते थे, एक तरह से समवशरण की रचना देखने को मिलती थी अत. आप "प्रसिद्ध वक्ता" कहलाए।

आपका साहित्य उच्चकोटि का है जिसे पढकर मानव अपना जीवन उच्च व आदर्शमय बना सकता है। आपके द्वारा रचित कई भजन, आरतियाँ तो ऐसी हैं जो सार्वजनिक रूप से प्रात कालीन प्रार्थना मे घर-घर मे बोली जाती हैं, जो जैन समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं, जैसे 'ॐ अरिहताण', 'जय गौतम स्वामी, 'साता कीजो जी शातिनाथ प्रभु', 'ऋषभ कन्हैया लाला आदि। आप अनेक भाषाओ के ज्ञाता थे अत आप 'पडित' कहलाए।

सदैव सघठन व प्रेम के हामी थे। आपका हृदय विशाल था, विनय और सहनशीलता आपके स्वाभाविक गुण थे अत आप एक कुशल 'सत' कहलाये।

श्रद्धा की वह विराट् मूर्ति, विशिष्ट बुद्धिशाली, गम्भीरता का वह शान्त रत्नाकर सदैव जनता को लाभान्वित करता रहा, ऐसे पुण्यशाली सत के चरणों मे नतमस्तक होता हुआ श्रद्धा के सुमन अर्पित करता हूँ।

"जब तक सूरज चांद रहेंगे, जैन दिवाकर याद रहेंगे।
गूँज रहा है नारा घर-घर, धन्य धन्य गुरु जैन दिवाकर ॥"

भक्त सहारे....

☆ श्री दिनेश मुनि

जैन दिवाकर उज्ज्वल तारे।
प्राण पियारे भक्त सहारे।
करुणा सागर मोहन गारे।
शरणागत को पार उतारे ॥१॥

नही निहारी छवि तुम्हारी।
नाम स्मरण है मगलकारी ॥
सद्गुण क्यारी सौरभ न्यारी।
महिमा-भारी वाणी प्यारी ॥२॥

गुण-गरिमा का गान करूँगा।
पार कहाँ मैं पाऊँगा ॥
भक्ति नाव मे चढ जाऊँगा।
भला क्यो न तिर जाऊँगा ॥३॥



जैन-दिवाकर-मुनि श्री चौथमल्लजित्प्रशस्तिः

श्री नानालाल जवरचन्दजी रूनवाल, बी० ए०

[मन्त्री—संस्कृत परिषद, झाबुआ (मध्य प्रदेश)]

जयति भगवान् वीरो, जयति जिनशासनम् ।
सद्धर्मस्य प्रणेतारो जयन्ति मुनिपुंगवाः ।१।

मुनिश्चौथमल्ल. सुधर्मोपदेष्टा, प्रजात पुरे नीमचे ख्यातनाम्नि ।
पिता तस्य गगायुतो रामसंज्ञस्तदम्वा च सुश्राविका केशराख्या ।२।

प्रभावोत्पादि वक्तृत्व व्यक्तित्वमपि चाद्‌भुतम् ।
वाणी समोहिनी तस्य शैली वाह्लाददायिनी ।३।

मेदपाट-महाराणा-श्रीमत्फतहसिंहजित् ।
कृतवान् दर्शन तस्य श्रुतवान् धर्मदेशनम् ।४।

(भुजंग प्रयातम्)

अनेके नरेशास्तथामात्यवर्गा, पुरश्रेष्ठिवर्याश्च विद्वद्वराश्च ।
सवर्णा अवर्णास्तथा मुस्लिमा वाऽभवन् भक्तिनम्रा जनाना समूहा. ।५।

गतो यत्र तत्रापि धर्मप्रचारोऽभवत् सर्ववर्गेषु वर्णेष्ववाध ।
सभाया जना मन्त्रमुग्धा. प्रजाता मुने. शीर्षकम्पेन सार्धं समस्ताः ।६।

(उपजातिवृत्तम्)

धर्मप्रचारेण च भूयसाऽसाववाप कीर्ति विपुला विशुद्धाम् ।
मान्योऽभवज्जैन दिवाकरेति वक्ता प्रसिद्धश्च जनप्रियश्च ।७।

मुनिसघैक्यकार्यार्थं यत्नशीलोऽभवन्मुनिः ।
कृतवान् सम्प्रदायस्य विलीनीकरण तथा ।८।

आयुषश्चान्तिमे वर्षे धर्माराधनतत्पर ।
कोटानाम्नि पुरेख्याते वर्षाया न्यवसन्मुनि. ।९।

तत्र सयुक्तरूपेण श्वेताम्वरैर्दिगम्वरैः ।
सम्मिलय मनिभिः सार्धं कृतवान् धर्मदेशनाम् ।१०।

मुनिखाकाशनेत्राब्दे शुक्लपक्षेऽग्रहायणे ।
तत्रैवासौ दिव यातो नवम्या रविवासरे ।११।

रविवारे मुनेर्जन्म दीक्षापि रविवासरे ।
व्याख्यानमन्तिम चैव स्वर्वासोऽपि च तद्दिने ।१२।

(उपजातिवृत्तम्)

यद्यप्यसावद्य न भौतिकेन देहेन भूलोकमलकरोति ।
यश. शरीरेण विधास्यतीह स्थिति स यावत् क्षितिचन्द्रसूर्या. ।१३।

(मन्दाक्रान्ता)

आदिष्ट. सन्नजितमुनिना लेखनाय प्रशस्ते—
लोके सघे सुविदितमुनेश्चौथमल्लस्य पद्यं ।
नानालालोऽर्पयति मुदितो ह्यंजलि श्रद्दधानः
कांक्षन्नेषा भवतु भविकान् प्रेरयित्री सुमार्गे ।१४।



जैन दिवाकर : जग दिवाकर

☆ लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज'
एम ए. (हिन्दी-सस्कृत)

श्री जैन दिवाकरजी महाराज अहिंसा-सदाचार-अपरिग्रह के प्रवल प्रचारक थे। वे वाणी के एक ही जादूगर थे, उनकी वाणी में ओज था और देशना मे मानव-जीवन दर्शन था। मानव धर्म की व्याख्या का, गूढ़ तत्वो के विवेचन का उनका अपना ढग था। उनके बहुमूल्य विचारो का प्रवेश रक से राजा तक के हृदय मे निराबाध था। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अपनत्व और एकता-मूलक था।

जो कार्य भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष समारोह के सन्दर्भ मे 'समणसुत्त' के रूप मे आचार्य विनोवा भावे की प्रेरणा से किया गया, उस कार्य की नीव की ईंट-वहुत पहले 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' के रूप मे दिवाकरजी महाराज देश और समाज के सम्मुख जमा चुके थे। वे सही अर्थों मे आत्मधर्मी, समाजधर्मी और राष्ट्रधर्मी साधु थे। वे साम्प्रदायिकता और जातीयता के स्थान में मानवता की ही आराधना करते थे। वे देश और समाज के निम्न चारित्रिक स्तर को अतीव उन्नत और उज्ज्वल स्तर पर देखने के लिए लालायित थे।

एक वाक्य मे दिवाकर वस्तुत दिवाकर थे।

श्रद्धार्चन

स्व० गुरुदेव जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की लोहामंडी श्रीसघ (आगरा) पर विशेष कृपा रही है। सन् १९३७ ई. मे आपका आगरा चातुर्मास एक ऐतिहासिक प्रवास रहा। यहाँ के श्रीसघ की भावभरी भक्ति और कर्तव्यशीलता देखकर गुरुदेवश्री ने कहा था—"लोहामडी सोनामडी हो जायेगी।" गुरुदेवश्री की वह वाणी आज शत-प्रतिशत सफल हो रही है।

गुरुदेवश्री का आगरा में दो बार पधारना हुआ। यहाँ के प्रमुख श्रावक सेठ रतनलालजी जैन (मित्तल), श्री वावूरामजी शास्त्री और सेठ कल्याणदासजी जैन (आगरा के भू. पू. मेयर) ने तन-मन-धन से गुरुदेव की सेवा की और धर्म-प्रचार मे अपूर्व उत्साह दिखाया।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने, जैनधर्म को मानव धर्म वनाने का महान् प्रयत्न किया था। उनके असीम उपकारो से न केवल जैन समाज, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज सदा कृतज्ञ रहेगा। उस महापुरुष के प्रति हमारी कोटि-कोटि श्रद्धाजलि।

श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन श्री सघ, लोहामंडी, आगरा।

अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	मत्री
जगन्नाथ प्रसाद जैन	पदमकुमार जैन	चन्द्रभान जैन



एक अद्भुत फूल था…

✡ महासती मधुबाला (नंदुरबार)

उपवन मे हजारो फूल खिलते हैं, सभी के रग-रूप, सौरभ अलग-अलग ! लेकिन जिस फूल की सुगन्ध सबसे अधिक लुभावनी, सबसे प्रखर होती है, जिसका सौन्दर्य सबसे विलक्षण होता है; दर्शकों का ध्यान उसी पर केन्द्रित होता है और लोग उसी फूल को लेने, देखने तथा घर मे लगाने को लालायित रहते हैं।

ससार-उपवन मे जिस मनुष्य मे अद्भुत गुण-सौरभ परोपकार का माधुर्य और शील-सदाचार का सौन्दर्य कुछ विलक्षण होता है, ससार उसी की ओर आकृष्ट होता है और उसे ही अपने शीश व नयनों पर चढाता है।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज एक ऐसे अद्भुत फूल थे जिनमे त्याग-वैराग्य, करुणा-वात्सल्य आदि का अपार सौरभ और सौन्दर्य था, ससार उपवन के वे एक अद्भुत फूल थे। जिन्हें युग-युग तक संसार याद करता रहेगा।

✡

ज्योतिमान गुरुदेव

—कविरत्न श्री केवल मुनि

(तर्ज—चुप-चुप खड़े हो)

जैन दिवाकर गुरुदेव ज्योतिमान थे।
बड़े पुण्यवान थे जी बड़े० ॥टेर॥
वृद्धापन मे भी केहरी से ललकारते।
पापियो के अधर्मों के जीवन सुधारते ॥
असरकारक उपदेश-रामबाण थे ॥१॥
नर-नारी दौड़े आते मानो कोई माया है।
मीठी-२ वाणी जैसे अमरत पिलाया है ॥
हिन्द के सितारे प्यारे भारत की शान थे ॥२॥
दर्शन मिले कि रोम-रोम खुशी छा गई।
दया पालो ! कह दिया तो मानो निधि पा गई ॥
त्यागी-दिव्य मूर्ति थे-करुणा की खान थे ॥३॥
शाति-प्रसन्नता का स्रोत सदा बहता था।
छोटे-२ गाँवो मे भी मेला लगा रहता था।
चारो ओर पूजे जाते-देवता समान थे ॥४॥
जैन जैनेतर आज उनके लिये रोते हैं।
सैकडों वर्षो मे कभी ऐसे साधु होते हैं।
अग्रदूत, सघ-ऐक्य योजना के प्राण थे ॥५॥
जय-२ प्यारे गुरुदेव याद आयेंगे।
तव-२ आँसुओ से नैन भर जायेंगे ॥
कहाँ गये "केवल मुनि" देव वरदान थे ॥६॥



जैन दिवाकर पंच-पंचाशिका (पचपनिका)

(सस्कृत—वशस्थ, हिन्दी-हरिगीतिका, रचयिता-मुनि श्री घासीलालजी महाराज)



प्रणम्य देवादिनुत जिनेश तीर्थंकर साञ्जलि-घासिलालः ।
वशस्य वृत्ते वितनोति लोकेष्वनाविलां चौथमलस्य कीर्तिम् ॥
मुनि घासिलाल जिनेन्द्र की करवन्दना विधि सर्वथा ।
विख्यात करता लोक मे मुनि चौथमल की यशकथा ॥१॥

महात्मनां पुण्यजुषाम् शमीना श्रृण्वन् यशः शुद्धमति लभन्ते ।
प्रसिद्धिरेषा जगता हिताय प्रयत्नशीलं कुरुते मुनि माम् ॥
है ख्यात जग मे ऋषिजनो की यश सुने मति शुद्धि हो ।
संयत वनाती है मुझे यह लोकहित की वृद्धि हो ॥२॥

ऋतुं वसन्त समवाप्य वाटिका, विधु यथा शारदपौर्णमासिका ।
व्यराजत प्राप्य तथा जगत्तल दिवाकर चौथमल मुनीश्वरम् ॥
ज्यो पा वसन्त को वाटिका शरदिन्दु को राका निशा ।
त्यो चौथमल मुनिराज से सर्वजन राजित यशा ॥३॥

मही प्रसिद्धा खलु मालवाभिधा नृपैरभूद् विक्रमभोजकादिभि ।
तथैव जाता धरणी नु धन्या दिवाकरश्चौथमलेन साधुना ॥
विख्यात मालव भूमि थी उन भोज विक्रमराज से ।
भूलोक धन्या वह हुई श्री चौथमल मुनिराज से ॥४॥

मुनि भविष्णु जननी तनूद्भव प्रसूय पूत कुरुते कुल स्वकम् ।
स्वकीय मात्रे स यश स्तदादिशद् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
मुनि भवि सुत को जन्म दे जो कुल पवित्र करे वही ।
यह यश दिया निजमातुको श्री चौथमल मुनिराज ही ॥५॥

पुरातन पुण्यफले शरीरिणाम् सुखस्य हेतुर्य विना सदा भुव ।
अभूषयल्लोकमिम स्वजन्मना दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
था पूर्व सचित पुण्यफल सतत सुखो का हेतु था ।
भूषित किया निज जन्म से जो चौथमल मुनिराज था ॥६॥

महीविभूषा भुवनेषु मन्यते सभूषणा भारतवर्षतस्तु सा ।
अभूद् यदशे स तु सर्व भूषणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर. ॥
है लोक मे भूषण यही भारत विभूषित भूमि है ।
जह चौथमल मुनिराज भव वह सर्वभूषण भूमि है ॥७॥

पिताऽभवद्धन्यतमो जनप्रिय गगायुतोय खलु राम नामक. ।
निरीक्ष्य लोकेषु सुकीर्ति मौरस दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ॥
था पिता गगाराम नामक धन्य सुत को देखकर ।
सव लोक में विख्यात औरस चौथमल ज्यो ऊर्णकर ॥८॥



अय महात्मा सतत जिनप्रियो जिनेन्द्रवार्ता श्रवणोत्सुक सदा ।
देहात्मचिंतार्पित धीरजायत दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
था मतत जनप्रिय ये मुनि अर्हत कथा सुनता सदा ।
देहात्मचितारत मनस्वी चौथमल मुनिराज था ।।९।।

विनश्वर पुष्कल कर्मसम्भव देह प्रपुष्णन् सुवमेति मानव ।
इति प्रचिताज्वलनेन दीपितो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
दिन रात नश्वर देह के पोपण निरत जन हृष्ट है ।
चिन्ता शिखा दीपित मुनीश्वर चौथमल अति श्रेष्ठ है ।।१०।।

समुद्र मार्गाक्षिनवेन्दु वत्सर (१९३४) त्रयोदशी कार्तिक शुक्ल पक्षजे ।
खेदिने केसरबाईतोऽभवद् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर. ।।
उन्नीस सौ चौंतिस त्रयोदशि शुक्ल कार्तिक पक्ष मे ।
थे हुए केसरबाई के रवि दिन दिवाकर कक्ष मे ।।११।।

सनेत्रबाण ग्रहचन्द्रहायने (१९५२) शुभे सिते फाल्गुन पचमी तिथौ ।
व्रताय दीक्षा प्रयतो गृहीतवान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
बावन अधिक उन्नीस सौ फागुन तिथी सित पञ्चमी ।
ली थी मुनीश्वर चौथमल व्रत हेतु दीक्षा सयमी ।।१२।।

न दुर्लभा नन्दन कानने गति, नचाप्य शक्यो जगतः सुखोद्भव ।
विवेद सम्यक्त्वमति सुदुर्लभा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
दुर्लभ नही नन्दन गमन नहि लोकसुख की प्राप्ति ही ।
सम्यक्त्व पाना है कठिन श्री चौथमलजी मति यही ।।१३।।

यथात्मपित्तादि वशाद् विलोक्यते, सित. पदार्थोऽपि हरिद्ररागवान् ।
अलिस्तथैवेति विवेद सर्वथा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
ज्यो पित्त दूपित नेत्र से मित वस्तु पीला दीखता ।
त्यो भ्रमजनो को सर्वथा यह चौथमल था दीपता ।।१४।।

अय महात्मा सकलेऽपि भारते स्वतेजसा धर्षित-दुर्गुणाशय. ।
पद प्रणायेन भुव समीयिवान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
निज तेज धर्षित दुष्टजन को कर अखिल इस भुवन मे ।
दिनकर मुनीश्वर चौथमल सुख मानता पदगमन से ।।१५।।

गुणानुराग स्वजने समानता समस्तशास्त्रेषु विवेचनाधियम् ।
अवाप्तुमुत्को भवतिस्म सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
समता जनो मे राग गुण मे शास्त्र मे अनुशीलना ।
को प्राप्त करने की सदा थी चौथमल की एषणा ।।१६।।

दिनेन चाल्येन गुरोरुपासणादवाप्तविद्यागतशेमुषीधन ।
सविस्मय लोकममु चकार स दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
थोडे दिनों मे [illegible] । से प्राप्त विद्या थी घनी ।
विस्मित जगत को [illegible] श्री [illegible] नकर मुनी ।।१७।।



नयान्विता तस्य मुन' मति. सदा दधार दिव्या प्रतिभासभाङ्गणे ।
अतो जगद्वल्लभतामुपागतो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर. ॥
थी सभा मे प्रतिमा विलक्षण सर्वनय व्याख्यान मे ।
अतएव जगवल्लभ बने श्री चौथमल सर्वलोक मे ॥१८॥

गुरुर्गरिष्ठो विबुधाधिपाश्रयाद् बुधोवरिष्ठो वसुधाधिपाश्रयाद् ।
अनाश्रयेणैव बभूव पूजितो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर. ॥
सुरराज आश्रय से वृहस्पति बुधवरिष्ठ नरेन्द्र से ।
आश्रय विना पूजित हुए श्री चौथमल देवेन्द्र से ॥१६॥

गुण गृहीत्वेक्षु रसस्य जीवन प्रसून गन्धञ्च समेत्यराजते ।
परन्तु दोषोज्झित सद्गुणैरय दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
पा पुष्प गन्ध विराजते जल इक्षु के माधुर्य से ।
पर चौथमल मुनिराज तो निर्दोष सद्गुण पुञ्ज थे ॥२०॥

स सशयस्थान् विषयान् विवेचयञ्जिनेन्द्र सिद्धान्त विदा समाजे ।
चकार सम्भाषण मोहितान्जनान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर' ॥
सदिग्ध पद व्याख्यान कर शास्त्रज्ञ जैन समाज मे ।
भाषण विमोहन की कला थी चौथमल मुनिराज मे ॥२१॥

अपडितास्सन्त्वथवा सुपण्डिता विवेकिनस्सन्त्व विवेकिनोऽथवा ।
स्वभावतस्त सतत समेऽननमन् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरम् ॥
पण्डित अपण्डित या विवेकी सर्वजन सामान्य हों ।
थे भाव से करते नमन श्री चौथमल को नम्र हो ॥२२॥

नमस्कृतोऽपि प्रणत क्षमापना-मयाचत प्राणभृत. सभावन ।
विरोध बुद्धि व्यरुणत् स्वतो मिथो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ॥
जन प्रणत थे पर वे सदा जन से करें याचन क्षमा ।
था विरोध नहीं परस्पर चौथमल मे थी क्षमा ॥२३॥

ययास्वरूप प्रविहाय कीटका विचिन्तनाद भ्रामररूपमद्भुतम् ।
समाश्रयन्ते यतिस्तया दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
ज्यो कीट अपना रूप तज चिन्ता निरत अलि रूप को ।
पाता यतन करते मुनि त्यो चौथमल निज रूप को ॥२४॥

तम स्वरूप सुजनैर्विगर्हित विरागभूमि कुगति प्रगर्तकम् ।
स्वकर्मरूप कलयन् कदर्थय दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ॥
तमरूप अति सज्जन विनिन्दित कुगतिप्रद वैराग्यभू ।
करते कदर्थन कर्म को श्री चौथमल मुनिवर प्रभू ॥२५॥

प्रकृष्ट तीर्थंकर दृष्टसत्पथाऽ श्रयाज्जनस्सर्वसुख समेधते ।
इतीह सिद्धान्तमवाललम्बत दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ॥
श्रेष्ठ तीर्थंकर विलोकित पथगमन सब सुख मिले ।
कहते सदा यह चौथमल सिद्धान्त का अवलम्ब ले ॥२६॥



उदारभावो यतकायवाड्.मना निरीहता स्वावपुषा प्रकाशयन् ।
जगद्विरागेण सदा विराजते दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर. ।।
औदार्य युत मन वचन काया तन प्रकाश निरीहता ।
था जग विरति से सर्वदा श्री चौथमल मुनि सोहता ।।२७।।

जगत्प्रसिद्धा विविधाशयाजना समागता श्रावक श्राविकादयः ।
मनोरथान् पल्लवितान् प्रकुर्वते दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
थे श्राविका श्रावक अनेको विविध फल के आश मे ।
करते मनोरथ सफल आ जन चौथमल के पास मे ।।२८।।

मनोरथं कल्पतरुय्यर्थायिनां दुदोह भक्यागत शुद्धचेतसाम् ।
कुहेतुवादाश्रयिणामकीर्तिदो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
कल्पतरु मम भक्ति युत आगत जनो की कामना ।
पूरण किये श्री चौथमल पर था जिन्हे सद्‌भावना ।।२९।।

वचासि तस्यां स्वगुरो समासद विशिष्ट वक्तृत्वकलागुरोर्वच ।
निशम्य नेमस्तम नन्यमानसा दिवाकर चौथमल मुनीश्वरम् ।।
वैशिष्ट्य युत उनके वचन सुन के समासद प्रेम से ।
करते नमन थे कलागुरु मुनि चौथमल को नेम से ।।३०।।

कुमार्गगान् भिन्नमति न्न्यवेदय ज्जिनेन्द्र सिद्धान्त व चोमिरीहिते ।
जिनेन्द्रवार्ताश्रयिणो व्यधापय दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
स्मृति हीन कुत्सित पथ प्रवृत्त जिनेन्द्र दर्शित मार्ग मे ।
सिद्धान्त वचनो से मुनीश्वर आनते सन्मार्ग मे ।।३१।।

विहारकालेकमनीयमानन व्यलोकयन् भव्यजना हतावयम् ।
इत्येवमूचु पथिदूरभागते दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।।
भव्य जन थे देखते कमनीय मुख मुनिराज के ।
थे लोग पछताते परस्पर चौथमल पथ साज के ।।३२।।

समाधिकाले निहितात्मवृत्तिमान् विभातिवाचस्पतिवत् समास्थितः ।
इम वदन्तीह जना परस्पर दिवाकर चौथमल मुनीश्वरम् ।।
गुरु मम सभा मे शोभते थे योगयुत निज वृत्त थे ।
यो वोलते जन थे परस्पर चौथमल के कीर्ति थे ।।३३।।

उदीयमाने दिवि भास्कर जनो गुरून्पदार्थान् कुरुते समक्षम् ।
अणुस्वभावानपि तानवेदयद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ।।
गुरु वस्तु को जन देखते रवि जव उदित हो गगन मे ।
पर सूक्ष्म को भी थे दिखाते चौथमल निज कथन मे ।।३४।।

महाजना वैश्य कुलोद्‌भवा जना स्वकर्म बन्धस्य क्षयाय सन्ततम् ।
ने मुः प्रभाते विधिवद् व्रतेस्थिता दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
निज कर्म वन्ध क्षयार्थ सन्त वैश्य कुलभवभक्ति से ।
ये दिवाकर को सतत करते नमन अनुरक्ति से ।।३५।।



अप्राप्त वैराग्य जिनोक्त सत्पथ प्रयाण कामा बहव. सुशिक्षिता ।
सुशिष्य लोका सतत सिषविरे दिवाकर चौथमल मुनीश्वरं ॥
पाकर विराग जिनेन्द्र नय मे गमन करना चाहते ।
थे सुशिक्षित शिष्यगण मुनि चौथमल को सेवते ॥३६॥

निशीथिनी नाथ महस्सहोदर विभ्राजते स्माम्वरमस्य पाण्डुरम् ।
जना. स्ववाचो विषय स्वकुर्वते दिवाकरं चौथमल मुनीश्वरं ॥
थे निशाकर के सदृश अम्वर युगल शित शोभते ।
जन दिवाकर चौथमल मुनि के विषय मे वोलते ॥३७॥

नभेदलेशोऽपि वभूव जातुचित्, प्रशासति स्थानकवासि मण्डलम् ।
जना न तस्मिञ्जहृति स्म सत्पथ दिवाकर चौथमले मुनीश्वरे ॥
जव जैन मण्डल शासते थे भेद नही किंचित कही ।
नहि छोडते सन्मार्ग को वे चौथमल जव तक यही ॥३८॥

वणिग्जना न्याय्य पथानुवर्तनाद् प्रकामवित्तार्जित लब्ध सत्क्रिया ।
वभु. स्वधर्मेण गुरौ प्रशासके दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
थे वैश्यगण अतिशय धनी सत्कार पाते न्याय से ।
थे शोभित निज धर्म से श्री चौथमल जव ज्याय थे ॥३९॥

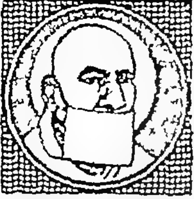
न दु खदारिद्र्य भवायकश्चन प्रधर्षिता ज्ञानतम. समन्ततम् ।
उपास्य भक्तेह चरित्रशालिनम् दिवाकर चौथमल मुनीश्वरम् ॥
पाते न दु.ख दरिद्रता चारित्र शाली जन सभी ।
अज्ञान नाशक चौथमल गुरु को नमन करते जभी ॥४०॥

चकार हिंसानृत - चौर्य - प्रवञ्चना कामरताश्चमानवान् ।
जिनेन्द्र सिद्धान्त पथानुसारिणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
चोरी अनृत हिंसा प्रवञ्चन काम चरत जो लोग थे ।
सव त्याग जिन पथ रत हुए जव चौथमल उपदेशते ॥४१॥

जना वदन्तिस्म मृदुस्वभावो नृदेहधारी सुरलोकनायक. ।
इहागतो धर्म प्रचार कारणाद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर. ॥
नर देहधारी देवनायक जैनधर्म पसार ने ।
आये यहाँ हैं लोग कहते चौथमल जग तारने ॥४२॥

कुरुध्वमाज्ञा मनुजा ! कृपालोर्महेन्द्र देव प्रमुखैर्नुतस्य ।
जिनेश्वरस्येति विदेश सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ॥
हे मनुज देव महेन्द्र युत जिनदेव की आज्ञा करो ।
थे चौथमल उपदेशते भवदु ख सागर से तरो ॥४३॥

अनित्यभूतस्य कलेवरस्य त्यजध्वमस्योपरमाय वासनाम् ।
समान स लोकानिति सदिदेश दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वर ॥
नश्वर कलेवर मुक्ति हित निज त्याग दो सव वासना ।
देते दिवाकर चौथमल नरलोक को यह देशना ॥४४॥



स्वकर्म सन्तान विराम प्राप्तये प्रयासमासादयति स्म सन्ततम् ।
शरीर - सपोषण कर्म सत्यज द्दिवाकरश्चौयमलो मुनीश्वरः ॥
निज कर्म तन्तु विरामपाने यत्न मुनि करते सदा।
ये देह पोषण कर्म छोडे चौथमल मुनि सर्वदा ॥४५॥

भजस्वधमत्यज लौकिकैषणां जहीहि तृष्णा कुरु साधु सेवनम् ।
कथा प्रसङ्गेन जनानपाविशद्दिवाकरश्चौयमलो मुनीश्वर ॥
कर धर्म त्यागो लोक सुख तृष्णा विरत साधु भजो।
कहते सभा मे चौथमल मुनि धर्महित सब सुख तजो ॥४६॥

जगत्पवित्रं कुरुते मुने कथा अतोहि भक्ति कुरुतादनारतम् ।
जगत्प्रिये साधु समाजसम्मते दिवाकरे चौयमले मुनीश्वरे ॥
जगपूत करती मुनिकथा अतएव भक्ति सदा करो।
जगत प्रिय अति साधु मानित चौथमल का पग धरो ॥४७॥

जिन प्रयातेन पथापरिव्रजन् समाचरल्लोक हिताय किन्न ।
कृतज्ञतां तत्र तनुष्व सन्ततं दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
जिन पथ गमन करता मुनीश्वर क्या नही जग हित किया ।
सन्तत वनो मुनि कृत्यवित श्री चौथमल जो धन दिया ॥४८॥

जिनेन्द्र सिद्धान्त विवेचने रत समस्त मेवागमयत् स्वजीवनम् ।
इय ममानृण्यमुपैत्वतो मति दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ॥
जिन नय विवेचन मे मुनि जीवन समस्त विता दिया।
होने उऋण मुनि चौथमल से कृत्य मैंने यह किया ॥४९॥

भवाटवी सन्तमसापहारिणं जगन्नुतम्मोक्ष पथ प्रचारिणम् ।
विशुद्ध भावेन नमामि मानसे दिवाकर चौयमलं मुनीश्वरम् ॥
गहन जग के ध्वान्त हरते मोक्ष पन्थ प्रचारते।
मानस विमल मे चौथमल मुनि को सदा हैं मानते ॥५०॥

नमोऽस्तु तुभ्यं भुविपापहारिणे नमोऽस्तु तुभ्यं जनशर्मकारिणे ।
नमोऽस्तु तुभ्यं सुखशान्ति दायिने, नमोऽस्तु तुभ्य तपसो विधायिने ॥
तुमको नमन जगतापहारी सौख्यकारी नमन हो।
तुमको नमन सुख-शान्तिदायी तपसो विधायी नमन हो ॥५१॥

नमोऽस्तु तुभ्य जिनधर्मधारिणे नमोऽस्तु तुभ्य सकलाघनाशिने ।
नमोऽस्तु तुभ्य सकलार्द्धिदायिने नमोऽस्तु तुभ्य सकलेष्टकारिणे ॥
तुमको नमन जिनधर्मधारी पापहारी नमन हो।
तुमको नमन सव ऋद्धिदायी इष्टकारी नमन हो ॥५२॥

कृपाकटाक्षेण विलोक्य स्व जन तनोतु वृत्ति जनतापहारिणीम् ।
स्व सप्तभगीनय प्राप्त सन्मति दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ॥
कृपा दृष्टि प्रदान कर निजलोक सव दुख हरे।
निज सप्तभगी नीति से मुनि चौथमल सन्मति करे ॥५३॥



प्रसादमासाद्य मुनेरनारत विधीयेत येन नुति विधानत ।
सुख स मुक्त्वेह महीतलेऽखिल परत्रचावाप्स्यति सौख्य सम्पदम् ॥
पाकर कृपा मुनि की सतत जो रीतिपूर्वक प्रार्थना ।
करते सकल सुख भोग कर परलोक मे सुख सम्पदा ॥५४॥

मुने. श्री चौथमल्लस्य पञ्च पञ्चाशदात्मिका ।
घासीलालेन रचिता स्तुतिर्लोक हितावहा ॥
घासीलाल मुनि रचित ये पढे विनय जो कोई ।
सकल सुखो को प्राप्त कर लोक हितावह होइ ॥५५॥



दिवाकर श्रद्धांजलि

☆ श्री भंवरलाल दोशी, बम्बई

जैसे तपता सूर्य है, वैसे चमके आप ।
नष्ट किया अज्ञानतम, काटा जन सताप ॥
दिवस रात को एकका, दिया सदा उपदेश ।
वाणी अमृत तुल्य थी, मेटा जन मन क्लेश ॥
कवि रवि विद्वान थे, श्रमणो की थे शान ।
रटे तुम्हारा नाम जो, पूर्ण हो अरमान ॥
चौ दिशा मे आपने, किया धर्म-प्रचार ।
थकना तो सीखे नही, जग-वल्लभ अणगार ॥
महावीर के नाम की, ध्वज फहराकर आप ।
लगा दिए सुमार्ग पर, करते थे जो पाप ॥
जीवन ज्योति बुझकर, हुवा स्वर्ग मे वास ।
मगर तुम्हारा नाम ये, देगा सतत प्रकाश ॥
हाथ जोडकर चरण मे, आते दानव देव ।
रात अवस्था मे कभी, करते थे वो मेव ॥
जहाँ पडी थी चरण रज, हुआ मगलानन्द ।
कीर्ति यश फैलाकरे, जब तक सूरज चन्द ॥
जय-विजय हो आपकी, वन्दन शत-शत वार ।
यही दास की आश है, करदो भव से पार ॥

☆☆



गीत

☆ श्री नवीन मुनिजी (मजल, मारवाड़)

(तर्ज—घर आया मेरा परदेशी ...)

दिवाकर जग मे छाया,
जन-जन ने मिल गुण गाया ॥टेर॥
नीमच नगरी का प्यारा
गगा - केशर - का तारा
भाग्य सुहाना जो लाया ॥१॥
प्राची मे ज्यो सूर्य खिला
"दिवाकर" त्यो हमे मिला
प्रसिद्धवक्ता पद पाया ॥२॥
सयम-मे अनुरक्त वना
हर मानस था भक्त वना
धर्म-ध्वजा को फहराया ॥३॥
उपदेशो की अजव छटा
मानो वरसी मेघ घटा
जीवन सुन-सुन सरसाया ॥४॥
जैन - अजैन जिसे जाने
दिव्य गुणि जिनको माने
"नवीन" सुखद सघ कहलाया ॥५॥

☆☆

गीत

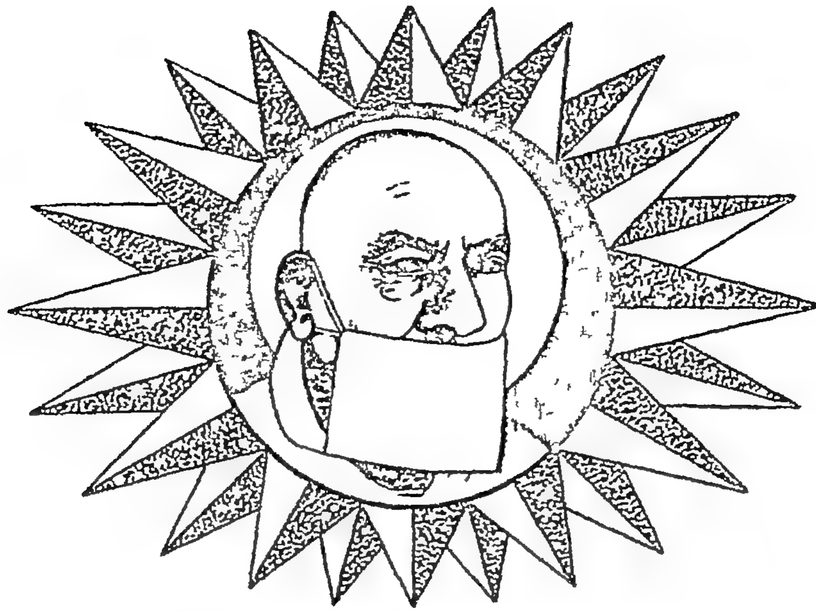
(तर्ज—मैं तो आरती उतारूँ रे ...)

मैं तो पल-पल पुकारूँ रे, जय जैन दिवाकर की
सदा होवे जय-जयकार, महावीर शाला में
भक्तो के भरे हैं भण्डार, महावीर शाला मे
सदा होते है मगल-गान, प्यारे भारत मे
पिता के प्यारे दुलार, चौथमल गुरुवर है-२
माता केशर के नन्द सुकुमार, चौथमल गुरुवर है
किया कोटा शहर को निहाल, चौथमल गुरुवर ने
—जिनको पुकारो रे, प्यारे भारत में ..
सदा होती है सम भाव, जिनके जीवन-दर्शन मे
सगठन का नही है अभाव, जिनके जीवन-दर्शन में
पाया श्रद्धा और स्नेह का भाव, जिनके शासन मे-२
देखो हर घड़ी-२ नया चमत्कार, प्यारे गुरुवर मे-२
जीवन मे नया प्रकाश फैलाया, प्यारे गुरुवर मे-२
जिनका नाम वडा प्रियकार, सारे -शासन मे-२
जिनके हृदय मे ज्ञान का भण्डार, प्यारे गुरुवर मे
जिनकी सदा होती है जय-जयकार सारे शासन मे
चौथमल जन्म शताब्दि मनाओ रे .

☆

श्री सुरेशचन्द जैन
(मदसौर)

☆



श्री जैन दिवाकर

व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणें

श्री जैन दिवाकर-स्मृति-ग्रन्थ



व्यक्तित्व की बहुरंगी किरणें

महामहिम जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

[अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के स्वर्णजयन्ती ग्रन्थ (सन् १९५६) मे स्थानकवासी जैन-परम्परा के उन्नायक महामहिम जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का परिचय इन शब्दो मे दिया गया है।]

जन्म-जन्मान्तर मे सचित प्रकृष्ट पुण्य लेकर अवतरित होने वाले महापुरुषो मे प्रसिद्ध व्याख्याता जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी महाराज का शुभ नाम प्रथम अकित होने योग्य है। आपने अपने जीवन-काल मे सघ और धर्म की सेवा एव प्रभावना के लिए जो महान् स्तुत्य कार्य किये, वे जैन इतिहास मे स्वर्ण-वर्णों मे लिखने योग्य हैं। हमारे यहाँ अनेक वडे बडे विद्वान्, वैराग्यवान्, वक्ता और प्रभाविक सन्त हुए हैं, परन्तु जैन दिवाकरजी महाराज ने जो प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त की वह असाधारण है। राजा-महाराजा, अमीर-गरीब, जैन-जैनेतर सभी वर्ग आपके भक्त थे। उत्तर भारत और विशेषत· मेवाड़, मालवा तथा मारवाड के प्राय सभी राजा-रईस आपके प्रभावशाली उपदेशो से प्रभावित थे। मेवाड के महाराणा आपके परम-भक्त रहे। पालनपुर के नबाब, देवास नरेश आदि पर आपकी गहरी छाप पडी। अपने इस प्रभाव से जैन दिवाकरजी महाराज ने इन रईसो से अनेक धार्मिक कार्य करवाये।

जैन दिवाकरजी महाराज अद्वितीय प्रभावशाली वक्ता होने के साथ उच्चकोटि के साहित्य निर्माता भी थे। गद्य-पद्य मे आपने अनेक ग्रन्थो का निर्माण किया, जिनमे निर्ग्रन्थ प्रवचन, भगवान महावीर की जीवनी, 'पद्यमय जैन रामायण', मुक्ति-पथ आदि प्रसिद्ध हैं। आप द्वारा निर्मित पदो का 'जैन सुबोध गुटका' नाम से एक सग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

सयोग की बात देखिए कि रविवार (कार्तिक शु० १३, स० १९३४) को आपका जन्म हुआ, रविवार (फाल्गुन शु० ५ स १९५२) को आपने दीक्षा अगीकार की और रविवार (मार्गशीर्ष शु० ९ सं० २००७) को ही आपका स्वर्गवास हुआ। सचमुच रवि के समान तेजस्वी जीवन आपको मिला। रवि के सदृश ही आपने ज्ञानलोक की स्वर्णिम किरणें लोक मे विकीर्ण की और अज्ञानान्धकार का विनाश किया।

आपके पिता श्री गगारामजी तथा माता श्री केसरबाई ऐसे सपूत को जन्म देकर धन्य हो गए। नीमच (मालवा) पावन हो गया।

चित्तौड मे आपके नाम से 'श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम' नामक एक सस्था चल रही है। कोटा मे आपकी स्मृति मे अनेक सार्वजनिक सस्थाओ का सूत्रपात हो रहा है।

दिवाकरजी महाराज जैन सघ के सगठन के प्रबल समर्थक थे। अन्तिम जीवन मे आपने सगठन के लिए सराहनीय प्रयास किये। दिगम्बर मुनिश्री सूर्यसागरजी, श्वे० मूर्तिपूजक मुनिश्री आनन्दसागरजी और आपके अनेक जगह सम्मिलित व्याख्यान हुए। यह त्रिपुटी सम्मिलित विहार करके जैन समाज मे एकता का शखनाद करने की योजना बना रहे थे, पर काल को यह सहन न हुआ। दिवाकरजी महाराज का स्वर्गारोहण हो गया। फिर भी आप स्थानकवासी सम्प्रदाय के श्रमण सघ की जड जमा ही गये।

निस्सन्देह जैन दिवाकरजी महाराज अपने युग के असाधारण प्रतिभाशाली-महान् सन्त हैं। जगत् आपके उपकारो को जल्दी भूल नही सकता।



मुनिश्री चौथमलजी एक विचक्षण समाज शिल्पी

☆ डा० नेमीचन्द जैन (इन्दौर)
एम ए., पी-एच डी

[विरल होता है ऐसा कि धरती पर कोई विचक्षण प्रतिभा जन्मे और अपने युग को एक स्पष्ट समाज-दर्शन प्रदान करे, अपने समकालीन मनुज का नये सिरे से भाग्यविधान करे, उसके सुख-दु ख का साझेदार बने, अन्धविश्वासों को चुनौती दे, चमत्कार की अपेक्षा स्वाभाविकताओं, मौलिकताओं और तर्कसंगतियों मे गहन आस्था रखे, तथा उनके लिए प्राणपण से सक्रिय हो, एव धर्म को सुभीता न मान अपरिहार्य माने—इस संदर्भ में यदि मुझसे पूछा जाए कि ईस्वी सन् १८७५ और १९७५ के मध्य ऐसे विचक्षण समाज-शिल्पियों का सिरमौर कौन है, तो मैं गर्व से मस्तक उठाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का नाम लूंगा, जिन्होंने न केवल व्यक्ति का भाग्य निर्मित किया वरन् धर्म का नवसीमांकन भी किया और उसके लिए सर्वथा अछूते सेवा-क्षेत्र उद्घाटित किये।]

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का जन्म उतरती उन्नीसवी शताब्दी (ईस्वी) मे हुआ, किन्तु उनका व्यक्तित्व चढती बीसवीं मे प्रकट हुआ। इसी अवधि मे यह भी स्पष्ट हुआ कि धर्म और समाज दो अलग-अलग चेतनाएँ नही हैं, भारत मे तो ये जुड़वा हैं। इस संदर्भ मे धर्म को हम सामाजिक आचार-शास्त्र भी कह सकते हैं, जो एक तरह से सदाचार की ही एक रूपाकृति है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कोरमकोर धार्मिक सिद्धान्तों की बात नहीं की, अपितु धर्म मनुज को कितना सुखी, निरापद, निर्भीक, आश्वस्त और निश्चिन्त निराकुल बना सकता है, इसे व्यवहार मे सिद्ध किया। ऐसा शायद ही कोई विषय हो जो उनके प्रवचनों की उदार परिधि से बच पाया हो, वस्तुत उनके विचार आँख उघाड़ने वाले हैं, पीढ़ियों में लोकमंगल का अलख जगाने वाले हैं, और धर्म को एक सुस्पष्ट रूप प्रदान करने वाले हैं।

मुनिश्री जीवन मे अंधाधुंध, निरुद्देश्य या तर्कहीन ढग से आचरण के पक्ष मे नहीं हैं। वे उसकी एक प्राजल योजना और वस्तुपरक-निर्मम समीक्षा के हिमायती हैं। वे कर्मनिष्ठ हैं, अप्रमत्त हैं, दुर्द्धर कर्मयोगी हैं, और चाहते हैं कि जो धर्म के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो वह आँख पर पट्टी न बांधे, सिर झुकाकर एक बन्दी, या गुलाम की भांति हर विचार को स्वीकार न करे, विवेक की भूमि पर खड़े होकर विचार करे, इसीलिए उन्होंने ब्यावर की एक सभा मे ८ सितम्बर सन् १९४१ को कहा



था—'मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की समीक्षा करनी चाहिये। प्रत्येक को सोचना चाहिये कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये।' इस तरह वे चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति अन्धाधुंध आँख मूंद कर न चले, किन्तु सद्‌विवेक से काम ले, और अपने जीवन तथा आचरण की यथोचित समीक्षा-मीमासा करे।

इतना ही नही, मुनिश्री एक स्वप्नद्रष्टा हैं, जिनकी भूमिका पर सदैव एक विदग्ध-ज्वलन्त सत्य प्रतिष्ठित रहता है। वस्तुत कोई भी सत्य अपनी पूर्वावस्था मे एक स्वप्न ही होता है। स्वप्न और सत्य के दो पृथक् सगीत हैं, जो एक महीन तार मे परस्पर जुडे हुए है, कुछ लोग सत्य का स्वप्न देखते है, और कुछ स्वप्न को सत्य का आकार देने के प्रयत्न करते हैं। वैज्ञानिक भी प्रखर स्वप्नद्रष्टा होते हैं और महापुरुष भी। एक पार्थिव सत्यो की खोज के स्वप्न देखता है और उन्हे आकृत करता है, दूसरा सामाजिक अथवा दार्शनिक सत्यो को लोक-जीवन मे सस्थापित और प्रकट करता है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज एक मेधावी व्यवहार-पुरुष थे, उनकी कथनी-करनी एक थी। उन्होंने दूसरो को रोशनी या दिशा देने का अहकार कभी नही किया वरन् इस तथ्य का पता लगाया कि कही ऐसा तो नहीं है कि हम दूसरो को रोशनी देना चाहते हैं, और खुद घनघोर अन्धेरो से घिरे हैं, इसीलिए व्यावर की एक सभा मे ८ सितम्बर को उन्होंने कहा था—'बहुत से लोग ऐसे होते है, जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातो से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयो के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के बारे मे वे एकदम अनभिज्ञ हैं, वे "दिये-तले अन्धेरा" की कहावत चरितार्थ करते हैं।'

उन्हें अपने राष्ट्र पर गर्व था। वे आत्माभिमानी थे। अपने गौरवशाली अतीत से उन्होंने अनवरत प्रेरणा ली। महापुरुषो के जीवन से उन्होंने अपने तथा समाज के जीवन को क्वणित-गुंजित किया, और फिर इस तरह सम्पूर्ण वातावरण को अपनी विचक्षणता से झनझना दिया, सुगन्ध से भर दिया। वे चाहते थे एक समरस और सतुलित समाज, एक ऐसा समाज जिसकी परिरचना मे मानवमात्र के मगल का सगीत अनुगुंजित हो। कही-कोई वैषम्य न हो, भेदभाव की दीवारें न हो, सब अपरम्पार बन्धुत्व के अटूट-अविच्छिन्न सूत्र मे बन्धे हो, इसीलिए उन्होंने व्यावर की ही एक सभा मे ७ सितम्बर, १९४१ को कहा था—'आपका कितना बडा सौभाग्य है कि आपको ऐसे देश मे जन्म मिला है, जिसका इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल है और देश के अतीतकालीन महापुरुषो के एक से एक उत्तम जीवन आज भी विश्व के सामने महान् आदर्श के रूप मे उपस्थित हैं। इन महापुरुषो की पवित्र जीवनियो से आप बहुत कुछ सीख सकते हैं।'

मुनिश्री ने धन की प्रभुता को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मनुष्य की सत्ता और महत्ता को सम्पत्ति से सदैव बडा माना, यह उनकी समग्र सामाजिक-नैतिक-सास्कृतिक क्रान्ति का मेरुदण्ड है। उनकी दृष्टि मे धन एक जड साधन है, साध्य मूलत आत्मोत्थान है, लोकमगल है, व्यक्तिमगल है, इसीलिए उन्होने कहा—'धन तुच्छ वस्तु है, जीवन महान् है। धन के लिए जीवन को बर्बाद कर देना कोयलो के लिए चिन्तामणि को नष्ट कर देने के समान है।' इसी तरह धन के विशिष्ट चरित्र पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने अपने किसी प्रवचन मे कहा है—"धन की मर्यादा नही करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमे ज्यो-ज्यों धन का इंधन झोकते जाओगे, वह बढती ही जाएगी।

एक सनातन प्रश्न है आत्मा और शरीर के परस्पर सम्बन्ध का। दोनो जुदा हैं, एक नही



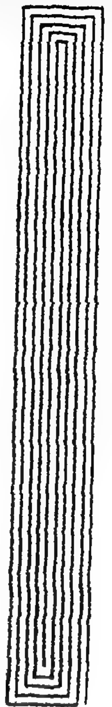
हैं। जैन-दर्शन का भेदविज्ञान यही कहता है। शरीर सीढी है, आत्मा प्राप्य है, तन ससीम है, आत्मा अनन्त शक्तियो का भण्डार है। मुनिश्री ने स्पष्ट करते हुए कहा है—'आत्मा निर्बल होगी तो शरीर की सबलता किसी काम नही आयेगी। तलवार कितनी ही तेज क्यो न हो, अगर हाथ मे ताकत नही है तो उसका उपयोग क्या है?' इसी रौ मे उन्होने कहा है—'यह शरीर दगाबाज है, बेईमान और चोर है। यदि इसकी नौकरी मे ही रह गया तो सारा जन्म बिगड जाएगा अतएव इससे लडने की जरूरत है। दूसरे से लडने मे कोई लाभ नही, खुद से ही लडो।' सन्त विदग्ध विचक्षण होते हैं, वे बिना किसी लिहाज के बोलते हैं, यहाँ हम मुनिश्री की साफगोई का स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं।

मुनिश्री मानव-एकता के मसीहा थे। वे जीवन मे ऐसे आधारो की खोज करते रहे हैं जिनका अवलम्बन कर मनुष्यो को एक किया जा सके। वे मानते रहे कि मनुष्य सर्वत्र एक है। अस्पृश्यता कृत्रिम है, निर्मूल है, निर्वंश है। इसीलिए उन्होंने अपने प्रवचनो मे मानव-एकता के क्रान्तित्व को समाविष्ट किया, यथा—'धर्म पर किसी का आधिपत्य नहीं है। धर्म के विशाल प्रागण मे किसी भी प्रकार की सकीर्णता और भिन्नता को अवकाश नहीं है। यहाँ आकर मानव-मात्र समान बन जाता है।' इसी तरह—"जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नही हो सकता उसी प्रकार धर्म का बँटवारा नही हो सकता। जैसे आकाश, सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थ हैं, वे किसी के नही हैं, अतएव सभी के हैं, इसी प्रकार धर्म भी वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नही होता।"

उन्होंने धर्म को एक जीवन्त-ज्वलन्त अस्तित्व माना है। अगर कोई धर्म लोकमगल को अपना लक्ष्य नही बनाता है तो मुनिश्री की दृष्टि मे वह मुर्दा और निष्प्राण है, उसका कोई महत्व नहीं है। यह बात उन्होंने अपने प्रवचनो मे कई बार कही है, यथा—"जो धर्म जीवन में कुछ भी लाभ न पहुँचाता हो और सिर्फ परलोक मे ही लाभ पहुँचाता हो, उसे मैं मुर्दा धर्म समझता हूँ। जो धर्म वास्तव मे धर्म है, वह परलोक की तरह इस लोक मे भी लाभकारी अवश्य है। इसी धर्म की वर्गहीनता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—'धर्म किसी खेत या बगीचे मे नही उपजता, न बाजार मे मोल बिकता है। धर्म शरीर से—जिसमे मन और वचन भी गर्भित है—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-बिरादरी की कोई भावना नही है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर कोई भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है।' जैनो मे भगवान् महावीर के बाद कोई भी जैन साधु इस तरह की वर्गहीन क्रान्ति का आह्वान नही कर सका, ऐसा आह्वान जिसे जनता-जनार्दन ने आदरपूर्वक अपना सिर झुकाकार स्वीकार किया हो। ऐसा लगता है कि युग-युगो की गतानुगतिकता ने इस सत के अत्यन्त विनम्रभाव से चरण-वन्दना की हो।

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का चमत्कारो मे कोई विश्वास नही था। वे किसी आकस्मिकता को दर्शन, या आस्था के रूप मे नही मानते थे। कोई घटना हो, व उसमे कार्यकारण सगति तलाशते थे। उनकी विचक्षण प्रतिभा का आकस्मिकताओ और विसगतियो से कोई सरोकार न था, आज अधिकाश साधु चमत्कार को ही अपनी सस्ती लोकप्रियता का आधार बनाते हैं, और उसी से अपनी प्रभावकता स्थापित करने का यत्न करते हैं, किन्तु चौथमलजी महाराज मे यह बात नहीं है। चमत्कार उनके चरित्र का अश नहीं है बल्कि दुर्द्धर साधना ही उन्हें हर क्षेत्र मे प्रिय है। वही





उनकी उपलब्धियों का अत्यन्त विश्वसनीय साधन है। उन्होंने जो कहा वह चरित्र की वर्णलिपि मे ही कहा। चमत्कारो के सम्बन्ध मे उनके विचार हैं—'बहुत से लोग चमत्कार को नमस्कार करके चमत्कारो के सामने अपने-आपको समर्पित कर देते हैं। वे बाह्य ऋद्धि को ही आत्मा के उत्कर्ष का चिह्न समझ लेते है, और जो बाह्य ऋद्धि दिखला सकता है, उसे ही भगवान् या सिद्ध पुरुष मान लेते है, मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है। बाह्य चमत्कार आध्यात्मिक उत्कर्ष का चिह्न नही है और जो जानबूझकर अपने भक्तो को चमत्कार दिखाने की इच्छा करता है और दिखलाता है, समझना चाहिये कि उसे सच्ची महत्ता प्राप्त नही हुई है। इसी तरह उन्होंने कहा है कि 'मिथ्यात्व से बढकर कोई शत्रु नहीं है।' यह स्वीकृति भी क्रान्ति का एक बहुत बडा आधार प्रस्तुत करती है। मात्र इतने को लोक-जीवन मे प्रतिष्ठित करा देने से समग्र क्रान्ति संभव हो सकती है, और व्यक्ति तथा समाज को आमूल बदला जा सकता है।

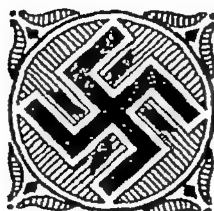
इतना ही नहीं, मुनिश्री मानव-मन के अद्भुत पारखी भी थे। वे भलीभाँति जानते थे कि मनुष्य भावनाओ का एक संभावनाओ से हराभरा पुंज है। क्रोध और क्षमा—जैसी परस्पर विरोधी अनुभूतियाँ उसके चरित्र की सरचना करती हैं, इसीलिए उन्होने कहा—"आत्मशुद्धि के लिए क्षमा अत्यन्त आवश्यक गुण है। जैसे सुहागा स्वर्ण को साफ करता है, वैसे ही क्षमा आत्मा को स्वच्छ बना देती है।" इसी तरह उन्होंने कहा है—'अमृत का आस्वादन करना हो तो क्षमा का सेवन करो। क्षमा अलौकिक अमृत है। अगर आपके जीवन मे सच्ची क्षमा आ जाए, तो आपके लिए यह धरती स्वर्ग बन सकती है।'

× × ×

इस तरह यदि हम मुनिश्री चौथमलजी महाराज के प्रवचनो का अभिमन्थन करते हैं तो हमें जीवन के लिए कई प्रकाशस्तम्भ अनायास ही मिल जाते हैं। इन प्रवचनो मे जीवन की सच्ची झलक मिलती है और मिलता है अशान्ति, विघटन, विसगति, सत्रास, तनाव, क्रोध, राग-द्वेष, अन्धविश्वास इत्यादि मे जूझने का अभूतपूर्व साहस, शक्ति, विश्वास और परम पुरुषार्थ।

☆

परिचय एवं संपर्क सूत्र—
प्रखर चिन्तक तथा निर्भीक लेखक,
पत्रकारिता मे यशस्वी 'तीर्थंकर' मासिक के सपादक
६५, पत्रकार कॉलोनी, कानाड़िया रोड, इन्दौर





[जैन दिवाकर स्मृति निबन्ध प्रतियोगिता मे द्वितीय पुरस्कार प्राप्त निबन्ध]

युग-पुरुष जैन दिवाकर जी महाराज

✡ प्रो० निजामउद्दीन (इस्लामिया कालेज, श्रीनगर)

सत असतन्हि कै असि करनी ।
जिमि कुठार चदन आचरनी ।।
काटइ परसु मलय सुनु भाई ।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई ।।
तातें सुर-सीसन चढत, जगवल्लभ श्रीखड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु-वदन यह दण्ड ।।
विषय अलपट सील गुनाकर ।
पर दुख दुख, सुख सुख देखे पर ।।
सम अभूतरिपु विमद विरागी ।
लोभामरष हरष भय त्यागी ।।

[रामचरितमानस उत्तरकाण्ड]

तुलसीदास ने उपर्युक्त पक्तियो मे सतपुरुष को चन्दन-सदृश माना है, जो अपने स्वभाववश काटने वाली कुल्हाडी को अपनी सुगन्ध से सुवासित करता है । सत विषय-निर्लिप्त, शील-सद्गुणाकार, पराये के सुख से सुखी तथा दुख से दुखी, समभाव रखने वाले, किसी से शत्रुता नही, मदविहीन वैराग्यवान्, लोभ-क्रोध-हर्ष-भय का परित्याग करने वाले होते हैं । 'जगद्वल्लभ', 'प्रसिद्धवक्ता', 'जैन दिवाकर' मुनिश्री चौथमलजी महाराज इसी प्रकार के लोकनायक सतात्मा थे । श्रमण संस्कृति की उत्कृष्टताओ तथा जिनेन्द्र महावीर के महान् लक्ष्यो-आदर्शों-उपलब्धियो के जीवन्त-ज्वलन्त प्रतीक थे । वाणी एव चारित्र की एकरूपता द्वारा उन्होंने सामाजिक जीवन के कटाव-क्षरण को सफलता के साथ रोका, शैथिल्य तथा प्रमाद के मेघ-खण्डो को विदारित किया और सास्कृतिक व नैतिक जीवन-क्षेत्र को अपनी सुनहली किरणो से सजीविनी प्रदान की । वह एक 'मर्देकामिल' थे—सम्पूर्ण पुरुष थे, भारतीय ऋषि-परम्परा के एक महान् सत थे—युगपुरुष थे । उनका व्यक्तित्व सर्वतोभद्र सर्वोदयी था ।

जैन दिवाकरजी महाराज आगम की भाषा मे—'महुकुम्भे महुपिहाणे'—मधुकुम्भ की भांति भीतर-बाहर चिर मधुर और 'णवणीय तुल्लहियया'—नवनीत के समान कोमल हृदय थे । तेजोमय मुखमडल, शात मुद्रा, प्रशस्त भाल, आंखो मे तैरती श्रमण संस्कृति की दिव्य ज्योति, हृष्ट-पुष्ट देह, गेहुँआ रंग, कर्मयोग के प्रेरक, नि स्पृही, वीतरागी, वाग्मिता व चारित्र के धनी, सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे तप कचन चरित्र, सामाजिक सौहार्द तथा समन्वय के उद्घोषक, शातिपूर्ण सह-अस्तित्व के (Co-existence) प्रचारक, मूक प्राणियो को अभयदान दिलाने वाले, अहिसा की गगा प्रवाहित करने वाले, धार्मिक सहिष्णुता और पतितोद्धार की ध्वजा फहराने वाले, पारदर्शिनी ज्ञानदृष्टि-सम्पन्न—यह था श्री चौथमलजी महाराज का विराट् व्यक्तित्व—सर्वथा युगपुरुष-सम्मत ।

युगपुरुष उस महान् व्यक्ति को कहते हैं जो अपने लिए नही वरन् सम्पूर्ण युग के लिए, सकल प्राणियो के लिए जीता है—जीव-हित समर्पित होता है । सभी के लिए अहर्निश कल्याण-



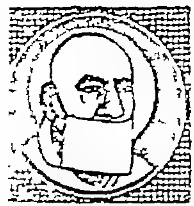
कामना करता है। उसके जीवन-सरोवर मे प्रेम, दया, करुणा, सत्य, अहिंसा, पर-कल्याण के सुरभित सरसिज विकसित होते हैं। वह सम्पूर्ण युग को अपनी कथनी-करनी की समता से प्रभावित करता है। राजमहल से लेकर दीन-रक की झोपडी तक मे उनकी वाणी के दीप कर्ण श्रवणगोचर होते हैं। उसकी रसाई शूद्र-ब्राह्मण, हिन्दू-मुसलमान, आस्तिक-नास्तिक, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, देश-विदेश, गाँव शहर, सर्वत्र अबाध रूप मे होती है। वह सभी लोगो को, सम्पूर्ण मानव-समाज को— लोक को—युग को साथ लेकर चलता है—सम्पूर्ण युग को प्रभावित करता है—अपने गुणो—सद्‌विचारो व सत्कर्मो से सम्पूण जनमानस को आन्दोलित करता है, उसे सोते से जगाता है। वही युगपुरुष का अभिधान धारण करता है। उसके सदुपदेश एक जाति या वर्ग विशेष के लिए नही होते वे सभी को ज्ञान-सयम की ऊष्मा-तेजस्विता प्रदान करते हैं। वस्तुत वह व्यक्ति और लोक दोनो के सस्कारक होते हैं। अपनी वक्तृता व चरित्र-सम्पदा से अनुप्रेरित करता हुआ युगपुरुष क्रातिपुरुष होता है और जनमानस मे नूतन कल्याणमयी क्रान्ति का शखनाद करता है। वह जाति या मनुष्य का सुधारक ही नही अपितु सर्जक भी होता है—मानवता की अभिनव सर्जना करता है। श्री चौथमलजी महाराज इसी प्रकार के मानव-सर्जक थे। उन्होंने दुर्जन को सज्जन, हिंसक को अहिंसक, दुश्चरित्र को सच्चरित्र, पापी को पुण्यात्मा, कामुक को सयमी, दुर्व्यसनी को शीलवान, निर्दय को सदय, क्रोधी को शान्त, कृपण को उदार, सकीर्ण-बुद्धि को विशाल-बुद्धि, सुषुप्त को जाग्रत बनाने का प्रशसनीय कार्य किया और इस प्रकार समाज की नई रचना की—एक नए वातावरण का निर्माण किया। वह जीवन-मूल्यो के ह्रास को रोकने वाले थे तथा उनकी पुनःस्थापना करने वाले थे।

आध्यात्मिक सूर्योदय—

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदशुजालम्।

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ऐसे आध्यात्मिक सूर्य थे जिसके उदय होते ही अज्ञानाधकार विनष्ट हो गया, हृदय की कालिमा समाप्त हो गई, जनमानस मे नई स्फूर्ति एव परोपकार के कमल विकसित हो गये। धन्य है मालव-भूमि जिसने ऐसे आध्यात्मिक महापुरुष को प्रसूत किया। मालव-स्थित नीमच (मध्यप्रदेश) मे सवत् १९३४ कार्तिक शुक्ला त्र्योदशी को श्रीगगारामजी के घर माता केसरबाई ने इस पुत्र रत्न को जन्म दिया। अल्पायु मे ही उन्होंने कई भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनकी अध्ययनशीलता, कुशाग्रबुद्धि, सगीत-प्रेम तथा उत्तम सात्विक गुणो को देखकर लोग उनके 'महापुरुष' होने की कामना करते थे। किशोरावस्था को पहुँचते-पहुँचते उनके धार्मिक सस्कार प्रबल होने लगे। सवत् १९४७ मे उनके बडे भाई कालूराम पटवारी की अकस्मात् मृत्यु से उन्हे भारी आघात पहुँचा। उन्हें यह समझने मे विलम्ब न लगा कि सब प्रकार के अनर्थ-अनिष्ट का मूल लोभ है—"लोहो मूल अणत्थाण।"

उनकी वैराग्यवृत्ति रात दिवस बढने लगी। माता-पिता ने उनकी इस वैराग्य भावना को देखकर सवत् १९५० मे प्रतापगढ (राजस्थान) के श्री पूनमचन्दजी की पुत्री मानकुँवर से उनका विवाह कर दिया। परन्तु यह क्या? उनकी सुहागरात वैराग्यरात मे बदल गई। बन्धु परिजन उन्हें धनोपार्जन तथा व्यापार मे मन लगाने का जितना आग्रह करते उतना ही अधिक वह वैराग्यभाव मे डूबे रहते। उधर साधु-सतो के शुभागमन ने उनके वैराग्य को और अधिक प्रखरता प्रदान की। अन्ततोगत्वा सं० १९५२ फाल्गुन शुक्ला पचमी को इन्दौर स्टेट के बोलिया ग्राम मे वटवृक्ष के नीचे



स्थानकवासी परम्परा के गुरुदेव मुनिश्री हीरालालजी महाराज मे १८ वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की और पाँच महाव्रतो—"अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह" का अनुपालन पूर्ण निष्ठा के साथ करने लगे तथा क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायो को क्षीण करने मे जुट गये। उनकी पत्नी ने उनका बहुत पीछा किया, परन्तु बाद मे चलकर उसके मोह को भग करने मे वह सफल हो गए। उनके श्वसुर तो काफी दिनो तक बन्दूक का आतक दिखाकर उनके पीछे पडे रहे, परन्तु मुनिश्री का निर्भीक व्यक्तित्व इस प्रकार से आतकित होने वाला न था। निर्लिप्त भाव मे वह अपने मार्ग पर चलते रहे। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि भाषाओ का अच्छा ज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया था। इसके अतिरिक्त ३२ जैनागमो का तलस्पर्शी अध्ययन भी उन्होंने किया। साथ ही जैनेतर धर्मग्रन्थो—कुरान, बाइबिल, रामायण, गीता का भी पारायण किया। फिर **'पियंकरे पियवाई, से सिक्खा लद्धमरहई'** शास्त्रोक्ति के अनुसार श्री चौथमलजी महाराज ज्ञानालोक विकीर्ण करने लगे।

मुनिश्री चौथमलजी महाराज 'यथा नाम तथा गुण' थे। 'चौथ' से अभिप्रेत चार मे स्थित होना अर्थात् 'सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र' और तप में लीन होना तथा 'मल' का अर्थ है—चारमल्ल—लोभ, क्रोध, मान, माया को पराजित करने वाला। इसलिए उनका नाम चौथमल साभिप्राय एवं सार्थक था। मुनिश्री कन्हैयालालजी महाराज 'कमल' के शब्दो मे, "सर्वसाधारण की भाषा मे 'चौथ' प्रतिपक्ष आने वाली एक तिथि है। जैनागमो मे चरित्र को रिक्तकर कहा है। चरित्र की व्युत्पत्ति है—**'चयरित्तकरं चारित्त'** अर्थात् अनन्तकाल से अर्जित कर्मो के चय, उपचय, सचय को रिक्त (नि शेष) करने वाला अस्तित्व चारित्र है। इस तरह चारित्र को चौथ तिथि के नाम से 'मल' अर्थात् धारण करने वाले बने श्री चौथमलजी महाराज।"

वाग्मिता के धनी—

सम्यक्त्वज्ञान सवलित श्री चौथमलजी महाराज एक सुविख्यात वक्ता थे—'सच्चे वक्ता' थे। सच्चे वक्ता इस अर्थ मे कि जो कहते थे तदनुकूल आचरण भी करते थे—जो कहते थे वह जीते थे। जो उनके मन मे होता था वही उनकी जिह्वा पर होता था, वही उनके व्यवहार मे प्रवाहित होता था। जब वह प्रवचन फरमाते थे तो लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते थे। उनकी वाक्शीलता मे एक माधुर्य था, आकर्षण था। उनकी सभाएँ—प्रवचन-सभाएँ 'समवसरन' का दृश्य पैदा करती थीं। वहाँ 'सर्वधर्म समभाव' का सुखद वातावरण फैला होता था। जैन-अजैन सभी उनकी बातें सुनते थे। उनके प्रवचन सदैव धर्म-सम्प्रदायातीत होते थे। वह खण्डन की नहीं, मण्डन की शैली में बोलते थे। वह तोड़ने वाले नहीं थे, जोडने वाले थे, कैंची नहीं सुई थे जो पृथक् जोडो को सीती है—मिलाती है। वह सभी को एकता एव समन्वय के सूत्र मे बाँधने वाले थे। यही कारण था कि गाँव हो या शहर—सभी स्थानो पर हजारो की सख्या मे लोग उनके उपदेश सुनने आते थे। उनकी लोकातिशायिनी वक्तृत्वकला के आधार पर चतुर्विध सघ ने उन्हे 'प्रसिद्ध वक्ता' की उपाधि प्रदान की थी। वह स्वय ही एक शब्द-कथा थे। "उनकी वाणी मे वस्तुत. एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह चित्त को भी स्वर्णिम कातिदीप्ति से जगमगा देता था। उनका प्रवचन अमृत हजार-हजार रूपो मे बरसा था।" लोक-जीवन को प्रबुद्ध करने वाले उनके उपदेश राजा-महाराजाओ से लेकर अछूतो, भीलो, मजदूरो तक उनकी कल्याणमयी वाणी में निरन्तर पहुँचते रहे। श्री चौथमलजी महाराज जैसा वाक्विभूषण सरलता से नही मिलता। उनकी वाणी मे भाव और प्रभाव दोनों थे। अत विवेक-वाणी से प्रभावित होकर राजाओ-महाराजाओ ने हिमा-



वृत्ति का परित्याग कर दिया था। जहाँ जाते लोग पलक-पावडे बिछा देते थे। एक युगपुरुष के समान उन्होंने आत्मीयता व निर्भीकता का मार्ग प्रशस्त कर व्यक्ति और लोक दोनो का सस्कार-परिष्कार किया। एक क्रान्तदर्शी महापुरुष के व्यक्तित्व की गरिमा उनकी वाग्मिता से प्रस्फुटित होती थी।

साहित्य-मनीषी

युगपुरुष साहित्य-मनीषी श्री चौथमलजी महाराज ने अपने साहित्य के द्वारा युग-भावना को परिष्कृत किया था। उन्होने भक्तिरसाप्यायित तथा उपदेशात्मक स्तवनो, भजनो, लावणियो की रचना की थी, जैसे—आदर्श रामायण, कृष्ण-चरित्र, चम्पक-चरित्र, महावल चरित्र, सुपार्श्व चरित्र आदि। उधर गद्य मे भी कई अच्छे ग्रन्थो का प्रणयन किया था, यथा—(१) भगवान महावीर का आदर्श जीवन, (२) भगवान पार्श्वनाथ, (३) जम्बूकुमार, (४) 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का सम्पादन। मुनि श्री सगीतमय भक्तिगीतो के कुशल रचनाकार शिल्पी थे। उनकी आरतियो तथा भक्तिगीतो की स्वरलहरी श्रोताओ की हृदयतन्त्रियो को अविलम्ब झकृत कर देती थी। आज भी श्रद्धानिष्ठ व्यक्ति उनके भजनो-गीतो को बडे चाव से गाते हैं। उनके शब्दो मे एक अजीब जादू भरा हैं, वे सीधे हृदय पर चोट करते हैं। नि सन्देह वह एक महान् साहित्य-सृष्टा द्रष्टा थे। 'गीता' और 'धम्मपद' सदृश उन्होने 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' मे आचाराग, सूत्रकृताग, समवायाग, स्थानाग, प्रश्न-व्याकरण, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्रो से गाथाओ का सुन्दर चयन किया। यह ग्रन्थ १८ अध्यायो मे विभक्त है जैसे षड्द्रव्यनिरूपण, कर्मनिरूपण, धर्मस्वरूप, आत्मशुद्धि, ज्ञानप्रकरण, सम्यक्त्वप्रकरण, धर्मनिरूपण, साधुधर्मनिरूपण, लेश्या-स्वरूप, कषायस्वरूप, मनोनिग्रह, स्वर्ग-नर्क-निरूपण और मोक्षस्वरूप आदि। 'समणसुत्त' इसकी अगली कडी है। इसमे सकलित सूत्र सभी जैन-सम्प्रदायो को मान्य है।

'निर्ग्रन्थ प्रवचन' मुनिश्री की आत्मनिष्ठ अभिरुचि का प्रतिनिधित्व करता है, सकलित सम्पादित होते हुए भी ग्रन्थ उनके मौलिक विचारो को प्रतिविम्बित करता है। 'ज्ञानप्रकरण' मे लेखक की आत्मव्यथा परिलक्षित होती है। यहाँ 'उत्तराध्ययन' की कुछेक गाथाएँ सकलित हैं। आधुनिक युग मे चरित्रहीनता की बाढ़ की विभीषिका से बचाने—त्राण देने के लिए 'ज्ञानप्रकरण' उत्कृष्ट रचना है। 'ज्ञानप्रकरण' (८-१०) का यह अग्राकित उद्धरण देखिये—

> **इहमेगे उ मण्णंति, अप्पच्चक्खाय पावगं।**
> **आयरिअ विदित्ताण, सव्व दुक्खा विमुच्चई ॥**
>
> **भणता अकरिता य, बधमोक्ख पइण्णिणो।**
> **वायाविरियमत्तेण समासासति अप्पय ॥**
>
> **ण चित्ता तायए भासा कुओ विज्जाणुसासणं।**
> **विसण्णा पावकम्मेहि बाला पण्डिय माणिणो ॥**

—अर्थात् कुछ लोग यह मानते है कि पाप-कर्मो का परित्याग किये विना ही केवल आर्यतत्त्व के ज्ञान से ही वे सव दु खो से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे, किन्तु जानते हुए भी आचरण नही करने वाले वे लोग, वन्धन और मोक्ष के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ, केवल शब्दो से अपनी आत्मा को सन्तोष देते हैं—आत्मप्रवचना करते हैं। अपने आपको पण्डित मानने वाले, पापकर्मो मे अनुरक्त वे मूर्ख लोग यह नही जानते कि यह शब्द कौशल से युक्त वाणी उनकी त्राता नहीं होगी।

अवदान :—

एक युगपुरुष के रूप मे जैन दिवाकरजी महाराज का सबसे बड़ा योगदान जैन-सम्प्रदायो को एक मच पर समासीन करना था, भेददृष्टि समाप्त कर स्वस्थ दृष्टि उत्पन्न करनी थी। मत-वैभिन्य के स्थान पर मतैक्य स्थापित करना था। जातीय तथा साम्प्रदायिक भेदभाव की ऊँची-ऊँची दीवारो को तोडने का काम करना था। यह एक युगान्तरकारी, क्रान्तिकारी प्रयत्न व परिवर्तन था। अत हम उन्हे सघ-एकता का अग्रदूत कह सकते हैं। सघ-सगठन के नव-निर्माण मे उनके योग-दान को विस्मृत नही किया जा सकता।

एक महावीर जयति के अवसर पर उन्होंने कहा था—"भगवान महावीर तो श्वेताम्बर, दिगम्बर दोनो के ही आराध्य हैं, देवाधिदेव हैं। एक ही आराध्य के अनुयायी होने मे सभी भाई-भाई हैं फिर मतभेद कैसा ?"

बात स० १९७२ की है, मुनिश्री जोधपुर मे चातुर्मास पूर्ण कर व्यावर आये थे। उनके दीक्षा-गुरु कविवर श्री हीरालालजी महाराज भी वहाँ मौजूद थे। उन दिनो स्थानकवासी सम्प्रदाय भिन्न वर्गो मे विभक्त था। सनातनधर्म हाईस्कूल मे जैन दिवाकरजी महाराज ने 'प्रेम और एकता' पर ओजपूर्ण भाषण देकर व्यावर सघ मे एकता का बीजारोपण किया। उसके कई वर्षों बाद स० २००६ मे वहीं नौ सम्प्रदायो का—उनके प्रमुख सन्तो का सुखद मिलन हुआ। सभी अपने पूर्वपदो व पूर्वाग्रहो को छोडकर सघ के एक महासागर मे विलीन हो गये। साम्प्रदायिक एकता मानो उनके जीवन का एक मिशन था।

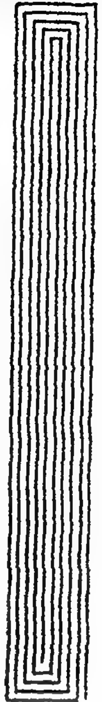
संघ की एकता को सुदृढ करने, उसे प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होंने एक बार कहा था—(i) समस्त प्रान्तो मे विचरण करने वाले साधु-साध्वियो का एक स्थान पर सम्मेलन हो। (ii) साधुओं का समाचारी और आचार-विचार प्ररूपण एक हो। (iii) स्थानकवासी संघ की ओर से प्रमाणभूत श्रेष्ठ साहित्य का प्रकाशन हो। (iv) तिथियो का सर्वसम्मत निर्णय हो। (v) एक-दूसरे की निन्दा, अवहीलना, टीका-टिप्पणी, छिद्रान्वेषण-द्वेषाक्षेप आदि कभी न हो।

स० १९८९ मे अजमेर मे वृहत्साधु-सम्मेलन हुआ। उसमे मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दोनो सम्प्रदायो को एक करने का मागलिक कार्य किया। स० २००७ मे मुनिश्री ने कोटा मे वर्षावास किया। वही श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के आचार्य श्री आनन्दसागरजी महाराज दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनि आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज भी चातुर्मास कर रहे थे। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सत्प्रयासो मे सभी प्रत्येक बुधवार को एक ही मच से प्रवचन देते थे। समन्वयवादी दृष्टि सम्पन्न जैन दिवाकर जी महाराज ने इन भिन्न सम्प्रदायो मे पारस्परिक सौहार्द की केसर-कलियाँ विकसित कर जनमानस को हर्षित किया था।

देशना-गगा —

युगपुरुष की दृष्टि अपने युग की प्रत्येक समस्या पर पडती है, वह युग-नाडी की धडकनें सजग होकर सुनता है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने युग की दशाओ, परिस्थितियो तथा समस्याओ को भलीभाँति देखा-समझा था, जीव-जगत् पर गहराई से चिन्तन किया था। वह धर्म-सहिष्णुता के पुरस्कर्ता थे। धर्म व जाति के नाम पर आपस मे कोई द्वेष-वैर न रखे। एक स्थान





पर कहा था—"विभिन्न धर्मो के अनुयायी होने के कारण द्वेष करने की क्या आवश्यकता है ? ससार का कोई भी धर्म द्वेष करना नहीं सिखलाता फिर भी धर्म के नाम पर द्वेष किया जाता है । वस्तुत धर्म की आड लेकर द्वेष करना अपने धर्म को वदनाम करना है ।" हम देख चुके हैं कि धर्म के नाम पर जितना अधिक अत्याचार और विखराव फैला है, पार्थक्य को पोषण मिला है उतना किसी वस्तु के नाम पर नही । एतावत जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा—

"धर्मात्मा वनो, धर्मान्ध न बनो ।"

नारी—शक्ति का अवतार

जैन दिवाकरजी महाराज ने नारी-समाज के उत्थान व जागरण की ओर विशेष ध्यान दिया । एक वार अपने प्रवचन में उन्होने फरमाया था—"वहिनो ! तुम अपने तेज को प्रकट करो, अपनी शक्ति को पहचानो । जिसने वलवान और शूरवीर पुरुषो को जन्म दिया है, वे अवला नही हो सकती । तुम शक्ति का अवतार हो । तुम्हारी आत्मा मे अनन्त वल है ।" उन्होने स्त्री को पृथ्वी के समान क्षमाशील होने की कामना की, ताकि घर का कलह-विग्रह शान्त हो । पत्नी की गरिमा इस वात मे है कि वह अपने दुराचारी पति को भी सदाचारी वनाये । इसमे सन्देह नही, यदि नारी अपनी महिमा-गरिमा को पहचाने तो कोई उसका शोषण नही कर सकता, कोई उसे भोग-विलास की सामग्री नही बना सकता । वेश्यावृत्ति को उन्होंने अत्यधिक सावद्य एव अववीरित कर्म माना था और उसका समूलोच्छेदन करने का वीडा उठाया था । मुनिश्री ने देख लिया था कि वेश्यावृत्ति मानव-जाति पर एक कलक है । वेश्या का जीवन अपमान, घृणा, निन्दा, तिरस्कार, उपेक्षा का जीवन है । भला ऐसा घृणित अपमानित, तिरस्कृत, उपेक्षित जीवन जीना कौन नारी चाहेगी ? उन्होंने वेश्याओ के स्वाभिमान को जगाया—उनके भीतर छिपी गरिमाशील नारी को जगाया—स० १६६६ में जहाजपुर पहुँचकर मुनिश्री ने विवाहादि अवसरो पर आयोजित वेश्या-नृत्य को वन्द करा दिया । इस पर कुछ वेश्याओ ने इसे अपनी रोटी-रोजी की विकट समस्या समझा और मुनिश्री से शिकायत की कि हमारी तो जीविका ही जाती रही । इस पर उन्होंने वेश्याओ को यो उद्‌बुद्ध किया—

"वहनो ! नारी जाति ससार मे देवीस्वरूप होती है, उसका पद ममतामयी माता और स्नेहशील वहन जैसा गौरवशाली होता है । ऐसा महत्वपूर्ण पद पाकर कुत्सित कर्म करना, नृत्य-गान करना नारी जाति के लिए कलक है । इस कलकित जीवन को त्यागकर सात्विकवृत्ति धारण करो और नारीत्व की महिमा वढ़ाओ ।"

परिणामत॰ स० १६८० मे पाली मे उनके प्रवचनो से अनुप्रेरित होकर 'मगली' और 'वनी' नाम की वेश्याएँ सदाचारी, शीलवान वन गई । 'सिणगारी' ने पति-व्रता-जीवन अपना लिया । स० २००५ मे जोधपुर की 'पातरियाँ' इस विघृणित धन्धे को छोडकर शीलमय तथा मर्यादित जीवन व्यतीत करने लगीं । यह था उनकी देशना का प्रभाव ।

परिग्रहवृत्ति

व्यापारी वर्ग को भी उन्होंने आचार-विचार की उच्चता से अवगत किया । उन्होंने अन्याय से, धोखाधडी से, मिलावट से, कम तौलने से, चोरवाजारी से अर्थोपार्जन को कभी भी उचित नही ठहराया । "सच्चा श्रावक कभी अन्याय से धन कमाने की इच्छा नही करता । श्रावक वनने की



पहली शर्त 'न्यायोपात्त धन' है, न्याय-नीति से धन कमाना ही श्रावक उचित समझता है।" ये थे मुनिश्री के भाव। आजकल परिग्रह और लूटखसोट में लोग लगे रहते हैं। मिलावट के विषय में उन्होंने कहा था—"मिलावट करना घोर अनैतिकता है। व्यापार-दृष्टि से भी यह कोई सफल नीति नहीं है। अगर सभी जैन व्यापारी ऐसा निर्णय करलें कि हम प्रामाणिकता के साथ व्यापार करेंगे और किसी प्रकार का धोखा न करते हुए अपनी नीति स्पष्ट रखेंगे तो जैनधर्म की काफी प्रभावना हो, साथ ही उन्हें भी कोई घाटा न हो।" मुनिश्री समाज में फैले भ्रष्टाचारों को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प थे। यह उनके एक युगपुरुष होने का प्रमाण है। उन्होंने समाज को प्रत्येक प्रकार के शोषण से मुक्त करने का प्रयास किया।

भारत में अभी तक पूर्णत: मद्य-निषेध न होने के कारण युवावर्ग में चारित्रिक दुर्बलता पनपती जा रही है। देश की गरीबी, अशिक्षा, बेकारी में मद्य का विशेष हाथ रहा है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने कहा था कि यदुकुल और साथ ही द्वारिका का नाश करने वाली मदिरा ही तो है। लोक में निन्दा, परलोक में दुःख इसी के प्रताप से होता है। शराबी का घर तबाह हो जाता है। शराब सौभाग्य रूपी चन्द्रमा के लिए राहू के समान है। वह लक्ष्मी और सरस्वती को नष्ट करने वाली है। नाथद्वारे में श्रीनाथजी को ५६ भोग चढाये जाते हैं मगर उसमें मदिरा नहीं होती।

पतितोद्धार व अन्त्यजों में अहिंसा —

भारतीय समाज से अस्पृश्यता एक ऐसा कलंक है जो आज तक नहीं मिटा। उन्होंने जातिगत एकता और सामंजस्य पर विशेष बल दिया। एक सच्चे युगपुरुष के रूप में उन्होंने पतितों का उद्धार किया। उनकी मान्यता थी कि जैनधर्म यह नहीं मानता कि एक वर्ण जन्म से ऊँचा होता है दूसरा जन्म से नीचा होता है। जैन संस्कृति मनुष्यमात्र को समान अवसर प्रदान करने की हिमायत करती है। जैनधर्म अस्पृश्यता का विरोधी है, समानता का पक्षपाती है—**"समयाए समणो होइ"**—सभी को समान रूप से आत्मकल्याण की ओर प्रेरित करना है। गांधीजी ने हरिजनों के उद्धार का बीडा उठाया था, उससे पूर्व ही श्री चौथमलजी महाराज ने 'पतितोदय' या 'पतितोद्धार' के कार्य को उठाया था। मुनिश्री ने अपने ओजपूर्ण भाषणों द्वारा अन्त्यजवर्ग की हिंसा मांस-मद्य-सेवन-वृत्ति को नष्ट किया। उन्हें अनेक दुर्व्यसनों से मुक्ति दिलाई। अनेक भील, खटीक अहिंसक बने।

राष्ट्रधर्म के प्रेमी :—

मुनिश्री ने आत्मिक धर्म के उत्कर्ष के लिए राष्ट्रधर्म को अपनाने पर विशेष बल दिया। एक योग्य नागरिक के नाते राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना ही राष्ट्रधर्म है और राष्ट्र धर्म का भलीभाँति परिपालन करने वाले ही अध्यात्मधर्म को—आत्मिकधर्म को अंगीकार कर सकते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म का अनुपालन नहीं कर सकता वह आत्मिक धर्म का भी आचरण नहीं कर सकता। सामाजिक पर्वों को भी उन्होंने राष्ट्रधर्म व आत्मिक धर्म की उन्नति में महत्वपूर्ण माना है। उन्हीं के शब्दों में—"राखी का कोरा धागा बांधने से काम नहीं चलेगा। अगर रक्षाबन्धन को वास्तविक रूप देना है तो भाई, भाई की रक्षा करे, पड़ौसी की, गाँव-नगर की, राष्ट्र की रक्षा करे। जैसे दीपावली पर मकान का कूडाकचरा साफ करते हो और उसे साफ-सुथरा बनाते हो, इसी प्रकार आत्मा को भी, अपने चित्त को भी निर्मल स्वच्छ बनाओ। आत्मा को शुद्ध करो। अन्तस्तल में घुसे अन्धकार को नष्ट करने का उद्योग करो, भीतर की मलिनता को हटाओ।"



अहिंसा-ज्योति का प्रसार

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के अहिंसा-प्रसार को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे देखना समीचीन होगा। सम्भवत इस शताब्दी से अहिंसा का प्रसार-प्रचार जितना मुनिश्री ने किया उतना अन्य किसी महापुरुष ने नही किया। विज्ञान ने सब कुछ दिया परन्तु लोगो की सुबुद्धि मे तनिक भी परिष्कार व उन्नति नही हुई। मनुष्य आज भी हिंसक पशु बना हुआ है। हिंसा मे अशांति की भयकर ज्वाला छिपी है। उन्होंने अनेक स्थानो पर अहिंसा व जीवदया पर मार्मिक भाषण दिये जिनसे प्रभावित होकर अनेक लोगो ने हिंसा का, शिकार करने का, मासाहार का परित्याग कर दिया था। उदयपुर, अलवर, जोधपुर, शिकारपुर, किशनगढ, करेडा, ताल, घटियावली, कोशीथल आदि जगहो के नरेशो, ठाकुरो ने हिंसा का परित्याग किया था। स० १६८० इन्दौर मे उनका सारगर्भित भाषण सुनकर नजर मुहम्मद कसाई ने जीव-हत्या का त्याग कर दिया। पालनपुर (गुजरात) के नवाब सर शेरमुहम्मद खाँ बहादुर ने मुनिवर की धर्मचर्चा सुनकर उन्हे एक दुशाला भेंट करना चाहा, इस दान के बदले मे उनसे अहिंसा का दान मुनिजी ने मांगा और इसके बाद नवाब साहब ने मास-शराब को त्याग दिया। रतलाम और देवास तथा बनेडा आदि नरेशो ने—ठाकुरो ने उनके प्रवचनो से प्रभावित होकर जीवदया के सरकूलर निकाले। सन् १६३५ मे उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह जी व भूपालसिंहजी ने अहिंसा-प्रेम को अपनाया।

उन्होने कही 'गौरक्षा' पर व्याख्यान दिया, तो कही बलिप्रथा को बन्द कराया। मन्दसौर मे स० १६७६ में जाकर कन्या-विक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियो का उच्छेदन किया। उनकी दृष्टि से छोटी से छोटी बुराई तक नही छिपी थी। एक महापुरुष के रूप मे समाज को धर्मपरायण बनाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया, शील और सदाचार का सर्वत्र प्रचार किया।

विदेशी प्रशसक

जैन दिवाकरजी महाराज के समता, उदारता, निस्पृहता, मित्रता, सहिष्णुता, सत्यवादिता, कर्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, सच्चरित्रता का उपदेश सुनकर कुछ विदेशी भी काफी प्रभावित हुए। उदयपुर के रेवेन्यू कमिश्नर चेनेविक्स ट्रेंच उनके बहुत प्रशसक थे। ट्रेंच साहब के नौकर ने मुनि जी के प्रवचन सुनकर बुरी आदतें छोड दी थीं। नेत्र विशेषज्ञ डा० होमरसजी पारसी जावरा मे प्रतिदिन उनके व्याख्यान सुनते थे। अँग्रेज चीफ कमाण्डर ने तो अण्डो का सेवन ही छोड दिया था। चित्तौड मे अफीम विभाग के आफीसर एम० जी० टेलर उनके प्रवचनो से विशेषत: प्रभावित थे। जैनधर्म के विषय मे उन्होंने कहा था—"मेरा विश्वास है कि यह धर्म भोगप्रधान होता तो मोक्ष की ओर ले जाने वाला न होता। संसार से मुक्ति चाहने वाले मनुष्य को तो जैनधर्म की ही शरण लेनी पडेगी।"

स्वातन्त्र्योत्तर भारत के नव-निर्माण मे भौतिक समृद्धि के उपादानो पर ही हम ध्यानकेन्द्रित किये हैं। बाह्य सुख-साधनो के जुटाने मे खून-पसीना बहा रहे हैं। देश को—मनुष्य को बाहर से बना रहे हैं, लेकिन भीतर से तोड़ रहे हैं—निष्प्राण बना रहे हैं। आज का मनुष्य मिस्र की ताबूत मे रखी 'ममी' बनकर रह गया है। परिग्रहो के व्यामोह बढते जा रहे है, अहकार का विषधर फुंकार रहा है। यह मान्य है कि भौतिक समृद्धि राष्ट्र का शरीर है, लेकिन बिना आत्मा के शरीर का क्या महत्व। आध्यात्मिक समृद्धिविहीन भौतिक समृद्धि आत्म-प्रवचना के अतिरिक्त और कुछ



नही। अमेरिका आदि भौतिकसमृद्धि-सम्पन्न देश कितने अशात, व्याकुल, तनावग्रस्त हैं, यह सभी जानते हैं। मुनिश्री ने हमे भौतिक समृद्धि के साथ आत्मसमृद्धि का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया। हमारे नैतिक सस्कारो को प्रबुद्ध किया। किसी स्थूल योजना को साकारित करना सरल कार्य है, परन्तु नैतिक तथा चारित्रिक अमूर्त योजना को मूर्तरूप देना श्री चौथमलजी जैसे युगपुरुष का ही कार्य था।

"वे युग को पहचानने वाले युगद्रष्टा थे, युग की धारा को मोड़ने वाले युग-पुरुष थे। जिन अन्ध-विश्वासो, कुरीतियो व सड़ी-गली परम्पराओ के दमघोटू वातावरण मे मानव-समाज छटपटा रहा था, जिन वेडियो को तोडते न वन रहा था और न निभाते—उन वेडियो को तोड़ डालने का आह्वान किया उन्होंने, आह्वान ही नही, मनुष्य मे शक्ति व स्फूर्ति का प्राण फूंक कर उसे सत्य सादगी-सदाचार के मुक्त वायुमण्डल मे जीने का अवसर प्रदान किया।"



परिचय व सपर्क सूत्र—
जैन धर्म व साहित्य पर विशेप रुचि तथा अध्ययन।
चिन्तनशील लेखक,
प्राध्यापक—इस्लामिया कालेज, श्रीनगर
पता—साजगरी पोरा, श्रीनगर (काश्मीर)



श्रद्धा-सुमन

☆ आर्या श्री आज्ञावती (चण्डीगढ़)

चौथमल मुनिराज की, महिमा का न पार।
याद जिन्हे है कर रहा, सारा ही संसार॥

पुण्यवान गुणवान थे, वक्ता कवि विद्वान।
तप, जप, त्याग वैराग और विमल ज्ञान की खान॥

जो भी आया चरण मे, वड़े प्रेम के साथ।
दया, दान की, ज्ञान की कही उसे ही वात॥

मद्य, मास औ द्यूत औ, चोरी और शिकार।
छोड़ गए थे वहुत जन, वेश्या और परनार॥

अनगिनती का कर दिया, ऐसे ही कल्याण।
मिलते मुश्किल आजकल उनसे दया निधान॥

गद्य-पद्य मे आपने, रचे अनेको ग्रन्थ।
जैन दिवाकर की नही, महिमा का कुछ अन्त॥

'आज्ञा' जो पजाव की, लघु-सी आर्या एक।
श्रद्धा के अर्पित करे, सात सुमन सविवेक॥



ज्योतिवाही युगपुरुष : श्री चौथमलजी महाराज

✡ डॉ० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब का स्मरण करते ही मानस-पटल पर एक ऐसे दिव्य व्यक्तित्व का चित्र अंकित होता है जिसके मस्तिष्क मे ज्ञान का अगाध समुद्र हिलोरें ले रहा हो, जिसके हृदय से अनुभव-सूर्य की अनन्त किरणें फूट रही हो, जिसके हाथो मे गतानुगतिक समय-प्रवाह को रोकने की क्षमता हो, जिसके पैरो मे पहलवान की सी मस्तानी चाल हो जिसके कण्ठ से उदात्तवाणी फूटती हो। सचमुच, इस दिवाकर ने वाह्य जगत् के अन्धकार को ही नही मिटाया वरन् अन्तर्जगत् मे छाये निविड अन्धकार को भी तहस-नहस कर, ऊर्ध्वगामी चेतना का आलोक जन-जन मे विखेर दिया।

मुझे अपने बचपन की एक धुंधली स्मृति स्मरण आ रही है। कानोड के गाँधी चौक मे इस उत्तुग ज्ञान हिमालय से प्रवचन-गगा फूट रही है। उसके पावन शीतल स्पर्श से सबका मन आल्हादित है। क्या राजा, क्या रक, क्या अमीर, क्या गरीव, क्या खटीक, क्या कलाल, क्या मोची, क्या चमार, सव उसकी वाणी के आकर्षण की डोर मे खिंचे चले आ रहे हैं। व्यक्तित्व का अद्भुत प्रभाव वाणी का वेमिसाल चमत्कर।

दूसरी वाल-स्मृति उभरती है आदर्श उत्सव चित्तौडगढ की, जब इस लोक-पुरुष की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती मनाई गयी थी। कानोड के विजय जैन पाठशाला के छात्र के रूप मे मैंने उस अवसर पर चित्तौडगढ के लाल किले के विशाल प्रागण मे 'महाराणा प्रताप' नाटक मे अभिनय किया था। हजारो लोग इस उत्सव पर सम्मिलित हुए थे, इस युग-पुरुष को वन्दनान्जलि देने।

इतने वर्षों के वाद जव आज जैन दिवाकरजी महाराज के व्यक्तित्व का मूल्याकन करने लगता हूँ, तो अनुभव होता है कि उस महान् व्यक्तित्व के आगे हमारा पैमाना उत्तरोत्तर छोटा पड़ता जाता है। उस अकेले व्यक्तित्व ने जो धार्मिक-सामाजिक क्राति की, कई लोग और सगठन मिलकर भी उसके समानान्तर आज तक वह क्रान्ति नही कर सके है।

इस महापुरुष का जन्म उस समय हुआ जव आर्य समाज अपने अस्तित्व को आकार दे रहा था और राष्ट्रीय काग्रेस के जन्म के पूर्व की उथल-पुथल जोरो पर थी। क्रान्तिद्रष्टा इस सत ने आध्यात्मिकता और सामाजिकता के वीच पडी खाई को समझा, उसे देखा और पाटने का प्रयत्न किया। मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने अपने चारो ओर सम्प्रदाय की, वर्णभेद की हदवदी की रेखायें खिंची हुई देखी। उनका मन तडफ उठा। उन्होंने जैनधर्म को जन-जन का धर्म वनाने का संकल्प किया और अपनी वाणी मे आत्म-विश्वास और तप त्याग का ऐसा तेज भरा कि ऊँची से ऊँची श्रेणी के राजा-महाराजा और निम्न से निम्न श्रेणी मे भगी, चमार समान आकर्षण और आदरभाव से उनकी तरफ खिंचते चले आये। इस प्रकार उन्होने जीवन शुद्धि और धर्म-क्रान्ति का प्रवर्तन किया।

सक्षेप मे उनकी धर्म-क्रान्ति के तीन मुख्य सूत्र हैं :—

(१) जैन तत्त्वो का सरलीकरण।
(२) जीवन का शुद्धिकरण।
(३) धर्म का समाजीकरण।

(१) जैन तत्त्वों का सरलीकरण—मुनिश्री ने देखा कि जैन धर्म के जो तत्त्व जीवन मे क्रान्ति



लाने वाले हैं, वे सामने नहीं आ रहे हैं। वे भाषा की दुर्बोधता और भावों की शास्त्रीयता में कैद हो गये हैं। चन्द लोगों तक उनकी पहुँच रह गयी है और वह भी परिपाटी के रूप में। उन्हें लगा कि सबका हित करने वाली सरस्वती, जो सतत प्रवाहिनी रही है, एक तालाब में आकर रुँध गयी है। जन-जीवन से उसका सम्पर्क टूट गया है। यह सम्पर्क पुनः जुड़े, इसकी छटपटाहट मुनिश्री के दिल में थी। मुनिश्री अपने गृहस्थ-जीवन में वहाँ के निवासी थे जहाँ तुर्रा-कलगी के निष्णात खिलाड़ी रहते थे। इन्होंने भी वह सुने थे उनकी आवाज में बुलन्दगी थी और कविता जोड़ने में वे दक्ष थे। जैन दीक्षा अंगीकृत करने के बाद जब उन्होंने शास्त्राभ्यास किया तो ऐसे अनेक कथानकों और चरित्रों से उनका परिचय हुआ जिनके उदात्त आदर्श-जीवन को उन्नत और कल्याणक बना सकते हैं। लोक-भूमि और लोक-धर्म से जुड़े हुए ऐसे कथानकों को मुनिश्री ने लोक-शैली के ख्यालों, लावणियों और चरितों में बाँधना, गूथना और गाना शुरू किया कि लोग देखते और तरसते रह गये। बोलचाल की भाषा में गजब का बंध, शेरो-शायरी और गजल का जमता रंग, संघर्ष से गुजरते हुए अपने शील और सत्य की रक्षा में प्राणोत्सर्ग करते हुए चमकते चरित्र, मर्म को छूने वाली दर्द भरी अपील। साहित्य की संवेदना के धरातल से उठा हुआ, हृदय को विगलित करने वाला मर्म-स्पर्शी संगीत, जो जन-जन की रग-रग को छू गया।

(२) **जीवन का शुद्धिकरण**—मुनिश्री के जन्म की आविर्भावकालीन परिस्थितियाँ धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन के लिए अनुकूल थीं। आर्यसमाज, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए सक्रिय था। जैन समाज भी नानाविध कुरीतियों से ग्रस्त था। मुनिश्री ने जीवन-शुद्धि को धर्मचर्या का मुख्य आधार माना। उन्होंने देखा कि धर्म से शुद्धता और पवित्रता का लोप हो रहा है। सर्वत्र अशुद्धता और कथनी व करनी की द्वैतता का पाट चौड़ा होता जा रहा है। धर्म के नाम पर देवी-देवताओं के मन्दिर में पशुओं की बलि दी जा रही है। रक्त-रंजित हाथों से धार्मिक देवी-देवताओं को तिलक किया जा रहा है। मद्य, मांस और मादक पदार्थों के सेवन की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है और यह सब इस भ्रामक धारणा के साथ कि इससे जीवन शुद्ध होता है, धर्म पवित्र होता है। सामाजिक शुद्धता के नाम पर बाल-विवाह, अनमेल विवाह, मृत्यु-भोज, कन्या विक्रय, दहेज जैसी घिनौनी प्रथाएँ चल पड़ी थीं। राजा-महाराजाओं में सप्त कुव्यसनों का सेवन चरम सीमा पर था। इसे उच्चता और मान प्रतिष्ठा का प्रतीक बना दिया गया था। मुनिश्री ने इस परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया। आभिजात्य वर्ग और निम्न वर्ग को युगपत उद्बोधन देकर, उन्हें एक साथ बिठाकर सप्त कुव्यसनों का त्याग कराया। धर्म के नाम पर बलि चढ़ने वाले हजारों पशुओं को अभय दान दिया। सामाजिक कुरीतियों में फँसे हजारों लोगों को उबारा। इस प्रकार आत्मशुद्धि और जीवनशुद्धि का युगान्तरकारी महान् कार्य मुनिश्री ने सम्पादित किया।

(३) **धर्म का समाजीकरण**—धर्म, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को रेखांकित करता है। धर्म की साधना व्यक्ति से आरम्भ होती है, पर उसका प्रभाव समाज पर परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से धर्म के दो स्तर हैं—व्यक्ति स्तर पर क्षमा, आर्जव, मार्दव, त्याग, तप, अहिंसा, अपरिग्रह, आदि की आराधना करते हुए सामाजिक स्तर पर ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, संघधर्म को परिपुष्ट और बलिष्ठ बनाया जाता है। सच पूछा जाए तो ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, और राष्ट्र-धर्म की सम्यक् परिपालना करने पर ही श्रुत और चारित्र धर्म की आराधना संभव हो पाती है। इस बिन्दु पर धर्म समाज के साथ जुड़ता दिखाई देता है। पर कुछ विचारकों ने धर्म को एकान्त निवृत्तिमूलक मानकर उसे सामाजिकता से अलग कर दिया। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने इस अन्तर्विरोध



को पहचाना और धर्म के माध्यम से समाज सुधार के आन्दोलन को गति देकर धर्म के समाजीकरण की प्रक्रिया तेज की। उनकी प्रेरणा से कई ऐसी लोकोपकारी सस्थायें अस्तित्व मे आयी जिनसे लोक-सेवा और लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

आज भौतिक पिंड के रूप मे मुनिश्री हमारे बीच नही हैं, पर उनकी वाणी, उनका प्रखर तेज और प्रेरणाशील व्यक्तित्व हमारी रग-रग मे शक्ति, स्फूर्ति और उत्साह की चेतना भर रहा है। ऐसे *ज्योतिवाही युगपुरुष को उसकी जन्म-शताब्दी पर शत-शत वन्दन-श्रद्धार्चन !* ☆

परिचय व सम्पर्क सूत्र—
हिन्दी एव जैन साहित्य के प्रमुख विद्वान्, समीक्षक तथा लेखक
सम्पादक—'जिनवाणी'
प्राध्यापक—हिन्दी विभाग, राज० विश्वविद्यालय, जयपुर
सी० २३५ ए० तिलकनगर, जयपुर।



पर-भव सुख प्रबन्ध

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

ले सग खरचीरे-२, परभव की खरची लीधा सरसीरे ॥टेर॥
कूड़-कपट कर धन कमाई, जोड जमी मे धरसीरे।
सुन्दर महल बागने छोडी, जाणो पडसीरे ॥ १ ॥
आगे धन्धो पाछे धन्धो, धन्धो कर-कर मरसीरे।
धर्म सुकृत नही करे, परभव काई करसीरे ॥ २ ॥
राजा वकील बेरिस्टर से, कर मोहब्बत तू सग फिरसीरे।
कौन छुडावे काल आप जब, घेंटी पकड़सीरे ॥ ३ ॥
पाँच कोस गामातर खातिर, खरचीलेई निकलसीरे।
नया शहर है दूर, नही मनिआर्डर मिलसीरे ॥ ४ ॥
यौवन की थने छाक चढी, बुढापो आयां उतरसीरे।
इस तन की तो होगी खाक, कहाँ तक निरखसीरे ॥ ५ ॥
घर की नारी हाँडी फोडने, पाछी घर मे वरसीरे।
मसाण भूमि मे छोड थने, फिर कुटुम्ब बिछडसीरे ॥ ६ ॥
लख चौरासी की घाटी करडी कैसे पार उतरसीरे।
रत्ती सीख नही लागे थारी छाती वजरसीरे ॥ ७ ॥
साल गुण्यासी हातोद मे, जिनवाणी जोर से वरसीरे।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, किया धर्म्म सुधरसीरे ॥ ८ ॥



एक पारस-पुरुष श्री जैन दिवाकर जी

✡ आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज

[उनकी वाणी मे, वस्तुत, एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह चित्त को भी स्वर्णिम कान्ति-दीप्ति से जगमगा देता था। उनका प्रवचनामृत हजार-हजार रूपो मे बरसा था। राजा-महाराजाओ से लेकर अछूतों, भील-भिलालो और मजदूरों तक उनकी कल्याणकारी वाणी पहुँची थी। वे सघन अन्धकार मे प्रखर प्रकाश थे।"]

भारतीय सस्कृति की अन्तरात्मा है सत-सस्कृति, जो सन्तो की साधना-आराधना से ही अकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित हुई है। वस्तुत सतो की महिमाशालिनीचर्या और वाणी का इतिहास ही भारत की आध्यात्मिक सस्कृति का इतिहास है। अतीत के अगणित सत-महात्माओ की जीवनी आज भी प्रेरणा का अजस्र-प्रखर स्रोत है। ऐसे ही थे श्रमण संस्कृति की गौरवमयी सत-परम्परा के महान् सत जैन दिवाकर, प्रखर वक्ता श्री चौथमलजी महाराज। उनके दर्शन करने का परम सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम मिला मनमाड़ मे। लम्बा कद, विशाल देह, गेहुँआ रंग, दीप्त-तेजोमय-शान्त मुखछवि, उन्नत भाल आज भी मेरे स्मृति-पटल पर ज्यो-का-त्यो विद्यमान है।

तब स्थानकवासी समाज मे अलग-अलग अनेक सम्प्रदाय थे। वह युग था जब संतवर्ग एक-दूसरे के साथ व्यवहार-सम्बन्ध रखने मे भी झिझक का अनुभव करता था। ऐसे विषम समय भी हम एक ही स्थान पर ठहरे थे। परस्पर आत्मीयतापूर्ण व्यवहार रहा। उन्होंने मुझे उस समय यही सुझाव दिया था कि तुम्हे अपने सम्प्रदाय को सुसगठित करना चाहिये। सभी को एक मच पर मिल-बैठकर विधान आदि पर विचार-विमर्श करना चाहिये। उनका सुझाव शत-प्रतिशत अनुकरणीय था, क्योकि सगठन मे ही बल है, उत्कर्ष है। कलियुग मे जन, धन, राज्य, अणु आदि कई शक्तियाँ हैं, किन्तु इन सब मे सर्वोपरि शक्ति 'सघ-शक्ति' है। 'यूनाइटेड वी स्टेंड, डिवाइडेड वी फाल'—स्वामी विवेकानन्द का यह दिव्य घोष सभी के लिए सार्थक एवं अनुसरणीय है। इस तरह दो-चार दिन उनसे खूब खुलकर बातचीत हुई। परस्पर मधुर व्यवहार और अभूतपूर्व स्नेह रहा, इसके बाद भी कई बार मिलने के मौके आये और सौहार्द्र उत्तरोत्तर बढता गया। कुछ वर्षो बाद सगठन की हवा चली। ब्यावर मे नौ सम्प्रदायो के प्रमुख सतो का मिलन हुआ, उसमे ऋषि-सम्प्रदाय की ओर से मैं उपस्थित हुआ। अपने-अपने पूर्वपदो को छोडकर सब का एक समुद्र बना, सब का विलीनीकरण हुआ। उस समय जैन दिवाकरजी महाराज ने 'वर्धमान सघ' के आचार्यपद के चुनाव की बात कही और उसके लिए मेरा नाम सुझाया। वे स्वय किसी पद के लिए उत्कण्ठित नही थे, इससे उनकी उदारता, सगठन के प्रति उत्कट प्रेम, सहिष्णुता तथा उदात्त विचार के दर्शन होते थे। सगठन के पूर्व भी उनके अनुयायी क्षेत्रों मे जहाँ भी मेरा जाना हुआ, वहाँ उन्होंने सन्तो और श्रावको को मुझे पूर्ण सहयोग देने का इशारा किया। इन सब प्रसगो पर मुझे उनकी उदार आँखो के भीतर छलकती निष्काम-अकलुष आत्मीयता दिखायी दी थी।



जैन दिवाकरजी महाराज ओजस्वी वक्ता भी थे। वाणी का चमत्कार उनके व्यक्तित्व की एक अन्यतम विशेषता थी। उनकी वाणी मे, वस्तुत एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह-चित्त को भी कान्ति और दीप्ति से झिलमला देता था। उनकी प्रवचन-पीयूषधारा हजार-हजार धाराओ मे प्रवाहित हुई थी। राजा-महाराजाओ से लेकर मजदूरो के झोपडो तक उनकी कल्याण-कर वाणी पहुँची थी और उसने अन्धेरे मे रोशनी पहुँचाई थी। उनकी भाषा मे मधुराई थी, मजुल और प्रभविष्णु मुखाकृति के कारण वे जहाँ भी गये सहस्र-सहस्र जनमेदिनी ने उनका अभिनन्दन किया, अपने पलक-पांवडे विछा दिये। कई राजाओ ने उनके प्रवचन सुनकर अपनी-अपनी राज्य-सीमाओ मे हिंसा रोकने का प्रयत्न किया। उनकी वत्सलता वडी वरदानी थी, इसीलिए अछूतो को गले लगाकर, जैनधर्म मे उन्हे प्रवेश देकर उन्होंने एक ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किया। यह था उनके पतितपावन व्यक्तित्व का प्रभाव।

उनकी साहित्य-साधना भी अनूठी थी। दिवाकर-साहित्य मे से काव्य-साहित्य खूब लोकप्रिय हुआ। जनता-जनार्दन के कण्ठ मे आज भी उसकी अनुगूँज है।

मैंने मध्यप्रदेश, राजस्थान, पजाव जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशो मे भी विहार किया। वहाँ भी स्थान-स्थान पर उनकी कीर्ति-कथाएँ सुनी। मेरे ख्याल से उनके जीवन की सव मे वडी उपलब्धि एक यह भी है कि मैंने उनके विषय मे कोई अपवाद नहीं सुना।

जव मैंने कोटा मे उनके देहावसान का दुखद सवाद सुना, तव मेरे मन को गहन चोट लगी। शीघ्र ही हम सव व्यावर मे पुन. एकत्रित हुए। आचार्य होने के नाते मेरी उपस्थिति लगभग अपरिहार्य थी। उनके प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है। जव मैं कोटा गया तव उनकी पुण्य-पुनीत स्मृति मे 'दिवाकर जैन विद्यालय' चलाने की प्रेरणा देकर आया था। विद्यालय मेरी उपस्थिति मे ही खुल गया था, प्रसन्नता है कि वह विकासोन्मुख है और आवश्यक उन्नति कर रहा है।

-o-o-o-o-o-o-o-

जगत के खेल में

(तर्ज—ख्याल की)

थारो नरभव निष्फल, जाय जगत के खेल मे॥ टेर॥
सुन्दर के सग सैज मे सोवे, रात दिवस तू महल मे।
इत्तर लगावे पेच झुकावे, जावे शाम को सैल मे॥ १॥
कठी डोरा डाल गले मे, बैठे मोटर रेल मे।
मौत पकड़ ले जावे तुझको, हवा लगे ज्यूं पेल मे॥ २॥
कसूमल पाग केशरिया वागा, पटा चमेली तेल मे।
काम अन्ध घूमे गलियो मे, होय छवीलो छैल मे॥ ३॥
धर्म करेगा तो मोक्ष वरेगा, वदी चौरासी जेल मे।
चौथमल हित शिक्षा दीनी, इन्दौर आलीजा शहर मे॥ ४॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

-o-o-o-o-o-o-



एक सम्पूर्ण संत पुरुष

✡ श्री केवल मुनि

✡ उन्होने वडी गम्भीरता से कहा—"पाँच सौ घर के सिवाय जो लोग यहाँ बसते हैं, हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड के महा-राणा तक, वे सब हमारे हैं।'

✡ उनके प्रति राजे-महाराजे, ठाकुर-जागीरदार, सेठ-साहूकार जितने अनुरक्त थे, उतने ही निरक्षर किसान, कलाल, खटीक, मोची, हरिजन आदि भी।

'सहस्रेषु च पडित' की सूक्ति के अनुसार हजार मे कही, कभी एक पडित होता है, और ज्ञानी तो लाखो मे कोई एक विरला ही मिलता है, क्योकि ज्ञानी ज्ञान की जो लौ ज्योतित करता है, वह उसकी जीभ पर नही होती, जीवन मे होती है और कुछ इस विलक्षणता से होती है कि लाख-लाख लोगो का जीवन भी एक अभिनव रोशनी से जगमगा उठता है। भगवान् महावीर के सिद्धान्तानुसार ज्ञानी अहिंसा की जीवन्त मूर्ति होता है। सस्कृत मे एक श्लोक है—

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्व, क्षमा दया सर्वजनप्रियत्व।
निर्लोभ दाता भयशोकहर्ता, ज्ञानी नराणां दश लक्षणानि ॥

उक्त श्लोक मे ज्ञानी के दस प्रतिनिधि लक्षण गिनाये गये हैं। ये वस्तुत एक सम्पूर्ण सत-पुरुष के लक्षण हैं। जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज सम्पूर्ण सन्तपुरुष थे। वे ज्ञान के अथाह, अतल सिन्धु थे। मैं उनका शिष्य रहा हूँ। मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा है। मैं जानता हूँ कि वे किस तरह प्रतिपल समाज के उत्थान मे समर्पित थे। वे दिवाकर थे, उन्होंने जहाँ भी, जिसमे भी, जैसा भी अँधियारा मिला, उससे युद्ध किया। अज्ञान का अँधियारा, रूढियो का अँधेरा, दुर्व्यसनो का अधेरा, छुआछूत और भेदभाव का अँधेरा—इन सारे अंधेरो से वे जूझे और उनके प्रवचन-सूर्य ने हजारो लोगो के जीवन मे रोशनी का खजाना खोला। वे परोपकारी पुरुष थे, उनका जीवन तिल-तिल आत्मोत्थान और समाजोदय मे लगा हुआ था।

क्रोध उनमे कम ही देखने मे आया उनके युग मे साम्प्रदायिकता ने वडा वीभत्स रूप धारण कर लिया था। लोग अकारण ही एक दूसरे की निन्दा करते थे, और आपस मे दगा-फसाद करते थे। वात इस हद तक वढी हुई थी कि लोग उनके गाँव मे आने मे भी एतराज करते थे, जैसे गाँव उनकी निज की जागीर हो, किन्तु दिवाकरजी महाराज ने वडे शान्त और समभाव से इन गाँवो मे विहार किया। उदयपुर का प्रसग है। गुरुदेव वहाँ पहुँचे तो लोगो ने कहा—'यहाँ हमारे ५०० घर हैं, आप कहाँ जा रहे हैं ?" उन्होंने वडी गहराई से कहा—'५०० घर के सिवाय जो लोग यहाँ वसते हैं हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड के महाराणा तक वे सब हमारे हैं।' सर्प की तरह फन उठाये क्रोध का इतना शान्त उत्तर यदि कोई दे, तो आप उसे क्रोधजयी कहेंगे या नही ?

वैराग्य तो आपको विवाह से पहले ही हो गया था। वह उत्तरोत्तर समृद्ध होता गया।



भरी तरुणाई मे रूपसि पत्नी की रेशम-सी कोमल राग-रज्जु को काटना क्या किसी साधारण पुरुष का काम है ? उनका सुहागरात न मनाना और पत्नी को जम्बूस्वामी की तरह सयम-मार्ग पर लाना एक इन्द्रियजयी की ही पहचान है। सयमावस्था मे भी वे आत्मचिन्तन और स्वाध्याय मे ही व्यस्त रहते थे, निन्दा, विकथा और अनर्गल-व्यर्थ की वातो की ओर उनका लक्ष्य ही नही था। कोई कभी-कभार आया भी तो उससे स्वल्प वार्तालाप और जल्दी ही पूर्ण विराम। ऐसा नही था उनके साथ कि घटो व्यर्थ की वातें करते और अपना वहुमूल्य समय बर्वाद करते। साधु-मर्यादा के प्रति वे वडे अप्रमत्त भाव से प्रतिपल चौकस रहते थे। कदम-कदम पर आत्मोदय ही उनका चरम लक्ष्य होता था।

उन्होने रसना-सहित पाँचो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त की थी। वे रात तीन वजे उठ जाते थे। सुखासन से वैठकर माला फिराते, चिन्तन करते, प्रतिक्रमण करते। लगभग तीन-चार घण्टे उनके इसी आसन मे व्यतीत होते थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा—'गुरुदेव ! आप इतनी जल्दी उठ जाते हैं तो कभी नीद का झोका तो आ ही जाता होगा ?' वोले—'कभी नही।' दिन मे भी, यदि पिछले कुछ समय की वात छोड दे तो, वे कभी सोते नही थे। ७४ वर्ष की आयु मे भी ३-४ घण्टे निरन्तर जप-ध्यान-चिन्तन-प्रतिक्रमण करना और नीद को एक पल भी अतिथि न होने देना आश्चर्य-जनक है। ऐसा सुयोग, वस्तुत किसी आत्मयोगी को ही सुलभ होता है।

क्षमा की तो वे जीती-जागती मूर्ति ही थे। उन्होंने कभी किसी के प्रति वैर नहीं किया। कोई कितनी ही, कैसी ही निन्दा क्यो न करे, वे उस सम्वन्ध मे जानते भी हो, फिर भी कोई द्वेष या दुर्भावना या प्रतिकार-भावना उनके प्रति नहीं रखते थे। जो भी मुनि उनसे मिलने आते थे उन सवसे वे हृदय खोलकर मिलते थे, जिनसे नही मिल पाते थे उनके प्रति कोई द्वेप जैसी वात नहीं थी। लोग कहते फला व्यक्ति वन्दना नही करता, तो गुरुदेव एक वडी सटीक और सुन्दर वात कहा करते थे—'उनके वन्दन करने से मुझे स्वर्ग मिलने वाला नही और वन्दन नही करने से वह टलने-वाला नही। मेरा आत्मकल्याण मेरी अपनी करनी से ही होगा, किसी के वन्दन से नही।' स्वर्णा-क्षरो मे अंकित करने योग्य सूक्ति है यह।

दया के तो वे मानो अवतार ही थे। करुणासिन्धु गुरुदेव दया और उपकार के लिए इतने संकल्पित थे कि उन्हें अपनी वढी हुई अवस्था का भी स्याल नही रहता था। मेशिया (राजस्थान) मे जेठ की भर दुपहर मे जव लू चल रही थी, घास-फूस के छप्पर-तले कुछ किसान-मजदूर और ग्रामवासी प्रवचन सुनने एकत्रित हुए। प्रवचन सुनना है एकत्रितो की यह इच्छा जानते ही आप तैयार हो गये। यदि मुझे ऐसे समय कोई कहता तो मैं धूप, धूल और लू देखकर मना कर देता, किन्तु गुरुदेव करुणासिन्धु थे, ना कैसे कहते ? उन्होंने वडे मनोयोगपूर्वक व्याख्यान दिया। समय नही काटा। इधर-उधर की वातो से व्याख्यान पूरा नहीं किया। हम लोगो को भी उनके प्रवचन मे कुछ-न-कुछ नया मिल ही जाता था। व्याख्यान के वाद एक साधु ने प्रश्न किया—'माटी और फूस की झोपडी के कारण आपकी चादर पर रेत और घास गिर गया है। आप दोपहर को प्रवचन न करते तो क्या था ?' गुरुदेव वोले—'एक व्यक्ति ही मास, शराव, तम्वाकू, जूआ आदि छोड दे तो एक व्याख्यान मे कितना लाभ मिल गया ? कितने जीवो को अभय मिला ? मेरे थोडे से कष्ट मे कितना उपकार !'

गुरुदेव सर्वजनप्रिय थे। जगद्वल्लभ थे। उनके प्रति राजे-महाराजे, ठाकुर-जागीरदार,



साहूकार जितने अनुरक्त थे, उतने ही अपढ किसान, कलाल, खटीक, मोची, हरिजन आदि भी थे। सभी कहते—गुरुदेव की हम पर बडी कृपा है, बड़ी मेहरबानी है। हर आदमी यह समझता था कि गुरुदेव की उस पर बड़ी कृपा है। कई लोग कहा करते—'राणाजी के गुरु होकर भी उन्हे अभिमान नहीं'। उनके सम्पर्क मे आने वाले ऐसे अनेक व्यक्ति थे, जो अनुभव करते थे कि 'मुझ पर गुरुदेव का अत्यधिक स्नेह है।'

पजाब-केसरी पडितरत्न श्री प्रेमचन्दजी महाराज ने अपना एक अनुभव सोजत सम्मेलन के व्याख्यान में सुनाया था। जब वे रतलाम का भव्य चातुर्मास सम्पन्न कर उदयपुर होते हुए राणावास के घाट से सीधे सादडी मारवाड होकर सोजत के लिए पधार रहे थे, तब उन्हे जिस रास्ते से जाना था वह कच्चा था, गाड़ी-गडार थी, सडक नही थी, माइलस्टोन भी नही थे। कहे दो कोस तो निकले तीन कोस, कहे चार कोस तो निकले छह कोस, ऐसा अनिश्चित था सब कुछ। आपने कहा—एक गाँव से मैंने दोपहर विहार किया। अनुमान था कि सूर्यास्त से पहले अगले गाँव मे पहुँच जाएँगे, किन्तु गाँव दूर निकला। सूर्यास्त निकट आ रहा था। पाँव जल्दी उठ रहे थे मंजिल तक पहुँचने के लिए उत्कण्ठित। ऐसे मे एक छोटी-सी पहाडी पर खड़ा आदिवासी भील मेरी ओर दौडा। मैंने समझा यह भील मुझे आज अवश्य लूटेगा। सुन भी रखा था कि भील जगल मे लूट लेते हैं। उसे आज सच होते देखना था, फिर भी हम लोग आगे बढते रहे। भील सामने आकर बोला—'महाराज वन्दना'! पजाब-केसरीजी बोले—'मैं आश्चर्यचकित रह गया यह देख कि झोपड़ी मे रहने वाला एक भील, जिसे जैन साधु की कोई पहचान नही हो सकती, इस तरह बडे विनयभाव से वन्दना कर रहा है।' जब उससे पूछा तो बोला, 'महाराज मैं और किसी को नही जानता, चौथमलजी महाराज को जानता हूँ।' उस भील की उस वाणी को सुनकर उस महापुरुष के प्रति मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया। मेरी श्रद्धा और प्रगाढ हो गयी। सोचने लगा—'अहा, झोपडी से लेकर राजमहल तक उनकी वाणी गूँजती है, यह कभी सुना था, आज प्रत्यक्ष हो गया।' भील बोला—'महाराज! दिन थोडा है। गाँव अभी काफी दूर है। आज आप मेरी झोपडी पावन करें। 'महाराज, मेरी झोपडी गन्दी नही है। मैंने मास-मदिरा-शिकार सब छोड दिया है। अब वह पवित्र है। आपके चरणो से वह और पवित्र हो जाएगी।' मैंने कहा—'भाई, तेरी झोपडी मे इतना स्थान कहाँ, और फिर जैन साधु गृहस्थ की गृहस्थी के साथ कैसे रह सकते हैं।' भील ने कहा—महाराज, हम सब बाहर सो जाएँगे। आप झोपडी मे रहना।' उसकी इस अनन्य भक्ति से हृदय गद्गद हो गया, मैंने कहा—'अभी मजिल पर पहुँचते है। तूने भक्तिभाव से रहने की प्रार्थना की, तुझे धन्यवाद। उन जैन दिवाकरजी महाराज को भी धन्यवाद है, जिन्होंने तुम लोगो को यह सन्मार्ग बताया है।'

एक उदाहरण प० हरिश्चन्द्रजी महाराज पजाबी ने भी सुनाया था। उन्होंने कहा—जब, जोधपुर मे पडितरत्न श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज का चातुर्मास था, व्याख्यानस्थल अलग था और ठहरने का स्थान अलग। व्याख्यान-स्थल पर कुछ मुनि प० शुक्लचन्दजी महाराज के साथ जाते थे और अन्य मुनिगण ठहरने के स्थान पर भी रहते थे। व्याख्यान-समाप्ति के बाद कुछ भाई-बहिन मुनियो के दर्शन के लिए ठहरने के स्थान पर आया करते थे। व्याख्यान के बाद प्रतिदिन एक बहिन सफेद साडी पहनकर आती थी और बडे भक्तिभाव से तीन बार झुककर सभी मुनियो को नमन करती थी। एक दिन प० हरिश्चन्द्र मुनि ने पूछा—'तुम व्याख्यान सुनने, दर्शन करने आती हो, श्रावकजी नहीं आते।' इस पर पास खडे श्री शिवनाथमलजी नाहटा ने कहा—'महाराज,



इनके पति नहीं हैं।' 'क्यो, क्या हुआ ?' 'महाराज, यह पातरिया (हिन्दू वेश्या) है। इनके पति नही होते और होते हैं तो अनेक। गुरुदेव जैन दिवाकरजी महाराज के व्याख्यान सुनने के बाद इस बहिन ने रगीन वस्त्र त्याग दिये है। अब श्वेत साड़ी पहिनती है और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करती है। इनकी जाति की अनेक बहिनो ने वेश्यावृत्ति छोडकर शादी कर ली है।' यह सुनकर इस कायापलट पर श्री हरिश्चन्द्रजी मुनि को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने नासिक रोड पर जब उनसे मेरा मिलन हुआ तब गुरुदेव की प्रशस्ति करते हुए यह सस्मरण सुनाया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो गुरुदेव की महानता का जयघोष करते हैं। इन पर अलग कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाश मे आना चाहिये।

श्रमण के दशधर्मों मे निर्लोभता भी एक है, किन्तु यह गुण आज विकृत या शिथिल हो गया है। नवाब और राजाओ द्वारा सम्मान और भक्तिपूर्वक दिये हुए बहुमूल्य शाल और वस्त्रो को भी जिन्होंने ठुकरा दिया, उनकी निर्लोभता का इससे बढकर और उदाहरण क्या हो सकता है ?

उन्हें यश और पदवी का कोई लोभ नही था। जब उनसे आचार्य-पद ग्रहण करने की प्रार्थना की गयी, तब उन्होंने बडी निस्पृह भावना से कहा—"मेरे गुरुदेव ने मुझे मुनि की पदवी दी, यही बहुत है, मुझे भला अब और क्या चाहिये।" ऐसे अनेक प्रसग उनके जीवन मे आये किन्तु वे अविचल बने रहे। उनकी मान्यता थी कि 'केवल वस्तु-दान ही दान नही है, ज्ञान-दान भी दान है, बल्कि यही उत्कृष्ट दान है। सर्वोपरि त्याग है अह का विसर्जन, अन्यो का सन्मान।' दान का यह भी एक श्रेष्ठ आयाम है।

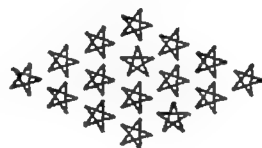
ब्यावर मे पाँच स्थानकवासी सम्प्रदायो ने एक सघ की स्थापना की थी। इनके प्रमुखो ने अपनी-अपनी पदवियाँ छोडकर आचार्य की नियुक्ति की थी। जिन पाँच सम्प्रदायो का विलय हुआ था उनमे से तीन मे पदवियाँ नहीं थीं, दो मे थी। दो सम्प्रदायो मे से भी इस सम्प्रदाय मे पदवियाँ अधिक थी। अपने प्रतिनिधि के रूप मे उन्होने अपने प्रिय शिष्य उपाध्याय पडितरत्न श्री प्यारचन्दजी महाराज को भेजते हुए अपना सन्देश भेजा कि "पदवी एक ही आचार्य की रखना, पद नही रखना, और यह पदवी श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को देना। यदि अलग-अलग पदवियाँ दोगे तो त्याग अधूरा रहेगा, अत त्याग सच्चा और वास्तविक करना।" श्रमण सघ की सघटना के बाद ब्यावर सम्मेलन सम्पन्न करके जब उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज लौटे तब गुरुदेव ने प्रसन्नता प्रकट की। इस अवसर पर एक साधु ने उनसे कहा—"गुरुदेव ! अपने सप्रदाय की सब पदवियो के त्याग से चार तो यथास्थान बने रहे, हानि अपनी ही हुई।" उत्तर मे गुरुदेव ने कहा—"अरे मूढ ! त्याग का भविष्य अतीव उज्ज्वल है। आज का यह बीज कल वटवृक्ष का रूप ग्रहण करेगा। आज का यह बिन्दु कल सिन्धु बनेगा। दृष्टि व्यापक और उदार रखनी चाहिये। तेरा-मेरा क्या समष्टि से बडा होता है ? व्यक्ति से समाज बडा होता है, और समाज से संघ। सघ के लिए सर्वस्व होमोगे तो कोई परिणाम निकलेगा। पदवी तो इसके आगे बहुत नगण्य है।" मैने गुरुदेव की उस व्यापक दृष्टि का उस दिन भी आदर किया था, और मैं 'वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ' की स्थापना पर आनन्द-विभोर हुआ था।

गुरुदेव की सबसे बडी विशेषता थी—निर्भीकता। वे कहा करते थे—"जो तन-मन से शुद्ध है, वह सदैव निर्भय है, और वही औरो को भी भयमुक्त कर सकता है"। वे सदैव व्यसन, पापाचरण आदि छुडवाकर निर्भरता का वरदान देते थे। मुझे हमेशा इस बात का अफसोस रहा कि ऐसे महान् धर्मप्रचारक और विश्वमित्र से लोग अकारण ही वैरभाव रखते थे, किन्तु मैंने प्रति-पल अनुभव किया कि उनका हृदय पूरी तरह शान्त और निश्छल था इसीलिए वे प्रतिक्षण अभीत



वने रहे। एक दिन उन्हे चिन्तित देख मैंने विनयपूर्वक पूछा—'गुरुदेव, आपको चिन्ता ?' उन्होने कहा—'मुझे अपनी कोई चिन्ता नही है। उस ओर से मैं निश्चिंत हूँ। चिन्ता समाज और सघ की ही मुझे है।' मैंने पुन निवेदन किया—'आपने तो वहुतो का उपकार किया है। कई पथभ्रष्टो को उज्ज्वल राह दी है, कइयो को सुधारा है, समाज और सघ के उत्थान के लिए आपने अथक प्रयत्न किया है। आपको तो प्रसन्न और निश्चिन्त रहना चाहिये। आपकी यह प्रसन्नता अन्यो को उद्‌बुद्ध करेगी, उनका छल-कपट धोयेगी, उन्हे नयी ऊँचाइयाँ देगी।"

मैंने प्रतिपल अनुभव किया कि उनका चारित्र उनकी वाणी थी और वाणी उनका चारित्र था। वे वही वोलते थे जो उनसे होता था, और वही करते थे जिसे वे कह सकते थे। कथन और करनी का ऐसा विलक्षण समायोजन अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी मे एक विशिष्ट मन्त्र-मुग्धता थी। कैसा ही हताश-निराश व्यक्ति उनके निकट पहुँचता, प्रसन्न चित्त लौटता। 'दया पालो' सुनते ही कैसा भी उदास हृदय खिल उठता। उसे लगता जैसे कोई सूरज उग रहा है और उसका हृदय-कमल खिल उठा है, सारी अँधियारी मिट रही है, और उजयाली उसका द्वार खटखटा रही है। कई वार मैं यह सोचता कि फलाँ आदमी आया, गुरुदेव ने कोई वात न की, न पूछी और कितना प्रसन्न है ! ! ! जैसे उसकी प्रसन्नता के सारे वन्द द्वार अचानक ही खुल गये हैं। ऐसी विलक्षण शक्ति और व्यक्तित्व के धनी थे जैन दिवाकरजी महाराज। उस त्यागमूर्ति को मेरे शत-शत, सहस्र-सहस्र प्रणाम !



कटुक वाक्य-निषेध

(तर्ज—पनजी मूँडे बोल)

छोड़ अज्ञानीरे-२ यह कटुक वचन समझावे ज्ञानी रे ॥टेर॥
कटुक वचन द्रौपदी वोली, कौरव ने जब तानी रे।
भरी सभा मे खेंचे चीर, या प्रकट कहानी रे ॥१॥
कटु वचन नारद ने वोली, देखो भामा राणी रे।
हरि को रुखमण से व्याव हुवो, वा ऊपर आणी रे ॥२॥
ऐवता ऋषि ने कटु कह्यो या, कंश तणी पटराणी रे।
ज्ञान देख मुनि कथन कर्‌यो, पिछे पछताणी रे ॥३॥
वहू सासु से कटु कह्यो, हुई चार जीव की हानी रे।
कटु वचन से टूटे प्रेम, लीजो पहचानी रे ॥४॥
थोडो जीनो क्यो काटा वीणो, मति वैर वसाओ प्राणी रे।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, वोलो निर्वद्य वाणी रे ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज





जैन दिवाकरजी महाराज की कुछ यादें

☆ (स्व०) श्री रिषभदास रांका

जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय मे स्व० श्रीचौथमलजी महाराज का नाम बहुत आदर के साथ स्मरण किया जाता है, स्थानकवासी समाज के वर्तमान इतिहास मे उनका कार्य स्वर्णाक्षरो मे लिखने जैसा है, वे स्थानकवासी समाज की श्रमण-परम्परा मे 'जैन दिवाकर' के रूप मे सुप्रसिद्ध रहे हैं।

दीक्षा के बाद जैन दिवाकरजी महाराज ने न केवल जैनधर्म, बल्कि दूसरे धर्मों का भी गहरा अध्ययन किया। यही कारण है कि उनके व्याख्यानो का प्रभाव जैनेतर जनता पर भी काफी पडता था। भाषा सरल और सुबोध होती थी इस कारण अपढ तथा ग्रामीण भाई भी आपके व्याख्यानो को आसानी से समझ लेते थे।

दिवाकरजी महाराज सही मानो मे धर्म को समझते थे और यही कारण है कि वे धर्म-स्थानको मे जातीयता और वर्णवाद को घुसने नही देते थे, उनके प्रवचनो मे मनुष्य मात्र को बेख-टके प्रवेश मिलता था। आज हजारो कलाल, खटीक, मेघवाल, मोची, हरिजन, आदि ऐसे मिलते हैं जो दिवाकरजी महाराज का स्मरण बडी श्रद्धा से करते हैं। दिवाकरजी महाराज ने उन लोगो में से मास-मदिरा के व्यसन को दूर किया, उनके चरित्र को सुधारा। इसका परिणाम यह हुआ कि ये लोग आर्थिक दृष्टि से सुधर गये, मास-मदिरा के सेवन से इन लोगो का जीवन जो पहले नर्क तुल्य रहता था वह अब इतना सुन्दर और व्यवस्थित हो गया कि देखते ही बनता है। यह सब दिवाकरजी महाराज की वाणी और चरित्र का ही प्रभाव है। हमारी दृष्टि मे तो सैकडो शिष्य बढ़ाने और लम्बे-लम्बे लेक्चर देने की अपेक्षा किसी के जीवन का निर्माण करना अधिक महत्त्व रखता है। भारतीय धार्मिक परम्पराओ मे निचले वर्ग की इतनी उपेक्षा हुई है कि उसके दुष्परि-णामो से उच्च वर्ग भी नही बच सका है। दिवाकरजी महाराज ने इस ओर ध्यान दिया और अछूतोद्धार तथा पतितोद्धार का बीडा उठाया, यह उनकी समाज-साधना थी।

ऐसे समाज-साधक मे साम्प्रदायिकता और रूढि चुस्तता नही रह सकती, वह तो मानवता का उपासक बन जाता है। सामाजिक कुरीतियो के प्रति भी उसमे दर्द होता है, क्योकि वे कुरीतियाँ समाज की हानि करती हैं। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह, मोसर, आतिशबाजी, वेश्यानृत्य, फिजूलखर्ची आदि का वे विरोध करते रहते थे।

समाज की उन्नति मे साम्प्रदायिकता की बाधा को वे समझ गए थे। इसीलिए कोटा मे उन्होंने दिगम्बर आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज और मूर्तिपूजक आचार्य श्री आनन्दसागरजी महाराज के साथ एक स्थान पर बैठकर साम्प्रदायिक मेलजोल बढाने तथा भेदभाव को दूर करने का कार्य प्रारम्भ किया। अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे उन्होंने समूचे जैन समाज की एकता के लिए जो कार्य किया, उसे भुलाया नहीं जा सकता। वे युग की मांग और आवश्यकता के द्रष्टा साधु थे। समाज की उन्नति एकता के बिना असम्भव है, इसे वे जान गए थे। हमे हर्ष है कि आज उनका शिष्य समुदाय भी इस एकता को बनाये हुए है।

समाज-सुधार के आर्थिक दृष्टि से भी उनका चितन महत्त्वपूर्ण था। समाज के गरीब और



बूढ़े तथा असमर्थ लोगो के प्रति वे काफी संवेदनशील थे। जिनका वृद्धावस्था कोई सहारा नही होता, उनका जीवन भी शांति और धार्मिक वातावरण मे बीते, इसलिए उन्होंने एक चतुर्थाश्रम की स्थापना की जो आज चित्तौड मे चल रहा है।

महावीर-वाणी का अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार हो यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। महावीर-वाणी मे वह शक्ति है जो ससार की अशांति को निर्मूल कर देती है। इसलिए उन्होंने 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' जैसे मूल्यवान् ग्रन्थ का सम्पादन किया।

वे हृदय से साफ, स्पष्ट और शुद्ध थे, अपनी कमजोरियो को व्यक्त करने मे वे कभी नहीं हिचकिचाते थे। एक बार स्व० सेठ राजमलजी ललवाणी ने जब उनसे पूछा कि 'महाराज! आप लोग भगवान् जिनेन्द्र की वाणी का ही रसपान कराते हैं, केवली की वाणी ही सुनाते है, फिर भी हम लोगो पर आपकी बात का असर क्यो नही होता ?' तब दिवाकरजी महाराज ने एक प्राचीन कथा के उदाहरण द्वारा समझाया कि 'भाई, तुम भी बन्धन मे और हम भी बन्धन मे, अब कौन किसको बन्धन मे मुक्त करे—हम भी राग-द्वेष के विकारो से कहाँ मुक्त हैं ?' हम दावे के साथ कह सकते हैं कि ऐसी बात निरहंकारी और शुद्ध साधक ही कह सकता है, और जो शुद्ध होता है, उसकी वाणी का, चरित्र का और शरीर का सुपरिणाम सामने वाले पर हुए बिना नही रह सकता।

आज यद्यपि दिवाकरजी महाराज हमारे बीच नहीं हैं, पर वे जो कार्यरूप स्मृतियाँ छोड गए हैं उनको आगे बढाना ही उनका हमारे बीच विद्यमान रहने का प्रमाण होगा।

परिचय

[समस्त जैन समाज के प्रिय नेता व कर्मठ कार्यकर्ता, तटस्थ विचारक, लेखक : 'भारत जैन महामण्डल के प्राण प्रतिष्ठापक' गत दिसम्बर मे स्वर्गवासी]



मनः शुद्धि प्रयत्न

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करबला मे तू न जा)

इस तन को धोए क्या हुवे, इस दिल को धोना चाहिए।
बाकी कुछ भी ना रहे, बिलकुल ही धोना चाहिए ॥टेर॥
शिल्ला बनावो शील की, और ज्ञान का साबुन सही।
प्रेम पानी बीच मे, सब दाग खोना चाहिये ॥१॥
व्यभिचार हिंसा झूठ चोरी, काम-क्रोध-मद-लोभ का।
मैल बिल्कुल ना रहे, तुम्हे पाक होना चाहिये ॥२॥
दिल खेत को करके सफा, और पाप कंकर को हटा।
प्रभू नाम का इस खेत मे, फिर बीज बोना चाहिये ॥३॥
मुँह को धोती है बिल्ली, स्नान को कव्वा करे।
ध्यान बक कैसा धरे, ऐसा न होना चाहिए ॥४॥
गुरु के प्रसाद से, कहे चौथमल सुन लीजिये।
झूठे गौहर छोड कर, सच्चे पिरोना चाहिये ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज



श्री जैन दिवाकर स्मृति-निवन्ध प्रतियोगिता मे तृतीय पुरस्कार योग्य घोषित निबन्ध

समाज सुधार के अग्रदूत : जैन दिवाकरजी महाराज

☐ मुनिश्री नेमिचन्द्रजी

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज का आलम्बन और सहयोग लिए बिना सुखपूर्वक जी नही सकता, न ही आध्यात्मिक, नैतिक, पारिवारिक, सामाजिक एव सास्कृतिक अभ्युदय कर सकता है। साधारण गृहस्थ की बात जाने दीजिए, महान् से महान् साधु-सन्त, तपस्वी, त्यागी भिक्षु एवं सन्यासी भी समाज के सहयोग के बिना अपनी जीवनयात्रा अथवा सयमयात्रा सुखपूर्वक नही कर सकते। उन्हें भी पद-पद पर समाज का सहारा लेना पडता है। चाहे वे अकेले अलग-अलग घोर जगल, जनशून्य बीहड, या गुफा मे ही एकान्त मे जाकर साधना करें उन्हें भी समाज के कुछ न कुछ सहयोग की आवश्यकता रहती है। इसीलिए भगवान् महावीर ने स्थानागसूत्र (स्थान ५, ३-३) मे धर्माचरण करने वाले साधक के लिए ५ सहायको का आश्रय लेना बताया है—(१) षट्कायिक जीव, (२) गण, (३) शासक, (४) गृहपति और (५) शरीर।[१]

इस पर से आप अनुमान लगा सकते हैं कि उच्च साधको को भी अपनी धर्ममय जीवनयात्रा के लिए मानव-समाज ही नही, प्राणिमात्र के तथा विशिष्ट लोगो के आश्रय की कितनी आवश्यकता रहती है।

समाज मे अशुद्धियो का प्रवेश

मनुष्यो का समूह ही समाज कहलाता है। समाज जब बनता है, तब उसको सगठित और सुव्यवस्थित करने वाले का उद्देश्य पवित्र होता है। मनुष्य पशुता और दानवता से ऊपर उठकर मानवता को धारण करे, शुद्ध धर्मप्रधान जीवन बिताए, अपने जीवन को शुद्ध और पवित्र रखकर उच्च भूमिका पर पहुँचे, यही समाज निर्माता महापुरुषो का उद्देश्य होता है, लेकिन धीरे-धीरे बाद मे समाज मे कुछ विकृतियाँ घुस जाती हैं। वातावरण, परिस्थिति, पारस्परिक प्रभाव, कुसग एवं कुविचार-ससर्ग के कारण समाज मे कई दुर्व्यसन एव दूषण प्रविष्ट हो जाते हैं। कई बार गृहस्थ-समाज के नेताओ की असावधानी या उपेक्षा के कारण अथवा अदूरदर्शिता के कारण कई कुरूढ़ियाँ समाज मे प्रचलित हो जाती हैं, कई बार समाज मे खोटी प्रतिक्रियावश कई व्यक्ति चोर, डाकू, वेश्या, जुआरी या हत्यारे आदि भयकर राक्षस-से बन जाते हैं। कई बार समाज की लापरवाही के कारण कई व्यक्ति अनैतिक कार्यों को करने लग जाते हैं। समाज मे अहकार के पुजारियो की रस्सा-कस्सी से कई बार फूट, मनमुटाव और वैमनस्य की आग भडक उठती है, जो सारे समाज की शान्ति को भस्म कर देती है। ये और इस प्रकार की बुराइयाँ ही समाज की गन्दगी हैं। ये धीरे-धीरे समाज मे प्रविष्ट होकर समाज के स्वच्छ वातावरण को गन्दा बना देती है। समाज मे इस प्रकार की गन्दगी बढ जाने के कारण समाज अशुद्ध और दूषित होता जाता है। ऐसे समाज मे सज्जन व्यक्ति का साँस लेना अत्यन्त कठिन हो जाता है। सत्ता, पद और धन का अहकार समाज का त्रिदोष है। इन तीनो मे से किसी भी एक के अहकार के कारण समाज मे बुराइयाँ पनपती हैं और

---

१ "धम्मस्स ण चरमाणस्स पच णिस्साट्ठाणा पण्णत्ता, तजहा-छक्काया, गणे, राया, गाहावती, सरीर।"
—स्थानांगसूत्र स्थान ५, ३-३ सूत्र १९२



वह समाज भ्रष्ट, दूषित और गन्दा हो जाता है। यह सडान (अशुद्धि) कभी-कभी सारे समाज को ले डूबती है। ऐसे गन्दे समाज मे सुख-शान्ति के लिए खतरा पैदा हो जाता है।

सज्जन और सन्त क्या करें ?

ऐसी स्थिति मे सज्जन और साधु-सन्त क्या करें ? क्या वे उस दूषित होते हुए समाज को उपेक्षा भाव से टुकुर-टुकुर देखते रहें या वहाँ से भागकर एकान्त जनशून्य स्थान मे चले जाएँ अथवा जहाँ हैं, वहीं रहकर समाज को बदलने, शुद्ध करने, उसमे सुधार करने का प्रयत्न करें ? या समाज को अपने दुष्कर्मों के उदय के भरोसे छोडकर किनाराकशी करें ?

वास्तव मे देखा जाए तो सज्जनो और साधु-सन्तो का कर्तव्य है, उनका विशेष दायित्व भी है कि वे समाज को विकृत होने या अशुद्ध होने से बचाएँ। अगर वे वहाँ से भागकर या समाज को अपने कर्मोदय के भरोसे छोडकर समाज के प्रति उपेक्षा करते हैं तो उसका परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे वह समाज इतना गन्दा और बुराइयो से परिपूर्ण हो जाएगा। उस समाज मे भी ऐसे भयकर घातक लोग पैदा हो जाएंगे कि साधु-सन्तो को जीना भी दूभर हो जाएगा। उनको धर्मपालन करने मे भी पद-पद पर विघ्न-बाधाएँ आएँगी। साधु-सन्त भी कोई आसमान से नहीं उतरते, वे भी गृहस्थसमाज मे से ही आते हैं। अगर समाज विगडा हुआ एव अपराधो का पिटारा होगा तो साधु-सन्त भी वैसी ही मनोवृत्ति के प्राय. होंगे। समाज मे अगर उद्दण्डता, उच्छृंखलता, असात्त्विकता आदि दोष होंगे तो वे ही कुसस्कार एव दुर्गुण साधुसमाज मे आए विना न रहेंगे।

चारो ओर आग लगी हो, उस समय अपने कमरे मे बैठा-बैठा मनुष्य यह विचार करे कि मैं तो सहीसलामत हूँ, यह आग अभी मुझसे बहुत दूर है। बताइए, ऐसा स्वार्थी और लापरवाह मनुष्य कितनी देर तक सुरक्षित रह सकता है ? वह कुछ समय तक भले ही अपने-आपको सुरक्षित समझ ले, किन्तु अधिक समय तक वह वहाँ सुरक्षित नहीं रह सकेगा। आग की लपलपाती हुई ज्वालाएँ उसके निकट पहुँच जाएंगी और उसे अपने स्थान से झटपट उठकर उस आग को बुझाने एव आगे बढने से रोकने के लिए प्रयत्न करना होगा। वह एक मिनट भी यह सोचने के लिए बैठा नही रह सकता कि यह आग कहाँ से आई है ? कैसे पैदा हुई ? इस आग को लगाने मे किसका हाथ है ? उसने यह आग क्यो लगाई ? आदि। उस समय समझदार आदमी यह सब सोचने के लिए नहीं बैठा रहता। वह दूर से आग को आती देखकर उसे आगे बढने से रोकने का प्रयत्न करेगा। वह सोचता है कि अगर मैंने इस आग को बुझाने मे जरा-भी विलम्ब किया या तनिक भी लापरवाही या उपेक्षा की तो थोडी ही देर मे यह आग मेरे मकान, परिवार, शरीर और सामान को भस्म कर देगी, मेरी शान्ति को जबर्दस्त खतरा पहुँचाएगी, मेरी शारीरिक एव मानसिक सुख-शान्ति को भी भस्म कर देगी। फिर तो धर्मध्यान मुझसे सैकडो कोस दूर भाग जाएगा और मैं आर्त्तध्यान एव रौद्रध्यान के झूले मे झूलता रहूँगा।

यही बात समाज मे चारो ओर फूट, वैमनस्य, चोरी, दुर्व्यसन, शिकार, जुआ, कुरूढियो, कुरीतियो और अतिस्वार्थ आदि बुराइयो या विकृतियों की आग लग जाने पर एकान्त मे अलग-थलग निश्चिन्त होकर बैठे रहने, गैर-जिम्मेवार या लापरवाह बनकर चुपचाप देखते रहने या उस स्थान से दूर भागने का प्रयत्न करने वाले साधु-सन्तो के विषय मे कही जा सकती है। समाज मे चारो ओर बुराइयो की आग लगी हो, उस समय साधु-सन्त कर्तव्यविहीन या उत्तरदायित्व से रहित होकर क्या महीनो और वर्षो तक यही सोचता रहेगा कि यह बुराई की आग कहाँ से आई ? किस



दुष्कर्म का फल है ? यह किसने पैदा की ? यह क्यो लगाई गई ? आदि। अथवा बुराइयो की उस आग को तत्काल बुझाने का भरसक प्रयत्न करने के बदले यही बौद्धिक या वाचिक व्यायाम करता रहे कि मैं क्या कर सकता हूँ ? एक जीव या एक द्रव्य दूसरे जीव या दूसरे द्रव्य का क्या कर सकता है ? सभी अपने-अपने कर्मों के फलस्वरूप दुःख पाते हैं, बुराइयो मे फँसते है ? कौन किसको सुधार सकता है ? अथवा अमुक व्यक्ति, समाज, वर्ग, धर्मसम्प्रदाय, जाति, ईश्वर, अवतार या धर्म-प्रवर्तक आदि निमित्तो को कोसता रहेगा, उन्हें इन बुराइयो के फैलाने में जिम्मेदार ठहरा कर, या समाज मे फैली हुई बुराइयो या दोषो का टोकरा उन पर डालकर स्वय को या अपनी उपेक्षा को जरा भी उत्तरदायी नहीं मानेगा ?

बुराइयो की आग को आगे बढने से रोकने या बुझाने का प्रयत्न न करने से साधुवर्ग के जीवन मे क्या संकट आ सकता है ? इसका अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है ? समाज की बुराई की वह उपेक्षित आग बहुत शीघ्र ही साधुवर्ग के दैनिक जीवन मे प्रविष्ट हो सकती है, गृहस्थवर्ग की फूट या धर्मसघ की वह फूट, वह वैमनस्य अथवा ईर्ष्या-द्वेष की आग साधुवर्ग पर अतिशीघ्र असर डाले बिना नहीं रहती। जहाँ भी सघ मे फूट की आग लगी है, वहाँ उस सघ के समर्थक तथा विरोधी दोनो पक्ष के साधुसन्तो मे आपसी कषाय, राग-द्वेष, ईर्ष्या, मिथ्या-आरोप-प्रत्यारोप, एक-दूसरे को बदनाम करने की वृत्ति ने जोर पकडा है। वीतरागता के उपासक साधुवर्ग के चरित्र को इस आग ने अपनी तेजी से आती हुई लपटो ने झुलसा कर क्षत-विक्षत कर दिया है। आए दिन इस प्रकार के काण्ड देखने-सुनने मे आते है। गृहस्थवर्ग मे प्रचलित जातीय या सामाजिक कुरूढि का असर साधुवर्ग पर भी पडा है और साधुवर्ग उसी कुरूढि की आग मे स्वय झुलसता और सिद्धान्त को झुलसाता नजर आया है।

अत सिद्धान्तवादी साधु-समाज मे बुराइयो की आग फैलते देखकर कभी चुपचाप गैर-जिम्मेवार एव अकर्मण्य बनकर सिर्फ उपाश्रय या धर्मस्थान की चहारदीवारी मे बन्द होकर बैठा नहीं रह सकता, क्योकि वह जानता है कि जिस समाज मे वह रहता है, उसमे किसी भी प्रकार की विकृति प्रविष्ट होने पर राष्ट्र और समाज की तो बहुत बडी हानि है ही, उसके मन पर भी राग-द्वेष की लपटें बहुत जल्दी असर कर सकती हैं, उसे भी क्रोध और अभिमान का सर्प डस सकता है, इससे चारित्र की तो क्षति है ही, किन्तु धीरे-धीरे उसकी सुखशान्ति को भी क्षति पहुँच सकती है। इसलिए समाज-कल्याण एव परोपकार की दृष्टि से, अथवा समाज की शुद्धि करके उसमे धर्म का प्रवेश कराने की दृष्टि से भी तथा अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय जीवनयात्रा निर्विघ्न एव निराबाध परिपूर्ण करने की दृष्टि से भी समाज मे प्रवर्द्धमान इन बुराइयो की आग को तत्काल रोकने या बुझाने का प्रयत्न करना ही हितावह है। समाज-सुधार का प्रत्येक कदम साधुवर्ग के लिए स्व-पर-कल्याणकारक है।

जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता महामहिम श्री चौथमलजी महाराज इस तथ्य-सत्य से भलीभाँति अवगत थे। अवगत ही नहीं, वे समाज मे प्रचलित बुराइयो को देखकर अपने प्रवचनो मे उन बुराइयो पर कठोर प्रहार करते थे और समाज को उन बुराइयो से बचाने का भरसक प्रयत्न करते थे। वे अपनी आँखो के सामने प्रचलित बुराई से आँखें मूँद कर अन्यत्र पलायन नहीं करते थे। इसे वे साधुवर्ग की कायरता और दकियानुसीपन समझते थे। वे समझते थे कि दूषित वातावरण मे साधुवर्ग की साधना सुचारु रूप से चल नहीं सकती। **'परोपकाराय सता विभूतय.'** इस आदर्श के अनुसार समाज के प्रति करुणार्द्र होकर सामाजिक शुद्धि के लिए वे प्रयत्नशील रहते थे। वे पैदल



विचरण का एक उद्देश्य यह भी मानते थे कि साधु जन-जन के सम्पर्क में आकर, उसकी नब्ज टटोल कर हृदयस्पर्शी उपदेश द्वारा जनता का जीवन परिवर्तन करे। वे जन-जीवन मे व्याप्त कुप्रथाओ, हानिकारक कुरूढियो एव फूट तथा वैमनस्य को मिटाने मे अपनी पूरी शक्ति लगा देते थे।

यहाँ हम उनके द्वारा समाजसुधार के रूप मे कुछ युगान्तरकारी प्रयत्नो का दिग्दर्शन करते हैं, जिससे पाठक भलीभाँति समझ सकें कि जैन दिवाकरजी महाराज के पावन हृदय में समाज-सुधार की कितनी प्रबल प्रेरणा जागृत थी !

वैमनस्य और फूट को मिटा कर रहे

समाज मे फूट सबसे अधिक घातक है, वह समाज के जीवन को अशान्त बना देती है और विकास के प्रयत्नो को ठप्प कर देती है। जिस समाज या जाति मे वैमनस्य की विषाक्त लहर व्याप्त हो जाती है, उसकी शिक्षा-दीक्षा, सुसस्कार एव विकास की आशाएँ धूमिल पड जाती हैं, प्रायः ऐसा समाज हिंसा—मानसिक हिंसा, असत्य एव दुर्व्यसनो की ओर झुककर अपने लिए स्वय पतन का गहरा गर्त खोदता रहता है।

विक्रम सवत् १९६९ की बात है। जैन दिवाकरजी महाराज अपनी शिष्यमण्डली सहित विचरण करते हुए हमीरगढ पधारे। वहाँ कतिपय वर्षों से हिन्दू छीपों मे वैमनस्य चल रहा था। परिस्थिति इतनी नाजुक हो गई थी कि उनमे परस्पर प्रेमभाव होने की आशा ही क्षीण हो गई थी। अनेक सन्तो ने इस मनमुटाव को मिटाने का भरसक प्रयत्न कर लिया, मगर दोनों पक्षों के दिलो की खाई और अधिक चौड़ी होती गई। आपश्री का हमीरगढ मे पदार्पण सुनकर छीपों ने अपनी मनोव्यथा-कथा आपके समक्ष प्रस्तुत की। आपने एकता पर विविध युक्तियो और दृष्टान्तो से परिपूर्ण जोशीला भाषण दिया। इसका प्रबल प्रभाव दोनो ही पक्षो पर पड़ा। दोनो ही पक्ष के अग्रगण्य लोग सुलह के लिए तैयार हो गए। वैमनस्य का मुँह काला हो गया। दोनो पक्षो मे परस्पर स्नेह-सरिता बहने लगी।

इसी प्रकार माहेश्वरी और महाजनो मे भी पारस्परिक वैमनस्य कई वर्षों से चला आ रहा था। आपने दोनो दलो को ऐसे ढग से समझाया कि दोनो मे पुन. आत्मीयता बढी और दोनों स्नेहसूत्र मे आबद्ध हो गए।

चित्तौड मे ब्राह्मण जाति मे आपकी ईर्ष्या के कारण तनातनी बढ गई थी। उसके कारण जाति मे दो पार्टियाँ हो गईं। एक पार्टी वाले दूसरी पार्टी वालो से बात करने से भी नफरत करते थे। जैन दिवाकरजी महाराज के समक्ष चित्तौड चातुर्मास मे यह विकट समस्या प्रस्तुत की गई। आपश्री के अविश्रान्त प्रयत्नो से दोनो पार्टियाँ एक हो गईं। जाति मे पडी हुई छिन्न-भिन्नता मिट गई। चित्तौड के हाकिम साहब ने इस ऐक्य की खुशी मे सबको प्रीतिभोज भी दिया।

गगरार मे अनेक जातियो मे परस्पर मनमुटाव चल रहा था। आपके पदार्पण का समाचार सुनकर सम्बन्धित लोगो ने अपने वैमनस्य की आपबीती सुनाई। आपने करुणार्द्र होकर प्रबल प्रेरणा दी, जिससे उनमे पडी हुई फूट विदा हो गई। सबके हृदय मे स्नेह-सद्भाव का झरना बहने लगा।

इन्द्रगढ़ का मामला तो बहुत ही पेचीदा था। वहाँ ४० वर्षों से ब्राह्मण जाति मे फूट अपना आसन जमाए हुए थी। इस वैमनस्य को मिटाने के लिए अनेक प्रयत्न हुए, पर सब व्यर्थ ! इन्द्रगढ-नरेश तक ने इस वैमनस्यपूर्ण कलह को मिटाने के लिए दोनो पक्षो के अग्रगण्यो से जोर देकर कहा, तब भी वे तैयार न हुए। आखिर वि० सं० १९९२ का चातुर्मास कोटा मे सम्पन्न



करके जैन दिवाकरजी महाराज इन्द्रगढ पधारे! जनता आपके प्रवचन सुनने के लिए बरसाती नदी की तरह उमडती थी। ब्राह्मण जाति के दोनो पक्षो के सदस्य आपके प्रवचन सुनने आते थे। एक दिन एकता और स्नेह पर जोशीला प्रवचन देते हुए आपने प्रवचन के दौरान ही सभा मे उपस्थित ब्राह्मणो से पूछा—"आप लोग प्रेम चाहते है या सघर्ष?" आपके प्रवचन से प्रभावित मुखिया लोग सहसा बोल उठे—"इस सघर्ष ने तो हमारा सत्यानाश कर दिया है, हम तो प्रेम और ऐक्य चाहते है।"

"अगर एकता चाहते है तो पुराने वैर की आग को आज, अभी यही पर बुझा दें। एक-दूसरे से क्षमा माँगकर प्रेमपूर्वक मिलें।"

देखते ही देखते पूरी सभा मे परस्पर क्षमा के आदान-प्रदान से मधुर एवं मगलमय वातावरण हो गया।

इसी तरह जहाजपुर, पोटला, सागानेर आदि मे सर्वत्र आपकी प्रेरणा से वैमनस्य दूर हुआ। पाली श्रीसंघ मे अनेक प्रयासो के बाद भी एकता नही हो पा रही थी, किन्तु वि० स० १९९० मे जब आप पाली पधारे तो आपके सघ-ऐक्य पर हुए जोशीले प्रवचनों मे पालीसघ के अग्रगण्य लोगो के हृदय डोल उठे और सघ मे एकता की लहर व्याप्त हो गई।

इस प्रकार जहाँ-जहाँ भी आपने फूट, वैमनस्य, अलगाव एव सघर्ष देखा, प्रेरक सदुपदेश देकर दूर किया।

वैवाहिक कुरूढ़ियाँ बन्द कराई

विवाह गृहस्थ-जीवन मे मगल प्रवेश का द्वार है। विवाह के साथ समाज मे कई कुरूढ़ियाँ एव कुरीतियाँ प्रचलित हो जाती हैं, एक बार उनका पालन, भविष्य मे घातक होने पर भी उस परिवार को उनके पालन के लिए बाध्य करता रहता है। कुरूढ़ियो के पालन के कारण समाज के मध्यमवर्गीय परिवार की कमर टूट जाती है। वर्षों तक या कई परिवार तो पीढियो तक उठ नही पाते। अत: जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से ऐसी कई कुरूढियाँ बन्द हो गई।

जैन दिवाकरजी महाराज का जब जहाजपुर पदार्पण हुआ, तब वहाँ का समाज कन्या-विक्रय, विवाहो मे वेश्यानृत्य, मदिरा पान, आतिशबाजी आदि कुरीतियो मे बुरी तरह फँसा हुआ था। इन्हीं कुरीतियों के कारण वहाँ के जैनेतर लोगो मे परस्पर मनमुटाव था। एक-दूसरे के पास बैठकर परस्पर विचार विनिमय करने से कतराते थे। आपश्री ने वहाँ समाज-सुधार पर इतने प्रभावशाली प्रवचन दिये कि जनता मन्त्रमुग्ध हो गई और अनेकता के अँधेरे को चीर कर प्रेम के उज्ज्वल प्रकाश से सराबोर हो गई। फलत आपके सदुपदेशो से प्रभावित होकर वहाँ के माहेश्वरी, दिगम्बर जैन एव अन्य अनेको लोगो ने परस्पर प्रेम भाव से विचार विनिमय करके उपर्युक्त अनेक कुरूढियो तथा दुर्व्यसनो का त्याग किया।

चित्तौड मे समाज-सुधार पर हुए आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर ओसवालो और माहेश्वरियो ने अपने-अपने समाज मे कन्याविक्रय, पहरावणी आदि कई कुरीतियो का परित्याग किया। साथ ही उन्होंने अपनी जाति मे यह घोषणा करवा दी कि जिस भाई के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए अर्थव्यवस्था नहीं हो, उसे जाति के पचायती फण्ड से ४०० रुपये तक कर्ज के रूप मे बिना ब्याज के दिये जाएँगे।'

पशुबलि निवारण का प्रयास

धर्म के नाम पर देवी-देवताओ के आगे की जाने वाली पशुबलि भी एक भयकर कुरूढि है,



घोर हिंसा है, अधर्म है। जैन दिवाकरजी महाराज ने इस कुरूढि को भी वन्द कराने के लिए प्रयास किया था। गगापुर मे जब आप विराज रहे थे, उस समय उज्जैन के सरसूवेदार वालमुकुन्दजी आपके दर्शनार्थ आए और उन्होने आपसे प्रार्थना की—'महाराज! कोई सेवा हो तो फरमाइए।' आपश्री ने अहिंसा-प्रचार की प्रेरणा देते हुए कहा—"आप उज्जैन के उच्च अधिकारी हैं। आप वहाँ देवी-देवताओ के नाम पर होने वाली पशुवलि को वन्द कराने की भरसक कोशिश करें।" उन्होंने इसके लिए पूर्ण प्रयास करने की स्वीकृति दी।

इन्दौर मे आपके व्याख्यानो से प्रभावित होकर वहाँ के डिस्ट्रिक्ट सूवेदार ने विभिन्न स्थानो पर देवी देवताओ के आगे होने वाली पशुवलि वन्द कराई। जिसके फलस्वरूप १५०० पशुओ को अभयदान मिला। हिंसाजनक कुरूढि को दूर करने का यह कितना प्रवल कदम था!

अस्पृश्यता का कलक मिटाया

अस्पृश्यता भारतीय सस्कृति और समाज का सवसे वडा कलक है। जैनधर्म तो अस्पृश्यता को मानता ही नहीं, फिर भी पडौसी धर्म के सम्पर्क से कुछ जैनो मे यह कलकदायिनी कुप्रथा घुस गई। वे इस वात को भूल जाते हैं कि जैनधर्म के उच्च साधको मे हरिकेश चाण्डाल, मैतार्य भगी, यमपाल चाण्डाल आदि अनेक पूजनीय व्यक्ति हो चुके हैं। किसी भी जाति, वर्ण और धर्म-सम्प्रदाय का व्यक्ति सदाचार का पालन करके अपनी आत्मा को पवित्र और उच्च बना सकता है। जैन दिवाकरजी महाराज ने भी अस्पृश्य, पतित और नीच कहे जाने वाले कई लोगो को अहिंसक वनाया है और दुर्व्यसनो का त्याग करा कर उन्हे धर्ममार्ग पर चढाया है।

परन्तु अस्पृश्यता का भयकर रूप तो तव प्रकट होता है, जव किसी निर्दोष व्यक्ति पर झूठा कलक लगा कर उसे अस्पृश्य घोषित कर दिया जाता है, उसके साथ मानवता का व्यवहार भी नही किया जाता।

वडी सादडी मे कुछ स्त्रियो ने अन्य स्त्रियो पर मिथ्या कलक लगा कर उन्हे अस्पृश्य करार दे दिया। समाज मे उसको लेकर काफी वैमनस्य फैला। अनेक सन्तो के प्रयास से भी वह झझट न मिटा। आखिर जैन दिवाकरजी महाराज के प्रभावशाली सदुपदेश से वह झझट निपट गया। समाज का वह मनोमालिन्य सदा के लिए मिट गया।

वुनकर भी पवित्रता के पथ पर

मध्य प्रदेश मे विचरण करते हुए आपश्री राजगढ पधारे। वुनकरो मे मास एव मद्य का दुर्व्यसन लगा हुआ था। आपके सदुपदेश से प्रभावित होकर उन्होंने जीवन-भर के लिए मास-मदिरा का त्याग कर दिया।

खटीकों ने मद्यपान का त्याग किया

पिपलिया गाँव के खटीको मे मद्यपान का भयकर दुर्व्यसन लगा हुआ था। इसके कारण वे धन, धर्म और तन से वर्वाद हो रहे थे। आपश्री का जोशीला प्रवचन ४०० से अधिक खटीको ने सुना। शराव के दुर्गुण और अपनी वुरी हालत सुनकर खटीक एकदम जागृत हो गए। उन्होंने आपश्री के समक्ष आजीवन शराव न पीने की शपथ ले ली।

खटीको का तो मद्यपान के त्याग से सुधार हुआ, पर निहित-स्वार्थी शराव के ठेकेदार को आर्थिक हानि हुई। उसने आवकारी इन्स्पैक्टर से शिकायत की। वह भी ठेकेदार का समर्थक वन



कर जैन दिवाकरजी महाराज के पास खटीको की शिकायत लेकर पहुँचा। आपश्री ने उसे साफ-साफ सुना दिया कि 'जनता को शराव पिलाकर उसके तन, धन और धर्म को नष्ट करना तथा उसकी जिन्दगी के साथ खिलवाड करना उचित नही।' इस्पैक्टर निरुत्तर होकर चला गया।

इस प्रकार आपने समाज की जडो को खोखला करने वाले मद्यपान का दुर्व्यसन अनेक लोगो को छुड़ाकर समाज को धर्म दृष्टि से सशक्त वनाया।

खटीको को अहिंसा-पथ पर लगाया

खटीक अन्त्यज जाति मे गिने जाते हैं। वे मालवा, मेवाड आदि मे काफी फैले हुए है। इनका मुख्य धन्धा पशुओ को खरीदना, कसाइयो के हाथ वेचना या स्वय उन्हे मारकर उनके अगो मास आदि को वेचना था। जैन दिवाकरजी महाराज का ध्यान इन लोगो की ओर गया। उन लोगो के पिछडेपन का कारण भी महाराजश्री की दृष्टि मे छिपा न रह सका। अव तो आपश्री जहाँ भी पधारते खटीक परिवारो को अहिंसक वनने का उपदेश देते और आपके उपदेश उनके झटपट गले भी उतर जाते तथा वे अपना पूर्वोक्त पैतृक-धन्धा छोड देते।

वि० स० १९७० मे जव आप भीलवाडा पधारे तो आपके उपदेश से ३५ खटीक परिवारो ने अपना पैतृक-धन्धा छोड़कर अहिंसक जीवन विताने का सकल्प ले लिया।

सवाई माधोपुर मे भी आपके प्रवचनो से प्रभावित होकर ३० खटीक परिवारो ने अपना हिंसक धन्धा छोडकर सात्त्विक धन्धे (कृषि, मेहनत-मजदूरी आदि) अपना लिए। हिंसक धन्धे छोडने के वाद उनका जीवन सव प्रकार से सुखी हो गया। इसका असर अन्य खटीको पर भी पडा। उन्होंने भी पुश्तैनी हिंसक धन्धा छोडकर जीवकोपार्जन के लिए सात्त्विक साधन अपना लिए।

वि० स० १९७१ मे आगरा वर्षावास सम्पन्न करके जव आपके चरण मालव प्रदेश की ओर वढ रहे थे, तव कोटा मे कुछ आगे एक खटीक को आपने प्रतिवोध दिया और अपने जाति के अहिंसक वनने पर सुखी एव सम्पन्न हुए भाइयो का अनुसरण करने के लिए कहा तो उसने सरल हृदय से महाराजश्री की वात को स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार नसीरावाद (छावनी), सोजत आदि कई गाँवो के खटीको ने अहिंसावृत्ति अगीकार की।

समाजशुद्धि का यह कार्य कितना मूल्यवान है? आपके करुणार्द्र हृदय ने अनेक कष्ट सह कर इन पिछडी जाति के लोगो के जीवनपरिवर्तन कर दिये।

मोचियो के जीवन की कायापलट

गगापुर के मोचीजाति मे जैन दिवाकरजी महाराज ने मानवता की ज्योति जगाई। मोची-जाति के अनेक लोग आपके उपदेशो से प्रभावित होकर शुद्ध शाकाहारी अहिंसक वन गए। उन्होने शराव, मास, जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनो का त्याग कर दिया। कई मोची तो जैनधर्म का पालन कर रहे हैं। गगापुर के जिनगरों (मोचियो) के द्वारा स्वीकृत अहिंसावृत्ति का प्रभाव पाली, रेल-मगरा, पोटला, जोधपुर आदि क्षेत्रो के मोचियो पर भी पडा। उन्होने भी मास, मद्य जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनो से विरत होकर सात्त्विक जीवन अपना लिया।

भीलो द्वारा हिंसा का त्याग

मेवाड के आदिवासी गिरिजन भील कहलाते हैं। ये भोले, भद्र और सरल होते हैं। महाराणा प्रताप के वनवास के समय ये अत्यन्त सहायक रहे हैं। वि० स० १९६६ मे जैन दिवाकरजी



महाराज जब उदयपुर से विहार करके 'नाई' गाँव पधारे, तब वहाँ आपका उपदेश सुनने के लिए तीन-चार हजार भील एकत्रित थे। आपने मेवाडी भाषा मे भीलो को लक्ष्य करके उपदेश दिया, उससे भीलो के हृदय मे हिंसा के प्रति अरुचि हो गई। उन्होंने आपके उपदेश तथा आपके निर्मल चरित्र व लोकोपकारी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ ली—

(१) वन मे अग्नि नही लगाएँगे।

(२) किसी भी नर-नारी को कष्ट नही देंगे।

(३) विवाह आदि प्रसगो पर भी पशुओ का वध नही करेंगे।

मामा के यहाँ मे पशु आते हैं, उन्हें भी अभयदान देंगे। वि० स० १६८२ मे जब आपश्री नन्दवास पधारे, वहाँ के भीलो ने भी जगल मे आग न लगाने की प्रतिज्ञा ली।

चमार मास-मदिरा त्याग पर दृढ रहे

जैन दिवाकरजी महाराज जिस वस्तु का त्याग कराते थे, उस वस्तु से होने वाली हानियाँ तथा उसके त्याग से होने वाले लाभ को खूब अच्छी तरह समझा देते थे, ताकि भय और प्रलोभन की आँधी आने पर भी वह अपने त्याग पर डटा रह सके।

ऐसी ही एक घटना केसूर ग्राम मे हुई। केसूर मे उस समय सैलाना, महीदपुर, उज्जैन, रतलाम आदि ६० क्षेत्रों के चमार गगाजलोत्सव पर एकत्रित हुए थे। स्थानीय श्रावको ने आपसे चर्मकार वस्ती मे पधारकर चमार लोगो को उपदेश देने की प्रार्थना की। दयालु महाराजश्री उनकी प्रार्थना पर ध्यान देकर वहाँ पधारे और दो व्याख्यान दिये। उनका जादू-सा असर हुआ। आपके व्याख्यान के वाद चर्मकारो की एक विशेष मीटिंग हुई, जिसमे पचलूनी, वडलावदा, खाचरोद एव वडनगर के पच भी सम्मिलित हुए। सबने दीर्घदृष्टि से विचार करके सभी उपस्थित लोगो को जैन दिवाकरजी महाराज के समक्ष आजीवन मास-मदिरा का त्याग करवाया और स्वय किया। इसके पश्चात् आजीवन मास न खाने और मद्यपान न करने का ६० गाँवो के चमारो की ओर से पचो ने इकरारनामा लिखकर दिया। उसमे इस प्रतिज्ञा का भग करने वाले के लिए जाति की ओर से वहिष्कार तथा दण्ड का निश्चय भी लिखा गया।

इसके पश्चात् शराब के ठेकेदार तथा सरकारी अधिकारियो ने इन मद्यत्यागी चमारो को बहुत डराया, धमकाया, जबर्दस्ती प्रतिज्ञा भग करने का प्रयत्न किया, लेकिन चमार अपनी प्रतिज्ञा से एक इच भी न डिगे। त्याग पर इतनी दृढता के कारण गुरुदेव के द्वारा दिये गए ज्ञान और व्यक्तित्व का ही प्रभाव था।

कसाइयों का हृदय-परिवर्तन

वि० स० १६८० मे आपका चातुर्मास इन्दौर था। एक दिन 'जीवदया' पर आपका प्रभावशाली सार्वजनिक प्रवचन हुआ। प्रवचन मे 'नजर मुहम्मद' नामक एक प्रसिद्ध कसाई भी उपस्थित था। प्रवचन का उस पर इतना तीव्र प्रभाव पडा कि प्रवचन मे ही खडे होकर उसने घोषणा की— "मैं इस भरी सभा मे कुरान-शरीफ की साक्षी से प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से कदापि किसी जीव की हिंसा नही करूँगा।" कसाई के इस आकस्मिक परिवर्तन से सारी सभा चकित हो गई। सब ने उसे धन्यवाद दिया और जैन दिवाकरजी महाराज का अद्भुत प्रभाव देखकर उनके प्रति सब नत-मस्तक हो गए।



इसी प्रकार अहमदनगर आदि कई क्षेत्रो मे आपके उपदेशो ने कसाइयो का जीवन-परिवर्तन कर दिया।

चोर का जीवन बदला

समाज मे चोरी का धन्धा उसे रसातल एव पतन की ओर ले जाने वाला है। चोर का परिवार कभी सुख-शान्ति से जी नही सकता, न ही समाज मे उसकी प्रतिष्ठा होती है।

जलेसर (उ० प्र०) मे जैन दिवाकरजी महाराज का प्रवचन चोरी के दुष्परिणामो पर हो रहा था। श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे। प्रवचन पूर्ण होते ही एक व्यक्ति सहसा खडा हुआ और करबद्ध होकर कहने लगा—"महाराज! मुझे चोरी का त्याग करा दीजिए। आज से मैं आजीवन चोरी जैसा निन्दनीय कर्म नही करूंगा।" आपश्री ने उसके क्रूर चेहरे पर पश्चात्ताप की रेखा देखी, आँखें सजल होकर उसकी साक्षी दे रही थी। आपने क्षणभर विचार करके उसे चोरी न करने का नियम दिला दिया।

उपस्थित जनता उस भूतपूर्व चोर, डकैत और क्रूर व्यक्ति का अकस्मात् हृदयपरिवर्तन देख कर चकित थी। सबने उसके त्याग के प्रति मगलकामना प्रगट की।

पर यह सब चमत्कार था, जैन दिवाकरजी महाराज के हृदयस्पर्शी प्रवचन का ही!

कैदियो द्वारा भविष्य मे दुष्कर्म न करने का वचन

कैदी भी कोई न कोई अपराध करके स्वय जीवन को गदा बनाते हैं और समाज मे भी गदा वातावरण फैलाते हैं। जैन दिवाकर जी महाराज समाज शुद्धि के इस महत्त्वपूर्ण पात्र का भी ध्यान रखते थे, जहाँ भी अवसर मिलता, वे कैदियो के हृदय तक अपनी बात पहुँचाते थे। वि०स० १६८४ की घटना है। चित्तौड के मजिस्ट्रेट को कैदियो की दयनीय एव पतित दशा देख कर दया आई। आपकी प्रभावशाली वक्तृत्वशक्ति से वह परिचित था। एक दिन उसने आपसे कैदियो के जीवन-सुधार के लिए उपदेश देने की प्रार्थना की। आपने प्रार्थना स्वीकृत की और कैदियो के समक्ष इतना प्रभावशाली प्रवचन दिया कि उनके हृदय हिल उठे। सबने पश्चात्तापपूर्वक साश्रुपूर्ण नेत्रो से सकल्प व्यक्त किया—"हम भविष्य मे कदापि ऐसा कोई कार्य नही करेंगे, जिसमे हमारे या दूसरे का कोई अपकार हो। हम सदैव सत्पथ पर चलेंगे।"

देवास जेल मे भी कैदियो को इसी तरह उपदेश दिया था, एव कई त्याग करवाये थे।

सचमुच समाज की सर्वतोमुखी शुद्धि के लिए आपके ये प्रयत्न आपके पतितपावन विरुद को उजागर कर देते हैं।

वेश्याओ का जीवनोद्धार

'वेश्यावृत्ति सामाजिक जीवन के लिए एक कलक है, पतन का द्वार है, यह जितना शीघ्र समाज से विदा हो, उतना ही समाज का कल्याण है।' जैन दिवाकरजी महाराज इस विषय पर गहराई से चिन्तन करते थे और समाज को शुद्ध एव स्वच्छ बनाने के लिए वेश्यावृत्ति को मिटाना आवश्यक समझते थे। जहाँ भी आपको अवसर मिलता था, आप इस दुर्वृत्ति को बन्द करने का सकेत करते थे।

वि० स० १६६६ मे जैन दिवाकरजी महाराज चित्तौड आदि होते हुए जहाजपुर पधारे। वहाँ विवाह आदि अवसरों पर वेश्याओं के नृत्य का रिवाज था। महाराजश्री ने अपने प्रवचनो मे



इस कुरीति पर कडा प्रहार किया। फलत सभी जैन-वैष्णवो ने वेश्यानृत्य की कुरीति का सदा-सदा के लिए त्याग कर दिया।

वेश्याओ ने समाज का यह निर्णय सुना तो उन्हे बहुत बडा धक्का लगा, उन्हें लगा कि हमारी आजीविका ही छिन गई है। अत एक दिन जब जैन दिवाकरजी महाराज शौचार्थ पधार रहे थे, तब कुछ वेश्याओ ने साहस बटोरकर आपश्री से कहा—'मुनिवर ! आपने वेश्यानृत्य बद करा दिया, इससे तो हमारी रोजी छिन गई। अब हम क्या करें आप ही हमे मार्ग बताइए।"

आपने महिलाजाति के देवीस्वरूप, मातृ पद का गौरव बता कर वेश्याओ के दिमाग मे यह बात जचा दी कि अश्लील नृत्य-गान आदि कुत्सित एव कलकित कर्म को छोडकर सात्त्विकवृत्ति से जीवनयापन करना ही श्रेष्ठ है।" अत वेश्याओ ने आपकी प्रेरणा पाकर अपने कलकित जीवन का परित्याग करके श्रमनिष्ठ सात्त्विक जीवन जीने का सकल्प किया।

वि० स० १९८० मे पाली मे वेश्यावृत्ति पर आपने अपने प्रवचनो द्वारा कठोर प्रहार किये, तब वहाँ की 'मगली' और 'बनी' नाम की वेश्याओ ने वेश्यावृत्ति को तिलाजलि देकर आजीवन शीलव्रत धारण कर लिया 'सिणगारी' नाम की वेश्या ने एक-पतिव्रत स्वीकार किया।

वि० स० २००५ के जोधपुर वर्षावास मे आपके प्रवचन सुनने के लिए अनेक वेश्याएँ (पातरियाँ) आती थी। आपके प्रवचनो से अनेक वेश्याओ के हृदय मे ऐसी ज्ञानज्योति जगी कि उन्होंने इस निन्द्य एव घृणित पेशे को सर्वथा तिलाजलि दे दी। कुछ वेश्याओ ने मर्यादा निश्चित कर ली।

यह था जैन दिवाकरजी महाराज का समाज-सुधारक एव पतित-पावन होने का ज्वलन्त प्रमाण।

मृतक-भोज की कुप्रथा का त्याग

मृतकभोज समाज की आर्थिक स्थिति को कमजोर करके समाज के मध्यम या निम्नवर्ग के लोगो को जिंदगीभर कर्जदार करके उन्हें अभिशप्त करने वाली कुप्रथा है। जिस समाज मे यह कुप्रथा प्रचलित है, वहाँ धर्म-ध्यान के बदले आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान मे ही प्राय वृद्धि होती देखी गई है।

समाज-सुधार के अग्रदूत श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसी ही अनेक सामाजिक कुप्रथाओ से होने वाली हानियो से पूरे परिचित थे। अत कई जगह आपने उपदेश देकर इस कुप्रथा को बद कराया।

घोडनदी और अहमदनगर मे अनेक लोगो ने मृतकभोज मे सम्मिलित न होने तथा न करने का नियम लिया।

समाज को स्वधर्मी वात्सल्य की ओर मोडा

समाज मे दान के प्रवाह को सतत जारी रखने तथा कुरूढियो और कुरीतियो मे तथा दुर्व्यसनो मे होने वाली फिजूलखर्ची को रोककर उस प्रवाह को स्वधर्मी वात्सल्य की ओर मोडने का अथक प्रयास किया। स्वधर्मी वात्सल्य की आपकी परिभाषा सहधर्मी भाई-बहन को एक वक्त भोजन करा देने तक ही सीमित नहीं थी। अत आप साधर्मी भाई-बहनो को तन, मन, धन एव साधनो से सब तरह से सहायता करने की अपील किया करते थे।

वि० स० १९८८ का बम्बई चातुर्मास पूर्ण करके आप नासिक की ओर बढ रहे थे।



नासिक से कुछ दूर, सडक के किनारे एक छोटे-से मकान मे एक अत्यन्त फटेहाल जैन परिवार रहता था। उसकी दयनीय दशा देखकर आपश्री चुपचाप नही बैठे। नासिक पहुँच कर अहमदनगर निवासी श्री ढोढीरामजी को स्वधर्मी की करुण-दशा का चित्रण करके पत्र द्वारा सूचित किया। उन्होंने अपना मुनीम तुरन्त भेजा। उन्होने अहमदनगर चातुर्मास मे आपके समक्ष प्रतिज्ञा ली थी कि मैं अब मौसर (मृतक-भोज) नही करूँगा तथा ५ हजार का फड सावर्मी-सहायता के लिए करता हूँ, उसमे से उक्त भाई को जीवन साधन देकर आश्वस्त किया।

यह था समाज के उपेक्षित एव असहाय व्यक्तियो के लिए महायता की प्रेरणा देकर समाज को अधार्मिक एव निष्ठुर होने से वचाने का दीर्घदर्शी सत्प्रयत्न !

शासको के जीवन का सुधार

प्राचीन काल मे शासक समाज-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता था। **'राजा कालस्य कारण'** यह उक्ति शासक की युग निर्मात्री शक्ति की परिचायिका है। शासक उस युग मे समाज का नेता माना जाता था। अगर शासक का जीवन धर्ममय एव नैतिक न हो, तो जनता पर भी उसका गहरा और शीघ्र प्रभाव पडता था। इस वात को मद्दे नजर रखकर जैन दिवाकरजी महाराज ने उस समय के अधिकाश शासको की रीति-नीति, परम्परा और व्यसन-परायण जिंदगी को वदलने का निश्चय किया। प्राय. शासको के जीवन मे मासाहार, शिकार, सुरा और सुन्दरी आदि दुर्व्यसन प्रविष्ट हो चुके थे।

आपने जगह-जगह शासको को अपनी वक्तृत्वशक्ति के वल पर धर्म, साधुसत और परमात्मा के प्रति श्रद्धालु वनाया, उनके जीवन को नया मोड दिया। उनके जीवन मे अहिंसा की लहर व्याप्त की। उनसे त्याग (हिंसा त्याग, व्यसन त्याग आदि) की भेंट स्वीकार की। फलतः मेवाड के महाराणाओ से लेकर मारवाड, मालवा आदि के छोटे-वडे राजा, राव, रावत, ठाकुर, जागीरदार आदि तक आपका पुण्यप्रभाव वढ गया। उनमे इतनी जागृति आ गई कि उनकी विलासिता एव ऐय्याशी काफूर हो गई। सुरा-सुन्दरी, शिकार और मासाहार के दुर्व्यसनो को उन्होने तिलाजलि दे दी और जनता की सेवा के दायित्व की ओर ध्यान देने लगे। जनता की चिकित्सा, शिक्षा, न्याय, आवास, अन्नवस्त्र आदि समस्याओ को सुलझाने में लग गए।[1] जैन दिवाकरजी महाराज ने स्वय कष्ट (परिषद) सहकर भी शासको के जीवन-सुधार के लिए अथक प्रयास किया। वास्तव मे आपने समाज के उस युग मे माने जाने वाले अग्रगण्यो को सुधार कर समाज को काफी अशो मे पतन और दूषणो से वचा लिया। आपकी इस महती कृपा के लिए समाज युगो-युगो तक आपका चिर-ऋणी रहेगा।

आपके उपदेशों मे समाज को बदलने की महान् शक्ति

सचमुच आपके उपदेशो मे समाज की कायापलट करने की महान् शक्ति थी। मेघ की शीतल-सौम्य जलधारा की तरह आपकी पतितपावनी समाज-स्वच्छकारिणी वचनधारा झोपडी से लेकर महलो तक विना किसी भेदभाव के सर्वत्र समानभाव से वरसती थी। आप जहाँ राजा-महाराजाओ और शासको का ध्यान उनकी बुराइयो की ओर खीचते थे, वहाँ पतितो, पददलितो, उपेक्षितो एव पिछडे लोगो को भी उनमे व्याप्त अनिष्टो की ओर से हटाकर नया शुद्ध मोड देते थे।

---

१ 'आदर्श उपकार' पुस्तक मे इसका विस्तृत वर्णन पढिए



आपके प्रवचनो से कितने ही शासको, सेठ-साहूकारो एव नेताओ आदि ने सुरा-सुन्दरी, शिकार, मासाहार, फूट, कुरुढियाँ आदि का त्याग किया। वहाँ कितने ही चमारो, मोचियो, हरिजनो, गिरिजनो, खटीको वेश्याओ, चोरो आदि ने अपने दूषित जीवन को छोडकर सन्मार्ग ग्रहण किया। हजारो लोगो ने फूट और वैमनस्य का कुपथ छोड कर प्रेम और ऐक्य का सन्मार्ग अपनाया। समाज-सुधार के आपके उपदेशों को हजारो लोगो ने क्रियान्वित कर दिखाया। कितने ही शराबियो ने शराब छोडी, कई मासाहारियो ने मासाहार छोडा, कई हिंसको ने जीववध का त्याग किया, कई चोरो जुआरियो, बदमाशो या वेश्याओ ने अपने-अपने दुर्व्यसनो को तिलाजलि दी और सात्त्विक सन्मार्ग अपनाया। आपके प्रवचनो ने कई कुमार्गगामी, पापी और पतित-आत्माओ की जीवन दिशा बदली। कहाँ तक गिनाएँ आपके जीवन मे समाज-सुधार के लिए एक से एक बढकर हजारो उपलब्धियाँ थीं। ऐसे समाज-सुधार के अग्रदूत को कोटि-कोटि कण्ठो से धन्यवाद और लक्ष-लक्ष प्रणाम !



बदनामी मत ले !

(तर्ज—पनजी मूडे बोल)

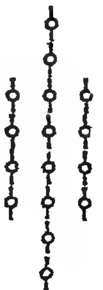
मती लीजे रे-२, बदनामी कितनो जीणो प्राणी रे ॥टेर॥

ली बदनामी राजा रावण, हरी राम की राणी रे।
स्वारथ भी कुछ हुवा नहीं, गई राजधानी रे ॥१॥

दियो पीजरे बापने रे, कश अनीति ठानी रे।
विरोध करीने मर्‌यो हरि से, हुई उसी की हानी रे ॥२॥

ली बदनामी कौरवां ने, नही बात हरि की मानी रे।
पांडवो की जीत हुई, महाभारत बखानी रे ॥३॥

ली बदनामी बादशाह ने, गढ चित्तौड़ पर आनी रे।
हाथ न आई पदमणी, गई नाम निशानी रे ॥४॥



बासन तो बिरलाय जावे, वासना रह जानी रे।
तज धूमराई लीजे भलाई, या सुखदानीरे ॥५॥

धर्म ध्यान मे शोभा होवे, सुधरे नर जिन्दगानी रे।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, धन जिनवानीरे ॥६॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज



विश्वमानव मुनि श्री चौथमलजी महाराज

✡ स्व० पं० 'उदय' जैन

अर्द्ध शताब्दी पूर्व की बात है। हम छोटे बच्चे थे। सुनते थे–श्री चौथमलजी महाराज पधारे हैं। जैन-अजैन सभी उनकी अगवानी कर रहे हैं, जय बोल रहे हैं, व्याख्यान सुन रहे हैं, त्याग-प्रत्याख्यान कर रहे हैं और यह भी सुनते थे कि अमुक राजा, अमुक महाराजा, अमुक राणा, अमुक महाराणा, अमुक ठाकुर, अमुक रावत, अमुक नवाब और अमुक सामन्त, अमुक अमीर, अमुक उमराव उनके दर्शन कर प्रसन्न हुए हैं, प्रभावित हुए हैं। शिकार छोड़ी है और अगते पलवाने प्रारम्भ किये हैं। अमुक निम्न समझी जाने वाली जाति ने उनको अपना गुरू माना है। उसने शराब पीनी छोड़ी है, मास खाना छोडा है। अमुक गाँव मे वर्षों से चले आ रहे धडे मिटे हैं और अमुक जाति उनकी भक्त बनी है।

समय था, चारो ओर श्री चौथमलजी महाराज के नाम की धूम मची थी। शिष्य पर शिष्य बन रहे थे। यद्यपि वे अपनी सम्प्रदाय के आचार्य नही थे, लेकिन आचार्य के समान शोभित हो रहे थे। उन्ही के आदेश पाले जा रहे थे, उन्ही की पूजा हो रही थी और उन्ही के गुण-गान गाये जा रहे थे। न हो आचार्य और न मिले उपाध्याय पद, फिर भी सभी कुछ थे। वे बेताज के सन्त-सिरोताज थे। उनकी मुनि-मण्डली के बादशाह-सम्राट थे। उनका सगठन श्री 'चौथमलजी महाराज की सम्प्रदाय' के नाम से मशहूर था।

मालव प्रदेश और मेवाड उनका अनन्य उपासक था। जिधर विहरते, उधर उनके भक्तो की भीड जम जाती थी। जहाँ बोलते, वहाँ भक्तगण आ जमते और जब तक बोलते, उनकी तरफ बिजली की भाँति खिचे हुए जमे रहते, एक टक निहारते और उन्ही की सुनते थे। उनका भाषण बन्द और जनसमूह तितर-बितर। दूसरा कोई भी बोले—जनता सुनना पसन्द नहीं करती थी।

क्या था उनकी वाणी मे? और क्या था उनके शरीर के मापणस्थ आसन-पीठ मे जिससे कि जनता उनकी ओर ही खिची रहती थी? उनका दीदार, उनका शरीराकार, उनका समवसरण-स्थ अमोघ वर्षण और उनकी दिव्य ललकार तथा उनकी सगीत की पीयूषसनित फटकार-ये ही तो उनके आकर्षण के कारण थे, ये ही उनके प्रसिद्धि के साधन थे और ये ही उनके भक्ति के अग थे।

शिष्य-समुदाय के साथ उनकी एक सगीत की झकार हजारो की जन-मेदिनी को मोहित कर लेती थी, झुमा देती थी, मस्त बना देती थी और असर डालकर हृदय-परिवर्तन कर देती थी। उनकी सगीत की ध्वनि मुँह से उच्चरित होते ही उनका शिष्य समुदाय उसे तत्काल उठा कर, उसको सवर्धमान करती हुई हृदय वीणा के तार झकृत कर देती थी। वह ध्वनि, वह वाणी और वह उद्गीथ सरस्वती की वीणा की तान एक बार मानव मन को मोहित कर, उस ओर आकर्षित कर लेती थी। ऐसा आकर्पण कि जन-मन की श्रुतेन्द्रियजनित श्रवण-शक्ति आस-पास के गगनभेदी आवाजो की तरफ से भी बहरी बना देती थी। कितना ही शोर मच रहा हो, कितने ही ढोल और बाजे बज रहे हो, कितने ही गगनभेदी नारे लग रहे हो, लेकिन जब तक उस सुरील-सगीत की ध्वनि-लहर बहती रहती, किसी का कान-किसी का ध्यान उधर नहीं जाता था। यह थी उस महामुनि श्री चौथमल जी महाराज की वाणी की विशेषता, जिसको उनके भक्तगण भी नही साध सके और न पा ही सके।

क्या मुनि श्री चौथमलजी महाराज प्रसिद्ध वक्ता थे? यह एक प्रश्न मेरे दिमाग मे



उद्भवित हुआ। प्रसिद्ध वक्ता तो उस समय भी बहुत थे और आज भी बहुत हैं, लेकिन वे सिर्फ वक्ता ही नही थे—वे थे वाणी के उद्गीय ब्रह्मनाद। सगीत और भाषण का जहाँ उत्कट सम्मिश्रण हो, उसे हम सिर्फ वक्ता या प्रसिद्ध वक्ता कहे, यह स्वय के शब्दो को लज्जित करना है। मैं कहूँगा—**मुनिश्री चौथमलजी वास्तविक ब्रह्मनाद का उद्घोषक प्रख्यात सगीतज्ञ, कविराज तथा व्याख्यान वाचस्पति व्याख्याकार थे।**

मुनि श्री चौथमलजी महाराज जैनियो और उनके भक्तो के ही नही थे—वे विश्व मानव के थे। उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर हम चाहते हैं कि भगवान महावीर के सघ का एक कीर्ति-स्तम्भ स्थापित करे। यह कीर्तिस्तम्भ पत्थर का नही, कार्य रूप अमर याद का स्थापित करें। हमारा शताब्दी मनाना तभी सार्थक होगा जबकि हम उनकी दिव्य वाणी और उनके दिव्य उद्घोष का उपयोग कर, वीर शासन के सैंकडो टुकडो मे बँटे इन साम्प्रदायिक अगो को सगठित करने का कार्य हाथ मे लें।

परिचय .

[जैन समाज के एक निर्भीक चिन्तक, शिक्षाशास्त्री और तन-मन-धन से सेवार्थ समर्पित। मेवाड़ की अनेक शिक्षण-सस्थाओ के प्रतिष्ठाता, दो वर्ष पूर्व स्वर्गवासी]



तप का महत्व

(तर्ज—या हसीना बस मदीना, करबला में तू न जा)



यह कर्म दल को तोडने मे, तप बडा बलवान है।
काम दावानल बुझाने, मेघ के समान है॥टेर॥

काम रूपी सर्प कीलन, मत्र यह परधान है।
विघन घन तम-हरण को, तप जैसे भानु समान है॥१॥

लब्धि रूपी लक्ष्मी की, लता का यह मूल है।
नन्दिषेण विष्णु कुवर का, सारा ही बयान है॥२॥

वन दहन मे आग है, और आग उपशम मेघ है।
मेघ हरण को अनिल है, और कर्म को तप ध्यान है॥३॥

देवता कर जोड के, तपवान के हाजिर रहे।
वर्धमान प्रभु तप तपे, उपना जो केवलज्ञान है॥४॥

गुरू के प्रसाद से, करे चौथमल ऐसा जिकर।
आमोसही ऋद्धि मिले, यही स्वर्ग सुख की खान है॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज



चौथमल : एक शब्दकथा

"चौथ हर पखवाडे हमारा द्वार खटखटाने वाली एक तिथि है। सामान्य जन इसे 'चौथ' कहता है। ज्योतिष में 'चौथ' को रिक्ता कहा गया है। जैनागमो मे चारित्र को रिक्तकर कहा है। इस तरह 'चौथ' और 'चारित्र' निर्जरा और निर्मलता के जीते जागते प्रतीक हैं।

✯ मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
[आगम अनुयोग प्रवर्तक, प्रसिद्ध आगम विद्वान्]

मैंने स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन वृहत्साधु सम्मेलन के अवसर पर अजमेर मे किये थे। यद्यपि सीमित शब्दो मे उनके असीमित साधुत्व का अकन सम्भव नही है तथापि जन्मशताब्दि-वर्ष के इस पुनीत प्रसग पर उस महान् व्यक्तित्व का कुछ पक्तियो मे परिचय लिखना मेरे स्वय के तथा अन्य मुमुक्षु सुधीजनो के लिए श्रेयस्कर है।

१. सर्व साधारण की भाषा मे 'चौथ' प्रतिपक्ष आने वाली एक तिथि है। ज्योतिष की भाषा में 'चौथ' रिक्ता तिथि है। जैनागमो मे चारित्र को रिक्तकर कहा है। चारित्र की व्युत्पत्ति है—'**चयरित्तकरं चारित्त**' अर्थात् अनन्तकाल से अर्जित कर्मों के चय, उपचय, सचय को रिक्त (नि शेष) करने वाला अस्तित्व चारित्र है। इस तरह चरित्र को 'चोथ' तिथि के नाम से 'मल' अर्थात् धारण करने वाले हुए श्री चौथमलजी महाराज।

२ मोक्ष के चार मार्गो मे चौथा मार्ग है तप। तप आत्मा के अन्तहीन कर्ममल की निर्जरा करने वाला है—'**भवकोडी सचियं कम्म तवसा निज्जरिज्जइ**'। इस तरह तप की आराधना का सूचक नाम धारण करने वाले थे स्व० चौथमलजी महाराज। आपने तथा आपके तपोधन अन्तेवासियो ने वाह्याभ्यन्तर तपाराधनापूर्वक मुक्ति की राह का अनुसरण कर अपना नाम चरितार्थ किया।

३ पांच महाव्रतो मे चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य है। यह महान् व्रत ही ब्रह्म (आत्मा) को परमब्रह्म (परमात्मा) मे उत्थित करने वाला है। विश्व मे यही सर्वोत्तम व्रत है। इसकी आराधना में सभी व्रतो की आराधना सन्निहित है। यह शेष महाव्रतो का कवच है, मूल है—'**पचमहव्वय सव्वय मूल**'। इस मूल महाव्रत के नाम से अपने नाम को सार्थक करने वाले थे स्व० श्री जैन दिवाकरजी महाराज।

४ धर्म के चार प्रकारो मे चौथा धर्म 'भाव' है, जिसका गौरव विश्वविदित है। इसके वगैर शेष तीनों धर्म निष्फल हैं। तीर्थंकर नाम की निष्पत्ति 'भाव' से ही होती है और आत्मशोधन का मूलमन्त्र भी 'भाव' ही है, 'भाव' से ही अनन्त आत्माएँ मुक्त हुई हैं। 'भाव' की यह डगर अजर-अमर है। समुन्नत लोक-जीवन का आधार भी यही 'भाव' है। उदाहरणार्थ, गोदामों मे माल भरा है। व्याज और किराये के वोझ से व्यापारी का मन उदास है। वह प्रतिपल भाव की प्रतीक्षा मे दूरभाष की ओर टकटकी लगाये वैठा है। घटी आते ही चोगा उठा लेता है। अनुकूल समाचार सुनकर चेहरा खिल उठता है। केवल हाथ-पैर ही नही उसका सारा वदन उत्साहित और सस्फूर्त हो उठता है। यह है वाजार-भाव की करामात। यह हुई लौकिक भाव की वात, किन्तु औपशमिक



आदि लोकोत्तर भाव तो आत्मा को ज्ञानादि निज गुणों से सम्पन्न, समृद्ध करने वाले हैं। चतुर्थ भावधर्म की स्मृति अनुक्षण बनी रहे इसीलिए 'चौथमल' नाम आपको मिला और तदनुसार आपने भाववृद्धि की अमर उपलब्धि द्वारा अपना नाम चरितार्थ किया।

चौदह गुणस्थानों में चौथा गुणस्थान सम्यक्त्व है। आत्मा को बोधि या सम्यक्त्व की उपलब्धि इसी गुणस्थान में होती है। जैसे बीज की अनुपस्थिति में वृक्ष आविर्भूत नहीं होता, वैसे ही बोधि के बिना शिव-तरु का प्रादुर्भाव भी संभव नहीं है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञान, ज्ञान नहीं है, चारित्र चारित्र नहीं है। इस चौथे गुणस्थान को धारण कर वे सामान्य जन से सम्यक्त्वी चौथमल बने और उत्तरोत्तर आरोहण करते गये। उनके पदचिह्न अमर हैं, उनका कृतित्व अमर है, व्यक्तित्व अमर है, और उन्होंने ज्ञान तथा समाज-सेवा की जिस परम्परा का निर्माण किया है, वह अमर है।

मुझे स्मरण है कि एक दिन किसी जैनेतर ग्रामवासी ने मुझसे पूछा था क्या आप चौथमलजी महाराज के चेले हैं? उसके इस प्रश्न से मैं श्रद्धाभिभूत हो उठा। मैंने कहा—'हाँ'। बातचीत से पता चला कि उसने अपने गाँव में उनका कोई प्रवचन सुना था, जिसका प्रभाव अभी भी उसके मन पर ज्यों-का-त्यों था। ऐसे सवाल राजस्थान के कई ग्रामवासियों ने मुझसे किये हैं। अतः यह असंदिग्ध है कि वे कभी न अस्त होने वाले सूरज थे, जिसकी धूप और रोशनी आज भी हमें ओजवान और आलोकित बनाये हुए है। किंवदन्तियों-सा जन-जनव्यापी उनका व्यक्तित्व अविस्मरणीय है।

सत्संग की महिमा

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करबला में तू न जा)

लाखों पापी तिर गये, सत्संग के परताप से।
छिन में बेड़ा पार हो, सत्संग के परताप से ॥टेर॥

सत्संग का दरिया भरा, कोई न्हाले इसमें आनके।
कट जायें तन के पाप सब, सत्संग के परताप से ॥१॥

लोह का सुवर्ण बने, पारस के परसंग से।
लट की भँवरी होती है, सत्संग के परताप से ॥२॥

राजा परदेशी हुआ, कर खून में रहते भरे।
उपदेश सुन ज्ञानी हुआ, सत्संग के परताप से ॥३॥

संयति राजा शिकारी, हिरन के मारा था तीर।
राज्य तज साधु हुआ, सत्संग के परताप से ॥४॥

अर्जुन मालाकार ने, मनुष्य की हत्या करी।
छः मास में मुक्ति गया, सत्संग के परताप से ॥५॥

इलायची एक चोर था, श्रेणिक नामा भूपति।
कार्य सिद्ध उनका हुआ, सत्संग के परताप से ॥६॥

सत्संग की महिमा बड़ी है, दीन दुनियां बीच में।
चौथमल कहे हो भला, सत्संग के परताप से ॥७॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज





संतों की पतितोद्धारक परम्परा और मुनिश्री चौथमलजी महाराज



श्री अगरचन्दजी नाहटा (बीकानेर)

विश्व अपनी गति से चल रहा है। उसमे सदा अच्छे और बुरे दोनो तरह के लोग रहते है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि इस ससार मे सब अच्छे ही लोग रहते हो, बुरा कोई नही रहता हो। ऐसा भी कभी नही हुआ कि सब बुरे ही हो, अच्छा कोई नही हो। यह ससार ही द्वन्द्वात्मक है। इसमे अच्छी-बुरी घटनाएँ घटती ही रहती है। ज्ञानी लोग दोनो बातो मे नही उलझते, वे न दु ख मे उद्विग्न होते हैं न सुख मे मस्त। वे दु ख को भी सुख मान लेते हैं और सुख मे भी दु ख की परछाई देखते रहते हैं। इसलिए तटस्थ हो जाते हैं। दोनो स्थितियो मे समत्व भाव रखने लगते है। अच्छाई भी रहेगी, बुराइयाँ भी रहेंगी क्योकि ससार मे सदा से यही होता आया है, यही होता रहेगा। स्वय तटस्थ हो जाना समत्व को प्राप्त कर लेना बहुत बडी और ऊँची स्थिति है। ऐसे व्यक्ति वीतरागी परमज्ञानी, परमानन्दी, परमपुरुष परमात्मा और लोकोत्तम पुरुष कहलाते हैं।

उत्तम पुरुष वे हैं, जो बुराइयो को दूर करने और अच्छाइयो को विकसित करने का प्रयत्न करते हैं। स्वयं भी अपने दोषो के निवारण व गुणो के उत्कर्ष मे लगे रहते हैं और दूसरो को भी मार्ग-प्रदर्शन करते हुए लोगो की बुराइयो मे कमी आये और अच्छाइयाँ बढती रहें, दोष मिटते जाय गुण प्रगट होते जायें ऐसे प्रयत्न मे लगे रहते हैं। और ऐसे व्यक्तियो की बहुत आवश्यकता भी है।

तीर्थंकरो की परम्परा मे आचार्यों, मुनियो, साधु-साध्वियो ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वे स्व-कल्याण के साथ पर-कल्याण भी करते रहे। यद्यपि वे पूर्ण वीतरागी नहीं बने अतः राग और द्वेष उनमे अभी भी है। पर वे विषयो के राग से हटकर धर्मानुराग, भक्तिराग जैसी प्रशस्त राग की भूमिका मे आ जाते हैं। पापियो से वे घृणा नही करते, वे पाप से घृणा करते हैं इसलिए पापियो पर करुणा व अनुकम्पा बरसाते हैं। जिससे वे पापो को छोड़कर धर्मी बन जाते हैं। आज का व अब का पापी कल और क्षणभर बाद ही धर्मी बन जाता है। ऐसा आत्म-विश्वास उनमे होता है। इसीलिए महापुरुषो ने कहा है कि हृदय-परिवर्तन होते देर नही लगती। तुम किसी को पतित समझकर घृणा न करो और उस पतित को ऊँचा उठाकर अपने समान बनालो और वह यदि अपने से ही आगे बढ जाता है तो प्रसन्नता का अनुभव करो यही करुणाभावना व प्रमोदभावना का सन्देश है। मैत्री भावना अपने समान बनाने की प्रेरणा देती है। मित्र के दु.ख-सुख मे भागी रहना ही मैत्री है। सदा उसकी हित-कामना करे, यही मित्र धर्म है। माध्यस्थ भावना से घृणा का भाव समाप्त किया जाता है। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति के प्रति भी हम द्वेष-भाव न रखें। अपने भरसक प्रयत्न करने के बाद भी यदि कोई नही सुधरता है तो भी अपने मे द्वेष-भाव न उभरने दें। इन चारो भावनाओ से सारे ससार के मनुष्यो के साथ यथायोग्य बर्ताव किया जाता रहे तो स्व-पर-कल्याण निश्चित है।

हमारे साधु-साध्वियो ने सदा तीर्थंकरो के उपदेश को स्वय अपनाने और दूसरो को अपनाने की प्रेरणा देने का निरन्तर प्रयास किया है। अहिंसा आदि महाव्रतो के पालन मे वे सदा तत्पर



रहते हैं और हिंसा के निवारण मे भी सदा प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होने पतितो के उद्धार में अपना जीवन लगाया व खपाया है। ऐसे ही उदात्त भावना वाले और कर्मठ धर्म-प्रचारक मुनिश्री चौथमल जी महाराज हुए हैं जिनकी जन्म शताब्दी उनके शिष्यो और भक्तो के द्वारा बड़े जोरो से व अच्छे रूप मे अभी वर्ष भर तक मनाई जा रही है।

प्रत्येक व्यक्ति गुण और दोषो का पुंज है। अनेक अच्छाइयो और विशेषताओ के साथ उसमे कुछ बुराइयाँ व कमियाँ भी रहती हैं। पूर्ण गुणी तो परमात्मा माना जाता है। मनुष्य मात्र भूल का पात्र होता है, पर जो व्यक्ति भूल को भूल मान लेता है और उस भूल को सुधारने व मिटाने की भावना रखता है, तदनुकूल पुरुषार्थ करता है, वह अवश्य ही दोषो को मिटाकर गुणो को अच्छे परिमाण मे प्रगट कर लेता है। उस गुणी व्यक्ति द्वारा दूसरो के गुणो का विकास का प्रयत्न भी चलता रहता है जिससे उनके सम्पर्क मे आने वाले हजारो व्यक्ति उनके ज्ञान और चारित्र से प्रभावित होकर जीवन मे नया मोड लाते है। पापी से धर्मी बन जाते हैं, पतित से पावन बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जन-जन के पूज्य और श्रद्धा के केन्द्र बन जाते हैं। जनता के लिए स्मरणीय व उपासनीय बन जाते हैं। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने भी अपने जीवन मे कुछ ऐसे विशिष्ट कार्य किये जिससे वे आज भी स्मरणीय बने हुए हैं।

जैनधर्म अहिंसा प्रधान है। तीर्थंकरो ने जिस सूक्ष्मता के साथ अहिंसा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया व साथ ही अपने जीवन मे आचरित किया वह विश्वभर मे अनुपम है, अद्वितीय है। जैन मुनियो को भी यथाशक्य उस महान् अहिंसा धर्म का पालन करना होता है। वे जब चारो ओर हिंसा का बोलबाला देखते हैं हिंसा का साम्राज्य उनके अनुभव मे आता है, तो उनकी सहज करुणा प्रस्फुटित हो उठती है। उनकी अनुकम्पा उन्हें उद्वेलित करती रहती है जिससे हिंसा निवारण के प्रयत्न मे उनकी गति-प्रगति होती है और बढती जाती है। केवल जीवो को मारना ही हिंसा नही है उनको कटु वचन से क्षोभित करना भी हिंसा है। दूसरा चाहे मरे या न मरे, अपने मन में मारने का भाव लाना, कटुता एव क्रूरता के परिणाम हो जाने से भी हिंसा होती है। और इस दृष्टि से देखा जाय तो सभी मे हिंसा का भाव कमवेसी रूप मे है ही। और उसके निवारण का प्रयत्न करना भी उतना ही आवश्यक है, अन्यथा यह विश्व टिक नहीं सकता। एक-दूसरे के वैर-विरोध और हिंसा-प्रतिहिंसा मे सहार-चक्र से सब दुनिया समाप्त हो जायेगी। पापो और दोषो से मनुष्य का जो पतन हो रहा है उससे बचाया न जाय तो ससार पापियो से भर जायगा, दोषो से आपूरित हो जायगा। इसलिए सन्तजन सदा अपने उपदेशो से पतितो का उद्धार करते रहे हैं। हमे धर्ममार्ग पर प्रवर्तित करते रहे हैं। उन गिरे हुओ को ऊँचा उठाने मे प्रयत्नशील रहे हैं और इसी प्रयत्न का सुपरिणाम है कि भूले-भटके अज्ञानी और पापी प्राणियो का उद्धार सदा होता रहा है व होता रहेगा। क्योंकि महापुरुषो की वाणी सदा सात्विक प्रेरणा देती रहती है। जैन मुनियो का तो जीवन बहुत ही आदर्श एव उच्च रहता है। अत उनके सम्पर्क मे आने वालो पर उनका सहज और गहरा प्रभाव पडता है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज भी ऐसे ही उच्च आदर्शो का जीवन जीने वाले थे। उनकी वाणी मे चमत्कारिक प्रभाव था, कथनी के साथ करनी भी तदनुरूप थी। ज्ञान व चारित्र का सुमेल था, हृदय मे अनुकम्पा और करुणा के भावो की किलोलें उठती रहती थी, लहरायमान होती रहती थीं। इससे अनेक स्थानो मे अनेक व्यक्तियो ने सत् प्रेरणा प्राप्त की और अपने जीवन को उच्च एव आदर्श बनाया। दोषो मे कमी की व गुण प्रगटाये।

जन्मते ही कोई प्राणी पापी व दुष्ट नहीं होता, पूर्व संस्कार अवश्य कुछ काम करते हैं। पर



आसपास का वातावरण और दूसरो के सम्पर्क से उसमे अच्छाइयो और बुराइयो का प्रगटन होता है। अच्छे-बुरे सस्कार पनपते और बढते रहते हैं। आगे चलकर जिस गुण या दोष का दृढीकरण हो जाता है, अधिक पुष्टी व प्रोत्साहन मिलता है उसी के कारण उसका जीवन सदाचारी व कदाचारी, दुष्ट व शिष्ट, पापी व धर्मी बन जाता है। आसपास के वातावरण व सगत के प्रभाव से बहुत बार मनुष्य की सात्विक वृत्तियाँ दब जाती हैं और बुरी वृत्तियाँ उभर आती हैं। पर अच्छी वृत्तियो का एकदम लोप नही होता, वे छिपी हुई भीतर विद्यमान रहती हैं। इसलिए अच्छे वातावरण और संगति से वे पुन जागृत की जा सकती हैं और सन्त-जन यही काम करते हैं।

सन्तो का प्रभाव दो कारणो से अधिक पडता है। एक तो उनका जीवन पवित्र होने से बिना कुछ कहे भी उनके दर्शन मात्र से दूसरो के मन मे सद्भाव जागृत होने लगते हैं। वे जब उनके जीवन के साथ अपने जीवन की तुलना करते है, तो उन्हें आकाश-पाताल-सा अन्तर दिखाई देता है। अत मन मे प्रेरणा उठती है कि ऐसे सन्त-जन का सहयोग मिला है तो अवश्य ही कुछ लाभ उठाया जाय जिससे अपना जीवन भी ऊँचा उठ सके। दूसरा प्रभाव उनकी ओजस्वी व सधी हुई वाणी का पडता है क्योकि उनके एक-एक शब्द के पीछे साधना मुखरित है। स्वाध्याय, ध्यान, तप और सद्भावनाओ के निरन्तर चिन्तन से उनके शब्दों मे—वाणी मे एक अजब-गजब की शक्ति उत्पन्न होती है जिसे सुनने वाले हृदय को वे शब्द बेधते चले जाते है। हृदय मे एक कम्पन व आन्दोलन-सा होने लगता है। उस समय वह सन्तजन जो भी त्याग आदि के उपदेश देते हैं उसका बहुत गहरा असर होता है और वर्षों की बुरी आदतें एक क्षण मे छोड देने की शक्ति और साहस श्रोता मे टूट पडता है। बडा आश्चर्य होता है कि बहुत बार प्रयत्न करने पर भी बुरी आदतो और व्यवहारो को वह छोड नही पाया था, आज एकाएक उन्हे कैसे छोड दिया। इस तरह कल के पापी आज के धर्मी बन जाते हैं। मुनि श्री चौथमलजी ने भी मानव की कमजोरियो को बडी गहराई से पहचाना, उसके अन्तर मे जो अच्छाइयाँ छिपी पडी हैं उनका निरीक्षण व अनुभव किया। बहुत बार के अभ्यास और आदतो के कारण जो मानव की सद्वृत्तियाँ सुप्त पडी है, गुप्त पडी हैं, दब गई हैं उनको पुन प्रगट करने मे सन्तो की वाणी जादू-सा काम करती है। मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने जो मानव-हृदय के पारखी थे। अपने हृदय की पुकार से आन्तरिक करुणा के श्रोत से जहाँ-जहाँ जिस-जिसमे जो-जो खराबियाँ देखी उन्हें सुधारने का भागीरथ प्रयत्न किया। इसी के फलस्वरूप वे हजारो-हजारो व्यक्तियो को राजा से लेकर रक तक के विविध प्रकार के मानव हृदयो को आन्दोलित करते, मथते और उसके फलस्वरूप जो नवनीत या सार-सर्वस्व उन्हे प्राप्त होता उनकी तेजस्वी मुखमुद्रा और तेजस्वी वाणी से अनेक व्यक्तियो ने चिरकालीन अभ्यस्त बुराइयो को तिलाजलि दी। मासाहारियो ने मास छोडा, मास भक्षण न करने का नियम लिया। शराबियो ने शराब छोडी, शिकारियो ने शिकार करना छोडा। वेश्याओ तक के दिल मे परिवर्तन हुआ। जिनके हाथ खून मे लगे रहते थे, मांस खाना ही नही, बेचना जिनका व्यवसाय था उन कसाइयो, खटीको आदि ने भी अपने बुरे कामो को छोडने का सकल्प किया। मोची आदि अनेक नीची गिनी जाने वाली जातियो मे अच्छे सस्कारों का वपन हुआ। यह कोई मामूली चमत्कार नही है।

एक भी व्यक्ति सुधरता है तो उसका परिवार कुटुम्बी-जन और आसपास के लोग सहज ही सुधरने लगते हैं। जिस तरह कुसगति से खराब वातावरण से मनुष्य मे अनेक दोष व खराबियाँ आने लगती हैं। उसी तरह अच्छे वातावरण व संगति से उनमें सद्भावनाओ के गुल भी खिलने लगते हैं। यह जरूर है कि बुराइयाँ, खराबियाँ सहज हैं, अच्छाइयाँ कष्ट साध्य हैं। क्योकि पानी



ढलाव की ओर जाने मे देर नहीं लगती सहज स्वाभाविक गति मे प्रवल वेग मे वह नीचे की ओर वहने लगता है और उसी जल को ऊँचाई की ओर ले जाने मे विशेष प्रयत्न करना पडता है, उसी तरह बुरी आदतें तो देखा-देखी स्वय घर कर जाती हैं। पैर जमा लेती हैं, पर उनको उखाडने मे, मिटाने मे वहुत समय व श्रम लगता है। पर यह सतजनो का ही प्रभाव है कि उनकी सगति व वाणी के प्रभाव से वडे-वडे पापियो के दिल मे गजब-गजब का प्रभाव पडता है और वे क्षणभर मे सदा के लिए उन पापो से निवृत्त हो जाते हैं, छोड देते हैं और धार्मिक तथा सात्विक वातावरण मे आगे कूच करने लगते हैं। मुनिश्री चौथमलजी महाराज के जीवन मे ऐसे अनेक प्रसग पाये जाते हैं जिससे अनेक व्यक्तियो ने अनेक बुराइयो को उनके उपदेश से छोड दिया और वे धार्मिक वन गये।

हमारे शास्त्रकारो ने कहा है कि एक भी व्यक्ति को पापो से छुड़ाकर धर्म में नियोजित करने वाला बहुत वडे पुण्य का भागी बनता है। अज्ञान और मिथ्यादृष्टि से मनुष्य विवेकहीन वन कर पापो का शिकार हो जाता है। अत उसे सद्बोध व सम्यग्दृष्टि देने वाला महान् उपकारी होता है। क्योकि सम्यग्दृष्टि होने के बाद मनुष्य मे एक गहरा परिवर्तन होने लगता है वह भव-भीरू या पापभीरू वन जाता है। बहुत बार बुरी बातें छोड नही पाता, पर इसका उसके मन मे वडा दु ख होता है कि 'मुझे यह नही करना चाहिए फिर भी मैं यह कर वैठता हूँ। यह मेरी बहुत वडी कमजोरी है अत मैं इन बुरी प्रवृत्तियो से छुटकारा नहीं पा रहा हूं। मेरा वही दिन, वही घड़ी सार्थक होगी जव मैं इनसे निवृत्त हो जाऊँगा। जव तक वैसा नहीं हो पा रहा हूँ। तव तक मेरे अशुभ कर्मों का वध हो रहा है और उसके बुरे परिणाम मुझे भुगतने ही पडेंगे अत जल्दी से जल्दी इन बुरी वातो को छोड दूं।' ऐसा उसके मन मे वार-वार आता रहता है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि मे यही सवसे वडा अन्तर है कि दोनो प्रवृत्तियाँ तो करते हैं, पर मिथ्यादृष्टि गाढ़ आसक्तिपूर्वक करता है, वहुत वार उनके भावी दुष्परिणाम को नही सोचता और कई वार तो अच्छी समझकर करता रहता है। और सम्यग्दृष्टि मे एक ऐसा विवेक जागृत होता है जिसे वह अच्छी को अच्छी व बुरी को बुरी ठीक से समझता है तथा बुरी करते हुए उसके मन मे चुभन रहती है, पश्चात्ताप रहता है, उसको छोड देने की भावना रहती है। कम से कम रूखे-सूखे परिणाम से क्या करूँ करना पडता है, छोड सकूँ तो अच्छा है, इस तरह के भाव उसके मन मे रहते हैं।

सद्गुरु का लक्षण और कार्य ही यह है कि वह शिष्य या भगत के अज्ञान को मिटाता है। ज्ञान और विवेक जागृत करता है। गुरु की स्तुति करते हुए प्राय यह श्लोक बोला जाता है—

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया।
नेत्रमुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरुवे नम ॥

—अर्थात् अज्ञान रूपी अन्धकार जिनके हृदय-आँखों पर छाया हुआ है, गुरु ज्ञान की शलाका से उस अन्धकार को मिटा देते हैं। ज्ञाननेत्र खोल देते हैं। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अनेक अज्ञानियो के ज्ञान-नेत्र खोले। अज्ञान के कारण जो पथ-भ्रष्ट हो गये थे उन्हें सही और सच्चा मार्ग दिखलाया। अब ज्ञान-नेत्र खुल जाने से वे स्वय अच्छे-बुरे का निर्णय करने मे समर्थ हो गये। यह उनका वहुत वडा उपकार मानना चाहिये। क्योकि अनेक पाप अज्ञान के कारण होते हैं। जव तक उन्हें उन बुरी प्रवृत्तियों का सही ज्ञान नहीं होता उसके दुष्परिणामो की उन्हें जानकारी नही होती तव तक वे उन पापो से निवृत्त नही हो पाते। दूसरो की देखादेखी और अपने चिरकालीन अभ्यास



के कारण वे पुन-पुन उन बुरी आदतो को करते रहते है, उनसे लिप्त बने रहते हैं, उन्हे छोड नही पाते, जब सद्गुरु या सन्त-जन के सम्पर्क व समागम का सुअवसर उन्हे पुण्ययोग से प्राप्त होता है, तब वे सचेत व जागरूक हो जाते है और बुरी बातो को छोडने का तत्काल निर्णय कर बैठते हैं। वे उन सन्तो का जितना भी उपकार माने थोड़ा है जिनकी कृपा से उनका हृदय परिवर्तन होता है वे बुरी बातो को छोडने मे समर्थ बन जाते हैं। जिनसे उनका जीवन पतनोन्मुखी हो रहा था, शराब आदि से उनका वेहाल हो रहा था और उनके पारिवारिक-जनो, स्त्री-बच्चे आदि को भी उसके दुष्परिणाम भुगतने पड रहे थे। क्योकि शराब का एक ऐसा नशा मनुष्य के मस्तक पर छा जाता है कि अपनी सुध-बुध खो बैठता है। अकरणीय कार्य करते हुए उसे तनिक भी भान नही होता। आर्थिक दृष्टि से बडे परिश्रम से कमाए हुए द्रव्य की रोज बर्बादी होती है, घर वालो के लिए वह दो समय का पूरा अन्न भी नहीं जुटा पाता। स्त्री बेचारी तग आ जाती है बहुत बार उसे मार खानी पडती है। गालीगलौज तो रोज की जीवनचर्या-सा बन जाता है। बच्चो को दूध नही मिल पाता। वे पाठ्यक्रम की पुस्तकें खरीद करने के लिए भी पैसा नही जुटा पाते। अर्थात् शराबी का असर एक व्यक्ति पर नही सारे परिवार पर पडता है अत शराबी का शराब पीना छुडा देना उसके परिवार भर मे शान्ति की वृद्धि करना है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज के उपदेश से अनेक शराबियो ने शराब पीना छोड दिया यह उनके जीवन का बहुत ही उज्ज्वल पक्ष है।

प्राचीन काल से यह मान्यता चली आ रही है कि 'यथा राजा तथा प्राजा'। इसलिए हमारे अनेक आचार्यों और मुनियो ने राजाओ को सुधारने का भी पूरा ध्यान रखा और उनको उपदेश देकर मास-मदिरा, शिकार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, जूआ आदि दुर्व्यसनो को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। क्योकि शासक का प्रजा पर बहुत ही व्यापक प्रभाव पडता है। एक शासक के सुधरने पर उसके जी-हजुरिये व अधिकारीगण भी सुधरने लगते हैं। बहुत बार शासकगण राज्य भर मे कसाईखाने बन्द रखने, मद्य-निषेध आदि के आज्ञापत्र घोषणा जारी कर देते हैं जिससे हजारो पशु-पक्षियो की हिंसा बन्द हो जाती है उन्हें अभयदान मिलता है। ऐसी हमारी उद्घोषणाए समय-समय पर अनेक राजाओ, ठाकुरो आदि ने जैनाचार्यों व मुनियो के उपदेश से करवायी थीं उनके सम्बन्ध मे मेरा एक शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हो चुका है।

मुसलमानी साम्राज्य के समय भी विशेषत· सम्राट् अकबर को अहिंसा व जैनधर्म का उपदेश देकर ६-६ महिने तक उसके इतने विशाल शासन मे गोवध, पशुहत्या आदि का निवारण किया जाना बहुत ही उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण है। तपागच्छीय श्री हीरविजय सूरि खरतरगच्छीय श्रीजिन-चन्द्रसूरि तथा श्रीशान्तिचन्द्र, भानुचन्द्र, जिनसिंह सूरि विजयसेन सूरि, आदि जैनाचार्यों तथा मुनियो के उपदेशो का सम्राट् अकबर व जहांगीर आदि पर इतना अच्छा प्रभाव पडा था कि उन्होंने स्वय अपने मासाहार की प्रवृत्ति को बहुत कम कर दिया था और कई दिन तो ऐसे भी निश्चित किये गये थे जिस दिन वे मासाहार करते ही नही थे। आशाली अष्टानिका और पर्युषणो के १० दिन सर्वथा जीवहिंसा बन्द करने के फरमान अकबर ने अपने सभी सूबो मे भिजवा दिये थे, इतना ही नहीं खंभात के कई समुद्र व कई तालाबो मे मच्छियो को भी न मारने के फरमान जारी कर दिये गये थे। शासन प्रभावक जिनप्रभसूरि आदि के प्रभाव से मौहम्मद तुगलक ने जैन तीर्थों की रक्षा आदि के फरमान जारी किये और स्वय शत्रुजय आदि तीर्थों की यात्रा की। अर्थात् एक शासक को धर्मोपदेश देकर सुधार दिया जाय तो इससे जीवदया आदि का बहुत बडा काम सहज ही



करवाया जा सकता है। इस परम्परा को भी मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने अच्छे रूप में आगे बढ़ायी। उनकी जीवनी मे हम यह पाते हैं कि अनेक राजाओ, ठाकुरो, जागीरदारो, जमींदारो को उन्होंने धर्मोपदेश देकर उनको व उनके परिवार को मासाहार मदिरापान आदि से मुक्त किया और उनके राज्य मे जीवहिंसा निषेध की घोषणा करवायी। उदयपुर महाराणा आदि उनके काफी भक्त बन चुके थे। राजा हो चाहे रक, जो पापो मे लिप्त हैं वे पतित की श्रेणी मे ही आयेंगे और उनका सुधार उद्धार करना अवश्य ही बहुत महत्व का कार्य है। जिसे मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने काफी अच्छे रूप मे किया।

हिन्दुओ मे तो दयाधर्म का प्रचार करना फिर भी सहज है क्योकि जीवदया के सस्कार उन्हे जन्मघुटी की तरह मिलते रहे हैं। पर किसी मुसलमान को प्रभावित करके मासाहार छुडाना या पशुहत्या निवारण करना अवश्य ही एक कठिन कार्य है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने कई मुसलमानो को भी अपना भक्त बनाया। श्री केवल मुनिजी लिखित जैन दिवाकर ग्रन्थ के पृष्ठ १२० मे कुछ महत्वपूर्ण ऐसे प्रसग दिये हैं जिन्हे पढकर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एव कुशल वक्तृत्व का पता चलता है। इस ग्रन्थ मे लिखा है कि खान साहब सेठ नजरअली अलावक्स मिल के मालिक सेठ लुकमान भाई ने ५ हजार का नुकसान सहन कर एक दिन के लिए तपस्वी मयाचन्दजी महाराज की तपस्या के उपलक्ष्य मे आरम्भ-समारम्भ बन्द रखा। इतना ही नहीं जिस समय मोहर्रम का त्यौहार पड़ रहा था इस त्यौहार के ३० दिन तक मुसलमानो मे वहाँ जातिभोज होता था जिसमे मास-भक्षण उनकी परम्परानुसार चलता था। दो दिन तो बीत ही गये थे, पर जैन मुनि की तपस्या की बात सुनकर लुकमान भाई ने कहा कि मुझे क्या मालूम था कि कोई जैन साधु तपस्या कर रहे हैं, नही तो दो दिन भी मासाहार न करवाता, अब तीसरे दिन तो मीठे चावल ही बनवाऊँगा, सात्विक भोजन ही कराऊगा। इस्लाम धर्म के अनुयायी होते हुए भी उनके ये शब्द मुनि श्री चौथमलजी महाराज के प्रवचनो के प्रति श्रद्धा के सूचक हैं। उनके इस कार्य से १०० बकरो को अभयदान मिला। उज्जैन मे यह अहिंसा का प्रचार व पशुओ को अभयदान का ऐतिहासिक कार्य आपश्री के प्रयत्न से ही सभव हुआ था। देवास मे आपका प्रवचन ईदगाह मे भी हुआ। प्रवचन से प्रभावित होकर काजी साहब ताज्जुबद्दीन ने मास, शराब, परस्त्रीगमन आदि का त्यागकर दिया। और भी अनेक स्थानो मे मुसलमान आपके प्रवचनो मे आकर आपके प्रवचनो को सुनकर बडे प्रभावित होते व कई तो आकर आपके भक्त बन गये।

बदनौर मे जोधा खटीक व जीवनखाँ मुसलमान ने जीवनपर्यन्त मासभक्षण तथा जीवहिंसा त्याग का नियम लिया और भी अनेक मुसलमान भाइयो ने अहिंसावृत्ति अपनायी।

वेश्याओ को समाज में बहुत पतित माना जाता है उनका भी मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने उद्धार किया। आपके व्याख्यानो को सुनकर 'मगनी' तथा 'बनी' नाम की वेश्याओ ने आजीवन शीलव्रत पालने की प्रतिज्ञा की और 'सणगारी' नाम की वेश्या ने एक पतिव्रत का सकल्प लिया। अनेक स्थानो मे उस समय वेश्यानृत्य का प्रचार था उसे आपने बन्द करवाया व वेश्याओ के कलकित जीवन को बदल डाला। जोधपुर मे कई पातरियो ने आपके उपदेश सुनकर अपने घृणित पेशे को बिल्कुल तिलाजलि दे दी।

साधारण मनुष्य की अपेक्षा कैदियो का जीवन अधिक पतित होता है क्योकि वे किसी बड़े अपराध के कारण ही सजा पाकर जेलो मे जाते हैं। उनको उपदेश देकर सुधारना और उनका



हृदय-परिवर्तन करना बहुत कठिन व महत्वपूर्ण कार्य है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने उन पतितो के उद्धार का भी प्रयत्न किया। उसके बाद तो जेलो मे जाकर बदियो को उपदेश देने का कार्य अनेक मुनियो ने किया, पर अब से ५१ वर्ष पहले इस कार्य का श्रीगणेश मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने किया। जैन दिवाकर ग्रन्थ के पृष्ठ १८५ मे लिखा है—"वि० स० १९८४ की घटना है, चित्तौड के एक मजिस्ट्रेट को बदियो की दशा देखकर दया आयी और मुनिश्री की प्रभावशाली वाणी से उनके जीवन मे सुधार हो इसलिए निवेदन किया। महाराजश्री ने कैदियो को जो उपदेश दिया उससे उन सभी के हृदय मे पश्चात्ताप की अग्नि जलने लगी। साश्रु नयन उन सबने सकल्प व्यक्त किया कि हम भविष्य मे ऐसा कोई काम नही करेंगे जिससे हमारा तथा किसी दूसरे का अपकार हो। देवास मे भी जेल मे कैदियो को आपने उपदेश दिया एव पाप-कार्यो के त्याग करवाये।

पालनपुर के नवाब आपसे प्रभावित होकर मूल्यवान दुशाले आदि कुछ भेंट करना चाहते थे तो आपने उनसे कहा कि यदि आप भेंट देना ही चाहते हैं, तो शिकार, शराब व मासाहार का त्याग करें। आपकी निस्पृहता से प्रभावित होकर उन्होने उसी समय इन वस्तुओ का त्याग कर दिया। इसी तरह थानेरा के नवाब के दामाद जबरदस्तखाँ ने भी आपके उपदेश से प्रभावित होकर कई जानवरो के शिकार न करने की प्रतिज्ञा स्वीकार की।

समाज मे मोचियो को काफी नीचा माना जाता है। उनको कोई छूते नही थे क्योकि वे पशुओ की खाल का कार्य करते हैं तथा मास-मदिरा पीते हैं। उनके घरो मे चमडे की गन्ध बनी ही रहती है। आपने उन मोचियो को भी शराब, मास, जीवहिंसा आदि दुर्व्यसनो से मुक्त किया। गगापुर के मोचियो ने आपकी वाणी सुनकर हमेशा के लिए मास-मदिरापान का त्याग कर दिया। रेलमगरा के ६० परिवारो ने मांस-मदिरा का त्याग किया। इसी तरह अनेक स्थानो मे उन्होंने केवल मास-मदिरा का त्याग ही नही किया वरन् जैनधर्म को स्वीकार कर, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियायें भी करने लगे। चमार भी बहुत नीची जाति के माने जाते हैं। पर आपके प्रभाव से ६० गाँवो के चमारो ने मास-मदिरा का त्याग कर दिया। इसी तरह कसाई, खटीक, भील आदि निम्न श्रेणी के तथा पतित माने जाने वाले लोगों को दुर्व्यसनो से मुक्त कर आपने हजारो व्यक्तियो, परिवारो का उद्धार किया।

भगवान का जो पतित पावन विशेषण है उसे मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने जीवन मे सार्थक करके पतितोद्धारक बने। उनके अनुकरण यदि हमारे अन्य साधु-साध्वी करें तो लाखो व्यक्तियो का उद्धार हो जाय व जैन शासन की बडी प्रभावना हो। ✡

परिचय एवं पता

जैनधर्म, इतिहास एव साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान्
अनुसंधाता तथा लेखक।
पता—नाहटो की गुवाड़, बीकानेर





बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी ✡ ✡
✡ ✡ गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी

✡ श्री अजितमुनि 'निर्मल'

भारतीय सस्कृति की अन्तरात्मा है—'निर्ग्रन्थ श्रमण साधना'। इस निर्ग्रन्थ श्रमण साधना के आराधक वे अनिकेतन अनगार-सन्त-महात्मा है, जो 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के प्रति सर्वात्मना समर्पित हैं। ये सन्त-महात्मा अपनी महिमामयी चर्या एव वाणी, आचार और विचार द्वारा युगबोध कराते रहे हैं। अपने व्यक्तित्व एव कृतित्व से युगपुरुष के विरुद से विभूषित हुए हैं तथा अशन-वसन, वासन-आसन-सिंहासन, धन-धान्य से विहीन होने पर भी राजा से लेकर रक तक के आदरणीय रहे हैं और हैं। उनमे से हम यहाँ एक ऐसे ही युगसन्त के व्यक्तित्व के आलेखन का प्रयास कर रहे हैं।

हमारे प्रयास के केन्द्र बिन्दु श्रद्धास्पद महामुनिप्रवर हैं—'श्री जैन दिवाकरजी महाराज'। यद्यपि नामत. वे 'मुनिश्री चौथमलजी महाराज' कहलाते थे, लेकिन जब उनकी जीवन-पोथी के पन्ने पलटते हैं। मानवीय मानस के स्वरो को सुनते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अहर्निश जिन सिद्धान्तो के अनुरूप जन-समाज के कल्याण की कामना से ओतप्रोत रहने के कारण वे भावत. "जैन दिवाकर" थे और जैन दिवाकर शब्द सुनते ही हमारे मस्तक उस युगपुरुष के प्रति श्रद्धा, भक्ति, वन्दना अर्पित करने के लिए स्वत. स्वयमेव नत हो जाते हैं।

युगपुरुष अपने अध्यवसाय, प्रयत्न पुरुषार्थ से स्व-पर-जीवन का निर्माण करते हैं। जन्म कब हुआ, कहाँ हुआ, माता-पिता कौन थे, पारिवारिक-जन कौन-कौन थे ? इत्यादि उनकी महिमा के साधन नही हैं और न वे इनका आश्रय लेकर अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होते हैं। उनका लक्ष्य होता है—'स्ववीर्यं गुप्त हि मनो प्रसूति'। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसे ही एक युगपुरुष हैं, उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहु आयामी है और जिस आयाम से भी हम उनका दर्शन करते हैं, मूल्याकन करते हैं, तो उसमे एक अनूठेपन, दीर्घदर्शिता, लोकमगल आदि-आदि की प्रतीति होती है। आइये ! आप भी उन आयामो मे से कुछेक पर दृष्टिपात कर लें।

साम्प्रदायिक वेष · असाम्प्रदायिक वृत्ति

श्री जैन दिवाकरजी महाराज सयम-साधना के लिए स्थानकवासी जैन-परम्परा मे दीक्षित हुए थे। अत उनको स्थानकवासी जैन-परम्परा का सन्त कहा जाता है। लेकिन उनका मानस, विचार, वृत्ति इस वेष तक सीमित नहीं थी। उनके लिए वेष का उतना ही उपयोग था जितना हम-आपकी आत्मा के लिए इस वार्तमानिक शरीर का। उनकी दृष्टि तो इस वेष से भी परे थी। वे "गुणा पूजा स्थान न च लिंगं न च वय" के हिमायती थे। इसलिए उनमे वेष का व्यामोह हो भी कैसे सकता था ?

समाज और सम्प्रदाय दोनो का समान आशय है। लेकिन दोनो के दृष्टिकोण मे थोडा-सा अन्तर है। समाज विविध आचार-विचार प्रणालियो वाले मनुष्यो का समूह है और सम्प्रदाय एक प्रकार के आचार-विचार, श्रद्धा-विश्वास वाले मानवो का समूह। इस प्रकार समाज और सम्प्रदाय में व्याप्त-व्यापक की अपेक्षा भेद है, किन्तु लक्ष्य एक है। तब बहुमत की उपेक्षा करके सिर्फ इने-गिनो मानवो के समूह को अपने कृतित्व के लिए चुन लेना और उसी को उपादेय मान



लेना, एक प्रकार का अभिनिवेश पूर्ण विचार है। इसीलिए श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने साम्प्रदायिकता का व्यामोह दूर करने का अनवरत प्रयास किया। उन्होने सम्प्रदायवाद से दूर रहने का सदैव आह्वान किया। सम्प्रदायवाद का विषैला अकुर कब, कैसे और कहाँ फूटता है ? इसकी ओर सकेत करते हुए उन्होंने कहा था—

"समाचारी मे जरा-सा अन्तर देखकर आज दूसरो को ढीले होने का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है और इसी बहाने उच्चता का ढोल पीटा जाता है। मानो एक सम्प्रदाय तभी ऊँचा सिद्ध हो सकेगा जब दूसरो को नीचा दिखाया जावे। दूसरे को नीचा दिखाकर अपनी उच्चता प्रगट करने वालो मे वास्तविक उच्चता नही होती। जिसमे वास्तविक उच्चता होगी वह अपनी उच्चता प्रगट करने के लिए किसी दूसरे की हीनता साबित करने नहीं बैठेगा। अतएव जब कोई साधु दूसरे साधु की हीनता प्रगट करता हो, उसे ढीला बताता हो, अपने आचार-विचार की श्रेष्ठता की डींग मारता हो तो समझ लीजिये उसमे वास्तविक उच्चता नही है।" —'दिवाकर वाणी' पृष्ठ १२४

उक्त कथन मे श्रद्धेयप्रवर श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने उस मर्म का उद्घाटन किया है, जो मानव जाति को अलग-अलग दायरो में बांटता है। उन दायरो को सच्चा यथार्थ मानकर दूसरो को अपमानित करने की नई-नई तरकीबें सोची जाती हैं। दूसरे धर्मानुयायियो की ओर दृष्टिपात न करके यदि हम श्रमण भगवान महावीर के अनुयायी अपने को देखें, तो पूर्णत स्पष्ट हो जाता है, कि अपने-अपने दायरो से आगे बढने मे धर्म सकट मानते हैं। साथ ही दूसरो की गर्हा-निन्दा कैसे की जाये ? इन उपायो के ताने-बाने जुटाते रहते हैं।

सम्प्रदायवाद के दुष्परिणामो की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होने कहा था—"सम्प्रदायवाद का ही यह फल है कि आज एक सम्प्रदाय का साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधु से मिलने मे, वार्तालाप करने मे एवं मिल-जुलकर ध्यान करने मे पाप समझता है। एक साधु दूसरे साधु के पास से निकल जायेगा, मगर बातें नही करेंगे। दूसरो से बात करने मे पाप नही लगता है, परन्तु अन्य सम्प्रदाय के साधुओ से बातचीत करने में पाप लगता है। कैसी विचित्र कल्पना है। कितनी मूर्खता है।"

× × ×

"जो साधु शास्त्रोक्त साधु के गुणो से युक्त हैं तो उनके चरणो मे बारम्बार वन्दना करो, फिर यह मत सोचो कि यह हमारे सम्प्रदाय के हैं अथवा भिन्न सम्प्रदाय के हैं। सद्गुणो की पूजा करो, अवगुणो की पूजा से बचो। साम्प्रदायिकता का मलीन भाव मिथ्यात्व की ओर घसीट ले जाता है।"

—दिवाकर वाणी, पृष्ठ १२३

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने सम्प्रदायवाद की हानियो, बुराइयों को सिर्फ वचनो द्वारा ही प्रगट नही किया और न 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के अनुरूप लोकरजन अथवा जन-साधारण मे अपना प्रभाव जमाने के लिए विचार व्यक्त किये। किन्तु स्वय उनका मानस इस प्रकार की बाडाबन्दी को पसन्द नही करता था। उन्होने सम्प्रदायवाद का उन्मूलन करने के लिए सक्रिय कदम उठाया और ऐसे समय मे उठाया जब साम्प्रदायिक मान्यताओ को लेकर शास्त्रार्थ आयोजित किये जाते थे और तत्त्व निर्णय के नाम पर वितडावाद का आश्रय लेने मे भी किसी को हिचकिचाहट नहीं होती थी। ऐसी विपरीत एव विकट परिस्थिति मे भी आप अपने पथ से, प्रण से, उद्देश्य से विचलित नही हुए और जिसके फलस्वरूप आज के युग मे लगभग २६-२७ वर्ष



पूर्व कोटा (राजस्थान) मे जैन धर्मान्तर्गत स्थानकवासी मूर्तिपूजक और दिगम्बर मुनिराजो के एक पाट पर बैठकर प्रवचन हुए ।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के श्रमण एव श्रावको का एक साथ मिलना और महावीर देशना का प्रवचन श्रवण करना कुछ लोग औपचारिकता समझें, तो उनके लिए इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है, लेकिन जो विन्दु मे सिन्धु के दर्शन करने वाले हैं और जो 'जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ' के अनुयायी हैं, वे ही इसका मूल्याकन कर सकते हैं । श्री जैन दिवाकरजी महाराज द्वारा बोया वीज अब विशाल वटवृक्ष का रूप धारण करने की ओर उन्मुख है और सम्प्रदायवाद के गहन गर्भगृहो मे भी प्राणवायु एव प्रकाश-ज्योति झिलमिलाने लगी है ।

जीवन-निर्माता !

मानव जब जन्म लेता है, तब वह इन्सान होता है, हैवान नहीं, देव होता है, दानव नही । देवत्व उसके अन्तर मे वास करता है । लेकिन बुद्धि-विकास के साथ युगीन वातावरण के कारण वह अपने देवत्व को भूल जाता है । वह दूसरो को चाहे नुकसान करे या न करे । लेकिन अपने मानवत्व को तो वह एकदम हार ही बैठता है । दुर्व्यसनो की कारा मे पड़कर उस गुफा मे छलांग लगाता है, जहाँ पर उसे दु ख, दैन्य का साम्राज्य मिलता है ।

युगद्रष्टा श्री जैन दिवाकरजी महाराज को यह दृश्य प्रतिदिन अपने विहार काल मे देखने को मिलते थे । उन्होंने गम्भीरता से अध्ययन किया । एक विचार वार-वार उनके मन मे चक्कर लगाता रहता था, कि गाँवो मे वसे भारत की इस स्थिति का कारण क्या है ? धार्मिक आस्थाओ मे विश्वास करने वाले ग्रामवासियो मे ऐसी कौनसी कमी है कि शुद्ध प्राकृतिक वातावरण होने पर भी ये भोले-भाले शुद्ध हृदय अशुद्ध हो रहे हैं । पवित्र जीवन की आकाक्षा रखते हुए भी अपवित्रता मे अपने आपको डुवो रहे हैं । इस गम्भीर चिन्तन से वे इस निष्कर्ष पर आये, कि भले ही व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन का निर्माण करने के लिए अग्रसर हो गया हूँ, लेकिन जव तक आस-पास का वातावरण शुद्ध नहीं होगा, तो मेरी साधना में आशिक असफलता रहेगी । अत: मेरा अनुभव स्व के लिए ईष्ट होने के साथ-साथ पर को भी कल्याणप्रद होना चाहिए । वस ! एक निश्चय किया, कि मैं "तिन्नाण तारयाण" श्रमण भगवान महावीर का लघुतम अदना अनुगामी शिष्य हूँ और उक्त विशेषण गत भावो को स्पष्ट करने का जव यह अवसर स्वयमेव प्राप्त हो गया है, तो अव मुझे चूकना योग्य नही है ।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने निश्चय को मूर्त्त रूप देना प्रारम्भ किया । सर्वप्रथम उन्होंने इस आभिजात्य वर्ग को सम्बोधित किया, जो जागीरदार, ठाकुर, उमराव, राणा, राजा आदि के रूप मे ग्रामीण जनता पर शासन करता था और साधारण जन तो 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत का अनुसरण करने वाले होते हैं । अतएव यदि राजा परोपकारपरायण, व्यसन मुक्त, सदाचारी, नैतिक एव न्यायपूर्वक शासन करता है, तो प्रजा की भी वैसी ही प्रवृत्ति व आचार-विचार होते हैं ।

श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज का विहार-क्षेत्र ग्रामीण भारत था ही और अव विचार-क्षेत्र भी वही वन गया । अत जहाँ भी जाते, वहीं भोली-भाली जनता को उसकी वाणी मे जीवन का मूल्य समझाते और आभिजात्य वर्ग को उसके कर्त्तव्यो का वोध कराते थे ।

"कौन जानता है, कि आज के तुम्हारे दुर्व्यवहार का फल कव और किस रूप मे तुम्हे



भोगना पडेगा ? इस जन्म के वैर का वदला न मालूम किस जन्म मे चुकाना पडे। अतएव शक्ति और सत्ता आदि के अभिमान मे मत भूलो। सदा सोच-समझकर प्राणीमात्र के प्रति स्नेह और दया की ही भावना रखो।"

× × × ×

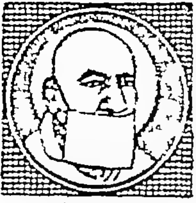
"जिन भले आदमियो को इहलोक और परलोक न विगाडना हो, समाज मे घृणा और नफरत का पात्र न वनना हो, धर्म से पतित न होना हो, अपने कुटुम्ब, परिवार वालो के लिए भारभूत और कालरूप न वनना हो, अपने वाप-दादो की इज्जत को धूल मे न मिलाना चाहते हो, अपनी सम्पत्ति का स्वाहा न करना चाहते हो और अपनी प्यारी सन्तान को सकट के गहरे गड्ढे मे नही डालना चाहते हो, तो मदिरापान से सदैव दूर-वहुत दूर ही रहना चाहिए। जो मनुष्य मोरियो मे पडा-पडा दुनिया का तिरस्कार ओढने से वचना चाहता है और अपने जीवन को सर्वनाश से वचाना चाहता है उसे मदिरापान की बुरी आदत को शुरू ही नही करना चाहिए।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति

समय-समय पर निकले इसी प्रकार के हृदयोद्‌गारो ने सभी को प्रभावित किया। जिसका परिणाम यह हुआ, कि समकालीन राजा-महाराजाओ ने, अमीर-उमरावो ने, सेठ-साहूकारो ने वह सव किया। जिसकी कोई कल्पना भी नही कर सकते हैं। उन्होंने विलासी जीवन छोडकर सदाचार पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर होने का स्वेच्छा से निश्चय किया और इस प्रकार के जीवन निर्माण के लिए शराव छोडी, माँस भक्षण का त्याग किया, शिकार खेलना वन्द किया। क्षत्रियो ने अपने क्षत्रियत्व की सही मायने मे स्थापना की। साथ ही अनुगामी प्रजा ने भी वैसा ही जीवन विताने की प्रतिज्ञा की। चमार, खटीक आदि अछूत समझे जाने वाले प्रभावित हुए और अनेक सुखद जीवन की ओर वढ गये। वे तो सम्भवत हो या न हो, लेकिन उनकी सन्तानें नैतिक जीवन को व्यतीत करते हुए इस पुण्य पुरुष का सश्रद्धा अवश्य स्मरण करती हैं। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के इस विचार कण ने आज इतना व्यापक रूप ले लिया है कि भाल नल काठा प्रयोग, वीरवाल प्रवृत्ति, धर्मपाल प्रवृत्ति जैसी व्यसन मुक्ति की अनेक प्रवृत्तियाँ अपने-अपने क्षेत्रो मे जीवन-निर्माण के लिए कार्य कर रही है।

कस भायणं व मुक्कतोए

गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी महाराज महामानव थे। महामानव वही कहलाते है जिनकी करुणा परिधि स्व तक सीमित न होकर **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** को स्पर्श करती है। जिनका जीवन लक्ष्य आत्म-कल्याण ही नहीं, साथ मे जनकल्याण भी होता है। वह मानवता के प्रति न्योछावर हो जाता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज की जीवन-पोथी मे यही सव तो अकित है। वे जहाँ भी गये, ग्राम और नगर, महल और झोपड़ी, धनी और निर्धन, पढ़े-लिखे और अनपढे को समान रूप से मानवता का वोध कराते थे। सभी यही कहते हैं कि 'गुरुदेव की हम पर वडी कृपा है।' पिछडी मानी जाने वाली जातियो के व्यक्ति कहते हैं कि 'आज जो कुछ भी हम है, दृष्टि वदलते ही सृष्टि वदली है तो इसके निमित्त यही महाराज हैं। राजाजी के गुरु एव वडे-वडे धनपतियो को नत-मस्तक होने पर भी इनमे अभिमान नही है,' और अपनी हृदयाजलि अर्पित करते हुए 'जगद्-वल्लभ' का उच्चारण करने लगते हैं। जो उनकी वाणी से प्रभावित थे और सैद्धान्तिक विचारो को जानने के इच्छुक रहते थे, उन्हें 'प्रसिद्ध वक्ता' कहकर अपनी मनोभावना व्यक्त करते है। जैन वन्धुओ के मानस मे तो 'जैन दिवाकर' के रूप मे अकित हैं। सभी अपनी-अपनी भावना से



भावोद्गार व्यक्त करते थे। यदि इन सबको सक्षेप मे कहा जाय, तो 'मुझ पर गुरुदेव का अत्यधिक स्नेह है' जैसा वाक्य ही पर्याप्त होगा।

इन सब विशेषणो से विभूषित श्री जैन दिवाकरजी महाराज जहाँ-कही भी पहुँच जाते थे, वहीं पर ही लोग गीतो मे अपने विचारो को व्यक्त कर देते। लेकिन ये इतने निर्लिप्त थे कि आत्म-मथन की गहराई मे डूब जाते और चिन्तन करते कि इस गुणानुवाद से मैं अभिभूत तो नही हो गया हूँ, 'प्रभुता पाय काहि मद नाहिं' की कालिमा ने आवृत्त तो नही कर लिया ? वे कविताओ या व्यक्त विचारो को सुनकर इतने उदासीन से हो जाते थे कि उसकी छाया मुखमुद्रा पर भी झलक उठती थी और न ऐसा कुछ सकेत करते जिससे वक्ता या अन्य को दुःख हो, लेकिन स्वयं विचारो मे इतने डूब जाते कि 'कही ये विशेषण मेरी साधना मे व्याघात न डाल दें, ये अनुकूल उपसर्ग मुझ मुनि पद से चलित न कर दें।'

शासन की सेवा और सघ की अनुशासन-व्यवस्था के सन्दर्भ मे जब चतुर्विध संघ ने सर्वानुमति से यह निर्णय कर लिया कि आपश्री आचार्य पद ग्रहण करें और एक स्वर से आचार्य पद पर आसीन होने की सानुरोध प्रार्थना की। अपने निर्णय को प्रगट किया तो अवाक् से रह गये और बडे ही निष्पक्ष भाव से कहा—"गुरुदेव की दी हुई मुनि पदवी से बढकर और पदवी नहीं है। यही बहुत है और इसके योग्य बन जाऊँ, यही मेरी साधना का लक्ष्य है। अब और क्या चाहिये।" इस वाणी मे न तो मनुहार की आकाक्षा थी, न खुशामद कराने की बू और न अपने प्रभुत्व व सम्मान कराये जाने का प्रदर्शन था। इसी तरह के और भी अनेक प्रसंग आये, लेकिन ये महात्मा तो '**कस भायण व मुक्कतोए**' जैसे निर्लिप्त बने रहे।

भारंडे चेव अप्पमत्ते—हम-आप मानव शरीर को धारण किये हुए हैं। लेकिन हमे यह यो ही नहीं मिला है। न जाने किन अनन्त काल के पुण्य-प्रयासो एवं साधनाओ के फलस्वरूप असंख्य योनियो को पार करने जन्म लेने के पश्चात् इस पडाव पर आकर अपने पूर्ण विकास की ओर अग्रसर होने का अवसर पाया है। कोई भी व्यक्ति लाखो-करोडो की धनराशि देकर, यहाँ तक कि चक्रवर्ती भी अपने छह खण्ड के राज्य को देकर भी मानव-जन्म को खरीद नही सकता है और न इसका मुकाबला देव-जीवन ही कर सकता है। इसीलिए यह अनमोल है, इसका सही मूल्य वे ही व्यक्ति कर सकते हैं, जो सदा सावधान हैं। क्षणमात्र का भी प्रमाद नही करते हैं, जो सदा जागृत रहते हैं। जिनके विवेक-चक्षु खुले रहते हैं। प्रत्येक क्षण किसी न किसी कर्तव्य मे लगे रहते हैं और एक कर्त्तव्य पूरा होने पर दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे, इस प्रकार प्रतिक्षण कर्त्तव्य-पालन मे निरन्तर व्यस्त रहते हैं।

हमारे पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज का यही तो जीवन-लक्ष्य था। प्रारम्भ से लेकर अवसान-पर्यन्त के समग्र जीवन मे ऐसा कोई बिन्दु नहीं है, जब प्रमाद की परछाईं भी दिखे। युवावस्था की तरह वृद्धावस्था मे भी जब शरीर थक जाता है, कुछ आराम चाहता है, तब भी स्वाध्याय जप, तप, चिन्तन, लेखन, प्रतिक्रमण मे अप्रमत्त भाव से लीन रहने के साथ-साथ परकल्याण के प्रति समर्पित थे। उन्हें अपना कर्त्तव्य करने मे समय बाधक नहीं होता था, न मौसम की चमकती धूप या कडकडाती शीत लहर व्यवधान डाल पाती थी। इसके लिए स्वय उन्हीं के कुछ सशक्त विचार सूक्तो को पढिये—

"जैसे कोई अन्धी औरत चक्की पीसती जाती है और ज्यो-ज्यो आटा चक्की से बाहर निकलता जाता है, त्यो-त्यो पास मे खड़ा कुत्ता उसे खाता जाता है, वैसे ही जो साधक प्रमाद में



पड जाता है तो, उसकी साधना भी व्यर्थ हो जाती है। अतएव भगवान का फरमान है कि साधक को क्षणभर के लिए भी प्रमाद नही करना चाहिये।" —दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ४

वे बहुश्रुत!

बहुत से शास्त्रो को जानने वाला, बहुश्रुत का शब्दार्थ है। लेकिन यथार्थत वही महापुरुष बहुश्रुत जैसे पावन पद पर विराजमान होने का अधिकारी है, जो स्वदर्शन और परदर्शन का मर्मज्ञ हो, आत्मा-परमात्मा, जीव-अजीव, स्वर्ग नरक, लोक-परलोक, द्रव्य-तत्व आदि के सम्बन्ध मे अपनी क्या श्रद्धा, विश्वास, ज्ञान दृष्टि है? अन्य दार्शनिक परम्परायें क्या मान्यताएँ रखती हैं? इन मान्यताओ के पीछे कौन-सी दृष्टि है? इन सब का ज्ञाता ही वास्तव मे बहुश्रुत है।

हमारे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसे ही बहुश्रुत महर्षि हैं। उन्होने साधना के प्रारम्भ काल से ही शास्त्रो के अध्ययन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, फारसी आदि समकालीन भाषाओ का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कर जैन आगमो के अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, गीता, कुरान आदि का अनुशीलन भी किया। पाश्चात्य विद्वानो द्वारा लिखित बहुत से ग्रन्थो के विशेष अशो की जानकारी प्राप्त की। इस व्यापक अध्ययन का परिणाम यह हुआ कि स्वदर्शन और परदर्शनो का तुलनात्मक विश्लेषण करने की वे अपूर्व योग्यता प्राप्त कर सके। जैन और जैनेतर दर्शनो के गूढ रहस्य उनसे अनजाने नही रहे। जिन व्यक्तियो ने उनके प्रवचन सुने हैं वे भली-भाँति जानते है कि अपने विवेचनीय विषय को सर्वजन सुलभ बनाने के लिए दूसरे धर्मों-दर्शनो की अनेक युक्तियो, उदाहरणो को प्रस्तुत करते थे। जिससे जैन बन्धु तो लाभान्वित होते ही थे, लेकिन उनकी अपेक्षा जैनेतर जनता पूर्ण उत्साह, उल्लास, श्रद्धा के साथ प्रतिलाभित होती थी। यही कारण है कि जन्मजात मास, मच्छी, मद्य पायी, चोर जैसे व्यक्तियो ने प्रगट मे अपने दोषो का वर्णन करके सस्कार-नीति सम्पन्न जीवन बिताना प्रारम्भ किया था।

संगम तीर्थ

दो पवित्र जीवनदायिनी नदियो के एक-दूसरे मे मिलकर एक रूप होने के स्थान को लोक मे सगम तीर्थ कहते है। जैसे वर्तमान मे गगा और यमुना के मिलन स्थान से प्रयाग का दूसरा नाम सगम तीर्थ भी है। इसी तरह हमारे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज भी एक सगम तीर्थ हैं। उनमे अहिंसा और करुणा की ऐसी अक्षयधारा मिली हुई थी कि जिनकी शीतलता मे प्राणिमात्र का तन-मन पुलक उठता था। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की अहिंसा और करुणा परिधि थी। वे अपने प्रत्येक कार्य का मूल्याकन अहिंसा और करुणा की दृष्टि से करते थे। वे अपने प्रत्येक कार्य मे यह देखते थे कि किसी के मन को आघात न पहुँचे, दूसरे का अहित न हो और सदैव इस प्रयत्न मे लगे रहते थे कि सबका भला हो!

सघ समर्पित

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज यह भली-भाँति जानते थे कि व्यक्तित्व चाहे कितना भी महान् हो, लोगो के समूह आगे-पीछे घूमे और स्वागत सम्मान मे पलक पाँवडे भी बिछा दें। फिर भी समष्टि के सम्मुख उसका महत्व कम ही है। कोई भी व्यक्ति सगठन, समूह, सघ से ऊपर नही हो सकता। इसलिए उन्होंने संघ-सगठन के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने का



आह्वान किया था, अपने इस आह्वान के अनुसार सर्वप्रथम अपने आपको समर्पित किया था। जिसकी प्रतीति निम्नलिखित प्रसंग से हो जाती है—

ब्यावर मे पाँच स्थानकवासी श्रमण सम्प्रदायो ने एक सघ की स्थापना की थी। इनके प्रमुखो ने अपनी-अपनी पदवियो-सम्प्रदायो को छोड़कर एक आचार्य की नियुक्ति की थी। जिन पाँच सम्प्रदायो का विलय हुआ था। उनमे से तीन मे पदवियाँ नही थी और दो मे थी। दो मे से भी इस सम्प्रदाय मे पदवियाँ अधिक थी। अपने प्रतिनिधि के रूप मे उन्होंने अपने प्रिय शिष्य उपाध्याय पडितरत्न श्री प्यारचन्दजी महाराज को भेजते हुए अपना सदेश भेजा था—"पदवी एक ही आचार्य की रखना, अन्य आचार्य-पद न रखना और यह पदवी श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को देना। यदि अलग-अलग पदवी दोगे, तो त्याग अधूरा रहेगा। अत. त्याग सच्चा और वास्तविक करना।"

इसके बाद का जो प्रसग है उसमे ही आपश्री के सघ समर्पित जीवन की भावना साकार रूप लेती है कि सम्मेलन सम्पन्न करके जब श्री उपाध्यायजी महाराज लौटे और सब विवरण सुना तो अत्यन्त हर्ष विभोर हो गये। इस अवसर पर किसी ने कहा—"गुरुदेव! अपने सम्प्रदाय की सब पदवियो के त्याग से चार तो यथास्थान बने रहे, हानि अपनी ही हुई है।" तब आपने उसे बडी उदारता एव सरलता से समझाते हुए कहा—"त्याग का भविष्य अतीव उज्ज्वल है। आज का यह बीज कल वटवृक्ष का रूप धारण करेगा। आज का यह बिन्दु कल सिन्धु बनेगा। दृष्टि व्यापक और उदार रखनी चाहिये। तेरा-मेरा क्या समष्टि से बडा होता है? व्यक्ति से समाज बडा होता है और समाज से सघ। सघ के लिये सर्वस्व अर्पण कर दोगे तो कोई परिणाम निकलेगा, पदवी तो इसके आगे बहुत नगण्य है।"

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपनी वचनलब्धि से जो अभिव्यक्त किया था, वह भविष्य मे यथार्थ के धरातल पर प्रगट हुआ और उसकी परिणति हुई—श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के रूप मे! जिसमे एक आचार्य के नेतृत्व मे श्रमण वर्ग आज अपनी साधना मे रत है एवं आत्म कल्याण करने के साथ-साथ जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियो के लिये यथायोग्य निर्देश करता है।

स्वाध्याय-ध्यान योगी!

पूज्यश्री जैन दिवाकरजी महाराज की ख्याति प्रसिद्ध वक्ता के रूप में थी और आपका नाम ही 'प्रसिद्ध वक्ता' पड गया था। यह उनका बाह्य रूप था, लेकिन जिन्होंने उनके अन्तरंग को देखा है, वे जानते हैं कि उनके जीवन मे स्वाध्याय और ध्यान साकार हो उठे थे। अपने दैनंदिनी कार्यों से जब भी और जितना भी अवकाश मिलता था तब दिन को स्वाध्याय, विविध ग्रन्थो का अध्ययन अथवा किसी न किसी ग्रन्थ की रचना मे सलग्न रहते। रात्रि के समय जब सभी सोये हुए होते, तब ध्यान-साधना में लीन रहते थे। अन्तेवासी श्रमण वर्ग दिन हो या रात्रि, सदैव ध्यानस्थ देखते तो उन्हें आश्चर्य होता कि आपश्री नींद लेते हैं या नही, और लेते भी हैं, तो कब? सदा ही जप-तप स्वाध्याय, ध्यान मे लीन।

उक्त दोनो प्रकार की साधनाओ का परिणाम था कि आपश्री ने आगम, बौद्ध और वैदिक साहित्य का गम्भीरता से अनुशीलन किया था। आपको हजारो गाथायें, श्लोक, सूक्तियाँ कण्ठस्थ थीं प्रवचन के समय उन्हें प्रस्तुत करके श्रोताओ के मानस मे एक नई किरण, नई अनुभूति जाग्रत कर देते थे।



जन्मजात 'विरागी'

"पूत के लक्षण पालने मे।" माता-पिता ने बडे लाड-प्यार से पाला-पोसा, पढाया-लिखाया बडा किया और योग्य वय सम्पन्न होने पर विवाह-सूत्र मे बाँध दिया। इस आशा से कि विराग का बिरवा राग के वेग मे अपने आप ही निर्मूल हो जायेगा। उन्होंने तो अपने विचारो से ठीक ही किया था कि बडे-बडे महर्षि भी रमणी की रमणीयता मे रम गये, तो यह युवा दारा की कारा को कैसे उलाघ सकता है? लेकिन यौवन की अमराई मे राग की कोयल नही कूजी सो नही कूजी। अन्त मे तोड सकल जग द्वन्द-फन्द आतमलीन कहाये। राग हारा और विराग जीता।

आपश्री की आकाक्षा तो यही थी कि पत्नी भी साथ मे प्रव्रज्या ले और प्रथम मिलन के अवसर पर भी यही भावना प्रदर्शित की थी। लेकिन पत्नी नही समझी। कारण यही था कि तब काल परिपाक नहीं हुआ था जिससे विरोध की बेल तो बढाती रही, परन्तु विराग के बीज को नहीं बोया और जब समय आया, तो सचोट बोलो ने विचार बदल दिये। दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल गई। वे बोल हैं—

"हमारा सासारिक सम्बन्ध तो जन्म-जन्मान्तर मे कितनी ही बार हुआ होगा, परन्तु धार्मिक सम्बन्ध नही हुआ और यह मनुष्यभव दुर्लभता से ही प्राप्त होता है, अतएव जैसे मैं साधु बन गया हूं, वैसे तुम भी साध्वी हो जाओ, क्षणिक सासारिक सुख को सर्वस्व मानकर अमूल्य और दुर्लभ मनुष्य जीवन को गँवा नही देना चाहिये। ससार असार है। उसमे कोई किसी का सदा का साक्षी नही और आत्म-कल्याण जो कि मनुष्य जीवन का वास्तव मे सार्थक्य माना जाता है, वह भी उसमे नही है। परलोक की बात तो दूर रही, परन्तु इसी लोक मे ही माता-पिता, भाई-बहिन, पति, पुत्र कोई सहायक नही होते। इसलिये योग्य लगे तो मेरा कहना मानकर तुम भी साध्वी बन जाओ।"

इस सार गर्भित कथन का परिणाम यह हुआ कि जो बात वर्षों पहले सम्भव हो जानी चाहिये थी, वह अब सम्भव हुई। पत्नी भी पति की अनुगामिनी बन गयी। धार्मिक सम्बन्ध जोड कर अटूट आत्मीय सम्बन्ध जोड लिया।

समाज-सुधारक

जैन मुनि की दीक्षा का मुख्य ध्येय आत्म-साधना है। लेकिन जिस क्षण यह दीक्षा ली जाती है, उसी समय से व्यक्ति के साथ सामाजिक निर्माण, धार्मिक प्रभावना और धर्म सेवा के कार्य भी बिना किसी प्रकार की प्रतिज्ञा लिये अपने-आप जुड जाते हैं। या फिर यो कह सकते हैं कि जैन श्रमण अपनी चर्या के द्वारा जो आदर्श अभिव्यक्त करते हैं, वह समाज-धर्म प्रभावना के रूप ले लेते हैं। अपनी पद-यात्रा और पच महाव्रतो का बाना पहनकर ग्राम-ग्राम को उद्बोधन देते हुए, जो जागृति का शखनाद करते हैं। उससे उनकी निस्पृह समाज सेवा सदैव स्मरणीय बनी रहती है।

पूज्यश्री जैन दिवाकरजी महाराज भी ऐसे ही एक सन्त शिरोमणि थे। उन्होंने अपने प्रवचनो के माध्यम से धर्म-बोध कराया, समाज को कर्त्तव्य का भान कराया और उसकी सही सार्थकता बतलाई, तो उससे ऐसा वातावरण बना कि पहले जन जैन बना और जैन बनकर अपने सामाजिक दायित्व की ओर अग्रसर हुआ।

मानवाकृति धारण करने वाले प्राणियो का समूह समाज नही है, लेकिन समग्र जीवन्त चेतना का सकलन है। यह संकलन यो ही गवा देने के लिये प्राप्त नही हुई है और न ही इसे कलकित करने का किसी को अधिकार है। इसी सूत्र को ध्यान मे रखकर पूज्य श्री जैन दिवाकरजी



महाराज ने मानवीय आत्मा के दर्शन किये। उसमे बैठी हुई कुरीतियो, कुवासनाओ और कुवृत्तियो को परिमार्जित करने के लिये प्रस्थान किया। वे जहाँ भी गये, वहीं सर्वप्रथम मानव-मानव के बीच जुदाई पैदा करने वाले कारण अह और उसके निमित्त धन के त्याग की सीधी-साधी भाषा बोली कि—"आप श्रीमन्त है और श्रीमन्ताई के अहम् मे पडोसी को भी नहीं जानते तो यह प्रदर्शन व्यर्थ है। यदि श्रीमन्त हैं, तो समय पर परमार्थ कर लो! जिससे स्वार्थ भी सध जाये। यदि ऐसा भी नही कर सकते, तो उन रीति-रिवाजो की लीक न डालो जो दिनो-दिन बढती हुई साधारण व्यक्ति को अपने जाल मे जकड लेते हैं। उन कुप्रदर्शनो को बन्द कर दो। जो प्रजा के नैतिक पतन के कारण हैं।" इसी प्रकार समय-समय पर और भी अनेक प्रकार से मानव को उसके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए जब और जहाँ कही भी किसी कुरीति-रिवाजो को देखते, तो उसके उन्मूलन के लिये प्रवचनात्मक उपदेश-आदेश देकर सन्मार्ग का दर्शन कराते थे।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का युग अंधश्रद्धा बहुल था। अंध-विश्वासो के वश होकर न मालूम कितने भैरो-भवानी को पूजता रहता था। इसे पूजने के निमित्त बिना किसी विचार के वह सब करने मे तत्पर हो जाता था, जो मानवता को कलकित करता था। ऐसे और भी अनेक कारण थे, जिससे मानव समाज अपने आप मे अशात था। पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने इन सब का समाधान किया। दिशा दी और दशा बदल दी। यही कारण है कि समय का अन्तराल बढने पर भी उन्हें एक समाज सुधारक के रूप मे माना जाता है। वे जहाँ भी गये, वही भिक्षा मागी बुराइयो की और प्रतिदान मे दिया मानवीय, ओज, तेज, आस्था, विश्वास!

समग्र आयामों का समवाय

पूर्वोक्त के अतिरिक्त सहस्र रश्मि पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज के और भी अनेक आयाम आलेख्य हैं। लेकिन यहाँ पर एक महान् जैनाचार्य के निम्नलिखित बोलो के पुण्य स्मरण होते ही विराम लेना उचित है—

"गुन समुद्र तुम गुन अविकार।
कहत न सुर गुरु पावै पार॥

अतएव समग्र आयामो का पुजीकरण करके इतना ही प्रस्तुत करते हैं कि—

उनका व्यक्तित्व जागतिक था। किसी एक समाज या क्षेत्र अथवा राष्ट्र तक सीमित नही था। वे श्रमण थे, उनके कृतित्व मे ग्रन्थि नही थी और ग्रन्थि हो भी कैसे सकती थी। जब वे स्वय ग्रन्थि का भेद न करके निर्ग्रन्थ हुए थे। उन्होने भारतीय सस्कृति की मौलिकता के अनुरूप जहर पिया, अमृत बाँटा। उन्होंने सीमा मे रहकर अनहद काम किया और जो किया, वह चिरस्थायी है। इस दृष्टि से उनके व्यक्तित्व को समग्र क्रान्ति के लिये समर्पित कहा जाये, तो सम्भवत. हम उनके सही मूल्याकन के निकटतम पहुँचने मे आशिक रूप से सफल हुए हैं। उन्होने अपनी चारित्रिक निर्मलता पूर्वक जनपद विहार करके अध-विश्वासो, रूढियो और परम्पराओ मे धँसी मानवता को निर्मल बनाया है।

इस समग्रता का अवलोकन करने के पश्चात् भी यदि हमारी अजलियाँ नहीं उठती हैं। साथ ही उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व से प्रेरणा नही लेते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य माना जायेगा। क्या हम अभागे रहे! नहीं, तो आइये! अपने दिये से प्रकाश लें और प्रयास करें, उस विश्व को प्रकाश मे लाने का, जो अँधेरे, अनिश्चय और सदेह से परावृत्त होकर क्लान्त-श्रांत है। ☆



लोकचेतना के चिन्मय खिलाड़ी  

मुनिश्री चौथमलजी महाराज

✡ डॉ० महेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी-एच० डी०

मुनिश्री चौथमलजी महाराज लोकचेतना के जबर्दस्त सचेतक थे। उनकी वाणी जन-कल्याणी थी इसलिए महल-मालिया से लेकर सडक पर सोने वाले सभी उनके मानलेवा थे। वे अमीरो की राह और गरीबो की आह, दोनो को अपनी दोनो आँखो की ओलखाण देते थे। अपने उपदेशो मे वे प्रत्येक वर्ग, धर्म, जाति-पाँति से ऊपर उठकर समुन्नत मानवता की बात कहते थे। मनुष्य के मर जाने से भी अधिक खतरनाक वे मनुष्यता की मौत मानते थे अत उनके सारे उपदेश मानवता के चरम विकास को प्रकाशित करने वाले होते थे।

उन्हें गरीबो, पीडितो, असहायो और दलित-पतितो से अधिक लगाव, अधिक सहानुभूति और अधिक स्नेह-सबल था, परन्तु उच्च सम्पन्न समृद्धवर्ग से उन्हें कतई घृणा नही थी। घृणा यदि थी तो कुवृत्ति और कुकर्म से, चाहे वह ऊँचे तपके मे व्याप्त हो, चाहे नीचे तपके मे। वे चाहते थे ऊँचे लोग अपने हिये की आँख खोलकर निम्न वर्ग को अपनापा दें। इनकी हीनता को अपनी शालीनता दें। इनकी दीनता को अपना डाव और दान दें। इनकी जिह्वा को अपना पान दें। इनकी झुकी हुई झोपडियो को अपने नेवो का पानी दें। अपने दरीखाने की बैठक दें। चौराहे का चिराग दें और वह सब कुछ दें जिसकी इन्हे जरूरत है और जिसकी वे अधिकता लिए हैं। वे अपने विसर्जन को इनका सर्जन मानें। मुनिश्री ने यही सब कुछ किया अपने उपदेशो के माध्यम से, अपनी पदयात्राओ के माध्यम से और अपने मेल-मिलाप के माध्यम से।

वे जानते थे कि यदि यह नही किया गया तो मनुष्य-मनुष्य का अन्तराल इतना अधिक बढ़ जायगा कि छोटे वर्ग का अस्तित्व पशुता के समकक्ष पहुँच जायगा और मनुष्यता एक मजाक बनकर रह जायगी। इसलिए उन्होंने लोकचेतना का सहारा लिया। लोक के मूल्य और उसके अस्तित्व को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने पाया कि लोक की श्री और शक्ति मे, उसके संस्कार और सौंदर्य मे वे सब भाव विभूतियाँ विद्यमान हैं, मगर उनका अहसास कराने वाला कोई नही है। यदि इनमे निहित सुप्त भाव जग गये तो इनका अभाव काफी हद तक दूर किया जा सकता है।

अत उन्होंने अपने उपदेशो मे लोक के उन चरित्रो को अस्तित्व दिया जो ज्ञात होते हुए भी अज्ञात बने हुए थे। जो बार-बार बोले जाते हुए भी अबोले थे। कई चरित्र, कई आख्यान, कई कथाएँ, गाथाएँ पुण्य के प्रताप की, सत्य और सदाचार की, शास्त्रो की, लोकजिह्वा की, समाज सस्कारो की, व्रतकथाओ की, इन सबको उन्होंने पुनर्जीवन दिया, प्रतिष्ठा दी, गीत दिया, सगीत दिया, नया बोल और कडावा दिया, लोक का जीवन-रस दिया और इन सबके माध्यम से समग्र मानवता की, मनुजता की एक ऊर्ध्वगामी चेतना-गगा की लहर नीचे से ऊपर तक और ऊपर से नीचे तक सबमे समान भावभूमि पर पुलिया दी।

लोक की यह भावभूमि दीक्षा ग्रहण करने के पहले से ही, कहिये तो बचपन से ही, उनमे पैठी हुई थी। क्योंकि नीमच मे अच्छे खिलाडी थे ख्यालो के, ख्यालो मे भी तुर्राकिलगी ख्यालो के। एक अजीब किस्सा है इन ख्यालो के प्रचलन का, प्रारम्भ होने का। इनके मूल मे भी सत ही रहे।



इनके मूल मे ही क्या—आध्यात्म, योग और प्रेम की पीर के सदेश को जनता-जनार्दन मे यदि किसी ने असरकारी रूप मे प्रचारित-पारित किया तो वे सत ही थे, पहुँचे हुए सत।

तुकनगीर एक हिन्दू संत और शाहअली एक मुसलमान फकीर। दोनो ने लोककथावार्ता वातो-गाथो को लेकर जनगीतो की रचना करते, हाथों मे चग पर गाते चल पडे, लोकबस्ती मे और इनके साथ जुडता गया लोक। गाने-बजाने-नाचने वालो का एक समूह तैयार होता रहा। पर ये तो दोनो पहुँचे हुए सत थे। धीरे-धीरे इनकी लोकप्रियता इतनी बढी कि अपने निवासस्थान चंदेरी (मध्यप्रदेश) के महाराज ने इन्हे अपने दरबार मे याद किया। दोनो पहुँचे और अपनी आपसीखी गायकी सुनाई। महाराज इन्हें सुन इतने अत्यधिक प्रसन्न हुए कि सम्मानस्वरूप तुकनगीर को अपने मुकुट का तुर्रा और शाहअली को कलगी भेंट कर दी।

फिर क्या था! महाराज की छाप ने इन्हें और लोकप्रिय कर दिया। आसपास इनका सम्मान बढने लगा। लोग श्रद्धा और भक्ति के वशीभूत हो इनके पास आने-उमडने लगे। दोनो अपनी लावणियाँ बनाते, ख्याल गायकियाँ गाते तो होते-होते इनके भक्तो, शिष्यो ने भी इनकी इस बेल को गाँव-गाँव घर-घर पहुँचा दिया। इसका प्रचार और इतनी जबर्दस्त लोकमान्यता रही कि मध्यप्रदेश से उठी यह लहर ब्रज-उत्तरप्रदेश और राजस्थान मे भी उसी हरावलता के साथ फैली। नीमच मे तो इसके खास अखाड़े कायम हुए। अच्छे खिलाडी उस्ताद लेखक और शौकिया लोगो ने इन ख्यालो की मण्डलियाँ तैयार कीं और एक होड-सी मच गयी।

मुनिश्री चौथमलजी महाराज की जन्मभूमि नीमच इन्ही ख्यालो के अच्छे खिलाडियो का घर था। एक विषय कविता का कोई छेड देता कि तत्काल उसका उत्तर उसी विषय, काव्य, छद लहजे मे देना होता था। इस तरह के प्रतिस्पर्धात्मक अखाडे, लावणी दगल चलते रहते। सत्य हरिश्चन्द, राजा भरथरी जैसे सत्य वैराग्यमूलक कथानक ख्यालो मे खूब चलते और सराहे जाते थे। रात-रातभर ये ख्याल चलते जिन्हें देखने के लिए आसपास के गाँव के गाँव उमड पडते थे।

सम्भव है लोकजीवन मे प्रचलित इन्ही वैराग्य-भावना प्रधान ख्यालो, घटना किस्सो ने अपरोक्ष रूप मे मुनिश्री को गृहस्थ-जीवन मे उठाकर सन्यास-जीवन, सत-साधु जीवन की ओर प्रेरित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। फलत १८ वर्ष की उम्र मे ही वे साधु बन गये।

साधुजीवन अगीकार करने के पश्चात् भी इनका मन जन-जन की कल्याणकामना की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर जनता की भाषा और जनता मे गाई जाने वाली लयो को, तर्जों को अपनाया। फलत इन्होंने लोकजीवन प्रचलित जैसे—"घूंसो, जला, मीरा थारे काई लागे गोपाल, रावण को समझावे राणी, तरकारी लेलो मालन आई बीकानेर की, बेटी साहूकार की थापै चवर दुरै छै जी राज, मनवा समझ म्हारा वीर," जैसी तर्जों मे विविध जैनचरित नायको की ख्याल जीवनियाँ लिखीं, जो धर्मप्रेमी जनता मे अधिक लोकप्रिय हुई। वे अब तक लोककण्ठो मे प्रचलित धुनो, गीतो तथा कथा आख्यानो से परिचित हो चुके थे।

वे इसको भलि-भाँति जानते थे कि जनता की भाषा मे दिया हुआ उपदेश जनता के हृदय तक पहुँचेगा।

मुनिश्री अपने व्याख्यानो मे इन चरित्रो का सस्वर वाचन-गायन करते तब श्रोता-समुदाय पूरा का पूरा मुनिश्री के साथ अपने गायक स्वर मिलाता झूम उठता और चरित्र के साथ आत्मसात



हो जाता। कई लोग ऐसे मिल जायेंगे जिनके मन पर उनकी गायक वाणी का आज भी वही स्वर सौन्दर्य पैठा हुआ है। कितनी मीठी तेज और ऊँची साफ गायकी थी उनकी ! क्या तर्जे निकालते और गायन बनाते थे वे ! जनजीवन की समग्र भावनाओ की जैसे प्रत्येक अक्षर पक्ति गायकी मे वे जड देते थे।

एक नमूना देखिये—

उनकी चपक चरित्र नामक प्रकाशित वृति का

दोहा—वर्द्धमान शासन पति, तारण तिरण जहाज।
नमन करी ने विनवु, दीजो शिवपुर राज॥
गौतम गणधर सेवता, सकलविघ्न टल जाय।
अष्ट सिद्ध नव निधि, मिले, पग-पग सुख प्रकटाय॥

× × × ×

अरे करुणा दिलधारी करण उपकारी चंपक सेठजी॥टेर॥
देश मनोहर मालवो सरे, नगरी वडी उज्जैन।
राजा राज करे जहाँ विक्रम, प्रजा मे सुख चैन॥१॥
बावन भैरू चौसठ योगीनी, सिफरा नदी के तीर।
महा काल गणपति हर सिद्धि सहायक आग्यो वीर॥२॥
उसी नगर मे जीवो सेठ रहे, धन भर्‌या भडार।
मुल्का मे दुकाना उसकी, वडा है नामूनदार॥३॥
सेठानी है धारिणी सरे, पतिव्रता सुखमाल।
चपक कुँवर है विद्या सागर, शशि सम शोभे भाल॥४॥

मुनिश्री चौथमलजी महाराज के शिष्यो के शिष्य एव अन्य मुनियो पर भी वर्तमान मे उन्ही की तर्ज शैली मे इस प्रकार की रचनाओ मे लीन हैं। इन शिष्यो मे मूलमुनि रचित श्री समरादित्य-चरित्र तथा व्यवहारी रतनकुमार-चरित्र, मुनि रमेशकुमारजी का वीरमान उदयभान चरित्र, हजारीमलजी महाराज साहब का सती कनकसुन्दरी चरित्र उल्लेखनीय है।

लोकगायिकी की इस परम्परा मे मुनिश्री ने जैन-चरित्रो की रचना कर न केवल उन्हे सामान्य आम जनता के लिए शिक्षाप्रद ही बनाया, अपितु लोकानुरजन द्वारा लोकशिक्षण का एक जवर्दस्त द्वार भी सदा के लिए खोल दिया जिससे जैनधर्म केवल जैनो के रहने से वच गया। मुनिश्री की देन जितनी समाज की रही, साहित्य और सास्कृतिक इतिहास को भी उससे कम नही रही। वे हर सदर्भो मे जीवन व समाज को स्वस्थ भावभूमि और जीवनीशक्ति प्रदान करने वालो में एक अगुआ सत के रूप में स्मरण किये जाते रहेंगे।



[परिचय व सम्पर्क सूत्र—
राजस्थानी लोककला के विश्रुत मर्मज्ञ विद्वान्
निदेशक—भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर]



श्री जैन दिवाकर जी महाराज की संगठनात्मक शक्ति के जीवित स्मारक

[सृजनधर्मा सत्पुरुष द्वारा सत्प्रेरित स्वयसेवी सगठनो का परिचय]

✡ कविरत्न श्री केवलमुनि

समाज-सुधार, उसके निर्माण और समाज मे उच्च एव मगलकारी कार्य सतत होते रहे, इसके लिए मानव विभिन्न सस्थाओ का निर्माण करता है। संस्थाओ की सस्थापना के प्रमुख उद्देश्य होते हैं—समाज मे किसी कल्याणकारी कार्य तथा प्रवृत्तियो को चालू रखना और उसे उन्नत एव सुसम्बद्ध बनाना।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज भी सस्थाओ के महत्त्व से परिचित थे। वे सघीय एकता, सामूहिकता, सहकारिता के लाभो से परिचित ही नही, उसके सुफल मे विश्वास रखते थे। वे जानते थे कि लोकोपकार के कार्य अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता। उसके लिए सस्थाओ की, सामाजिक सगठनो की आवश्यकता होती है और सस्थाएँ ही उसे सुचारु रूप से चिर काल तक कर सकती हैं। सस्थाएँ व्यक्ति के विचारो को अमर बना देती हैं। आपश्री की प्रेरणा से अनेक समाज-सेवी सस्थाओ का निर्माण हुआ। जिनमे से कुछ ये हैं।—

बालोतरा मे जैन मण्डल

विक्रम सम्वत् १९७१ मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज बालोतरा पधारे। उस समय तक वहाँ के निवासी सभा आदि के विचार से पूरे जानकार नहीं थे। उसकी स्थापना एवं सचालन के नियमो की तो उन्हें कल्पना भी नहीं थी। बालोतरा निवासी व्यक्तिगत रूप से श्रद्धालु थे, धर्म-क्रियाएँ भी कर लेते थे और कोई साधु-साध्वी आ जाता तो उसके प्रवचन सुन लेते बस यही तक उनका धार्मिक जीवन था। सघ बनाकर किसी साधु को लाना, उसका चातुर्मास कराना—आदि बातो की ओर उनकी रुचि न थी।

जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने प्रवचनो मे ये सब बातें बताईं। सस्था-निर्माण की प्रेरणा दी और उसके लाभ बताए। इस लाभप्रद बात को लोगो ने समझा और बालोतरा मे जैन मंडल की स्थापना हुई।

जैन वीर मडल, ब्यावर

ब्यावर मे जैनो की घनी आबादी है, किन्तु सम्प्रदायगत भेद-भाव का रग भी कुछ गहरा है। जैन दिवाकरजी महाराज का (सम्वत् १९८२) चातुर्मास वही हुआ। उनकी प्रेरणा से युवा-शक्ति सम्प्रदायगत भेदभावों से कुछ ऊपर उठी और उन्होंने जैन वीर मण्डल की स्थापना की



चातुर्मास मे बाहर से आने वाले दर्शनार्थियो के आवास-भोजन की व्यवस्था, सार्वजनिक प्रवचनो का आयोजन तथा उनकी शान्ति-व्यवस्था तथा तपस्वीरत्न श्रीमयाचन्दजी महाराज के ३७ उपवासो की तप पूर्ति उत्सव की व्यवस्था सुचारु ढंग से जब इस मण्डल और उसके सदस्य युवको ने की, तब नगर के आबाल-वृद्ध सभी जैन भाइयो ने इस सस्था का महत्त्व समझा। वे इसके कार्यों को सराहने लगे। उन्होंने सोचा—'यदि इस सस्था की स्थापना नही हुई होती तो युवको की शक्ति निर्माणकारी कार्यों मे कैसे लगती।'

पीपलोदा मे दो संस्थाए

विक्रम सम्वत् १९८२ मे जैन दिवाकरजी महाराज का आगमन पीपलोदा मे हुआ। वहाँ के निवासियो मे भक्तिभावना बहुत थी। किन्तु दो बातो का अभाव था—प्रथम, सघ व्यवस्था अच्छी नही थी और दूसरी भावी पीढी मे जैनत्व को सुरक्षित रखने वाली सस्था का अभाव। सघ व्यवस्था के लिए एक मण्डल की आवश्यकता थी और जैनत्व की रक्षा पाठशाला से हो सकती थी। गुरुदेव ने स्थानीय श्रावक समाज को इन दोनो आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु प्रेरणा दी।

श्रावक-समाज ने सर्वप्रथम **'श्री जैन महावीर मण्डल'** की स्थापना की। इसके बाद परम उदार समाज हितैषी दीवान साहब के कर-कमलो से सम्वत १९८३ मे चैत सुदी ८ मगलवार के शुभ मुहूर्त मे **जैन पाठशाला** की स्थापना हुई। इसके व्यय के लिए उसी समय कुछ फड भी एकत्रित हुआ।

जैन महावीर मण्डल, उदयपुर

उदयपुर सारे मेवाड का केन्द्र है। यह जैनो का भी विविधरगी क्षेत्र है। महाराणा जी की गुरुदेव के प्रति भक्ति के कारण जैन दिवाकरजी महाराज का सारे मेवाड मे डका बज गया। महाराजश्री ने यहाँ के जैनो को साम्प्रदायिकता के दलदल से निकालने हेतु एक सस्था के निर्माण की प्रेरणा दी। उदयपुर मे शीघ्र ही जैन महावीर मण्डल की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य रखा गया—जैन शासन का भविष्य उज्ज्वल करना और युवा पीढी मे जैनत्व के सस्कार भरना, तथा आकृष्ट भावुक लोगो एव बाहर से आये दर्शनार्थियो की उचित सेवा एव देखभाल करना।

जब आपश्री के चातुर्मास के दौरान ब्यावर निवासी रायबहादुर सेठ दानवीर श्री कुन्दनमलजी, उनके सुपुत्र श्री लालचन्दजी तथा पूरा परिवार आपके दर्शनार्थ आया तो वे जैन महावीर मण्डल की सेवा देखकर बहुत प्रभावित हुआ और फर्नीचर आदि के लिए धनराशि भेंट की। इस मण्डल ने कई बार जैन दिवाकरजी महाराज के सार्वजनिक प्रवचन भी कराए और बाहर से आये दर्शनार्थियो की भी उचित सेवा की।

गोगूदा मे जैन पाठशाला

उदयपुर चातुर्मास के पश्चात् जैन दिवाकरजी महाराज गोगूंदा पधारे। वहाँ अपने प्रवचनो मे आपने स्थानीय श्रावकों का ध्यान जैनत्व की रक्षा हेतु एक पाठशाला की स्थापना की ओर आकर्षित किया। तदनुसार जैन पाठशाला की स्थापना हुई और स्थायी फड एकत्रित कर इसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ बना दी गई।

जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम

उत्तम साहित्य के प्रकाशन के लिए साहित्य-प्रकाशक समिति अथवा सस्था का होना



आवश्यक प्रतीत हो रहा था। इस कार्य को रतलाम के श्रावको ने जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति की स्थापना करके पूरा किया। जैन दिवाकरजी महाराज एव अन्य मुनिगण जिस साहित्य की रचना करते थे वह यहाँ से प्रकाशित होता था। विक्रम सम्वत् १९८३ मे जब व्यावर निवासी सेठ कुन्दनमलजी जैन दिवाकरजी महाराज के दर्शनार्थ उदयपुर आये तो ५२०० रुपये का एक सुन्दर भवन खरीदकर इस सस्था को दिया।

अब तक इस सस्था से सैकडो छोटी-बडी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। इनमे गद्य-पद्य मे चरित्र जीवनियाँ हैं और भजन-स्तवन भी। पहले निवेदन, पुण्यभूमि, रतलाम टाइम्स आदि पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती रही थी किन्तु अब उनका प्रकाशन बन्द हो चुका है।

रतलाम की अन्य संस्थाए—

जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से रतलाम मे अन्य कई सस्थाओ ने भी जन्म लिया। इनमे **श्री जैन महावीर मडल** और एक **जैन पाठशाला** भी स्थापित हुई।

जैन पाठशालाओ की स्थापना—

जैन दिवाकर जी महाराज का उद्घोष था—'जैनो! सोचो-समझो और युग को पहिचानो। भावी सतति मे जैन धर्म के सस्कारो को जागृत करने तथा समाज को नैतिक दृष्टि से उन्नत और समृद्ध बनाने हेतु जैन पाठशालाओ की स्थापना अति आवश्यक है। इसमे लगाया हुआ धन सार्थक होता है। शिक्षण का बीज ज्ञान वट-रूप मे फलेगा।'

आपके इस उद्घोष का अनुकूल प्रभाव पडा। जैनियो ने अपने-अपने क्षेत्र मे पाठशालाओ की स्थापना का निश्चय कर लिया। फलस्वरूप रायपुर (बोराणा), देलवाडा, सनवाड, गोगूंदा, नाई, सोनई (महाराष्ट्र), इन्दौर, अहमदनगर आदि स्थानो मे जैन पाठशालाएँ खुली। महाराष्ट्र मे सोनई से जैन पाठशाला की लहर शुरु हुई तो गाँव-गाँव मे फैल गई। जहाँ-जहाँ जैन दिवाकर जी महाराज के चरण पडे, पाठशालाएँ खुलती गई हैं। आपकी प्रेरणा से इन्दौर मे **मध्यभारतीय जैन सम्मेलन** हुआ। उसमे गाँव-गाँव मे पाठशालाएँ खोलने का प्रस्ताव पारित हुआ। इस प्रस्ताव से भी पाठशालाओ की स्थापना के कार्य को गति मिली।

महावीर मडलो की स्थापना

जैन दिवाकरजी महाराज का विचार था जैन लोग पारस्परिक सम्प्रदायगत मतभेदो को भूलकर एक हो और समाज सेवा के कार्य मे जुटें। इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर महावीर मडलो की स्थापना कराई। अमलनेर मे जब तीनों सप्रदायो (दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी) ने सम्मिलित रूप से महावीर जयन्ती मनाई तो वहाँ श्री महावीर मडल की स्थापना हुई। इसी प्रकार, फालणा, इन्दौर आदि स्थानो पर भी श्री महावीर मडल बनाये गये।

जोधपुर मे महिला आश्रम

जोधपुर-जैन बहुल क्षेत्र है। यहाँ धर्म भावना भी अधिक है। जैन दिवाकरजी महाराज के उपदेशो से वहाँ की महिलाओ के धार्मिक सस्कारो मे अभूतपूर्व प्रगति हुई। इन धार्मिक सस्कारो मे दृढता कायम रखने और महिलाओ को सुशिक्षित करने के लिए महिला आश्रम की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। सर्वप्रथम इसके लिए एक भवन खरीद लिया गया। वहाँ महाराजश्री का प्रवचन रखा गया। व्याख्यान मे आपश्री ने महिला जीवन, उसके महत्व और उनकी पारिवारिक तथा सामाजिक जिम्मेदारियो पर सर्वांगपूर्ण प्रकाश डालते हुए महिला आश्रम की उपयोगिता बताई। महिलाओ पर तो इसका प्रभाव पडा ही, पुरुष वर्ग भी बहुत प्रभावित



हुआ। तत्काल महिला आश्रम की योजना वनी और इसके सचालन के लिए ५००० रुपये का वचन भी दिया गया। इस प्रकार जोधपुर मे महिला आश्रम की स्थापना सुन्दर ढग से हो गई।

यादगिरी का पुस्तकालय

पुस्तकालय पुस्तको का ही नही, ज्ञान का भी भडार होता है। यह सर्व-साधारण के ज्ञानोपार्जन के लिए सर्वाधिक उपयोगी साधन है। इसकी उपयोगिता और जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा से यादगिरी श्री सघ ने सर्वसाधारण के लिए एक पुस्तकालय की स्थापना की।

अहमदनगर मे ओसवाल निराश्रित फड

अहमदनगर चातुर्मास के अवसर पर जैन दिवाकरजी महाराज ने निर्धन और निराश्रित स्वधर्मी भाइयो की सहायता हेतु श्रावको को प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप स्थानीय सघ ने 'ओसवाल निराश्रित फंड' की योजना वनाई। इस परोपकारी कार्य हेतु उदार हृदय दानी सज्जनो से १५,००० रुपये भी प्राप्त हो गए।

मन्दसौर मे समाज-हितैषी श्रावक मडल

वि० स० १९९९ के मन्दसौर चातुर्मास के दौरान आपकी प्रेरणा से पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज-सम्प्रदाय के हितैषी मडल की स्थापना हुई। इसका सक्षिप्त नाम 'समाज हितैषी श्रावक मडल' है। स० २००१ मे उज्जैन मे इस मण्डल का अधिवेशन भी हुआ। मण्डल को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध और सुदृढ वनाने के लिए कार्यकर्ताओ ने हजारो रुपये का चन्दा भी इकट्ठा किया।

चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम

जैन दिवाकरजी महाराज का चातुर्मास (वि० सं० २००० का) चित्तौड़गढ मे था। वहाँ आपने श्रावको को प्रेरणा देते हुये फरमाया—'समाज के वृद्धो, अपाहिजो की सेवा करना पुण्य का कार्य है। इनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। ये परिवार के ही नही, समाज के भी महत्वपूर्ण अग हैं। वृद्धावस्था मे इनकी अध्यात्म-साधना, चिन्तन-मनन एव अन्य धार्मिक क्रिया-कलापो के लिए समुचित साधन जुटाना समाज का कर्तव्य है।'

आपके इन वचनो से समाज मे जागृति आई। चतुर्थ वृद्धाश्रम की स्थापना हुई। इस कार्य के लिए जब जैन दिवाकरजी महाराज का २००२ का चातुर्मास इन्दौर मे था तव राय वहादुर सेठ कन्हैयालालजी सुगनचन्दजी भडारी ने एव समाज के दानवीर श्रीमन्तो एव सामान्य सद्-गृहस्थो ने मुक्तहस्त से दान देकर २०००० रु० एकत्र करके सस्था की जडें मजवूत की।

इस सस्था ने आर्थिक सहायता देकर अनेक वृद्धो का भरण-पोपण किया और उनकी अध्यात्म-साधना हेतु समुचित साधन जुटाए हैं।

आज भी चित्तौड किले पर यह सस्था अपना पुनीत सेवा कार्य कर रही है।

ये और इस प्रकार की विभिन्न सस्थाएँ जो आपश्री की प्ररणा से प्रारम्भ हुई, अपने-अपने क्षेत्र मे कार्यशील हैं। इनके द्वारा समाज का वहुमुखी कार्य हो रहा है।

ये सस्थाएँ वे पौधे हैं, जिनकी जडें जैन दिवाकरजी महाराज रूपी सूर्य की धूप से सुदृढ हो रही हैं, जिनके पत्ते और डालियो एव टहनियो पर उनके नाम का प्रकाश पड रहा है। ये ऐसे स्मारक हैं जो आपकी स्मृति को स्थायी रखकर भविष्य मे आने वाली पीढियो को भी ज्ञान और सेवा का प्रकाश दिखाते रहेंगे और देते रहेगे जैन दिवाकर रूपी दिवाकर के समान प्रेरणा !





भारत के एक अलौकिक दिवाकर

✡ श्री मनोहर मुनि 'कुमुद' (बम्बई)

इस गगनमण्डल पर दिवाकर का उदयास्त अनन्त बार हो चुका है। क्षितिज पर इसका शुभागमन इस धरती पर दिव्य प्रकाश लेकर आता है और अस्ताचल की ओर इसका प्रयाण धरती पर अन्धकार का गहनावरण डाल देता है किन्तु महापुरुष एक ऐसा दिवाकर है कि जब इस ससार मे उसका उद्भव होता है तो वह अपने साथ दिव्य सस्कार का अनन्त प्रकाश लेकर आता है। जब तक वह इस दुनिया मे रहता है तब तक वह लोकमानस के सचेतन धरातल पर अपने जीवन के तप, त्याग, सत्य, सयम, माधुर्य, मैत्री, सौहार्द, स्नेह तथा उपदेश वाणी की प्रकाश किरणें बिखेरता रहता है, किन्तु जब वह इस नश्वर जगत से मृत्यु अस्ताचल की ओर महाप्रयाण करता है तब भी वह इस धरा पर अपने पावन एव पुनीत आदर्शों का एक अनन्त प्रकाश छोडकर जाता है। आकाश के उस दिवाकर मे और धरती के इस दिवाकर मे यही अन्तर है। यह अन्तर भी कोई कम नहीं है। यह वह अन्तर है जो एक को लौकिक और दूसरे को अलौकिक बना देता है।

सूर्य सदैव पूर्व दिशा मे उदित होता है और पश्चिम मे अस्त हो जाता है। किन्तु चेतन सूर्य के लिए ऐसा कोई नियम नही है। महापुरुष इस धरती पर किसी भी दिशा से प्रकट हो सकता है। उसके लिए दिशा का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उस दिशा मुक्त दिवाकर का अस्त इस धरती पर कही भी हो सकता है वस्तुत तत्त्व दृष्टि से देखा जाये तो दुनिया मे महापुरुष का अस्त कभी होता ही नही। क्योंकि उसके सजीव आदर्श लोक-मानस मे ज्ञानालोक के रूप मे सदैव उदित रहते हैं। केवल इस धरातल पर चर्म-चक्षुओ के लिए उसका दर्शन न होना ही उसका अस्त है। जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस धरती के एक ऐसे ही ज्ञान एव चारित्र के प्रकाशमान दिवाकर थे। आपका उदय मध्यप्रदेश के नीमच नगर मे हुआ और आपके पार्थिव शरीर का अस्त कोटा की धरती पर हुआ किन्तु आपका पुण्य स्मरण हर हृदय-गगनाङ्गन मे जैन दिवाकर के रूप मे आज भी उदित है। दुनिया के मन ने वह कभी अस्त नही हुआ। अवश्य उस व्यक्तित्व मे कुछ वैशिष्ट्य होगा। नही तो दूसरो के मन मे सूर्य बनकर चमकना कोई साधारण बात नहीं है। गगाराम की आंखो का तारा और केसरादेवी के कुल का दीपक आगे चलकर जैन दिवाकर बन जायेगा। प्रकृति के इस गुप्त रहस्य को कोई नहीं जानता था। दुनिया मे जीव कर्म से बँधा हुआ चला आता है और मृत्यु के आने पर चला जाता है। आने और जाने मे कोई विशेषता नही। मानव इस धरती पर अपने जीवन-काल मे रहता किस तरह से है उसके व्यक्तित्व का सारा रहस्य इस तथ्य पर ही आधारित रहता है। केवल जीवनयापन मात्र जीवन का कौशल नही है। मानव अपने साथ मोह लेकर आता है और सारी उमर वह अपने मन, वचन और काया के कर्म-जाल से उस मोह का सिंचन करता रहता है। स्व-सुख से बँधा हुआ जीव केवल मोह को ही बढ़ाता है और मोहशील व्यक्ति जीवन-भर दुख और कर्मबन्ध के रूप मे उस मोहवृक्ष के कटु-फल भोगता रहता है। किन्तु कभी पूर्व जन्म के पुण्योदय से व्यक्ति के अन्तरङ्ग मे सद्ज्ञान का जन्म होता है। ज्ञान जीवन की वह मगल वेला है जिस वेला मे मानव के मिथ्या मोह का उपशमन होने लगता है। उसे अपनी आँखो के सामने अपनी आत्मा का दिव्य प्रकाश एवं शाश्वत सुख नजर आने लगता है। वह जगत के समस्त चेतन एव अचेतन सम्बन्धो के नागपाश से मुक्त होने के लिए अधीर हो जाता है। मन की इस विरक्त दशा को शास्त्रीय भाषा मे वैराग्य कहा जाता है।



श्री चौथमलजी महाराज के हृदय मे एक ऐसा ही सच्चा एव पक्का वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे त्याग के शिखर पर चढने के लिए वेचैन हो उठे। वैराग्य और त्याग के बीच मे सघर्ष की एक विकट घाटी साधक को पार करनी पडती है। जिसके हृदय मे लगन एवं धैर्य का जितना अधिक वेग होता है उतनी ही जल्दी वह उस विपमस्थल से आगे निकल जाता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज के जीवन-चरित्र के अध्ययन से मालूम होता है कि उन्हे भी त्याग-पथ के पथिक बनने के लिए एक ऐसा ही घोर सघर्ष का सामना करना पडा। स्मरण रहे कि व्यक्ति को विराग की भूमिका पर आने के लिए सबसे पहले अपने ही हृदय के मोह-पिशाच से लडना पडता है। इस संघर्ष मे वर्षों भी बीत सकते हैं किन्तु जब साधक इस द्वन्द्व युद्ध मे पूर्ण विजयी होता है तभी वह ज्ञानगर्भित-वैराग्य की उच्च भूमिका पर आरोहण करता है। इसके पश्चात् त्याग की चोटी पर पहुँचने के लिए साधक के जीवन मे बाह्य जगत के मोहक सम्बन्धो का सघर्ष शुरू होता है। इस सघर्ष मे कभी वर्षों लग जाते हैं और कभी यह कुछ दिनो मे ही समाप्त हो जाता है। जो साधक अपने भीतरी मोह पर विजय पा लेता है उसके पगो मे अपने मोह की स्वर्ण श्रृङ्खला कोई नही डाल सकता। साधना एव सयम पथ के लिए स्वय को सहमत करने की अपेक्षा इस मार्ग का अनुगामी बनने के लिए दूसरे बन्धुओ की सहमति प्राप्त करना अधिक दुष्कर नहीं होता। वैराग्य की चट्टान मे दुनिया के किसी मोह को टकराने की हिम्मत नही हो सकती। बन्धुओ का मोह वैराग्य से टकराता नहीं, केवल झूठे प्रलोभन दिखलाकर फुसलाता है। किन्तु ज्ञानी किसी फुसलाहट से नही आता। श्री चौथमलजी महाराज के जीवन पृष्ठ देखने से ज्ञात होता है कि वह प्रयत्न करने पर भी किसी प्रलोभन-जाल मे नहीं फँसे। उनका विवाह भवितव्यता की इच्छा-पूर्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ नही। उसके लिए उनकी अपनी कोई इच्छा व कामना नही थी। जो भ्रमर फूल की पाखुडी के निकट पहुँच कर भी उसके कोमल एव कमनीय स्पर्श से अनभिज्ञ रहे वह भ्रमर कितना निस्पृह होगा। श्री चौथमलजी महाराज एक ऐसे ही निस्पृह वैरागी थे। उनके अग्रज और पिता के निधन ने उनके वैराग्य को और भी परिपुष्ट कर दिया। जीवन की अमंगल घटनाओ से माँ केसर का मन दुनिया से विरक्त हो चुका था। जो स्वय विरक्त हो जाये वह दूसरो के लिए बन्धन नहीं बन सकता। जो माँ स्वय साधिका बनने के लिए तत्पर हो उसका जीवन अपने साधक पुत्र के लिए कभी बाधक नहीं बन सकता। पुत्र के स्वरो मे माँ ने अपने स्वर मिलाये। श्री चौथमलजी महाराज एक आचारनिष्ठ गुरु की खोज मे निकल पडे। जो हृदय के अज्ञानतम को मिटाकर जीवन मे सत्य का चमत्कृत प्रकाश बिखेर सके वही गुरु के सिंहासन पर समासीन होने के योग्य होता है। गुरु जीवन का चतुर-चितेरा तथा एक कुशल कलाकार माना जाता है। योग्य को योग्य की ही खोज होती है। और वह उसे निस्सन्देह प्राप्त हो ही जाता है। आखिर श्री चौथमलजी महाराज को आशुकवि श्री हीरालालजी महाराज के दर्शन हुए। यह दर्शन श्री चौथमलजी महाराज की खोज की बस अन्तिम सीमा थी। वस्तुत यह दर्शन गुरु और शिष्य का एक प्रकार से मधुर मिलन था। कभी-कभी जन्म-जन्म के बिछुडे हुए हृदय बहुत ही रहस्यपूर्ण ढग से मिल जाते हैं। संस्कारो का पारस्परिक आकर्षण अद्भुत एव अचूक होता है। पूज्य श्री हीरालालजी महाराज के चरणो को पाकर मोक्षार्थी श्री चौथमलजी महाराज के तृषातुर नयनो को अनुपम सुखानुभूति हुई। हृदय गुरु-चरणो मे समर्पित होने के लिए विह्वल हो उठा। आपकी जैनेन्द्री दीक्षा की उत्कण्ठा-नदी मे प्रबल वेग आ गया।

दीक्षा केवल वेश परिवर्तन नही, बल्कि त्याग के महापथ पर जीवन का समर्पण है, आत्मा के



अनन्त लोक मे माया-विमुख मन का आनन्दमय प्रवेश है। दीक्षा केवल बाह्याचार का आग्रहण ही नही है। वल्कि समता योग की साधना के लिए विषय-कषाय का विसर्जन है। दीक्षा का उद्देश्य महाव्रतो का मात्र प्रदर्शन नही वल्कि चरित्ररत्न का सम्यक् परिपालन एव जीवन का ऊर्ध्वीकरण है। कोई व्यक्ति दीक्षा को भूल से सुविधावाद न समझ ले। यह तो व्रतो की असिधारा पर साधक का प्रफुल्ल मन से अनुगमन है। हर्षमय प्रयाण है।

श्री चौथमलजी महाराज सयम की इस सुतीक्ष्ण असिधारा पर चलने के लिए कटिवद्ध थे। वे किसी मगल सुअवसर की उत्सुक हृदय से प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु विधि के लेख अमिट होते हैं। विधाता उनके दीक्षा-पथ पर अवरोध के कांटे विखेर रहा था। उनके ससुर श्री पूनमचन्दजी का विरोध प्रत्येक सघ को सोचने के लिए वाध्य कर देता था। पुत्री का मोह उन्हे ऐसा करने के लिए विवश कर रहा था। वह ससुर मे असुर नही वना। उसका विरोध उचित था कि अनुचित मैं इस समीक्षा मे उतरना नहीं चाहता किन्तु एक वात अवश्य कहूँगा कि दीक्षा के उपरान्त उसका विरोध उपेक्षा वनकर अवश्य रहा होगा क्योकि वह प्रतिकार नही वना। मोह वडा नीच और पतित होता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए गजसुकुमार और सोमिल का एक उदाहरण ही पर्याप्त है। किन्तु चरित-नायक के जीवन-चरित्र के पवित्र पृष्ठो से ज्ञात होता है कि दीक्षा के उपरान्त रुष्ट ससुर ने आपको किसी भी उपसर्ग से आतकित नही किया। शायद दिवाकर की कुछ रश्मियाँ उसकी तमसावृत्त हृदय गुहा मे पहुँच गई हो और उसने आपके निष्काम त्याग का मूल्याकन करने का प्रयत्न किया हो। त्याग से वडा ससार मे कोई वल नही। उसके सामने कभी पाषाण भी नव-नीत पिण्ड वनकर पिघल जाता है।

आपके त्याग मार्ग को ग्रहण करने के मगल क्षणो की शोभा को तो कुछ ही आँखों को देखने का अवसर मिला। क्योकि आपकी दीक्षा व्यर्थ के आडम्बर से एकदम मुक्त रही। किसी साधक की दीक्षा-शोभा हजारो हृदयो को वाह-वाह करने को विवश कर देती है। किन्तु जीवन-साधना किसी को भी आकृष्ट नही कर पाती और किसी साधक की दीक्षा वडे ही साधारण रूप मे सम्पन्न होती है किन्तु वह साधक अपने साधना-वल से सघ मे एक असाधारण व्यक्तित्व वन जाता है और उसके आध्यात्मिक जीवन की अलौकिक शोभा जन-मानस को आश्चर्यचकित कर देती है। सर्ववन्दनीय पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भी जैन शासन मे एक ऐसे साधक थे जिनकी दीक्षा साधारण किन्तु आत्म-साधना असाधारण थी।

आत्म-साधना साधु जीवन का सवसे ऊँचा लक्ष्य है। आत्म-साधना का उद्देश्य है आत्म-गुणो का उत्तरोत्तर विकास तथा अन्तत पूर्णता की उपलब्धि। विकास के लिए बाधक कारणो को हटाना आवश्यक होता है। जैनधर्म की दृष्टि मे कषाय साधना-पथ का सवसे वडा विघ्न है। कषाय का पूर्ण विजेता अरिहन्त है। जैनधर्म कषाय पर विजय पाने की एक साधना सारणी है। श्रावक तथा श्रमण कषाय पर विजय पाने वाले केवल साधक मात्र हैं।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज भी अपने आपको अरिहन्त मार्ग का एक साधक ही समझते थे। जो अपने को साधक मानता है वह अवश्य उत्तरोत्तर विकास करता है और एक दिन ससार मे महान् व्यक्तित्व का स्वामी वन जाता है। श्री चौथमलजी महाराज भी गुरु की चरण-छाया मे रहकर आत्म-साधना करने लगे और एक दिन जैन शासन की शान वन गये। जैन शासन मे चरित्र का सम्यक् परिपालन ही आत्म-साधना है। किन्तु वह ज्ञान के विना सफल नही होती।



मजिल पर पहुँचने के लिए चरणो मे वेग, हृदय मे उत्साह तथा आँख मे ज्योति ये तीनो अपेक्षित हैं। ठीक इसी तरह आत्म सिद्धि पाने के लिए जीवन मे चारित्र, हृदय से वैराग्य तथा ज्ञान का सम्यक् प्रकाश ये तीनो तत्त्व आवश्यक माने जाते हैं। आपका जीवन इन तीन तत्त्वों का एक त्रिवेणी सगम था। आप आत्मज्ञानी तो थे ही इसके साथ-साथ आप एक उच्चकोटि के विद्वान् भी थे। जैन मुनि होने के नाते से आपने जैनागमो का गहन अध्ययन किया। यह एक प्रकार से आपके अपने परम कर्तव्य का परिपालन मात्र था। यह तो अहिंसा धर्म की तरह आपके जीवन का परम धर्म था। किन्तु अन्य धर्मों के ज्ञानोपवन के कमनीय फूल चुनकर आपने अपने ज्ञानाञ्चल मे सग्रहीत किये। यह आपकी ज्ञान साधना का विशेष अग था। आपका ज्ञान केवल वाणी-विलास या बुद्धि का चमत्कार वनकर नही रहा। आपने उसे चिन्तन के द्वारा आत्मसात् भी किया। यह ज्ञान फिर आपके अन्तरङ्ग मे अनुभूति के रूप में प्रगट हुआ। ज्ञान और अनुभूति का मधुर मिलन किसी भी साधक के जीवन मे किसी अन्य जन्म की साधना के परिणामस्वरूप ही होता है। विद्वान् और ज्ञानी वनने के वाद आप एक कुशल प्रवचनकार भी वने। देखा गया है कि कुछ लोग विद्वान् तथा ज्ञानी तो खूब होते हैं, किन्तु अपने अन्तरङ्ग की वात दूसरे के अन्तरङ्ग मे नही उतार सकते। किन्तु आप अपनी वात दूसरो के हृदय मे उतारने मे खूब प्रवीण थे। प्रकृति ने आपको इस प्रवचनपटुता के अलौकिक गुण से भी खूब विभूपित किया था। आपकी धर्मसभा एक समवसरण के रूप मे लगती थी। आपकी ज्ञानगगा मे आत्म-स्नान करके सभी धर्मावलम्वियो को आत्म-सन्तोष मिलता था। आपके विराट् अध्ययन ने आपके चिन्तन को विराट् वना दिया था। यही कारण था कि सभी धर्मों के लोग आपकी प्रवचन सभा की शोभा वनकर वैठते थे। झोपडी के किसान व मजदूर, अट्टालिका के सेठ-साहूकार तथा राज-भवनों के शहनशाह सभी आपकी वाणी का अमृतपान करने के लिए आतुर रहते थे। उस अलौकिक दिवाकर की ज्ञान रश्मियाँ हर छोटे-वडे के मन को आलोक से भर देती थी। कुछ विदेशी विद्वान् भी आपके व्यक्तित्व से आकृष्ट थे। उन्हें भी आपका उपदेशामृत-पान करने मे आनन्द आता था। आपकी सद्प्रेरणा से बुनकर, मोची, चमार, खटीक आदि कितने ही कुसस्कारी जनो ने अपने हृदय को आपके चरणो में समर्पित कर सदा के लिए सन्मार्ग ग्रहण कर लिया। आप अस्पृश्यता को भारत के माथे का कलक समझते थे। आप जहाँ भी जाते थे वहाँ 'मानव-मानव एक समान' का नारा लगाकर साम्यभाव की मन्दाकिनी वहा देते थे।

शासक प्रजा पर शासन करते हैं, किन्तु आप शासको के हृदय पर भी शासन करते थे। आप निस्सन्देह वीर थे, किन्तु मूक-पशुओं का करुण-क्रन्दन सुनकर आप अधीर हो जाते थे। अभय-दान का अभियान आपके इस कारुणिक हृदय का ही एक सुपरिणाम था। आप अपने युग के एक महान् शासन प्रभावक मुनीश्वर थे। सघ ऐक्य की योजना मे आपका सहकार अविस्मरणीय एव अद्वितीय रहेगा। सगठन समाज की रीढ है। आपके इस उपदेश से शासन की जडो को काफी वल प्रदान किया। कितने ही सामाजिक उपकार आपके जीवन के कीर्तिमान वनकर इस भारत-वसुन्धरा की शोभा वढा रहे हैं। दिवाकर उदित होकर आखिर अस्त भी होता है। यह अलौकिक दिवाकर भी पार्थिव शरीर के रूप में एक दिन दुनिया की नजरो मे ओझल हो गया। किन्तु उसके चिन्तन एव चारित्र का दिव्य प्रकाश उसके साहित्य के अमर पृष्ठो तथा इस धरती के विस्तृत वक्षस्तल पर युगो-युगो तक बना रहेगा।

☆

परिचय :

[भारत के पूर्वांचल मे अनेक वर्षो से धर्मप्रचाररत।
स्व० आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज के योग्य विद्वान् शिष्य, ओजस्वी वक्ता।]



सामाजिक समता के स्वप्नद्रष्टा श्री जैन दिवाकर जी

✻ उदय नागोरी,
बी० ए०, जै० सि० प्रभाकर

रत्नगर्भा वसुन्धरा के अनमोल रत्नों में जैन दिवाकर प्रसिद्धवक्ता प० मुनि श्री चौथमलजी महाराज साहब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैचारिक क्रान्ति के सूत्रधार, महान् उद्बोधक, दिव्य विभूति जैन दिवाकरजी महाराज ने वर्षों पूर्व समाज की वैविध्यपूर्ण दीवारें तोड़ने का उद्घोष किया। बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी दिवाकरजी महाराज ने दिवाकरवत् अपनी ज्ञानरश्मियाँ जन-जन को सुलभ की तथा अपना नाम (उपाधि) सार्थक किया। सीमित दायरों से दूर रहकर इन ज्योतिपुंज ने अपने संयम, साधना व ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित की जिससे न केवल अज्ञानान्धकार दूर हुआ वरन् लक्षाधिक लोगों की जीवन-दिशा ही बदल गई।

जैन दिवाकरजी महाराज यद्यपि जैन सम्प्रदाय से (स्थानकवासी परम्परा) जुड़े हुए थे, पर वे इससे बँधे नहीं। वे तो प्रकाशस्तम्भ थे, जहाँ वर्ण, वर्ग, जाति, रूप आदि में विभक्त समाज उनसे प्रेरणा पाकर नवजीवन पा सके। कथनी और करनी का भेद दूर कर आपने अपेक्षाकृत कमजोर उपेक्षित व शोषित वर्ग को गरिमा प्रदान की। उनके प्रवचनों में अभूतपूर्व समभाव दृष्टिगोचर होता था क्योंकि वहाँ राजा व रंक, निरक्षर व साक्षर, हरिजन व श्रेष्ठि जब मन्त्रमुग्ध होकर प्रवचन श्रवण करते थे। जिन्हें हम पतित, अछूत व शूद्र मानते हैं उन्हें भी वे बड़ी आत्मीयता से जीवन-उत्थान का मार्ग बतलाते थे।

मानव धर्म

दिवाकरजी महाराज की दृष्टि में मनुष्य को मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित करना ही धर्म है। उनका संकल्प था कि सच्चे मानव के भीतर छिपे असंस्कार, क्रूरता, कदाचार व कटुता को अनावृत्त कर दिया जाय। जैन वही हो सकता है जो सच्चा मानव है। यही मानवधर्म है।

जैनेतर तत्त्वों व सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् व छन्दबद्धरूपी भाषाओं के ज्ञाता मुनिश्री चौथमल जी महाराज ने युगानुकूल विचार ही नहीं दिए, ५५ वर्षावासों की सुदीर्घ अवधि में व्यावहारिक-नैतिक विषयों पर हजारों गवेषणापूर्ण प्रवचन दिए। जब देश में राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चेतना का दौर था, दिवाकरजी महाराज ने भी सुप्त समाज को जाग्रत किया और मानवीय दृष्टि प्रदान की। उन्होंने समग्र मानव समाज के साथ समानता व भ्रातृत्व का भाव रखने का सन्देश दिया।

धार्मिक उदारता

जैन दिवाकरजी महाराज ने कभी किसी धर्म का खण्डन नहीं किया। इसी सहिष्णुता के कारण उनके व्याख्यानों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आर्यसमाजी समभावपूर्वक आनन्द लाभ करते थे। सच्चे धर्म का आदर्श बताते हुए आपने समता समाज का क्रान्तदर्शन किया—



"मनुष्य को धर्म मत-मतान्तरो के विवाद मे न फँसकर कर्तव्य-पालन की ओर लक्ष्य रखना चाहिए। धर्म का उच्च आदर्श तो आत्मोन्नति एव लोकसेवा है।"

"दीन-दुखियो का दुःख निवारण करना बहुत बडा धर्म है।"

"धर्म की आड लेकर द्वेप करना अपने धर्म को वदनाम करना है।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति भा०११, पृ० ९७

"धर्म के विशाल प्रागण मे किसी भी प्रकार की सकीर्णता व भिन्नता को अवकाश नही है।"

—तीर्थंकर चौ० ज० अक २९

—धर्म उसी का है जो उसका आचरण करता है।

—दि० दि० भा० १३, पृ० ९२

—धर्म वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नहीं होता।

—दि० दि० भा० १८, पृ० १८५

कितनी स्पष्ट, मधुर व विशाल दृष्टि थी दिवाकरजी महाराज की। वह भी परतन्त्रता के उस युग मे जहाँ दुहरी शासन सत्ता की मार के आगे जनता त्रस्त थी। किन्तु महामानव दिवाकर जी महाराज को तो एक नई भूमिका व नई प्रक्रिया मे मानव धर्म का सन्देश देना था। क्या जादू था उनकी वाणी मे—यह तो श्री आलिम हाफिज (सवाई माधोपुर) की आत्मा से पूछेँ क्योकि वह जैनत्व से ओतप्रोत था। उसने जैनधर्म स्वीकार कर अपना शेप जीवन तप पूर्वक व्यतीत किया था।

वम्वई (कादावाडी) के स्थानक के सम्मुख शोकाकुल मौलाना की ये वातें क्या पुरानी हो सकती हैं? जव उसे दिवाकरजी महाराज के स्वर्गवास की प्रथम सूचना वर्षों वाद मिली तो वह वोल उठा—

"या परवरदिगार! यह क्या हुआ? ऐसी रूहानी हस्ती हमसे जुदा हो गई। काश! उस सच्चे फकीर का दीदार मुझे नसीव हो जाता।"

दिवाकरजी महाराज किसके है? किसके नही? वे सवके है, सवके लिए हैं। जहाँ भेद की दीवारें ढह जाए, वही सच्चा धर्म है। ये क्षण परमानन्द के हैं।

धर्म के नाम पर विभेदक रेखाएँ न्यूनतम हो तभी धर्म-ज्योति का प्रकाश केन्द्रित होकर अधिक तेजी से प्रज्वलित होगा—यह मानते हुए एक नई दिशा दी दिवाकरजी ने—

"धर्मात्मा वनो, धर्मान्ध नही" —दि० दि० भा० ५, २३८

धर्म का स्वरूप, साधना प्रकार मे अन्तर होने पर भी एक ही रहता है।

—दि० दि० भा० २, पृ० १८८

समता का मसीहा

भारतीय सस्कृति की आधार-शिला त्याग, अहिंसा व समता पर टिकी हुई है। इसे सयम, ज्ञान, आचार का मिश्रण कर समतावादी दृष्टिकोण दिया दिवाकरजी महाराज ने। जैन दृष्टि मे समभाव वाला ही श्रमण है।[1] अत वर्ग-विहीन समता प्रधान समाज वनाने वाले दिवाकरजी महाराज सही अर्थ मे श्रमण थे। समाज-सेवा को समर्पित इस सत्यान्वेषी सन्त ने अपनी शक्ति,

---

१ समयाए समणो होइ।



पतितो, शोषितो, दीन-दु खियो व पीड़ितो की पीड़ा हरण करने मे केन्द्रित की। उनकी दृष्टि मे जैन-जैनेतर, अमीर-गरीव, राजे-महाराजे, ठाकुर-उमराव, खटीक, मोची, हरिजन, कलाल मे कोई भी भेद नहीं था। मानव मात्र की कल्याण भावना लेकर आप सर्वजन प्रिय वने।

उदयपुर का प्रसग है। जव लोगो ने कहा कि हमारे यहाँ ५०० घर है तो उन्होंने वडी गहराई से कहा—

"५०० घर के सिवाय जो लोग यहाँ वसते हैं, हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड के महाराणा तक वे सब हमारे हैं।"

—तीर्थंकर नव०, दिस० ७७।१०२

यही कारण है कि इनका सन्देश महलो मे हो या झोपडियो मे, गाँवो मे हो या नगरो मे—समान रूप से गु जायमान है। जीवन मे वास्तविक समता लाने का अथक प्रयास कर दिवाकरजी महाराज ने सिद्ध कर दिया कि आदमी केवल आदमी है।

लेकिन यह समभाव कहाँ से आयगा? यह तो आत्मानुभूति से सम्भव है। जव हमारी आत्मा यह समझ ले कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' ही समानता का आधार है तो फिर कहाँ है दु ख, कहाँ हैं भेद? उन्होने वताया—

"समभाव ही आत्मा के सुख का प्रधान कारण है। समभाव उत्पन्न हो जाने पर कठिन से कठिन कर्म भी सहज ही नष्ट हो जाते हैं।"[1]

"समता के शान्त सरोवर मे अवगाहन करने वाला अपने समभाव के यन्त्र से समस्त शब्दो को सम वना लेता है।"[2]

दिवाकरजी महाराज का समता रूपी मन्त्र इतना प्रभावशाली था कि जैन समाज मे वैमनस्य दूर हुए तथा सगठन व ऐक्यता का वातावरण वना। यही नही अनेक स्थानो पर अजैन समाज भी प्रभावित हुए विना न रह सका। कतिपय उदाहरण ज्ञातव्य हैं—

हमीरगढ मे ३६ वर्षों से हिन्दू छीपाओ मे पारस्परिक वैमनस्य था। आपके सदुपदेश से दो दलो मे माधुर्य का सचार हुआ और परस्पर मिलन भी।

गगरार व चित्तौडगढ के ब्राह्मण समाज मे जाति की तडें (दरारें) थी, जो मिटकर एकाकार हुए।

सक्षेप मे कहे तो दिवाकरजी महाराज ने एक मानस तैयार किया, जिससे लोगो की दृष्टि उदार वनी। एक-दूसरे के प्रति पक्षपात व द्वेष न हो एतदर्थ उनका सदेश विचारणीय है—

"पक्षपात पूर्ण मानस उचित-अनुचित का विवेक नही कर सकता।"

—दि० दि० भा० ५/८७

"द्वेषी का दिल कभी आकुलता-रहित नहीं होता।" —दि० दि० भा० ११/९३

"तुम दूसरे का बुरा चाहकर अपना ही बुरा कर सकते हो।"

—दि० दि० भा० ११/९६

मनुष्य, सर्वप्रथम मनुष्य

आज का मानव सभ्य, सुसस्कृत एव शिक्षित होते हुए भी स्वय को विस्मृत किये हुए है। वह अपना व दूसरों का परिचय ऊपरी तौर पर ही प्रस्तुत करता है जबकि आवश्यकता है अपने

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भा० १६, पृ० ५१

२ दिवाकर दिव्य ज्योति भा० २, पृ० २४०



को वास्तविक रूप मे समझने की। मनुष्य और कुछ बाद मे है, सर्वप्रथम तो वह मनुष्य ही है।

व्यक्ति समाज का एक अग है। यदि वह अपने आपको समाज स्रोत से नही जोड सके, अपने सवको समाज के रूप मे परिणित न कर सके, तो उसका कोई महत्व नही है। अत व्यक्ति का महत्व व अस्तित्व इस बात पर निर्भर है कि वह अपने स्व को समाज-हित के लिए कितना विराट् वना सकता है। यह विराट दृष्टि दिवाकरजी महाराज ने दी। जव मानव मानव ही है, तो उसमे भेद-भाव की रेखाएँ क्यो ?

सामाजिक समता के मन्त्रदाता श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने को उच्च वर्ग के मानने वालो को स्पष्ट शब्द मे वताया है कि—

"यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही है। इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो।"

—**'तीर्थंकर' चौथमलजी अंक** (तथा दि० दि० ११/६८), पृ० ३०

"जूतो को वगल मे दवा लेंगे, तीसरी श्रेणी के मुसाफिरखाने मे जूतो को सिरहाने रख कर तो सोयेंगे मगर चमार से घृणा करेंगे ?" यह क्या है ?

—**तीर्थंकर चौथ० विशे० ३१**

"भाइयो ! तुम्हें जातिगत द्वेष का परित्याग करके मनुष्य मात्र से प्रेम करना सीखना होगा। मानव मात्र को भाई समझ कर गले लगाना होगा।" —**दि० दि० ११/६६**

समता और व्यवहार

यदि समता की वात सिद्धान्त तक ही रहे और व्यवहार मे प्रकट न हो तो वह निरर्थक है। चूंकि सभी प्राणियो को सुख प्रिय है, कोई दुःख नही चाहता और सभी जीना चाहते हैं। परन्तु यह कैसे सम्भव है ? एक का सुख दूसरे का दुःख। यदि कोई इसीलिए दुखी है कि उसके पडौसी सुखी हैं तो इसका अन्त नही। अत होना चाहिए विषमता का।

व्यवहार मे समता से तात्पर्य यह है कि हम ऐसे कार्य नहीं करें जो किसी के लिए भय, दु.ख, क्लेश का कारण वने। यदि कोई शोषण करता है, अधिक लाभ हेतु अनुचित साधन प्रयोग करता है और कहे कि वह समता का उपासक है तो कौन इसे सत्य समझेगा ?

अतः नैतिक धरातल तैयार कर जैन दिवाकरजी महाराज इस ओर भी अभिमुख हुए। उन्होने बिना किसी लाग-लपेट के शोषण व मिलावट जैसे विषयो पर अपनी बातें स्पष्ट की। वे तो अपने जमाने से भी आगे थे। उनकी दृष्टि ही अनूठी थी—

"जो स्वामी अपने आश्रितो से लाभ उठाता है, किन्तु अपने समान नही वनाता, वह स्वार्थी है।"

—**दि० दि० ४, २५८**

"सच्चा श्रावक कभी अन्याय से धन कमाने की इच्छा नही करता।"

—**दि० दि० १-१६१**

"व्यापार को भी जनता की सेवा का साधन मानकर जो चले वही आदर्श व्यापारी है। ऐसा व्यापारी अनुचित मुनाफा नही लेता, चीजो मे मिलावट नही करता, धोखा नहीं देता।"

—**दि० दि० १६/२३१**



"मिलावट करना घोर अनैतिकता है।" —तीर्थंकर चौ० ज० विशेषांक, पृ० ३४

चूंकि अर्थ ही अनर्थ का मूल है, व्यक्ति अपनी नैतिकता को ताक मे रखकर अधिकाधिक लाभ की आशा मे लोभ की ओर वढता है। सच भी है लाभ लोभ को वढाता है। इस प्रवृत्ति की ओर इगित कर दिवाकरजी महाराज ने असख्य लोगो को नया प्रकाश दिया।

हृदय-परिवर्तन और समता

हिंसक, घूर्त, शिकारी और यहाँ तक कि कसाई, खटीक, भील आदि अपनी आसुरी वृत्तियाँ भूल गए इस दिवाकर के प्रकाश में। इसके मूल मे हमारे चरितनायक की वाणी का माधुर्य था जो सहसा अपनी ओर आकृष्ट कर लेता। आपने अनेक नरेशो को उद्‌वोधन दिया एव क्षेत्रीय परिसीमा मे हिंसा न हो ऐसे प्रयत्न ऐतदर्थ प्रस्तर-अकित लेख आज भी प्रमाण हैं।

कतिपय उदाहरण सिद्ध करते हैं कि दिवाकरजी महाराज ने अपने समता सिद्धान्त के वल पर हृदय-परिवर्तन की सफल प्रक्रिया अपनाई है। गगापुर (मेवाड) के मोचियो ने अपना जीवन ही वदल दिया था। सर्वश्री अमरचन्दजी, कस्तूरचन्दजी व तेजमलजी के नाम उल्लेख्य हैं जिन्होंने दुर्व्यसनो का त्याग कर शुद्ध जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया। पोटला ग्राम के मोचियो व रेगरो को सद्‌वोध देकर भी दिवाकरजी महाराज ने अभूतपूर्व कार्य किया। जब दृष्टि वदली तो जीवन ही वदल गया।

केसूर गाँव मे इकट्ठे होकर ६० गाँवो के चमार पचों ने मास-मदिरा का त्याग किया। यह आशातीत प्रयास था। उसी परम्परा मे अनेक उदाहरण सम्मुख है—

स १९८० इन्दौर के नजर मुहम्मद कसाई द्वारा हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा।
सवाई माधोपुर के खटीको द्वारा जघन्य कार्य वन्द किया गया।
स० १९६६ नाईग्राम (उदयपुर) मे ३-४ हजार भीलो द्वारा हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा।
स० १९८२ नन्दवास के भीलो द्वारा वन मे आग न लगाने की प्रतिज्ञा।
स० १९७० भीलवाडा—३५ खटीको द्वारा पैतृक धन्धे का त्याग।
यह था समता का प्रभाव और जादू।

सदाचार परिवर्तन मे समता

दिवाकरजी महाराज ने किसे प्रभावित नही किया ? समाज की नशो मे व्याप्त वेश्यावृत्ति पर प्रवचन दिये तो उनके जीवन मे सदाचार का प्रवर्तन हुआ।

सं १९६९—जहाजपुर

वेश्या-नृत्य के दोषो पर प्रकाश डाला तो वेश्याओ को आत्मग्लानि हुई और उन्होंने अपना व्यवसाय परिवर्तन कर दिया।

स० १९८० पाली

मगनी व वनी नामक दो वेश्याओ ने आजीवन शील पालन की प्रतिज्ञा की और सिणगारी ने एक पुरुषव्रत का सकल्प लिया। —जैन दिवाकर, पृ० १६६

यही हाल था जोधपुर मे। स० २००५ का वर्षावास। वहाँ की वेश्याओ (पातरियाँ) द्वारा अपने घृणित पेशे को तिलाजलि दी गई।

उपर्युक्त सक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि शताव्दी पुरुष जैन दिवाकरजी महाराज का समता-सरल प्रभाव डालने लगा था। उनके व्याख्यान श्रवण कर लाखो लोगो ने अपना जीवन वदला। समता-समाज की सच्ची तस्वीर वनाने वाला चितेरा पार्थिव रूप मे आज भले ही नही है, उनके उपदेश आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। आवश्यकता है हम इन पर आचरण करें।



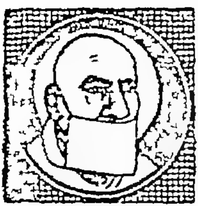
श्रमण-परम्परा में श्री जैन दिवाकरजी—महाराज का ज्योतिर्मय व्यक्तित्व

आचार्य राजकुमार जैन



आरम्भ मे ही भारतीय सस्कृति के मूल मे समानान्तर दो विचार-धाराएँ प्रवाहित होती रही हैं—एक वैदिक विचारधारा और दूसरी श्रमण विचारधारा। वैदिक विचारधारा ने भारत मे वैदिक संस्कृति को जन्म दिया तो श्रमण विचारधारा ने श्रमण सस्कृति के उद्भव मे अपनी प्रवृत्ति की उद्भावना की। श्रमण विचारधारा या श्रमण सस्कृति ने जहाँ आन्तरिक शुद्धि और सुख-शान्ति का मार्ग बतलाया, वहाँ ब्राह्मणो अथवा वैदिक सस्कृति ने बाह्य सुख-सुविधा और बाह्य शुद्धि को विशेष महत्त्व दिया। श्रमणो अथवा श्रमण-परम्परा ने जहाँ लोगो को निश्रेयस एव मोक्ष का मार्ग बतलाया ब्राह्मणो ने वहाँ लौकिक अभ्युदय के लिए विभिन्न उपाय अपनाकर लोगो का मार्ग-दर्शन किया। श्रमण विचार-धारा ने व्यक्तिगत रूप से जहाँ आत्म-कल्याण की भावना से लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया तथा "जिओ और जीने दो" के व्यावहारिक रूप मे विश्व को अहिंसा का सन्देश देकर प्राणिमात्र के प्रति समता-भाव का अपूर्व आदर्श जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया वहाँ दूसरी ओर ब्राह्मण वर्ग ने वर्ण-व्यवस्था के द्वारा न केवल समाज मे फैली अव्यवस्था अपितु विभिन्न सामाजिक विरोधो को दूर कर धार्मिक मान्यताओ एव क्रिया-कलापो को दृढमूल किया। श्रमण वर्ग सदा अपनी आत्मा का निरीक्षण करने के कारण अन्तर्दृष्टि बना रहा, जबकि ब्राह्मण वर्ग ने शरीर के संरक्षण एव पोषण को विशेष महत्त्व दिया। श्रमण सस्कृति जहाँ भौतिकता से स्वय को हटा कर आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करती रही, वहाँ वैदिक सस्कृति विविध क्रियाकाण्डो की ओर जन-सामान्य को आकृष्ट करती रही। श्रमण-परम्परा ने जहाँ अपने त्याग, तपश्चरण एव आत्म-सयम के द्वारा समाज के सम्मुख अनेक आदर्श उपस्थित किए वहाँ वैदिक सस्कृति से अनुप्राणित ब्राह्मण परम्परा अपने विधि-विधान के द्वारा समाज की गहरी परिरवा को आपूरित करती रही। जहाँ श्रमण विचार प्रवाह अपनी अहिंसक प्रवृत्तियो के द्वारा यथार्थ के धरातल को अभिसिंचित करता रहा, वहाँ ब्राह्मण समुदाय जीवन में कर्मकाण्ड की अनिवार्यता को निरूपित करते हुए व्यावहारिक कार्य-कलापो से जीवन को पूर्ण बनाता रहा। आत्मा और शरीर, आदर्श और विधान, ज्ञान और आचरण, सिद्धान्त और प्रयोग तथा निश्चय और व्यवहार के इस अभूतपूर्व सम्मेलन से ही भारत की सर्व लोक-कल्याणकारी संस्कृति का निर्माण हुआ है और इसी के परिणामस्वरूप इसे चिरन्तन स्थिरता प्राप्त हुई है।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि श्रमण-परम्परा ने अभ्युदय और निश्रेयस का मार्ग-प्रशस्त करने वाली जिस गरिमामय सस्कृति का निर्माण किया है उसने भारतीय जन-जीवन के मानसिक धरातल को इतना उन्नत बना दिया है कि आध्यात्मिकता उसके रोम-रोम मे व्याप्त हो गई है। इसी का यह परिणाम है कि चिरकाल तक जनमानस मे धार्मिक सहिष्णुता का भाव जाग्रत करने की आवश्यकता प्रतीत नही हुई अपितु वह तो स्वत ही लोगो के अन्त करण मे उद्भूत हुआ। श्रमण-परम्परा ने समाज और देश को आभ्यन्तरोन्मुख जिस मार्ग पर चलने की देशना और प्रेरणा दी उसका उद्देश्य अन्त मुखी प्रवृत्तियो को जाग्रत कर समाज को निवृत्ति की ओर प्रेरित करना था। श्रमण सस्कृति मे साधु और सन्तो की एक लम्बी परम्परा है जिसने अनुकरणीय आचरण



द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किए वे चिरकाल तक के लिए अक्षुण्ण और उपादेय वन गए। श्रमण वस्तुत: अपने ज्ञान और आचरण के द्वारा जन-मानस पर ऐसा अद्भुत प्रभाव डालते हैं कि उसे अपनी कुप्रवृत्तियाँ स्वत: ही घृणित प्रतीत होने लगती हैं। श्रमण की वाणी मे जो ओज पूर्ण एव तेजस्वी देशना होती है उसे क्षुद्र मानव मात्र का अन्त:करण अपनी प्रवृत्तियो के सन्दर्भ मे लेकर जब आत्मालोचन का प्रयास करता है तो स्वत: ही उसे अपनी हीनता और कलुषित वृत्तियो का अहसास होने लगता है। वह वास्तविकता के निकट पहुँचता जाता है और हेय और एव उपादेय का अन्तर स्पष्टत जानने व समझने लगता है। यही से उसके आचरण एव व्यवहार मे परिवर्तन आने लगता है। श्रमण का आचरण स्वत: ही मनुष्य को अनुकरण की प्रेरणा देता है, फिर यदि श्रमण की वाणी उपदेश रूप मे मुखरित होती है तो मनुष्य पर उसका प्रभाव क्यो नहीं पड़ेगा।

परम श्रद्धेय प्रात स्मरणीय श्री जैन दिवाकरजी महाराज श्रमण-परम्परा की उन दिव्य विभूतियो मे से एक हैं जिन्होने भगवान जिनेन्द्र देव के पथ का अनुसरण करते हुए मानव-कल्याण को ही अपने जीवन मे प्रमुखता दी। ज्ञान-साधना के द्वारा उन्होंने जहाँ अपनी आत्मा को उन्नत एव विकसित किया वहाँ अपने सदुपदेशो द्वारा उन्होंने अनेकानेक मनुष्यो को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग का अनुगामी वनाया। जिसे उन्होंने अपने जीवन मे उतारकर स्वत अनुभव किया। उसका ही उन्होने दूसरो को आचरण करने का उपदेश दिया। लोगो के मन-मस्तिष्क पर इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा और वुराइयाँ उनके जीवन से स्वत. ही दूर भागने लगी। मानव-जीवन मे वुराइयो का प्रवेश जितना सरल है उनको निकालना उतना ही दुष्कर है। किन्तु जिसने एक वार भी श्री जैन दिवाकरजी महाराज साहव का प्रवचन सुना उसके जीवन से वुराइयो का पलायन स्वत ही होने लगा।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज केवल समाज की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश की एक महान्, दिव्य एव अलौकिक विभूति थे। उनका व्यक्तित्व अभूतपूर्व था जिसमे अद्भुत सहज आकर्षण क्षमता थी। वे श्रमण सस्कृति के महान् उपासक, भारत वर्ष के एक असाधारण सन्त और विश्व के अद्वितीय ज्योतिपुंज थे। इस देश की जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने, जीवन को सादगी पूर्ण वनाने, विचारो मे उच्चता लाने और अहिंसा का प्रचार-प्रसार करने मे उन्होंने जो योगदान किया है वह असाधारण एव अविस्मरणीय है। उनकी असाधारण एव विलक्षण प्रतिभा ने न जाने कितने गिरे हुए लोगो को उठाया और उनके पथ-भ्रष्ट जीवन को उन्नत बनाया। उनकी सहज स्वाभाविक सरलता ने न जाने कितने कण्टकाकीर्ण जीवन को सरल और मधुर वनाकर जीवन मे पुष्पो की वर्षा की। अपने जीवन से हताश और निराश अनेक साधनहीन असहाय लोगो ने आप से प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त कर पुनर्जीवन प्राप्त किया। आपके उपदेश की एक विशेषता यह थी कि वह वर्ग विशेष के लिए न होकर जन-सामान्य के लिए था।

गुरुदेव एक महामना थे, उनका व्यक्तित्व अनोखा, प्रखर और कतिपय विशेषताओ से युक्त था। उनके विचार उन्नत और प्रगतिशील थे। विचारो की उच्चता, आचरण की शुद्धता, जीवन की सरलता और सादगी ने आपके व्यक्तित्व को प्रखर और वहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न वनाया। उनका हृदय इतना विशाल था कि विश्व के प्राणिमात्र के प्रति असीम करुणा का निवास उनके हृदय मे विद्यमान था। यह एक वस्तुस्थिति है कि जिन महापुरुषो के विशाल हृदय मे विद्यमान करुणा "स्व" से ऊपर उठकर "पर" तक पहुँच जाती है उसका जीवन लक्ष्य भी अधिक व्यापक एव उन्नत हो जाता है। उसकी करुणा समाज और देश के सीमा-वन्धन को लाघ कर विश्व के



प्राणिमात्र के प्रति असीम रूप से व्याप्त हो जाती है। पूज्य गुरुदेव की भी यही स्थिति थी। यही कारण था कि उनका जीवन ध्येय मात्र आत्म-कल्याण तक ही सीमित नही रहा और वह जन-कल्याण के साथ-साथ प्राणि कल्याण तक व्याप्त हो गया। विश्व की सम्पूर्ण मानवता उनकी कल्याण भावना की परिधि मे समाहित हो गई। मनुष्य मात्र मे उन्होंने कभी भेदभाव पूर्ण दृष्टि नही अपनाई। यही कारण है कि समाज के प्रत्येक वर्ग ने उनकी अमृतमयी वाणी का लाभ उठाया। उनके व्यापक दृष्टिकोण के कारण सकीर्णता, साम्प्रदायिकता एव सकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठकर वे सदैव जनमानस को आन्दोलित करते रहे और मानवीय मूल्यो को उनमे प्रतिष्ठापित करते रहे।

वे एक ऐसे महामानव थे जो सम्पूर्ण मानवता के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित थे। किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित होकर उन्होंने समाज के निम्न, पीडित, दलित और उपेक्षित वर्ग के लोगो के नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एव शैक्षिक उत्थान के लिए अपने सदुपदेश एवं आह्वान के द्वारा जो क्रान्तिकारी कार्य किए है, वे इतिहास के पृष्ठो मे चिरकाल तक सुवर्णाक्षराकित रहेंगे। उन्होने समाज की पीडित मानवता के तमसाच्छन्न पथ को अपने उपदेश-आलोक के द्वारा न केवल आलोकित किया, अपितु अन्यान्य बाधाओ के निराकरण मे अद्वितीय चमत्कार पूर्ण घटनाओ के द्वारा अपनी अन्त शक्ति का प्रयोग किया। उनके कार्यों मे सर्वत्र मानवीय शक्ति ही विद्यमान थी। कही दैवी शक्ति या अमानुष वृत्ति की झलक दिखाई नहीं दी। इससे उन्होंने यही सिद्ध किया कि मानवीय आन्तरिक शक्ति का विकास साधारण मनुष्य को भी सर्वोच्चता के शिखर पर आरूढ कर देता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि समस्त मानवीय प्रवृत्तियाँ सदाशय पूर्ण, सात्विकता युक्त एव सदिच्छा से प्रेरित हो। स्वार्थ का उनमें नितान्त अभाव हो और परिहित का उदात्त दृष्टिकोण उनमे समाहित हो। अज्ञान, मिथ्याज्ञान, अशिक्षा एव कुरीतियो से ग्रस्त जनमानस मे उन्होने अपनी ज्ञान-रश्मियो के द्वारा जो आलोक प्रसारित किया उसने न जाने कितने लोगो के जीवन मे क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन ला दिए। समाज के अविकसित कमलो के लिए वे सूर्य की भाँति एक अद्वितीय पुरुष थे। समाज को एक नई दिशा और आलोक दृष्टि देने के कारण जनता जनार्दन ने उन्हे "जैन दिवाकर" के नाम से सम्बोधित किया। सूर्य की भाँति अन्धकार दूर कर आलोक देने के कारण वे "दिवाकर" हुए और अहिंसामय सयम पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मार्ग निर्देश देने के कारण वे "जैन दिवाकर" कहलाए। जैन शब्द का प्रयोग सकुचित साम्प्रदायिक भाव मे न कर उसके व्यापक अभिप्राय मे करना ही अभीष्ट है। जन्मना ही कोई जैन नही होता, अपितु उत्कृष्ट कर्म, सयमपूर्ण जीवन और इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना ही "जैनत्व" का प्रतिपादक है।

भारत मे जैन आचार और विचार ने जिस सस्कृति विशेष को जन्म दिया वह सात्विकता, पवित्रता, शुद्धता एव दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण अतिश्रेष्ठ एव उन्नत मानी गई। उसने जन-सामान्य को जो दिशा दृष्टि प्रदान की उसमे मनुष्य आत्म-हित के द्वारा अक्षय सुख व शान्ति का अनुभव करने लगा। उस सस्कृति में ही जब श्रमण धर्म और उसके आचार-विचार का भी विश्लेषण पूर्वक अभिनिवेश हुआ तो चिरन्तन सत्य के रूप मे अभ्युदय एव निश्रेयसपरक वह सस्कृति 'श्रमण सस्कृति' के नाम से अभिहित हुई। श्रमण सस्कृति के स्वरूप निर्माण, अभ्युत्थान एव विकास मे श्रमणो एव श्रमण-परम्परा का जो अद्वितीय योगदान है उसे विस्मृत नही किया जा सकता। श्रमण शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करने की दृष्टि से कहा गया है—"**श्राम्यति तप क्लेश· सहते इति श्रमण·**।" अर्थात् जो स्वय तपश्चरण करता है, क्लेश को सहता है वह 'श्रमण' कहलाता है।



अतः श्रमण शब्द का अर्थ है सभी प्रकार के अन्तः बाह्य परिग्रह से रहित जैन साधु। श्रमण संस्कृति मे मानवता के वे उच्चतम आदर्श, आध्यात्मिकता के वे गूढ़तम रहस्यमय तत्व एवं आध्यात्मिकता के वे अकृत्रिम सिद्धान्त निहित हैं जो मानव-मात्र को चिन्तन स्तर की अनुभूति व साक्षात्कार कराते है। मानवता के हित साधन में अग्रणी होने के कारण यह वास्तव में सच्ची मानव संस्कृति है और इस मानव संस्कृति के अनुयायी, परिचालक, उद्घोषक एवं दिग्दर्शक रहे हैं हमारे प्रातः स्मरणीय गुरुदेव जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज साहब। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्री जैन दिवाकर जी ने श्रमण-धर्म, श्रमण-आचार-विचार एवं श्रमण-परम्परा का पूर्ण परिपालन एवं निर्वाह किया। अतः श्रमण-संस्कृति एवं श्रमण-परम्परा में उनका अद्वितीय स्थान है।

वर्तमान शताब्दी में श्रमण आचार-विचार का निष्ठा एवं विवेकपूर्वक परिपालन करने के कारण श्री जैन दिवाकरजी महाराज को श्रमण-परम्परा में विशिष्ट महत्त्वपूर्ण एवं अद्वितीय स्थान प्राप्त है। अतः यहाँ संक्षेप में श्रमण एवं श्रामण्य की चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। "श्रमणस्य भावः श्रामण्यम्" अर्थात् "श्रमण के भाव को ही श्रामण्य" कहते हैं। संसार के प्रति मोह-ममता, राग-द्वेष के भाव का पूर्णतः त्याग करना अथवा संसार के समस्त बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रहों से रहित होकर पूर्णतः सन्यास ग्रहण करना और संयमपूर्वक साधु-धर्म का अनुसरण करना ही "श्रामण्य" कहलाता है। इसमे किसी भी प्रकार के विकार के लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं है और आचरण की शुद्धता एवं अन्तःकरण की पवित्रता पूर्वक संयमाचरण को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार का अकृत्रिम एवं विशुद्ध आचरण करने वाला जैन साधु ही श्रमण होता है। इसके विशुद्धाचरण में बतलाया गया है कि वह पंच महाव्रतों का पालन एवं राग-द्वेषोत्पादक समस्त सांसारिक वृत्तियों का परित्यक्ता होता है। वह निष्कर्म भाव की साधना में पूर्ण एकाग्रचित्तपूर्वक आत्मचिन्तन में लीन रहता है। आडम्बरपूर्ण व्यवहार एवं क्रिया-कलापों का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं होता और वह आत्महित साधन के साथ मानवता के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित रहता है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज एक साधनारत महान् जैन साधु थे और पूर्ण निष्ठापूर्वक वे साधुवृत्ति का आचरण करते थे। इस दृष्टि से उन्होंने अपने जीवन में कभी शिथिलाचार नहीं आने दिया। अनेक बार उन्हे अपने जीवन मे भीषण परिस्थितियों एवं समस्याओं का सामना करना पडा। किन्तु वे न तो कभी विचलित हुए, न कभी घबडाये और न ही कभी अपने आचरण को रंचमात्र भी दूषित होने दिया। इस प्रकार वे सही मायने मे एक उच्चकोटि के साधक होने के कारण श्रमण थे। श्रमणत्व उनकी रग-रग मे व्याप्त था और श्रमण धर्म उनके आचरण मे झलकता था। जिन लोगो को उनके दर्शन-लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्होंने वास्तव में श्रमणत्व की एक जीती-जागती प्रतिमा के दर्शन किए हैं। कमल की भाँति सदैव खिला हुआ उनका मुखमण्डल उनके अभूतपूर्व सौम्य भाव को दर्शाता था। उनके चेहरे पर विद्यमान अद्वितीय तेज उनके साधनामय संयमपूर्ण जीवन का साक्षी था। उन्होंने अपने साधनामय जीवन के द्वारा एक सच्चे श्रमण का जो आदर्श उपस्थित किया है सुदीर्घकाल तक उसका उदाहरण मिलना सम्भव नहीं है। अपने हृदय की विशालता और उस विशाल हृदय मे व्याप्त मानवता के प्रति असीम करुणा का ऐसा विलक्षण धनी चिरकाल तक देखने को नहीं मिलेगा।

वे एक युग पुरुष थे और इसके साथ ही वे युग द्रष्टा भी थे। उन्होंने जीवन के यथार्थ के साथ ही मानवीय मूल्यो एवं वर्तमान मे हो रहे उसके ह्रास को भी समझा था। वे स्वयं अनुभव करते थे कि जीवन की जटिलताओ से घिरा हुआ निरीह मानव आज कितना हताश और अपने



स्वय के जीवन के प्रति कितना निराश है। उसके अन्धकारावृत्त मार्ग को प्रकाश पुज से आलोकित करने वाला कोई नही है। आज मनुष्य इतना स्वार्थान्ध हो रहा है कि स्वार्थ साधन के अतिरिक्त उसे और कुछ भी रुचिकर प्रतीत नहीं होता। ऐसी स्थिति मे परम करुणामय मानवता-सेवी सन्त पुरुष श्री जैन दिवाकरजी महाराज का अन्त करण भला कैसे चुप रहता। उन्होंने उस निरीह मानवता का पथ आलोकित करने का सकल्प किया और सर्वात्मना इस कार्य मे सलग्न हो गए। उनके कार्यक्षेत्र की यह विशेषता थी कि वे झोपडी से लेकर महलो तक पहुँचते थे। उनकी दृष्टि मे सभी मनुष्य समान थे और राजा-रक तथा धर्म-जाति का कोई भेद नही था। सभी को समताभावपूर्वक वीर वाणी का अमृतपान करा कर विना किसी भेदभाव के सन्मार्ग पर लगाने का दुरूह कार्य जिस निर्भयता और दृढता से मुनिश्री ने किया वह अलौकिक एव अविस्मरणीय है। इस वात के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं कि दु खियो, पीडितो, पतितो और शोषितो के वे सहज सखा थे। दलितो का उद्धार उनकी एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी और उनका कष्ट देखकर वे शीघ्र ही द्रवित हो जाते थे। मुनिश्री यद्यपि स्वय परिग्रह रहित एक साधु थे, किन्तु ज्ञान दान के द्वारा वे दुखियो के दु ख दूर करने का सहज पुरुषार्थ करते थे। उनके पुरुषार्थ मे एक विशेषता यह थी कि उसका तात्कालिक परिणाम दृष्टिगोचर होता था। उन्होंने धर्म-प्रचार हेतु जिस क्षेत्र को चुना उसमे पिछड़ापन अत्यधिक रूप से व्याप्त था और निम्न वर्ग के लोगो का ही उसमे अधिकाशत. निवास था। आदिवासियो के वीच भी उन्होंने अपने पुरुषार्थ को सार्थक वनाया और लोगो के जीवन-स्तर मे सुधार किया। उन्होंने उन लोगो को मनुष्य वनने और मनुष्य की भाँति जीने की प्रेरणा दी।

आत्म-साधना के पथ पर आरूढ होकर निरन्तर पाँच महाव्रतो का अखण्ड रूप से पालन करने वाला, दस धर्मों का सतत अनुचिन्तन, मनन और अनुशीलन करने वाला वाईस परीषहजय तथा रत्नत्रय को धारण करने वाला शुद्ध परिणामी, सरल स्वभावी अपनी अन्तर्मुखी दृष्टि से आत्म-साक्षात्कार हेतु प्रयत्नशील तथा श्रमणधर्म को धारण करने वाला साधु ही श्रमण कहलाता है और निज स्वरूपाचरण मे प्रमाद नही होना उसका श्रामण्य है। श्रमण सदैव राग-द्वेष आदि विकार भावो से दूर रहता है। क्योकि ये विकार भाव ही मोह-ममता एव कटुता-ईर्ष्या के मूल कारण हैं जिनसे सासारिक वन्धन होने के साथ ही जीवन मे पारस्परिक कलह एव लडाई-झगडा की सम्भावनाओ-घटनाओ को प्रोत्साहन मिलता है। उपर्युक्त विकार भावो से श्रमण की आत्म-साधना मे निरन्तर वाधा उत्पन्न होती है और वह अपने लक्ष्य एव मन्तव्य-पथ से विचलित हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध-मान माया-लोभ ये चार कषाय मनुष्य को सासारिक वन्धनो मे वाँधने वाले तथा अनेक प्रकार के दु खो को उत्पन्न करने वाले मुख्य मनोविकार हैं। आत्म-स्वरूपान्वेषी साधक श्रमण सदैव इन कषायो का परिहार करता है, ताकि वह अपनी साधना एव लक्ष्य साधन के पथ से विचलित न हो सके। चचलमन और विषयाभिमुख इन्द्रियो के पूर्ण नियन्त्रण पर ही श्रमण साधना निर्भर है। आत्म-साधक श्रमण के श्रामण्य की रक्षा के लिए उपर्युक्त राग-द्वेष आदि विकार भाव तथा क्रोध आदि चार कषायो का परिहार करते हुए इन्द्रियो का तथा मन का नियमन नितान्त आवश्यक है।

श्रमण के जीवन मे सयम एव तपश्चरण के आचरण का विशेष महत्व है। उसका सयम पूर्ण जीवन उसे सासारिक वृत्तियो की ओर अभिमुख होने से रोकता है और तपश्चरण उसकी कर्म-निर्जरा मे सहायक होता है। सयम के विना वह तपश्चरण की ओर अभिमुख नहीं हो सकता और तपश्चरण के विना उसकी मुक्ति सम्भव नही है। ऐसी स्थिति मे मोक्ष प्राप्ति हेतु आत्म-



साधन का उसका ध्येय अपूर्ण रह जाता है। अत. यह सुनिश्चित है कि संयम धर्म का पालन तपश्चरण का अनुपूरक है। इस विषय मे आचार्यो ने तप की जो व्याख्या की है वह महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। आचार्य उमास्वामी के अनुसार, "इच्छानिरोधो तप"—अर्थात् इच्छाओ का निरोध करना तप कहलाता है। तप का यह लक्षण सयम और तप के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। क्योकि इच्छाएँ और वासनाएँ इन्द्रिय जनित होती हैं। उनका विरोध करना ही संयम कहलाता है और तत्पूर्वक या उसके सान्निध्य से विहित क्रिया विशेष ही तपश्चरण है।

मनुष्य की सभी इन्द्रियाँ भौतिक होती हैं, अत उन इन्द्रियो से जनित इच्छाओ और वासनाओ की अभिव्यक्ति सासारिक व भौतिक क्षणिक सुखो के लिए होती है। उन इच्छाओ और वासनाओ को रोक कर इन्द्रियो को स्वाधीन करना, ससार के प्रति विमुखता तथा चित्तवृत्ति की एकाग्रता ही सयम का बोधक है। इस प्रकार के सयम का चरम विकास मनुष्य के मुनित्व जीवन मे ही सम्भावित है। अत सयम पूर्ण मुनित्व जीवन ही श्रामण्य का द्योतक है।

श्रमण-परम्परा के अनुसार आपेक्षिक दृष्टि से गृहस्थ को निम्न एव श्रमण को उच्च स्थान प्राप्त है। किन्तु साधनो के क्षेत्र मे निम्नोच्च की कल्पना को किंचिन्मात्र भी प्रश्रय नही दिया गया है। वहाँ सयम की ही प्रधानता है। इस विषय मे उत्तराध्ययन मे भगवान के निम्न वचन मननीय एव अनुकरणीय है—अनेक गृहत्यागी भिक्षुओ की अपेक्षा कुछ गृहस्थो का सयम प्रधान है।" इस प्रकार एक श्रमण मे सयमपूर्ण साधना को ही विशेष महत्व दिया गया है। श्रमण-परम्परा के अनुसार मोह रहित व्यक्ति गाँव मे भी साधना कर सकता है और अरण्य मे भी। कोरे वेश परिवर्तन को श्रमण-परम्परा कब महत्व देती है? साधना के लिए मात्र गृहत्याग या मुनिवेश ही पर्याप्त नही है, अपितु तदनुकूल विशिष्टाचरण भी महत्वपूर्ण है एव अपेक्षित है। अपने विशिष्टाचरण एव आसक्ति रहित त्याग भावना के कारण ही श्रमण को सदैव गृहस्थ की अपेक्षा उच्च एव विशिष्ट माना गया है।

इस प्रकार के श्रामण्य के प्रति उदात्तचेता एव धर्म-सहिष्णु पूज्यवर श्री चौथमलजी महाराज का तीव्र आकर्षण प्रारम्भ से ही रहा है। श्रमण धर्म के प्रति उनके हृदय मे शुरू से ही गहरी आस्था थी और अन्तत वे उस पथ के अनुयायी बने रहे। उनके व्यक्तित्व मे एक विलक्षण प्रतिभा थी, जो उन्हें हिताहित विवेकपूर्वक कर्त्तव्य बोध कराती रहती थी। अत विवाहोपरान्त जब उनका आत्म-विवेक जाग्रत हुआ तो सर्वप्रथम उन्होंने अपनी माता से जिन-दीक्षा लेने की अनुमति लेनी चाही। माता को अपने पुत्र मे वैराग्य भाव की प्रबलता देख कर पहले तो हर्ष हुआ किन्तु वे चाहती थीं कुछ काल और वैवाहिक जीवन का सुखोपभोग करने के उपरान्त यदि वह वैराग्य लेता है तो अधिक अच्छा है। लेकिन वैराग्योन्मुखी पुत्र के दृढ़ निश्चय के सामने माता की एक नही चली और अन्तत. उन्हें अनुमति देनी पड़ी। उनके वैराग्य धारण करने और जिन दीक्षा लेने का समाचार त्वरित रूप से समाज मे फैल गया। कुछ तथाकथित बुद्धिजीवियो ने जो स्वय को समाज के कर्णधार मानते थे। इसे केवल भावना मे बह जाना मात्र समझा और उनके निकट आकर बोले—"हमे मालूम हुआ है कि तुम जैन साधु बनने जा रहे हो। क्या जैन साधु बनने मे ही अपना हित और कल्याण समझते हो? हमारी समझ मे साधु-जीवन बिताना भारी भूल है। आज जबकि पैसा, परिवार और पत्नी के लिए दुनिया मिट रही है, तुम इन्हें छोड़ना चाहते हो। तुम्हे तो सहज में ही सभी सामग्री प्राप्त हुई है। फिर उसे इस प्रकार छोड़ना कौन-सी बुद्धिमानी है?



भोग किए बिना प्राप्त सामग्री का परित्याग कर स्वर्ग पाने की अभिलाषा मे तुम भटक रहे हो, वास्तव मे तुम गलत मार्ग का अनुसरण कर रहे हो। मित्रता के नाते हमारी तो सीधी व साफ राय है कि तुम दीक्षा लेने का विचार त्याग दो।"

इसके प्रत्युत्तर मे वैराग्योन्मुखी श्री चौथमलजी ने कहा—"मेरी समझ मे नही आ रहा है कि जब धर्माचरण को गलत मान लिया जाता है, तो बताइये श्रेष्ठ मार्ग फिर कौन-सा है ? क्या व्यसन, दुराचरण, लूट-खसोट, छल-कपट, धोखा-धडी बेईमानी का मार्ग अपनाना अच्छा है ? आपकी दृष्टि में साधु बनकर 'स्व-पर' का कल्याण करना बुरा है, तो क्या मैं दुराचारी, लपटी, झूठा और ठग बन कर जीऊँ ? ब्रह्मचारी और परमार्थी बनकर जीने की अपेक्षा आपकी दृष्टि मे ससार की वृद्धि और स्वार्थ का पोषण करना अधिक अच्छा है। मेरी समझ मे आप लोगो को अपने विचारो की शुद्धि करनी चाहिए। ऐसे मलिन विचारो के लिए मेरे जीवन मे कोई स्थान नही है।"

वैराग्यानन्दी आत्म-साधनोन्मुख श्री चौथमलजी के मुख से इस प्रकार स्पष्ट उत्तर सुनकर वे सभी लोग निरुत्तर हो गये और भीगी बिल्ली की तरह वहाँ से खिसक लिए।

इस प्रकार वे श्रामण्य-पथ की ओर उन्मुख और कालान्तर मे उस पर अग्रसर हुए। यद्यपि असाधारण विलक्षण प्रतिभा तो उनमे प्रारम्भ से ही विद्यमान थी, सुप्रसिद्ध सत श्री हीरालालजी महाराज साहब का शिष्यत्व स्वीकार कर श्रमण धर्म को अगीकार करने एव सक्रिय आत्म-साधना-पूर्वक स्व तथा पर कल्याण के प्रति अपना जीवन सदा-सर्वदा के लिए अर्पित करने के उपरान्त उस प्रतिभा मे और अधिक असाधारणता एव विलक्षणता उत्पन्न हो गयी। आपका तेजस्वी व्यक्तित्व और भी अधिक प्रखर हो गया और आपका सन्देश जन-जन तक पहुँचकर उन्हे सन्मार्ग पर अग्रसर करने लगा। उन्होने वस्तुत' धर्म के मर्म को समझा और उसे सर्वजन सुलभ कराया। आज के युग मे जबकि लोगो को धार्मिक उपदेशो से अरुचि होती है, आपके उपदेशों में इतना तीव्राकर्षण होता था कि सहस्रो लोग अनायास ही खिचे चले आते थे। आपके उपदेश इतने सुरुचिपूर्ण, सारगर्भित और मानस को आन्दोलित करने वाले होते थे कि सुदीर्घकाल तक उनकी छाप मानस-पटल पर अंकित रहती थी। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिले हैं जो आपके उपदेशों की प्रभावकारिता को सुस्पष्ट करते हैं। व्यसनरत, कुमार्गगामी और भ्रष्ट आचरण वाले अनेक व्यक्ति आपके प्रभाव-पूर्ण सुदुपदेशो से प्रभावित हुए। आपके उपदेशो ने उन लोगो को ऐसा प्रभावित किया कि सहज ही उनका हृदय परिवर्तन हो गया और आजीवन उन्होंने सदाचरण की प्रतिज्ञा ली। शराबियो ने शराब छोडी, जुआरियो ने जुआ खेलना छोडा, डाकुओ ने अपने कार्यों पर पश्चात्ताप किया। इस प्रकार हृदय-परिवर्तन की अनेक घटनाओ के उदाहरण हमारे सामने हैं।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज स्थानकवासी थे और स्थानकवासी समाज मे उनकी लोक-प्रियता अद्वितीय थी। तथापि यह एक निर्विवाद तथ्य है कि वे समताभाव की एक जाग्रत मूर्ति और समन्वयवादी महान् सन्त थे। यह सच है कि उनकी दीक्षा स्थानकवासी सघ मे हुई थी, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र केवल स्थानकवासी समाज तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु सम्पूर्ण जैन समाज को उन्होंने अपने आह्वान और सन्देश का लक्ष्य बनाया। वे एक उदार दृष्टिकोण के सरल स्वभावी उदात्तचेता साधु थे। यह उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण का ही परिणाम था कि लगभग २७ वर्ष पूर्व कोटा (राजस्थान) मे भिन्न-भिन्न विचारधारा एव सम्प्रदाय के साधु मुनिराज एक ही मच पर



आसीन हुए। वह वास्तव मे एक आह्लादकारी अद्भुत दृश्य था। मुनिश्री श्रमण-धारा के एक तेजस्वी साधक थे जो सर्वतोभावेन मानवीय मूल्यो एव उच्चादर्शो के प्रति समर्पित थे। अहिंसामूलक उनकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ मानवीय हित साधन हेतु समता भावपूर्वक होती थी। उन्होंने ऊँच-नीच मे भेद-भाव न रखते हुए सभी वर्गों के लोगो मे समान रूप से भगवान महावीर की अमृतवाणी और श्रमण धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार किया। उन्होंने समाज में घृणास्पद समझे जाने वाले मोची, चमार, कलाल, खटीक आदि निम्न जाति के लोगो तक अपना सन्देश पहुँचाया तथा उन्हे शराब, गाजा, भाग, तम्बाकू आदि के व्यसन से छुटकारा दिलाकर मास-भक्षण और जीवहिंसा न करने की प्रेरणा दी। उन्होंने उन लोगो के जीवनस्तर को उन्नत बनाने और समाज मे स्वाभिमानपूर्ण प्रतिष्ठित स्थान दिलाने के लिए जो भगीरथ प्रयास किया वह इतिहास के पृष्ठो मे स्वर्णाक्षरांकित रहेगा। आपके पावन सन्देश एव उपदेश से प्रेरणा लेने वालो मे वेश्यावृत्ति त्यागने वाली महिलाओ का भी एक वर्ग है।

आप श्रमण परम्परा के एक ऐसे सूर्य हैं जिसने समाज को आलोक दिया, दिशा दृष्टि प्रदान की और अपने सत्साहित्य के द्वारा प्रेरणाप्रद सन्देश दिया। विभिन्न स्थानो पर आयोजित अपने चातुर्मास काल मे उन्होंने अपने सदुपदेशो के माध्यम से असख्य लोगो का उद्धार किया। उनका जीवन इतना सयत, सदाचारपूर्ण एव आडम्बरविहीन रहा कि उसने प्राय- सभी को प्रभावित किया। उन्होंने अहिंसा आदि का पालन इतनी सूक्ष्मता एव सावधानी से किया कि उसे देखकर लोगो को आश्चर्य होता था। उनके व्रत-नियम कठोर होते हुए भी उदात्त थे। वे यद्यपि वाक्पटु थे और उनकी वाणी एव वक्तृत्व शैली मे गजब का सम्मोहन था, फिर भी उनकी वक्तृता मे वाक्पटुता की अपेक्षा जीवन का यथार्थ ही अधिक छलकता था। एक ओर जीवन को ऊँचा उठाने वाला और नैतिकता का बोध कराने वाला उनका सन्देश और दूसरी ओर उनका अनुकरणीय आदर्शमय जीवन लोगो के हृदय पर गजब का प्रभाव डालता था। श्रमण सूर्य—श्री जैन दिवाकरजी की जीवनी एव उनके जीवन के प्रेरक पावन प्रसगो को पढने से उनकी प्रवचन शक्ति एव आकर्षण युक्त अद्भुत व्यक्तित्व का बोध तो सहज ही हो जाता है। मांस-मदिरा जैसे दुर्व्यसनो मे फँसे हुए सैंकडो-हजारो लोगो ने उनकी जादू भरी दिव्य वाणी से प्रभावित होकर सदा के लिए उन व्यसनो को छोड दिया—यह कोई साधारण बात नही है। जैन लोग यदि उनकी ओर आकृष्ट होते हैं तो इतना आश्चर्य नहीं होता, किन्तु जैनेतर जन उनके प्रभावशाली चुम्बकीय आकर्षण से खिंचकर उनकी बात सुनता है और उस पर आचरण करता है तो सहज ही आश्चर्य होता है। यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि तत्कालीन अनेक राजा-महाराजा उनके चरणो मे नतमस्तक हुए और उन्होने अपनी रियासतो मे जीवहिंसा निषेध के आदेश जारी किये। इस प्रकार उनके प्रभाव से अनेकानेक निरीह पशु-पक्षियों को अभयदान मिला। उन्होंने मानव जाति के नैतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक उत्थान के लिए दिव्यता विभूषित एक देव दूत की भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने प्राणिमात्र की जो सेवा की है वह अविस्मरणीय है। हम चिरकाल तक उनके जीवन से, जो स्वयं ही एक दिव्य सन्देश है प्रेरणा लेते रहेगे और सन्मार्ग पर चलने का उपक्रम करेंगे। उनका पावन सन्देश एव अलौकिक ज्योति-पुज शताब्दियो तक हमारा पथ प्रदर्शन करता रहेगा।

ऐसी अमर विभूति हमारे लिए सदा सर्वदा वन्दनीय है। उनके चरणो मे शतश वन्दनपूर्वक हमारा नमन है।





पीड़ित मानवता के मसीहा श्री जैन दिवाकरजी

—श्री राजीव प्रचडिया बी० ए०, एल-एल० बी०
(अलीगढ)

भारतवर्ष सन्तो का देश है। सन्त-परम्परा अर्वाचीन नही है। इस परम्परा का आदिम रूप प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतो मे आज भी सुरक्षित है। सतो की वाणी गगाजल की तरह पवित्र तथा जल प्रवाह की भाँति गत्यात्मक है। ठहराव का परिणाम गदगी तज्जन्य दुर्गन्ध है जबकि वहाव मे सातत्य गति तथा निर्मलता है। मनुष्य को मनुष्य की भूमिका मे वापिस ले आते है वे वस्तुत सन्त कहलाते हैं।[1] सन्त व्यक्ति को अज्ञान से ज्ञान के धरातल पर ले जाने मे सक्षम होता है। प्रश्न है—ज्ञान क्या ? "ज्ञायते अनेन् इति ज्ञान" अर्थात् जिससे जाना जाय वह ज्ञान है। प्रत्येक क्षण मे ज्ञान विद्यमान रहता है और ज्ञान को जानने वाला व्यक्ति सचमुच ज्ञानी कहलाता है, पडित कहलाता है। आचारागसूत्र के अनुसार—'खण जाणाई पडिए' अर्थात् जो क्षण को जानता है, वह पडित है, सन्त है और महान् है।

सन्त-परम्परा मे जैन सन्त का अपना अलग स्थान है। उनकी दैनिकचर्या दूसरे सन्तो से सर्वथा भिन्न है। उनकी अपनी एक जीवन शैली है। इसी से ये जन-जन मे समादृत है। जैन सन्त सदैव पद-यात्री होते हैं। वर्षाऋतु के चार महीने एक स्थान पर जिसे चातुर्मास या वर्षावास कहा जाता है। इस अवधि मे उनके तत्त्वावधान मे धर्म की प्रभावना हुआ करती है। ये मूलत अपरिग्रही और गुणो के उपासक होते है। उनके सदाचरण से समाज मे सत्य अहिंसा जैसे उदात्त गुणो का सचार हुआ करता है। फलस्वरूप—पाँच पाप—काम, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि से सामाजिक विशुद्ध रहता है।

श्रमण-परम्परा अर्थात् जैन-परम्परा की सन्त शृ खला मे जैन दिवाकर पूज्य श्री चौथमल जी महाराज का स्थान शीर्षस्थ है। तर्कणा-शक्ति के मनीषी मधुकर मुनि जी महाराज के शब्दो मे—"जैन दिवाकरजी महाराज सच्चे वक्ता थे, वाग्मी थे।" उनकी कथनी और करनी एक रूपा थी, अस्तु उनकी वाणी मे वल था, प्रभाव था और था ओज। गीता मे स्पष्ट लिखा है कि "जीवन के सिद्धान्तो को व्यवहार मे लाने की जो कला या युक्ति है, उसी को योग कहते हैं।" श्री जैन दिवाकरजी महाराज इस वात से सुपरिचित थे। वे योग-विद्या मे पारगत थे। वे *'यथा नाम तथा गुण'* थे। वे सचमुच बे-नजीर थे। समभावी थे, सम्यगदृष्टि जीव थे। श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री के शब्दो मे, "वे कैंची नहीं, सुई थे, जिनमे चुभन थी, किन्तु दो दिलो को जोडने की अपूर्व क्षमता थी।" समाज को सकीर्णता से अकीर्णता की ओर ले जाने मे सचमुच जगद्वल्लभ जैन दिवाकर जी महाराज ने अपना सारा जीवन खपा दिया है। वे अपने लिए नही, सदैव दूसरो के लिए जिए। वे सचमुच दिवाकर थे। सूर्य की रश्मियाँ ससार को प्रतिदिन एक नया जीवन देती हैं, स्फूर्ति उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज ने समाज को एक नई चेतना दी है, जागृति दी है।

समाज का यदि विस्तार से अध्ययन किया जाय तो समाज को मूलत दो वर्गों मे वर्गीकृत किया जा सकता है। एक तो उच्चस्तरीय समाज और दूसरा निम्नस्तरीय समाज। उच्च समाज से

१—तीर्थङ्कर, सम्पादक—डॉ० नेमीचन्द्र, नवम्बर-दिसम्बर ७७, पृष्ठ ७।



तात्पर्य है सवर्णजाति का समुदाय और निम्नस्तरीय जाति मे अभिप्राय है निम्न वर्ण का वर्ग, अन्त्यज समाज अर्थात् भील, आदिवासी, हरिजन, चमार, मोची, कलाल, खटीक, वेश्याएँ आदि का वर्ग। जब उच्च समाज गर्त की ओर जाने लगता है, धर्म से विमुख हो जाता है, हिंसा, मास, मद्यसेवन, दुराचार आदि दुर्व्यसनो मे फँस जाता है, तब वह सहज ही पतित समाज की सज्ञा पा जाता है। दोनो समाजो के उत्कर्ष के लिए श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने स्थान-स्थान पर जाकर दिव्य-देशना दी, उन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराया। जो कार्य राजनीतिक दल करने मे प्राय असफल रहे है, वह कार्य जैन दिवाकरजी महाराज ने अपनी वाक्-पटुता से अपने चारित्र्य से अन्त्यज तथा पतित दोनो समाजो को सुधारने का प्रशसनीय प्रयास किया और वे उसमे काफी सीमा तक सफल हुए। वास्तव मे वे सच्चे समाज सुधारक थे, अन्त्योद्धारक तथा पतितोद्धारक थे। पूज्य दिवाकरजी महाराज एक मे अनेक थे। अद्भुत थे।

वाणी के जादूगर श्री जैन दिवाकरजी महाराज मानव-हृदय के पक्के पारखी थे। करुणा और दया से उनका हृदय सदा आप्लावित रहता था। तभी तो भीलो के हृदय मे महाराजश्री के वक्तव्य को सुनकर व्याप्त हिंसा की भावना अहिंसा मे परिवर्तित हो गई। मास-मदिरा आदि पाँच मकारो को चोरी, डकैती, हत्या, परस्त्री अपहरण आदि को त्यागना भीलो ने सहर्ष स्वीकार किया। राजस्थान मे स्थित नाई गाँव मे भील जाति ने महाराजश्री से निवेदन किया—"महाराज श्री! हम लोग हिंसा-त्याग की प्रतिज्ञा लेने को तत्पर है, किन्तु हमारी विनय है कि यहाँ के महाजन भी न्यूनाधिक तोलने की प्रवृत्ति का त्याग करें।[1]

महाजनो ने भी बात स्वीकार की। महाराज श्री के सत्सग और वाणी की प्रभावना से तत्क्षेत्रीय भील-समूह मे जीवन्त परिवर्तन हुए।

यह कथन अपने मे सत्य है कि 'वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि होती है।' जैसा चारित्र्य होता है—व्यक्ति मे, वैसी ही उसकी वाणी मुखरित होती है, जो प्रभावशाली, जन-कल्याणकारी होती है। ऐसी ही कुछ बातें श्री जैन दिवाकरजी महाराज मे देखने को मिलती है। जो वे कहते हैं, करते हैं अस्तु, उनका प्रभाव जन-जन मे पडता है, तभी तो मध्य प्रदेश के अन्तर्गत पिपलिया गाँव मे अपने वक्तव्य से लगभग ४०० से अधिक खटीको[2] को मदिरा का त्याग कराने मे आप सफल हो सके। आपने मदिरा के दुर्गुणो को इस प्रकार से बताया कि व्याख्यान सभा मे उपस्थित खटीक समुदाय ने उसी समय शराब न पीने का दृढ सकल्प किया। वस्तुत यह बडी बात है।

नारी का अनमोल गहना उसका शील होता है। दोहापाहुड मे स्पष्ट कहा है—**'शीलं मोक्खस्स सोवाण'**—अर्थात शील ही मोक्ष का सोपान है। शील के अभाव मे कोई भी नारी पनप नही सकती है। उसका विकास नहीं हो सकता है। नारी का नारीत्व शील सयम पर निर्भर करता है। समाज का अपकर्ष और उत्कर्ष नारी पर निर्भर है, क्योकि नारी समाज का एक अभिन्न अग है। पतित नारी अथवा वेश्या-समुदाय, समाज को रसातल पर ले जाती है। वस्तुत ऐसी नारी का जीवन भोग का जीवन होता है, योग का नही। उसका अपना कोई अस्तित्व नही होता है, वह दूसरो के सकेत पर कठपुतली की भाँति अपना जीवनयापन करती है। अस्तु वेश्याओ को समाप्त

---

१ जैन दिवाकर, कविरत्न श्री केवलमुनि, पृष्ठ १६१।
२ जैन दिवाकर, श्री केवलमुनि, पृष्ठ १६४।



करने की अपेक्षा वेश्यावृत्ति को दूर करने का दृढ सकल्प आपने किया और पाली, राजस्थान मे सवत् १९८० मे आपके ओजस्वी वक्तव्यो से प्रभावित होकर 'मगनी' और 'बनी' नामक वेश्याओ ने आपके समक्ष आजीवन शीलव्रत पालने की प्रतिज्ञा की तथा 'सिणगारी' नामक वेश्या ने तो एक पुरुषव्रत का सकल्प लिया।[१] सचमुच जगद्वल्लभ श्री दिवाकरजी महाराज का यह कार्य ऐतिहासिक है।

गिरे वातावरण को ऊपर उठाने में महाराजश्री ने स्थान-स्थान पर जाकर लोगो को प्रभाव पूर्ण तथा रोचक दृष्टान्तो के माध्यम से उनके अदर सुप्त भावनाओ को जागृत किया। जीने की कला दी। सच्चे सुख का मार्ग बताया। सचमुच वे सच्चे अर्थो मे क्रातिकारी थे और थे एकता-समता के जागरूक प्रहरी। उन्होने ऊँच-नीच के भेद-भाव की अन्तर रेखा को समाप्त करने का अथक प्रयत्न किया। उनके वक्तव्य से प्रभावित होकर मोची समाज के श्री अमरचन्द्रजी, कस्तूरचन्द्रजी तेजमलजी आदि कई परिवारो ने शराब, जीवहिंसा, माँस आदि दुर्व्यसनो का त्याग करके जैनधर्म को अगीकार किया।[२]

अनेक उदाहरण सामने आते है, जहां पर व्यक्ति महाराजश्री के सम्पर्क मे आते ही धर्ममय हो जाते थे, धार्मिक बन जाते थे क्योकि महाराजश्री स्वय जीते-जागते धर्मालय थे। मानस-पटल पर पडे अज्ञानरूपी पर्दे जीर्ण-शीर्ण हो जाते थे। निश्चित ही यह दिवाकरजी महाराज की थी—अद्भुत तेजस्विता और व्याप्त उनमे ओजस्विता।

सवत् १९८० मे महाराज श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास मध्यप्रदेश मे स्थित इन्दौर नगरी मे होना सुनिश्चित हुआ था। व्याख्यानस्थली मे महाराजश्री का 'जीव-दया' पर सुन्दर, रोचक ढग से प्रभावशाली प्रवचन हो रहा था। उनकी प्रवचन शैली से आकर्षित होकर नजर मुहम्मद कसाई ने प्रवचन मे ही खडे होकर अपने निम्न उद्गार व्यक्त किए हैं—"मैं इस भरी सभा मे कुराने-शरीफ की साक्षी मे प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से ही कभी भी, किसी भी जीव की हिंसा नही करूँगा।"[३] इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि महाराजश्री की वक्तव्य शैली कितनी मधुर थी। सचमुच उनकी वाणी मे ज्ञान की गोमती प्रवाहित थी और थी मिश्री की सी मिठास।

"उपदेश देना सरल है, उपाय बताना कठिन है" यह कथन कवीन्द्र रवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ जी टैगोर का निश्चित ही किसी सीमा तक सार्थक है, सही भी है। जैसा कि आज प्राय देखा जाता है कि वक्ता अपने अच्छे-अच्छे शब्दो के गठन से तथा सुदर वाक्याञ्जलि से कथाओ-विकथाओ के माध्यम से श्रोतृ मण्डली को मत्र-मुग्ध तो कर देता है, किन्तु अन्ततोगत्वा वह सब निरर्थक होता है। ऐसे वक्तव्य से श्रोता, जैसा वक्तव्य मे पूर्व था वैसा ही बाद मे रहता है अर्थात् नितान्त कोरा। उसके हाथ कुछ नहीं आता। वास्तव मे चित्त की मलीनता ही व्यक्ति को मैला करती है, उसकी वाणी को निष्प्रभाव बनाती हैं। निश्चय ही सच्चे सन्त का शक्ति-औजार उसकी वाणी हुआ करती है जो किसी शक्तिशाली को धराशायी कर सकती है। ऐसे ही सन्त श्री जैन दिवाकरजी महाराज थे। उनकी सबसे बडी विशेषता थी कि वे अपनी वक्तृत्व कला मे इतने निष्णात थे कि वे उपदेश के

---

१ जैन दिवाकर, श्री केवलमुनि जी, पृष्ठ ६६।

२ वही, पृ० १६७।

३ जैन दिवाकर, श्री केवलमुनि, पृष्ठ १७१।



साथ-साथ व्यक्ति मे समाहित अमानवीय तत्त्वो से बचने के उपाय का मार्ग भी बताते थे। कोरी कथाओ का उनमे अभाव था, जो कुछ वे कहते उसके पीछे उनका जीवन-अनुभव होता था।

जैन दिवाकर महाराज श्री प्राय प्रचलित ज्वलन्त समस्याओ पर अपना सरल किन्तु सरसता से ओत-प्रोत शैली मे वक्तव्य दिया करते थे। वे जन-जन मे धर्म की बातो को बताते थे, साथ ही उन पर अमल करने के लिए बल भी देते थे।

क्या कुछ कहा जाए, क्या कुछ लिखा जाय, ऐसे सन्त के विषय मे जिसने सम्पूर्ण जीवन दीन-दुखियो, पतितो के उद्धार मे खपाया हो। साथ ही जिसने अन्त्यज तथा पतित समाज के अनगिनत व्यक्तियो को जीने का एक नया दिन दिया, एक नई रात दी और दिया एक नया रूप। सचमुच समाज मे व्याप्त विषाद पूर्ण वातावरण मे समाज को ऐसे महापुरुष की अत्यन्त आवश्यकता थी, आवश्यकता है और रहेगी।

—राजीव प्रचंडिया बी० ए०, एल-एल० बी०
पीली कोठी, आगरा रोड,
अलीगढ २०२००१



बोगी रिजर्व करदी है

उदयपुर प्रवास के समय वहाँ के स्टेशन मास्टर की धर्मपत्नी गुरुदेव के व्याख्यान सुनने आती थी। एकदिन स्टेशन मास्टर भी आये। उन्हे पता लगा कि महाराज साहब यहाँ से अमुक दिन प्रस्थान करके चित्तौड की तर्फ जायेंगे।

एक अन्य दिन दोपहर के समय स्टेशन मास्टर पुन आये और निवेदन किया—"स्वामीजी ! यहाँ से चित्तौड तक के लिए एक डिब्बा (बोगी) आपके और आपके शिष्यो के लिए मैंने रिजर्व कर दिया है, आप आनन्द से जाइए। आगे का प्रबन्ध और कोई कर देगा।"

गुरुदेव ने उन्हे बताया—"हम किसी प्रकार की सवारी नही करते, पैरो मे जूती का भी प्रयोग नहीं करते। पैदल और नगे पाँवो ही पूरे देश का पर्यटन करते हैं।" सुनकर स्टेशन मास्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ। आपके तप व त्याग से वे इतने प्रभावित हुये कि घर पर गोचरी के लिए ले गये। उनकी धर्मपत्नी ने आरती सजाकर रखी थी। गुरुदेव के पहुँचते ही आरती उतारने लगी और स्टेशन मास्टर साहब रुपयो की वर्षा करने लगे ! गुरुदेव ने रोका, और समझाया—हमारा स्वागत करना हो तो त्याग की आरती कीजिए, भक्ति, श्रद्धा का सुफल है—जीवन मे कुछ न कुछ सत्संकल्प लेना।

—श्री केवल मुनि



समाज सुधार की दिशा में श्री जैन दिवाकर जी के युगान्तरकारी प्रयत्न

सदियो से फूट तथा कुरीतियों की कारा मे बन्द मानव को एकता तथा प्रगति का मुक्त वातावरण प्रदान करने की बोलती कहानी ।

☆ श्री केवल मुनि

सामाजिक कुप्रथाएँ, कुरीतियाँ भी एक प्रकार की बुराई है, एक गन्दगी है, उनका स्वभाव है कि वे धीरे-धीरे समाज के स्वच्छ वातावरण मे प्रवेश करती है, उसे मैला करती है । जब गन्दगी बढ जाती है तो समाज का वातावरण दूषित हो जाता है । भले-सज्जन पुरुषो को साँस लेने मे भी कठिनाई होने लगती है । तब उसके सुधार की आवश्यकता अनुभव की जाती है ।

साधक भी जिस समाज मे रहता है, उससे सर्वथा निर्लिप्त नहीं रह सकता है । दूषित वातावरण मे उसकी साधना की चर्चा सुचारु रूप से नही चल पाती । दूसरे साधक का स्वभाव ही परोपकारी होता है । इसीलिए तो वह पैदल विचरण करता है ताकि जन-जाति के सपर्क मे आकर वह उसकी नब्ज को पहचाने और फिर हृदय-स्पर्शी उपदेश द्वारा उसकी जीवन दिशा को बदले । संत का मार्ग हृदय परिवर्तन का मार्ग है । वह जन-जीवन मे व्याप्त कुप्रथाओ, कुरीतियो, हानिकारक परम्पराओ तथा फूट एव वैमनस्य को मिटाने मे अपनी शक्ति लगा देता है ।

जैन दिवाकरजी महाराज को तत्कालीन समाज मे फैली बुराइयाँ दृष्टिगोचर हुईं । उन्होने इन सबको समाप्त कर डालने का सफल प्रयास किया, अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व और चमत्कारी वक्तृत्व से समाज को आन्दोलित किया, उचित मार्ग-दर्शन दिया । उन्होने समाज को युगानुरूप प्रेरणा देकर उन्हें सुधारो की ओर प्रवृत्त कर स्वच्छ जीवन विताने हेतु प्रेरित किया ।

मन-मुटाव और फूट को विदा—

फूट सदा ही विनाशकारी है और एकता निर्माणकारी । विशृंखल समाज पतन के गर्त मे गिरता ही चला जाता है । अन्य बुराई को भी तब तक दूर नही किया जा सकता, जब तक कि समाज मे ऐक्य भावना न हो । जैन दिवाकरजी महाराज जहाँ भी पधारे, उन्होने एकता को सर्व-प्रथम महत्व दिया ।

जैन दिवाकरजी महाराज के चरण स० १९६९ मे हमीरगढ मे टिके । वहाँ कुछ वर्षों से हिन्दू छीपो मे परस्पर कलह चल रहा था । अनेक सन्तो ने भी प्रयत्न कर लिये, किन्तु वैमनस्य दूर न हुआ । छीपो ने अपनी मनोव्यथा आपश्री के सम्मुख रखी । आपके एक ही प्रवचन से स्नेह-सरिता बहने लगी । वर्षों का वैमनस्य दूर हो गया ।

इसी प्रकार महेश्वरी और महाजनो का भी वर्षों पुराना वैमनस्य दूर हुआ । दोनो पक्षो को आपने ऐसे ढग से उद्बोधन किया कि वे प्रेम की छाया मे आ गए । उनका मनोमालिन्य हवा हो गया ।

चित्तौड़ मे ब्राह्मण जाति दो दलो मे बँटी हुई थी । वैमनस्य इतना तीव्र था कि यदा-कदा दोनो दल आपस मे टकराते रहते थे । महाराजश्री का चातुर्मास हुआ तो आपके समक्ष यह समस्या



रखी गई। आपकी प्रेरणा से वैमनस्य सौमनस्य मे बदल गया। चित्तौड के हाकिम साहब ने इस एकता की खुशी मे प्रीति-भोज भी दिया।

चित्तौड चातुर्मास के बाद जब आप गगरार पधारे तो वहाँ भी कई जातियो के मध्य चल रहे सघर्ष को नष्ट किया।

गगरार से आपश्री का पदार्पण जहाजपुर मे हुआ। वहाँ के जैनेतर समाज के मध्य चल रहे द्वन्द्व की आपकी ही प्रेरणा से इतिश्री हुई।

इन्द्रगढ के ब्राह्मण समाज मे ४० वर्ष से फूट अपना अड्डा जमाए हुई थी। एकता के अनेक प्रयास हुए किन्तु सब विफल रहे। इन्द्रगढ नरेश भी इस द्वेष-कलह को न मिटा सके। दोनो दलो के मुखियाओ को जब इन्द्रगढ नरेश ने अपने समक्ष बुलाकर आपसी कलह मिटाने की बात कही तो उन लोगो ने दो-टूक जवाब दे दिया—अन्नदाता ! आप और कुछ भी कहे, सिर माथे है, इस बात के लिए मत कहिए।" नरेश चुप हो गये।

स० १९९२ का चातुर्मास कोटा मे सम्पन्न कर गुरुदेवश्री इन्द्रगढ पधारे। प्रवचनो मे विशाल जनमेदिनी उमड पडती थी। ब्राह्मण-समाज के दोनो दल के ही सदस्य व्याख्यान मे आते थे।

एक दिन एकता, सगठन तथा प्रेम का प्रसंग उपस्थित कर गुरुदेवश्री ने प्रवचन सभा मे ही उन लोगो से पूछा—आप लोग सघर्ष चाहते हैं या एकता ?

दोनो दल के मुखिया, जो प्रवचन से गद्‌गद हो उठे थे—सहसा बोल पडे—"महाराज ! सघर्ष से तो हम बरबाद हो गये, अब तो एकता चाहते हैं।"

गुरुदेव का सकेत पाकर दोनो दल के मुखिया खडे हुये, गुरुदेव के निकट आये। गुरुदेवश्री ने मधुर हृदयस्पर्शी शब्दो मे कहा—"अगर एकता चाहते हो तो पुराने वैरद्वेष को आज, अभी, यहीं पर समाप्त कर डालो और हाथ जोडकर एक-दूसरे से माफी माँगो, प्रेम पूर्वक मिलो।"

लोग विस्फारित नेत्रो से देखने लगे। दोनो पार्टी के नेताओ पर जैसे सम्मोहन हो गया हो, वे हाथ जोडकर एक-दूसरे से माफी माँगने लगे और परस्पर गले मिले। क्षणभर मे तो जैसे पूरी सभा एक दूसरे से माफी माँगकर गले मिलने लगी। सर्वत्र एक मधुर वातावरण छा गया और असम्भव प्रतीत होने वाला कार्य सम्भव क्या, साक्षात् हो ही गया। पूरी सभा मे प्रेम की वर्षा हो गई।

इस दृश्य से प्रभावित होकर राज्य के मन्त्रीजी ने नरेश को बम्बई तार भेजा—'यहाँ पर एक ऐसे जैन साधु आये हैं जिनकी वाणी मे जादू है। ब्राह्मण समाज का झगडा उन्होंने मिटा दिया है।'

नरेश ने चकित होकर वापस तार दिया—'साधुजी को रोको, मैं आ रहा हूँ।' और इन्द्रगढ नरेश ने आकर गुरुदेव के दर्शन किये, अपनी बाग वाली कोठी मे प्रवचन कराये।

गुरुदेवश्री छाबुआ की ओर जा रहे थे, मार्ग मे पडा 'पारे' गाँव। वहाँ भी फूट का साम्राज्य था। आपके उपदेशामृत से एकता की रसधारा बह पड़ी। फूट-राक्षसी का पलायन हो गया।

सवत् १९७९ में मालवा प्रदेश से पुन गगरार पधारे। वहाँ दो जातियो की पारस्परिक गुटबन्दी आपकी प्रेरणा से ही समाप्त हुई।

सागानेर मे माहेश्वरी लोगो का वैमनस्य आपश्री की प्रेरणा से मिटा।

पोटला मे माहेश्वरी लोगो की दलबन्दी आपके ही द्वारा समाप्त हुई।

पाली संघ मे बहुत दिनो से वैमनस्य चला आ रहा था। अनेक सन्तो के प्रयास भी एकता



न करा सके। आपश्री का पदार्पण वहाँ स० १९९० मे हुआ। लोगो ने समझा अव एकता स्थापित हो जायगी। एकता पर वल देते हुए आपने कई व्याख्यान भी दिए, किन्तु इच्छित परिणाम न निकला। आपश्री वहाँ मे चलकर रामस्नेही आश्रम पधारे। यह आश्रम पाली नगर से कुछ दूर है। जनता वहाँ भी आपका प्रवचन सुनने पहुँची। प्रवचन इतना जोशीला था कि जैनो के दिल हिल उठे। पाली संघ मे प्रेम की गंगा वह आई। श्री मिश्रीलालजी मुणोत ने भी इस कार्य मे वहुत सहयोग दिया।

एकता स्थापित होने के वाद पाली संघ आपको पुन नगर मे ले आया तथा वहाँ आपके दो प्रवचन और हुए।

मनमाड के सघ का मनोमालिन्य भी आपके सदुपदेशो से दूर हुआ।

रतलाम चातुर्मास (१९८५ विक्रमी) पूर्ण करके आप **छत्रीवरसावर** पधारे। वहाँ ओसवाल-समाज मे पुराना वैमनस्य था। आपके सद्प्रवचनो से वह धुल गया और सभी एकता के सूत्र मे वँध गये।

इसी प्रकार जहाँ-जहाँ भी समाज मे, चाहे वह जैन रहा हो अथवा जैनेतर, वैमनस्य, फट, अलगाव आदि आपके सदुपदेशो से दूर हुआ। यह आपके ओजस्वी वक्तृत्व और प्रभावशाली व्यक्तित्व का चमत्कार था।

रूढियों और कुरीतियो पर प्रहार

समाज के सुधार हेतु कुरीतियो और रूढियो को मिटाना आवश्यक है। सामाजिक जीवन को ये रूढियाँ विषाक्त करती है और उसे अधःपतन की ओर प्रेरित करती है। जैन दिवाकरजी महाराज की प्रेरणा मे ऐसी अनेक रूढियो का विनाश हुआ।

जैन दिवाकरजी महाराज जव **जहाजपुर** पधारे तो वहाँ का समाज वेश्यानृत्य, मदिरापान, कन्या-विक्रय आदि कई घातक रूढियो से ग्रस्त था। आपके सदुपदेश से दिगम्बर जैन, माहेश्वरियो और अनेक लोगो ने इन रूढ़ियो को त्याग दिया।

चित्तौड मे आपके व्याख्यानो से प्रेरित होकर ओसवाल और माहेश्वरियो ने अपने-अपने समाज मे पहरावणी, कन्याविक्रय आदि कुरीतियो को त्यागा और साथ ही यह व्यवस्था भी की कि जिस भाई के पास अपनी कन्या के विवाह के लिए धन न हो, उसे पचायती फण्ड से ४०० रुपये तक कर्ज के रूप मे विना व्याज के दिया जाय।

धर्म के नाम पर हिंसा एक भयकर रूढि है। इसमे पाप, पुण्य का जामा पहनकर धर्म वन जाता है। जैन दिवाकरजी महाराज ने इस कुप्रथा को भी वन्द कराने का प्रयास किया। जव आप गगापुर मे विराजमान थे तव उज्जैन के सर सूवेदार आपके दर्शनार्थ आये। उन्होंने सेवा फरमाने की प्रार्थना की तो आपश्री ने अहिंसा की प्रेरणा देते हुए कहा—'आप उज्जैन के उच्च-अधिकारी हैं। वहाँ देवी-देवताओ के नाम पर होने वाली हिंसा को वन्द करा सकें तो कितना अच्छा हो?' उन्होंने इस कार्य को करने का वचन दिया।

राश्मी में आपने देवी के सम्मुख प्रतिवर्ष होने वाली एक पाडे की वलि को वन्द करवाया।

अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता भारतीय समाज और विशेष रूप से हिन्दू समाज का वहुत बडा कलक है। जैन धर्म तो अस्पृश्यता को मानता ही नही। वह तो मनुष्य की आत्मिक पवित्रता मे विश्वास करता है, कोई भी व्यक्ति किसी भी जाति और वर्ण का हो, सदाचार का पालन कर आत्मा को पवित्र



कर सकता है और धर्म का अधिकारी बन सकता है। अपनी इस मान्यता के अनुसार सदा से ही जैन सन्तो ने इस कलंक को मिटाने का प्रयास किया है। अस्पृश्यता का सबसे भयंकर दूषित रूप तब प्रकट होता है जब किसी निरपराध पर झूठा दोष मढकर उसे अस्पृश्य करार दे दिया जाता है। और उसे मानवीय धरातल से भी नीचे गिरा दिया जाता है।

ऐसा ही एक मामला बडी सादडी मे हुआ। कुछ स्त्रियो ने अन्य स्त्रियो पर अस्पृश्य होने का झूठा कलक लगा दिया। समाज मे मन-मुटाव हो गया। अनेक सन्तो के प्रयास से भी यह बखेडा न निबट सका। इसे सुलझाने का श्रेय भी जैन दिवाकरजी महाराज को प्राप्त हुआ। उनके सदुपदेश से यह बखेडा निपट गया और समाज का मनोमालिन्य दूर हुआ।

इन्दौर मे आपके व्याख्यानो से प्रभावित होकर वहाँ के डिस्ट्रिक्ट सूबेदार ने विभिन्न स्थानो पर बलि-प्रथा बन्द कराई। परिणामस्वरूप १५०० पशुओ को अभयदान मिला। धर्म के नाम पर हिंसा की कुरीति को दूर करने का यह कितना शक्तिशाली कदम था।

सवत् १९७९ मे आप विचरण करते हुए मन्दसौर पधारे। वहाँ जनकपुरा बजाजखाना आदि स्थलो पर समाज सुधार सम्बन्धी प्रवचन हुए। परिणामत स्थानीय पोरवाल बन्धुओ ने कन्या-विक्रय न करने का संकल्प किया। ओसवालो मे बहुत से सुधार हुए। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह जैसी कुप्रथाएँ सदा के लिए बन्द कर दी गई।

महागढ मे आपश्री के एक ही व्याख्यान से कन्या-विक्रय की कुप्रथा सदा के लिए समाप्त हो गई।

गौरक्षा और विद्या प्रचार

महाराजश्री ने देवास मे एक दिन 'धन के सदुपयोग' पर व्याख्यान दिया और दूसरे दिन 'गौरक्षा' तथा 'विद्या' पर प्रवचन इतने प्रभावशाली थे कि लोगो ने इन कार्यों के लिए धन का त्याग करके उसका सदुपयोग किया। नारियो ने अपने गहने तक उतार दिये। यह धन के सदुपयोग का ज्वलन्त उदाहरण है।

मांडल मे आपश्री के उपदेश से लोगो ने झूठी गवाही देने का त्याग किया।

विधवाओं के कर्तव्य की ओर सकेत

विधवाएँ कभी-कभी भावावेग मे, या विवश होकर अपने शील को खण्डित कर लेती हैं। कुशील आचरण के परिणामस्वरूप जब नाजायज सन्तान का जन्म होता है तो वह घबरा जाती हैं। समाज मे अपयश के भय से वह अपने नवजात शिशु को भी निर्दय होकर अरक्षित ही यत्र-तत्र कूडा-कर्कट पर डाल आती हैं।

ऐसे ही एक घटना रायपुर (बोराणा) मे जैन दिवाकरजी महाराज के समक्ष आई।

वैशाख वदी ५ का दिन था। एक सद्य जात शिशु लोगो को भैरोजी के चबूतरे पर मिला। बालक मरणासन्न था। हाकिम ने उसकी जाँच की। शिशु वही लाया गया जहाँ आपश्री प्रवचन दे रहे थे। शिशु को इस दशा मे देखकर आपका हृदय भर आया। लोगो मे कानाफूसी होने लगी। जब विश्वास हो गया कि बालक किसी विधवा का है तो आपने 'विधवा के कर्तव्य' पर एक जोशीला और सारगर्भित भाषण दिया। इसमे विधवाओ को अपने शील पर दृढ रहने की प्रेरणा दी। शारीरिक भूख को दबाने के लिए आत्मचिन्तन करने का उपाय बताया।

यदि सभी विधवाएँ आपके मार्ग पर चलें तो भ्रूणहत्या और शिशुहत्या आदि जैसे निंद्य कर्मों का समूल नाश हो जाय।



जोधपुर मे ओसवाल यगमेन्स सोसाइटी की कार्यकारिणी के आग्रह पर आपश्री ने १८ जनवरी, १६२५ को 'सामाजिक जीवन' पर एक व्याख्यान दिया। प्रभावित होकर कई सज्जनो ने विविध त्याग किये। सभा के सैक्रेटरी रायसाहव किशनलाल वाफणा ने निम्न प्रतिज्ञाएँ ली—

(१) अपने स्वार्थ के लिए और किसी प्रकार की इच्छा से झूठ नही बोलूँगा।

(२) अपने और दूसरे सम्बन्धीजनो के मरण पर १२ दिन से अधिक शोक नही मनाऊँगा।

(३) वारह महीनो मे २४ दिन के सिवाय सदैव शील व्रत पालूगा।

(४) अपनी रक्षा के सिवाय दूसरो पर कभी क्रोध और ईर्ष्या नही करूँगा।

इनके सुपुत्र असिस्टेण्ट सर्जन डा० अमृतलाल जी ने निम्न प्रतिज्ञाएँ ली—

(१) आज से जोधपुर नगर के ओसवाल भाइयो की चिकित्सा के लिए फीस नही लूँगा।

(२) चौपड, शतरज आदि खेलो मे समय वरवाद नही करूँगा।

(३) वृद्ध विवाह मे सम्मिलित नही होऊगा।

(४) प्रतिमास २० दिन शीलव्रत का पालन करूँगा।

(५) स्वदेशी चमडे के जूतो के सिवाय चमडें की अन्य चीजो का प्रयोग नही करूँगा।

वाली मे आपके प्रवचन को सुनकर हाकिम साहव अम्बाचन्दजी ने निम्न प्रतिज्ञाएँ की—

(१) जीवनपर्यन्त प्रतिमास एक वकरे को अभयदान देना।

(२) धूम्रपान का जीवन भर के लिए त्याग (आप २४ वर्ष से धूम्रपान करते थे)।

(३) महीने मे २५ दिन ब्रह्मचर्य का पालन करना।

जोधपुर स० १९८४ मे एक वहुत वडी बात हुई। गुरुदेव ने पर्युषण के दिनो मे व्यापार वन्द कर धर्माराधना करने का उपदेश दिया जो लोगो के हृदय मे उतर गया। गुरुदेव ने कहा—"कुम्हार, धोबी, तेली आदि जातियाँ पर्युषण मे अपना धन्धा वन्द रखती हैं और आज महाजन अपना धन्धा चालू रखते हैं यह कहाँ का न्याय है। पर्युषणपर्व का महत्त्व समझते हो तो आठ दिन, सवत्सरी, दो हो तो ६ दिन तक व्यापार नही करना।" पूरी जैन समाज ने पर्युषण में अपना व्यापार वन्द कर दिया वह अभी तक चालू है। इतने वडे नगर मे इतनी वडी सख्या मे लोगो के होते हुए इस तरह व्यापार वन्द रखना साधारण बात नही है उस महापुरुष का प्रभाव है। आज भी अधिकाश लोग इसका पालन करते है।

मारोडी मे वोहरा अव्दुल अली ने वकरा ईद के अतिरिक्त जीव-हिंसा का त्याग किया। इसी प्रकार का त्याग चाँदखाँ और रहीमवक्श ने भी किया।

जोधपुर चातुर्मास मे श्रावण सुदी १४-१५ को महाराजश्री के व्याख्यान कन्या-विक्रय पर हुए। सभी लोगो पर अनुकूल प्रभाव पडा। एक स्वर से सभी श्रोताओ ने सकल्प किया—'कन्या-विक्रय जैसा निंद्य कर्म कभी नहीं करेंगे और यहाँ तक कि ऐसा करने वालो से भोजन व्यवहार भी वन्द कर देंगे।' मॉडल मे भी माहेश्वरी परिवारो ने ऐसी ही प्रतिज्ञा ली। अन्य लोगो ने जुआ न खेलने, वीडी न पीने आदि का दृढ सकल्प किया।

मृतकभोज वन्द हुए

घोडनदी मे जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो से प्रभावित होकर लोगो ने 'मृतक भोजो मे न जाने' का नियम लिया। कुछ लोगो ने यह कहा कि यदि भरसक प्रयासो के वावजूद भी मृतकभोज वन्द न हो सके तो भोज पर होने वाले खर्च का आधा सद्कार्यों मे व्यय करेंगे।'

अहमदनगर मे भी आपके उपदेश को सुनकर कई लोगो द्वारा मृतक भोजन न करने की प्रतिज्ञा ली गई।



अभयदान

पिप्पलगाँव मे एक भाई ने आपके उपदेश सुनकर अपने बकरे कसाई को न बेचने की प्रतिज्ञा ली। (उस भाई के यहाँ सैकडो बकरे रहते थे जिन्हे वह कसाई के हाथ बेचा करता था।)

छोटे-से गाँव बेलवण्डी के नररत्न आबा साहब सपतराव ने 'अपने गाँव मे जीवहिंसा न होने देने' की प्रतिज्ञा ली।

जैन दिवाकरजी महाराज सतारा मे व्याख्यान दे रहे थे। एक आदमी उधर से चूहेदानी मे बहुत से चूहे लेकर निकला। पूछने पर मालूम हुआ—'इन चूहो को मार डाला जायगा।' आपश्री ने श्रोताओ को इन चूहों की रक्षा की प्रेरणा दी। रावसाहब मोतीलालजी मुथा तथा सावाराम सीताराम बाजारे ने उस व्यक्ति को समझा-बुझाकर चूहो को अभयदान दिलाया।

स्वधर्मी वात्सल्य

विक्रम संवत् १९८७ का जैन दिवाकरजी महाराज का चातुर्मास अहमदनगर मे था। वहाँ अपने प्रवचनो मे 'स्वधर्मी वात्सल्य' का महत्व बताया। मोसर न करके यह पैसा सार्धामियो की सेवा मे लगा रहे तो आपके धन का सदुपयोग है।

अहमदनगर के बाद गुरुदेव का चातुर्मास बम्बई मे हुआ। १९८८ मे बम्बई का चातुर्मास पूर्ण कर आप नासिक पधार रहे थे। नासिक से कुछ दूर पर सडक के किनारे एक छोटे से मकान के बाहर एक भाई खडा था। उसको बहुत कम दिखाई देता था। वह सडक पर चलने वालों से पूछ रहा था—"हमारे महाराज आने वाले हैं तुमने देखे क्या ?" थोडी दूर पर गुरुदेव अपने शिष्यो के साथ पधार रहे थे।

एक साधु को पूछने लगा। साधु ने कहा—'गुरुदेव पधार रहे हैं।' उसने अपनी भाभी को आवाज दी वह भी बाहर आई। उनके फटे कपडे और गिरी हुई अवस्था देखकर सभी का हृदय भर गया। उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज और हम अन्य सन्त लोग उसके घर गये। घर में खाने की खास सामग्री का अभाव था—दो-चार बर्तन पीतल के थे।

नासिक पहुँच कर अहमदनगर के श्रीमान् ढोढीरामजी को उस भाई की करुणाजनक दशा के वर्णन का पत्र दिया। और स्वधर्मी बन्धुओ की सहायता की प्रेरणा दी।

ढोढीराम जी ने अहमदनगर चातुर्मास मे गुरुदेव के समक्ष मोसर नही करने का संकल्प किया। ५०००) रु० स्वधर्मी भाइयो की सेवा के लिए निकाले थे, उन्होंने अपना मुनीम भेजकर उस भाई को कपडे व खाने की सामग्री आदि दिलाई तथा उसकी सहायता व्यवस्था की।

नासिक श्रीसंघ ने भी स्वधर्मी भाइयो को सहायता देना अपना सर्वप्रथम कर्तव्य माना।

× × ×

वास्तविकता यह है कि श्री जैन दिवाकरजी महाराज की प्रतिभा सर्वतोमुखी और दृष्टि विशाल थी। उनसे समाज का कोई दोष-कलक छिप नही पाता था। वे कुरीतियो, रूढियो और कुप्रथाओ के विनाश के लिए सदैव सचेष्ट रहते थे। वे जहाँ भी गए उन्होंने समाज-सुधार के प्रयत्न किये, लोगो को दुर्व्यसन छोडने की प्रेरणा दी।

अस्पृश्यता, धर्म के नाम पर हिंसा, कन्या-विक्रय, मृतकभोज, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह आदि कुरीतियो की बुराइयो को बताया और लोगो को इनके त्याग की ओर उन्मुख किया।

समाज मे व्याप्त कुरीतियो को दूर करने के लिए गुरुदेव द्वारा किये गए भागीरथ प्रयत्न चिर-स्मरणीय रहेंगे। देश के सामने जो समस्याएँ आज मुँह बाए खड़ी हैं, उनके प्रति गुरुदेव ने समाज को पूर्व में ही सजग कर दिया था।

☆



समाज-सुधार में संत-परम्परा एवं श्री जैन दिवाकरजी महाराज

✡ श्री चतुर्भुज स्वर्णकार, शिक्षक
एम० ए०, वी० एड०, साहित्यरत्न (हिन्दी-अर्थशास्त्र)

विश्व के मानचित्र मे एशिया महाद्वीप के दक्षिण मे त्रिभुजाकार भूभाग पर जहाँ राम और कृष्ण ने जन्म लिया, वही भगवान महावीर और बुद्ध ने भी अपने जन्म को साकार किया। वर्तमान युग मे इसी पावन-धरा पर युगपुरुष महात्मा गाँधी ने ससार को मानवता का वोध पाठ दिया।

भारत एक विचित्र देश है, ससार का शिरोमणि, जगद्गुरु मानव सभ्यता और सस्कृति का जन्मदाता, जहाँ विभिन्नता मे एकता, और एकता मे भी विभिन्नता के दर्शन होते हैं। इस राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध की जन्म-भूमि मे विभिन्न धर्मों एव सस्कृतियो का आदान-प्रदान होता रहा है। किन्तु भारतीय संस्कृति अपनी अक्षुण्णता को आज भी वनाये हुए कायम है। जिस प्रकार महा-सागर मे चारो ओर से सरिताओ का नीर आता रहता है और सागर सभी सरिताओ की जलराशि अपने मे समाये रहता है, उसी प्रकार भारतीय सस्कृति भी महासागर की भाँति अपनी गम्भीरता, महानता एवं अक्षुण्णता वनाये हुए है।

भारत की पावन-धरा पर जहाँ ऋषियो और महात्माओ ने, मुनियो और महन्तो ने, साधुओ और सन्तो ने जन्म लेकर अपने ज्ञान के प्रकाश को संसार मे विकीर्ण किया और अन्धकारमय जगत् को प्रकाशमान वनाया। "भरात् स. भरोति" रिक्तता चाहे ज्ञान की हो, चाहे अन्न या वस्त्र की हो या चाहे आवास की हो, यहाँ जन्मे साधु-सन्तो और नरेशो ने रिक्तता की खाई को सदैव पाट कर समता सिद्धान्त की रक्षा की।

भारत कृषि प्रधान देश गिना जाता है, किन्तु इस कृषि-प्रधान देश मे अनेक धार्मिक मत-मतान्तर, वर्ग-सम्प्रदाय उत्पन्न हुए, पनपे और कालकवलित हुए और कुछ आज भी अपना अस्तित्व वनाये हुए हैं—और विश्व शान्ति और मानवता की रक्षार्थ सतत् प्रयत्नशील है। भारत मे तीन धर्मों का महत्त्व रहा है—(१) वैदिक धर्म, (२) जैन धर्म और (३) वौद्ध धर्म। प्राचीनता की कसौटी पर कौनसा धर्म प्रथम स्थान मे आता है इसकी चर्चा के लिए यहाँ अवकाश नही है। किन्तु सभी धर्मों का प्रमुख सिद्धान्त "**अहिंसा परमोधर्म**" ही आज आधार के रूप मे मौजूद है। आज भी इन धर्मों की शाखाओ-प्रशाखाओ के अन्तर्गत विश्व-कल्याण या मानव-कल्याण का परजनहिताय का कार्य किया जाता है। इस राम और कृष्ण की पावन धरा पर, महावीर की धर्मस्थली पर, गौतम और गाँधी की कर्मस्थली पर अनेक ऐसे सन्त-महात्मा, साधु-सन्यासी, ऋषि-मुनि हुए हैं जिन्होंने मानव मूल्यो का ही मूल्याकन कर मानव धर्म या लोक धर्म की प्रतिस्थापना कर नये मानवीय मूल्य एव नये आयामो को उपस्थित कर लोक-मगल और लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

जब शिथिलाचार जितनी तीव्र गति से वढता है, तभी समाज और राष्ट्र मे विषमताएँ वढती हैं। जब समाज मे समता का अभाव पाया जाता है, जव समाज और राष्ट्र मे विषमताओं और बुराइयो का एक छत्र साम्राज्य छा जाता है, तव उन विषमताओ को सामाजिक और राष्ट्रीय



कोढ को छिन्न-भिन्न करने हेतु समय समय पर धर्म के नाम अलग-अलग सम्प्रदाय बनते रहे है, बन रहे हैं और बनेंगे भी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब भी इस वसुन्धरा पर पापाचार चरमसीमा को लाघ गया, जब धरती माता पाप के भार मे सत्रस्त हो उठती है, जब पाशविक प्रवृत्तियाँ समाज मे जन्म ले लेती हैं, जब धर्म और न्याय का गला घोटा जाता है, जब चारो ओर भीषण रक्तपात, हत्या, लूटमार और अग्निकाण्ड के दृश्य दिखाई देने लगते हैं, तभी इन विषैली प्रवृत्तियो का दमन करने, सुख-शान्ति एव समृद्धि का सन्देश देने मानव कल्याणार्थ महापुरुषो का जन्म होता है।

जब वैदिक धर्म के कर्मकाण्डो ने समाज मे अन्धविश्वास और रूढियो, गलत परम्पराओ को जन्म दे दिया, तब इसी धरती पर माता त्रिशला की गोद मे भगवान महावीर ने जन्म लेकर सत्य और अहिंसा का शखनाद गूंजाया। आधुनिक युग मे जब झूठ-कपट, छल-छद्म एवं शोषण का भूत समाज मे ताण्डव नृत्य करने लगा, तब इसी पवित्र भूमि पर महात्मा गांधी ने जन्म लेकर महावीर और बुद्ध के सत्य एव अहिंसा के माध्यम से मानवता का सदेश पहुँचाया।

यह दृश्यमान ससार द्वन्द्वो का अजायबघर है। ससार द्वन्द्वमय है और द्वन्द्व ही संसार है। जीव-अजीव, जगम-स्थावर, अन्धकार-प्रकाश, सुख-दुख, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि द्वन्द्वो का जहाँ खेल होता है वही ससार है। इस अनन्त ससार रूप समरभूमि मे कभी पुण्य का प्राधान्य होता है तो कभी पाप का। कभी दुनिया मे सुख-शान्ति का साम्राज्य होता है तो कभी भयंकर ताण्डव नृत्य। कभी गगन से देवगण सुमनवृष्टि करते हैं, तो कभी धरती माँ की छाती पर बम के गोले बरसते हैं। कभी शान्ति का निर्झर प्रवाहित होता है, तो कभी रक्त की सरिता भी बहती है।

जब चारो ओर इस द्वन्द्वात्मक दृश्य के बीच मानव दानव बनकर अपना अस्तित्व कायम करना चाहता है, तब कोई न कोई महापुरुष मानवता की रक्षार्थ माँ धरती की गोद मे जन्म लेकर मानवता का सदेश देते हुए अवतरित होता है।

समाज एवं राष्ट्र निर्माण मे सदा तीन शक्तियो का प्रभुत्व रहा है—(१) **मातृ-शक्ति**—जिसके द्वारा पारिवारिक जीवन को सस्कारवान बनाया जाता है वह जीवन की आधारशीला नारी है। इसलिये भारतीय ऋषियो ने प्रथम सूत्र "मातृ देवो भव" को दिया है। भगवान महावीर से लेकर वर्तमान युग तक नारी जाति के विकास एव प्रगति हेतु कई कार्य हुए है। (२) **जन-सेवक-शक्ति**—इसके माध्यम से समाज एव राष्ट्र में न्याय-नीति और सत्यनिष्ठा की स्थापना प्रचार एव प्रसार का दायित्व सम्पन्न होता है। (३) **सन्त-शक्ति**—समाज एव राष्ट्र मे सस्कृति, सभ्यता एव धर्म की स्थापना तथा रक्षा का काम साधु-सन्तों का होता है।

संसार मे प्राणी मानव जन्म लेकर ससार रूपी सागर की यात्रा पूर्ण करता है। किन्तु ऐसे भी कुछ मानव होते हैं, तो स्व-पर-हित करके ही अपना जीवन सफल बना लेते हैं। जीवन उन्ही का सफल है, जिन्होंने अपने इस जीवन को प्राप्त कर आध्यात्मिक खोज मे बिताया है, जिसने ससार-चक्र मे जन्म लेकर अपने वश की, अपने समाज एव देश की, अपने धर्म और सस्कृति की सेवा की हो।

ऐसे ही पुरुषरत्नो मे, सन्तो की शृ खला मे एक बालक ने आज से सौ वर्ष पूर्व—वि० स० १९३४ के कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी रविवार को नीमच (मालवा) निवासी श्री गंगारामजी



ओसवाल की धर्मप्राण अर्द्धांगिनी केसरवाई की कोख से जन्म लेकर, कौमार्यावस्था मे विवाहोपरान्त इस भौतिक ससार से एक झटके से अपने आप को अलग कर जन-समाज के उत्थान के लिये अपने जीवन को मानव सेवा मे समर्पित कर दिया, यही बालक जन्म से "चौथमल" नाम से अभिहित किया जाने लगा और इसी 'चौथमल' को 'यथा नाम' तथा गुण—के आधार पर जैन सम्प्रदाय मे जैन 'दिवाकर' मुनि के रूप मे, सन्त के रूप मे एक सच्चे तपस्वी, साधक, धर्मोपासक के रूप मे पूजा गया और जिसके—सदुपदेशो से मानवता ने राहत की सांस ली। क्योकि जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने समय के समाज को देखा, परखा और उसमे व्याप्त विपमताओ को दूर कर मानवीय मूल्यो को स्थापित किया।

सन्त का जीवन गगा की पवित्र-धारा की तरह गतिशील एव प्रवाहमय होता है। सत का चरण दिशा-परिवर्तन का सूचक होता है। सन्त की दिव्यदृष्टि दिवाकर की भांति तमोनाशिनी होती है। सन्तों का हास-परिहास प्राणी मात्र के लिये प्राणवायु का द्योतक होता है। सन्तों का जीवन हित के लिये समर्पित जीवन होता है। जैन दिवाकर सन्त श्री चौथमलजी महाराज का जीवन भी इस दृष्टि से खरा उतरता है। श्री दिवाकरजी महाराज ने समाजोत्थान के लिये आजीवन पैदल भ्रमण कर जन-मानस को सन्मार्ग की दिशा दी।

सन्त का जीवन साधना, सेवा, समर्पण और सहृदय का पु ज होता है। यही उसकी सस्कृति का द्योतक होता है। वह अपनी मँजी हुई आत्मा से दूसरों की आत्मा को माँजता है, सस्कारवान वनाता है। जैन सन्त मुनिश्री दिवाकरजी महाराज का जीवन भी साधना, सेवा और समर्पण का कोप था। सन्त दिवाकरजी महाराज ने समन्वय-परक दृष्टिकोण से दो प्राणियो को—दो से चार और चार से आठ इसी क्रम से परस्पर बन्धुत्व की भावनाओ को जन्म दिया और विभिन्न विचार-धाराओ के सन्तों को एक मच पर एकत्रित कर अपने समन्वयकारी दृष्किोण को सार्थक किया। सन्त समाज एव राष्ट्र मे व्याप्त विपमताओ को नष्ट करने हेतु यावज्जीवन प्रयत्नशील रहता हुआ अपनी 'इह लीला' समाप्त कर देता है और अपने अनुयायियो के लिए करणीय कार्य का मार्ग प्रशस्त करता है। सन्त दिवाकरजी महाराज ने भी अपने जीवन को इसके लिए समर्पित किया था।

जगत् वल्लभ सन्त दिवाकरजी महाराज ने परजनहिताय अपने जीवन को लगाया और झोपडी से लेकर महलो तक अपना सन्देश पहुँचाया।

सन्तो का जीवन सूर्य-चन्द्र और वादल की भांति होता है। जैसे सूर्य विना कहे आप ही कमलो को खिलाता है, चन्द्रमा विना कहे कुमुद को प्रफुल्लित करता है, वादल विना मांगे जल वृष्टि करते हैं उसी प्रकार सन्तजन भी विना कहे परोपकार करते हैं—

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति, चन्द्रोविकाशयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जल धरोतिजल ददाति, सन्त. स्वयं पर हितेषु कृताभियोगा ॥

मुनिश्री का जीवन परोपकारार्थ ही था, आपने समाज की बुराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया। आपने भगवान महावीर के पचमहाव्रत सिद्धान्त अहिंसा, सत्य, अदत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के महत्त्व को समाज के समक्ष रखा। हिंसक और अधम मनुज के वारे मे दिवाकरजी ने वताया—

पचेन्द्रिय मन औ र वचनकाय, श्वासानुछ्वासायुष्यप्राण।
इनको जो प्राणी हनन करे, वह हिंसक मनुजाधम समान ॥



और भी—

बलिदान के द्वारा नहीं कभी, ईश्वर प्रसन्न हो सकता है।
बलकर्त्ता ही भवसागर मे, युग-युग इस हेत भटकता है ॥

× × ×

जीवो की हिंसा का विधान जिस शास्त्र मे बतलाया है।
ईश्वर का यह कलाम नहीं, तू क्यो धोके मे आया है ॥

मोह त्याग से आत्मा-परमात्मा का रूप धारण कर सकता है—

पांचो तत्वो को जो लखें, बहिरात्मा कहलाय।
अन्तरात्मा मोह तजे तो, परमात्मा बन जाय ॥

आत्म-बोध के सम्बन्ध मे सन्त दिवाकरजी महाराज बताते हैं—

शम दम उपशम अहिंसा सत्त दत्त, ब्रह्मचर्य अममत्व गुणधार।
एकाग्रता मन की कर लेहो, आत्मा उसके साक्षात्कार ॥

सन्त शिरोमणि दिवाकरजी महाराज 'Books for reader and Readers for books' वाली कहावत को चरितार्थ किया था। आपका जीवन श्रोताओ के लिए था, और श्रोताओं का जीवन आपके लिए था। आप श्रोता के लिए और श्रोता आपके लिए थे। प्यासा सदैव कुंए के पास जाता है, कुंआ कभी भी प्यासे के पास नही जाता है, न ही जा सकता है। किन्तु जैन दिवाकरजी महाराज मे सन्त हृदय था, उन्होंने झोपड़ी मे जाकर उपदेश दिया तो महलो मे जाकर भी, राजा-महाराजाओ को भी ज्ञानामृत से सन्तुष्टि दी। जब आपका चातुर्मास उदयपुर मे था उस समय तत्कालीन महाराणा साहब की प्रार्थना को स्वीकार कर महलो मे पधार कर उन्हें धर्मोपदेश देकर एक सच्चे सन्त हृदय की रक्षा की।

आपने तो अपने जीवन का लक्ष्य यही बना रखा था कि "मुझे तो समाज की विषमता रूपी कोढ को मिटाना है।" आपके धर्मोपदेश श्रवण कर हिन्दू कुल मेवाडाधिपति ने विशेष दिनो और पर्वों पर पशुबलि बन्द करवाने के आदेश प्रसारित किये और अगते रखने की घोषणा करवायी। यही इस सन्त के जीवन की सार्थकता है।

सन्त दुनिया के लिए आशीर्वाद और वरदान होते हैं। सन्त पाप से झुलसी हुई दुनिया को शान्ति प्रदान करने वाले देवदूत होते हैं। सन्त दुनिया के खून से भरे हुए, उजडे और सुनसान रेगिस्तान मे शान्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित करने वाले अक्षय स्रोत होते हैं, वे एक ऐसे प्रकाशमान स्तम्भ होते हैं जो दुनियाँ को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। सन्त दिवाकरजी महाराज के जीवन का भी यही लक्ष्य था—

कम खाना, कम सोना, कम ससार से प्रीति।
गम खाना, कम बोलना, ये हो बड़ेन की रीति ॥

मुनिश्री ने इस युग मे जन्म लेकर विश्व-कल्याणार्थ अपना सन्देश देकर लोक-कल्याण एव लोक-मगल का मार्ग मानव-मात्र के लिए आलोकित किया। आपने ससार को सुख-शान्ति का मार्ग सुझाया। आप अपने परमपावन आचरण के कारण सन्तो की परम्परा मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सन्त-महात्मा ससार को सुख-शान्ति और समृद्धि का सच्चा मार्ग प्रदर्शित करने वाले जागरूक युग पुरुष होते हैं। जैन दिवाकरजी महाराज का जीवन चरित्र भी एक ऐसी ही खुली पुस्तक है।



जैन दिवाकरजी महाराज न केवल प्रखर वक्ता ही थे, अपितु वे मानव प्रकृति के मर्मज्ञ विद्वान् भी थे। मुनिश्री अपने प्रवचनो मे पुस्तकीय एव शास्त्रीय उद्धरण ही नही रखते वरन् वे प्रत्यक्ष अनुभवो की पृष्ठभूमि पर मानव हृदय का परिष्कार करते थे। वे सन्त कबीर की भाँति प्रत्यक्षदर्शी थे—

"तू कहता कागज की लेखी, मै कहता आँखिन की देखी।"

सन्त दिवाकरजी महाराज का धार्मिक दृष्टिकोण

'धर्म' की व्याख्या ससार के जितने भी मत, पन्थ या सम्प्रदाय है, सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से की है। भारतवर्ष मे ही यही स्थिति है। पुराने मीमासा सम्प्रदाय के मानने वालो के अनुसार 'यज्ञादि' करना धर्म है। भगवान महावीर के समय मे इसी मत का प्रचलन था। भगवान महावीर का इसी सिद्धान्त से सघर्ष हुआ। समाज मे शिथिलाचार तीव्रगति से बढ रहा था। सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त था। हिंसात्मक कर्मकाण्डो मे अधिकाश लोग विश्वास करते जा रहे थे। इन्ही विषमताओ को नष्ट करने हेतु जैन धर्म का उदय हुआ। इसीलिए इसे 'लोकधर्म' भी कहा जा सकता है। क्योकि लोकधर्म भाषा, प्रान्त, वर्ण, जाति आदि सीमाओ से मुक्त होता है और किसी के प्रति आग्रह नही रखता है।

जैनधर्म का सूक्ष्म चिन्तन विश्वविख्यात है। जैनधर्म वस्तु के बाह्य रूप पर उतना ध्यान नही देता जितना उसके सूक्ष्म रूप पर। जैन धर्म की मान्यता है—

"वत्थुसहावो धम्मो" अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। धर्म कोई पृथक् वस्तु नही है। वस्तु का जो अपना असली स्वभाव है, स्वरूप है, वही धर्म है और अन्य वस्तु के मेल से जो स्वभाव या गुण बनता है वह नकली है, बिगडा हुआ है। इसी के समर्थन मे सन्त दिवाकरजी ने भी फरमाया—वस्तु स्वभाव का नाम धर्म है, साथ ही सन्त दिवाकरजी महाराज ने सच्चे धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की है—

सच्चा धर्म वही है जिसमें, भेद-भाव का नाम न हो।
प्राणि मात्र की हित चिन्ता, जिसमे झगडो का काम न हो॥

× × ×

संयोग को कह विभावधर्म।
है बिना धर्म के द्रव नहीं, मतिमान मनुज यह लखे मर्म॥

जीवन की सार्थकता हेतु मुनिश्री ने धार्मिक मार्ग प्रस्तुत किया—जिसके पालन करने से मानव जीवन सफल हो सकता है—

सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र, स्वधर्म इन्हे धारण कीजे।
विषय कषायादिक पर धर्मों का, न कभी सेवन कीजे॥

इस तरह सन्त दिवाकरजी महाराज ने भी धर्म का महत्त्व और वस्तु के स्वभाव को ही सच्चा धर्म माना है। आपने अपने सन्देश मे, अपने उपदेश मे मानव को मानव की भावना से महत्त्व दिया है, और जैन धर्म को मानव-धर्म के रूप मे हमारे सामने रखा।

समाज-सुधारक के रूप मे सन्त दिवाकरजी महाराज

जैन सन्त दिवाकरजी महाराज ने तात्विक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक दार्शनिक, व्यावहारिक आदि विषयो पर बडी गम्भीरता के साथ विवेचन प्रस्तुत कर मानव-जीवन को समुन्नत



करने का भागीरथी प्रयत्न किया। आपने सामाजिक बुराइयों—बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, मांसाहार, मदिरापान, कुशीलसेवन आदि का निषेध किया तो एकता, संगठन, क्षमा, दया, सत्य, कर्त्तव्य, लोक-सेवा, ज्ञान-भक्ति, वैराग्य, आध्यात्म, आत्म-ज्ञान, दृढ़ता, अहिंसा अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, पर्यूषण, धर्म की तात्विक और व्यावहारिक मीमांसा, गार्हस्थ्य-धर्म और आत्म-सिद्धि आदि का बहुत सुन्दर ढंग से विवेचन किया। सामाजिक जीवन को ऊँचा उठाने में आपने भरसक प्रयत्न किया। आपके ज्ञानामृत पान से कई दुराचारी सदाचारी बने, कई मांसाहारी-शाकाहारी बने, कई दुश्चरित्र व्यक्ति चरित्रवान् बने, कई हिंसक-अहिंसक बने और कई वेश्याओं ने कुत्सित एवं समाज विरोधी कृत्यों से मुक्ति ली।

जैन दिवाकर सन्त श्री एक महामनीषी के रूप में, श्रमण संस्कृति के एक जीवन्त प्रतिनिधि के रूप में सम्पूर्ण भारतीय जीवन को कितना प्रभावित किया—यह उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से भली-भाँति प्रकट होता है। जैन-सम्प्रदाय में ही नहीं, बल्कि विभिन्न मत-मतान्तरों के बीच समन्वय करना, उनके सामाजिक जीवन में जो कटाव, जो क्षरण, जो नुकसान और टूट-फूट हो गयी थी, जो शिथिलताएँ और प्रमाद उनके सांस्कृतिक एवं नैतिक जीवन में व्याप्त हो गयी थी उन्हें, किन कठिनाइयों का सामना करते हुए, उनकी मरम्मत की, उन्हें संभाला यह उनके रचित साहित्य और साधना से प्रकट होता है। क्योंकि सन्त दिवाकरजी महाराज का जीवन पवित्र था, उनका आचार-विचार सात्विक था, उनका मन स्वच्छ निर्मल नीर-सा था। जैनेतर समाज में दिवाकरजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं सम्मान था। जब मुनिश्री का व्याख्यान (लेखक ने कई बार व्याख्यान सुने हैं और मुनिश्री से शिष्यत्व ग्रहण किया था) होता था तब व्याख्यान श्रवणार्थ आबालवृद्ध नर-नारी बड़ी लगन से उनके व्याख्यान स्थल पर एकत्र हो मनोयोग से अमृतवाणी सुनते और अपने जीवन को सार्थक करते। आपके सदुपदेशों से आदिवासी समाज क्या, खटीकों व मोचियों आदि ने त्याग व्रत ग्रहण कर सात्विक जीवनयापन का संकल्प लिया। आपके व्याख्यानों को सुनने हेतु मुल्ला, मौलवी, पंडित, विद्वान् सभी आते थे और श्रवणोपरान्त गद्‌-गद्‌ हो जाते थे।

सन्त मुनि अपने कथ्य को जन-भाषा में प्रस्तुत करते थे और विभिन्न धर्म-ग्रन्थों से उद्धरण देते हुए विषय को स्पष्ट करते थे। क्योंकि जैनाचार्यों ने भाषा विषयक उदार दृष्टिकोण का सदैव परिचय दिया। दूसरों की तरह उनका किसी भाषा विशेष में धर्मोपदेश देने का आग्रह नहीं रहा। यहाँ तक कि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं को अपनाकर उन्हें समृद्ध तथा गौरवशालिनी बनाने का श्रेय यदि किन्हीं को दिया जाना चाहिए तो जैनाचार्यों को ही। इतना ही नहीं आज की प्रान्तीय भाषाएँ भी इन्हीं की उपज हैं। राष्ट्र भाषा हिन्दी का सीधा सम्बन्ध इन्हीं भाषाओं से है।

इन सन्त महापुरुष को, हिन्दी, संस्कृत, अर्धमागधी, राजस्थानी, मालवी, गुजराती, खड़ी बोली, उर्दू आदि भाषाओं का ज्ञान था, किन्तु जब भी आप अपने विचार व्यक्त करते थे, तब आम जनता की (भाषा) बोली का सहारा लेते थे। यही उनका लोकनायकत्व गुण को प्रकट करता है।

सन्तों का जीवन समाज की सम्पत्ति होती है। संकीर्णता से काफी दूर उनका जीवन होता है। सन्त जन हित के कार्य करके समाज और राष्ट्र के चरित्र को उज्ज्वल बनाते हैं। मुनिश्री का जीवन भी इसका एक उदाहरण है। मुनिश्री जहाँ भी पधारे वहाँ उन्होंने व्यक्ति को ऊँचा उठाने का काम किया, उन्होंने सबसे पहले जैन मात्र को आदमी माना और माना कि आदमी फिर वह किसी भी कौम का हो, आदमी है। जिस प्रकार भगवान महावीर ने जाति और कुल के आधार पर



किसी आदमी को छोटा-वडा नहीं माना उसी प्रकार जैन सन्त दिवाकरजी महाराज ने सभी धर्मावलम्बियो को आदमी के रूप मे पहले देखा। उनकी आत्मा मे सभी वर्गों के मनुष्यो के प्रति समता भाव थे। जैन धर्मानुसार मनुष्य धर्माराधन मे सबसे बढकर जैनशास्त्रो मे "देवानुप्रिय" शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है—मनुष्य देवताओ को भी प्रिय लगता है। मनुष्य मे अनन्त शक्तियो की सत्ता है, परन्तु सासारिक मोह-माया के कारण कर्म-मल से आच्छादित बादल से ढका सूर्य है और इसी से उसे मुक्त करना है।

सन्त दिवाकरजी महाराज ने भी 'कर्म' के आधार पर ही आदमी को देखा और उसे त्याग-तपस्या और साधना मार्ग मे प्रेरित करने का यावज्जीवन प्रयत्न किया। जैन सिद्धान्तो के अनुसार मुनिश्री ने आदमी को 'मनसा, वाचा, कर्मणा' से शुद्ध करने का प्रयत्न किया। जो व्यक्ति वस्तु के शुद्ध स्वरूप को जानता है जिसका मन, वचन और कर्म शुद्ध है, पवित्र है उसे मुनिश्री ने चाहे वह भील हो, चमार हो, खटीक हो, मोची हो, मुसलमान या यहूदी हो—उसे जैन माना था। यही उनकी श्रमण सस्कृति को ही नही, सम्पूर्ण भारतीय सस्कृति को अपूर्व देन थी। इसीलिए सन्त दिवाकरजी महाराज ने पतितो को उठाया, उठे हुए को सन्मार्ग पर चलाया, उन्हें गले लगाया। इस प्रकार उन्होंने एक नये आदमी को जन्म देने का मार्ग ढूढा। उन्होने बर्बर जीवनयापन करने वालो को सन्मार्ग बताया, उन्हे जीने का मन्त्र दिया, मानवता का पाठ पढाया, पाठ याद कराया। जो व्यक्ति मानव को दानवता के मार्ग से मुक्ति दिलाकर मानवता के मार्ग पर चलना सिखाता हो, वही सन्त होता है। दिवाकरजी महाराज इस कसौटी पर खरे उतरते हैं वे वास्तव मे सच्चे सन्त थे। इन्होने गिरते हुए सामाजिक मानदण्डो को सम्बल दिया और उनमे नये प्राण फूंके। इस दृष्टि से सन्त मुनि दिवाकरजी महाराज जैन मुनि ही न थे, मनुजों के महामनुज थे। वे त्याग और समर्पण के प्रतीक थे, निष्कामता और निश्छलता के केन्द्र थे, निर्लोभ और निर्वेर, अप्रमत्तता और साहस, निर्भीकता और अविचलता की साक्षात्कार मूर्ति थे।

जैन दिवाकर ? नही, वे तो जन-जन के दिवाकर थे, प्राणिमात्र के दिवाकर थे। जिन्होंने समाज की रगो मे नया और स्वच्छ लहू दिया। उनकी वाणी और चरित्र मे एकरूपता थी, उनके शब्द और कर्म एक रूप थे। उनकी कथनी और करनी मे अन्तर नही था। 'दयापालो' कहने से पहले वे मन से, वचन से और कर्म से इसकी पालना पहले करते थे। इसलिए ऐसे युगपुरुष सन्त को सच्ची श्रद्धाजलि यदि हम देना चाहे तो वह हमारे निर्मल प्रामाणिक आचरण से ही सम्भव है।

समन्वयकारी सन्त

मुनिश्री ने सास्कृतिक सामञ्जस्य स्थापित करने मे भी पहल की। समन्वयकारी दो विरोधी तत्वों का मेल कराने वाला होता है। उसे अपने विचार को मनवाने मे और दूसरो के विचारो को मानने में ताल-मेल बैठाना पडता है। झुकना और झुकाना और मध्यम मार्ग खोज निकालना यह विशेषता सन्त दिवाकरजी महाराज मे थी। आपका विश्वास उदाहरण देने मे नही था, उदाहरण बनने मे था। सन्तों का जीवन होता भी ऐसा ही है। सन्त वक्ता कम होते हैं। सन्तो का जीवन चारित्रिक विशेषताओं का पुंज होता है। अपने चारित्र्य बल से—अपने आत्मबल से, वे दूसरो के जीवन को जीतते हैं। सन्त दिवाकरजी महाराज का जीवन भी तेजोमय था, वे पहले अपनी करनी देखते थे, फिर कथनी करते थे। उन्होने कोटा चातुर्मास के एक अवसर पर कई सम्प्रदायो के साधु-सन्तो, मुनियो को एक मच पर लाकर उपस्थित किया। उन्होंने राव-रक, अमीर-गरीब, किसान-मजदूर,



विकसित-अविकसित, साक्षर-निरक्षर, सभी को प्रभावित किया, सभी को एक मार्ग सुझाया—'जीओ और जीने दो' सभी को एकता के सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न किया। सन्त चौथमलजी महाराज वास्तव मे महत्त्वाकाक्षाओ के पक मे से कमल खिलाना जानते थे। उनकी दिव्य दृष्टि के समक्ष सभी मानवी एक से नजर आते थे। न कोई अमीर था, न कोई गरीब, न कोई मोची था, न कोई महाजन, सभी 'जन' थे, सभी आत्मा थे। सभी के प्रति समभाव, ममभाव। सन्त दिवाकरजी महाराज एक अनोखे व्यापारी के समान थे—दुर्गुण छुडाते सद्गुण देते, अज्ञान के बदले ज्ञान देते, भौतिकता भुलाते आध्यात्मिकता देते। इस प्रकार सन्त दिवाकरजी महाराज ने धार्मिक क्षेत्र मे, सामाजिक क्षेत्र मे तथा सास्कृतिक क्षेत्र मे समन्वयकारी दृष्टिकोण से एकता की आधार-शिला रखी।

नारी सुधार—भारतीय सस्कृति मे "मातृदेवोभव" से नारी को जो सम्मान दिया गया और आज तक इस सम्मान मे कितनी कमी आ गयी यह विवेचनीय है। सामाजिक बन्धनो के कारण नारी समाज मे जो कुण्ठायें उत्पन्न हुईं, उन्हे दूर करने के लिए समय-समय पर कार्य होते रहे हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओ, समाज-सुधारको, नेताओ एव साधु-सन्तो ने नारी के जीवन-पक्ष पर, आचरण पर भले-बुरे विचार किये हैं। जीवन की आधारशिला नारी है। **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"** यही भारत हैं, हमारे चरित्रनायक सन्त दिवाकरजी महाराज ने नारी के आदर्श जीवन को प्रस्तुत किया, आपने अपने उपदेश से वेश्याओ को घृणित कार्य से दूर किया। आपने आदर्शनारी के जीवन की विशेषताएँ बताते हुए कहा है—

पहनो-२ सखी री ज्ञान गजरा-२ तुम्हें लगे अजरा ॥टेर॥
शील को साड़ी ओढ ले ओरी, लज्जा गहनो पहन।
प्रेम पान को खाय सखी री, बोलो सच्चा बैन ॥१॥
हर्ष को हार हृदय मे धारो, शुभ कृत्य कंकण सोहाय।
चतुराई की चूडी सुन्दर, प्रभुवाणी बिंदली जोय ॥२॥
विद्या को तो बाजूबन्द सोहे, प्रभु लौ लौंग लगाय।
दांतन में चूप सोहे ऐसी, धर्म मे चूप सवाय ॥३॥
नव पदार्थ ऐसा सीखो, नेवर की झणकार।
चौथमल कहे सच्ची सजनी, ऐसा सजे सणगार ॥४॥

यह है नारी का शृंगार जिसके धारण से 'इह लोक' और 'परलोक' दोनो मे महत्त्व है। सन्त दिवाकरजी ने कन्या-विक्रय, बाल-विवाह, वृद्धविवाह आदि सामाजिक बुराइयो के विरोध मे आवाज उठायी। आपने नारी जगत मे नव-जाग्रति की भावना उत्पन्न कर दी थी।

पतितोद्धार और सन्त दिवाकरजी महाराज

सन्त दिवाकरजी महाराज मनसा, वाचा, कर्मणा से शुद्ध थे, पवित्र थे। उनका हृदय करुणा का आगार था। आपके मन और मस्तिष्क पर मानव-प्रेम की अमिट छाप थी। वे जैन तत्त्व ज्ञान के परम उपासक तो थे ही मानव-मात्र के सच्चे साथी थे। प्राणी मात्र के परम हितैषी थे। आपने अहिंसा, मैत्री, एकता और प्रेम का सन्देश घर-घर पहुँचाया और विश्व-बन्धुत्व की भावनाओ को पनपायी। समाज मे घृणास्पद समझे जाने वाले वर्ग से सम्बन्धित जातियो-मोची, चमार, कलाल, खटीक, हरिजन, वेश्याओ तक को अपना सन्देश दिया, उनके जीवन-स्तर को ऊँचा



उठाने मे भरसक प्रयत्न किया। भीलो व आदिवासियो की झोपडी के सामने विराज उन्हे कुप्रवृत्तियो के बारे में समझाना, उनसे मुक्ति दिलाना आपके लिए आसान था। कितने ही हिंसक कृत्य करने वालो ने हिंसा का त्याग किया, कई लोगो ने शराब, मांस, गांजा भाग तथा नशीली वस्तुओ का त्याग किया। आपने दलित वर्ग के बीच जाकर उन्हे सद्प्रेरणा दी, उन्हे शिक्षा का महत्त्व समझाया और भोज्य-अभोज्य वस्तुओ के महत्त्व को समझाया।

धर्म का सच्चा स्वरूप पददलितो, पतितो का उद्धार करना होता है। सच्चे साधु-सन्त ही जन-साधारण के मन-मस्तिष्क मे ऐसे धर्म के महत्त्व को प्रवेश कराते हैं। जैन श्रमण की दृष्टि से सभी समान है—"समयाए समणो होई।" इस दृष्टि से सभी को समान रूप से आत्म-कल्याण की ओर प्रेरित करना धर्म का और धर्म विश्वास करने वाले साधु-सन्तो का परम दायित्व होता है। धर्म-श्रवण की सबसे अधिक आवश्यकता पतितो को ही होती है।

इसी भावना से सन्त दिवाकरजी महाराज ने झोपडी से महलो तक अपने उपदेश को स्वय ने पहुँचाया। आपने दीन-हीन, पद-दलितो, उपेक्षित, असभ्य, वनवासियो, भीलो, जैन-अजैन सभी को उद्बोधित किया और मानवीय दृष्टिकोण उनमे पैदा किया।

गांधीजी ने हरिजन उद्धार का कार्य अपने हाथ मे लिया और वर्तमान राजस्थान सरकार 'अन्त्योदय' के रूप में पतितो का, पद-दलितो के उद्धार का कार्य कर रही है। उसे सन्त दिवाकर जी महाराज ने अपने जीवन के प्रारम्भिक चरणो के आयामो मे ही ले लिया और बडी लगन से उन्हें सम्पन्न किये।

अस्पृश्यता भारतीय समाज का कोढ है। वर्तमान सरकार ने इसके उन्मूलनार्थ कानून बनाये हैं। परन्तु साधु-सन्तो ने इस कार्य को हृदय परिवर्तन करके किया है। जैन दिवाकरजी महाराज ने मानव-समाज मे व्याप्त इस कोढ का अपने सद् एव बोधगम्य वाणी से निदान किया। निस्सदेह सन्त दिवाकरजी महाराज एक आत्मधर्मी, राष्ट्रधर्मी एव समाजधर्मी सन्त थे। तत्कालीन राजतन्त्र पर उनका प्रभाव था ही, परन्तु वर्तमान सरकार की नीति की तह मे भी अपरोक्ष रूप से सन्त दिवाकरजी महाराज का नशीली वस्तुओ से परहेज के सिद्धान्त पर "पूर्ण नशाबन्दी" की योजना इसका प्रतीक है।

सन्त-परम्परा मे स्थान

सन्त सदा-सदा वन्दनीय और स्मरणीय होते हैं क्योकि मोह-माया और वासना से परिपूर्ण जगत मे जन्म लेकर भी वे अपनी निस्पृहता-तेजस्विता और लोक-मगलकारिणी वृत्ति के कारण हजारो प्राणियो का कलमष धोकर उन्हे पवित्र आत्म-साधना की ओर प्रेरित करता है। भारत मे श्रमण सन्तो की भी अविच्छिन्न-परम्परा रही है। भारतीय सस्कृति और भारतीय जीवन का प्रमुख आधार धर्म रहा है। यही इस देश की विशेषता है। भारतीय सस्कृति की अखण्डता, पवित्रता और इसके पावन रूप को सन्तो, साधुओ और श्रमणो ने प्रवहमान रखा है। भारत की पावन धरा पर सन्तो का, साधुओ का चक्रवर्ती सम्राटो से भी बढकर सम्मान किया गया है। चक्रवर्ती सम्राटो ने या यो कहे कि लोक-शासको ने लोकनायक के समक्ष—अहकार ने निरहकार के समक्ष अपना सिर झुकाया है। लोक-शासक जनता के शरीर पर तलवार के बल पर शासन करता है, किन्तु लोक-नायक जनता के शरीर और मन पर एक साथ शासन करता है और वो भी दया-सहानुभूति एव प्रेम के बल पर। इसीलिए लोक-शासक की स्मृतियां चिरस्थायी नही होती। जबकि लोकनायक अपने जीवन काल मे और मरणोपरान्त युग-युगो तक याद किया जाता है।



सन्तो की शृ खला मे—चाहे वे सन्त मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो, चाहे जैन धर्मावलम्बी हो या बौद्ध धर्मावलम्बी हो जगत्वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता जैन सन्त श्री दिवाकरजी महाराज की अज्ञानान्धकारनाशिनी ज्ञान रश्मियाँ हमेशा-हमेशा के लिए अपने प्रकाश को विकीर्ण करती रहेगी।

प्रागैतिहासिक काल मे वर्तमान काल तक भारत मे श्रमण सन्तो की अविच्छिन्न परम्परा रही है। इस पावन धरा पर सदैव ही ज्योतिर्धर और प्रतिभा के धनी, सदाचारी, कर्मठ सन्त अवतरित होते रहे है। जिनके सदुपदेशो से अनेक, विवेकशून्य और दुराचारी राजाओं ने, शासको ने कुमार्ग छोड सन्मार्ग अपनाया और अपने जीवन को सफल बनाया।

जैन इतिहासकारो के अनुसार ऋषभदेव ने प्रजा के हितार्थ राजतन्त्र की स्थापना की और इस राजतन्त्र मे उन्होंने त्याग सेवा तथा उच्च आदर्श को स्थापित किया, किन्तु—

अस कोऊ जनमेहूँ नहीं जग भाई, प्रभुता पायी जाहि मद नाही ॥

कालान्तर मे राज्यसत्ता मे अनेक दुर्गुण प्रविष्ट हो गये। दुर्व्यसन और दुराचार का वातावरण बन गया—'यथा राजा तथा प्रजा'—इसलिए प्रजा के दुःख निवारणार्थ लोकोपकार की प्रेरणा से सन्तो ने राजाओ को सदुपदेश देकर धर्म मार्ग पर लगाया और जनता के कष्ट दूर किये।

श्रमणसन्तो की परम्परा मे श्री केशी श्रमण जिनके उपदेश से श्वेताम्बिकानगरी का क्रूर एव दुष्ट राजा 'प्रदेशी' अहिंसक एव धर्मानुरागी बना।

'गर्दभिल्ल' मुनि की प्रेरणा से सयति जैसा मृगयाप्रेमी राजा 'सयति मुनि' बनकर अपने जीवन को सार्थक किया।

भगवान महावीर के युग मे—सुदर्शन श्रावक की प्रेरणा से अर्जुन मालाकार भगवान महावीर की वाणी को श्रवणकर आत्म-साधना-पथ का पथिक बना।

आचार्य भद्रबाहु ने मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त को त्यागवृत्ति का सबक दिया। सुहस्तिगिरि सूरि की प्रेरणा से सम्राट् सम्प्रति एक धर्म-प्रचारक के रूप मे प्रसिद्ध हुए।

इसी प्रकार हरिभद्र सूरि ने मेवाड़ के राजा-महाराजाओ को उपदेश देकर उनमे जीव दया एव करुणा की लहर उत्पन्न की।

शीलभद्र सूरि, आचार्य हेमचन्द्र सूरि, आचार्य हीरविजय सूरि का सन्तो की परम्परा मे विशेष महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य हीरविजय सूरि ने तत्कालीन मुगल सम्राट् अकबर महान् को अहिंसा की महत्ता को समझाया।

इसी विशिष्ट श्रमण-परम्परा मे जैन दिवाकर महामनीषी श्री चौथमलजी महाराज का जन्म आज से एक सौ वर्ष पूर्व नीमच (मालवा म०प्र०) की पावन धरा पर हुआ। जिन्होंने अहिंसा की ज्योति को झोपडी से महलो तक, मजदूर-किसानो से मालिको-जमीदारो तक, राजा-महाराजा, नवाब, सेठ-साहूकारो तक उनके मन-मस्तिष्क तक पहुँचाया।

वास्तव मे वे एक युग द्रष्टा थे। उनकी जन-जीवन मे गहरी पैठ थी, वे समाज के सच्चे साक्षी थे। समाज की नाडी के अच्छे ज्ञाता थे। और सामाजिक बीमारियो का निदानात्मक उपचार करने वाले सिद्धहस्त एव सामाजिक चिकित्सक थे।

आप अपने साथी-साधको के लिए मार्ग-दर्शक, पथ-भ्रष्ट भूले-भटको के लिए मार्गदर्शक और दम्भी-पाखण्डियों के लिए एक प्रकाश स्तम्भ थे।



आप निर्भीक, सरल एव मधुर स्वभाव के धनी थे। शिक्षा प्रेमी, मानव प्रेमी, धर्म प्रेमी एक समाज एव राष्ट्र-प्रेमी युगपुरुष के रूप मे आपने ख्याति अर्जित की थी। सच्चे अर्थों मे वे एक लोक-नायक थे—क्योंकि उन्हें लोक-व्यवहार का पूर्ण ज्ञान था। उनके व्यक्तित्व की छाप जनता के मन और मस्तिष्क पर चिरस्थायी रूप से पडती थी। वे महान् सृजन धर्मी थे। उन्होंने हर क्षेत्र मे नव सृजन का मार्ग उजागर किया—क्या साहित्य, क्या धर्म, क्या सस्कृति, क्या शिक्षा, क्या समाज-सभी ओर उनका ध्यान था। वे सभी के थे, सभी आपके थे। आपको एक क्षणमात्र का भी प्रमाद नहीं था। प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करना, उनके जीवन का परम उद्देश्य था—"**समय गोयम मा पमायए**"। आप समता, उदारता और निस्पृहता की साकार मूर्ति थे।

अन्त मे, सन्त दिवाकरजी के आदर्शों के अनुरूप चलकर शुद्ध आचरण के साथ मानव-जाति के कल्याणार्थ रचनात्मक कदम उठाने की ओर अगर हम ध्यान देंगे तो मेरी समझ मे इस सन्त को सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

परिचय एव पता
चतुर्भुज स्वर्णकार शिक्षक एम० ए०, बी० एड०
साहित्य-रत्न (हिन्दी एव अर्थशास्त्र)
राजकीय माध्यमिक विद्यालय
पारसोला, जिला उदयपुर (राजस्थान)

दयालु गुरुवर

(तर्ज—चौदहवीं का चांद हो)

गुरुवर दयाल के दिल महा विशाल के
आओ हो आज गाये गुण उस बे मिशाल के।टेर।
नीमच नगर से आप निकल, बन गये महामुनि
था नाम चौथमलजी, दिनकर महागुणी
पीते थे जाम प्रेम का, दुर्गुण को टाल के।१।
वाणी सुधा-सी रसवती, त्रय ताप-नाशनी
जनता तुम्हारी गा रही, गाथा सुवासनी
देखा था झुकते विश्व को केशर के लाल के।२।
चेहरे पर दिव्य तेज था तप और त्याग का
दिल मे दया भरी हुई, बल था वैराग्य का
करते दया जग जीव की दुश्मन थे काल के।३।
था जन्म दीक्षा स्वर्ग दिन एक सूर्यवार का
तीनो ही पक्ष शुक्ल था उस महा दीदार का
"मुनिमूल" मुख मुस्कान थी, दर्शन कमाल के।४।

—**मधुरवक्ता श्री मूलमुनि**



अन्त्योदय तथा पतितोद्धार के सफल सूत्रधार संत श्री जैन दिवाकर जी

आज से ५० वर्ष पूर्व घनघोर सामन्ती युग में भी अन्त्यज, पतित और शूद्र माने जाने वाले वर्ग के कल्याण और उत्थान के प्रयत्नों की एक रोचक दास्तान

✡ श्री रवीन्द्रसिंह सोलंकी (कोटा)

—महामनीषी श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने श्रमण संस्कृति के एक जीवन्त प्रतिनिधि के रूप में सम्पूर्ण भारतीय जन-जीवन को प्रभावित किया।

—जैनों के सामाजिक जीवन में जो कटाव, जो क्षरण, जो नुकसान और जो टूट-फूट हो गई थीं तथा जो शिथिलता आ गयी थी, उनको मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए उनकी मरम्मत की।

—भगवान महावीर ने जाति और कुल के आधार पर किसी को छोटा-बड़ा नहीं माना, उनकी कसौटी तो थी 'कर्म'। इसी प्रकार मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने भी आदमी को पहले आदमी माना, फिर चाहे वह किसी भी कौम का क्यों न हो।

—पतितों, शोषितों, दीन-दुखियों, पीड़ितों और तरह-तरह के कष्टों से संत्रस्त जन-सामान्य की पीड़ा पूरित अश्रु विगलित आंखों के आंसू पोंछने को सन्नद्ध अहर्निश सेवारत सन्त थे।

उपरोक्त कितने ही कथन जिस किसी आदर्श जैन सन्त के लिए लिखे जा सकते हैं उनमें जैन दिवाकर सन्त श्री चौथमलजी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व से कई शोषित, पीड़ितों के मन-मन्दिर में चरित्र, धर्म का दीपक प्रज्वलित किया।

कलियुग में कई प्रकार की शक्तियां हैं, अणुबम से लेकर चांद पर पहुंचने वाली शक्तियां भी हैं, किन्तु ये सभी स्थायी व मानव को सन्तोष प्रदान करने वाली नहीं हो सकतीं। अतः प्राचीन समय से ही हमारे मनीषियों ने 'संघ शक्ति' को सर्वोच्च शक्ति माना और इसी क्रम में मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने पांच सम्प्रदायों के प्रमुख मतों को एक लड़ी में पिरो दिया तथा उनका विलीनीकरण कर दिया।

भगवान महावीर ने मनुष्य को आलस्य, अन्धविश्वास तथा कदाचार की कारा से मुक्त करने के लिए दीर्घकालीन अकथनीय प्रयत्न किये। मुनिश्री चौथमलजी महाराज भी उन्हीं के पदचिन्हों पर चलने वाले सच्चे अनुयायी थे, जिन्होंने जीवन-क्रान्ति का नाद एक बार पुनः गुंजाया और समाज तथा धर्मसंस्थाओं तथा राजतन्त्र में आयी शिथिलताओं, दुर्बलताओं, विकृतियों और विषमताओं



को मिटाने मे अथक प्रयत्न किया। तथा उसके आधार भारतीय सस्कृति के आधार स्तम्भ त्याग, वैराग्य समता और अहिंसा को वनाये रखने की अपील की।

कार्यक्षेत्र

राजनैतिक धरातल पर आज जिस 'अन्त्योदय' की वात कही जा रही है, वह अन्त्योदय की प्रक्रिया उन्होंने मानस-परिवर्तन के साथ अपने युग मे ही प्रारम्भ कर दी थी। भील, आदिवासी, हरिजन, चमार, मोची, कलाल, खटीक, वेश्यायें आदि उनके उपदेशो से स्वय ही धर्म की शरण मे आये और सात्विक जीवन जीने लगे। वर्तमान मे जो वाते शासन द्वारा पतितो के लिए कही जाती हैं वह उन तक नहीं पहुँच पाती। इसका एकमात्र कारण सरकारी मशीनरी मे आई शिथिलता है, जिसमे प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य के कन्धो पर पाँव रखकर आगे बढना चाहता है। और इसी प्रक्रिया मे पतितों के उद्धार की वातें उन तक नही पहुँच पाती, किन्तु मुनिश्री चौथमलजी महाराज का प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता था, अत. जो भी कोई व्यक्ति उनके सम्पर्क मे आया उसकी सोती हुई चेतना धार्मिक कृत्यो मे लग गयी। यदि आज वे हमारे मध्य होते तो हमारे समाज का नक्शा ही कुछ और होता, पीडित, दलित मानवता आज मुस्कराती नजर आती।

धर्म श्रवण की सवसे अधिक आवश्यकता पतितो को होती है, क्योकि वे इसी आस्था के सहारे अपने जीवन को अच्छी प्रकार जी सकते हैं। यह वात मुनिश्री चौथमलजी महाराज भली-भाँति जानते थे, अत. उन्होने पतितो के मानस मे धर्म को उतारने के लिए आज से ६५ वर्ष पूर्व ही यह शुभ कार्य आरम्भ कर दिया था। गांधीजी ने हरिजनो के उद्धार का वीडा उठाया था जिसे आज राजनीति के रग मे रगकर 'अन्त्योदय' रूप दिया जा रहा है।

कुछ उदाहरण

वि०स० १९६६ उदयपुर से जैन दिवाकरजी महाराज प० नन्दलालजी महाराज के साथ विहार करके 'नाई' पधारे। वहाँ तीन-चार हजार भील एकत्र हो गये। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपना ओजस्वी भाषण दिया। आपकी वाक्‌शक्ति का अचूक प्रभाव पडा। भीलो के हृदय मे हिंसा के प्रति अरुचि उत्पन्न हुई। उन्होने कहा—महाराजश्री, हम लोग हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा लेने को तत्पर हैं किन्तु हमारी विनय है कि यहाँ के महाजन भी न्यूनाधिक तोलने की प्रवृत्ति त्यागें।

महाराजश्री ने महाजनो को समझाया-वुझाया। भील तथा महाजनो ने सयुक्त रूप से शपथ ली—किसी भी नर-नारी को कष्ट नही पहुँचायेंगे, वन मे अग्नि नही जलायेंगे। पशुओ की हिंसा नही करेंगे।

वि०स० १९७० मे जव पुन. भीलवाडा पधारे तो ३५ खटीको ने अपना पैतृक-धन्धा त्याग कर अहिंसा की शरण ली। सवाई माधोपुर मे भी ३० खटीको ने अपना धन्धा छोडा और वे मेहनत-मजदूरी, कृषिकार्य आदि के द्वारा जीवनयापन करने लगे। इसके परिणामस्वरूप उन्होने कहा—"जव हम लोग हिंसा करते थे तो हमारा पेट भी मुश्किल से भरता था, सदैव अभावो से घिरे रहते थे। किन्तु जव से हिंसा छोडी है तव से हम सुखी हैं। गुरुदेव की कृपा से हमारा जीवन भी सुधर गया है। अव हमारे जीवन मे सुख-शाति है।"



मुनिश्री चौथमलजी महाराज के पतितोद्धारक रूप का वर्णन कहाँ तक किया जाय, यह तो उसकी झांकी मात्र है। उनका तो सम्पूर्ण जीवन ही दलितो के उत्थान मे बीता था। भारतीय सस्कृति मे सत का एक विशेपण है—'पतित पावन' और यह विशेपण जैन दिवाकरजी महाराज के लिए सर्वथा उपयुक्त है जो उनके जीवन प्रसगो से सर्वथा साकार हो रहा है।

आज की महती आवश्यकता

आज हम जिस भी दिशा मे दृष्टिपात करते है, उसी तरफ भ्रष्टाचार, चोरी और आत्म-पतन का वोलवाला है। हम जव भी कहीं किसी महापुरुष की जन्मतिथि या पुण्यतिथि मनाते हैं तो उस महापुरुष के जीवन की सूक्ष्म जांच-पड़ताल नही करते। इसके लिए हमे वक्त निकालना चाहिए। मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने विभिन्न कठिनाइयो को सहते हुए समाज को इस प्रकार का दिशावोध कराया जिसमे समाज मे आशा की एक नई किरण प्रस्फुटित हुई।

आज स्थिति क्या है, हम देखें तो लगेगा—विद्यार्थी कहते हैं—'प्राध्यापक अपना दायित्व ठीक से नहीं निभाते।' प्राध्यापक कहते हैं—'सरकार हमारी मांगो का यथोचित समाधान नहीं करती। सरकार कहती है—व्यापारीगण टेक्स चोरी करते हैं, मिलावट करते हैं अत. सख्त कानून की आवश्यकता है।' अर्थात् चारो ओर असन्तोप की भयानक लपटें उठ रही हैं। और इसी के साथ प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अधिकारो की वात करता है तथा वह अपने कर्तव्य को भूल जाता है।

ऐसे समय पर उस व्यक्ति पर टिप्पणी करने की आवश्यकता होगी जो अपने को 'जैन' समझता है। क्या ऐसे लोग एक प्रतिशत भी सच्चे दिल से चौथमलजी महाराज के आदर्शों को व्यवहार मे लाते हैं। यह विचारणीय है अन्यथा इस प्रकार की पुस्तको के प्रकाशन व जन्म तिथियां मनाने का कोई लाभ नहीं होगा।

आज आवश्यकता इस वात की है कि उनके अनुरूप वना जाय, अर्थात् उनके व्यवहार, उनके वताए रास्ते का अनुकरण किया जाय, तभी उनके प्रति किए गए किसी भी कार्य के उद्देश्य की प्राप्ति हो सकेगी।

कार्य अमर रहेगा

यदि आज मुनिश्री चौथमलजी महाराज के कार्यों का ऐतिहासिक मूल्याकन किया जाय, तो कोई भी यह आसानी से कह सकेगा कि आपके प्रयत्न इतिहास में स्वर्णाक्षरो से लिखे जाने चाहिए। स्वय को तकलीफो मे डालकर अन्त्योदयी व पतितो के कल्याण के लिए आपने जो कष्ट उठाये तथा उसका जो सुपरिणाम सामने आया वह इतिहास मे अमर रहेगा।

पूरा पता—

रवीन्द्रसिह सोलकी
मोहन सदन, लाडपुरा
कोटा-३२४००६





✯ ✯ साहित्य में सत्यं शिवं सुन्दरं के संस्कर्ता श्री जैन दिवाकरजी महाराज ✯ ✯ ✯

✯ श्री महेन्द्र मुनि 'कमल' (प्रसिद्ध कवि, वक्ता और गायक)

युग संत श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज की प्रसिद्धि, प्रसिद्धवक्ता के रूप मे है और प्राय. यह समझा जाता है कि वे सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र साधक थे, श्रमण थे, संत थे, धर्मोपदेशक थे। विशेष कर इसी पक्ष पर भार देकर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्याकन भी किया जाता है। लेकिन उन विश्व पुरुष ने साहित्यिक दृष्टि से क्या किया और क्या नहीं और इस क्षेत्र मे उनकी क्या देन है? इसकी ओर किसी का ध्यान भी नही गया हो और यदि ध्यान भी गया हो, तो अभी तक कोई व्यवस्थित एव वस्तुपरक अध्ययन नही हो पाया है।

प्रस्तुत निवन्ध में उनके साहित्यिक पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। यह प्रयास विहगावलोकन मात्र है। यदि इससे किन्हीं ने प्रेरणा ली, तो संभव है, कि कोई न कोई उनके समक्ष साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन करके समग्र विशेषताओ का दिग्दर्शन करायेगा और ऐसा संभव हो सका तो यह विशेष प्रसन्नता की वात होगी।

जैन दिवाकर साहित्य का भाषा-पक्ष

भाव, भाषा, शैली और 'अभिधेय-उद्देश्य यह चारो साहित्य के अंग हैं। भाव साहित्य की आत्मा है, भाषा और शैली उसका शरीर और अभिधेय-उद्देश्य उसकी कसौटी है। इस कसौटी के द्वारा साहित्यकार का मूल्याकन किया जाता है कि उसने जिस उद्देश्य के लिये प्रयत्न किया है, उसकी अभिव्यजना यथातथ्य रूपेण अवतरित हुई या नही। भाव और अभिधेय अमूर्त है, और भाषा मूर्त तथा भाव व उद्देश्य विना भाषा-शैली के ज्ञात नही होते हैं। उन्हें भाषा का आधार आवश्यक है। अतएव श्री जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य की विशेषताओ को बतलाने के पूर्व उसके भाषायी-पक्ष पर दृष्टिपात करते हैं।

साहित्य की भाषा-परम्परा पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि भारतीय साहित्य की आदिकालीन भाषायें प्राकृत, पाली, अर्धमागधी आदि उस युग की लोक-भाषायें थीं। मध्य काल मे उन प्राकृत ग्रन्थो पर टीकायें आदि लिखने और नव साहित्य के आलेखन के लिये संस्कृत भाषा को अगीकार किया गया। इसके बाद अपभ्रंश की परंपरा चली और अपभ्रंश के बाद के युग मे देशी भाषाओ मे साहित्य की रचना होने लगी। वर्तमान मे विशेष तथा हिन्दी और गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड आदि प्रातीय भाषाओ मे साहित्य का निर्माण हो रहा है।

इस भाषा परिवर्तन के कारण थे। जीवन की अस्त-व्यस्तता एव आवागमन के साधनो की कमी के कारण संपर्क टूटता रहा। जिससे अपने समय से पूर्व की भाषायें विद्वद् भोग्य तो अवश्य रही, लेकिन सामान्यजन उसके भावाववोध से वंचित रहने लगा। वह सुनने के साथ ही भक्ति विभोर एव श्रद्धाभिभूत हो जाता था। लेकिन अर्थाववोध न होने से कोरा रह जाता था। उस पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडता था। यही कारण है कि प्रत्येक युग मे अन्य भाषाओ मे निष्णात और पंडित होने पर भी साहित्यकारो ने भाषा के प्रति विना किसी प्रकार के पूर्वाग्रह के समकालीन प्रचलित भाषा मे हितमित-सत्य-पथ्य को उपस्थित किया है।



इस भाषायी धरातल पर अब हम श्री जैन दिवाकरजी महाराज को देखें। वे हिन्दी, गुजराती, सस्कृत, प्राकृत, अर्धमागधी आदि प्राचीन साहित्यिक भाषाओ के जानकार तो थे ही और उनका जैन साधु होने के कारण पद-विहारी होने से मालवी, मेवाडी, मारवाडी, भीली आदि लोक वोलियो एव भाषाओ पर भी अच्छा अधिकार था। यही कारण है, कि उनके प्रवचन जितने विद्वद-गम्य होते थे, उतने ही लोकगम्य भी थे। उनके प्रवचनो मे प्राचीन भाषाओ का पाण्डित्य, वर्तमान भाषाओ की जीवन्तता और लोक-वोलियो की मधुरता पग-पग पर थिरकती मिलती थी। प्रत्येक श्रोता यही अनुभव करता था कि यह तो हमारी भाषा मे कह रहे हैं और हमारे विचारो को साकार वना रहे हैं।

जो वात श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो के लिये लागू होती है, वही उनके साहित्य के लिये भी चरितार्थ है। यह कभी सभव नही कि किसी साहित्य मनीषी का कथन अलग हो, और लेखन अलग हो। 'जैसा कथन-वैसा लेखन' यह उक्ति सपूर्ण साहित्य मे प्रतिविवित होती है। उन्होंने विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिये साहित्य नही लिखा, उन्होंने यश कामना के लिये साहित्य नही लिखा और न अपना स्मारक वनाने या जनता की जिह्वा पर अपने नाम का उल्लेख कराने तथा चढाये रखने के लिये साहित्य लिखा। किन्तु उनका लक्ष्य था, मानव को उसके जीवन-कर्तव्य का वोध कराना, सस्कृति का परिचय देना नीति और अध्यात्म को जनता की वोली मे जनता मे वितरित करना।

यही कारण है कि पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज ने जन-भाषाओ को अपने साहित्य की भाषा वनाया। उन्होंने अपने साहित्य के लिए उन्ही भाषाओ को आधार वनाया, जिनको कि जनता सरलता से समझती थी। इसीलिये उनके साहित्य मे हिन्दी के अतिरिक्त मालवी, मेवाडी, मारवाडी के प्रचलित शब्दो की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। ये शब्द इस रीति से यथास्थान प्रयुक्त किये हैं कि जिससे वह साहित्य शब्दो का गुलदस्ता वन गया है। मालव का सामान्यजन पढ़े, तो वह भी उतना ही रस-विभोर होगा, जितना मेवाडी या मारवाडी। महिलायें पढें तो वे भी विना कुछ समझाये समझ लेंगी कि इस ग्रन्थ मे क्या कहा जा रहा है?

यह कार्य किसी एक भाषाविद के द्वारा नही किया जा सकता है कि उसका साहित्य जन-प्रसिद्ध हो। उसका अच्छे से अच्छा साहित्य तभी इतर जन समझ सकेंगे, जब या तो उस भाषा मे अनुदित किया गया हो या कोई समझाये। लेकिन ऐसा होने पर भी सफल साहित्य और उसके कर्ता के लिए प्रसिद्धि नहीं मिलती है और मिलती भी है तो एक सीमित दायरे मे ही। लेकिन जो जन्मजात साहित्यिक प्रतिभा के धनी होते हैं, वे भाषा की कारा मे भावो को नही वांधते। वे आम आदमी तक स्वय पहुँचते हैं और जिस भाषा-वोली में वह समझता है, उसी मे समझाते हैं। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ऐसे ही साहित्यकार थे।

जैन दिवाकर साहित्य का शैली-पक्ष

भाषा के साथ शैली का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है और शैली भी लोक-मानस की अभिरुचि के अनुसार निर्मित होती है। प्राचीन काल से गद्य और पद्य ये दोनो शैलियाँ साहित्य के क्षेत्र मे प्रचलित रही है। अधिकाश प्राचीन भारतीय साहित्य पद्य शैली मे लिखा गया है और उसके वाद भी अपभ्रंश और देशी भाषाओ के जमाने मे भी पद्य की प्रधानता रही है। प्राचीन हिन्दी का आदि साहित्य भी पद्य शैली मे लिखा हुआ मिलता है। लोक-भाषाओ के प्रारम्भिक युग में भी पद्य



शैली का प्रमुख स्थान रहा है और उसके वाद भी काफी समय तक जनता का लगाव पद्य शैली से रहा तथा वर्तमान मे गद्य शैली का प्राधान्य है। लेकिन पद्य शैली आज भी जन-प्रिय है। उदाहरण के तौर पर यदि कही कवि-सम्मेलन हो, तो वहाँ ऐसे श्रोताओ की सख्या अधिक मिलेगी, जो साधारण भाषा के जानकार होने पर भी कवि के भावो को हृदयगम करके झूमने लगते हैं। इसी प्रकार यदि कहीं भजन-गीत होते हैं, तो लोगो के झुण्ड के झुण्ड शान्ति से सुनने के लिए बैठे रहेगे। लेकिन इसके विपरीत यदि किसी समूह के बीच भाषण हो रहा हो और श्रोताओ को रुचिकर न हो अथवा स्पष्टता न हो तो हल्ला मच जायेगा और वक्ता को या तो बैठना पडेगा या सुनने वालो का समूह ही अपना-अपना रास्ता पकड लेगा।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपने साहित्य का निर्माण गद्य और पद्य, दोनो शैलियो मे किया है। लेकिन लोक-रुचि को सर्वोपरि मानकर पद्य शैली को ही मुख्यता दी है। यह पद्य साहित्य दो रूपो में उपलब्ध हैं—(१) पुराण-पुरुषो के चरित्र-कथानक एव (२) फुटकर गीत संग्रह। गद्य शैली मे भी कुछ ग्रन्थो की रचना की है। इसके अतिरिक्त आगमगत सिद्धान्तो का संकलन भी एक विशिष्ट ग्रन्थ मे किया है। इन सब ग्रन्थो के नाम और उनका सक्षिप्त परिचय यथास्थान आगे दिया जा रहा है।

पद्य शैली मे रचित साहित्य मे भी श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने पद्य की किसी एक विशेष विधा को नही अपनाया है, अपितु वर्ण्य विषय को समग्र रूप से प्रस्तुत करने के लिए प्रसगानुसार दोहा, चौपाई आदि-आदि छन्दो एव लोक धुनो का उपयोग किया है। जिस विधा से जो भाव स्पष्ट हो सकता है और जन-साधारण जिस धुन मे समझ सकता है। उसका प्रयोग उन्होंने नि सकोचरूपेण किया है। जिससे उसमे कर्णप्रियता के अतिरिक्त गेयता एव रसानुभूति का आनन्द भी पाठक को मिलता है।

श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज श्रमण सन्त धर्मोपदेशक थे। अत उनके साहित्य मे विषय लोलुपता आदि को बढाने वाले शृ गार आदि साहित्यिक रसो की अपेक्षा नही की जा सकती है। इसमे तो वैराग्यरस, शान्तरस जैसे हृदयस्पर्शी रसो के झरने फूट पडे हैं।

जैन दिवाकरजी द्वारा रचित साहित्य

श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने समय-समय पर जैन सिद्धान्तो की शिक्षाओ को स्पष्ट करने के लिए जितने फुटकर गीत लिखे, सम्भवत उतनी सख्या मे अन्य किसी जैन सन्त ने नही लिखे होंगे। इसे माँ सरस्वती का वरदान माना जायेगा कि जब और जहाँ कही भी वे किसी धुन को सुनते और समझते कि इस धुन के माध्यम से किसी हित शिक्षा को जनता के लिए देना लाभप्रद रहेगा, तो किसी न किसी उपदेशी हित शिक्षा को उस धुन मे श्रोताओ के सामने उपस्थित कर देते थे। ऐसे गीत आज भी सुनने को मिलते है, जो लिपिवद्ध सभवत' नही हुए हो, पर सुदूरवर्ती गांवो मे बसे जैन परिवारो अथवा उनके उपदेशो से अनुप्राणित सस्कार सम्पन्न व्यक्तियो और परिवारों मे गाये जाते हैं।

उक्त प्रकार के फुटकर गीतो-पद्यो को छोडकर गद्य-पद्य मे रचित ग्रन्थो के नाम निम्नलिखित हैं—

१ जैन सुख चैन वहार (पाँच भाग)	२ सीता वनवास

३ स्त्री शिक्षा भजन संग्रह	४ सशय शोधन



५. राम मुद्रिका
६ आदर्श रामायण
७ जम्बू चरित्र
८ हरिश्चन्द्र चरित्र
९ चपक चरित्र
१० धर्मबुद्धि चरित्र
११. श्रीपाल चरित्र
१२ सती अजना और वीर हनुमान
१३ भगवान महावीर का दिव्य सन्देश
१४. पार्श्वनाथ चरित्र
१५ प्रदेशी राजा चरित्र
१६ अष्टादश पाप-निषेध
१७ अर्हद्दास चरित्र
१८ महावल मलया चरित्र
१९ सुपार्श्व चरित्र
२० धन्ना चरित्र
२१. चतुर्थ रत्नमाला
२२ त्रिलोक सुन्दरी चरित्र
२३ कृष्ण चरित्र
२४ दामनखा चरित्र
२५ वैराग्य जैन स्तवनावली
२६ लघु जैन सुवोध गुटका
२७ हरिवल चरित्र
२८ भगवान नेमिनाथ चरित्र
२९ जैन गजल वहार (पाँच भाग)
३० लावनी सग्रह (दो भाग)
३१ मनोहर पुष्प
३२ मुक्ति पथ (" ")
३३ ज्ञान गीत सग्रह
३४ जैन सुवोध गुटका
३५. भगवान महावीर का आदर्श-जीवन

इनके अतिरिक्त आपके प्रवचनो के सकलन 'दिवाकर दिव्य ज्योति' के नाम से २० भागो मे प्रकाशित हुए हैं। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' अनेक आगमिक सिद्धान्तो, सूक्तियो का सग्रह ग्रन्थ है, जो विद्वानो और जन-साधारण को प्रेरणादायक है। उक्त विपुल साहित्य मे चरित्र ग्रन्थो की प्रधानता है, फिर भी हम सुविधा के लिए उसे निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित कर सकते है—

१ **जीवन प्रेरणा साहित्य**—सूक्तियो के सकलन उपदेशप्रद एव भक्ति सम्वन्धी कृतियो को इस वर्ग के अन्तर्गत किया जा सकता है। जैसे चतुर्थ रत्नमाला, वैराग्य जैन स्तवनावली, ज्ञान गीत सग्रह आदि।

२ **धार्मिक साहित्य**—इसके अन्तर्गत उनकी वे कृतियाँ आती हैं, जो जैन सिद्धान्तो का विवेचन करती हैं, यथा-भगवान महावीर का दिव्य सन्देश आदि।

३ **गीत साहित्य**—इस वर्ग में फुटकर प्रासगिक गीतो, भजनो, लावणियो, गजल सग्रहो का समावेश होता है।

४. **चरित्र साहित्य**—पुराण प्रसिद्ध जैन महापुरुषो के कथा ग्रन्थ। इनको पढने से उन महापुरुषो की जीवन-गाथा का ज्ञान होने के साथ कर्तव्य की प्रेरणा मिलती है। इस वर्ग में संकलित ग्रन्थो की सख्या सर्वाधिक है।

५ **लोक साहित्य**—इस वर्ग में उनके समग्र प्रवचन साहित्य का समावेश किया जा सकता है। क्योकि जनता की भाषा में उसके कर्तव्य का वोध कराया है। प्रसगोपात्त सैद्धान्तिक और दार्शनिक चर्चायें भी इस साहित्य में उपलब्ध हैं।

६ **तुलनात्मक साहित्य**—'भगवान महावीर का आदर्श-जीवन' इस वर्ग में ग्रहण होता है। इसमें सिर्फ भगवान महावीर की जीवनी के अतिरिक्त भारत की प्राचीन सस्कृति, विद्याओ, कलाओ आदि का उल्लेख करते हुए अर्वाचीन विचारधारा का समाज-जीवन के साथ तुलनात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही तत्व-ज्ञान एव धर्म के मूल तत्वो पर प्रकाश डाला है।



'निर्ग्रन्थ प्रवचन' एक महत्वपूर्ण कृति

पूज्यश्री जैन दिवाकरजी महाराज द्वारा रचित साहित्य का बहुभाग चरित्र साहित्य है और उसमे जिन ग्रन्थो के जो-जो नाम है, उन-उन महापुरुषो के वर्तमान भव का वर्णन करने के साथ पूर्व-भवो मे किये गये शुभाशुभ कर्मों से प्राप्त इष्ट-अनिष्ट सयोग, सुख-दु खो आदि का भी उल्लेख किया है। उन सवकी कथावस्तु तो उन ग्रन्थो को पढने से ज्ञात होती है। लेकिन इन सव मे 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यद्यपि प्रस्तुत कृति की मूल गाथायें आगमो से सकलित की गई हैं, लेकिन इनके सकलन, चयन, सयोजन तथा उन पर भाष्य विवेचन करने मे रचना-शिल्प का सौन्दर्य एव मौलिक विचार अपेक्षा से अधिक व्यक्त हुए हैं। इसीलिये उसका सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

जैन समाज मे 'गीता' एव 'धम्मपद' के समान एक सक्षिप्त किन्तु सारभूत ग्रन्थ की आवश्यकता वर्षो से अनुभव की जा रही थी। अनेक विद्वानो ने इस कमी की पूर्ति के लिए प्रयास भी किये। उनके वे प्रयत्न प्रशसनीय हैं और श्रम भी सम्माननीय है, लेकिन इन सव प्रयत्नो मे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का प्रयत्न अधिक व्यापक और गम्भीर था।

आपने गीता की तरह अठारह अध्यायो में 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का सकलन किया है। उन अठारह अध्यायो के नाम इस प्रकार हैं—षड् द्रव्य निरूपण, धर्म स्वरूप वर्णन, कर्म निरूपण, आत्म-शुद्धि के उपाय, ज्ञान प्रकरण, सम्यक्त्व निरूपण, धर्म निरूपण, ब्रह्मचर्य निरूपण, साधु धर्म निरूपण, प्रमाद परिहार, भाषा स्वरूप, लेश्या स्वरूप, कषाय स्वरूप, वैराग्य संवोधन, मनोनिग्रह, आवश्यक कृत्य, नरक-स्वर्ग-निरूपण, मोक्ष स्वरूप। इन अध्यायों मे उन-उनके योग्य गाथाओ का चयन, आचारागसूत्र कृताग, स्थानाग, समवायाग आदि-आदि वत्तीस आगमो मे से है।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज इस ग्रन्थ को इतना महत्वपूर्ण मानते थे कि प्राय. प्रति-वर्ष 'निर्ग्रन्थ प्रवचन सप्ताह' के अन्तर्गत वाचना करके इसके गूढार्थो को सरल सुवोध शैली मे श्रोताओ को समझाते थे। प्रस्तुत कृति चयन है, लेकिन इसमे हम श्री जैन दिवाकरजी महाराज के विचारो, अभिरुचियो और अन्तरात्मा के दर्शन करते हैं कि भौतिक शरीर मे रहते हुए भी उनका 'मैं' क्या था ? यही कारण है कि उसके प्रकाशन की महत्ता की मुक्तकण्ठ से सराहना हुई थी। यदि आज का युग और उनके अनुयायी वर्ग हम 'जिन खोजा तिन पाइया' की नीति के अनुसार प्रेरणा लेकर कर्तव्य तत्पर हो, तो इससे श्री जैन दिवाकरजी महाराज की महत्ता की अपेक्षा स्वय की महानता, गौरव सिद्ध करेंगे।

जैन दिवाकरजी महाराज की ग्रन्थ रचना की शैली

वर्तमान मे ग्रन्थ रचनाकारो की शैली का कोई निश्चित रूप नही है। लेखक किसी भी विन्दु से अपने ग्रन्थ लेखन को प्रारम्भ कर देता है। लेकिन जिसे साहित्य कहा जाता है वह निर्विघ्न ग्रन्थ की समाप्ति और अपने अभिधेय को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने की योग्यता-क्षमता अर्जित करने की दृष्टि से मगलाचरण के रूप मे ईष्ट देव को स्मरणपूर्वक प्रारम्भ किया जाता है। प्रारम्भ में किसी-किसी वाक्य या पद का अवश्य उल्लेख किया जाता है, जो मगलाचरण रूप होता है।

श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने अपनी रचनाओ के प्रारम्भ में इसी शैली को अपनाया है। उन्होंने सिर्फ देव या गुरु या शास्त्र का पुण्य स्मरण न करके तीनो को नमस्कार और ग्रन्थ का नामोल्लेख करते हुए रचना प्रारम्भ की है।



उदाहरणार्थ— 'वर्धमान शासन-पति तारण तिरण जहाज।
नमन करी ने वीनवुं दीजो शिवपुर राज ॥
गौतम गणधर सेवता, सकल विघ्न टल जाय।
अष्ट सिद्धि नव निधि मिले पग-पग सुख प्रगटाय ॥
उपकारी सद्गुरु भला, तीनो लोक महान।
आतम परमातम करे, यह गुरु माहात्म्य जान ॥
शारदा माता प्रणमु, माग बुद्धि विशाल।
अभय दान पै कथन यह उत्तम वने रसाल ॥

—"चम्पक चरित्र"

इस प्रकार मगलाचरण के साथ ग्रन्थ का अभिधेय स्पष्ट हो जाने से पाठक को यह ज्ञात हो जाता है कि ग्रन्थकार अपनी रचना मे किस विषय का वर्णन करेगा। इस प्रकार के स्पष्टीकरण से पाठक उस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढता है। इसी मे ग्रन्थ और ग्रन्थकार के श्रम की सफलता का रहस्य गर्भित है। श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज अपने इस लक्ष्य मे पूर्णतया सफल हैं।

ग्रन्थ रचना मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज का उद्देश्य

ग्रन्थ रचना मे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का उद्देश्य अपना पाडित्य प्रदर्शन करना नही था। वे ज्ञानी थे, विद्वान् थे, शास्त्र पारगत थे। उन्होंने स्वदर्शन और दर्शनान्तरो के ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन भी किया था। अत चाहते तो वैसे ग्रन्थो की रचना भी कर सकते थे, जो विद्वद् भोग्य होते लेकिन वे सन्त थे, मानवीय भावो के चितेरे थे और स्व-कल्याण के साथ सर्व-कल्याण के इच्छुक थे। अत उन्होने वही लिखा, जिससे मानव आत्म-परिष्कार करके प्रवुद्ध वने और दूसरो को वोध प्रदान करे।

सन्त और उनका आचार-विचार, व्यवहार, वाणी आदि सभी कुछ अन्धकार मे पथ भूले पथिक के लिये प्रकाश स्तम्भ की भाति है। वे मोह-मूढ मानव को सन्मार्ग पर लाकर खड़ा कर देते हैं। पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज के लिये यह वात सर्वत चरितार्थ होती है। उनके साहित्य मे और प्रवचनो मे सर्वत्र मानवता के मधुर स्वर प्रतिध्वनित होते हैं। इसके साथ ही मानव को उन भय स्थानो का दिग्दर्शन कराने के लिये उसकी कमजोरियो—स्खलनाओ एव दुष्प्रवृत्तियो का भी सकेत है। जिनके पाश मे आवद्ध होकर, मानवता को भूलकर दानव वनता है। यह दानवता की दावाग्नि रमणीय विश्व के वैभव को निगलने को आतुर हो जाती है। मानव के इस शुक्ल और कृष्ण पक्ष का आलेखन कराने के साथ उन अन्ध-विश्वासो की जानकारी कराई है। जिनकी कारा मे आवद्ध होकर मानव अहित करता है। यथार्थ सत्य का वोध कराने के लिये सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सत्य, शील, तप, सयम, अहिंसा आदि की व्याख्या की है।

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने उक्त समग्र चित्रण **'कथाच्छलेन बालानाम् नीतिस्तदिह कथ्यते'** के धरातल पर किया है। उन्होंने **'सत्यं ब्रूयात्—प्रिय ब्रूयात्'** के अनुसार इस रीति से अपने कथ्य को व्यक्त किया है कि श्रोता और पाठक को यह अनुभव ही नही होता है कि यह सब तो पढे-लिखे ही समझ सकते हैं।



श्री जैन दिवाकर साहित्य की आंशिक झांकी

यद्यपि श्री जैन दिवाकरजी महाराज के समग्र साहित्य की पर्यालोचना के लिये एक स्वतन्त्र पुस्तक अपेक्षित है। अत प्रस्तुत मे उनके कुछेक विचारो का उल्लेख करके सतोष करना पड़ेगा।

श्री जैन दिवाकर जी महाराज ने यथार्थ के धरातल पर आदर्श की स्थापना की है। उन्होंने अपने प्रवचनो और रचनाओं मे मानव की उस नैसर्गिक प्रवृत्ति को दिखलाया है, जब वह प्रमाद के वश मे होकर यही सोचता रहता है कि—

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसो।
जल्दी-जल्दी क्या करता है, अभी तो जीना है वरसो ॥

इस मनोवृत्ति के कारण व्यक्ति न तो शुभ प्रवृत्तियो को करता है और न यह देखता है कि आज की होने वाली प्रत्येक क्रिया भविष्य मे अपना फल अवश्य प्रदान करेगी। वह तो पाप कर्मों को करते हुए इन्द्रिय विषयो मे रत रहते हुए यही सोचता है कि मुझसे बढकर कोई सुखी नहीं है। अपने स्वार्थ के लिये दूसरो के साथ छल-फरेब, धोखा-धडी करने से नहीं चूकता है। ऐसा करते हुए भी यही सोचता है कि धर्म-साधना आदि बुढ़ापे मे ही कर लेंगे और उस समय की जाने वाली उस साधना से वेडा पार, हो जायेगा। ऐसे लोगो को उनकी कमजोरियां वताने के साथ श्री जैन दिवाकरजी महाराज चेतावनी देते हुए एक यथार्थ सत्य के दर्शन कराते हैं और आदर्श स्थापित करते हैं—

'बुढापा आने पर पुरुषार्थ थक जायेगा फिर आत्म-कल्याण नही कर सकेगा। जब झोपडी मे आग लग जाये और झोपडी जलने लगे, उस समय तू कुंआ खुदवाने वैठेगा तो क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? समझदार और होशियार आदमी ऐसा नही करते हैं। वे तो पानी आने से पहले ही पाल बाध लेते हैं। तू बुढापा आने के पहले ही परलोक का सामान जुटा ले, फिर जुटाना कठिन हो जायेगा। प्रमाद में यह महत्त्वपूर्ण समय नष्ट मत कर।

—दिवाकर दिव्य ज्योति १३, पृ० १६२

उम्र बीतती जा रही है। क्षण-क्षण मे पल-पल मे वह कम हो रही है। तुझे ख्याल ही नहीं है। तू समझ वैठा है कि मैं यहीं रहूंगा। इस कारण गरीवो को कुचल रहा है, मसल रहा है। किन्तु समय आ रहा है कि तेरी सारी अकड़ निकल जायेगी। मस्ती काफूर हो जायेगी और तेरे सारे कृत्य ही तुझे पश्चात्ताप करने को विवश करेंगे—तू जान-बूझकर क्यो इस हालत मे पडने को तैयार हो रहा है। अरे पहले ही चेतजा!··· समल, सोच और अपनी चाल-ढाल वदल दे। कुछ भलाई के काम कर!'

—दिवाकर दिव्य ज्योति १, पृ० १२५

व्यक्ति को अपने कु-कृत्यो पर आज नहीं तो कल पश्चात्ताप अवश्य करना पडता है। फिर भी वह पाप कर्मों में लगा रहता है और वह कैसे-कैसे और किन-किन पाप कर्मों मे अपना अनमोल मनुष्य-भव खपा देता है। उसकी सक्षेप मे झाकी दिखाते हुए पूज्य दिवाकरजी महाराज ने जो चित्रण किया है वह तो इतना सजीव है कि आज के युग मे ऐसे चित्र पग-पग पर देखने को मिल जाते हैं। इससे सम्बन्धित एक लावनी के बोल हैं—



"चेतन रे थ काई-काई पाप कमाया, जिसका भेद जरा नही पाया।
असत्य आल दिया पर के शिर, या थे गर्भ गलाया।
झूठी साक्षी भरी पचा मे, जाल कर खत वणाया ॥
हरिया गरिया नाज वेचिया, सखरा मे नखरा मिलाया।
कम दीधा ने ज्यादा लीधा, नही गरीवो पर ध्यान लगाया ॥
षट् काया की हिसा कराई, ता विच धर्म वताया।
कूड उपदेश देई लोका नैं, उलटे रास्ते चलाया ॥
कर-कर कपट-निपट चतुराई, आसन दृढ जमाया।
विन साधु-साधु कहैला कर, जग को ठग-ठग खाया ॥
धर्म नाम से धन ले पर से घर धन्धा मे लगाया।
चार सघ की निन्दा कीनी, अणगल जल वपराया ॥
पापी का वण पक्षदार ने सत्यवादी ने सताया।
वन के मिथ्यात्वी कुगुरु मान्या न निर्ग्रन्थ को मनाया ॥

इस प्रकार की प्रवृत्ति वालो एव जो पापकर्म तो करते है, लेकिन उसका फल नहीं चाहते और पुण्य कर्म तो करते नही, किन्तु उसका फल चाहते हैं उनको यथार्थ का भान कराते हुए कहते हैं—

मन तो चाहे मैं सुख भोगू कर्म कटावे घास।
मन चाहे राजा वन जाऊ कर्म वनावे दास ॥
तिल घटे न राई बढे जो देखे ज्ञानी भाव।
शुभाशुभ सचित कर्म का मिले फल बिन चाव ॥

—महाबल मलया सुन्दरी चरित्र

इसीलिये पापकर्म से दूर रहकर व्यक्ति को सदैव शुभ कार्यो मे प्रवृत्ति करना चाहिये और इन शुभ कार्यों की रूपरेखा सक्षेप मे जिन शब्दो मे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने स्पष्ट की है, वह तो अनूठी ही है। उसमे सभी धर्मों और उनके शास्त्रो तथा आचार्यों के भावो को ही प्रस्तुत कर दिया है। 'परोपकार· पुण्याय पापाय परपीडनम्' के भाव को यथातथ्य रूप मे अवतरित कर दिया है कि—

किसी जीव को नही सताना कटुक वचन नही कहना।
प्रभुता पा अभिमान न करना नम्र भाव से रहना ॥

—वही

कर्म निर्जरा का साधन तप है। तीर्थंकरो ने भी तप करके निर्वाण पद की प्राप्ति की है। तपस्वी के चरणो मे वडे-वडे इन्द्र, नरेन्द्र और महेन्द्र भी नमस्कार करते है। पूणिया श्रावक जैसे एक सामान्य गृहस्थ के घर श्रेणिक जैसा राजा भी मागने आया था, तो उसका कारण तपसाधना ही थी। तप का इतना माहात्म्य होते हुए भी आज तप के प्रति व्यक्तियो की श्रद्धा उठती जा रही हैं और तप करना भूखो मरना जैसे शब्दो का प्रयोग करके कई लोग तपस्वी की खिल्ली उडाते हैं। ऐसे लोगो को तप की महिमा और उससे प्राप्त होने वाले फल को बताते हुए श्री जैन दिवाकरजी महाराज "कमला सुन्दर चरित्र" मे कहते हैं—



सौ वर्षों तक भोगे कर्म जो जीव नर्क मे जाई ।
उतने कर्म एक नो कारसी, छिन मे देत नसाई ॥
एक पोरसी तप हजार वर्षों का, कर्म खपावे ।
डेढ पोरसी दस हजार, वर्षो का कर्म हटावे ॥
दो पोरसी से लाख वर्ष के अशुभ कर्म कट जावे ।
एकाशन दस लाख वर्ष के कर्म कठोर मिटावे ॥
एकल ठाणा क्रोड वर्ष के करे कर्म का नाश ।
दस करोड वर्षो के कर्म का नीवी करे विनाश ॥
सौ कोटी वर्षो के कर्म को, आयबिल तप हरता ।
दस हजार क्रोड वर्षो का, अघ उपवास क्षय करता ॥
दस लाख क्रोड वर्षों के अभिग्रह कर्म हटाता ।
ज्ञान प्राप्त हो आभ्यान्तर से वाह्य लब्धि का दाता ॥
यही निर्जरा धर्म अन्त मे मोक्ष गति ले जाता ।
होय निरजन निराकार फिर गर्भवास नही आता ॥

नो कारसी, पौरसी, आदि जैसे साधारण तप से होने वाले सैकडो-हजारो और लाखो वर्षो के कर्मों के क्षय होने को सम्भवत लोग गपोडे मानें और अन्ध-विश्वास कहकर उपेक्षा करदे अथवा हँसी उडावें, तो ऐसे लोग जीवन की वास्तविकता से अपरिचित हैं। वे समझते हैं कि जीवन का आदि और अन्त कुछ वर्षो के बीच ही है। लेकिन जीवन एक महायात्रा है और यह अज्ञात है कि यह यात्रा कब प्रारम्भ हुई थी और कब अन्त होगी ? जब तक अन्त नही है, तब तक जीव जन्म-मरण के चक्र मे घूमता रहेगा। वे लोग तथागत बुद्ध के इस कथन को क्यो भूल जाते हैं, जो उन्होंने पैर मे काटा चुभ जाने पर कहा था कि भिक्षुओ ! आज से एकानवें जन्म पूर्व मैंने किसी जीव का घात किया था, फलत आज यह काटा पैर मे चुभा है। इसलिये लघुतम तप से भी लाखो वर्षों के कर्मों का क्षय होना कोई अनहोनी बात नही है। भले ही वे तप न करें, किन्तु श्रद्धा से विचलित न हों। जब भी उनको मोक्ष प्राप्ति का अवसर आयेगा, तब तप के राजमार्ग का अनुसरण करना पडेगा और इस मार्ग पर चलकर ही वे मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

तप की तरह शील और सयम जीवन विकास की दो पार्खें हैं। इन दोनो के योग से तप मे तो तेजस्विता आती ही है, लेकिन उसके साथ लोक-प्रतिष्ठा, लोक-सम्मान भी प्राप्त होता है। इनकी साधना के लिये न तो शरीर को कष्ट देना है और न कोई वाह्य प्रदर्शन करना है। करना है, तो सिर्फ इतना कि अपनी इन्द्रियो और मन को नियत्रित करो। इनकी प्रवृत्ति को विषय-विकारो मे नही फँसाओ ! न्याय-नीति पूर्वक लोक-व्यवहार का निर्वाह करो। इतनी सरल बात को भूलकर भी कई रूप के लोभी होकर, कई रस के लोभी होकर, कई जिह्वा के लोभी होकर पतन की ओर बढते हैं। ये कामान्ध व्यक्ति इन्द्रियो के दास होते हैं। ऐसो का चित्रण पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज की रचनाओ मे यत्र-तत्र-सर्वत्र किया गया है। क्योकि यह मानव मन की कमजोरी है कि वह पतन की ओर तेजी से बढता है, विना प्रयास के ही बढ जाता है, लेकिन ऊपर चढने उत्थान के लिये प्रयत्न करना पडता है। जैसे लेटे हुए से बैठने मे बैठे से खडे होने मे, खडे से चलने मे व्यक्ति को कुछ न कुछ श्रम करना पडता है, लेकिन चलने से खड़े होने आदि मे कुछ भी श्रम नहीं लगाना पडता, विना प्रयत्न के भी यह हो जाता है। यही उत्थान और पतन



की ओर बढने की स्थिति है। ऐसे पतनोन्मुखी लोगो को एक मीठी चुटकी लेते हुए पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज समझाते हैं, कहते हैं—

"भोग का रोग बडा व्यापक है। इसमे उडती चिडिया भी फँस जाती हैं। अतएव इससे बचने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और चित्त को कभी गृद्ध नही होने देना चाहिये।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति

दुर्जन-दुष्ट व्यक्ति सदैव दोष देखता रहता है अथवा बुराई करता है। ईर्ष्या में झुलसता रहता है। यदि कोई समझाये और उसकी कमजोरियो को दिखाये, तो अपना सुधार करने के बजाय क्रोधित होकर सज्जन व्यक्तियो को अपशब्द कहने से नहीं चूकता है। इसका ज्यो का त्यो चित्रण पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने **'बसन्तर चरित्र में' किया है**—

सारे शहेर महिमा छाई, सतिया के मन मे भाई।
कुलटा के दाय नही आई,कहे लोक निज निज पर जाई ॥
नारी एक अमित तपा बाई, पति दलिद्री वा पाई।
खावण पेरण पूरो नाई करे, पति भक्ति अति हुलसाई ॥
धिक्कार पडे थाके ताँई इच्छित पेरो इच्छित खाई।
हुकम उठवो थे नाई फेर सामो बोलो घुरराई ॥
कत्तरी मोडी ने घूरी रामतणी जाण पूरी।
लडने को तो हो पूरी काम पडिया थे रहो दूरी ॥
निज-निज पति के वाक्य सुन वे स्त्रिया तिण वार।
क्रोधानल से परजली सीमा रही न लगाई ॥
रोस करी नार्‍या केई देवे सती ने गाल।
उत्तम की निन्दा करे बाधे कर्म चडाल ॥

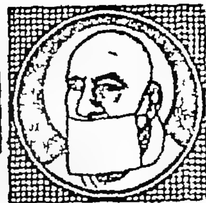
दोषी व्यक्ति अपने दोष छिपाने की कोशिश तो बहुत करता है और झूठी शेखी बघारता है। इतना विवेकहीन हो जाता है कि सही बात न कहकर बहाने बाजी से दूसरो को भ्रम मे डालने से भी नहीं चूकता है। लेकिन जानकर बात का विश्वास नही करते और उसे अपमानित होना पडता है। यह वर्णन देखिये **'द्रौपदी चरित्र'** के निम्नलिखित उद्धरण मे—

मैं उमराव राज को बाजू ऐसो कियो उपाय।
सनमुख होकर करी लडाई पाछो दियो भगायजी ॥
इण कारण सु नगरी सारी बिगड गई सुण नाथ।
पूरा पुण्य आपका जिण से रही चौगुनी बात जी ॥

× × ×

सुणता ही श्रीवासुदेव यो रोस करी फरमावे।
लाज हीण लापर मुझ आगल, झूठी बात बणावेजी ॥
म्हारे सरीखा उत्तम पुरुष वे निरदोषी शिरदार।
ज्या मे दोष बताबियो सो थारो, मनुष्य जन्म धिक्कारजी ॥

योग और भोग दोनो प्रतिपक्षी हैं। योगी विषय-भोगो को विनश्वर जान कर विरक्त हो सयम मार्ग पर अग्रसर होने की आकाक्षा रखता है, जबकि भोगी अधिक से अधिक विषय-भोगो



मे अनुरक्त होकर विरागी को भी ससार की रमणीयता मे रमण करने की सीख देता है। वह संयम मार्ग की विडम्वनाओं का वर्णन करके विचलित करने के लिये उद्यत रहता है। लेकिन सच्चा योगी इन सवसे भयभीत न होकर अपने निश्चय पर चल पडता है, वैसे ही जैसे साप काचली छोडकर वढ जाता है। इन दोनो का चित्रण जिस मार्मिक रीति से पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने **'जम्बू-चरित्र'** मे किया है वह अनूठा है और शास्त्रो मे आये वर्णन को लोक-भाषा मे जैसा-का-तैसा अवतरित कर देता है—

तन-धन-यौवन जान अवस्था जात न लागे वार।
सध्या राग फेण पाणी को ओसविंदु ससार॥
जन्म मरण का दुख जगत मे जैसे अग्नि की झार।
राग-द्वेष वश पडिया प्राणी देख रया ससार॥
सुण म्हारी जननी दुक्कर करणी ढील न करो लगार।
सयम लेने कर्म काट दू करदू खेवा पार॥

× × ×

सयम सयम जाया काई करे रे संयम खांडा की धार रे।
वावीश परिषहा सहना दोहिला रे तू सुखमाल कुवार रे॥
कुंवरा साध तणो आचार यो तो चलनो खाडा धार।
मेरु गिरी उठाणो मस्तक पीणी अग्नि की झार॥
मेण का दांत चणा चावणा सहेज नही तिवार।
भुजा करी ने सागर तिरणा जाणो पेले पार॥
सनमुख पूर के ऊपर चढ नो दुष्कर गगा धार।
दो दश ऊपर दोय परिषहा सहना दुष्कर कार॥
भवर भिक्षा के कारण फिरणो पर घर कई दुवार।
शीत उष्ण वर्षा ऋतु सहनी करना डगर विहार॥
वालु कवल मुख माहे मेलणो, सवाद नही लगार।

× × ×

इतनी सुनी ने वोल्या कुंवरजी रे माता यो कहणो थारो साच रे।
शील रतन यो मैं धारियो रे कौन ग्रह माता काच रे॥

इसी प्रकार के और भी कई चित्र श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य में पढ़ने को मिलेंगे और यदि जिज्ञासुओ को रसास्वादन करना हो, तो उनके साहित्य को अवश्य ही पढना चाहिये। प्रस्तुत प्रसग तो उनकी झलक मात्र ही दिखाते हैं।

जैन दिवाकर साहित्य के भाषायी-प्रयोग

यद्यपि पूर्व मे यह सकेत किया जा चुका है कि श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने जन-भाषा के प्रचलित शब्दो का अपने साहित्य मे प्रयोग किया है। लेकिन सर्वत्र यह वात लागू नहीं होती है। तर्ज, धुन और वर्ण्य-विषय की गम्भीरता के अनुरूप जन वोलियों व सस्कृत के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, पजावी भाषा के शब्दो का भी उपयोग किया है, जैसे—

"जुवा को यो सख्त करना, कायदे के वाहर है।
थी कमल-सी कमल यह क्यो आज वन गई खार है॥"



"रजोगम मादर तेरे इक रोज सब मिट जायेंगे।
माफी मागेंगे पिदर शरमिन्दगी उठायेंगे ॥"

× × ×

"जीगल के हिन्दी सेठजी तीगल सच्ची सारी।
ईनू सदा दीदी चाहिदा पजावी नु उच्चारी ॥"

× × ×

"मैं खतावारो मे हूँ और तू सती है वे खता।
खुद शरमगारो मे हूँ, तू बख्श दे मेरी खता ॥"

—भविष्यदत्त चरित्र

परम पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज की रचनाओ की भाषा बहुत ही सरल है और पाठक के बिना किसी प्रयत्न के समझ मे आ जाती है। फिर भी और अधिक रोचक बनाने के लिये यत्र-तत्र प्रचलित लोकोक्तियो का प्रयोग करके अधिक से अधिक सर्व जन सुगम बना दिया है। ये लोकोक्तियाँ न तो सस्कृत साहित्यगत उक्तियो का अनुवाद है और न उसी रूप मे रखी हैं। किन्तु उन लोकोक्तियो का उपयोग किया है, जो जन-साधारण मे प्रचलित है जैसे—

- "धूप छाव से सुख दुख हैं।
- पाणी पी घर पूछे जैसे ॥
- ज्यो दाजे पै नौन।
- उदर भरा उस ही घर डाका।
- जैसी होनी होय पुरुष की वैसी उपजे बुद्ध।
- कल्पवृक्ष जान के सीचा निकला धतूरा आक।
- समय जान के करे काम वह उत्तम नर ससार।
- उत्तम जन ससर्ग से निगुणा बने गुणा की खान।
- भाग्य हीन को रत्न चिन्तामण कैसे रहे कर माई।
- इण दिस व्याघ नदी दूजी दिस।
- निज हाथो से बोय वृक्ष को कौन काटे मति मन्द।

गागर की बूँद

अब उपसहार के रूप मे इतना ही सकेत करना पर्याप्त है कि प्रस्तुत निबन्ध मे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य की अनेक विशेषताओ मे से कुछेक का विहंगावलोकन मात्र किया गया है लेकिन प्रस्तुत पक्ष भी अधूरे हैं। इनके सन्दर्भ मे भी बहुत से विचारो का उल्लेख किया जा सकता है। और यह तभी सम्भव है, जब उनकी प्रत्येक रचना का सागोपाग विवेचन करने के साथ विशेष रूप से पर्यालोचन किया जाए। यहाँ तो श्री जैन दिवाकरजी महाराज के साहित्य-सागर को गागर में भरकर उसके एक बूँद के शताश का दिग्दर्शन कराया है। यह लघु प्रयास कितना सफल रहा है? जिज्ञासु स्वय निर्णय करें और यदि इसकी आदिक उपयोगिता समझी गई तो हार्दिक प्रसन्नता होगी। सक्षेप मे यही निवेदन है कि पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज का साहित्य पुज सतप्त विश्व और श्रमित मानव के लिए आन्तरिक शाति और उल्लास का प्रदाता है, कल्याणकारी मार्ग का दर्शक और शिवत्व प्राप्ति का साधन है।





जैन इतिहास के एक महान् प्रभावक तेजस्वी सन्त

✡ साध्वी श्री कुसुमवती 'सिद्धान्ताचार्य'

मालवा के नीमच नगर के प्रतिष्ठित चोरड़िया परिवार मे कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को एक महान् आत्मा श्री चौथमलजी का जन्म हुआ। यही व्यक्तित्व आगे चलकर मुनि श्री चौथमल जी महाराज के नाम से जैन इतिहास रूपी गगन मे एक प्रखर तेजस्वी-प्रतापी सूर्य बन कर चमका जिसके प्रकाश से समाज मे व्याप्त रूढियो, मिथ्या आडम्बरो, भ्रान्तियो, धर्मान्धता, जातीय मद, सम्प्रदायवाद आदि अज्ञान व कषाय से उत्पन्न दुष्प्रवृत्तियो का कुहरा खत्म हुआ। जैन तत्त्वदर्शन व वीतराग विज्ञान के इस महान् उपदेष्टा ने महल से लेकर कुटिया तक, जन-जन का मानस अध्यात्म से प्रकाशित किया तथा समता, अहिंसा, समन्वय, उदारता व सदाचार का मार्ग प्रशस्त किया।

वे सच्चे अर्थो में जैन जगत के देदीप्यमान सूर्य थे क्योकि उनके ज्ञानोपदेशरूपी प्रकाश ने बिना किसी भेद-भाव के, जन-जन को सन्मार्ग दिखलाया। उनकी आध्यात्मिक साधना की रोशनी से क्या जैन, क्या जैनेतर, क्या राजा, क्या रक, क्या शिक्षित, क्या गँवार, सभी का अन्तर्तम दूर हुआ, हृदय की कालिमा नष्ट हुई और जीवन सदाचार व सद्ज्ञान से अनुप्राणित हुआ।

मुनि श्री चौथमलजी महाराज का जीवन एक ओर जहाँ प्रखर तेजस्विता का उदाहरण प्रस्तुत करता है, वहाँ दूसरी ओर अनेक भव्यो की आत्माओ को जागृत—उद्बोधित करने वाला तथा सद्ज्ञान व सदाचार का प्रेरक भी रहा है। उनके सम्पर्क मे आये अनेक लोग सद्ज्ञान मे मार्ग पर आगे बढ सके, जो अन्यथा अज्ञान-अन्धकार मे राह भटक जाते, ठोकरे खाकर गिरते रहते और असीम दुःख के गर्त से कभी छुटकारा न पाते। इनकी प्रेरणा से हजारो मानवो ने मांस खाना-बेचना, पशु हिंसा, शिकार, मद्य-पान आदि दुर्व्यसनो का सहर्ष त्याग किया।

ठीक भी है, 'दिवाकर' से बढ कर दुनिया मे प्रकाश का बडा स्रोत नही, और न ही है, उससे बढ कर प्राकृतिक जीवन मे कोई उपकारक, प्रेरणादायक व स्फूर्तिदायक। सूर्य के प्रकाश मे अन्धकार को अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जाता है। सूर्य के साथ मुनिश्री की स्वाभाविक एकता इतनी आश्चर्यजनक है कि इनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ (जन्म, दीक्षा, अन्तिम प्रवचन व दिवगति) रविवार को घटित हुई। यह सुसगत ही था कि राष्ट्र ने उन्हे 'जैन दिवाकर' की पदवी से अलकृत किया।

मुनिश्री का व्यक्तित्व इतना महान् है कि उस पर बडे-बडे ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। किन्तु मैं तो उनके सन्त स्वभाव के प्रति विशेष आकर्षित हूँ। उसी स्वरूप के कुछ पक्षो पर प्रकाश डालना यहाँ उपयुक्त समझती हूँ।

महाकवि और नीतिज्ञ श्री भर्तृहरि ने सज्जनो का लक्षण इस प्रकार वर्णित किया है—

तृष्णां छिन्धि भज क्षमा जहि मद पापे रति मा कृथा,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय विद्विषोत्यनुनय प्रच्छादय स्वान्गुणान,
कीर्ति पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सता लक्षणम् ॥[1]

---

१ नीतिशतक—७८



तृष्णा यानि लोभ का त्याग, क्षमा-भाव, अहकार-हीनता, पाप-कार्यों से विरक्ति, सत्य-भाषण, साधु-मार्ग का अनुसरण, विद्वानो की सेवा, पूज्यो की पूजा, शत्रुओ के साथ भी विनय-नम्रता का भाव, कीर्ति की रक्षा (ऐसा कोई काम न करना जिससे अपयश हो) तथा दु खियो पर दया-भाव—ये ही सज्जनो के, सन्तो के कुछ लक्षण हैं।

मुनिश्री मे ये सारे सन्तोचित गुण थे। प्रत्येक गुण पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डालना अप्रासगिक न होगा।

१. लोभ-त्याग

सासारिक दु ख वैभव को ठुकराकर ही इन्होंने आध्यात्मिक साधना का कठोर मार्ग स्वीकार किया था। मुनिश्री के मुनि-जीवन मे भी लोभ का भाव कभी नही रहा। भौतिकता मे डूबे राजा-महाराजा गुरुदेव के सदुपदेश से प्रभावित होकर ऐश्वर्य की भेंट देना चाहते, किन्तु मुनि श्री उसे अस्वीकार कर देते थे। इनकी निस्पृहता से धनी-मानी व्यक्ति पर आध्यात्मिक प्रभाव पडे बिना नही रहता था। मुनिश्री यदि कोई भेंट लेते भी थे तो वह थी सदाचार की, दुर्व्यसन-त्याग की, अहिंसा-पालन की। एक मुसलमान नवाब से (पालनपुर चातुर्मास मे) मुनिश्री ने शिकार, शराब, मांसाहार के त्याग की भेंट ली थी जो जिन शासन की प्रभावना के इतिहास मे विशिष्ट स्थान रखती है।

यश और पदवी का भी मुनिश्री को कोई लोभ नही था। जब उनसे आचार्य-पद ग्रहण करने की प्रार्थना की गई तो उन्होंने बडे निरासक्ति भाव से कहा—"मेरे गुरुदेव ने मुझे मुनि की पदवी दी है, यही बहुत है। मुझे भला अब और क्या चाहिए।"

२. अहंकारहीनता

उन्हें जैन दिवाकर, प्रसिद्धवक्ता, जगद्-वल्लभ, आदि पदवी मिली, किन्तु वे सदा इनसे नि.स्पृह रहे। इतना अत्यधिक आदर पाकर भी उनके हृदय मे कभी अहकार नहीं दिखाई दिया। वे सदा ही स्वय को भगवान् महावीर का एक सेवक (प्रहरी) मानते थे।

अहंभावी व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा दूसरो के अस्तित्व को मिटा कर भी करना चाहता है। अहकार-हीन व्यक्ति अपने अस्तित्व को मिटा कर भी दूसरो के अस्तित्व की रक्षा करना चाहता है। महान् नीतिज्ञ विदुरजी ने उत्तम पुरुष का लक्षण बताते हुए कहा है—"उत्तम पुरुष वह है जो सब का अस्तितव चाहता है, किसी के विनाश का उसके मन मे सकल्प नही उठता।" मुनिश्री के जीवन मे अनेक घटनाओ से इनकी निरहकारिता की पुष्टि होती है। वि० सं० १९७३ मे कानोड (उदयपुर) के बाजार मे मुनिश्री का प्रवचन हो रहा था। वैष्णव भाइयो का जुलूस आने वाला था। धार्मिक साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति उस समय हो गई थी। झगडा होने की संभावना को देख कर मुनिश्री ने अपना प्रवचन बन्द करने की घोषणा कर लोगो के समक्ष अपनी निर्मानिता का प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। वास्तव मे सन्तो का स्वभाव ही है शान्ति-प्रियता।

किसी के प्रति, चाहे वह मुनिश्री की कैसी ही निन्दा करे, मुनिश्री की दुर्भावना या प्रतिकार-भावना कभी जागृत नहीं होती थी। वे सभी से हृदय खोल कर मिलते। लोग कहते, अमुक व्यक्ति वन्दना नहीं करता, तो मुनिश्री सहज-भाव से कहते—"उसके वन्दना करने से मुझे-स्वर्ग प्राप्ति होने वाली नहीं, और वन्दना न करने से वह टलने वाला नही। मेरा आत्म-कल्याण तो



मेरे अपने कार्यों से ही होगा, किसी की वन्दना से नही।"[2] मुनिश्री का यह सरल-भाव उनके श्रामण्य का सूचक है और सभी के लिए अनुकरणीय है।

असल मे सरलता जीवन-शुद्धि के लिए एक अनिवार्य गुण है।[3] भद्रता ही भद्रता का मार्ग प्रशस्त करती है[4]।

मुनिश्री लोगो को भी विनय, निरहकारता तथा नम्रता का पाठ पढाते थे। मन्दसौर चातुर्मास मे (स० १९६५) एक वृद्धा ने महाराज से कहा, "आपकी बात तो सभी लोग मान लेते हैं, पर मेरी कोई नही सुनता, मुझे भी अपना वशीकरण-मन्त्र दे दीजिये न।" महाराज ने उत्तर दिया—"माताजी! सच्चा वशीकरण है मधुर वचन। चिढाने वालो को भी आप मुख से कोई कठोर वचन न कहें। यही वशीकरण मन्त्र है।" वृद्धा ने इस मन्त्र का पालन किया और दो महीने बाद वह महाराज के पास आभार प्रकट करने आई और कहने लगी—"महाराज! आपका मन्त्र अमोघ है। मैं सुखी हो गई।"

उज्जैन चातुर्मास (सं० २००१) मे एक दिन आपने तत्व-चर्चा के प्रसग मे विनय का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा था—"मानव का कल्याण अकड कर चलने मे नहीं, अपितु नम्रता के भावो से ही सम्भव है।"

३ क्षमा-भाव

चाणक्य का एक वचन है कि जिसके हाथ मे क्षमा रूपी धनुष है, दुर्जन उसका क्या बिगाड सकता है। जैसे तिनको से रहित भूमि पर पडी आग स्वयमेव शान्त हो जाती है। क्षमा समान कोई तप नही। मुनिश्री मे क्रोध व द्वेष का कतई अभाव था। रागद्वेष की बात ही उन्हें नही भाती थी। एक बार श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के एक आचार्य को (कोटा चातुर्मास, स० २००७) आपने अपने यहाँ प्रवचन करने की स्वीकृति दी, उन आचार्य ने मुनिश्री के प्रति कुछ अनर्गल बातें कहीं। किन्तु मुनिश्री ने अपने प्रवचन मे आलोचना के प्रति एक भी शब्द नही कहा। प्रवचन समाप्त होने पर मुनिश्री मनोहरलालजी महाराज ने खोटी आलोचना का उत्तर न देने का कारण जानना चाहा, तो मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने उत्तर दिया—"लोग राग द्वेष की बातें सुनने नही आते। राग-द्वेष की बातो में सकल्प-विकल्प जगते हैं। उनका मन निर्मल होगा, तो वे स्वयं ही अपने कहे पर पश्चात्ताप करेंगे।" मुनिश्री सच्चे अर्थों मे निर्ममत्व, निरहकारता के धनी थे।

वास्तव मे क्षमा का पाठ मुनिश्री को अपनी माता से मिला था। मुनिश्री के सासारिक पक्ष के बडे भाई श्री कालूरामजी की हत्या दुर्व्यसनियो के हाथो हुई थी। पर हत्यारो के खिलाफ कानूनी कार्यवाही का प्रसंग आने पर उनकी माता केसरबाई ने हत्यारो को क्षमा कर दिया। वैर से वैर की आग बढती है, उसे क्षमा-अमृत से शात करना चाहिए—यह उनका मत था। धन्य है—यह अलौकिक क्षमा भाव। महाकवि तुलसीदास ने सन्तो को नवनीत (मक्खन) से भी बढ कर बताया है। जहाँ नवनीत अपने ताप से पिघलता है वहाँ सन्तस्वभावी व्यक्ति दूसरो के ताप (कष्ट)

---

२ दशवैकालिक, ५,२,३०

३ सोही अज्जुअभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ। —(उत्त० सू० ३।१२)

४ मद्दएणेव होअव्व पावइ मद्दाणि मद्दलो। —(उत्त० सू० निर्युक्ति, ३२६)



मे द्रवित हो जाता है। मुनिश्री की दया विश्वव्यापिनी थी। वे प्राणिमात्र को कष्ट से पीडित नही देखना चाहते थे।

क्षमा कमजोरो का नही वीरो का भूषण है। कहा भी है—'**क्षमा वीरस्य भूषणम्**'। मुनिश्री एक प्रखर तेजस्वी थे, भय नाम की कोई चीज उन्हे ज्ञात न थी। कोई भी विरोध या धमकी उन्हे अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकती थी। नीतिकार भर्तृहरि ने वीर पुरुषो के लक्षण बताते हुए कहा है कि वे न्याय-पथ से कभी विचलित नही होते[5]। सज्जनो को न्याय-मार्ग ही प्रिय होता है,[6] भले ही उन्हे कितनी ही विपत्ति झेलनी पडे। यही कारण था कि इनकी दीक्षा के समय अनेक बाधाएँ आई, इनके ससुर श्री पूनमचन्द जी ने यहाँ तक धमकी दी—"खबरदार! याद रखो, मेरे पास दुनाली बन्दूक है, एक गोली से गुरु के प्राण ले लूंगा और दूसरी से चेले के," किन्तु इन्हें कोई घबराहट नही हुई। साधु बनने के बाद भी लोगो ने आपको ससुर की ओर से अनिष्ट-आशका व्यक्त की, तो आपने निर्भयता भरे स्वर मे कहा—"आप चिन्ता न करें। आयु पूरी होने से पहले कोई किसी को नही मार सकता। यदि मैं धमकियो से डर जाता तो साधु-धर्म ही अगीकार न कर पाता।"

वास्तव मे मुनिश्री जी कोमलता व कठोरता के समन्वित मूर्ति थे। विपत्ति मे धीरता व कठोर दिल होने का उदाहरण उनके जीवन मे दिखाई पडता है तो दूसरी ओर प्राणि-मात्र के प्रति करुणार्द्रता, नम्रता के दर्शन होते हैं। भर्तृहरि ने सन्तो का यह स्वभाव बताया है कि वे समृद्धि मे कमल की तरह कोमल, पर विपत्ति के समय चट्टानो की तरह कठोर होते हैं। सन्तो को ऐश्वर्य मे कभी अहकार नही जागता, और न ही विपत्ति से घबराहट। मुनिश्री के जीवन मे सत्पुरुष की ये विशेषताएँ स्पष्ट झलकती हैं। अपने सहयोगियो के साथ व्यवहार मे वे बाहर से कठोर दिखाई पडते थे, पर भीतर से कोमल थे। एक बार उन्होंने (देवेन्द्र मुनिजी महाराज शास्त्री को) कुशल शासकता का रहस्य स्पष्ट किया था—"शासक को तो कुम्हार की तरह होना चाहिए। वह ऊपर से प्रहार करता है, किन्तु भीतर से अपने कोमल हाथ का दुलार देता है। अनुशास्ता मर्यादा-पालन कराने के लिए कठोर भी होता है और कोमल-मृदु भी। किन्तु दोनो ही स्थितियो मे उसमे परमार्थ की भावना होती है, स्वार्थ की नहीं।"

४ पाप-विरति

मनसा, वचसा, कायेन वे पूर्ण निष्पाप थे। वे तो ऐसे प्रेरणास्रोत थे जिससे पापी से पापी भी सदाचार की ओर मुड पडता था। उनका जीवन एक खुली किताब था जिसमे सदाचार की कथा थी। वे जन-जन की वैयक्तिक समस्याओ के समाधान मे तत्पर तो दिखाई देते थे, किन्तु मनसा अध्यात्म-साधना मे तल्लीन रहते थे।

५. एकता प्रयास

पापी व्यक्ति कलहप्रिय होता है तो निष्पाप व्यक्ति एकता, समन्वय व परस्पर प्रेम का प्रचारक व सस्थापक। मुनिश्री गुत्थियो को सुलझाना जानते थे, उलझाना नही। वे भिन्न तटो पर खडे व्यक्तियो को अपने सदुपदेश रूपी सेतु से मिलाना चाहते थे। वे कैंची नही, सूई थे, जो दरार

---

५ न्याय्यात्पथ. प्रविचलन्ति पद न धीरा.। —(नीतिशतक, ८४)

६ प्रिया न्याय्या वृत्ति —(नीतिशतक, २८)



पड़े हुए दिलो को जोडने का काम करती है, तोडती या काटती नही। जीवनभर वे इस प्रयत्न मे लगे रहे कि स्थानकवासी समाज एक हो, उसमे एकता स्थापित हो। इतना ही नही, वे अन्य सम्प्रदाय के लोगो से भी सहिष्णुता व उदारता के साथ वर्ताव किये जाने के पक्षपाती रहे। स्थानकवासी समाज की एकता के लिए, सगठन की निर्मल भावना से अपने सम्प्रदाय के आचार्य पद को भी नही स्वीकारा। कोटा मे स्थानकवासी, मूर्तिपूजक व दिगम्बर सम्प्रदायो के सन्तो आचार्यो को एक मच पर लाने का उनका प्रयास अविस्मरणीय रहेगा।

"महावीर जयन्ती सभी सम्प्रदायो को एक साथ मनानी चाहिए, क्योकि भगवान महावीर सबके थे"—यह उनका अभिमत था। उन्ही की प्रेरणा से उज्जैन में (स० १९७८) सभी सम्प्रदायो ने मिलकर एक साथ महावीर जयन्ती मनाई।

फूट सदा विनाशकारी होती है[7] और एकता निर्माणकारी। समाज मे परस्पर ऐक्य-भावना के लिए उन्होने कोई कसर नही उठा रखी थी। हमीरगढ मे हिन्दू-छीपो मे चित्तौड, इन्द्रगढ व कोटा आदि मे ब्राह्मण समाज मे जो फूट थी, उसे उन्होंने सदुपदेश से समाप्त किया। पाली-सघ मे वर्षों से चला आ रहा वैमनस्य मुनिश्री की ज्ञान-गगा के प्रवाह मे बह गया। इस तरह के अनेक उदाहरण हैं, किस-किस का सकेत किया जाय।

सद्ज्ञान व सदाचार—दोनो उनमे पूर्ण थे। उनका ज्ञान उनके आचार मे प्रत्यक्ष व प्रतिच्छायित होता था[8]। 'कर्म से सदाचरण व्यक्ति को यशस्वी व लोकप्रिय बना देता है'—यह शास्त्रोक्त वचन[9] उनके जीवन मे चरितार्थ होता दिखाई देता है।

आगमोक्त विधि-अनुसार[10], पाप-कर्म के बन्ध से बचने के लिए, वे सयत जीवन जीते थे। उनका चलना-उठना, बैठना, सोना, खाना, बोलना—सभी यतनापूर्वक होता था।

६ सत्य भाषिता

महात्माओ की सत्यभाषिता स्वाभाविक गुण है[11]। वे जो कुछ अन्तर मे है, उसे ही व्यक्त करते हैं। उनके मन, वाणी और कर्म मे एकता होती है[12]। मुनिश्री चौथमलजी महाराज भी जैसा सोचते थे, जैसा सद्ज्ञान उनमे था, उसी के अनुरूप उनकी करनी थी। वाणी और चरित्र मे उनमे एकरूपता थी। यही कारण था कि उनका भाषण बडा प्रभावी होता था। उनके प्रवचन सरल, सरस, सुबोध, सुलझे हुए और गम्भीर चिन्तन से अनुप्राणित होते थे। 'सत्य' के प्रति उनकी निष्ठा उनके निम्नलिखित कथन से स्पष्ट होती है—

"जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नही रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नही रह सकता और सूरज के साथ रात नही रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ, और झूठ के

---

७ भेदात् विनाश सघानाम् —(महा० भ० शां० पृ० ८१, ८५)

८ नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा। —(उत्त० सू० २८, ३०)

९ सुभासियाए भासाए सुकडेण य कम्मुणा।
पज्जण्णे कालवासी व जस तु अभिगच्छइ॥ —(ऋषिभासित—३३, ३४)

१० जय चरे जय चिट्ठे, जय आसे जय सए।
जय भुजतो भासतो, पाव कम्म न बधई॥ —(दशवै० ४, ८)

११ मुखे सत्या वाणी, (नीतिशतक, ६५)

१२ मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। —(चाणक्यनीति)



साथ सत्य का निर्वाह नही हो सकता। एक म्यान मे दो तलवारें कैसे समा सकती हैं ?" ठीक भी है, जैन 'दिवाकर' का असत्य रूपी रात से मेल रह भी कैसे सकता है ?

वे एक बार जो कह देते, उसकी रक्षा करते। एक घटना यहाँ प्रासंगिक होगी। एक बार मुनिश्री ने कुछ भक्तो की प्रार्थना पर 'उदयपुर' पधारने की स्वीकृति दे दी। बाद मे कुछ लोगो ने वहाँ न आने का अनुरोध किया। उन लोगो का कहना था कि प्रवचन मे जनता नही आएगी, जिन-शासन तथा मुनिश्री की अवमानना होगी। किन्तु महाराजश्री ने स्पष्ट कहा—"मेरे प्रवचन मे जनता आएगी या नही, इस आशका से मैं कभी चिन्तित नही होता। मेरे मुख से जो शब्द निकल गए हैं, मुझे उनका पालन अवश्य करना है।" इस पर उन लोगो ने कहा—"हमारा सघ आपका विरोध करेगा।" पर महाराजश्री ने पुन अपना आत्मविश्वास दोहराते हुए कहा—"किसी विरोध से मैं भयभीत होने वाला नहीं। हम तो उग्र परीषहो से भी नही घबराते।"

कहते हैं, महात्मा के मुख से जो वचन निकल जाता है, वह सत्य हो जाता है। प्रकृति भी सन्तो के कहे वाक्य की सत्यता की रक्षा करती है। एक बार इन्होने रतलाम मे (स० १९७८ में) एक आदिवासी मरणासन्न युवक के अच्छे होने की मंगल-कामना व्यक्त की थी, और आश्चर्य की बात है कि वह युवक अच्छा हो गया था।

७ विद्वानो तथा पूज्यो का आदर

मुनिश्री जी सभी विद्वानो तथा वरिष्ठ साधुओ के प्रति आदरभाव बरतते। ससारी पक्ष की माता श्री केसर बाई का इनके जीवन-निर्माण मे अपूर्व योगदान था। मातृ-उपकार के प्रति मुनिश्री सद विनम्र, कृतज्ञ और आदर-भाव युक्त रहे।

८ कीर्ति रक्षा

सत्पुरुष अपनी सत्पुरुषता की रक्षा हेतु सतत प्रयत्नशील रहता है। मुनिश्री भी अपने श्रामण्य की रक्षा हेतु हमेशा चेष्टावान रहते। श्रामण्य का मूल समता[13] मुनि का मूल ज्ञान[14]—ये दोनो मुनिश्री में अनुपम थे।

साधु-पुरुष सामान्य गृहस्थ की अपेक्षा अधिक साधनामय होता है। साधु का जीवन निरन्तर आत्मिक साधना की लौ मे पल-पल विसर्जित होता रहता है। मुनिश्री भी जीवन का एक-एक क्षण निरर्थक न खोते। स्वाध्याय मे लीन रहते, प्रवचन करते, तत्व-चर्चा करते, चतुर्विध सघ की उन्नति हेतु जो कुछ कर सकते करते—ये ही सामान्यत उनकी दिनचर्या थे। कोई उन्हें आराम करने के लिए कहते, तो वे उत्तर देते—"साधक के लिए आराम कैसा ? हम श्रमण हैं, श्रम हमारा कर्तव्य है।" निन्दा, विकथा और अनर्गल व्यर्थ की बातो की ओर ध्यान लगता न था। कदम-कदम पर आत्मोदय ही उनका चरम लक्ष्य था। ७४ वर्ष की आयु मे भी उनका ३-४ घण्टे निरन्तर जप-ध्यान चिन्तन प्रतिक्रमण करना और उस समय नींद को एक पल भी न आने देना आश्चर्य-जनक है।

---

१३ समयाए समणो होइ —(उत्त० सू० २५. ३१)
१४ नाणेण य मुणी होइ —(उत्त० सू० २५. ३१)



६ दु.खियो पर दया

सत्पुरुषो का स्वभाव ही है कि सब का उपकार करते हैं[15]। इस कार्य मे उन्हे आनन्द आता है। मुनिश्री का जीवन परोपकार मे ही लगा रहा। उनके हृदय मे प्राणिमात्र के प्रति अपार करुणा थी। उनकी लोक-कल्याणकारी उपदेश-वाणी राजप्रासादो से लेकर साधारण झोपडियो तक मे दिनानुदिन अनुगुंजित रहती थी। जिधर भी, जब भी निकल जाते, सब ओर दया, दान, सेवा, सहयोग के रूप मे करुणा का सागर उमड पडता था। उनके उपदेश का प्रभाव था कि हजारो राज-कर्मचारियो ने रिश्वत न लेने की प्रतिज्ञा की। हजारो ने मद्य-मास छोडा। वेश्याओ ने घृणित धन्धे त्यागे। समाज-उत्थान की दिशा मे अनेक कार्य हुए। अनेक विद्यालय स्थापित हुए। वात्सल्य फण्डो की स्थापना हुई। अनेक लोकोपकारी सस्थाएँ उनकी स्मृति मे समाज-सेवा का कार्य कर रही हैं। मातृजाति के कल्याण के लिए कितनी ही प्रभावशाली योजनाएँ उनकी सत्प्रेरणा से साकार हुईं। उनका सान्निध्य ही इतना प्रभावकारी था कि लोगो का जीवन सदाचारमय हो जाता था। अनेक पत्थर दिल इन्सान पिघले, पापी सच्चरित्र हो उठे—यह सब उनके विराट् व्यक्तित्व का प्रभाव था।

आज उस महान् सन्त की जन्मशती मनाई जा रही है। श्रद्धा-सुमन चढाये जा रहे हैं। मेरा भी उन्हें शत-शत नमन!



छोटी-सी भेंट

गुरुदेव श्री एकबार उदयपुर महाराणा के निवेदन पर राजमहल मे प्रवचन करने पधारे। मैं भी उस समय गुरुदेव के साथ था। प्रवचन मे स्वय महारानीजी भी उपस्थित थीं और भाव-विभोर होकर सुन रही थी। प्रवचन समाप्त होने पर महारानीजी ने एक चाँदी की बडी थाली मे रुपये (कलदार) भरकर गुरुदेवश्री के भेंट भेजी। गुरुदेवश्री ने पूछा—"यह क्या ? क्यो ?"

"यह महारानी साहिबा की तरफ से एक छोटी-सी भेंट है""?"

गुरुदेव ने स्मितपूर्वक कहा—"हम साधु अपरिग्रही हैं। ऐसी भेंट नही लेते। भेंट देनी हो तो भेंट अवश्य लेंगे, पर त्याग-व्रत की त्याग की थाली मे व्रतो के रुपये रखकर हमें दीजिए, हमें वही चाहिए।"

—केवल मुनि

---

१५ (क) नीतिशतक, ७६

(ख) सन्त स्वय परहितेषु कृताभियोगा। —नीतिशतक, ७४



श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सुधारवादी प्रयत्न, राजनीतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में

—पीयूष कुमार जैन

सामाजिक जीवन से जुडा हुआ हर व्यक्ति परिवर्तन चाहता है, किन्तु इन परिवर्तनो की मांग के पीछे उसके स्वय के स्वार्थ भी जुडे रहते हैं इसलिए वह सुधारक कहलाने का योग्य अधिकारी नही है। समाज-सुधारक वही कहलाता है जिसमे स्वार्थमय भावना न हो, जो सच्चे मन से चाहता हो कि समाज के अन्दर घुसी हुई बुराइयाँ, समाप्त हो, चाहे उसमे मेरे व्यक्तिगत हित का बलिदान ही क्यो न हो। ऐसे ही व्यक्ति के प्रयत्न अवश्य सफल होते है और वह निश्चय ही समाज मे सुधार ला सकता है।

सन्त समुदाय एक ऐसा समुदाय जो दलितो की ओर देखता है उसके मन मे दया के भाव उत्पन्न होते है वह उनका उद्धार करने की सोचता है जबकि सामान्य व्यक्ति के मन मे घृणा का भाव उत्पन्न होता है, वह चाहता जरूर है कि इनकी बुराइयाँ जरूर दूर हो, किन्तु प्रयत्नशील नही होगा जबकि सामान्य से ऊंचा उठा व्यक्ति शीघ्र ही प्रयास शुरू करेगा।

वह व्यक्ति जिसका ध्येय सुधार ही हो वह हर क्षेत्र मे सुधार करने का इच्छुक रहता है और सफल होता है, किन्तु कुछ बाधाएँ जरूर आती है वह बुद्धि कौशल से उन बाधाओ को दूर कर सकता है।

हर क्षेत्र मे सुधार करने वाला व्यक्ति विरला ही होता है और इन विरलो मे ही "जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज" का नाम भी प्रतिष्ठा के साथ लिया जा सकता है।

महाराज श्री के सामाजिक सुधार के लिए किये गये कार्य

महाराजश्री का जीवन हमेशा पतितो के उद्धार मे लगा रहा। आपने सभी जातियो को एक साथ बैठाकर उनको जैन धर्म के सिद्धान्तों के बारे मे समझाया। आप उस साहूकार की तरह से थे, जो मूल से अधिक ब्याज पर ध्यान देता था, आपने अपने समाज से अधिक पतितो के उत्थान के लिये कार्य किया।

सन्त जीवन कांटो से भरा पथ होता है और जिसमे जैन समाज का साधु तो अनेक मर्यादाओ के बधन से बँधा हुआ होता है। वह अपने समाज को ही उपदेश देकर शान्त हो जाता है, लेकिन उसके परिणामो की ओर ध्यान नही देता है। जबकि आपने उसी पथ पर चलते हुए, मर्यादाओ के बन्धन को मानते हुए, उन जातियो का उत्थान किया जो सामाजिक दृष्टि से निर्बल एव आर्थिक दृष्टि से निर्धन थे। गुरुदेव ने उनकी निर्बलता को पहचाना, उनको लगा कि इन जातियो का सामाजिक जीवन जीने का पथ गलत है। यदि इनको पथ-प्रदर्शक मिल जाये तो निश्चय ही इनका उत्थान सभव है और महाराजश्री उनके उत्थान मे जुड गये। इस सम्बन्ध मे उनके जीवन से जुडे हुए कुछ प्रसग निम्न है

भीलों को अहिंसा का पालन कराना

भील जाति उस समय पशुओ का वध कर उनको बेचते थे और समूह मे पशुओ को मारने के लिए वनो मे आग लगाकर उन्हें जीवित ही पकाकर उनका भक्षण कर जाती थी।



वि० स० १९६६ मे नाई (उदयपुर) मे जैन दिवाकरजी महाराज पधारे, वहाँ तीन-चार हजार भील एकत्र हुए तथा आपके ओजस्वी व्याख्यान को सुनकर हिंसा त्याग की प्रतिज्ञा ली।

खटीक जाति द्वारा अपने पैतृक-धधे का त्यागना

खटीक जाति वर्तमान मे कसाई जाति ही मानी जाती है वह अपना लालन-पालन बकरो को काट कर, उनका मास बेचकर करते थे, लेकिन वह आर्थिक दृष्टि मे निर्बल ही थे, उनका जीवन भी शान्तिमय नही था। गुरुदेव के प्रवचनो को सुनकर उन्होने अपने पैतृक धन्धे का त्याग किया। आपके इस प्रयत्न का यह अमृतफल भीलवाडा, सवाई माधोपुर, कोटा आदि के आसपास के खटीको को प्राप्त हुआ और अधिक से अधिक सख्या मे उपस्थित होकर इस कार्य को त्यागा। आपके कुशल प्रयत्नो एव उपदेशो से प्रभावित होकर खटीको ने शराब का भी त्याग किया। इस सदर्भ मे एक प्रसग है—

आर्थिक दृष्टि से हर वस्तु के दो पहलू होते हैं—एक को लाभ होता है, तो दूसरे को हानि। खटीक तो सुधर गये किन्तु शराब के ठेकेदार को हानि हुई। उससे आबकारी इस्पेक्टर भी प्रभावित हुआ। वह महाराजश्री के पास गया एव अनाप-सनाप बोलने लगा। कहने लगा—आप सन्त को किसी का धधा बन्द करा देना कहाँ तक उचित है।"

गुरुदेव ने कहा कि शराब पिलवाना और किसी को तन-धन से बरबाद करना कहाँ तक उचित है? आप स्वय सोचिये कि एक के पेट के लिये हजारो का पेट काटना कहाँ तक उचित है, वह इस्पेक्टर निरुत्तर हो गया और चला गया।[1]

महाराजश्री के जीवन की एक चाह यह थी कि हर दलित वर्ग उन्नति करें। भारतीयो मे एक प्रवृत्ति है कि वश-परम्परा का त्याग नही करते। वह रूढिवादी है चाहे उनके वशज ने कोई गलत नियम बनाये, नियम को गलत समझते हुए भी वह रूढिवादी बने रहते हैं। जब-जब भी जिस व्यक्ति ने रूढिवादिता को तोडने का प्रयत्न किया उसे समाज ने तिरस्कृत किया। इसलिये भयभीत व्यक्ति समाज के भय से अपने पैतृक व्यवसाय को छोडकर दूसरा व्यवसाय अपनाने का प्रयत्न नही करता है और जब इनको किसी महान् पुरुष द्वारा परित्याग करने का आग्रह किया गया तो इनको लगता कि इस पुरुष का स्वार्थ है। यही बात जैन दिवाकरजी महाराज के साथ भी हुई। जब वह खटीको को अहिंसामय प्रवचन देते तो उस खटीक समाज के पाखडियो ने डट कर विरोध किया और अपने समाज के लोगो को बहकाते हुए कहा कि यह लोग तुम्हारा धर्म-भ्रष्ट कर रहे है।

साच को आच नही, यही कार्य जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का था। उन्होंने उन लोगो की निन्दा ध्यान मे नही रखते हुए अपने मानव-धर्म के कार्य मे जुटे रहे।

ऐसी ही घटना जैन दिवाकर श्री चौथलमजी महाराज के साथ जुडी हुई है। महाराजश्री के प्रवचन को सुनकर ६० गाँवो के चमारो ने शराब छोड दी लेकिन यह बात जब ठेकेदारो को पता चली उन्होंने अधिकारियो से शिकायत की। अधिकारियो ने अपनी आतकमय प्रवृत्ति के भय से चमारो को शराब पीने को विवश किया लेकिन चमार लोग जानते थे कि यह कार्य अपने जीवन को नष्ट कर देगा इसलिए उन्होने किसी के भय के आगे झुकने से इकार कर दिया।

---

१ जैन दिवाकर, पृष्ठ ६५



आपके जीवन के साथ ऐसी कई घटना जुडी हुई है यदि उनका वर्णन किया जाये तो शायद एक पुस्तक तो उन घटनाओ की बन सकती है।

एकता व संगठन के अग्रदूत

समाज की एकता को सही रूप मे जिन्होंने चाहा उनमे जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज साहब का नाम सादर लिया जा सकता है। महाराजश्री के द्वारा किये गये प्रयत्न निश्चय ही अधिक समय तक स्थाई रूप से नहीं रह सकें। इस दीपक का प्रकाश जब तक इस समाज पर था वह समाज प्रकाशित रहा, लेकिन आज यह हाल हो गया है कि छोटे-छोटे साधु समाज मे फूट डालने का कार्य कर अपनी सत्ता स्थापित कर रहे हैं और बडे मौन साधे बैठे हैं। यह बात निश्चित है कि उनके मन एकता की इच्छा जरूर है लेकिन सफल प्रयास नही कर पा रहे हैं।

महाराजश्री जहाँ भी गये वहाँ समाज की इस फूट को मिटाने का पूर्ण प्रयास किया। आपने समाज की एकता प्रयास राजस्थान मे सबसे अधिक किया। वि सं० १९७२ मे ब्यावर और अजमेर में, आपने अथक प्रयास किया एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। समाज की फूट से दुःखी थे, उनका कहना था—

दो भाई आपस मे लड-भिडकर अपना बटवारा करना चाहे और अपनी माता के टुकड़े करना चाहे तो आप उन्हें क्या कहेंगे ? यही कहेंगे कि इनसे बढ कर कपूत दुनिया में और कौन हो सकता है जो अपनी माता के भी खण्ड करने को तैयार हो गये हैं। आप जाति को भी माता मानते हैं, फिर धडे बन्दी करके अपनी जाति माता के टुकड़े कर डालना क्या उसके पूतो का कर्तव्य है।[1]

आपके जीवन्त चरणो से जब मालव भूमि धन्य हुई तो आपकी वाणी की गरिमा को सुनकर उज्जैन श्रीसघ जो कई भागो मे बँटा हुआ था वह एक हो गया। आपके प्रयासो से उज्जैन मे दिगम्बर-श्वेताम्बर सभी ने एक साथ महावीर जयन्ति मनायी।

महाराजश्री हमेशा जैन समाज, साधु संस्था एवं देश के सामाजिक ढाचे के परिवर्तन का प्रयास करते रहे। उन्होंने अपना समय समाज के उद्धार मे बिताया। उनकी वाणी इतनी गम्भीर एव प्रभावशील थी कि यदि कोई व्यक्ति एक बार सुन ले, तो वह प्रभावित होकर उनके बताये मार्ग पर चलता था उनकी वाणी का प्रभाव ही था जो उनके पश्चात् आज खटीक वीर वाल के नाम से जाने जाते हैं एव जैन समाज का प्रमुख अग माने जाते हैं। वे ४० वर्ष पूर्व खटीक के रूप मे जाने जाते थे आज उनका जीवन सुखी एवं सम्पन्न है उन्होंने आज भी उस महान् गुरु को नही भूला है जिसने एक नई क्रान्ति उनके जीवन में ला दी थी।

जैन दिवाकरजी महाराज ने सामाजिक स्थिति को बहुत करीब से देखा, उन्होंने सामाजिक जीवन मे फैली कुरीतियो को मिटाने मे पूर्ण सहयोग दिया। हरिजन जाति के लोगो को समाज के सदस्यो के बराबर आसन पर बिठाया। उन्होंने कभी छुआछूत पर विश्वास नही किया।

आपके प्रयत्नो से बलि-प्रथा, वेश्या नृत्य आदि भी बन्द हो गये जिसने भी उनसे शपथ ली उसके लिए उनका कहना था "त्यागी पुरुष को कभी भी त्यागी हुई बात को नही अपनाना चाहिए यह तो वमन को फिर से भक्षण करना है।"

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ८, पृष्ठ १८७



आपने अपने भागीरथ प्रयत्नो से स्वधर्मी वात्सल्य नाम पर प्रचलित मृत्यु-भोज को भी वन्द कराया। इस उपकार को जीवनभर मानव जाति नही भूल सकती।

महाराजश्री के उपदेश केवल जैन समाज के लिए ही नही थे। राजनीतिज्ञो को भी उन्होंने काफी प्रभावित किया। आपके द्वारा प्रारम्भ किया गया पतितोद्धार आज अन्त्योदय के नाम से जाना जा रहा है। यह कार्य महाराजश्री ने ६५ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया।

हरिजनोद्धार कार्य आज एक राजनैतिक कार्यक्रम वन गया है, हर राजनैतिक पार्टी हरिजनोद्धार के नाम पर अपनी राजनैतिक रोटी सेंकने का, कार्य करने का प्रयत्न किया जा रहा है जबकि वास्तविकता यह है कि कार्य राजनैतिक आधार पर करने मे उसका उद्देश्य चुनाव तक सीमित रहता है जिसका ढिंढोरा ज्यादा पीटा जाता है, लेकिन कार्य कुछ भी नही होता है। सामाजिकोद्धार का कार्य निस्वार्थ भाव से करने पर ही वह कार्य ठोस होता है, वास्तविक रूप से सही कार्य होता है। महात्मा गाधी ने निस्वार्थ भाव से यह कार्य किया था, तो वे विश्ववन्धु हो गये हैं लेकिन उनके कार्य को एक राजनीतिक जामा पहनाया जा रहा है।

महाराजश्री ने इस कार्यक्रम को स्वय के वल, वाणी के चमत्कार के जरिये किया, जिसका प्रचार-प्रसार उन लोगो के तक ही रहा जिनका जीवन सुखी एव समृद्ध हो गया एव सम्पूर्ण समाजो में प्रमुख स्थान मिलने लगा। महाराजश्री ने भगवान महावीर के सेवक के रूप मे अहिंसा एव अपरिग्रह के प्रचार-प्रसार मे अपना जीवन विताया। अहिंसा का सिद्धान्त आज विश्व के लिए भी आवश्यक वन गया है। अहिंसा का यह सिद्धान्त स्वतन्त्रता के सग्राम के समय भी अपनाया गया जिसमें अहिंसात्मक सत्याग्रह प्रमुख है।

महाराजश्री के समय भारत ही क्या विश्व मे राजतन्त्रीय प्रणाली थी जिन पर अँग्रेजो का प्रभाव था। महाराजश्री अँग्रेजो के कार्य से प्रसन्न नही थे। उन्होने देखा कि अँग्रेजो के प्रभाव से भारतीय सस्कृति छिन्न-भिन्न होती जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति पाश्चात्य सस्कृति को अपना रहा है अत उन्होंने दुखित होकर कहा था—

"खेद है कि भारत के लोगो मे अपनी सस्कृति, साहित्य, विज्ञान और कला के प्रति घोर उपेक्षावृत्ति उत्पन्न हो गयी है और इसी कारण वहुत-सी चमत्कार उत्पन्न करने वाली महत्वपूर्ण विद्याओ का लोप हो गया है। वची-खुची लुप्त हो रही हैं। यह देशवासियो के लिए गौरव की वात नही है। देश-भक्ति का सच्चा अर्थ यही है कि देश की सस्कृति को, साहित्य को, विज्ञान और कला को उन्नत और विकसित किया जाय।"[१]

वह भारतीयो की गुलामी से दुखी थे उनके मन में एक स्वतन्त्र भारत का नक्शा था। वे चाहते हर गरीब-अमीर स्वतन्त्र रहे एव अपना जीविकोपार्जन करता रहे। उन्होंने कहा—

"जो कोई दूसरे के अधिकार को कुचलते हैं वह देशद्रोही हैं और धर्म-विरोधी हैं। वह जनता के अविश्वास का पात्र बनता है और ईश्वर से विमुख होता है।"[२]

राष्ट्र को पूर्णतया समर्पित यह सच्चा साधु राष्ट्र के लिए चिंतित रहा। हमेशा जनता के दुख-दर्द को दूर करने का प्रयत्न करता रहा। वह जानता था कि आज का शासक पथ-भ्रष्ट यानि

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग, ५, पृष्ठ २३३

२ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग, ९, पृष्ठ २५७



मदिरापान एवं वेश्यागमन का पथिक है और जब तक शासक स्वय यह कार्य नहीं छोड़ेगा तो प्रजा भी नही छोड़ेगी। चूँकि उस समय राजतन्त्र था। प्रत्येक नगर ग्राम मे जागीरदारी, जमींदारो के राज्य थे इसलिए उन्होंने अधिक-से-अधिक जागीरदारो को समझाया, जमीदारो को समझाया उनको सार-गर्भित उपदेश दिये, बुराइयो से हानि वतलाई और उनसे इन बुराइयो से दूर रहने की सलाह दी। शासक वर्ग उस समय साधु को सिर्फ याचक रूप मे ही जानता था। उन्होंने महाराजश्री को धन-दौलत देनी चाही, लेकिन गुरुदेव ठहरे एक जैन साधु जो धन-दौलत तो क्या एक समय का भोजन भी रात्रि को सग्रह करके नहीं रख सकता। वह धन का क्या सग्रह करेगा ? उन्होने धन के बदले शासको से निवेदन किया—आपके गांवो, आपके राज्य मे मदिरापान, बलि-प्रथा आदि बन्द करा दी जावें। उनके इस त्याग को देखकर शासक वर्ग ने अपने राज्यो मे इस प्रकार के आदेश निकाल दिये एव उन्होंने अपनी बुराइयो को भी दूर किया जिससे 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत चरितार्थ हुई।

जैन दिवाकर

(तर्ज—दिल लूटने वाले जादूगर)

गुरु जैन दिवाकर पर उपकारी, जग को जगाने आये थे
राह यहाँ जो भूल गये प्राणी, उन्हे राह दिखाने आये थे।टेर।
वह दिव्य पुज प्रगटाया था, नीमच की पावन भूमि मे
मात रु पिता का मन मानस, खिल उठा था निर्मल उर्मी मे
यौवन की उठती आयु मे, रगभूमि मे रग लाये थे।१।
पर वह प्रकाश लघु सीमा मे, सोचो कव रहने वाला था
माया की अँधेरी अटवी मे भी, जिनके सग उजियारा था
व्यूह भेद दिया और निकल पडे, वे रग मे एक रग लाये थे।२।
वन गये पथिक सयम पथ के, जुड गये त्याग की कडियो मे
कर लिया ज्ञान गुण का सग्रह जीवन की सुनहरी घड़ियो मे
गुरु मिले थे हीरालाल जिन्हो से, ज्ञान खजाना पाये थे।३।
वाणी थी तीर्थसम जिनकी, यात्री थे नर-पति नर-नारी
दर्शन कर कलिमल धोते थे, दुर्जन हिंसक अत्याचारी
वन गये सुखी वे जीवन मे जो पापो को छिटकाये थे।४।
बन्धुत्व भावना और दया को अपनाने की कहते थे
जाते थे जहाँ गुरु सब ही को "मूल" मत्र यह देते थे
विसरायेंगे न कभी तुमको, जो चरणो मे सुख पाये थे।५।

—मधुर वक्ता श्री मूलमुनि



संस्कार परिवर्तन तथा सुसंस्कार निर्माण में श्री जैन दिवाकर जी का योगदान

[कोई भी परिवर्तन, सुधार और क्रान्ति तब तक सफल नही, जब तक सस्कार परिवर्तन न हो। सस्कार परिवर्तन की बुनियादी क्रान्ति के सूत्रधार श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रयत्नो की समीक्षा पढिए"']

☆ श्री सज्जनसिंह मेहता
एम० ए० 'प्रभाकर'

अन्धकार, घोर अन्धकार को चीर कर, निशा को नष्ट कर प्रभात के साथ भानु अपने प्रकाश से लोक को आलोकित कर देता है। दिनकर के अवतरित होने पर अन्धकार लुप्त हो जाता है। महापुरुप भी प्रकाशपुञ्ज दिवाकर की भाँति ज्ञानपुञ्ज होते हैं जो अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। यही नही, यह दिवाकर तो केवल दिन मे ही प्रकाश प्रदान करता है, लेकिन वो दिवाकर तो अपना ज्ञान-प्रकाश सदैव प्रसारित करते हैं। महापुरुपो का जीवन संसार के प्राणियो के लिये पथ-प्रदर्शक होता है। अनेक मूर्खों की अपेक्षा एक विद्वान अत्यन्त हितकर होता है। कहा भी है—

चन्दन की चुटकी भली, गाडी भला न काठ।
चतुर तो एक ही भलो, मूरख भला न साठ॥

अनन्त सितारो की अपेक्षा चन्द्र अधिक महत्त्वपूर्ण है। गाडीभर लक्कड की अपेक्षा चन्दन का एक छोटा-सा टुकडा अत्यन्त उपयोगी हो सकता है। अनेक मूर्ख साथियो की अपेक्षा एक विद्वान् साथी अधिक हितकर हो सकता है। इसलिए महापुरुपो का जीवन विशेष महत्वपूर्ण होता है। महापुरुपो का जीवन-चरित्र पतित एव उच्च, भोगी एव त्यागी, अन्यायी एवं न्यायी, सामान्य एव विशेप सभी के लिए प्रेरणादायक हो सकता है। ये महापुरुष अपने पुरुषार्थ द्वारा समाज मे व्याप्त कुसस्कारो, अन्धविश्वासो एव रूढियो को समाप्त कर नवीन संस्कारो का निर्माण करते हैं। जैन दिवाकर पूज्य श्री चौथमलजी महाराज साहब ऐसे ही महापुरुष थे, जिन्होंने एक नवीन क्रान्ति पैदा कर दी। संस्कारों के परिवर्तन में तथा नवीन सुसस्कार निर्माण में पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब ने अपने समय मे अद्वितीय कार्य किया।

उद्यान का कुशल माली खट्टे के पौधो मे अच्छे सस्कारित नारगी, मोसम्मी आदि की कलम (आंख) लगाकर खट्टे के पौधो को नारगी, मोसम्मी आदि मे बदल देता है, देशी आम पर कलमी आम की कलम चढा कर उसे भी उन्नत किस्म के आम का पौधा बना देता है, उसी प्रकार पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज ने देश के विभिन्न वर्गों मे, विभिन्न समाजो मे व्याप्त कुसस्कारो को दूर कर सस्कारो का बीजारोपण किया। उनका यह कार्य निर्धनो, अछूतो की झोपडियो से लेकर राजा-महाराजाओ के महलो तक प्रसारित हुआ। उस वक्त मे समाज की विचित्र दशा थी। देश पराधीनता की बेडियो में जकडा हुआ था, राजा-महाराजा सुरा-सुन्दरी के मोह मे बेभान थे, सेठ-



साहूकार येन-केन-प्रकारेण न्याय-अन्याय का विवेक खोकर धनोपार्जन मे व्यस्त थे, निर्धन एव पिछडी जाति के लोग भी मद्य-मास के सेवन द्वारा उत्तरोत्तर अधोमुख हो रहे थे। देश एवं समाज का वडा भाग विपिन मे खोये राहगीर की भाँति वेभान था। ऐसे विपम समय मे पूज्य श्री दिवाकर जी महाराज साहव ने ज्ञान एव विवेक की ज्योति जगा कर पथभ्रष्ट व्यक्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी वाणी मे आश्चर्यजनक शक्ति थी। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर सुना ही करते। अपने विचारो को मूर्त रूप देने में वे अटल थे। वे दृढ सकल्प के धनी थे। पतित से पतित वर्ग के व्यक्तियो का उद्धार पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहव द्वारा हुआ। आपके व्याख्यान एवं प्रचार शैली मे ऐसी विशेषता थी कि राजा-महाराजा से लेकर पतित एव अछूत कहलाने वाले तक मे आपके प्रति श्रद्धा एवम् भक्ति उमड आती। उनके जीवन की कुछ वास्तविक घटनाओ द्वारा मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि सस्कार परिवर्तन एव सुसस्कार निर्माण मे जैन दिवाकरजी महाराज का योगदान अद्वितीय था।

वेश्याओ पर प्रभाव—वेश्याएँ अपने कलकित पेशे के कारण समाज मे घृणा की पात्र हैं तथा इहलोक एव परलोक दोनो ही विगाडती हैं। जोधपुर मे पूज्य गुरुदेव के व्याख्यानो का ऐसा प्रभाव हुआ कि वेश्याएँ भी आपके व्याख्यान मे आने लगी तथा कई वेश्याओ ने वेश्यावृत्ति का त्याग कर दिया एव कई वेश्याओ ने मर्यादा कर ली। वेश्याएँ स्वय अपने धन्धे से घृणा करने लगी। दिवाकरजी महाराज साहव ने वेश्याओ को सन्मार्ग पर लगा दिया। वेश्यावृत्ति को वन्द करने हेतु एव सुधार हेतु एक सभा का भी गठन किया गया।

खटीकों द्वारा हिंसा त्याग—खटीक लोग पशुवध का धन्धा कर घोर हिंसा करते हैं। दिवाकरजी महाराज साहव ने इस क्षेत्र मे गजव का कार्य किया। गाँवो मे रहने वाले खटीको को, शहरो मे रहने वाले खटीको को तथा मार्ग मे भी वकरो को ले जाते हुए खटीको को मार्ग मे ही समझाकर हिंसा का सदैव के लिए त्याग करवा देते।

केसूर (धार) मे आपके उपदेशामृत से प्रभावित होकर, लगभग ६० गाँवो के चमार लोगो ने मद्यमास निषेध का इकरारनामा लिखा। इससे इस जाति मे मद्य-मास रुक गया। इस पर शराव के विक्रेताओ को हानि हुई और उन्होंने इन लोगो की प्रतिज्ञा तुडाना चाहा। लेकिन चमार लोगो ने यह निश्चय कर लिया कि भले ही प्राण चले जावें परन्तु त्याग भग नही होगा। काफी सघर्ष चला फिर भी चमार टस से मस नही हुए। अन्त मे कलारो ने अपनी पराजय समझी एव उन्होने भी मद्य के सेवन व विक्रय आदि का त्याग कर लिया।

इसी प्रकार भील लोग भी प्रभावित हुए। सवत् १९६५ मे उदयपुर के निकट 'नाई' नामक गाँव मे आस-पास के भील क्षेत्र के मुखिया लोगो ने व्याख्यान सुने एव वहुत प्रभावित हुए। चार पाँच हजार भीलो के प्रतिनिधियो ने कई प्रतिज्ञाएँ लीं।

सवत् १९७१ मे गगापुर मे आपकी अमृत-वाणी से प्रभावित होकर, वहाँ के जिनगर (मोची) लोगो ने मास-भक्षण एव मदिरापान का त्याग किया। इतना ही नही वे जैन वन गए एव जैन धर्म की सामायिक, दया, पौषध, उपवास आदि क्रियाओ का श्रद्धापूर्वक पालन करने लगे। इसी प्रकार मेवाड, मारवाड, दक्षिण, खानदेश आदि प्रान्तो के कई जिनगरो ने मास एव मद्य का त्याग किया एव जिसके फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति मे वहुत सुधार हो गया।



इस प्रकार पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहव के व्याख्यानो एव प्रयासो से प्रभावित होकर खटीक, मोची, कलाल, चमार, भील, मुसलमान आदि कई पिछडी एवं क्रूर जाति के लोगो ने, जो कुसस्कारो मे पले, मद्य-मास सेवन, चोरी, वेश्यावृत्ति आदि कुसस्कारो का त्याग कर अपना जीवन निर्मल एव सस्कारित वनाया। पीढियो से चली आ रही दुष्प्रवृत्तियो का त्याग करना अत्यन्त दुष्कर है, फिर भी आपके प्रयासो से व्यक्तिगत एव सामूहिक रूप से दुष्प्रवृत्तियो का त्याग किया गया। जव इन पिछडे वर्ग के निर्धन लोगो ने मद्य-मास का त्याग किया तो उनके दैनिक जीवन मे भी वहुत परिवर्तन हो गया एव आर्थिक स्थिति मे भी सुधार हुआ।

भारत वर्ष मे देवी स्थानो पर वलि चढाने की प्रथा वहुत अधिक प्रचलित थी। पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहब इसे सहन नहीं कर सके तथा अपने अहिंसापूर्ण प्रवचनो एव प्रभावशाली व्यक्तित्व के द्वारा अनेक स्थलो पर वलि वन्द करवा दी। नवरात्रि के दिनो मे होने वाले इस घोर हिंसा काण्ड का इन्होने विरोध किया तथा हर सम्भव प्रयास द्वारा इस हिंसक प्रवृत्ति एव अन्धविश्वास को दूर किया। इस कार्य के लिए उन्होंने सम्वन्धित राजा-महाराजा, ठाकुर आदि का सहयोग प्राप्त किया तथा अगणित जीवो को अभय दान दिया। इससे लोगो मे व्याप्त अन्धविश्वास भी दूर हुआ।

सवसे महत्त्वपूर्ण कार्य जो पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज साहव ने किया वह था—उस वक्त के शासक वर्ग मे व्याप्त कुसस्कारो को हटाना। उस समय राजा-महाराजाओ एव ठाकुरो का शासन था। वे शासन के मद मे चूर थे तथा न्याय, अहिंसा तथा सदाचार को भूल चुके थे। जनता की खून-पसीने की गाढ़ी कमाई का पैसा तत्कालीन शासक वर्ग शिकार, सुरा, सुन्दरी तथा ऐशोआराम मे बर्बाद करते थे। धन की वर्वादी के साथ-साथ वे अपना परलोक भी बिगाडते। महाराजश्री ने इस वर्ग के सुधार का दृढ सकल्प किया एवम् इन लोगो मे त्याग-प्रत्याख्यान करवा कर अद्वितीय कार्य किया। जहाँ गुरुदेव पधारते वही शिकार, हिंसा, मास, मदिरा के त्याग होते। इस वर्ग मे ऐसे त्यागो का ताता-सा लग गया। उन सव त्यागो का उल्लेख यहाँ करना सम्भव नहीं है। मैं यहाँ पर वहुत सक्षेप में इस वर्ग मे हुए सुधारो का उल्लेख करना चाहूँगा। ठाकुरो एव राजा-महाराजाओ ने स्वय भी त्याग किये तथा अपने शासित क्षेत्र मे सार्वजनिक घोषणा द्वारा, हिंसा, वलि, मद्य-मास विक्रय पर पूर्ण या आशिक प्रतिवन्ध लगा दिया। जहाँ भी आप पधारे वहाँ के शासको ने आपकी आज्ञा शिरोधार्य की तथा अपने राज्य मे हिंसा आदि को रोकने के लिए आज्ञापत्र जारी किये।[1]

कैसा विचित्र प्रभाव था श्री दिवाकरजी महाराज साहव की वाणी मे! जो राजा-महाराजा, राव, ठाकुर आदि सदियो से जिन वस्तुओ का उपयोग करते आ रहे थे तथा शासन के अभिमान मे मदहोश थे, वेभान थे, उन्हें कौन समझा सकता था? समझाना तो दूर रहा परन्तु उन्हे कहने का साहस भी होना दुष्कर था। लेकिन दिवाकरजी महाराज ने इन राजा-महाराजाओ मे व्याप्त कुसस्कारो को हटाया तथा सुसस्कारो का बीजारोपण किया। यही नही, शासक वर्ग के जिन व्यक्तियो ने प्रतिज्ञाएँ ली या घोषणाएँ करवाई, उन्होंने वहुत ही सम्मान सूचक शब्दो एव विनम्र भावो का प्रयोग किया है। शासक वर्ग मे सुसस्कारो का निर्माण जितना पूज्य श्री दिवाकरजी

---

१ ये घोषणा-पत्र इस ग्रन्थ के खण्ड ३, पृ० १३३ से १७२ तक देखें।



महाराज ने किया, इन वर्षों मे न पहले देखा गया एव न उसके बाद आज तक ही इनकी सानी का कोई भी उदाहरण दिखाई नही देता। जो प्रतिज्ञाएँ या घोषणाएँ की जाती थी उनकी प्रति वे बडे आदर-भाव से पूज्य गुरुदेव को भेंट करते थे। वैष्णव धर्म से प्रभावित होते हुए भी ये लोग दिवाकरजी महाराज साहब के व्याख्यानो को बडे चाव से सुनते थे तथा बार-बार सुनने के लिए लालायित रहते थे। धर्म के प्रति और वह भी जैन धर्म के प्रति इनकी इतनी रुचि जागृत होना बहुत विशाल परिवर्तन था सस्कारो मे।

मैंने इस लेख मे जैनेतर समाज के लोगो के संस्कारो मे हुए परिवर्तनो के बारे मे ही अधिक निवेदन किया है क्योकि मेरा उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि जैनेतर समाज मे इतना सस्कार परिवर्तन हो सकता है, तो अपने ही समाज मे परिवर्तन होना तो बहुत स्वाभाविक है। पूज्य गुरुदेव ने जैन एव जैनेतर समाज पर अत्यन्त उपकार किया है तथा सस्कार परिवर्तन एवं सुसस्कार निर्माण मे आश्चर्यजनक कार्य किया है। उस समय मे जैन समाज मे कन्याविक्रय की प्रथा प्रच-लित थी। गुरुदेव ने जहाँ भी इस कुप्रथा को पाया, अपने मार्मिक उपदेशो द्वारा उसका उन्मूलन किया। चित्तौडगढ़ का ओसवाल, माहेश्वरी एव इतर समाज कन्या विक्रय के लिए कुख्यात था। वहाँ की इस प्रथा का अन्त करवाया। जैन समाज वणिक वर्ग है। इस वर्ग मे शोषणवृत्ति का अन्त करने, अप्रमाणित माप-तोल का अन्त करने, मुनाफाखोरी को रोकने आदि के लिए भी बहुत प्रयास किया एवम् उसमे भी आपको बहुत सफलता मिली। जैन समाज ही नही, अन्य समाज भी युगो-युगो तक आपके ऋणी रहेंगे। देश के कोने-कोने मे भ्रमण कर आपने लोगो मे व्याप्त दुष्प्रवृत्तियो एव कुसस्कारो को परिवर्तित करने मे अद्वितीय योगदान दिया। जिन खटीको के हाथ हिंसा के कारण लहू से सने रहते थे, उन्ही खटीको ने हिंसा का त्याग किया। जो राजा-महाराजा सुरा-सुन्दरी मे सदैव मशगूल रहते थे उन्होंने श्री दिवाकरजी महाराज के उपदेश से, उसे बुरा समझकर त्याग कर दिया।

दया मूलक सार्वजनीन लोकप्रियता का एक उदाहरण और प्रस्तुत है। सन् १९२२ ई मे मुनि श्री मयाचन्द्रजी महाराज साहब ने ३३ उपवास की तपस्या की। तप की पूर्णाहुति के पावन प्रसग पर मिल, कारखाने, कसाईखाने आदि बन्द रखवाने का प्रयास किया गया। पूज्य दिवाकरजी महाराज द्वारा प्रेरित किये जाने पर वही के मिल मालिक लुकमान भाई ने, जो मुसलमान थे, अपनी मिल बन्द रखी। ऐसे अवसर पर मोहर्रम का त्यौहार होने पर भी अभक्ष्य मास आदि के स्थान पर अपने जाति भोज मे मीठे चावल बनवाये और आपके प्रयत्नो से १०० बकरो को अभयदान दिया गया। इसी शहर उज्जैन मे एक दिगम्बर जैन, मिल के प्रधान व्यवस्थापक को कहने पर उन्होंने भी मिल बन्द रखी।

संवत् १९७२ मे दिवाकरजी महाराज पालनपुर पधारे। पालनपुर मे नवाबो का शासन था। आपके व्याख्यानो एव त्यागमय जीवन से प्रभावित होकर पालनपुर के तात्कालीन नवाब ने आजीवन शिकार, मद्यपान एव मासभक्षण तीनो का त्याग कर दिया। साथ ही साथ अपनी रियासत मे आज्ञा जारी की कि जहाँ भी पूज्य दिवाकरजी महाराज पधारे उन्हे पूर्ण सम्मान देवें एव अनेक व्याख्यानो का श्रवण करें।

देवगढ की राजकुमारी लक्ष्मीकुमारी चूडावत ने एक बार सिकन्दराबाद मे जैन साध्वी श्रीसायर कुँवरजी महाराज के दर्शन किये एव भक्ति प्रदर्शित की। साध्वीजी ने राजकुमारीजो की भक्ति देखकर पूछा कि जैन सन्त-सतियो के प्रति उनकी इतनी भक्ति कैसे जगी? राजकुमारी जी



ने बताया कि पूज्य दिवाकरजी महाराज ने अपने धर्मोपदेश द्वारा राजकुमारीजी के सम्पूर्ण परिवार का उद्धार कर दिया, कुसस्कारो को दूर कर नवीन सुसंस्कारो का सचार किया, इसलिये जैन साधुओ के प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा है। वे हैदराबाद से सिकन्दराबाद दर्शन हेतु ही आई थी।

डूंगला (राज०) मे श्री माणकचन्द जी दक थे। वे बडे जिद्दी एवम् व्यसनी थे। उन्हे समझाने का साहस सामान्यतया नही होता था। लेकिन पूज्य गुरुदेव के व्याख्यानो ने केवल उनके व्यसन ही नही छुडाये वरन् सयमी साधु बना दिया। वे तपस्वी माणकचन्दजी महाराज बन गये।

पूज्य श्री दिवाकरजी महाराज के उपकारो को लिपिबद्ध करना अत्यन्त दुष्कर है। उन्होंने सस्कार-परिवर्तन एव सुसस्कार निर्माण मे जो कार्य किया है वह अन्यत्र देखा जाना सम्भव नही है। जीवन मे सस्कारो का अत्यन्त महत्त्व है, सुसस्कारो से जीवन बनता है, तो इसके अभाव मे जीवन पतन के गर्त मे जा गिरता है। पूज्य गुरुदेव ने ऊँच-नीच कुलो मे, निर्धन-धनपति परिवारो मे सभी क्षेत्रो में धर्म का जयघोष कर दिया। कहा भी है—

धुन के पक्के कर्मठ मानव, जिस पथ पर बढ़ जाते हैं।
एक बार तो रौरव को भी, स्वर्ग बना दिखलाते हैं॥

वास्तव मे हमारे चरित्र नायक भी धुन के धनी थे। विषम परिस्थितियो मे जन्म लेकर, प्रतिकूल वातावरण मे रहकर भी उन्होंने परिस्थितियो को परिवर्तित कर दिया। उन्होंने हत्यारे, चोर, दस्युराज, हिंसक, शराबी, जुआखोर, तस्कर, शोषक, व्यसनी दुराचारी आदि सभी प्रकार के कुसस्कारो से परिपूरित मानव के वेश मे दानवो को सस्कारित कर दानव से मानव ही न बनाया, वरन् कइयो को देवता भी बना दिया।

धन्य हैं ऐसे महापुरुष, जिन्हें हर समाज आज याद करता है। अछूतों और राजा-महाराजाओ को बदलने मे निःसन्देह, महाराजश्री ने अद्वितीय कार्य किया।

॥ जय जैन जगत दिवाकर ॥

पता—
सज्जनसिह मेहता
कानोड (राजस्थान) PIN No. 313604

☆

क्या सेवा करें ?

एक दिन महाराणा फतहसिहजी ने अपने निकटतम सलाहकार कारूलालजी से पूछा—कारू ! महाराज साहब के लिए क्या खर्च करें ? वे तो कुछ लेते ही नहीं हैं। गतवर्ष एक स्वामीजी का चौमासा कराया था, १०० साधु साथ मे थे। नित के माल घुटते थे। हजारो रुपये खर्च हो गये। और इन महाराज साहब के लिए तो एक पैसा भी खर्च नहीं ? इनकी सेवा क्या करें····?

—केवल मुनि



दृढ़ निश्चयी पथ-प्रदर्शक सन्त

☆ साध्वी श्री रमेशकुमारी 'प्रभाकर'

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले दिल।
यह वह नहीं थे जिनको जमाना बना गया॥

पहाड की बुलन्दियो से निकलने वाले चश्मे को भला कौन रास्ता देता है। कौन उनके लिए सडकें बनाता है? कोई भी तो नही। वह तो खुद ही गाता, मुस्कराता और पहाड़ की चट्टानो को चीरता, अडचनो को दूर करता हुआ, अपना रास्ता बनाता चलता है। वह तो जिधर से निकल गया उधर से ही आगे खुद ही उसका रास्ता साफ होता चला गया। भला पुरनूर आफताब को मशरिक की क्या परवाह? उसने तो जिधर से ही अपना चमकता हुआ सिर निकाला वही मशरिक। इसी तरह अहले दिल भी अपना जमाना खुद बनाया करते हैं। वे जमाने के मोहताज नहीं हुआ करते कि जमाना आए और उन्हे बना जायें। बल्कि वह तो जमाने के तेज से तेज चलने वाले धारे को, अपने आहनी इरादो से मोम की तरह मोड दिया करते हैं। ऐसे ही अहले दिल, उर्दू शायर के शब्दो मे मस्ती के साथ गुनगुनाया करते हैं।

बहर मे रोक दें किश्ती जहाँ, साहिल हो जाय।
हम जहाँ रख दें कदम, बस वही मंजिल हो जाय॥

इस पाक गंगा और बुलन्द हिमालय के देश मे, हजारो-लाखो हस्तियाँ कुछ ऐसी भी हो गुजरी हैं जिनका दिल गगा की तरह पाक-साफ और अभ्र हिमालय की तरह मजबूत और बुलन्द था। श्रद्धेय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज जो अब मजी की एक आला कहानी हस्ती बन चुके हैं, वह ऐसे ही पाक-साफ और बुलन्द इरादो के इन्सान थे। उन्होंने जमाने का इन्तजार नही किया कि वह उनको बनाये, बल्कि अपने जमाने को, अपनी जिन्दगी को, खुद अपने ही बलबूते पर, अपनी ही हिम्मत पर, अपने ही पाक-अमल और सही इल्म के वजूद पर, उन्होंने बुलन्द से बुलन्द बनाया। जैन धर्म दिवाकर दरअसल एक आला हिम्मत और सच्चे मर्द थे। पर हकीकत एक ऐसे मर्द, जो अपने आहनी इरादो एव फौलादी जज्बातो और कुव्वतो से जमाने तक को ही बदल डाले। उसे नया रग ही अपने औसाफ से दे डाले। जमाने के तेज से तेज चलने वाले धारे को उन्होने एकदम मोड कर एक नया रूप दिया। एक नई दिशा एक नई शिक्षा-दीक्षा दी। त्याग, सयम बाअमल इल्म और रूहानी जज्बातो को अपनी जिन्दगी का एक मकसद ही बना लिया था। जमाने ने उनको नही, बल्कि उन्होंने जमाने को बदला। एक उर्दू शायर के शानदार लफ्जो मे—

लोग कहते हैं, बदलता है जमाना अक्सर।
मर्द वह है, जो जमाने को बदल देते हैं॥

जवानी मे ही बा-अमल फकीरी की राह पकड ली थी और मुस्तैद कदमो से वे अपनी रूहानी मंजिल की जानिब बढ चले थे। सच्ची दरवेशी तो दिवाकरजी महाराज की रूहानी जिन्दगी का एक जुज ही बनकर रह गई थी। वह सच्ची फकीरी जिसके सामने दुनियावी ऐशो-



इशरत कुछ भी औकात नही रखते उन्होंने सच्चे यकीन के साथ हासिल की थी। उर्दू शायर भी इसी बात को इस तरह कह रहा है—

यकीं पैदा कर ऐ वन्दे, यकीं से हाथ आती है।
वह दरवेशी जिसके सामने झुकती है मजबूरी ॥

फकीरी का पाक जामा उन्होंने दिल से पहना था। इसी से तो उम्र भर आपने तह-दिल से निभाया भी और खूब शानदर ढग से निभाया। तभी तो दुनिया आज उन्हे अपना रहवर मानती है, उनको खुशी से सिजदा करती है, सिर झुकाती है और उनका नाम लेना बाइसे-फख समझती है। वह फकर जिसकी शान के सामने, शाने-सिकन्दरी भी कोई चीज नही है। वह फकर जिसके मुकाबले मे, तख्तो ताज लश्करो-सिपाह, मालो-जर, दुनियाँ की सब नेमते हेज ठहरती है।

जिस प्रकार का मालिक शाहो का शाह है और बादशाहो का बादशाह। वह फकर श्रद्धेय श्री चौथमलजी महाराज की जिन्दगी मे लाहन्तिहा मौजूद था। वही फकर जिसकी तारीफ मे शायर कह रहा है—

निगाहें फकर के सामने, शाने सिकन्दरी क्या है?
खिराज की जो गदा हो, वह कैसरी क्या है?
फकर के है मौज जात, तख्त-ताज-लश्कर व जिख सिपाह।
फकर है मीरो का मीर, फकर है शाहों का शाह ॥
न तख्तो ताज में है, न लश्करो जरो सिपाह में है।
जो बात मर्दे-कलन्दर की बारगाह मे है ॥

परम श्रद्धेय दिवाकरजी महाराज की किस-किस वस्फ की तारीफ लिखूं? उनकी तो सारी जिन्दगी ही औसाफ की कान थी! खुशमिजाजी, जिंदादिली, खिदमतपरस्ती, नेक चलन और पाक अमल, किस-किस का अफसाना लिखने वैठूं? उनके एक-एक वस्फ की तारीफ मे पोथे के पोथे और दिवान के दिवान लिखे जा सकते हैं। फिर भी दो सतरें एक शायर के शब्दो मे दोहरा ही देती हूँ—

सखावत, शुजाअत, इबादत, रियाजत।
हर एक वस्फ मे तुझको थी काबलीयत ॥

उनकी जिन्दगी एक महकते हुए फूल की जिन्दगी के मानिन्द थी। फूल की महक तो थोडी देर तक कायम रहती है। फूल के मुर्झाते-सूखते ही, उसकी हस्ती भी खत्म हो जाती है, लेकिन दिवाकरजी महाराज के आसफ की खुशबू तो हमेशा-हमेशा महकने वाली खुशबू है। वह उनकी जिन्दगी के वक्त भी थी, वह उनके चले जाने के बाद आज भी है। और इसी तरह मुस्तकबिल भी उसकी महक से महकता ही रहेगा। क्या अपना, क्या पराया? सब दिवाकरजी महाराज के औसाफ की खुशबू से मुअत्तर रहे है और रहेंगे। जैसा कि एक शायर ने कहा है—

फूल बन करके महक, तुझको जमाना जाने।
भीनी खुशबू को तेरी, अपना बेगाना जाने ॥



सचमुच मे एक ऐसे ही हमेशा के लिए कायम रहकर खिलने वाले फूल बनकर, गुलशने आलम मे महके थे। बेशक वे इन्सान थे, लेकिन उनकी जिन्दगी एक पूर-नूर मेहरो-माह से भी बढ़कर थी। तभी तो शायर को कहना ही पड़ा, आपको देखकर—

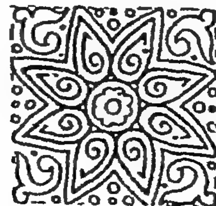
निगाह बर्क नहीं, चेहरा आफताब नहीं।
वही आदमी थे, मगर देखने की ताब नहीं॥

श्रद्धेय दिवाकरजी महाराज के कौल और फैल खुशी हो या गम यह नहीं कि उनका दिल कुछ सोचे और जबान कुछ कहे। जबान कुछ कहे और फैल कुछ और ही कर गुजरें। नहीं, दिल, जबान और अमल यह तीनो आपके यक्सा रहे हैं। तभी तो आप एक महान् पुरुष बन सके, पाकबातन कहला सके। इसीलिए तो कहता है—

कौल और फैल से, खयालात हैं उनके यकसा
पाक-बातन जो जमाने मे हुआ करते हैं॥

उनकी जिन्दगी शुरू से आखिर तक पाक और साफ रही है। वे सदाकत की राह पर चलकर मंजिले-हकीकत पर पहुंच गए। और दुनिया के लिए दामने-गेती पर अपने नक्शे कदम छोड गए। ताकि और भी कोई मुसाफिर इन नक्शे कदम पर कदम दर कदम चलता हुआ मंजिले मकसूद तक पहुंच सके। श्री दिवाकरजी महाराज अपने वस्फो से, अपने अमल से, अपनी शीरी कलामियो से, अपनी जिन्दादिली से और अपनी पुर-मुहब्बत मीठी यादगारो से, आज भी हमारे सामने मौजूद है। और हैं हमेशा-हमेशा के लिए हमारे दिल मे कायम। वे दर हकीकत अब हमसे जुदा होने वाले नहीं हैं। चूंकि मिट्टी का बना हुआ यह जिस्म ही तो पानी है, इन्सा के औसाफ तो पानी नहीं? वे तो हर हालत मे हमेशा के लिए कायम रहने वाले हैं। मरने वाला सिर्फ आंखो से ही दूर होता है। लेकिन बिल्कुल फना तो नहीं होता। अपने औसाफ से, अपने नाम से और अपने कौल और फैल से तो वह इस दुनियां मे कायम रहता है। इसी तरह दिवाकर जी महाराज के लिए भी यही कहा जा सकता है कि वे सिर्फ हमारी आंखो से ही दूर हुए हैं दिलो से दूर नही। वह दिलो मे तो हमारे, ज्यो के त्यो मौजूद हैं और सदियो तक मौजूद रहेंगे, इसमे जरा भी सन्देह की गुंजायश नही है। बस अब तो मैं उर्दू शायर सर इकबाल के लफजो मे आखिरी बात कहकर, उस दिवाकरजी महाराज को अपने श्रद्धा की चन्द अधखिली कलियाँ भेंट करती हूँ।

मरने वाले मरते हैं, लेकिन फना होते नहीं।
ये हकीकत मे कभी हमसे, जुदा होते नहीं॥





मुनिश्री चौथमलजी महाराज के काव्य में सामाजिक चेतना के स्वर

श्री संजीव भानावत, जयपुर

क्रान्तदृष्टा जैन दिवाकर प० मुनिश्री चौथमलजी महाराज साहब सामाजिक क्रांति और चेतना के सवाहक रहे हैं। तत्कालीन समाज मे जब रूढिगत मान्यताओ के प्रति लोगो की निष्ठा और अन्ध श्रद्धा बढ़ती जा रही थी, तब मुनि श्री चौथमलजी महाराज ने अपने प्रवचनो तथा कविताओ मे इन कुप्रथाओ तथा रूढ़िगत मान्यताओ के खिलाफ आवाज बुलन्द कर एक आदर्श समाज की स्थापना का आह्वान किया। विषय-वासनाओ से दूर, पुरुषार्थ तथा सत्कार्य मे प्रवृत्त होना ही मनुष्य की विशेषता है। इस मर्म को समझाते हुए आपने कहा—

अत्यन्त परिश्रम से जिनको, उत्तम साधन मिल जाते हैं।
सत्कार्य मे उनको नियत करें, वे श्रेष्ठ पुरुष कहलाते हैं॥[1]

मनुष्य जीवन मे दुःख-सुख चक्र की भाँति आते रहते हैं। अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियो मे हमे समता भाव रखते हुए अपने आचरण को नियन्त्रित रखना चाहिए। अपने सुख की खातिर दूसरो को पीडित या दुखित करना त्याज्य है—

प्रतिकूल परिस्थिति होते भी, जो न्याय मार्ग अपनाता है।
वह इष्ट पदार्थ को पाकर के, श्रेष्ठ पुरुष बन जाता है॥[2]

अवाछनीय कार्य मे सलग्न व्यक्ति कभी भी समाज मे प्रतिष्ठित नही हो सकता। ऐसे व्यक्ति मानवता के लिए कलक हैं, मनुष्यता के शत्रु हैं। इनकी मान, मर्यादा व इज्जत गलत कार्यों में प्रवृत्त होने से स्वत. समाप्त होती जाती है—

जो अनुचित कार्य करें उनकी, सब दुनिया हँसी उड़ाती है।
और उनकी इज्जत हुर्मत भी, सब मिट्टी मे मिल जाती है॥[3]

वस्तुत. मानवता का चोला धारण करना ही पर्याप्त नही। स्नेह, सहयोग और सद्भाव पूर्वक जीवनयापन करना ही वास्तविक जीवन है। कथनी व करनी के अन्तर को समाप्त करने का आग्रह करते हुए तथा जीवन मे विरोधाभास की स्थिति को नष्ट करने की प्रेरणा देते हुए मुनिश्री ने कहा—

यदि वेष साधु का धार लिया, तो इसमे क्या बलिहारी है।
पर प्रगट साधुता को करना, यह जग मे कठिन करारी है॥[4]

दुष्ट के साथ दुष्टता का तथा सज्जन के साथ सज्जनता का व्यवहार तो सभी करते हैं किन्तु मनुष्य का बड़प्पन तो इस बात मे है कि वह दुष्ट के साथ भी सज्जनता का व्यवहार करे। इसी भाव को अत्यन्त सुन्दर उदाहरण द्वारा समझाते हुए आपने कहा—

---

१ मुक्ति पथ, पृ० २।
२ वही, पृ० ६।
३ वही, पृ० २।
४ वही, पृ० २।



चन्दन को कुल्हाड़ी काटे है, वह उसे सुगन्धित करता है।
सज्जन बनने वाला नर भी, यह उदाहरण मन धरता है ॥[1]

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने अपने अमृत वचनों में सदा नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना की है। मनुष्य के करणीय और अकरणीय कर्तव्यों को उन्होंने अत्यन्त सरल भाषा व लहजे में समझाया है। एक स्थान पर वे कहते हैं—

जो दुखियों पर नित दया करे, वह हर्गिज दुख नहीं पाता है।
जो ढाये जुल्म बेकसों पर, वह गम में दिवस बिताता है ॥[2]

विभिन्न राष्ट्रों पर विजय पाना सरल है, विभिन्न जातियों या समूहों को गुलाम बना लेना बड़ी बात नहीं है किन्तु मन को गुलाम बनाना या उस पर नियन्त्रण स्थापित करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। मुनिश्री ने कहा—

बस यही विजय सर्वोत्तम है, सब विजयों का है सार यही।
अपने ही मन पर विजय करो, विजयी का है आधार यही ॥[3]

भारतीय संस्कृति व धर्म पर लम्बे समय से विदेशी आक्रमण होते रहे हैं। इन आक्रमणों के बावजूद हमारी संस्कृति ने, हमारे धर्म ने अपनी मौलिकता को नहीं त्यागा वरन् इस संस्कृति के विशाल उदर में अन्य संस्कृतियाँ समाविष्ट हो गयी। धर्म-संस्कृति की विभिन्न परिभाषाएँ दी गयी हैं तथा दी जा सकती हैं, लेकिन मुनिश्री की यह परिभाषा कितनी सरल और सुन्दर है—

चाहे तो जमाना पलट जाय, पर धर्म नहीं पलटाता है।
जो पलट जाय वह धर्म नहीं है, धर्म तो ध्रुव कहलाता है ॥[4]

पुस्तकीय ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं है। पुस्तकों के अध्ययन से हमें बाहरी ज्ञान तो हो सकता है किन्तु आत्मज्ञान नहीं। आत्मज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान बताते हुए आपने कहा—

तन मन्दिर को है खबर नहीं, अंदर किसका उजियाला है।
पर आत्मा उसको जान रहा, वह खुद उसका रखवाला है ॥[5]

मुनिश्री ने धर्म के नाम पर व्याप्त थोथे कर्म-काण्डों एवं बाहरी आडम्बरों पर चोट करते हुए धर्म के शुद्ध रूप की प्ररूपणा की और सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा दी—

जब हाकिम से मिलने के लिए, बढ़िया पोशाक सजाते हो।
तो मालिक से मिलने के लिए, क्यों रूह न पाक बनाते हो ॥[6]

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय तथा मांसाहार, मदिरापान, द्यूतक्रीड़ा, चौर्य-वृत्ति, परस्त्रीगमन, धूम्रपान जैसे कुव्यसन मनुष्य के लिए अत्यन्त घातक हैं। इन व्यसनों के चक्र में फँसे व्यक्ति के सभी प्रगति द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं। वह अपना आत्मघात तो करता ही है, साथ ही परिवार की खुशहाली व समृद्धि के लिए भी अभिशाप सिद्ध होता है। मुनिश्री ने समाज में व्याप्त इन कुव्यसनों के घातक परिणामों के प्रति मानव-मात्र को सचेत किया।

---

१ मुक्ति पथ, पृ० ५।
२ वही, पृ० १।
३ वही, पृ० ३।
४ वही, पृ० ११।
५ वही, पृ० १।
६ वही, पृ० १।



क्रोध मे मनुष्य अपने होश-हवाश खो बैठता है। मुनिश्री क्रोध को दुश्मन से भी अधिक भयकर वताते है क्योकि इससे मौहब्बत के रिश्ते क्षणभर मे ही टूट जाते है। क्रोधी व्यक्ति की मन·स्थिति असामान्य होती है। उसका प्रभाव शरीर को भी विकृत बना देता है। क्रोधी व्यक्ति के सन्दर्भ मे आपने कहा—

सलवट पडे मुँह पर तुरत, कम्पे मानिन्द जिन्द के।
चश्म भी कैसे बने, इस क्रोध के परताप से ॥[१]

व्यक्ति को कभी मान नही करना चाहिए। मान मनुष्य की सारी प्रतिष्ठा को पल भर मे समाप्त कर देता है। चमन के खिले पुष्पो से मानी व्यक्ति की सटीक तुलना करते हुए मुनि श्री कहते हैं—

जैसे खिले हैं फूल गुलशन मे अजिजो देख लो।
आखिर तो वह कुम्हलायगा, तू मान करना छोडदे ॥[२]

जुआ या द्यूत निषेध पर भी आपने अपने प्रवचनो मे वल दिया है। जुआ को आपने सभी व्यसनो का सरदार वताते हुए कहा कि इस व्यसन से धनवान निर्धन हो जाते हैं, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, सम्पत्ति गिरवी रखनी पडती है तथा ऐसा व्यक्ति न दुनिया का रहता है, न दीन का, न गुरू का रहता है, न पीर का। वे कहते हैं—

द्रौपदी के चीर छीने पाण्डवो के देखते।
राज्य भी गया हाथ से, तू जुआबाजी छोड़ दे ॥[३]

शराव के दुष्परिणामो से हम अवगत ही हैं। आज जनता सरकार भी नशाबन्दी की ओर तीव्र गति से अग्रसर है, किन्तु शराव के दुष्परिणामो को मुनिश्री ने कई वर्ष पूर्व ही भाँप लिया तथा इस व्यसन से सभी को दूर रहने की सलाह दी। शरावी व्यक्ति की मन·स्थिति का विश्लेषण करते हुए मुनिश्री ने कहा—

वकते-वकते हँस पड़े, और चौंक के फिर रो उठे।
वेहोश हो हथियार ले, शराब के परताप से ॥[४]

रात्रि मे भोजन करना अनेक वीमारियो को आमन्त्रण देना है। मुनिश्री ने कहा कि रात्रि मे भोजन करना बडा भारी पाप है। रात्रि मे भोजन करने वाले को क्या पता चलेगा कि भोजन मे, दाल मे कीडे हैं या जीरा ? वह तो चीटियो को भी जीरा समझकर खा जायगा। रात्रि-भोजन को स्वास्थ्य व धर्म दोनो को नष्ट करने वाला वताते हुए आपने कहा—

चिड़ी कमेड़ी कागला, नहीं रात चुगण जाय।
नर देहधारी मानवी, तू रात मे क्यो खाय ?[५]

बीडी, सिगरेट और तमाखू के व्यापक प्रचलन से मुनिश्री परिचित थे। यह कुव्यसन आज की युवा-पीढी मे भी व्याप्त हो गया है। मुनिश्री ने फरमाया कि तमाखू के धुंए से मकान ही काला

---

१ जैन गजल गुल चमन बहार, पृ० ६। २ वही, पृ० ७।
३ वही, पृ० १०। ४ वही, पृ० १२-१३।
५ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग २, पृ० २५९।



नहीं होता बल्कि दिल भी काला हो जाता है तथा फेंफडे भी जलकर खाक हो जाते हैं। तमाखू पीने वालों को फटकारते हुए आपने कहा—

है बुरी ये चीज ऐसी, खर नहीं खाता इसे।
इन्सान होके पीने को तू, किस तरह लाता इसे ॥[1]

इसी प्रकार समाज मे व्याप्त अन्य कुव्यसनो पर भी मुनिश्री ने कटु प्रहार कर देश की युवा पीढी को नये समाज रचना के लिए ललकारा है। युवा पीढी मे उत्साह व उमग होती है तथा वह शीघ्र पुरातन को त्याग कर नवीनता को आत्मसात कर सकने मे सक्षम है। कुप्रथाओ तथा दकियानुसी विचारो को वह नष्ट कर सकती है। धर्म की रक्षा का भार भी युवको पर है। तभी तो युवको का आह्वान करते हुए आपने कहा—

उठो ब्रादर कस कमर, तुम धर्म की रक्षा करो।
श्री वीर के तुम पुत्र होकर, गीदड़ों से क्यो डरो ॥[2]

नीति, रीति, शाति, क्षमा कर्तव्य-पथ पर चलते हुए युवको से आपने उत्साह से कुछ कर दिखाने का आह्वान किया—

जो इरादा तुम करो तो, बीच मे छोडो मती।
मजबूत रहो निज कोल पर, करके कुछ दिखलाइयो ॥[3]

मुनिश्री ने जहाँ कुव्यसनो के प्रति लोगो को सचेत किया वही तप, दान, उद्यम आदि सद्-गुण अपनाने पर भी जोर दिया। कर्मों की निर्जरा मे तप का विशिष्ट स्थान है। तप के महत्व को स्पष्ट करते हुए आपने कहा—

लब्धि रूपी लक्ष्मी की लता का यह मूल है।
नन्दिसेण विष्णु कुवर का, सारा ही बयान है ॥[4]

सत्य सभी गुणो की खान है। सत्य के प्रताप से सर्प पुष्प की माला बन जाता है तो अग्नि जल मे परिवर्तित हो जाती है। सत्य का आचरण करने वाले के लिए विष का प्याला भी अमृत कुड के समान है। सत्य मोक्ष-मार्ग की ओर निर्देशित करता है। सत्य की इसी महानता पर मुनि श्री चौथमलजी महाराज तन, मन, धन तीनो ही कुरबान करते हैं—

नियम सृष्टि जाय पलटी, सत्य कभी पलटे नहीं।
सत्य पै ही तन मन धन तीनों ही कुरबान हैं ॥[5]

दान का जीवन व समाज मे विशेष स्थान है। हमारे इतिहास मे अनेक दानवीरो का वर्णन है। दान से दरिद्र, दुर्भाग्य व अपयश तीनो का विनाश होता है। इसी दान के प्रताप को मुनिश्री यो प्रकट करते हैं—

पाप रूपी तम हरण को, पुण्य रवि प्रकट करे।
निर्वाण पद उसको मिले, एक दान के परताप से ॥[6]

उद्यम ही लक्ष्य प्राप्ति का साधन है। विना उद्यम या परिश्रम के किसी भी कार्य की

---

१ जैन सुबोध गुटका पृ० २५४।
२ गजल गुलचमन बहार, पृ० ३।
३ वही पृ० ३-४।
४ जैन सुबोध गुटका, पृ० ७।
५ वही, पृ० १०-११।
६ वही, पृ० २४।



सफलता संदिग्ध है। कठिन से कठिन तथा असम्भव कार्य उद्यम या पुरुषार्थ के बल पर सम्भव हो जाते हैं। उद्यम हीन जीवन नरक तुल्य है। पौराणिक उदाहरण देते हुए पुरुषार्थ की सिद्धि के प्रभाव को व्यक्त करते हुए मुनिश्री कहते हैं—

पुरुषारथ कर रामचन्द्रजी, सीता को लका से लावें।
उद्यम हीन के मन के मनोरथ मन के बीच रह जावें ।।[1]

आधुनिक शिक्षा पद्धति की त्रुटियो से भी मुनिश्री पूर्ण परिचित थे। आधुनिक शिक्षा को अपूर्ण मानते हुए आपने कहा कि इस शिक्षा के प्रभाव से हमारा जीवन पाश्चात्य कुसस्कारो से प्रभावित हुआ है। उसमे धर्म का उचित समावेश नही होने से नैतिक सामाजिक मूल्यो का ह्रास हो रहा है। इसी शिक्षा के कारण सिनेमा, होटल, ब्राडी आदि कुव्यसन प्रचलित हुए। वर्तमान पढ़ाई के बारे मे आपकी मान्यता है—

जो वर्तमान पढ़ाई है जिसमे रुचि धर्म की नाई है
मिले वहीं धर्म का योग, लगे फिर मिथ्यात्व का रोग,
नहीं समझे लिहाज के माई है ।।[2]

मनुष्य मात्र के लिए कुछ शिक्षाओ का निर्देशन अत्यन्त प्रभावपूर्ण तरीके से करते हुए आपने कहा—

पा मौका सुकृत नहीं करता, वह जहां मे इन्सान नहीं।
हीरा त्याग मुकर को लेवे, वह जौहरी प्रधान नहीं ।।
जिसके दिल मे रहम नहीं, उसके दिल मे रहमान नहीं।
जिसने सत्सग नहीं करी, उसको सहूर और ज्ञान नहीं ।।
जिसके वदन मे नहीं नम्रता, उसको मिलता मान नहीं।
वह वैद्य है क्या दुनियां मे, जिसे नब्ज की पहिचान नहीं,
वह मोक्ष कैसे जावे, जिसका साबित ईमान नहीं ।।[3]

मुक्तक काव्य के अतिरिक्त मुनिश्री के चरित्र काव्यो मे भी सामाजिक चेतना का स्वर बुलन्द है। जैन कथा-साहित्य मे ऐसे कई चरित्र है जो अपने सत्य, शील, जीवदया और धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करने मे नही हिचकते। मुनिश्री ने ऐसे पुरुष और स्त्री चरित्रो को माध्यम बनाकर कई सुन्दर चरित्र-निर्माणकारी और सस्कारवर्धक काव्यो की रचना की है। इनमे भगवान् पार्श्वनाथ चरित्र, नेमिनाथ चरित्र, जम्बूस्वामी चरित्र, श्रीपाल चरित्र, भविष्यदत्त चरित्र, सुपार्श्वनाथ चरित्र, अर्हद्दास चरित्र, आदि मुख्य हैं। इन चरित्रो मे चरित्रनायक के पूर्व भवो की साधनापरक घटनाओ का वर्णन करते हुए वर्तमान भव की सयम-आराधना का लोक गायकी शैली मे ओजस्वी वर्णन किया गया है। प्रसगानुसार समाज मे व्याप्त अन्ध मान्यताओ और रूढियो पर भी कुठाराघात किया है।

भगवान पार्श्वनाथ ने अपने समय मे तप के नाम पर प्रचलित अज्ञान तप का सख्त विरोध

---

१ जैन सुबोध गुटका, पृ० ३५-३६।
२ वही, पृ० १२०-१२१।
३ वही, पृ० १४३।



किया था। इस सम्बन्ध मे मुनिश्री ने कमठ के पचाग्नि तप की निस्सारता का वर्णन कर दया-धर्म की प्रतिष्ठापना की—

वहाँ पर जाकर देखा कमठ को तापे पच अगन।
धूम्रपान और अज्ञान कष्ट से, कर रहा देह दमन ॥५६८॥
इसी समय अवधि ज्ञान लगाकर, देखा पार्श्वकुमार।
नाग-नागिन का जोडा जलता, देखा अगन मझार ॥५६९॥
देख दयालु कुँवर कहे यो, कहो कैसा अज्ञान ?
नहीं दया दिखाई देती, इस तपस्या दरम्यान ॥५७०॥
दया रहित धर्म से मुक्ति, हरगिज कोई न पावे।
प्राणिवध से धर्म चहाय जू, आग मे बाग लगावे ॥५७१॥
सूर्यास्त के बाद दिवस ज्यो, सर्प मुख अमृत चावे।
अजीर्ण से आरोग्य और, विष से जीवन बढावे ॥५७२॥
है प्रधान दया विश्व मे, देखो इस प्रकार।
बिन स्वामी के सेना, जीवन बिन काया है नि सार ॥५७३॥

'जम्बू चरित्र' मे जीवन की क्षण-भगुरता का बोध देकर भोग से योग और राग से विराग की ओर बढने का मर्मस्पर्शी प्रसग वर्णित है। नव विवाहित आठ वधुओ का परित्याग कर जम्बू सयम के पथ पर अग्रसर होते हैं। प्रभव चोर को उद्बोधन देकर जम्बूकुमार उसके हृदय को परिवर्तित करते हैं। उद्बोधन का यह वैराग्यपरक रूपक देखिए—

मनुष्य जन्म के वृक्ष को, दो हाथी काल हिलावे रे।
दिवस रैन का चूहा उमर, काट गिरावे रे ॥१॥
भवसागर को मोटो कूप है, कषाय चार रहावे रे।
बैठा मुंडो फाडने, थने निगलवो चावे रे ॥२॥
कुटुम्ब मक्षिका करे ला ला ला, चटका तन लगावे रे।
काम शहद की बूंद चाट तू, क्यो ललचावे रे ॥३॥
गुरु विद्याधर धर्म जहाज ले, करुणा करी बुलावे रे।
माने केण तो शिवपुर पाटन, थने पहुँचावे रे ॥४॥
अल्प सुखने दुख अनन्ते, गिरी राई न्याय लगावे रे।
महा अनरथ की खान भोग मे, क्यो ललचावे रे ॥५॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुनिश्री की सामाजिक चेतना वर्ग-सघर्ष को उभारने वाली न होकर आध्यात्मिक चेतना की पूरक, जीवन शुद्धि की प्रेरक और विश्वमैत्री भाव की सपोषक है। मुनिश्री के काव्य मे विद्रोह है, पर वह पारस्परिक आदर्शों के प्रति न होकर, विषयविकारग्रस्त जड-परम्पराओ और सस्कारों के प्रति है। मुनिश्री का काव्य जडता के प्रति चैतन्य का विद्रोह है, विकृत के प्रति सस्कृति का मगल उद्घोष है और है खोई हुई दिशाओ मे मानवता के परित्राण के लिए मार्गदर्शक आलोक-स्तम्भ। ✡

पता—श्री सजीव भानावत
सी० २३५-ए० तिलक नगर, जयपुर-४



मानव-धर्म के व्याख्याता—  

श्री जैन दिवाकरजी महाराज

✯ डॉ० ए० वी० शिवाजी एम० ए०, पी-एच० डी०

श्री जैन दिवाकर साहित्य का अध्ययन करने के बाद ऐसा अनुभव होता है कि जैन दिवाकरजी महाराज इस वसुन्धरा के कण-कण मे व्याप्त थे। वे स्वय मानवता के अग वन गये थे और अहिंसा ही उनके लिए वह साधन तत्व था जिसके आधार पर वे जैन सतो की कोटि मे अपना महत्वपूर्ण स्थान वना पाये। "वसुन्धरा मेरा कुटुम्ब, मानवता मेरी साधना और अहिंसा मेरा मिशन" की उद्घोषणा करने वाले श्री जैन दिवाकरजी महाराज मानव धर्म के व्याख्याता होने को सिद्ध करते है।

मानव धर्म के पालन मे जो सबसे अधिक महत्व की बात है वह यह कि आत्मा की शुद्धता। आत्मा की शुद्धता ही मानव-धर्म का प्रथम स्तर है। वे लिखते हैं—"ससार मे जितने पन्थ और धर्म हैं, सब आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए ही हैं। आत्मा को उज्ज्वल बनाये बिना कल्याण नही हो सकता। आप चाहे स्थानक में जाइए, चाहे मन्दिर मे जाइए, गगा मे स्नान कीजिए या जमुना मे डुबकी लगाइए, मस्जिद मे जाकर नमाज पढिए या गिरजाघर मे प्रार्थना कीजिए, जब तक आत्मा पवित्र नही होगी आपका निस्तार नही।"[1] अर्थात् मानव धर्म की व्याख्या वही व्यक्ति कर सकता है और समझ सकता है जिसकी आत्मा शुद्ध हो चुकी हो। मानव धर्म का पालन भी ऐसा ही व्यक्ति कर सकता है। श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने मानव धर्म को व्यक्तित्व ही मे नही उतारा किन्तु कार्यों मे परिणित भी किया।

वर्तमान का युग विज्ञापन युग है। प्रत्येक प्राणी छोटे-से-छोटे कार्य का विज्ञापन करवाना चाहता है, किन्तु श्री जैन दिवाकरजी महाराज मानव धर्म के व्याख्याता होने के कारण इसके विरुद्ध थे। वे कहा करते थे, "जिसने निन्दा और प्रशसा को जीत लिया है, जो **'समो निन्दा पससासु'** अर्थात् निन्दा और प्रशसा मे समभाव धारण करता है, जो निन्दा सुनकर विषाद का और प्रशंसा सुनकर हर्ष का अनुभव नही करता, वही सच्चा सन्त या महात्मा है।"[2] मानव धर्म के कार्यों मे निन्दा और प्रशसा को समभाव से देखना आवश्यक है और श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने इस तत्व को भी बहुत अच्छे ढग से समझा और आने वाली पीढी को प्रेरणा दी। उनका मत था कि "निन्दा मनुष्य को आत्म-निरीक्षण की ओर प्रवृत्त करती है और आत्म-निरीक्षण से दोषो का परित्याग करने की ओर झुकाव होता है।"[3] निन्दा और प्रशसा जीवनपर्यन्त मनुष्य के साथ-साथ चलते हैं, किन्तु इन दोनो तत्वो से अनासक्ति रखना वास्तव मे मानव धर्म है, मनुष्य का कर्त्तव्य है।

आत्मा की उज्ज्वलता और निन्दा और प्रशंसा के प्रति अनासक्ति, इन दोनो ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज को एक ऐसा हृदय दिया था जो परोपकार की भावना से ओत-प्रोत था। वे परोपकार को मानव धर्म मानते थे। धर्म और परोपकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे कभी

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ११, पृ० २३

२ वही, भाग १, पृ० १४५

३ वही,



भी पृथक् नहीं किये जा सकते। उनका कहना था कि "परोपकार करने के अनेक तरीके हैं। परन्तु सर्वश्रेष्ठ तरीका यह है कि आप दूसरे को धर्म के मार्ग पर लगा दीजिए। धर्म मार्ग मे लगा देने से उसका परम कल्याण होगा और इससे आपको भी बड़ा लाभ होगा।"[1] उनके यह शब्द सुनने मे भले ही साधारण लगे किन्तु भाव इतने गम्भीर हैं कि हृदय मे गहरे तक मे पैठ जाने की इनमे सामर्थ्य है। मनुष्य की मानवता की पहिचान उनके निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त की जा सकती है—"छोटो की सेवा करने मे, सहायता करने मे और उनके दुखो को दूर करने मे ही बडो का बड़प्पन है।"[2] श्री दिवाकरजी महाराज का साहित्य परोपकारिता के कार्यों से भरा हुआ है। इन्हीं कार्यों को देख अशोक मुनिजी ने लिखा कि "सन्त अपने लिए नही विश्व के लिए जीता है, वह विश्व कल्याण के लिए ही प्राणोत्सर्ग करता है।"[3] वास्तव मे जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज परोपकारिता के लिए जन्मे, जिएं और आदर्श रख इस ससार से अनन्त मे विलीन हो गये। मानव धर्म को पालन करने का श्री चौथमलजी महाराज के अतिरिक्त दूसरे का मिलना दूभर नही तो कठिन अवश्य है।

मानव धर्म मे विश्वास करने के कारण वे एकता के पक्षधर थे, यद्यपि उनकी एकता की भावना जैन समाज तक ही सीमित थी। वे पहिले अपने ही समाज मे यह कार्य करना चाहते थे किन्तु उनकी दिव्य दृष्टि इससे परे भी थी। एकता के लिए उन्होने विनय का मन्त्र दिया जो कि विद्या से कही ऊँचा है। वे कहते थे 'हित की बुद्धि से किया गया अनुशासन ही लाभप्रद होता है।"[4]

मानव धर्म मे प्रवर्तक होने के पहिले अपने आप को जानना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। ग्रीक दर्शन मे सुकरात ने 'अपने को जानो' पर बल दिया है। श्री चौथमलजी महाराज के उपदेशो मे भी यही है। उन्होने कहा था—"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातो से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयो के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि आपने आन्तरिक-जीवन के सम्बन्ध मे वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया तले अँधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरो को देखती है, अपने आप को नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यो पर बहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते। वे व्यक्ति मे समष्टि को देखना चाहते थे।" आखिर समाज हो या देश, सबका मूल तो व्यक्ति ही है और जिस प्रणालिका से व्यक्ति का उत्कर्ष होता है, उससे समूह का भी उत्कर्ष क्यो न होगा?"[5] यह वाक्य बताता है कि श्री चौथमलजी महाराज व्यक्ति की आन्तरिकता को कितना महत्त्व देते थे जिसके आधार पर ही मानव धर्म की नींव विश्व के झझावत को झेल सकती है।

"सारी धरती मेरा परिवार है" की उद्घोषणा उनके रोम-रोम मे व्याप्त थी। वे केवल जैन समाज के ही नहीं थे, वे विश्व के प्रत्येक मानव के कल्याणार्थ जन्मे थे। मे मानवतावादी सिद्धान्तो के प्रचारक थे, सुगनमल भण्डारी, इन्दौर का कहना उचित ही है कि "मानव सेवा के पथ पर समर्पित व्यक्तित्व" उनका था। वे 'पराई-पीर' को जानते थे, व्यथा की वर्णमाला से वे परिचित

---

१ दिवाकर दिव्य ज्योति भाग ७, पृ० २३८

२ वही, पृ० १४

३ दिवाकर देशना—श्री अशोक मुनि—परिचय किरण

४ तीर्थंकर वर्ष ७ अक ७-८ पृष्ठ २५

५ वही, पृष्ठ ३८



थे, प्राणिमात्र की मगलकामना उनका श्वासोच्छ्वास थी। बैठते-उठने, सोते-जागते उनके हृदय मे एक ही बात रहती थी कि कोई दु खी न हो, कोई कष्ट मे न हो, सब निरापद हो, सब प्रसन्न हो, सबका कल्याण हो। वे असहायो के आश्रय थे, यह शब्द उपाध्याय श्री कस्तूरचन्दजी महाराज के पाठक को सहज ही श्री चौथमलजी महाराज की अन्तर्दृष्टि की गहराई मे ले जाते है। यही कारण था कि उन्होंने अपनी साधना के प्रभाव के कारण कई मनुष्यो के शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक दु:खो को दूर किया। इसका ज्ञान सहज ही श्री केवल मुनि जी की पुस्तक 'एक क्रान्तदर्शी युग पुरुष सन्त-जैन दिवाकर' से पाठक को हो जाता है।

अहिंसा उनका मिशन था जो मानव-धर्म का एक अग है। जीवो की रक्षा का पाठ वे अन्तिम समय तक मनुष्य को सिखाते रहे और मानव-धर्म की नये रूप मे व्याख्या प्रस्तुत करते रहे।

मानव-धर्म की व्याख्या करने वाले श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रति श्रद्धा-सुमन चढ़ाना तभी श्रेयष्कर होगा। यदि हम मानवधर्म के अगो को आत्म-सात कर विश्व के कल्याण के लिए कार्य करें और भौतिक युग को पुन आध्यात्मिक युग मे बदलने के लिए तत्पर हो जावें। ✡

परिचय एवं पता
डॉ० ए० बी० शिवाजी
प्राध्यापक—दर्शन विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
मोहन निवास—विश्व विद्यालय मार्ग, उज्जैन।

शील की महिमा

(तर्ज—या हशीना बस मदीना, करबला मे तू न जा)

तारीफ फैले मुल्क मे, एक शील के परताप से।
सुरेन्द्र नमे कर जोड के, एक शील के परताप से ॥टेर॥

शुद्ध गगाजल जैसा, चिन्तामणि सा रत्न है।
लो स्वर्ग मुक्ति भी मिले, एक शील के परताप से ॥१॥

आग का पानी बने, हो सर्प माला फूल की।
जहर का अमृत बने, एक शील के परताप से ॥२॥

विपिन मे वस्ती बने, हो सिंह मृग समान जी।
दुश्मन भी किंकर बने, एक शील के परताप से ॥३॥

चन्दनबाला कलावती, द्रोपदी सीता सती।
सुखी हुई मेनासती, एक शील के परताप से ॥४॥

गुरु के प्रसाद से, करे चौथमल ऐसा कथन।
सुर सपति उसको मिले, एक शील के परताप से ॥५॥

—जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज



गुरु आत्मा के साथी

इन्दौर चातुर्मास मे एक स्वर्णकार नियमित रूप ने गुरुदेव का व्याख्यान सुनता था। बहुत प्रेमी हो गया। एक दिन बोला—महाराज साहब ! मुझ गरीब के घर भी गोचरी (भिक्षार्थ) चलो !

गुरुदेव ठहरे समतायोगी। स्वर्णकार की प्रार्थना पर उसके घर पधारे। बादाम का हलुआ बना हुआ रखा था। गुरुदेव ने उसकी परिस्थिति देखी। गरीबी और अभाव की स्थिति मे बादाम का हलुआ ! समझ गये इसने भक्ति-वश हमारे लिए ही बनाया होगा ? पूछा—

आज कोई महमान आ रहे हैं ?

नही, महाराज !

आज कोई त्योहार है ?

नही ! महाराज !

तो फिर बादाम का हलुवा किसलिए बनाया है ?

स्वर्णकार बन्धु ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—गुरु महाराज ! आप जैसे महापुरुष पधारे हैं ? यह तो आपकी सेवा''।

पास ही ज्वार की रोटी रखी थी। गुरुदेव ने पूछा—यह रोटी किसके लिए है ?

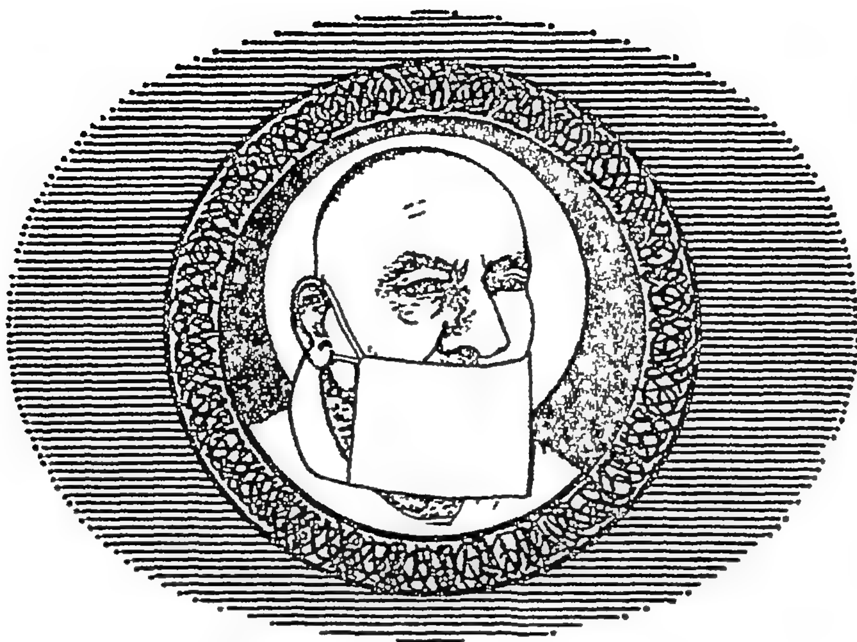
हमारे लिए है बापजी !

तो आधी रोटी इसमे से हमे दे दो।

आप हमारे गुरु महाराज है आपको ज्वार की रोटी कैसे दूँ ? आप तो हलवा लीजिए—स्वर्णकार ने विनय के साथ कहा।

नही ! हलुवा हमारे काम का नही ! रोटी हमारे काम की है ? जो चीज तुम्हारे अपने लिए है गुरु को उसी मे से देना चाहिए ! गुरु महमान नही, आत्मा के साथी है'' ! स्वर्णकार की आँखो से आनन्द के आँसू टपक पडा। भक्ति-विह्वल हृदय से आधी रोटी गुरुदेव को देकर वह आनन्द सागर में डूब गया !

—केवलमुनि



हृदयस्पर्शी और ओजस्वी प्रवचन कला

एक झलक



हृदय-स्पर्शी और ओजस्वी प्रवचन कला : एक झलक

श्री चौथमलजी महाराज की प्रवचन-कला

☆ डा० नरेन्द्र भानावत, एम० ए०, पी एच० डी०
(हिन्दी प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-४)

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का व्यक्तित्व बहु आयामी और बहुमुखी है। वे आत्म-साधना के पथ पर बढने वाले आध्यात्मिक सन्त होने के साथ-साथ जीवन और समाज मे व्याप्त अशुद्धि व विकृति को दूर कर लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाले क्रान्तिदाता युग-पुरुष भी हैं। उनके व्यक्तित्व मे एक ओर कबीर की स्पष्टवादिता है तो दूसरी ओर भक्त कवि सूरदास की माधुरी। एक ओर महाकवि तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि है तो दूसरी ओर सूफी कवि जायसी की प्रेमानुभूति। वे एक साथ कोमल होकर भी कठोर हैं और सरल होकर भी प्राज्ञ हैं। अन्तरग और बहिरग मे व्याप्त अन्धकार को नष्ट करने वाला यह दिवाकर सचमुच जीवत कलाकार है। गद्य और पद्य मे अभिव्यक्त अपनी जादू-भरी वाणी द्वारा इस साहित्य साधक कलाकार ने न जाने कितने अनगढ पत्थरो मे प्राण प्रतिष्ठा की है, न जाने कितने दिशाहारो को लक्ष्य सधान किया है और न जाने कितने भयग्रस्तो को निर्भय और निर्भ्रान्त बनाया है।

धार्मिकता और दार्शनिकता की भित्ति पर निर्मित इस महान् कलाकार का साहित्य बोझिल और शुष्क नही है। वह अनुभूति की तरलता से सिक्त और मानस की गहराई से प्रशान्त है। उसमे कवि हृदय की सरसता और प्रवचनकार की प्रभविष्णुता युगपद देखी जा सकती है। काव्य-रचना में आपको जितनी सफलता मिली है उतनी ही प्रवचन-कला मे भी। निबन्ध के समानान्तर ही प्रवाहमान विधा है—प्रवचन। निबन्ध और प्रवचन का मूल अन्तर इसकी रचना प्रक्रिया मे है। निबन्ध सामान्यत लेखक स्वय लिखता है या बोलकर दूसरे से लिखवाता है, पर प्रवचन एक प्रकार का आध्यात्मिक भाषण है, जो श्रोतामडली मे दिया जाता है। यह सामान्य व्यक्ति द्वारा दिया गया सामान्य भाषण नहीं है। किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी, चिन्तनशील व्यक्ति की वाणी ही प्रवचन कहलाती है। इसमे एक अद्भुत बल, विशिष्ट प्रेरणा और आन्तरिक साधना का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर उसे आन्दोलित विलोडित करने की क्षमता उसमे निहित होती है। सन्त आध्यात्मिक-पथ पर बढने वाली जागरूक आत्माएँ हैं। उनकी अनुभूत वाणी प्रवचन की सच्ची अधिकारिणी है। कहना न होगा कि जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज इस प्रवचन साहित्य के सिरमौर कलाकार हैं।

जैन धर्म लोकधर्म है। वह लोकभूमि पर प्रतिष्ठित है। आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण की भावना जन-जन मे भरने के उद्देश्य से प्रतिदिन प्रवचन करना जैन सत का आवश्यक कर्त्तव्य है। चातुर्मास काल मे तो प्रतिदिन नियमित रूप से व्याख्यान-प्रवचन होते ही हैं, उसके बाद भी शेषकाल मे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भी व्याख्यान देने का क्रम जारी रहता है। भारत में



सैकडो व्याख्यानी साधु है जिनके व्याख्यानो को यदि लिपिवद्ध किया जाय तो प्रतिवर्ष विपुल परिमाण मे प्रवचन साहित्य सामने आ सकता है। प्रसिद्ध वक्ता के रूप मे विश्रुत श्री जैन दिवाकर जी महाराज उन प्रभावकारी व्याख्यानी सतो मे है जिनकी वाणी आज भी जन-जन की हृदय-वीणा को झकृत किये हुए है। सैकडो ही नही हजारो की सख्या मे उन्होने प्रवचन दिये हैं। पर अद्यावधि उनका जो प्रवचन साहित्य प्रकाश मे आया है, वह 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नाम से २१ भागो मे सकलित—सम्पादित है।

सक्षेप मे आपके प्रवचन-साहित्य की विशेषताओ को इस प्रकार रक्खा जा सकता है—

(१) आपका अध्ययन विस्तृत, अनुभूति गहन और व्यापक लोक सम्पर्क होने से आपके प्रवचनो मे लोक, शास्त्र व परम्परा का अद्भुत समन्वय मिलता है। उनमे एक ओर सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र, गुणस्थान, सम्यक्त्व, कर्म, तप, पाप-पुण्य जैसे विषयो पर गूढ दार्शनिक विवेचन मिलता है तो दूसरी ओर जीवन मे व्याप्त कुसस्कारो और समाज मे व्याप्त कुरीतियो पर कटु प्रहार भी किया गया है। दार्शनिक विवेचन मे मुनिश्री वर्ण्यविषय के भेद-प्रभेदो के उल्लेख के साथ उसकी तलस्पर्शी विवेचना करते हुए जीवन-व्यवहार और युगीन समस्याओ के साथ उसका प्रभावकारी ताल-मेल बैठाते है। सार्वजनिक सत्य के साथ युगीन सत्य का सम-सामयिक सदर्भ जुडने से विवेचन मे विशेष मार्मिकता और जीवतता आ जाती है।

(२) व्यापक दृष्टिकोण, उदार चित्तवृति और व्यक्तित्व की निर्मलता के कारण आपके प्रवचनो मे सभी धर्मो और धर्म-ग्रन्थो का सार-तत्त्व समाहित रहता है। कही आचाराग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, ठाणाग, भगवती, प्रश्न-व्याकरण और उपासकदशागसूत्र की गाथाएँ प्रयुक्त हैं तो कही कुरान, बाईबिल, पचतत्र, हितोपदेश, उपनिषद्, पुराण, रामायण और महाभारत की कथाएँ व्यवहृत है तो कही सेठ, ब्राह्मण, राजा, किसान, मजदूर, लकडहारा, धोबी, मोची, तेली, माली आदि से सम्बद्ध लोक-कथाओ, दृष्टान्तो और प्रसंगो का समावेश है। मुनिश्री किसी शास्त्रीय सैद्धान्तिक विषय को बड़ी गहराई के साथ उठाकर, विभिन्न धर्मो मे उसके महत्व का निरूपण कर, किसी प्रसिद्ध कथानक तथा छोटे-मोटे विविध जीवन-प्रसगो और लोक दृष्टान्तो के माध्यम से वर्ण्यविषय को इस प्रकार आगे बढाते है कि मूल आगमिक भाव स्पष्ट होता हुआ, हमारे वर्तमान जीवन की समस्याओ एव उलझनो का भी समाधान देता चलता है।

(३) आप प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ सफल कवि और सरस गायक भी थे। सस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी, उर्दू, राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओ के आप विद्वान् थे। इतनी विद्वत्ता होते हुए भी आपके प्रवचनो मे भाषागत पाडित्य का प्रदर्शन न होकर तद्भव शब्दावली का ही विशेष प्रयोग होता था। आपके प्रवचन आलकारिक बनाव शृ गार से परे अनुभूति की गहराई, अन्त.स्पर्शी मार्मिकता, ज्ञात-अज्ञात कवियो की पदावली, लोकधुनो, विविध राग-रागिनियो, सस्कृत-श्लोको, प्राकृत-गाथाओ, हिन्दी-दोहो, उर्दू-गजलो और मार्मिक सूक्तियो से युक्त हैं। स्वय कवि होने के कारण आप अपने प्रवचनो मे अधिकाशत· स्व-रचित कविताओ का ही उपयोग करते थे। बचपन मे लोक-धर्मी नाट्य परम्परा-तुर्रा-कलगी सुनने के कारण आपकी गायकी मे विशेष आकर्षण रहता था। लोकनाट्य शैली का आपकी काव्य-रचना पर प्रभाव होने से उसमे स्वरो की उच्चता और बन्ध की बुलन्दगी का सहज समावेश हो गया है।

(४) जीवन शुद्धि संस्कारशीलता व सामाजिक परिष्कार का स्वर आपके प्रवचनो मे सदैव



बुलन्द रहा है। धर्म जीवन क्रान्ति और समाज-सुधार का संवाहक होता है। पर जब उसका तेज मन्द पड जाता है तब वह रूढि बन जाता है। मुनिश्री ने देखा की धार्मिक लोग भी सामाजिक कुप्रथाओ के शिकार हो रहे हैं और सामाजिक जिम्मेदारी के नाम पर वे कुप्रथाओ का भार ढो रहे हैं। इस स्थिति मे एक क्रान्तद्रष्टा धार्मिक महापुरुष कैसे चुप रह सकता है! उन्होंने वृद्ध विवाह, पर्दा-प्रथा, फैशनपरस्ती, सास-बहू के झगडे आदि पर कटु प्रहार किया और इनके दुष्परिणामो की ओर जन-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया। विषय-लोलुप वृद्धो को सावधान करते हुए आपने कहा—"हे वृद्ध! तेरे जीवन का मध्याह्न बीत चुका है। तेरी जिन्दगी सध्या की वेला मे आ उपस्थित हुई है। सध्या अधिक समय तक नही टिकती। अतएव तेरे जीवन की सध्या भी शीघ्र ही अन्धकारमयी रजनी के रूप मे परिणत होने को है। प्रकृति ने तेरा एक बन्धन तोड़ दिया। तू इसे अपना अहोभाग्य समझ! पत्नी के वियोग को अपने लिए चेतावनी समझ। सावचेत होजा। विषय-वासना के विषैले अकुरो को अन्तकरण की भूमिका से उखाड कर फेंक दे।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १२, पृष्ठ १०७

महिलाओ मे प्रचलित (विशेषत मारवाडी महिलाओ मे) फैशनपरस्ती और पर्दाप्रथा की निस्सारता पर चोट करते हुए मुनिश्री ने बडे मार्मिक शब्दो मे कहा—"एक ओर हाथ भर का लम्बा घूंघट और दूसरी ओर यह बारीक वस्त्र देखकर विवेकी पुरुषो को खेद और आश्चर्य का पार नही रहता। आश्चर्य तो इस बात का है कि पुरुष अपने परिवार की महिलाओ को कैसे यह लज्जाहीन वस्त्र खरीद कर देते हैं, और खेद इस बात का है कि कुलीन बहिनें फैशन के मोह मे फँसकर किस प्रकार निर्लज्ज बन जाती हैं।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १३, पृष्ठ ३८

सामाजिक कुरीतियो के साथ-साथ धार्मिक क्रियाएँ भी विकृत होने लगीं। सामायिक जैन साधना का महत्त्वपूर्ण अग है। प्रत्येक श्रावक-श्राविका के लिए यह आवश्यक दैनिक कर्तव्य है। इसके द्वारा समभाव प्राप्ति और सासारिक माया-मोह से छूटने का अभ्यास किया जाता है, पर जब रस्मी तौर पर ही इसका पालन होता है तो वह निस्सार बन जाती है। इस प्रसग मे मुनिश्री का यह हास्य-व्यग्य मिश्रित उदाहरण देखिए—

एक स्त्री सामायिक करने बैठी और सोचने लगी—'कही कुत्ता घर मे न घुस आए। पाडा गुड की भेली न खा जाय।' वह ऐसा सोच ही रही थी कि उसका पति आ गया और बोला दुकान की चाबी और पन्सेरी चाहिए। स्त्री ने सोचा—'सामायिक मे इन चीजो को बतलाने से दोष होता है।' अतएव उसने चौवीसी गाना शुरू किया और उसी मे सभी कार्यों को हल कर दिया—

पहले वादू श्री अरिहन्त, कूची तो ऊँची पडन्त।
पाडो तो भेली चरन्त, पन्सेरी घट्टी अडन्त, हो जिनजी ॥

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १९, पृष्ठ ६२

"कहिए कैसी बढ़िया सामायिक है?"

मुनिश्री ने धर्म के नाम पर दी जाने वाली पशुबलि की निस्सारता और भक्तो की अज्ञानता पर भी कटु प्रहार किया। राजस्थान और मध्य प्रदेश मे राजाओ का शासन होने मे राजमन्दिरो तक मे पशुबलि होती थी। फिर प्रजा का तो कहना ही क्या? मनोकामना पूरी करने के लिए देव-मन्दिरो को रक्तरंजित कर दिया जाता था। इस घिनौनी प्रथा को देखकर मुनिश्री का कलेजा कांप उठता था। वे दयाभाव से पसीज उठते थे। उन्होंने आत्मा के सम्पूर्ण बल से यह निश्चय किया कि वे इस बलि-प्रथा के खिलाफ अभियान छेड़ें और सचमुच उन्हे आशातीत सफलता मिली।



मेवाड, मारवाड़, हाडौती, सिरोही, रतलाम, मन्दसौर आदि राज्यो के राजा-महाराजाओ और आदिवासी क्षेत्र की कई जातियो ने मुनिश्री के धर्म उपदेश से प्रभावित होकर पशुवलि निषेध का व्रत ग्रहण किया। क्रूरता पर करुणा की और हिंसा पर अहिंसा की यह सवसे वडी विजय थी। मुनिश्री ने दयाधर्म का सही स्वरूप समझाते हुए कहा—

"माताजी के स्थान पर बकरो और भैंसो का वध किया जाता है। लोग अज्ञानवश होकर समझते हैं कि ऐसा करके वे माताजी को प्रसन्न कर रहे हैं और उनको प्रसन्न करेंगे तो हमे भी प्रसन्नता प्राप्त होगी। सोचना मूर्खता है। लोग माताजी का स्वरूप भूल गये हैं और उनको प्रसन्न करने का तरीका भी भूल गये हैं। इसी कारण वे नृशंस और अनर्थ तरीके आज भी काम में लाते हैं। सर्व मनोरथो को पूरा करने वाली और सव सुख देने वाली उन माता का नाम है दया माता। दया माता की चार भुजाएँ हैं। दोनो तरफ दो-दो हाथ हैं। पहला दान का, दूसरा शील का, तीसरा तपस्या का और चौथा भावना का। जो आदमी दान नही देता, समझ लो कि उसने दया माता का पहला हाथ तोड दिया है। जो ब्रह्मचर्य नहीं पालता तो उसने दूसरा हाथ तोड दिया है। तपस्या नहीं की, तो तीसरा हाथ खडित कर दिया है और जो भावना नही भाता उसने चौथा हाथ काट डाला है। ऐसा जीव मरकर वनस्पतिकाय आदि मे जन्म लेगा जहाँ उसे हाथ-पैर नहीं मिलेंगे।"

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ७, पृ० ७५ व ८२

मुनिश्री ने देखा कि आत्मशुद्धि, जीवन शुद्धि एव सामाजिक प्रगति मे बाधक है—नशीली वस्तुओ और सप्त कुव्यसनो का सेवन। ये व्यसन और भ्रान्त धारणा के कारण उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक मे व्याप्त हैं। उच्च वर्ग मे ये विलासिता के तथा निम्न वर्ग मे विवशता के प्रतीक हैं। धूम्रपान, शिकार, चोरी आदि कुव्यसनों के दुष्परिणामो का आप अपने प्रवचनो मे सदैव जिक्र करते थे। छोटी-वडी मार्मिक कथाओ और स्व-रचित कविताओ के द्वारा आप ऐसा समाँ बाँधते थे कि श्रोता के जीवन मे मोड आए विना नही रहता। विहारी के एक दोहे ने जयपुर महाराजा जयसिंह को रग महल से बाहर निकाल कर कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर किया था, पर मुनिश्री के प्रवचनो ने हजारो की सख्या मे राजाओ, जागीरदारों, रईसो और निम्न वर्ग के लोगो को व्यसन मुक्त कर, शुद्ध सात्त्विक जीवन जीने की प्रेरणा दी।

शिकार करने वाले लोगो को प्रेम पूर्वक समझाते हुए आप कहा करते थे—'शिकार करना अत्यन्त निर्दयता पूर्ण और अमानवीय कार्य है। मनुष्य भी प्राणी है और पशु-पक्षी भी प्राणी हैं। मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है, इस कारण उसे सव प्राणियो का बडा भाई कहा जा सकता है। पशु-पक्षी, मनुष्य के छोटे भाई हैं। क्या वडे भाई का यह कर्तव्य है कि वह अपने कमजोर छोटे भाई के गले पर छुरा चलावे ? नही, वडे भाई का काम रक्षण करना है, भक्षण करना नहीं।'

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १२, पृ० २६४

स्वादलोलुप व्यक्ति ने पशु-पक्षियो के प्रति ही क्रूर भाव पैदा नहीं किया वरन् उसके वह भाव ने मनुष्य के प्रति भी घृणा पैदा करदी है। छुआछूत का रोग समाज मे ऐसा फैला कि सारी प्रगति ही अवरुद्ध हो गई। अछूतो से घृणा करने वाले लोगो की मनोवृत्ति पर व्यग्य करते हुए मुनिश्री ने कहा—'जूतो को वगल मे दवा लेंगे, तीसरी श्रेणी के रेल के मुसाफिरखाने मे जूतो को सिरहाने रखकर सोएँगे, मगर चमार से घृणा करेंगे।'

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ११, पृ० १०८



जाति-मद की भांति धन का मद भी बडा घातक है। यह मद व्यक्ति को अन्धा और क्रूर बना देता है, जिससे गरीबो का हक छीनने व कन्या को बेचने मे भी सकोच नही होता। ऐसे व्यक्तियो की खबर लेते हुए मुनिश्री कहते हैं—'अरे ओ बेटी के धन को हडप जाने वालो! अरे ओ धर्म के पैसो को डकार जाने वालो! क्या तुम चोर नही हो? उस बेचारे गरीब को चोर बनाते तुम्हे लाज नही आती? उसकी गरीबी ही क्या इतना बडा दोष है कि तुम उसे चोर कह देते हो? जरा विचार तो करो कि तुम्हारी तिजोरियाँ किस प्रकार भरी हैं? क्या तुम्हारी तिजोरियाँ धन से भरने के साथ ही साथ तुम्हारी आत्मा पाप के कीचड से नही भरी है? विचार के आइने मे अपना मुंह तो देखो।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ११, पृ० १२६

जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए आन्तरिक शुद्धि पर बल दिया जाना अनिवार्य है। जब तक भीतर के राग-द्वेष कम नही होते, जीवन मे पवित्रता का भाव झलकता नही। इसके लिए आन्तरिक मनोविकारो पर विजय पाना आवश्यक है। मुनिश्री के शब्दो मे बाह्य युद्ध के लिए जैसे शस्त्रो की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आन्तरिक युद्ध के लिए भी। मगर वे शस्त्र धातु-निर्मित नही होते। उनका निर्माण अन्त करण के कारखाने मे होता है और वे भावनाओ से बने होते हैं। वे हथियार क्या हैं?

सयम की बाध कटारी तू, तप की तलवार ले धारी तू।
मार मार रे मोह दुश्मन को, कर एकाग्र चित्त॥

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग १६, पृ० २०९-२१०

(५) अपने प्रवचन को सर्व सुलभ, बोधगम्य और रोचक बनाने के लिए मुनिश्री कही आध्यात्मिक अनुभूतियो की तुलना लौकिक स्थितियो से करते हैं, तो कही उपमा और रूपको का प्रयोग करते है। जैन-दर्शन मे आत्मा के उत्थान की १४ श्रेणियाँ मानी गई हैं। इनको तुलना व्यावहारिक शिक्षण के साथ करते हुए मुनिश्री समझाते हैं—जैसे वर्तमानकालीन शिक्षा पद्धति के अनुसार पाचवी कक्षा तक प्राथमिक शिक्षा, इसके बाद पाँच वर्ष तक की अर्थात् दसवी कक्षा तक की शिक्षा माध्यमिक शिक्षा मानी जाती है। इसके बाद चार वर्ष तक की शिक्षा प्राप्त कर दो श्रेणियाँ उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थी को स्नातक की पदवी प्राप्त होती है। इसी प्रकार तीर्थंकर भगवान ने आध्यात्मिक शक्तियो के विकास की भूमिका पर शास्त्रो मे चौदह श्रेणियाँ-गुणस्थान बतलाये हैं। प्रारम्भ के पाच गुणस्थान-देशविरति नामक पाँचवें गुणस्थान-पर्यन्त प्राथमिक या प्राइमरी विकास होता है। छठे गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक मध्यम श्रेणी का आत्मिक विकास होता है। यहाँ तक पहुँच जाने पर भी आत्मा स्नातक नही बन पाता। जब वह इण्टर और बी०ए० की तरह दो श्रेणियो को और उत्तीर्ण करता है। अर्थात् बारहवें गुणस्थान मे आता है तो स्नातक बन जाता है। चौदहवें गुणस्थान मे आत्मिक विकास की परिपूर्णता हो जाती है।

—दिवाकर दिव्य ज्योति, भाग ८, पृ० ९४-९५

रूपक और दृष्टान्तो का प्रयोग करने में भी मुनिश्री बडे दक्ष और समयज्ञ हैं। उनके प्रवचनो मे ऐसे प्रसग यत्र-तत्र बिखरे पडे है जो बहुमूल्य मणियो की तरह भ्रान्त पथिको का पथ-सधान करते है।

(६) मुनिश्री अपने आत्मस्पर्शी अनुभव, आध्यात्मिक चिन्तन और ज्ञानाराधन की संवेदना के धरातल से जब प्रवचन देते थे तब उनकी अमृतवाणी से बीच-बीच मे सूक्ति रूपी मोती सहसा बरस पडते थे। इन मोतियो की भगिमा, छवि और छटा बहुरगी है। कही जीव और शिव के साक्षात्कार की अखण्ड आनन्दानुभूति है तो कही प्रकृति के विराट क्षेत्र की दिव्य सौन्दर्यानुभूति, कही समाज मे फैली हुई कुरीतियो पर कटु प्रहार है तो कही सुषुप्त आत्मा को जागृत करने का शखनाद है। ये सूक्तियाँ हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं और निराशा मे आशा, कठिनाई मे धैर्य तथा विपत्ति मे स्फुरणा बनकर थके-हारे मन को तरोताजा कर अपने गन्तव्य तक पहुँचने का सम्बल प्रदान करती हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

(१) दुर्गुणो को जरा-सा छिद्र मिलेगा और वे आपकी आत्मा को अपना घर बना लेंगे।
(भाग ८, पृ० १३)

(२) दु खो का मूल कारण यह स्थूल शरीर नहीं है बल्कि कार्मण शरीर है।
(भाग १२, पृ० ८७)

(३) महापुरुष स्वय आचरण करके मर्यादाओ की स्थापना करते हैं।
(भाग १२, पृ० ६७)

(४) सम्यक्‌दृष्टि मे समभाव होता है और मिथ्यादृष्टि विपमभाव होता है।
(भाग ८, पृ० १५८)

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ये प्रवचन आत्मानुशासन, विश्वबन्धुत्व, सेवा, सहयोग, सहअस्तित्व जैसे सास्कृतिक मूल्यो के सवाहक होने से सच्चे अर्थों मे साहित्य की अमूल्य निधि हैं और सबके प्रति हित की भावना व सबको साथ लेकर तथा सबमे ऐक्य भाव स्थापित करने मे सक्षम व समर्थ हैं।

एक बात : सरल अनुभवगम्य

'क्रोध और ताकत का दबाव कोई स्थायी दबाव नहीं है। शान्ति, क्षमा और प्रेम के दबाव मे ही यह शक्ति है कि दबा हुआ व्यक्ति फिर कभी सिर नहीं उठाता और न लडने आता है। यह ऐसी सरल और अनुभवगम्य बात है कि ससार के इतिहास से सहज ही समझी जा सकती है, फिर भी आश्चर्य है कि बुद्धिमान कहलाने वाले राजनीतिज्ञ इसे नहीं समझ पाते और पागलो की तरह शस्त्रास्त्र तैयार करके एक-दूसरे पर चढ बैठते हैं। अब तक के युद्धो से ये लोग जरा भी शिक्षा नहीं लेते।

—मुनि श्री चौथमल जी म०





वाणी के जादूगर की वाणी की दुर्लभ विशेषताओ और प्रेरणाओ का सरस मूल्यांकन

✡ प्राचार्य श्रीचन्द जैन
एम० ए० एल-एल० बी० (उज्जैन)

पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज उन प्रवचनकारो मे थे जिन्होने अपनी सशक्त एव ओजस्विनी वाणी मे जो कुछ कहा वह गगा की धारा के समान उदात्त, प्रशस्त एव जन-जन कल्याणकारी था और युग-पुरुष के समान उनकी सैद्धान्तिक मान्यता युग-युगो तक जीवित रहेगी। वे एक विशाल वट-वृक्ष थे जिसकी सुखद छाया में बैठकर 'लोक' ने अपनी कथा को भुलाया एव चिर-वाञ्छित कामना की पूर्ति की।

सक्षेप मे पूज्यपाद श्री जैन दिवाकरजी महाराज के प्रवचनो की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) चिन्तन की विशालता।
(२) लोकोपयोगी भाषा या बोली का प्रयोग।
(३) पूर्वाग्रह का सर्वथा अभाव।
(४) व्यापक अहिंसा का प्रखर विवेचन।
(५) मानवता के प्रमुख उद्धारक।
(६) धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक क्रान्ति का अमोघ घोष
(७) लोक-सस्कृति का समादर।
(८) अहिंसक जीवन शैली का अधिग्रहण।
(९) अभिशप्त मानव के प्रति विशेष लगाव।
(१०) यथावसर सुभाषितो का प्रयोग।
(११) प्रतिपादित विषय को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए लोक-कथाओ, कहावतो एव मुहावरो आदि का प्रचुर उपयोग।
(१२) यथार्थवाद की आधारशिला पर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा।
(१३) व्यक्ति की अपेक्षा समाज की विशेष अनुमोदना।
(१४) 'वसुधा मेरा कुटुम्ब है।' इस सिद्धान्त का मूलत पालन।
(१५) अन्धविश्वासो का सर्वत्र तिरस्कार।
(१६) कुरीतियो का सार्थक उन्मूलन।
(१७) सशय ग्रस्त मानव को स्पष्ट जीवन-दर्शन की उपलब्धि कराना।



(१८) सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी, मालवी आदि विविध भाषाओ का अधिकाधिक व्यवस्थित प्रयोग।

(१९) समभाव की जागृति।

(२०) लोक-जीवन से सम्बद्ध प्रतीको, रूपको, उपमानो, विम्वो आदि का प्रयोग।

(२१) यथावसर छन्द, शेर, श्लोक, लोक गीत, भजन, आगम गाथाओ आदि का उपयोग।

(२२) अनोखी सूझ-बूझ सम्पन्नता।

(२३) दृढ विश्वास की पाषाण-रेखा।

(२४) निष्काम समर्पित व्यक्तित्व की सलोनी झलक।

(२५) मृदुता एव नम्रता सर्वत्र देदीप्यमान।

(२६) सघर्षों से जूझने की प्रवृत्ति का निराला रूप।

(२७) जीवन के अनुभवो की ऊष्मा का सस्पर्श।

(२८) मार्मिक सवेदना।

(२९) शोषण के प्रति सवल विद्रोह।

(३०) युग को उपयोगी चुनौतियाँ।

(३१) नर को नारायण वनाने के सतत उपक्रम।

(३२) सहज साधना का प्रत्यक्ष-परोक्ष निरूपण।

(३३) मन-वचन-कर्म मे एकरूपता अर्थात् कथनी-करनी मे एकरूपता।

(३४) मगलाचरण मे विश्व-कल्याण की कामना।

(३५) भाग्यवाद की अपेक्षा पुरुषार्थ का पूर्ण समर्थन।

(३६) जल-कमलवत् जीवन-साधना का अनुरंजन।

(३७) धर्माचरण मे निष्ठा की स्थापना।

(३८) आलोकित प्रकाश-स्तम्भ की किरणो का अगराग।

(३९) सन्त-परम्परा की अजस्र स्रोत की निर्भीकता।

(४०) निर्भीक तथ्य निरूपण।

(४१) स्वकथ्य के समर्थन मे विभिन्न मतो के प्रमाणो का उल्लेख।

(४२) समाजवादी दृष्टिकोण की सार्थकता।

(४३) कर्त्तव्य के प्रति कठोरता, प्रीति के प्रति उदारता एव युग-वोध के प्रति सजगता।

(४४) वर्तमान के आलोक मे भविष्य का निर्माण।

(४५) उपयोगी प्राचीनता के प्रति आकर्षण।

(४६) भ्रष्टाचार के उन्मूलन मे निरन्तर प्रयत्नशीलता।

(४७) राष्ट्रीयता के प्रति लगाव।

(४८) महज सिद्धान्तो की गहन पहिचान।

(४९) भारतीय सस्कृति के लिए महज अनुराग।

(५०) समन्वयवाद की स्थापना मे अद्भुत साहस का द्योतन।

(५१) वैचारिक निर्मलता एव स्वानुभूति का अमृतत्व।

(५२) चुभन का अभाव तथा जोडने की अपूर्व क्षमता।

(५३) वहु आयामी व्यक्तित्व की गहराई।

(५४) अध्ययन-अध्यापन की स्पष्ट छाप।



(५५) सामूहिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान।
(५६) आत्मा की अनन्त-अतल गहराई का चित्रण।
(५७) खारेपन का अभाव लेकिन खरेपन का विकसन।
(५८) विक्षेप-विक्षोभ की गैर-मौजूदगी परन्तु आशीष का अनुरंजन।
(५९) अनेकान्त की विशद व्याख्या तथा अपचार के प्रति उपेक्षा।
(६०) पाण्डित्य-प्रदर्शन का अभाव और शब्द-जाल के प्रति विपुल अनासक्ति
(६१) लोक-परिताप से द्रवणशीलता।
(६२) स्वाध्याय की सतत प्रेरणा।
(६३) श्रम-निष्ठा का औचित्य।
(६४) अनुशासन में कोमलता एवं कठोरता का समयोचित समन्वय आदि।

पूज्य जैन दिवाकरजी महाराज के प्रेरक प्रवचनांश

यों तो पूज्य दिवाकरजी महाराज का प्रत्येक प्रवचन लोक के प्रबोधनार्थ, आत्मशोधनार्थ, जागृति की मशाल में चेतना उत्पन्न करने के लिए एवं अज्ञानांधकार के विनाशार्थ दिव्य दिवाकर की भांति है, फिर भी कुछ ऐसे विशिष्ट प्रवचन भी हैं जो अमर है, अनुपम हैं और साधना-क्षमता के अविनश्वर स्वर हैं। इनमें आचार की विशुद्धि है, अनुशासन की मर्यादा है, समय का सदुपयोग है, युगीन बोध के साथ स्व-पर-कल्याण की भावना ध्वनित है, और है वैराग्य-विचार-संयमशीलता। यहाँ कुछ ऐसे ही प्रवचनांश उद्धृत किये जा रहे हैं जो अनन्त काल तक दिव्य मणियों की भांति आलोकित रहेंगे।

(१)

मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की भी समीक्षा करनी चाहिये। प्रत्येक को सोचना चाहिए कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये? वर्तमान में कैसा है? उसमें जो कमी है, उसे दूर कैसे किया जाए? यदि यह कमी दूर न की गयी तो क्या परिणाम होगा? इस प्रकार जीवन की सही-सही आलोचना करने से आपको अपनी बुराई-भलाई का स्पष्ट पता चलेगा। आपके जीवन का सही चित्र आपके सामने उपस्थित रहेगा। आप अपने को समझ सकेंगे।

(२)

क्रोध और ताकत का दबाव कोई स्थायी दबाव नहीं है। शान्ति, क्षमा और प्रेम के दबाव में ही यह शक्ति है कि दबा हुआ व्यक्ति फिर कभी सिर नहीं उठाता और न लड़ने आता है। यह एक ऐसी सरल और अनुभवगम्य बात है कि संसार के इतिहास से सहज ही समझी जा सकती है, फिर भी आश्चर्य है कि बुद्धिमान कहलाने वाले राजनीतिज्ञ इसे नहीं समझ पाते और पागलों की तरह शस्त्रास्त्र तैयार करके एक-दूसरे पर चढ़ बैठते हैं। अब तक के युद्धों से ये लोग जरा भी-शिक्षा नहीं लेते।

(३)

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया तले अंधेरा' की कहावत



चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरो को देखती है, अपने आपको नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यो पर तो वहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते।

(४)

जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नही रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नही रह सकता और सूरज के साथ रात नही रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नही हो सकता। एक म्यान मे दो तलवारें कैसे समा सकती हैं? इसी प्रकार जहाँ सत्य का तिरस्कार होगा वहाँ झूठ का प्रसार होगा।

(५)

अहिंसा मे सभी धर्मों का समावेश हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे हाथी के पैर मे सभी के पैरो का समावेश हो जाता है।

(६)

धर्म किसी खेत या बगीचे मे नहीं उपजता, न बाजार मे मोल बिकता है। धर्म शरीर से जिसमे मन और वचन भी गर्भित हैं—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-बिरादरी की कोई भावना नहीं है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर हो, कोई किसी भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है।

(७)

राष्ट्र के प्रति एक योग्य नागरिक के जो कर्त्तव्य हैं, उनका ध्यान करो, और पालन करो, यही राष्ट्र धर्म है। राष्ट्रधर्म का भली-भाँति पालन करने वाले आत्मधर्म के अधिकारी बनते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म से पतित होता है, वह आत्मिकधर्म का आचरण नही कर सकता।

(८)

यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही हैं, इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो।

(९)

ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात मे है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए।

(१०)

जूतो को बगल मे दवा लेंगे, मुसाफिरखाने मे व धर्मशाला मे जूतो को सिरहाने रखकर सोयेंगे, मगर चमार से घृणा करेंगे? यह क्या है?

(११)

धन की मर्यादा नही करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमे ज्यो-ज्यो धन का ईंधन झोकते जाओगे, वह बढती जाएगी।

(१२)

क्रोध एक प्रकार का विकार है और जहाँ चित्त मे दुर्बलता होती है, सहनशीलता का अभाव होता है और समभाव नही होता वही क्रोध उत्पन्न होता है।

(१३)

जो मनुष्य अवसर से लाभ नही उठाता और सुविधाओ का सदुपयोग नही करता, उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है और फिर पश्चात्ताप करने पर भी कोई लाभ नहीं होता।

(१४)

संस्कृत भाषा मे 'गुरु' शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है—'गु' का अर्थ अन्धकार है,



और 'रु' का अर्थ नाश करना है। दोनो का सम्मिलित अर्थ यह निकला कि जो अपने शिष्यो के अज्ञान का नाश करता है, वही 'गुरु' कहलता है।

(१५)

हिंसा मे अशान्ति की भयानक ज्वालाएँ छिपी है। उससे शान्ति कैसे मिलेगी ? वास्तविक शान्ति तो अहिंसा मे ही निहित है। अहिंसा की शीतल छाया में ही लाभ हो सकता है।

(१६)

मानव-जीवन की उत्तमता की कसौटी जाति नहीं है, भगवद्भजन है। जो मनुष्य परमात्मा के भजन मे अपना जीवन अर्पित कर देता है, और धर्म पूर्वक ही अपना जीवन-व्यवहार चलाता है, वही उत्तम है, वही ऊँचा है, चाहे वह किसी भी जाति मे उत्पन्न हुआ हो। उच्च से उच्च जाति मे जन्म लेकर भी जो हीनाचारी है, पाप के आचरण मे जिसका जीवन व्यतीत होता है और जिसकी अन्तरात्मा कलुषित बनी रहती है, वह मनुष्य उच्च नही कहला सकता।

(१७)

व्यापारी का कर्त्तव्य है, जिसे देना है, ईमानदारी से दे और जिससे लेना है उससे ईमानदारी से ही ले, लेन-देन मे बेईमानी न करे।

(१८)

जब तक किसी राष्ट्र की प्रजा अपनी संस्कृति और अपने धर्म पर दृढ है तब तक कोई विदेशी सत्ता उस पर स्थायी रूप से शासन नहीं कर सकती।

(१९)

विवेकवान् डूबने की जगह तिर जाता है, और विवेकहीन तिरने की जगह भी डूब जाता है।

(२०)

निश्चिन्त बनने के लिए निष्परिग्रही बनना चाहिए।

(२१)

अन्याय का पैसा अव्वल तो सामने ही समाप्त हो जायगा कदाचित् रह गया तो तीसरी पीढी मे दिवालिया बना ही देगा। ईमानदारी का एक पैसा भी मोहर के बराबर है और बेईमानी की मोहर भी पैसे के बराबर नहीं है।

(२२)

क्रोध से प्रीति का नाश होता है। मान से विनय का नाश होता है, माया से मित्रता का नाश होता है, परन्तु लोभ से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। यह तमाम अच्छाइयो पर पानी फेर देता है।

(२३)

रात्रि मे चिड़ियाँ कबूतर और कौवें आदि भी चुगने को नही जाते हैं तो आप तो इन्सान हैं। रात्रि मे खाना बिलकुल मना किया गया है। रात्रि मे न खाने से बारह महीने मे छह महीने तपस्या बिना जोर लगाये ही हो जाती है। इससे शुभ-गति का बन्ध होता है और अशुभ गति का बन्ध टल जाता है।

(२४)

धन-सम्पत्ति को साथ ले जाने का एक ही उपाय है और वह यह कि उसका दान कर दो, उसे परोपकार मे लगा दो, खैरात कर दो।

(२५)

कोई असाधारण व्यक्ति हो या साधारण आदमी हो भले ही तीर्थंकर ही क्यो न हो, यदि उसने पहले अशुभ कर्म उपार्जन किये है तो उन्हे भोगना ही पडता है। 'समरथ को नहि दोष गुसाई' की वात कर्मो के आगे नही चल सकती। अच्छे कर्म करोगे अच्छा फल पाओगे, बुरे कर्म करोगे, बुरा फल मिलेगा। कर्म करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है, मगर फल भोगना इच्छा पर निर्भर नही है। शराव पीना या न पीना मनुष्य की मर्जी पर है, मगर जो पी लेगा उसका मतवाला होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर नही है। उसकी इच्छा न होने पर भी उसे मतवाला होना पडेगा। इसलिए मैं वार-वार कहता हूँ कि खाली हाथ मत जाना।

(२६)

तुम्हारी यह रईसी और सेठाई किसके सहारे खडी है ? वेचारे गरीव मजदूर दिन-रात एक करके तुम्हारी तिजोरियाँ भर रहे हैं। तुम्हारी रईसी उन्ही के वल पर और उन्हीं की मेहनत पर टिकी हुई है। कभी कृतज्ञतापूर्वक उसका स्मरण करते हो ? कभी उनके दुःख मे भागीदार वनते हो ? अपने सुख मे उन्हे हिस्सेदार वनाते हो ? उनके प्रति कभी आत्मीयता का भाव आता है ? अगर ऐसा नही होता तो समझ लो कि तुम्हारी सेठाई और रईसी लम्वे समय तक नही टिक सकेगी। तुम्हारी स्वार्थपरायणता ही तुम्हारी श्रीमन्तताई को स्वाहा करने का कारण वनेगी। अभी समय है—गरीवो, मजदूरो और नौकरो की सुधि लो। उनके दुःखो को दूर करने के लिए हृदय मे उदारता लाओ। उनकी कमाई का उन्हें अच्छा हिस्सा दो। इससे उन्हें सतोष होगा और उनके सतोष से तुम सुखी वने रहोगे।

शैलीगत विशेषता

अन्त मे पूज्य श्री जैन दिवाकरजी महाराज की शैलीगत विशेषताओ पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज गुत्थियो को और अधिक उलझाना नही वरन् सरल-सहज मुद्रा में सुलझाना जानते थे। दो भिन्न तटो पर खडे व्यक्तियो के वीच उनके प्रवचन मित्रता और एकता के सेतु होते थे। वस्तुत- वे कैंची नही सूई थे, जिनमे चुभन थी किन्तु दो फटे दिलो को जोडने की अपूर्व क्षमता थी। उनके प्रवचन सरल, सरस, सुवोध, सुलझे हुए और अध्ययनपूर्ण थे। जिनमे वैचारिक निर्मलता के साथ अनुभूति का अमृत भी मिला होता था। उनकी प्रवचन शैली अपनी निराली थी। वह किसी का अनुकरण-अनुसरण नही थी, मौलिक थी। जव वे वोलना प्रारम्भ करते थे, तव कुछ उखडे-उखडे लगते, एकदम वालको की तरह साधारण वातें सुनाते।' किन्तु कुछ ही क्षणो वाद वे प्रवचन के वीच इस प्रकार जमते और अन्त मे ऐसे असाधारण-अलौकिक हो उठते कि सारा मैदान उनके हाथ रहता। मैं उनकी प्रवचन शैली की तुलना फ्रान्स के विशिष्ट विचारक विक्टर ह्यूगो की लेखन शैली से करता हूँ' भाषा उनकी सीधी-सादी, सरल-सुवोध



होती थी। उसमें राजस्थानी और मालवी शब्दो के साथ उर्दू का भी किंचित् पुट होता था। उच्चारण साफ था आवाज बुलन्द और मधुर थी।"[1]

स्वर्गीय निर्वाण प्राप्ति—पूज्य मुनिश्री के प्रवचन मलिन जीवन के प्रक्षालनार्थ जाह्नवी-सलिल की भांति उपादेय एव अनुकरणीय हैं। इनका अनुशीलन सन्तप्त मानस को अमरत्व प्रदान करेगा—ऐसी मेरी अचल आस्था है।

संदर्भ ग्रन्थ—

(१) श्री केवल मुनि—एक क्रान्तदर्शी युगपुरुष संत जैन दिवाकर
(२) श्री अशोक मुनि—दिवाकर रश्मियाँ
(३) श्री रमेश मुनि—जैन दिवाकर संस्मरणो के आइने में
(४) तीर्थंकर—मुनि श्री चौथमलजी जन्म-शताब्दि अक (वर्ष ७ अक ७, ८, नवम्बर-दिसम्बर १९७७।

परिचय एवं पता—
जैन कथा साहित्य के विशेषज्ञ अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थो के लेखक
प्रधानाचार्य संदीपनी महाविद्यालय, उज्जैन
पता—मोहन निवास, कोठीरोड, उज्जैन



"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयो के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध मे वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया-तले अंधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरो को देखती है, अपने-आप को नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यों पर तो बहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते।

ब्यावर, ८ सितम्बर, १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी महाराज

---

१ श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री—जैन दिवाकर, एक विलक्षण व्यक्तित्व, तीर्थंकर मुनिश्री चौथमलजी जन्म शताब्दि अक पृष्ठ २१ एव २२



वाणी के जादूगर : श्री जैन दिवाकर जी महाराज

☆ श्री सुरेश मुनि शास्त्री
(श्री प्रतापमलजी महाराज के सुशिष्य)

एक प्रचलित सस्कृत श्लोक मे कहा है—

"वक्ता दश सहस्रेषु" ।

—हजार मनुष्यो मे एक पण्डित और दस हजार मानवो मे एक वक्ता होता है।

वाणी का विराट् वैभव ही वक्ता के व्यक्तित्व को चमकाता है। चूंकि वाणी परिचित और अपरिचित, जान और अनजान सभी को जोडने का काम करती है। अपने मनोगत विचारो को वाणी के माध्यम से श्रोताओ के कानो तक ही नहीं, अपितु हृदय के आगन तक पहुँचाने मे जो प्रयत्नशील है। जिसके जीवन मे आचार और विचार का सामजस्य, करणी-कथनी मे एकरूपता परिलक्षित होती है, और जिसकी ओजस्वी वाणी मे एक ऐसा चुम्बकीय आकर्षण भरा रहता है, वस्तुत: अगणित मनुष्यो के हृदय में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने मे, जीवन की कुपथगामिनी राह को सुपथ मे मोड़ने मे एव दैनिक कार्य-कलापो की काया को पलटने मे जो सक्षम है। ऐसे तेजस्वी और ओजस्वी वक्ता को समाज का भावी सुधारक, मार्गदर्शक एव तारक माना गया है। जो कुरूढियो की वेडी मे जर्जरित मानवता को एक नई दिशा देने मे कुशल होते हैं।

ऐसे प्रभावशाली धर्म वक्ता समाज मे बहुत कम हुआ करते हैं। प्रथम तो मानव के मन-मस्तिष्क मे सत्य-शिव-सर्जनात्मक विचार बहुत कम उठते हैं। कदाच् सुविचार तरंगित हुए भी तो सुव्यवस्थित ढग से यथाप्रसग उनकी अभिव्यक्ति करना प्रत्येक विद्वान् के लिए बहुत कठिन है।

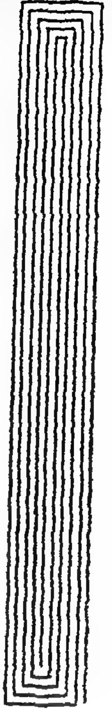
स्वयं मैंने अनुभव किया है। कतिपय नर-नारी पढाई-लिखाई मे अच्छी योग्यता पा लेते हैं, उनकी लेखनी में असरकारक जादू होता है, प्रत्येक दुर्गम विषय को इतनी सुगम सुन्दर रीति से लेखनी द्वारा प्रतिपादित करेंगे कि—पाठक स्वय उनकी लेखनी पर दग रह जाते हैं। हूबहू रस अलकार युक्त विषय का वर्णन करने मे पटु होते हैं। परन्तु सभा के बीच मे खडे होकर पाच-दस मिनिट बोल नहीं पाते है, वे स्वय कहते हैं—हमे अपनी लेखनी द्वारा विषय का चित्रण करने की शक्ति मिली है। किन्तु बोलने की नहीं। इसीलिए कहा है—

"वक्ता दश सहस्रेषु" ।

जगद्वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकरजी महाराज जैन समाज में प्रतिभा सम्पन्न साधक प्रसिद्ध वक्ता के रूप मे उदित हुए थे। आपकी वाक्शक्ति मे एक अनौखा आकर्षण और जादू था। जब आप धर्मोपदेश फरमाते थे, तब बिना प्रचार के हजारो नर-नारियो की भीड़ स्वत. उमड-घुमड़ कर एकत्रित हो जाया करती थी। इतना ही नही, पीयूष वर्षीय प्रवचन श्रवण कर सभी श्रोता



आनन्द-विभोर हो जाते थे, चातक की भाँति श्रोता आपके मुख की ओर ताका करते थे । और घण्टो तक प्रवचन सुनने के बाद भी श्रोताओ की अन्तरेच्छा लालायित रहा करती थी। सफल वक्ता की यही विशेषता है कि—सभा चातुर्य के साथ-साथ अरुचि की ओर जाते हुए श्रोताओ को रोके ।



आपकी प्रवचन शैली अत्यधिक सुबोध-सरल एव हृदयग्राहिणी रही है। क्या ग्राम्य जनता, क्या नागरिक, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सभी आनन्द-विभोर होकर लौटते थे। पुन दूसरे दिन आने का स्वत· उनका मन हो जाता था। कितने पिपासु तो एक घण्टे पहले सभा में अपना स्थान रिजर्व बना जाते थे।

जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर, ओसवाल, अग्रवाल, माहेश्वरी, मुसलमान, हरिजन, स्वर्णकार, कुमकार राजपूत, मोची, माली, कृषक आदि अन्य और भी कई जातियो के नर-नारी आपकी प्रवचन पावन गगा मे स्नान किया करते थे। क्या वालक, युवक और क्या वृद्ध सभी को इस ढग से गुरुदेव शिक्षाप्रद बातें फरमाते थे, मानो आत्मीयता का अमृत वरसा रहे हो। किसी को अरुचि कारक प्रतीत नही होता था।

श्रोता अपने मन मे यह समझते थे कि महाराजश्री मेरे धर्मग्रन्थ से ही बोल रहे हैं, मेरे लिए ही। इसलिए सभी श्रोता आपश्री को अपना धर्मगुरु मानते थे। क्योकि आपके उपदेश सर्व सुखाय, हिताय हुआ करते थे।

दुर्लभ विशेषताएँ

आप अपने व्याख्यानो मे कभी भी अन्यमत और उनकी मान्यताओ का खण्डन नही करते थे, हाँ, अपने मत-मान्यताओ का मण्डन करने मे कभी भी नही चूकते थे। प्रसग के अनुरूप वाणी मे रस और अलकार अद्भुत होते थे। फलत· कभी सारी जन-मेदिनी खिलखिला उठती, कभी करुणा रस मे भीग जाती थी, तो कभी अद्भुत और शान्तरस मे बह जाती। समन्वयात्मक आपकी शैली झोपड़ी से लेकर राजघराने तक और रक से लेकर राजा-महाराजाओ के जीवन तक पहुँची है।

एक स्वर से सभी ने आपके अमृतोपम उपदेश को प्रभु की वाणी मानकर सम्मान किया है। क्या ऊपर-दर्शित विशेषता कम है प्रसिद्ध वक्ता के लिए ?

क्लिष्ट और नीरस विषय को सुगम, सरस और रुचिकारक बनाकर श्रोताओ के समक्ष प्रस्तुत करना, यह विशिष्टता आपश्री मे थी। और वह अपने ढग की अनूठी प्रवचन शैली मे।

वक्ता, विद्वान्, लोकप्रिय समयज्ञ और मानवमात्र के प्रति करुणाशील थे श्री जैन दिवाकर जी महाराज। एक उदाहरण देखिये—

एक भौतिक विज्ञान विशारद ने जैन दिवाकरजी महाराज के समीप आकर तर्क किया—

"महाराजश्री, बुरा मानने की जरूरत नही है, मैं साफ-साफ कह देता हूँ। आजकल जितने भी मत, पथ और वाद हैं केवल दुकानदारी मात्र है। एक भी वाद प्रमाणित नहीं है, आत्मवाद भी एक ऐसा ही ढकोसला मात्र है।"



प्रत्युत्तर मे मुस्कान लिये गुरुदेव ने कहा—"क्यो साहव ! सामने वाले वृक्ष के पत्ते हिल क्यो रहे हैं ?"

"हवा से"—प्रश्न कर्त्ता ने कहा।
"क्या आप हवा देख रहे हैं ?"
"नही, मुनिजी"
"फिर भी आप हवा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।"

पत्तों के हिलने से आपने विश्वास किया कि 'पत्ते हवा से हिल रहे हैं।' हवा दिखाई नहीं देती उसका आभास पत्तो के हिलने से मालूम हुआ। उसी प्रकार आत्मारूपातीत है। इन्द्रियाँ उसे पकड नहीं पातीं, फिर भी शरीर के हिलने-चलने से आत्मा का स्पष्टत आभास होता है। उसके छोडकर चले जाने पर शरीर मृत वन जाता है। जैसे—

पुष्प गन्ध तिले तैल काष्ठे वह्नि पये घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देह पश्यात्मान विवेकतः॥

—जैसे फूलो मे गन्ध, तिलो मे तैल, काष्ठ मे अग्नि, दूध मे घृत, गन्ने मे गुड परिव्याप्त है, उसी प्रकार शरीर व्यापी आत्मसत्ता रही हुई है।

प्रश्नकर्ता को 'आत्मवाद भी एक ढकोसला है' ये शब्द वापिस लेना पडा और गुरुदेव का अत्यन्त आभार मानकर आगे बढ़े।

इस प्रकार गुरुदेव के वक्तृत्व शैली के एक नहीं अनेक रोचक प्रसग सुरक्षित हैं। केवल एक प्रवचन ने कइयो के अस्तोन्मुखी जीवन को उदयोन्मुखी वनाया है।

आज समाज मे ऐसे समन्वयात्मक प्रवक्ता की पूरी आवश्यकता है। वस्तुत. तभी समाज को सही मार्ग-दर्शन मिल सकता है, आज समाज दिग्मूढ बना हुआ है। एक ही कारण है 'समन्वय साधक का अभाव'।

प्रसिद्ध वक्ता श्री जैन दिवाकरजी महाराज के मननीय प्रवचनो के लिए निम्न साहित्य पढ़ना चाहिए .

दिवाकर दिव्य ज्योति (भाग १ से २१) स० प० श्री शोभाचन्दजी भारिल्ल
प्राप्तिकेन्द्र : जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
महावीर बाजार, ब्यावर (अजमेर)

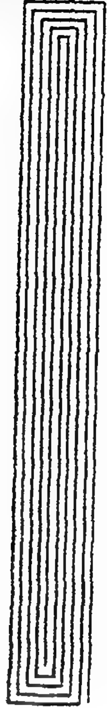






प्रसिद्धवक्ता श्री जैन दिवाकरजी महाराज के

विचारों के प्रतिबिम्ब



['जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नहीं रह सकता और सूरज के साथ रात नहीं रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता।]

१. धन चाहे जब मिल सकता है, किन्तु यह समय बार-बार मिलने वाला नही, अतएव धन के लिए जीवन का सारा समय समाप्त मत करो। धन तुच्छ वस्तु है, जीवन महान् है। धन के लिए जीवन को बर्बाद कर देना कोयलो के लिए चिन्तामणि को नष्ट कर देने के समान है।

२ धर्म, पथ, मत या सम्प्रदाय जीवन को उन्नत बनाने के लिए होते है, उनसे आत्मा का कल्याण होना चाहिये, किन्तु कई लोग इन्हें भी पतन का कारण बना लेते है।

३ आत्मा निर्बल होगी तो शरीर की सबलता किसी भी काम नही आयेगी। तलवार कितनी ही तेज क्यो न हो, अगर हाथ मे ताकत नही है तो उसका उपयोग क्या है ?

४ अहिंसा मे सभी धर्मो का समावेश हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे हाथी के पैर मे सभी के पैरो का समावेश हो जाता है।

५ जैसे मकान का आधार नीव है, उसीप्रकार मुक्ति का मूलाधार सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान के अभाव मे मोक्षमार्ग की आराधना कभी नही हो सकती।

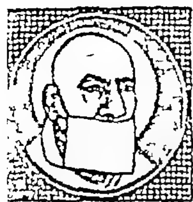
६ धर्म पर किसी का आधिपत्य नही है। धर्म के विशाल प्रागण मे किसी भी प्रकार की संकीर्णता और भिन्नता को अवकाश नही है। यहाँ आकर मानव-मात्र समान बन जाता है।

७. जो धर्म इस जीवन मे कुछ भी लाभ न पहुँचाता हो और सिर्फ परलोक मे ही लाभ पहुँचाता हो, उसे मैं मुर्दा धर्म समझता हूँ। जो धर्म वास्तव मे धर्म है, वह परलोक की तरह इस लोक मे भी लाभकारी अवश्य है।

८ आपको दो नेत्र प्राप्त हैं। मानो प्रकृति आपको सकेत दे रही है कि एक नेत्र से व्यवहार देखो और दूसरे नेत्र से निश्चय देखो। एकान्तवाद प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध है।

९ धर्म किसी खेत या बगीचे मे नही उपजता, न बाजार मे मोल बिकता है। धर्म शरीर से—जिसमे मन और वचन भी गर्भित हैं—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-बिरादरी की कोई भावना नही है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर हो, कोई किसी भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है।

१० राष्ट्र के प्रति एक योग्य नागरिक के जो कर्तव्य हैं, उनका ध्यान करो और पालन



करो, यही राष्ट्रधर्म है। राष्ट्रधर्म का भलीभाँति पालन करने वाले आत्मधर्म के अधिकारी बनते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म से पतित होता है, वह आत्मिक धर्म का आचरण नहीं कर सकता।

११ यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही हैं इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो।

१२ धर्म न किसी देश मे रहता है, न किसी खास तरह के लौकिक बाह्य क्रियाकाण्ड मे ही रहता है, उसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। जो कषायो का जितना त्याग करता है, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी भी वेश मे क्यो न रहता हो?

१३ अगर आप सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको आत्म-शुद्धि करनी पड़ेगी। आत्म-शुद्धि के लिए आत्मावलोकन का अर्थ यह नही कि आप अपनी मौजूदा और गैरमौजूदा विशेषताओ का ढिंढोरा पीटें, अपना बड़प्पन जाहिर करने का प्रयत्न करें, नहीं, यह आत्मावलोकन नहीं, आत्मवंचना है।

१४ बोतल मे मदिरा भरी है और ऊपर मे डॉट लगा है। उसे लेकर कोई हजार बार गंगाजी मे स्नान कराये तो क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी? नही। इसी प्रकार जिसका अतरग पाप और कषायो से भरा हुआ है, वह ऊपर से कितना ही साफ-सुथरा रहे, वास्तव मे रहेगा वह अपावन।

१५ आत्म-कल्याण का भव्य भवन आज खड़ा नही कर सकते तो कोई चिन्ता नहीं, नींव तो आज डाल ही सकते हो। आज नींव लगा लोगे तो किसी दिन शनै-शनै महल भी खड़ा हो सकेगा। जो नीव ही नहीं लगाना चाहता, वह महल कदापि खड़ा नही कर सकता।

१६ ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात मे है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए।

१७ धाय बालक को दूध पिलाती है, रमाती है फिर भी भीतर-ही-भीतर समझती है कि यह बालक मेरा नही पराया है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव धन-जन आदि की रक्षा करता है और उसका उपयोग भी करता है तथापि अन्तस् मे जानता है कि यह सब पर-पदार्थ है। यह आत्ममूल व नही है ऐसा समझकर वह उनमे गृद्ध नही बनता, अनासक्त रहता है।

१८ किसी भी किसान से पूछो कि वह अपने खेत को बार-बार जोतकर कोमल क्यो बनाता है? तो वह यही उत्तर देगा कि कठोर भूमि मे अकुर नही उग सकते। यही बात मनुष्य के हृदय की है। मनुष्य का हृदय जब कोमल होगा, तब उसकी अभिमानरूपी कठोरता हट जाएगी और उसमे धर्मरूपी अकुर उग सकेगा।

१९ जूतो को बगल मे दबा लेंगे, तीसरी श्रेणी के मुसाफिरखाने मे जूतो को सिरहाने रखकर सोयेंगे। मगर चमार से घृणा करेंगे? यह क्या है?

२० ज्ञानी का ज्ञान उसे दुःखो की अनुभूति से बचाने के लिए कवच का काम करता है, जबकि अज्ञानी का अज्ञान उसके लिए विष-बुझे बाण का काम करता है।

२१ स्वाध्याय का अर्थ कण्ठस्थ किये हुए गद्य-पद्य को तोते की तरह बोलते जाना ही नही समझना चाहिये। जो पाठ बोला जा रहा है, उसका आशय समझते जाना और उसकी गहराई मे मन लगा देना आवश्यक है।

२२ भाई, तू चिकनी मिट्टी की तरह ससार से चिपटा है, अत ससार मे फँस जाएगा। रेत के समान बनेगा तो ससार से निकल जाएगा।

२३ जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नही हो सकता, उसी प्रकार धर्म का भी बँटवारा सम्भव नहीं है। धर्म उस कल्पवृक्ष के समान है, जो समानरूप से सब के मनोरथो की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेदभाव को प्रश्रय नहीं देता।



२४. वडो का कहना है कि मनुष्य को कम खाना चाहिये, गम खाना चाहिये और ऊँच-नीच वचन सह लेना चाहिये तथा शान्त होकर रहना चाहिए। गृहस्थी मे जहाँ ये चार वातें होती हैं, वहाँ वडे आनन्द के साथ जीवन व्यतीत होता है।

२५ जिस मार्ग पर चलने से शत्रुता मिटती है, मित्रता वढती है, शान्ति का प्रसार होता है, और क्लेश, कलह एव वाद का नाश होता है, वह मार्ग सत्य का मार्ग है।

२६ धन की मर्यादा नहीं करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमे ज्यो-ज्यो धन का ईंधन झोकते जाओगे, वह वढती ही जायेगी।

२७ धर्म सुपात्र मे ही ठहरता है कुपात्र मे नही, इसलिए धर्मयुक्त जीवन वनाने के लिए नीति-मय जीवन की जरूरत होती है।

२८. अपना भ्रम दूर कर दे और अपने असली रूप को पहचान ले। जव तक तू असलियत को नही पहचानेगा, सासियो के चक्कर मे पड़ा रहेगा।

२९. आत्मज्ञान हो जाने पर ससार मे उत्तम-से-उत्तम समझा जाने वाला पदार्थ भी मनुष्य के चित्त को आकर्पित नही कर सकता।

३०. जो पूरी तरह वीतराग हो चुका है और जिसकी आत्मा मे पूर्ण समभाव जाग उठा है, वह कैसे भी वातावरण मे रहे, कैसे भी पदार्थों का उसे सयोग मिले उसकी आत्मा समभाव मे ही स्थित रहती है।

३१ क्रोध एक प्रकार का विकार है और जहाँ चित्त मे दुर्वलता होती है, सहनशीलता का अभाव होता है, और समभाव नहीं होता वही क्रोध उत्पन्न होता है।

३२. जो मनुष्य अवसर से लाभ नही उठाता और सुविधाओ का सदुपयोग नही करता, उसे पश्चात्ताप करना पडता है और फिर पश्चात्ताप करने पर भी कोई लाभ नहीं होता।

३३. जो वस्तुएँ इसी जीवन के अन्त मे अलग हो जाती हैं, जिनका आत्मा के साथ कुछ भी सम्वन्ध नहीं रह जाता है और अन्तिम जीवन मे जिसका छूट जाना अनिवार्य है, वे ही वस्तुएँ प्राप्त करना क्या जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है? कदापि नहीं। महत्त्वपूर्ण कार्य है अपने भविष्य को उज्ज्वल वनाना, और आत्मा को कल्याण के उस मार्ग पर ले जाना कि फिर कभी अकल्याण से भेंट ही न करनी पडे।

३४ वहुत से लोग चमत्कार को नमस्कार करके चमत्कारो के सामने अपने आपको समर्पित कर देते हैं। वे वाह्य ऋद्धि को ही आत्मा के उत्कर्प का चिह्न समझ लेते है और जो वाह्य ऋद्धि दिखला सकता है, उसे ही भगवान् या सिद्ध-पुरुष मान लेते हैं, मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है। वाह्य चमत्कार आध्यात्मिक उत्कर्प का चिह्न नही है और जो जानवूझकर अपने भक्तों को चमत्कार दिखाने की इच्छा करता है और दिखलाता है, समझना चाहिये कि उसे सच्ची महत्ता प्राप्त नही हुई है।

३५ परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह नियम जड और चेतन सभी पर समान रूप से लागू होता है। फूल जो खिलता है, कुम्हलाता भी है, सूर्य का उदय होता है, तो अस्त भी होता है, जो चढता है, वह गिरता है।

३६. संस्कृत भाषा में 'गुरु' शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है—'गु' का अर्थ अन्धकार है और 'रु' का अर्थ नाश करना है। दोनों का सम्मिलित अर्थ यह निकला कि जो अपने शिष्यो के अज्ञान का नाश करता है, वही 'गुरु' कहलाता है।

३७ अपने जीवन के जहाज को जिस कर्णधार के भरोसे छोड रहे हो, उसकी पहले जाँच



ती कर लो कि उसे स्वय भी रास्ता मालूम है या नही ? विज्ञ सारथी को ही अपना जीवन-रथ सुपुर्द करो, ऐरे-गैरे को गुरु बना लोगे तो अन्धकार मे ही भटकना पडेगा।

३८ किसी की निन्दा करके उसकी गदगी को अपनी आत्मा मे मत समेटो। गुणीजनो का आदर करो। नम्रता धारण करो। अहकार को अपने पास मत फटकने दो।

३९ यह क्या इन्सानियत है कि स्वयं तो भला काम न करो और दूसरे करें और कीर्ति पावें तो उनसे ईर्ष्या करो ? ईर्ष्या न करके अच्छे-अच्छे काम करो।

४० जिसका जितना विकास हुआ है उसी के अनुसार उसे साधना का चुनाव करना चाहिए और उसी सोपान पर खडे होकर अपनी आत्मा का उत्थान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

४१ मानव-जीवन की उत्तमता की कसौटी जाति नहीं है, भगवद्भजन है। जो मनुष्य परमात्मा के भजन मे अपना जीवन अर्पित कर देता है और धर्मपूर्वक ही अपना जीवन-व्यवहार चलाता है, वही उत्तम है, वही ऊँचा है, चाहे वह किसी भी जाति मे उत्पन्न हुआ हो। उच्च-से-उच्च जाति मे जन्म लेकर भी जो हीनाचारी है, पाप के आचरण मे जिसका जीवन व्यतीत होता है और जिसकी अन्तरात्मा कलुषित बनी रहती है, वह मनुष्य उच्च नहीं कहला सकता।

४२ शुद्ध श्रद्धावान् मनुष्य ही स्व-पर का कल्याण करने मे समर्थ होता है। जिसके हृदय मे श्रद्धा नही है और जो कभी इधर और कभी उधर लुढकता रहता है, वह सम्पूर्ण शक्ति से, पूरे मनोबल से साधना मे प्रवृत्त नही हो सकता और पूर्ण मनोयोग के बिना कोई भी साधना सफल नही हो सकती। सफलता श्रद्धावान् को ही मिलती है।

४३ मिथ्यात्व से बढकर कोई शत्रु नहीं है। बाह्य शत्रु बाहर होते है और उनसे सावधान रहा जा सकता है, मगर मिथ्यात्व शत्रु अन्तरात्मा मे घुसा रहता है, उससे सावधान रहना कठिन है। वह किसी भी समय, बल्कि हर समय हमला करता रहता है। बाह्य शत्रु अवसर देखकर जो अनिष्ट करता है उससे भौतिक हानि ही होती है, मगर मिथ्यात्व आत्मिक सम्पत्ति को धूल मे मिला देता है।

४४. विज्ञान ने इतनी उन्नति की, मगर लोगो की सुबुद्धि की तनिक भी तरक्की नहीं हुई। मनुष्य अब भी उसी प्रकार खूंखार बना हुआ है, वह हिंसक जानवर की तरह एक-दूसरे पर गुर्राता है और शान्ति के साथ नही रहता। अगर मनुष्य एक-दूसरे के अधिकारो का आदर करे और न्यायसगत मार्ग का अनुसरण करे तो युद्ध जैसे विनाशकारी आयोजन की आवश्यकता ही न रहे।

४५ हिंसा मे अशान्ति की भयानक ज्वालाएँ छिपी हैं। उससे शान्ति कैसे मिलेगी ? वास्तविक शान्ति तो अहिंसा मे ही निहित है। अहिंसा की शीतल छाया मे ही लाभ हो सकता है।

४६ मनुष्य कितना ही शोभनीक क्यो न हो, यदि उसमे गुण नही है तो वह किस काम का ? रूप की शोभा गुणो के साथ है।

४७ याद रक्खो और सावधान रहो, दिन-रात, हर समय, तुम्हारे भाग्य का निर्माण हो रहा है। क्षण-भर के लिए भी अगर तुम गफलत मे पडते हो तो अपने भविष्य को अन्धकारमय बनाते हो। सबसे अधिक सावधानी मन के विषय मे रखनी है। यह मन अत्यन्त चपल है। समुद्र की लहरो का पार है, पर मन की लहरो का पार नही है। इसमे एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी लहर उत्पन्न होती ही रहती है। इन लहरो पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

४८ वर्तमान मे जो कुछ भी प्राप्त है, उसमे सन्तोष धारण करना चाहिए। सन्तोष ही शान्ति प्रदान कर सकता है। करोडो और अरबो की सम्पत्ति भी सन्तोष के बिना सुखी नही बना सकती, और यदि सन्तोष है तो अल्प साधन-सामग्री मे भी मनुष्य आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है।



४९. जो भूत-भविष्यत् की चिन्ता छोडकर वर्तमान परिस्थितियो मे मस्त रहता है, वही जगत मे ज्ञानी है। सच पूछो तो ऐसे लोगो को ही वास्तविक आनन्द के खजाने की चाबी हाथ लगी है।

५०. मनुष्य जितना-जितना आत्मा की ओर झुकता जाएगा, उतना ही उतना सुखी बनता जाएगा।

५१ मिलावट करना घोर अनैतिकता है। व्यापारिक दृष्टि से भी यह कोई सफल नीति नहीं है। जो लोग पूर्ण प्रामाणिकता के साथ व्यापार करते हैं और शुद्ध चीजें बेचते हैं, उनकी चीज कुछ महँगी होगी और सम्भव है कि आरम्भ मे उसकी बिक्री कम हो, मगर जब उनकी प्रामाणिकता का सिक्का जम जाएगा और लोग असलियत को समझने लगेंगे तो उनका व्यापार औरो की अपेक्षा अधिक चमकेगा, इसमें सदेह नही। अगर सभी जैन व्यापारी ऐसा निर्णय कर लें कि हम प्रामाणिकता के साथ व्यापार करेंगे और किसी प्रकार का धोखा न करते हुए अपनी नीति स्पष्ट रखेंगे तो जैनधर्म की काफी प्रभावना हो, साथ ही उन्हें भी कोई घाटा न रहे।

५२. कोई चाहे कि दूसरो का बुरा करके मैं सुखी बन जाऊँ, तो ऐसा होना सम्भव नही है। बबूल बोकर आम खाने की इच्छा करना व्यर्थ है।

५३ ससार मे ऐसी कोई वस्तु नही है, जिसे पाकर तुम अभिमान कर सको, क्योकि वह वास्तव मे तुम्हारी नही है और सदा तुम्हारे पास रहने वाली नही है। अभिमान करोगे तो आगे चलकर नीचा देखना पडेगा।

५४ इस विशाल विश्व मे अनेक उत्तम पदार्थ विद्यमान हैं, परन्तु आत्मज्ञान से बढकर अन्य कुछ भी नही है। जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे कुछ प्राप्तव्य नहीं रह गया।

५५ आत्मा-आत्मा मे फर्क नही है, फर्क है करनी मे। जो जैसी करनी करता है, उसे वैसी ही सामग्री मिल जाती है।

५६ जो सुयोग मिला है, उसे ससार के आमोद-प्रमोद मे विनष्ट मत करो, बल्कि आत्मा के स्वरूप को समझने मे उसका सदुपयोग करो।

५७ किसी व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध मे जब विचार करना हो तो उसके गुणो पर ही विचार करना उचित है। गुणो का विचार करने मे गुणो के प्रति प्रीति का भाव उत्पन्न होता है और मनुष्य स्वय गुणवान बनता है।

५८. अविवेकी जन अपने दोष नही देख पाते, पराये दोष देखते हैं, अपनी निन्दा नही करते, पराई निन्दा करते हैं। वे अपने मे जो गुण नही होते, उनका भी होना प्रसिद्ध करते हैं और वर्तमान दोषों को ढकने का प्रयत्न करते हैं, जबकि दूसरो मे अविद्यमान दोषों का आरोप करके उनके गुणो को आच्छादित करने का प्रयास भी करते हैं।

५९ वास्तव मे देखा जाए तो विकार देखने मे नही, मन मे है। मन के विकार ही कभी दृष्टि मे प्रतिविम्बित होने लगते हैं। मन विकार-विहीन होता है तो देखने से दृष्टा की आत्मा कलुषित नही होती।

६० प्रामाणिकता का तकाजा है कि मनुष्य जो वेष धारण करे, उसके साथ आने वाली जिम्मेदारी का भी पूरी तरह निर्वाह करे। ऐसा करने मे ही उस वेष की शोभा है।

६१ व्यापारी का कर्तव्य है, जिसे देना है, ईमानदारी से दे और जिससे लेना है उससे ईमानदारी से ही लेन-देन मे बेईमानी न करे।

६२. शील आत्मा का भूषण है। उससे सभी को लाभ होता है, हानि किसी को नही होती।

६३ सत्य सबको प्रिय और असत्य अप्रिय है। जो लोग लोभ से, भय से या आशा से



प्रेरित होकर असत्य का प्रयोग करते हैं, वे भी असत्य को अच्छा नही समझते। उनके अन्त करण को टटोलो तो प्रतीत होगा कि वे असत्य से घृणा करते है, और सत्य के प्रति प्रीति और भक्ति रखते है।

६४. जब तक किसी राष्ट्र की प्रजा अपनी सस्कृति और अपने धर्म पर दृढ है तब तक कोई विदेशी सत्ता उस पर स्थायी रूप से शासन नही कर सकती।

६५. अगर आप अपनी जुबान पर कब्जा करेंगे तो किसी प्रकार के अनर्थ की आशंका नही रहेगी। इस दुनिया मे जो भीषण और लोमहर्षक काण्ड होते हैं, उनमे से अधिकाश का कारण जीभ पर नियन्त्रण का न होना है।

६६ गुण आत्मा को पवित्रता की ओर प्रेरित करते हैं, दोषो से आत्मा अपवित्र-कलुषित बनता है। गुण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आत्मा को स्वरूप की ओर ले जाते हैं, जबकि दोष उसे विकार की ओर अग्रसर करते हैं।

६७. आत्मशुद्धि के लिए क्षमा अत्यन्त आवश्यक गुण है। जैसे सुहागा स्वर्ण को साफ करता है, वैसे ही क्षमा आत्मा को स्वच्छ बना देती है।

६८ अमृत का आस्वादन करना हो तो क्षमा का सेवन करो। क्षमा अलौकिक अमृत है। अगर आपके जीवन मे सच्ची क्षमा आ जाए तो आपके लिए यही धरती स्वर्ग बन सकती है।

६९ कृषक धान की प्राप्ति के लिए खेती करता है तो क्या उसे खाखला (भूसा) नही मिलता है ? मगर वह किसान तो मूर्ख ही माना जाएगा जो सिर्फ खाखले (भूसे) के लिए खेती करता है। इसलिए जहाँ तपस्या को आवश्यक बताया गया है, वही उसके उद्देश्य की शुद्धि पर भी पूरा बल दिया है। उद्देश्य-शुद्धि के बिना क्रिया का पूरा फल प्राप्त नही हो सकता।

७०. भोग का रोग बडा व्यापक है। इसमे उडती चिडिया भी फँस जाती है, अतएव इससे बचने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए और चित्त को कभी गृद्ध नहीं होने देना चाहिए।

७१ तीन बातें ऐसी हैं जिनमे सब्र करना ही उचित है—किसी वस्तु का ग्रहण करने मे, भोजन में और धन के विषय मे, मगर तीन बातें ऐसी भी हैं, जिनमे सन्तोष धारण करना उचित नहीं है—दान देने मे, तपस्या करने मे और पठन-पाठन मे।

७२ निश्चय मानो कि सुख की कुंजी सन्तोष है, सम्पत्ति नही, अतएव दूसरो की चुपडी देख कर ईर्ष्या मत करो। अपनी रूखी को बुरा मत समझो और दूसरो की नकल मत करो।

७३. बीज बोना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है, किन्तु बो देने के बाद इच्छानुसार अकुर पैदा नहीं किये जा सकते। अपढ किसान भी जानता है कि चने के बीज से गेहूँ का पौधा उत्पन्न नही होता, मगर तुम उससे भी गये-बीते हो। तुम सुख पाने के लिए कदाचरण करते हो।

७४ तीर्थंकर कौन होता है ? जगत् मे अनन्त जीव हैं। उनमें जो ऊँचे नम्बर की करनी करता है, वह तीर्थंकर बन जाता है।

७५ यह समझना भूल है कि हम तुच्छ हैं, नाचीज हैं, दूसरे के हाथ की कठपुतली हैं, पराये इशारे पर नाचने वाले हैं, जो भगवान् चाहेगा वही होगा, हमारे किये क्या हो सकता है ? यह दीनता और हीनता की भावना है। अपने आपको अपनी ही दृष्टि मे गिराने की जघन्य विचार-धारा है। जीव का भविष्य उसकी करनी पर अवलम्बित है। आपका भविष्य आपके ही हाथ मे है, किसी दूसरे के हाथ मे नहीं।

७६ जब आपके चित्त मे तृष्णा और लालच नहीं होंगे तब निराकुलता का अभूतपूर्व आनन्द आपको तत्काल अनुभव मे आने लगेगा।

७७. भला आदमी वह है जो दुनिया का भी भला करे और अपना भी। जो दुनिया का



भला करता है और अपना नुकसान कर लेता है, वह दूसरे नम्बर का भला आदमी है, लेकिन जो दूसरे का नुकसान करके अपना भला करता है, वह नीच है।

७८ जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नही हो सकता, उसी प्रकार धर्म का बँटवारा नही हो सकता। जैसे आकाश, सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थ हैं, वे किसी के नही हैं, अतएव सभी के हैं, इसी प्रकार धम भी वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश या वर्ग का नही होता।

७९ धर्म का प्रागण सकीर्ण नही, बहुत विशाल है। वह उस कल्पवृक्ष के समान है जो समान रूप मे सबके मनोरथो की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेदभाव को प्रश्रय नहीं देता।

८० नम्रता वह वशीकरण है जो दुश्मन को भी मित्र बना लेती है, पाषाण हृदय को भी पिघला देती है।

८१ वास्तव में नम्रता और कोमलता बडे काम की चीजे है। वे जीवन की बढिया शृ गार है, आभूषण हैं, उनसे जीवन चमक उठता है।

८२ ज्ञान प्राप्त करने के लिए विनम्रता की आवश्यकता होती है। विनीत होकर ही ज्ञान प्राप्न किया जा सकता है।

८३ किसी मे बुराई है तो बुराई की ओर मत देखो, बुराई की ओर देखोगे वह तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर जाएगी। जैसा ग्राहक होता है, वह वैसी ही चीज की तरफ देखता है।

८४ जीवन मे थोडा-सा भी समय बहुत मूल्य रखता है। कभी-कभी ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर आते हैं, जिन पर आपके भावी जीवन का आधार होता है। उन बहुमूल्य क्षणो मे अगर आप प्रमादमय होंगे तो आपका भावी जीवन बिगड जाएगा और यदि सावधान होंगे, आत्माभिमुख होंगे तो आपका भविष्य मगलमयी बन जाएगा।

८५ दवाओ के सहारे प्राप्त तन्दुरुस्ती भी कोई तन्दुरुस्ती है। असली तन्दुरुस्ती वही है कि दवा का काम ही न पडे। दवा तो बूढ़े की लकडी के समान है। लकडी हाथ मे रही तब तक तो गनीमत और जब न रही तब चलना ही कठिन। इसी प्रकार दवा का सेवन करते रहे तब तक तो तन्दुरुस्ती रहे और दवा छोडी कि फिर बीमार के बीमार। यह भी कोई तन्दुरुस्ती है ?

८६ जो वस्तु आत्मा के कल्याण मे साधक नही है, उसकी कोई कीमत नही है।

८७. इस भ्रम को छोड दो कि जैन कुल मे जन्म लेने से आप सम्यग्दृष्टि हो गये। इस खयाल में भी मत रहो कि किसी के देने से आपको सम्यग्दर्शन हो जाएगा, नही, सम्यग्दर्शन आपके आत्मा की ही परिणति है, एक अवस्था है। आपकी श्रद्धा, रुचि या प्रतीति की निर्मलता पर सम्यग्दर्शन का होना निर्भर है। शुद्ध रुचि ही सम्यग्दर्शन को जन्म देती है।

८८ कैसी भी रेतीली नदी बीच में आ जाए, धोरी बैल हिम्मत नही हारता। वह रास्ता पार कर ही लेता है। वह वहन किये भार को बीच में नहीं छोडता। इसी प्रकार सुदृढ श्रद्धा वाला साधक अंगीकार की हुई साधना को पार लगा कर ही दम लेता है।

८९. साधु-सतो का काम है जनता की शुभ और पवित्र भावनाओ को बढावा देना, अप्रशस्त उत्तेजनाओ को, जो समय-समय पर दिल को अभिभूत करती है दबा देना और इस प्रकार ससार मे शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होना।



९०. मनुष्य की विवेकशीलता इस बात मे है कि भूतकाल से शिक्षा लेकर वर्तमान को सुधारे और वर्तमान का भविष्यत् के लिए सदुपयोग करे। जिसमे इतनी भी बुद्धि नहीं, उसे मनुष्य कहना कठिन है।

९१ परमात्मा मे न सुगन्ध है और न दुर्गन्ध है। उसमे न तीखा रस है, न कटुक है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है। वह सब प्रकार के स्पर्शों से भी रहित है। न कर्कश है, न कोमल है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न चिकना है और न रूखा है।

९२ ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात मे है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए। किसी ने बहुत पढ लिया है, बडे-बडे पोथे कण्ठस्थ कर लिये हैं, अनेक शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मगर उसके इस ज्ञान का क्या प्रयोजन है, यदि वह सोच-विचार कर नही बोलता ?

९३. जिन वचनो से हिंसा की प्रेरणा या उत्तेजना मिले वह वचन भाषा के दुरुपयोग मे ही सम्मिलित है बल्कि यह कहना उचित होगा कि हिंसावर्धक वचन भाषा का सबसे बडा दुरुपयोग है।

९४ जो व्यक्ति, समाज या देश विवेक का दिव्य दीपक अपने सामने रखता है और उसके प्रकाश मे ही अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता है, उसे कभी सन्ताप का अनुभव नही करना पडता, उसे असफलता का मुँह नहीं देखना पडता।

९५ विवेकवान् डूबने की जगह तिर जाता है और विवेकहीन तिरने की जगह भी डूब जाता है।

९६. धर्म व्यक्ति को ही नही, समाज को, देश को और अन्तत. अखिल विश्व को शान्ति प्रदान करता है। आखिर समाज हो या देश, सबका मूल तो व्यक्ति ही है और जिस प्रणालिका से व्यक्ति का उत्कर्ष होता है, उससे समूह का भी उत्कर्ष क्यो न होगा ?

९७ विवेक वह आन्तरिक प्रदीप है जो मनुष्य को सत्पथ प्रदर्शित करता और जिसकी रोशनी मे चलकर मनुष्य सकुशल अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है। विवेक की बदौलत सैकडो अन्यान्य गुण स्वत आ मिलते है। विवेक मनुष्य का सबसे बड़ा सहायक और मित्र है।

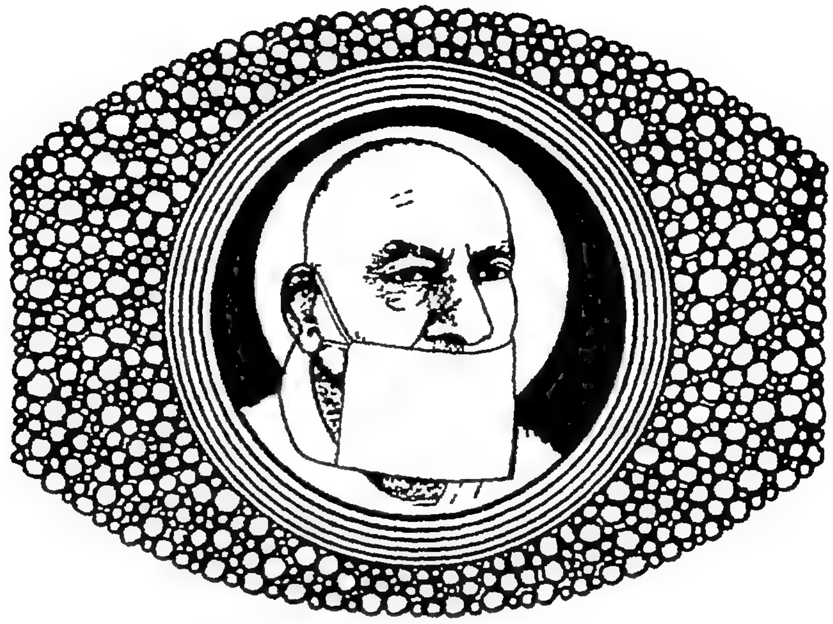
९८ शान्ति प्राप्त करने की प्रधान शर्त है समभाव की जागृति। अनुकूल और प्रतिकूल संयोगो के उपस्थित होने पर हर्ष और विषाद का भाव उत्पन्न न होना और रागद्वेष की भावना का अन्त हो जाना समभाव है।

९९. जरा विचार करो कि मृत्यु से पहले कभी भी नष्ट हो जाने वाली और मृत्यु के पश्चात् अवश्य ही छूट जाने वाली सम्पत्ति को जीवन से भी बडी वस्तु समझना कहाँ तक उचित है ? अगर ऐसा समझना उचित नही है तो फिर लोभाभिभूत होकर क्यो सम्पत्ति के लिए यह उत्कृष्ट जीवन बर्बाद करते हो ?

१००. यह शरीर दगाबाज, बेईमान और चोर है। यदि इसकी नौकरी में ही रह गया तो सारा जन्म बिगड जाएगा, अतएव इससे लडने की जरूरत है। दूसरे से लडने मे कोई लाभ नही, खुद से ही लडो।

१०१ मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरला ही माई का लाल होता है, मगर धन्य वही है, जो अपने मन पर सवार होता है।





भक्ति, उपदेश, वैराग्य और नीति की स्वर चेतना में गुम्फित

श्री जैन दिवाकर जी के प्रिय पद्य



भक्ति, उपदेश, वैराग्य तथा नीति की स्वर-चेतना में गुम्फित श्री जैन दिवाकरजी के प्रिय पद्य

भक्ति-स्तुति प्रधान-पद

१ महामन्त्र की आरती

जय अरिहन्ताण प्रभु, जय अरिहन्ताणं।
भाव भक्ति से नित प्रति, प्रणमू सिद्धाण ॥
ओम् जय अरिहन्ताण ।टेर।
दर्शन ज्ञान अनन्ता, शक्ति के धारी, स्वामी ।
यथाख्यात समकित है, कर्म शत्रु हारी ।ॐ।१।
है सर्वज्ञ सर्वदर्शी बल, सुख अनन्त पाये।
अगुरु लघु अमूरत, अव्यय कहलाये ।ॐ।२।
नमो आयरियाण, छत्तीस गुण पालक।
जैनधर्म के नेता, सघ के सचालक ।ॐ।३।
नमो उवज्झायाण चरण-करण ज्ञाता।
अङ्ग उपाङ्ग पढाते, ज्ञान दान दाता ।ॐ।४।
नमो सव्व साहूणं, ममता मदहारी।
सत्य अहिसा अस्तेय, ब्रह्मचर्यधारी ।ॐ।५।
चौथमल कहे शुद्ध मन, जो नर ध्यान धरे।
पावन पच परमेष्ठी, मङ्गलाचार करे ।ॐ।६।

२. मन्त्रराज

(तर्ज—त्रिभगी छन्द)

मन्त्रो का मन्त्र नवकार मन्त्र, तन्त्रो मे तन्त्र हरे दु.ख तन का।
जो लेवे धार, हो पल मे पार, करदे उद्धार पापी जन का ।टेक।
पूर्वों का सार, शरण आधार, है गुण अपार, तारण-तिरण।
मगलिक आप जयवन्त जाप, दे सुख अमाप, कल्याण करण।
मनोरथ दे पूर, चिन्ता दे चूर, कटे कर्म क्रूर, भव दु ख भजन।
है यही रसान, नाग दमन जान, पारस प्रधान, करदे कंचन।
भाषे जिनेश, रहते हमेश, कटजा क्लेश उनके मन का ॥१॥



द्रौपदी की भीर आ हरी पीर, किये लम्वे चीर, महिमा तेरी ।
सुदर्शन सेठ, की सूली मेट, रखी श्रेष्ठ पेठ, नही देर करी ।
सुभद्रा नार, खोले द्वार, पुन. शिवकुमार, तापस केरी ।
दे सीता आवाज, रख परमेष्ठी लाज, मिटे अगन आज हुआ जल फेरी ।
सोमा सवेर, नवकार फेर, झड गया जहर खुश हो गनका ॥२॥
अंजना के प्रान, बचाये आन, सोमप्रभ दिवान की पत राखी ।
जिनदत्ता तास, की पूरी आश, फिर रिखवदास, के हुआ साखी ।
अमरकुमार, की करी सार, मेणरया नार, दी क्या आखो ।
जलते थे आग, नागन नाग, पारस वीतराग, की गति जाकी ।
रूप खरा चोर, दी स्वर्ग ठोर, जटाऊ पक्षी ओर, किया टनका ॥३॥
सती चन्दनवाल, की काटी जाल, और श्रीपाल का जहाज तिरा ।
पद्मश्री को साज, दे मेटी दाज, फेर वच्छराज का काज सरा ।
दिया शरणाचार, युगवाहु कुमार, हुआ देव अवतार सुरताज धरा ।
कलावती के हाथ, कीने निपात, णमोकार ध्यात, दिया साज खरा ।
पद्मावती जान, धरा तेरा ध्यान, दिया ऊँचा स्थान तापसवन का ॥४॥
नन्दवास ग्राम, मे मगनीराम आ सर्प हराम ने डक दिया ।
मात-तात तिवार, तेला को धार, फेरा णमोकार, दुःख वीत गया ।
लक्ष्मीचन्द विख्यात, रामपुरे जात, वीच सिंह वदजात, से भेट भया ।
गिन नवकार, मारी ललकार, सिंह भगा जिवार, निज काज किया ।
टेकचन्द की नार, सर्प डंक मार, लिया निश्चय धार, हटा विष तनका ।५।
फिर रगूजी सती, की राखी रती, माता ने कथी, कानो ने सुनी ।
मगनीराम उजार, थी जोखम लार, मिले चोर चार, वचा आखी अनी ।
ऐसे पचमकाल, काटे कई के जाल, करदे, निहाल, है तूही धनी ।
गुरु हीरालाल, मेरे दयाल, को नित्य खुशहाल, रख दिव्य गुनी ।
चौथमल छन्द, कथे कड़ी वन्द, करदे आनन्द, शिष्यवर्धन का ॥६॥

३ शान्तिनाथ-स्तुति

(तर्ज—पनजी की)

साता कीजो जी श्री शान्तिनाथ प्रभु शिव सुख दीजो जी ।टेक।
शान्तिनाथ है नाम आपको, सव ने साताकारी जी ।
तीन भवन मे चावा प्रभुजी मृगी निवारी जी ।१।
आप सरीखा देव जगत मे और नजर नही आवे जी ।
त्यागी ने वीतरागी मोटा, मुझ मन भावे जी ।२।



शान्ति जाप मन माही जपता, चाहे सो फल पावे जी।
ताव तिजारी दुख दालिदर सब मिट जावेजी।३।
विश्वसेन राजाजी के नन्दन, अचला दे रानी जाया जी।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे घणा सुहाया जी।४।

४. महावीर का नाम

म—हावीर मन मोहन प्रभु का, नाम है शान्ति करण सदा।
हा—र्दिक भाव से उमग-उमगकर करता हूँ मैं स्मरण सदा।
वी—त राग जिन देव विभू भव-सिंधु तारण तिरण सदा।
र—मण करे तुम नाम हृदय नित्य, मिथ्या कुमतितम हरण सदा।
प्र—णमत इन्द्र नरेन्द्र सुरासुर—अर्चित है तुम चरण सदा।
भू—ति प्रज्ञ सर्वज्ञ चौथमल, दास तुम्हारे शरण सदा।।

५ वीर-जन्म

आये आये हैं जगत-उद्धारक, तृशला जी के नन्द।टेर।
स्वर्ग बना नरलोक हो रहा, घर-घर हर्षानन्द।
मगल मधुरे गावे परिया, उत्सव कीना इन्द्र।१।
कचन वर्ण केहरी लक्षण, सोहे चरणारविन्द।
नैना निरखी मुदित हुए सब, प्रभु का मुखारविन्द।२।
सयम ले प्रभु केवल पाए, सेवे सुरनर वृन्द।
वाणी अमृत पीते सब मिल, पावे मन आनन्द।३।
अभय-दान निर्वद्य वचन मे, ज्योतिष मे ज्यो चद।
तप मे उत्तम ब्रह्मचर्य है, जग मे वीर जिनन्द।४।
कुवर सुबाहू को निस्तारा, जो था नृप फरजद।
शालिभद्र से सौभागी को, किया देव अहमिन्द्र।५।
प्रभु को सुमिरे प्रभुता पावे, मिट जावे दुख द्वन्द।
गुरु प्रसादे चौथमल कहे, वरते परमानन्द।६।

६ गौतम गणधर

(तर्ज—जय जगदीश हरे)

जय गौतम स्वामी, प्रभु जय गौतम स्वामी।
ऋद्धि सिद्धि के दाता, प्रणमूं सिर नामी।ओउम्।
वसुभूति के नन्दन, पृथ्वी के जाया, स्वामी ···
कचन वरण अनुपम, सुन्दर तन पाया।१।

ठाम-ठाम सूत्रो मे नाम तेरा आवे, स्वामी·
चार ज्ञान पूरवधर, सुरनर गुण गावे ।२।
महावीर से गुरु तुम्हारे, जग तारण हारे, स्वामी·····
सब मुनियो मे शिरोमणि, गणधर तुम प्यारे ।३।
भव्य हितार्थ तुमने किया निर्णय भारी, स्वामी··
पूछे प्रश्न अनेको, निज आतम तारी ।४।
गौतम-गौतम जाप जपे से, दु ख दरिद्र जावे, स्वामी ·
सुख सम्पत्ति यश लक्ष्मी अनायास आवे ।५।
भूत-प्रेत भय नाश, गौतम ध्यान धरे स्वामी··· ···
चोट फेंट नही लागे, सब दु ख दूर हरे ।६।
दो हजार साल के सादडी, सेखे काल आया, स्वामी ··
गजानन्द आनन्द करो, यूँ, चौथमल गाया ।७।

७ नेत्रादर्श

(तर्ज—लावणी छोटी बडी)

नयनन मे पुतली लड़े भेद नही पावे ।
कोई सच्चा गुरु का, चेला बना छन्द गावे ।।टेर।।
इस मन के तच्छन लच्छन सब नयनन मे ।
यह नेकी बदी के दोनो दीप नयनन मे ।।
ये योगी भोगी की मुद्रा है नैनन मे ।
और खुशी गमी की पहिचान है नैनन मे ।।
ये करे लाखो मे चोट चूक नही जावे ।।१।।
ये काम-क्रोध दोनो जालिम नैनन मे ।
ये प्रीति नीति रस दोनो बसे नैनन मे ।।
है शक्ति हटोटी बदकारी नैनन मे ।
ये लिहाज नम्रता सभी बसे नैनन मे ।।
नैनन के बस हो प्राण पतग गमावे ।।२।।
ये शूरवीर के तोड दीखे नैनन से ।
और सुगडाई के अक्षर मिले नैनन से ।।
अष्टादश देश की लिपी लिखे नैनन से ।
और वरणादिक की खास विषय नैनन से ।।
विष अमृत ये दोनो नैन मे रहावे ।।३।।
मुनि की मुद्रा का दरस करें नैनन से ।
और पांव धरे जीवो को टाल नैनन से ।।



गौशाले की रक्षा वीर करे नैनन से।
इलायची कुवर गुरु देख तिरे नैनन से ।।
मुनि चौथमल नैनन पे छन्द सुनावे ।।४।।

८ ऋषभ-बाल लीला

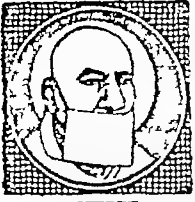
(तर्ज—छोटा-सा बलमा मोरे)

ऋषभ कन्हैयालाल आगना मे, रुमझुम खेले।
अँखियन का तारा प्यारा, आगना मे, रुमझुम खेले ।टेर।
इन्द्र इन्द्रानी आई, प्रेम धर गोदी मे लेले।
हँसे रमावे करे प्यार, दिल की रलियाँ रेले ।१।
रत्न पालनिये माता, लाल ने झुलावे झूले।
करे लल्ला से अति प्यार, नही वो दूरी मेले ।२।
स्नान कराई माता, लाल ने पहिनावे झेले।
गले मोतियन का हार, मुकुट शिर पर मेले ।३।
गुरु प्रसादे मुनि चौथमल, यो सबसे बोले।
नमन करो हरबार, वो तीर्थंकर पहले ।४।

९. ऋषभ-मरुदेवा

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

ऋषभजी मूडे बोल, बोल, बोल आदेश्वरवाला काँई थारी मरजीरे।
मासू मूडे बोल।
बोल-बोल मारा ऋषभ कन्हैया, काई थारी मरजी रे।
मासू मूंडे बोल ।टेर।
सुनी आज मारा लाल पधारिया, वनिता बाग के माँहिरे।
तुरत गज असवारी करने, आई उमाही रे ।१।
रह्यो मजा मे है सुख-साता, खूब कि मन चायो रे।
एक कहन या थासू लाल, मोडो क्यो आयो रे ।२।
खेर हुई अण हुई न होवे, एक बात भली नही कीधी रे।
गया पाछे कागद, नही भेज्यो, मोरी खबरा न लीधी रे ।३।
वार-त्योहारे भोजन भाण, ताता कोई आता रे।
थारी याद मे ठण्डा होता, पूरा नही भाता रे ।४।
खोलो-खोलो जल्दी मौन न, खोलो खोलो; खोलो रे।
बोलो बोलो मासू बोलो, बोलो बोलो रे ।५।



थे निर्मोही मोह नही आयो, मैं मोह कर कर हारी रे।
मोरादेवी गज होदे गई, मोक्ष मझारी रे।६।
समत उगणी से साल चौंसठे भोपाल सेखे कारी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, धन्य मेहतारी रे।७।

१० जिनवाणी

(तर्ज—पनजी मूडे बोल)

श्री जिनवाणी रे २, तूं सुन थारी सुधरे जिन्दगानी रे।टेर।
तिरिया तिरे अनन्त तिरेगा, श्रद्ध-श्रद्ध जिनवाणी रे।
वेपारी तिरे नाव से जू, भवोदधि पानी रे।१।
गुण दोष-विचारन नर्क निवारन, अनन्त सुखा की दानी रे।२।
त्रफला त्रिदोष हरेया अघ मेल हटानी रे।
शूची सरस्वती भगवती, विद्या वरदानी रे।३।
त्राता माता शारदा, इच्छित पूरण ब्रह्माणी रे।
आदि पुरुष से प्रकट भई, ग्रही उत्तम प्रानी रे।४।
ऊँट ने इखु नही भावे, गद्धे मिश्री नही मानी रे।
ज्वर से भोजन रुची जाय जैसे अज्ञानी रे।५।
सुदर्शन सेठ श्रद्ध जिनवाणी, संयम लियो हित जानी रे।
छती ऋद्ध तज जम्बूकंवर वरी शिवरानी रे।६।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, चातुर ने पहचानी रे।
स्वर्ग मोक्ष की दाता, साची पुण्य वेल वधानी रे।७।

११ घट में भगवान

(तर्ज—आये आये हैं जगदोद्धारक)

देखो देखो इस घट के पट मे, प्रगट हैं भगवान।टेर।
करोडो रवि से अति प्रकाश है, झगमग झगमग ज्योति।
तेरा मेरा तजे न जब तक, नही प्रकाशित होती।१।
इधर उधर तू फिरे भटकता, नाहक वक्त गमावे।
स्वय प्रभु हैं खोजन वाले, गुरु मिले तब पावे।२।
घृत दुग्ध मे गन्ध पुष्प मे, रस इक्षु के माई।
विना क्रिया के जुदा न होवे, समझा ज्ञान लगाई।३।
कठिन तपस्या करी वीर ने, निजानन्द को पाया।
'चौथमल' कहे उन्ही प्रभु ने, आतम ज्ञान वताया।४।



१२. महावीर का ध्यान

(तर्ज—पूर्ववत्)

महावीर से ध्यान लगाया करो।
सुख सम्पत्ति इच्छित पाया करो।टेर।

क्यो भटकता जगत मे, महावीर-सा दूजा नही।
त्रिशला के नन्दन जगत वन्दन, अनन्त ज्ञानी है वही।
उनके चरणो मे शीश नमाया करो।१।

जगत भूषण विगत दूषण, अधम उधारण वीर है।
सूर्य से भी तेज है, सागर के सम गम्भीर है।
ऐसे प्रभु को नित्य उठ ध्याया करो।२।

महावीर के प्रताप से, होती विजय मेरी सदा।
मेरे वसीला है उन्ही का, जाप से टले आपदा।
जरा तन मन से लौ लगाया करो।३।

लसानी ग्यारे ठाणा, आया चौरासी साल है।
कहे चौथमल गुरु कृपा से, मेरे वरते मगलमाल है।
सदा आनन्द हर्ष मनाया करो।४।

१३. मनावो महावीर

(तर्ज—न छेडो गाली दु'गा रे)

जो आनन्द मगल चावो रे, मनावो महावीर।टेर।
प्रभु त्रिशलाजी का जाया, है कचन वर्णी काया।
जा के चरणा शीश नमावो रे, मनावो महावीर।१।
प्रभु अनन्त ज्ञान गुणधारी, है सूरत मोहनगारी।
जां का दर्शन कर सुख पावो रे, मनावो महावीर।२।
या प्रभुजी की मीठी वाणी, है अनन्त सुखो की दानी।
थें धार धार तिरजावो रे, मनावो महावीर।३।
जांके शिष्य वडा है नामी, सदा सेवो गौतम स्वामी।
जो रिद्धि सिद्धि थे पावो रे, मनावो महावीर।४।
थारा सब विघन टल जावे, मन वाछित सुख प्रगटावे।
फेर आवागमन मिटावो रे, मनावो महावीर।५।
ये साल गुण्यासी भाई, देवास शहर के माई।
कहे 'चौथमल' गुण गावो रे, मनावो महावीर।६।



१४. उपकारी गुरुजन

(तर्ज—जाओ जाओ ए मेरे साधु)

आते-आते हैं महा उपकारी जैन पूज्य वर याद।टेर।

पूज्य मुनिश्री हुकमचन्दजी, रहे व्याख्यान सुनाय।
बरसे थे रुपैये नभ से, नाथद्वारा माय।१।

पूज्यवर धर्मदासजी ने, शिष्य अपना कायर जान।
धार शहर मे अनशन कीना, रखी धर्म की शान।२।

नेतसिंह मुनि किया सथारा, सेवा सुर आ करते।
उनके नाम का महुआ सैलाने, आज तलक जन कहते।३।

रतनचन्दजी महाराज पधारे, शहर जावरा मॉय।
प्रसन्न हो सुर मगलिक सुनता, रात समय मे आय।४।

प्रत्यक्ष मे भैरू बुलवाया, मेवाड़ी मुनि मान।
उनके पुजारी देखो आज तक, जैनधर्म रहे मान।५।

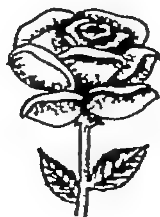
स्वामी रोडजी ने तपस्या मे, ली प्रतिज्ञा धार।
गज वृषभ ने आहार वेराया, उदियापुर मँझार।६।

जोधपुर आसोप हवेली, पूज्य अमरसिंह आय।
शास्त्र श्रवणकर असुर वहाँ का, सरल बना हर्षाय।७।

अहमदावाद मे धर्मसिंह मुनि, रहे दरगा मे जाय।
जिन्द प्रसन्न हो मिला आप से, रजनी के बीच आय।८।

अम्वाले मे मुनिलाल का, हुआ अग्नि सस्कार।
चोल पट्टा चद्दर जली नही, मौजूदा इस वार।९।

गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, सुन जो भाया वाया।
कई पूज्य मुनि हुए जैन मे, गुण जावे नही गाया।१०।





वैराग्य-उपदेश प्रधान-पद

१ दया का फल

(तर्ज—या हसीना बस मदीना, करवला मे तू न जा)

दया की वोवे लता, शुभ फल वही नर पाएगा।
सर्वज्ञ का मतव्य है, गर ध्यान मे जो लाएगा ॥टेर॥
आयु दीर्घ होता सही, अरु श्रेष्ठ तन पाता वही।
शुद्ध गोत्र कुल के वीच मे, फिर जन्म भी मिल जाएगा ॥१॥
घर खूव ही धन धान्य हो, अति वदन मे वलवान हो।
पदवी मिले है हर जगह, स्वामी वडा कहलाएगा ॥२॥
आरोग्य तन रहता सदा, त्रिलोक मे यश विस्तरे।
ससार रूप समुद्र को, आराम से तिर जाएगा ॥३॥
गुरु के परसाद से, यू 'चौथमल' कहता तुम्हे।
दया रस भीने पुरुष के, इन्द्र भी गुण गाएगा ॥४॥

२. फूट की करतूत

(तर्ज—पनजी मू डे बोल)

फूट तज प्राणी रे २, आपस की फूट है या दुख दानी रे ॥टेर॥
पडी फूट गयो वदल विभीषण, रावण वात नही मानी रे।
सोना की गई लका टूट, मिट्टी मे मिलानी रे ॥१॥
कौरव पाण्डव के आपस मे जब या फूट भराणी रे।
लाखो मनुष्य गये मारे युद्ध मे, हुई नुक्सानी रे ॥२॥
पृथ्वीराज जयचंद राठौड के, हुई फूट अगवाणी रे।
वादशाह ने कियो राज, दिल्ली पे आनी रे ॥३॥
फूट विके या कैसी सस्ती, फूटे सर नही पानी रे।
फूटे मोती की देखो, कीमत हलकानी रे ॥४॥
सप जहाँ पर मिले सम्पदा, फूट जहाँ पर हानी रे।
ऐसी जान के बुद्धिमान, तज कुत्ता तानी रे ॥५॥
अस्सी साल मे रामपुरे, मण्डी वाजार मे आनी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल', यूँ कहे हित वानी रे ॥६॥

३. पीड़ा-नाशक-जाप

(तर्ज—चेतन चेतो रे दश बोल जगत मे मुश्किल मिलिया रे)

सदा सुख पावो रे, चौविस जिनन्द को इण विधि ध्यावो रे।टेर।
श्री पद्म प्रभुजी का जाप किया रवि पीड़ा टल जावे रे।
चन्द्र पीड़ा हरे चन्दा प्रभुजी, जो गुण गावै रे।१।



मगल पीड़ा दूर करन मे वासुपूज्य कहावे रे।
शान्तिनाथ हरे बुध पीडा जो शीश नमावे रे।२।
ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति सुपार्श्व स्वामी रे।
शीतल अरु प्रभु विमल अनन्त, धर्म कुन्थु नामी रे।३।
अरहनाथ नेमी वर्द्धमान गुरु पीड़ा पर हरना रे।
शुक्र पीडा तुरत टले, सुविधि स्मरणा रे।४।
मुनि सुव्रत का जप शनिश्चर, ग्रह प्रसन्न हो जावे रे।
अरिष्टनेम का भजन करे, नही राहु सतावे रे।५।
केतु ग्रह का जोर चले नही, पार्श्व जहाँ प्रकटावे रे।
मल्लिनाथ बाल ब्रह्मचारी, विघ्न हटावे रे।६।
सप्त सोलह, दश अष्ट, उन्नीस और इग्यारा रे।
तेतीस अठारा, सतरा, सहस्र जप सर्व का सारा रे।७।
ॐ ह्री नमा तीर्थेश्वर, जपता रिद्धि सिद्धि आवे रे।
दु.ख दरिद्र रोग शोक, और भय विरलावे रे।८।
उन्नीसे सतत्तर जोधाणे मे, चोमासे आनन्द वर्तावे रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल', मनवछित पावे रे।९।

४. गुणी गुण को जाने

(तर्ज—लावणी खड़ी)

पापी तो पुण्य का मारग क्या जाने है।
खर कमल पुष्प की गन्ध न पहचाने है ॥टेर॥
नकटाने नाक दुजा को दाय नही आवे।
विधवा ने साग सुहागिन को नही सुहावे ॥
हो उदय चन्द्रमा चोरो को नही भावे।
लुब्धक को लगे अनिष्ट जो याचक आवे ॥
सुनके सिद्धान्त मिथ्यात्वी रोष आने हैं ॥१॥
अगायक गायक की करे बुराई।
निर्धन धनी से रखता है अकडाई ॥
दाता को देख मूंजी ने हँसी उडाई।
पतिव्रता को देख लपट ने आँख मिलाई ॥
गुणी के गुण को द्वेषी कब माने है ॥२॥
वध्या क्या जाने कैसे पुत्र जावे है।
सन्तन के भेद हो सन्त वही पावे है ॥



हीरे की जाँच तो जौहरी को आवे है।
या घायल की गति घायल वतलावे है ।।
सत शिक्षा को मूरख उलटी ताने है ।।३।।
मुक्ता को तजके गु जा शठ उठावे।
इक्षु को तज के ऊँट कटारो खावे ।।
पा अमूल्य नर-तन विषयो मे ललचावे।
गज से विरुद्ध हो जैसे श्वान घुरवि ।।
कहे 'चौथमल' जो समझे वही दाने है ।।४।।

५ कुव्यसन-निषेध

(तर्ज—या हसीना बस मदीना करवला मे तू न जा)

लाखो व्यसनी मर गये, कुव्यसन के परसग से।
अय अजीजो वाज आओ, कुव्यसन के परसग से ।।टेर।।
प्रथम जूवा है वुरा, इज्जत धन रहता कहाँ।
महाराज नल वनवास गये, कुव्यसन के परसग से ।।१।।
मास भक्षण जो करे, उसके दया रहती नही।
मनुस्मृति मे है लिखा, कुव्यसन के परसग से ।।२।।
शराव यह खराव है, इन्सान को पागल करे।
यादवो का क्या हुआ, कुव्यसन के परसग से ।।३।।
रण्डीवाजी है मना, तुमसे सुता उनके हुवे।
दामाद की गिनती करे, कुव्यसन के परसग से ।।४।।
जीव सताना नही खा, क्यो कत्ल कर कातिल वने।
दोजख का मिजवान हो, कुव्यसन के परसग से ।।५।।
इश्क वुरा परनार का, दिल मे जरा तो गौर कर।
कुछ नफा मिलता नही, कुव्यसन के परसग से ।।६।।
माल जो परका चुरावे, यहाँ भी हाकिम दे सजा।
आराम वह पाता नही, कुव्यसन के परसंग से ।।७।।
गाजा, चरस, चण्डू, अफीम और भग तमाखू छोड़ दो।
'चौथमल' कहे नही भला, कुव्यसन के परसग से ।।८।।

६ दुर्लभ दस अग

(तर्ज—पनजी मूंडे बोल)

आज दिन फलियो रे-२ थाने जोग वोल यो दश को मिलियो रे ।।टेर।।
मनुष्य जन्म और आर्य भूमि, उत्तम कुल को योगो रे।
दीर्घ आयु और पूर्ण इन्द्री, शरीर निरोगो रे ।।१।।



सद्‌गुरु कनक कामनी त्यागी, आप तिरे पर तारैं रे।
तप क्षमा दया रस भीना, सूत्र उच्चारे रे ॥२॥
ये आठ बोल तो भवी-अभवी, कई जीव ने मिल जावे रे।
नही श्रद्धा होवे तो कुगुरु, मिल भरमावे रे ॥३॥
अवके श्रद्धा गाढी राखो, शुद्ध पराक्रम को फोड़ो रे।
अल्प दिनो के माही आठो, कर्म को तोड़ो रे ॥४॥
यह दश वोल की क्षीर मसाला, दान-पुण्य से पाई रे।
अनन्त काल की भूख-प्यास, थारी देगा भगाई रे ॥५॥
निर्धन का धनवान हुए, ज्यूँ अन्धे आँखाँ पाई रे।
चन्द्रकान्त मोती के मानिन्द, नर देह साही रे ॥६॥
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, कीजे धर्म कमाई रे।
उन्नीसे और सत्तर साल मे जोड वनाई रे ॥७॥

७. धर्म का दवाखाना

(तर्ज—तरकारी लेलो मालिन तो आई वीकानेर की)

आए वैद्य गुरु जी, ले लो दवाई विना फीस की ॥टेर॥
ले लो दवाई है सुखदाई, देर करो मत भाई।
नव्ज दिखाओ रोग वताओ, दो सव हाल सुनाई रे ॥१॥
सत्सग की शीशी के अन्दर, दवा ज्ञान गुणकारी।
एक चित्त से पियो कान से, सकल मिटे वीमारी रे ॥२॥
टिटिस कोप और थर्मामीटर, मति-श्रुति ज्ञान लगाओ।
साध्य-असाध्य भवी-अभवी, भेद रोग का पाओ रे ॥३॥
दया सत्य दत्त ब्रह्मचर्य है, निर्ममत्व फिर खास।
शम दम उपशम कई किसम की, दवा हमारे पास ॥४॥
रावण कश मरे इस कारण, रोग हुआ अभिमान।
लोभ रोग ने भी पहुँचाई, अनन्त जीव को हान रे ॥५॥
जुवा मास मदिरा वेश्या है, चोरी वुरी शिकार।
परनारी यह सव वद परहैजी वचे रहो हुशियार रे ॥६॥
त्याग तप से ताव तिजारी, रोग शोक मिट जावे।
हो निरोग शिव महल सिधावे, मन इच्छित फल पावे रे ॥७॥
चर्चा चूरण वडा तेज है, जो कोई इसको खावे।
सशय रूपी वदहाजमा, तुरत-फुरत मिट जावे रे ॥८॥
सम्वत् उन्नीसे अस्सी साल मे देवास शहर मझारी।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' यह, दवाखाना किया जहारी रे ॥९॥



८ पत्नी का, पति को उपदेश

(तर्ज—अनोखा कुवर जी हो साहिवा झालो इ घर आय)

अर्ज म्हारी साभलो हो साहिवा ! मत निरखो पर नार ।टेर।
सोना रूपा मिट्टी तणा हो साहिवा, प्याले दूध भराय ।
रूप तणो तो फेर है, हो साहिबा, भेद स्वाद मे नाय ।१।
धन घटे यौवन हटे हो साहिवा, तन से होय खराब ।
दण्ड भरे फिर रावले हो साहिवा, रहे कैसे मुख आव ।२।
दभ करे निज कथ से, हो साहिवा, सो थारी किम होय ।
चोर कर्म दुनिया कहे हो साहिवा, प्राण देवोगा खोय ।३।
रावण पद्मोत्तर जैसा, हो साहिवा, कीनी पर घर प्रीत ।
इसी अनीति योग से, हो साहिवा, पुरा हुआ फजीत ।४।
पर नारी रत मानवी हो साहिवा, जाति से होवे वहार ।
बाल घात होती घणी, हो साहिवा, जावे नर्क द्वार ।५।
मोटा कुल का ऊपन्या, हो साहिवा चालो चाल विचार ।
पर नारी माता गिनो, हो साहिवा शोभा हो ससार ।६।
उन्नीसे इक्यासी साल मे, हो साहिवा आया सेखे काल ।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे हो साहिवा, या मदारिया मे ताल ।७।

९ सीधा और मीठा बोल

(तर्ज—पनजी मूडे बोल)

रसना सीधी वोल, वैरन सीधी वोल ।
थारे ने कारणिये जीवने दूखडा ऊपजे ए ।टेर।
पाँचो माही तू ही ज मुखिया, अजव-गजव नखरारी ए ।
ऊँच-नीच नही सोचे वोले, मीठी खारी ए ।१।
माधव से सीधी नही बोली, शका जरा नही राखीए ।
कौरव पाण्डव का युद्ध कराया, महाभारत साखी ए ।२।
वसु राजवी झूठ बोलने, नर्क बीच मे जावे ए ।
तुझ कारण से जल की मच्छी, प्राण गवावे ए ।३।
एक-एक अवगुण सर्व इद्रियो मे, चौड़े ही दर्शावे ए ।
खाय विगाडे बोल विगाडे, तुझ मे दोय रहावे ए ।४।
ख्याल राग तो विना सिखाया, तुझ ने केई आवे ए ।
धर्म तणा अक्षर की कहे तो, तू नट जावे ए ।५।



लपर-लपर बोल क्षण पल मे, दे तू राड कराई ए।
पचो मे तू काज विगाडे, गाँव मे फूट पडाई ए।६।
लाल वाई और फूल वाई, यह दो नाम है थारा ए।
मान वडाई की वात करीने, जन्म विगाडा ए।७।
पर का मर्म प्रकाशे तू तो, अहोनिशि करे लपराई ए।
साधु सतियो से तू नही चूके, करे बुराई ए।८।
मत वोले, बोल तो मोके, मन मे खूब विचारी ए।
प्रिय वोले मर्म रहित तूं, मान निवारी ए।९।
सूत्र के अनुसारे वोल्या, सर्व जीव सुख पावे ए।
महावीर भगवान कहे वह, मोक्ष सिधावे ए।१०।
असत्य और मिश्र भाषा, वीर प्रभु ने वरजी ए।
'चौथमल' कहे सत्य व्यवहार, भाषे मुनिवरजी ए।११।

१० दया दिग्दर्शन

(तर्ज—लावनी अष्टपदी)

दया को पाले है बुद्धिमान, दया मे क्या समझे हैवान।टेर।
प्रथम तो जैन धर्म माही, चौवीस जिनराज हुए भाई।
मुख्य जिन दया ही बतलाई, दया विन धर्म कह्यो नाई॥
दोहा—धर्मरुची करुणा करी, नेमनाथ महाराज।
मेघरथ राजा परे वो शरणे, रखकर सार्‌या काज॥
हुए श्री शान्तिनाथ भगवान।१।
दूसरा विष्णु मत मुझार, हुए श्रीकृष्णादिक अवतार।
गीता और भागवत कीनी, और वेदो मे दया लीनी॥
दोहा—दया सरीखो पुण्य नही, अहिंसा परमोधर्म।
सर्व मत और सर्व ग्रन्थ मे यही धर्म का मर्म॥
देख लो निज शास्त्र धर ध्यान।२।
तीसरा मत है मुसलमान, खोलकर देखो उनकी कुरान।
रहम नही है जिनके दिल दरम्यान, उसी को वेरहम लो जान॥
दोहा—कहते मुहम्मद, मुस्तफा, सुन लेना इन्सान।
दुःख देवेगा किसी जीव को, वो ही दोजख की खान।
मार जहाँ मुद्गल की पहचान।३।
लानत है उसी मत ताई, कि जिसमे जीव दया नाही।
जीव रक्षा मे पाप कहवे, दुःख ये दुर्गति का सहवे॥



दोहा—मा हणो मा हणो वचन है, देखो आंख्या खोल।
सूत्र रहस्य जाने नही मूरख, खाली करे झकझोल।
कहो वे चतुर हैं कि अज्ञान।४।
तीनो मजहव का कह दिया हाल, इसी पै कर लेना तुम ख्याल।
दो अव कुगुरू का सग टाल, वनो तुम षट्काया प्रतिपाल।
दोहा—गुरु हीरालाल जी का हुक्म से नाथद्वारा मॉय।
किया चौमासा चौथमल, उन्नीसे साठ मे आय॥
सुन के जीवरक्षा करो गुणगान।५।

११ अभिमान त्याग

(तर्ज—तरकारी ले लो मालिन आई है वीकानेर की)

अभिमानी प्रानी, डरतो लाओ रे जरा राम को।टेर।
यौवन धन मे हो मदमाता, कणगट ज्यू रंग आणे।
तेरे हित की वात कहे तो, क्यो तू उलटी ताने रे।१।
कन्या वेची, धन लियो एची वात करे तू पेची।
मुरदा का ले खाँपन खेंची, हृदय कपट की कैंची रे।२।
घर का टटा डाल न्याति मे, तू तो धडा नखावे रे।
आपस बीच लडा लोगो ने, पच वन जावे रे।३।
धर्म-ध्यान की कहे वतावे, हम को फुरसत नाही रे।
नाटक गोठ व्याह मे, दे तू दिवस विताई रे।४।
उपकार कियो नही किसी के ऊपर, खा-खा तन फुलावे रे।
हीरा जैसो मनुष्य जन्म, क्यो वृथा गमावे रे।५।
मारवाड मे शहर सादडी, साल इक्यासी माही रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' श्रावण मे गाई रे।६।

१२ कर्म गति

(तर्ज—पजी की)

कर्म गति भारी रे-२ नही टले कभी सुन जो नरनारी रे।टेर।
कर्म रेख पर मेख धरे, नही देख्यो कोई वलकारी रे।
शाह को रङ्क, रङ्का को कर दे, छत्तरधारी रे।१।
राजा राम को राज्य तिलक, मिलने की हो रही तैयारी रे।
कर्मो ने ऐसी करी, भेजे विपिन मुझारी रे।२।
शीलवती भी सीता माता, जनक राजदुलारी रे।
कर्मो ने वनवास दिया, फिरी मारी-मारी रे।३।



सत्यधारी हरिश्चन्द्र राजा ने, वेची तारा नारी रे।
आप रहे भगी के घर पर, भरे नित वारी रे।४।
सती अजना को पीहर मे, राखी नही लगारी रे।
हनुमान-सा पुत्र हुआ, जिनके वलकारी रे।५।
खन्दक जैसे मुनिराज की, देखो खाल उतारी रे।
गजसुकुमाल सिर झार सही, समता उर धारी रे।६।
सम्वत् उन्नीसे अस्सी साल, धम्मोत्तर सेत्रे कारी रे।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, दया सुखकारी रे।७।

१३ तन का बंगला

(तर्ज—करने भारत का कल्याण)

तेरे रहने को रहवान, मिला तन वँगला आलीशान।टेर।
हड्डी मास चर्ममय सारा, तन है कैसा सुन्दर प्यारा।
है यह तिमजिला मकान।१।
पाँव से लेकर कटि के ताईं, पहला मजिल है सुन भाई।
जिसमे है मल का स्थान।२।
कटि से ग्रीवा तक पहिचानो, इसमे है मशीन एक मानो।
पचता जिसमे भोजन-पान।३।
ग्रीवा से तीजा मजिल सर, जिसमे वावूजी का दफ्तर।
टेलीफोन लगे दो कान।४।
दुर्वीन है नैनो का प्यारा, वायु हित है नाक दुवारा।
मुख से खाते हैं पकवान।५।
लेकिन तुमको मिला किराये, जिसको पाकर क्यो वौराये।
वैठे इसको अपना मान।६।
जव भी हुकम मौत का आवे, वँगला खाली तुरत करावे।
'चौथमल' कहे भजो भगवान।७।

१४. उमरिया बीती जाय

(तर्ज—मारवाड़ी)

थारी सारी उमरिया, पापो मे बीती जाय अव तो सोच रे।टेर।
धर्म विना परभव मे प्राणी, कहाँ जाकर ठहरेगा।
वेरग चिट्ठी विना नाम की, कौन इसे झेलेगा।१।
काले मे धोले आ जावे, तो खटजावे भाई।
धोले मे गर धूल पडी तो, शोभा होगी नाई।२।



गया बालपन देख जवानी, यह भी हुई रवाना।
वृद्धापन मे नही सुधरी तो, होगा फिर पछताना।३।
वक्त खरीदी का है प्यारो, सोच-समझकर लेना।
जो कर्जे से दाम लिया तो, मुश्किल होगा देना।४।
जो सोया है खोया उसने, जागा जिसने पाया।
'चौथमल' कहे सुखी बनेगा, ज्योति मे ज्योति समाया।५।

१५. कल की कौन जाने

(तर्ज—जाओ-जाओ ए मेरे साधु)

जाने-जाने यह कौन जगत् मे, कल होने की बात।टेर।
ज्योतिषी ने लग्न देखकर, निज कन्या परनाई।
जाते सासरे विधवा हो गई, दे भावी कौन मिटाई।१।
वशिष्ठ ऋषि कहे लग्न बता, कल राम राज्य हो जावे।
उसी समय वनवास हुआ है रामायण बतलावे।२।
राजमती हर्षधर बोली, वनूँ नेम पटनार।
कुँवारी रहकर बनी साध्वी भावी के अनुसार।३।
खण्ड सातवाँ साधन धाया सुभूम चक्री राया।
होनी की क्या उसको मालूम दरिया बीच समाया।४।
कल यह होगा कल यह होगा क्यो तू मिथ्या ताने।
कल की होनी को तो वो ही पूरण ज्ञानी जाने।५।
सोलह वर्षों तक जीऊँगा, वीर स्वय उच्चारा।
रखो दृढ विश्वास उसी पर है वो तारण हारा।६।
धर्मकाज कल करना चाहो, करो आज ही भाया।
पाव पलक की खबर नही है 'चौथमल' जितलाया।७।

१६. माया

(तर्ज—लावनी खडी)

यह माया नाते की औरत, यह किसी की सुन्दर-वनी नही।
चाहे जितना करो जापता, इसके सर कोई धनी नही।टेर।
यह माया आती नर घर के कर देता है मालोमाल।
हर सूरत से हुए इकट्ठी, नई-नई लगा के थाल।
देश-देश मे खुलें दुकाने बना देती हैं हुण्डीवाल।
भोला नर समझे नही दिल मे गाढे उनके लगाते ताल।
सेठानी मन मे यूँ जाने, मेरी रात कोई जनी नही।चाहे।१।



हीरे-पन्ने कण्ठी डोरे गले वीच लटकाते हैं।
वग्गी के वीच मे वैठ शाम को, हवाखोरी को जाते हैं।
दया दान की जो कोई केवे तो केवे माल मुफ्त नही आते हैं।
इसमे तो वो ही नर जाने जो कोई इसे कमाते हैं।
चाहे हमे मूँजी कह देवो धर्म अर्थ तो आनी नही ।चाहे।२।
कोई कहे आज इन्द्र सभा है वैठक के दो रूपे हैं मोल।
तो आगे कुर्सी रखना हमारी दो के सवा दो देंगे खोल।
कोई कहे आज कसाई से गऊ के प्रान वचावें अमोल।
यही दुकान देखी क्या तुमने, अवे कभी मत हमसे वोल।
ज्यादा कहे मजहव को छोडे और वात कर घनी नही ।चाहे।३।
ऐसे मूँजी कव धर्म दीपावे, कव जाति की रक्षा करे।
क्या मजाल है गा गद्धे की, जो गज के सिर की झूल धरे।
सभी मजा गये लूट जगत मे, मूँजी धन-धन करते मरे।
छोड़ नीद गफलत की प्राणी, आगे का नही फिकर करे।
'चौथमल' कहे तप धन सच्चा, ऐसा जुग मे धनी नही ।चाहे।४।

१७. कर्म की विचित्रता

(तर्ज—हो पिऊ पेली पेंसिजर)

रे जीवा जावे तू मोटर कार मे, थारा कर्म जावे पहिला तार में ।टेर।
भाग्यहीन नर मदी लगावे, आई या तेजी वाजार मे ।१।
परदेश मे जावे पापी कमावा, पीछे औरत मर गई बुखार मे ।२।
गहनो को डिव्वो गयो सटपट मे, ऊँडो पड्यो है विचार मे ।३।
जेव से वटुआ गायव हुआ है, ये तो रहा है तकरार में ।४।
लेणायत आ सभी सतावे, टोटो भी लागो व्यौपार में ।५।
मौत माँगे पर भी नही आवे, दुःख मिले संसार मे ।६।
'चौथमुनि' कहे धर्म करे तो, रहवेगा मगलाचार मे ।७।



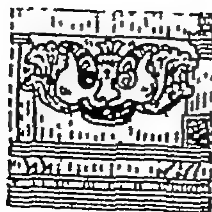


लावणी : सास-बहू-संवाद

(तर्ज—ख्याल)

सास—वचन ये सत्य हमारा मान, जैन धर्म झूठा मत कर तान ।टेर।
जैन धर्म है नास्तिक जग मे, बोले केइ इन्सान ।
बहू—दया दान ईश्वर नही माने ये, नास्तिक पहचान ।
जगत् मे जैन धर्म परधान, सासुजी मत कर खेचातान ।१।
जैन धर्म की निन्दा सासु, मुझ से सुनी न जावे ।
ईश्वर भक्ति दया दान सत जैन धर्म समझावे ।२।
सास—मैं समझी थी वाली भोली, तू निकली होशियार ।
करे सामना उत्तर देवे, शर्म न रक्खें लगार ।३।
बहू—सुनी-सुनी वातो पर सासु, दिया आपने कान ।
जैन धर्म तो पूरा आस्तिक माने है भगवान ।४।
सास—वाध मुखपत्ति करे सामायिक, राखे पुजनी पास ।
वात वहु आच्छी नही लागे, आवे मुझने हास ।५।
बहू—जीव दया हित वाधु मुखपत्ति, राखु पुजनी पास ।
जो नही करे सामायिक सासु, वो भोगे यम त्रास ।६।
सास—जैन धर्म के साधु तेरे, मुझे पसन्द नही आवे ।
मुख पर वाधे सदा मुखपत्ति, माँग माँग कर खावे ।७।
बहू—जैन धर्म के मुनि जगत मे, होते हैं गुणवान ।
कनक कामिनी के त्यागी हैं, नशा पत्ता पछखान ।८।
कवि—डीगा नही सक्ता है देवता, जो दृढ धर्म के माईं ।
'चौथमल' कहे सुभद्रा ने, सासू को समझाई ।९।

(लावणी-सग्रह ८, १९६३ ई.)





।।श्रीकृष्ण जन्म।।

ढाल—श्री कृष्ण मुरारी, प्रकटे अवतारी यादव वंश मे ।टेक।

गिरी सामने गज का देखो, उतर जाय अभिमान।
चन्द्र चाँदनी वहाँ तक रहती, जब लग उगे न भान हो ।९६३।

मेढक फिरे फुदकता जब तक, सर्प नजर नही आवे।
शेर न देखे वहाँ तक मृगला, उछल फान्द लगावे हो ।९६४।

जो ऊगे सो अस्त होय, और फूले सो कुम्हलाय।
हर्ष शोक का जोडा जग मे, देखत वय पलटाय हो ।९६५।

पतिव्रता बालक और मुनिवर, जो कुछ शब्द उचारे।
वाक्य इन्होंके निष्फल ना हो, जाने हैं जन सारे हो ।९६६।

सज्जनो का दुख हरण करन को, हरी आप प्रकटावे।
अधिक रवि की गरमी हो तब, मेघ वारी वर्षावे हो ।९६७।

हरि देवकी के उर आये, स्वपना सात दिखावे।
सिंह, सूर्य, गज, ध्वज, विमान, सर, अनल शिखा दरसावे हो ।९६८।

चवी स्वर्ग से गगदत्त का, जीव गर्भ मे आया।
स्वप्नो का हाल रानी ने सारा, पति को आन सुनाया ।९६९।

कहे देवकी वसुदेव से, तुमने सुत मरवाया।
जोर चला नही जरा इसी मे, जीव बहुत दुख पाया हो ।९७०।

बिना पुत्र सारा घर सूना, जैसे नमक बिन भात।
पशु-पक्षी बच्चो को पाकर, वे भी मन हर्षात हो ।९७१।

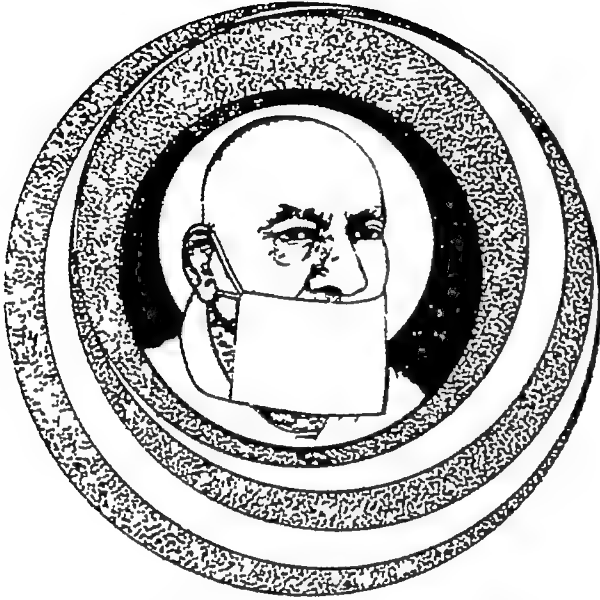
इस बालक को आप बचा लो, रहेगा नाम तुमारो।
स्वप्ने के अनुसार नाथजी, क्या नही हृदय विचारो हो ।९७२।

नन्द अहीर की नार यशोदा, एक दिन मिलने आई।
अपनी बीतक बात देवकी उसको सभी सुनाई ।९७३।

('भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र'
चरित काव्य के कुछ अंश, पृ ६०; १९७० ई)



श्री जैन दिवाकर-स्मृति-ग्रन्थ



चिन्तन के विविध बिन्दु

● ● ● ● ● धर्म, दर्शन, इतिहास और संस्कृति



चिन्तन के विविध बिन्दु

आत्मा : दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में

✯ श्री अशोककुमार सक्सेना

मनुष्य शरीर मे आत्मा की सत्ता सभी—वेद, उपनिषद्, गीता, मनुस्मृति, बुद्ध के धम्मपद, भगवान महावीर के आगम आदि—स्वीकार करते हैं, पाश्चात्य-दर्शन भी आत्मा के अमर अस्तित्व तथा पुनर्जन्म का समर्थन करता है। मुख्य दार्शनिक प्लेटो, अरस्तू, सुकरात ने भी आत्मा तथा पुनर्जन्म मे निष्ठा रक्खी। विभिन्न वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि यह दुनियाँ बिना रूह की मशीन नहीं है। विश्व यन्त्र की अपेक्षा विचार के अधिक समीप लगता है। जडवाद के जितने भी मत गत चालीस वर्षो मे रखे गये हैं, वे आत्मवाद के विचार पर आधारित हैं, यही नवीन विज्ञान है। नि:सन्देह अपने क्रमिक विकास मे विज्ञान आत्मवादी होता जा रहा है। आत्मा के अस्तित्व पर दर्शन और विज्ञान एकमत होते जा रहे हैं।

आत्म-तत्व

"तत् त्वमसि"—तुम वह हो। आत्मा प्रत्येक व्यक्ति मे है, वह अगोचर है, इन्द्रियातीत है। मनुष्य इस ब्रह्माण्ड के भँवर से छिटका हुआ छींटा नही है। आत्मा की हैसियत से वह भौतिक और सामाजिक जगत् से उभर कर ऊपर उठा है। परन्तु प्रश्न यह है कि एक ही आत्मा सब मे व्याप्त है, या सब आत्मा पृथक्-पृथक् हैं। जब यह विद्वानो द्वारा सर्व सम्मति से निश्चित नही कि ईश्वर है, तो कैसे कह दूँ कि आत्मा एक है।

हमारे धर्मग्रन्थ हमे बताते हैं कि यदि हम आत्मा को जानना चाहते है, तो हमे श्रवण, मनन, निदिध्यासन का अभ्यास करना होगा, भगवद्गीता ने इस बात को यो कहा है—**"तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।"** डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार इन्हीं तीन महान् सिद्धान्तो को महावीर ने सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के नाम से प्रतिपादित किया है।

हममे से अधिकाश जनो पर सासारिक व्याप्तियाँ स्वामित्व करने लगती है, हम उनके स्वामी नही रह जाते। ये लोग उपनिषदो के शब्दो मे **"आत्महनो जना"** हैं, इसलिए हमें आत्मवान्, आत्मजयी बनना चाहिये, यही बात भगवान् महावीर भी कहते हैं, 'आत्मजयी' हम परिग्रही होकर नही बन सकते।

आत्म-तत्व का अनन्त ज्ञान ही जैनधर्म का मूल सधान है। आचाराग सूत्र मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है—

"जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ।
जे सव्व जाणइ, से एग जाणइ॥"

और फिर ऐसा कौन हिन्दू है जो आत्म-तत्व के ज्ञान को गौण समझे? न्यायकोष के अनुसार—

"शुद्धात्मतत्वविज्ञान सांख्यमित्यभिधीयते।"



गीता दर्शन

श्री कृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित करते हुए कहते हैं कि मनुष्य देह और आत्मा का मिला हुआ समुच्चय है। देह के मरने पर आत्मा मरता नहीं है। यह आत्मा न तो कभी मरता है और न जन्मता ही है, ऐसा भी नही है कि एक बार होकर फिर होवे नहीं, आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर का वध हो जाए तो भी आत्मा मारा नहीं जाता। आत्मा अमर और अविनाशी है। जिस प्रकार कोई मनुष्य पुराने वस्त्रो को छोडकर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् आत्मा पुराना शरीर त्याग कर नया शरीर धारण करता है। सबके शरीर मे रहने वाला आत्मा सदा अवध्य है। ऐसी अवस्था मे केवल शरीर के मोह से, अपने धर्म या कर्तव्य-पथ से विचलित होना मनुष्य को शोभा नही देता—गीता—२-१३, २-१६, २-१०, २-२२, २-२३, २-३०।

बौद्धधर्म

महात्मा बुद्ध धम्मपद मे कहते हैं कि जो अपनी आत्मा को प्रिय समझता है, उसको चाहिए कि आत्मा की रक्षा करे। अपनी आत्मा को पहले यथार्थता मे लगावे तब दूसरो को शिक्षा दे। आत्मा को वश मे करना ही दुस्तर है, आत्मा ही आत्मा का सहायक है, आत्मदमन से मनुष्य दुर्लभ सहायता प्राप्त कर लेता है, आत्मा से उत्पन्न हुआ पाप आत्मा को नाश कर देता है। आत्मा को हानि पहुँचाने वाले कर्म आसान हैं, हित करने वाले शुभकर्म बहुत कठिन हैं।

—धम्मपद अत्तवग्गो द्वादसमो १,२,३,४,५,६,७)।

जो कार्य अबौद्ध-दर्शन आत्मा से लेते हैं, वह सारा कार्य बौद्ध-दर्शन मे मन=चित्त=विज्ञान से ही लिया जाता है। आत्मा को जब शाश्वत, ध्रुव, अविपरिणामी मान लिया तो फिर उसके सस्कारो का वाहक होने की सगति ठीक नहीं बैठती, किन्तु मन=चित्त=विज्ञान तो परिवर्तनशील है, वह अच्छे कर्मों से अच्छा और बुरे कर्मों से बुरा हो सकता है। धम्मपद की पहली गाथा है · सभी अवस्थाओ का पूर्वगामी मन है, उनमे मन ही श्रेष्ठ है, वे मनोमय हैं। जब आदमी प्रदुष्ट मन से बोलता है व कार्य करता है, तब दु.ख उसके पीछे-पीछे ऐसे हो लेता है जैसे (गाडी के) पहिये (बैल के) पैरो के पीछे-पीछे। न मन आत्मा है, न धर्म आत्मा है और न ही मनो-विज्ञान आत्मा है। 'आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है', ऐसा कहना, या यह कहना कि 'आत्मा और शरीर दोनो एक है'—दोनो ही मतो से श्रेष्ठ जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता, अत. तथागत बीच के धर्म का उपदेश देते हैं कि प्रतीत्य-समुत्पाद से दु.ख-स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। अविद्या के ही सम्पूर्ण विराग से, निरोध से सस्कारो का निरोध तथा दु ख-स्कन्ध का निरोध होता है।

जैनदर्शन

जैनदर्शन के अनुसार जीव (आत्मा) तीन प्रकार का है वहिरात्मा अन्तरात्मा और परमात्मा। परमात्मा के दो प्रकार हैं—अर्हत् और सिद्ध। इन्द्रिय-समूह को आत्मा के रूप मे स्वीकार करने वाला वहिरात्मा है। आत्म-सकल्प-देह से भिन्न आत्मा को स्वीकार करने वाला अन्तरात्मा है। कर्म-कलक से विमुक्त आत्मा परमात्मा है। केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानने वाले स-शरीरी जीव (आत्मा) अर्हत हैं तथा सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) को संप्राप्त ज्ञान-शरीरी जीव सिद्ध कहलाते है। जिनेश्वरदेव का यह कथन है कि तुम मन, वचन और काया से वहिरात्मा को छोडकर, अन्तरात्मा मे आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करो।



शुद्ध आत्मा अरस, अरूप, अगध, अव्यक्त, चैतन्य गुण वाला, अशब्द, अलिंगग्राह्य और सस्थान रहित है। आत्मा मन, वचन और कायरूप त्रिदण्ड से रहित, निर्द्वन्द्व—अकेला, निर्मम—ममत्व-रहित, निष्कल—शरीररहित, निरालम्ब—परद्रव्यालम्बन से रहित, वीतराग, निर्दोष, मोहरहित, तथा निर्भय है। आत्मा निर्ग्रन्थ (ग्रन्थिरहित) है, नीराग है, नि शल्य (निदान, माया और मिथ्या-दर्शनशल्य से रहित) है, सर्वदोषो से निर्मुक्त है, निष्काम (कामनारहित) है और नि क्रोध, निर्मान, तथा निर्मय है। आत्मा ज्ञायक है। मैं (आत्मा) न शरीर हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और न उनका कारण हूँ। मैं न कर्त्ता हूँ, न करानेवाला हूँ और न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ।

—समणसुत्त : प्रथम खण्ड ज्योतिर्मुख १५ आत्मसूत्र—१७७-१९१

नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, मीमासक आदि आत्मा का अनेकत्व तो स्वीकार करते हैं, किन्तु साथ ही साथ आत्मा को सर्वव्यापक भी मानते हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र मे आत्मा का स्वतत्र अस्तित्व मान कर भी उसे स्वदेह परिमाण मानना जैन-दर्शन की ही विशेषता है। रामानुज जिस प्रकार ज्ञान को सकोच विकासशाली मानते हैं, उसी प्रकार जैन दर्शन आत्मा को सकोचविकासशाली मानता है।

पाश्चात्य दर्शन

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का मत है कि आत्माएँ दो प्रकार की होती है—एक आत्मा अमर है और दूसरी का क्षय हो जाता है।

अरस्तू ने अपनी पुस्तक "आत्मा पर" मे लिखा है कि शरीर और आत्मा मे वैसा सम्बन्ध है जैसा मोम मे और मोमबत्ती मे। मोम एक भौतिक पदार्थ है और मोमबत्ती उसका आकार है।

मुसलमानो मे सूफी सम्प्रदाय के सन्त मौलाना जलालुद्दीन ने कहा था—"मैं सहस्रो बार इस पृथ्वी पर जन्म ले चुका हूँ।"

यद्यपि ईसाई धर्म पुनर्जन्म तथा आत्मा पर विश्वास नही करता, परन्तु पश्चिमी देशो के कई दार्शनिको ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। एडविन आर्नेल्ड ने आत्मा के अनादित्व तथा अमरत्व को इन शब्दो मे व्यक्त किया है।

"आत्मा अजन्मा और अमर है। कोई ऐसा समय न था जब यह नही थी, इसका अन्त और आरम्भ स्वप्न मात्र है। मृत्यु ने इसे कभी स्पर्श नही किया।"

विज्ञान की कसौटी पर

आधुनिक विज्ञान के अनुसार समस्त दृश्य और अदृश्य जगत सूक्ष्म तरगो से बना है। इन तरगो मे तीन मुख्य तत्व हैं—जीवाणु, शक्ति और विचार।

आत्मा इन तीनो का ही एक विशिष्ट स्वरूप है, मृत्यु के उपरान्त आत्मा स्वकीय प्रेरणा-नुसार किसी भी देह, पदार्थ या स्वरूप का निर्माण या विलय कर सकती है। आत्मा का सशरीर सूक्ष्म शरीर के नाम से जाना जाता है। यह सूक्ष्म शरीर न्यूट्रिनो नामक कणो से निर्मित होता है। न्यूट्रिन कण अदृश्य, आवेश रहित और इतने हल्के होते हैं कि इनमे मात्रा और भार लगभग नहीं के बराबर होता है। ये भी स्थिर नही रह सकते और प्रकाश की तीव्र गति से सदा चलते रहते हैं।



वैज्ञानिको ने प्रयोग करके देखा है कि यदि न्यूट्रिन कणो को किसी दीवार की ओर छोडा जाय तो वे दीवार को पार कर अन्तरिक्ष मे विलीन हो जाते हैं, कोई भी भौतिक वस्तु उन्हें रोक नही सकती। इन न्यूट्रिन कणो को पुन भौतिक वस्तु के रूप मे भी परिवर्तित किया जा सकता है।

परामनोविज्ञान के अनुसार यह सूक्ष्म शरीर किसी भी स्थान पर किसी भी दूरी और परिमाण मे अपने को प्रकट व पुनर्लय कर सकता है।

ईसाइयो के पवित्र आत्मा (होली घोस्ट) के ही समकक्ष श्री अरविन्द ने 'साइके' (PSYCHE) का साक्ष्य दिया है, जिसे 'चैत्य-पुरुष' कहा जाता है, जो कि आत्मा और परमात्मा को जोडने वाली एक माध्यमिक कडी है। सारे सृजन इस चैत्य पुरुष मे से ही आते हैं। प्राण-चेतना के गहिरतर स्तरो पर घटित होने वाला उन्मेष या आवेश विधायक, सर्जनात्मक, मगल कल्याणकारी होता है, वह अतीन्द्रिक होता है, या इन्द्रियेतर ज्ञान-चेतना का प्रतिफलन होता है।

मरणोत्तर जीवन और पारलौकिक आत्माओ के साथ सम्पर्क-सम्प्रेषण के जो "सियास" होते है, उनमें भी एक सवेदनशील माध्यम के शरीर मे मृतात्माओ का आह्वान किया जाता है। सहसा ही माध्यम आविष्ट हो उठता है, उसे अर्ध मूर्छा-सी आ जाती है, तब स्वर्गस्थ आत्माएँ उसके शरीर और चेतना पर अधिकार कर अनेक छुपे रहस्य बताती हैं, भविष्यवाणियाँ करती हैं, पर लोको का परिचय देती हैं। विश्व-विख्यात काम-वैज्ञानिक और मनीषी हेवलाक एलिस इन 'सियास' तथा 'प्लेंचेट' मे अनुभव लेकर आत्माओ के अस्तित्व पर विश्वास करने लगे थे, ओलीवर लाज जैसा शिखरस्थ वैज्ञानिक परलोकवादी हो गया था। उसने स्वय भूत-प्रेतो तथा अतिभौतिक घटनाओं के अनुभव के अनेक साक्ष्य प्रस्तुत किये थे।

इस सम्बन्ध मे कनाडा के प्रसिद्ध स्नायु-सर्जन डा० पेनफील्ड के प्रयोग चिरस्मरणीय रहेंगे (रीडर्स डाइजेस्ट, सितम्बर, १९५८), जिन्होंने सिद्ध किया कि मस्तिष्क मे सूक्ष्म शरीर नित्य बना रहता है, केवल स्थूल शरीर ही विनाशशील है।

लन्दन के प्रोफेसर विलियम क्रुक्स, जो प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री थे, ने परलोक, पुनर्जन्म तथा आत्मा सम्बन्धी ज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन किया और अपनी जांच को प्रकाशित कराया—अपनी पुस्तक "रिसर्चेज इन स्प्रीचियुलिज्म' मे।

परान्वेपण मे पाश्चात्य वैज्ञानिक डा० मायर्ज, फ्रेंक पोडमोर, अलफ्रेड वालेस, प्रो० आक्सावफ, रिचर्ड होडजेसन आदि अपनी प्रामाणिकता के लिये प्रसिद्ध थे, और इन लोगो ने सन् १८८५ मे वैज्ञानिक पद्धति से प्लैनचिट की सहायता से तत्सम्बन्धी सत्य का शोध करने के लिये इग्लैण्ड मे एम० पी० आर० नामक मानसिक शोध सस्थान की स्थापना की थी।

हेग के डा० माल्थ और जेल्ट ने परलोकगत जीवो के साथ वार्तालाप करने के लिये डायनामिस्टोग्राफ नामक यन्त्र आविष्कृत किया और इसकी मदद से विना किसी माध्यम के परलोकगत जीवों के सन्देश पाये।

एँड्र् जैकसन के अनुसार प्राणमय सूक्ष्म शरीर (आत्मा) की तौल १ औंस हो सकती है। पाश्चात्य वैज्ञानिको ने इस सूक्ष्म शरीर को एक्टोप्लाजम की संज्ञा दी।

कैलिफोर्निया के आर्थर ए० वैल ने यह प्रमाणित किया है कि शरीर की विभिन्न जीवन-



क्रियायें मनुष्य की मनोभूमि पर अवलम्बित हैं, देहस्थित सूक्ष्म शरीर मे जब शक्ति का क्षय हो जाता है, तब वह स्थूल शरीर के साथ अपना सम्बन्ध तोड डालता है।

कणाद ऋषि ने कहा है—"अणूना मनसश्च अघ कर्म अदृष्टकारितम्' अत यह तो निश्चित है कि प्राण (आत्मा) विद्युतात्मक प्रकाशात्मक है, और अथर्ववेद के एकादश काण्ड की दूसरी ऋचा :—

"नमस्ते प्राण क्रन्दाय, नमस्ते स्तन चिलवे।
(विद्युतात्मना विद्योतमानाय) नमस्ते प्राण विद्युते।
नमस्ते प्राण वर्षते।"

की तरह आधुनिक वैज्ञानिको की भी अब राय प्रदर्शित हो चुकी है कि ऋणाणु-धनाणु प्राण-परमाणु विद्युत शक्ति से स्थूल शारीरिक क्रियायें सचालित होती हैं।

वी० वी० श्रेनिक नोटर्गिग तथा सर क्रूक्स ने विगत आत्माओ के छायाचित्र (फोटो) खींचने के विशेष कैमरे की सहायता से मृत आत्माओ के चित्र खीचने मे सफल हुये। श्रेनिक ने अपनी पुस्तक 'फेनोमीनन ऑफ मैटरियलायजिंग' और स्वामी अभेदानन्द ने अपनी पुस्तक 'लाइफ बियोण्ड डेथ' मे मृत आत्माओ के बहुत से चित्र भी दिये हैं। विस्तृत विवरण के लिये देखिये साइमन एडमड्स की पुस्तक 'स्प्रिट फोटोग्राफी'।

दिव्य दृष्टि (टेलेफोटो), मन प्रलय ज्ञान (टेलेपैथी), अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष (एक्स्ट्रा-सेन्सरी परसेप्सन), प्रच्छन्न सवेदन (क्रिप्टेस्थीसिया), तथा दूरक्रिया (टेलेपिनेसिस) आदि आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं।

प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री अर्विन श्रेडिंगर ने लिखा है अपने निबन्ध 'सीक फार दी रोड' (१९२५) मे कि "सौ साल पूर्व सम्भवत अन्य कोई व्यक्ति इस स्थान पर बैठा था तुम्हारी तरह वह भी जन्मा। तुम्हारी तरह उसने सुख-दुख का अनुभव किया क्या वह तुम्ही नहीं थे? यह तुम्हारे अन्दर का आत्मा क्या है? इस 'और कोई' का स्पष्ट वैज्ञानिक अर्थ क्या हो सकता है? इस तरह देखने या समझने से आप तुरन्त वेदान्त मे मूल विश्वास की पूर्ण सार्थकता पर आ जाते हैं, इन सबका निचोड' है—'तत् त्वम् असि' या इस प्रकार के शब्दो मे—मैं पूर्व मे हूँ, मैं पश्चिम मे हूँ, मैं नीचे हूँ, मैं ऊपर हूँ, मैं यह समूचा ससार हूँ।' आश्चर्य की बात यह है कि श्रेडिंगर ने यह लेख तरग यान्त्रिकी की ऐतिहासिक खोज के कुछ मास पूर्व लिखा।

हमारे युग के महान शरीर-रचना शास्त्री सर चार्ल्स शैरिंगटन ने अपनी पुस्तक 'मैन आन हिज नेचर' (कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, १९५१) मे कहा है— "मानसिक" की परीक्षा ऊर्जा के रूप मे नही की जा सकती, विचार, भावनाएँ, आदि की अवधारणा ऊर्जा (द्रव्य) के आधार पर नही की जा सकती। वे इससे बाहर की चीजें हैं' इस प्रकार चित्त (चेतन) हमारे स्थूल ससार मे एक भारी भूत की तरह चला जाता है। अदृश्य, अस्पृश्य, अमूर्त, यह कोई साकार चीज नही है, यह कोई 'चीज' ही नहीं है। ज्ञानेन्द्रियो द्वारा उसकी पुष्टि नही होती और कभी हो नही सकती।'

भौतिकी मे नोबेल पुरस्कार विजेता तथा नयी भौतिकी के एक जन्मदाता ई० पी० विग्नर ने स्पष्ट किया है कि—

"कोई भी नापजोख उस समय तक पूरी नही होती जब तक उसका परिणाम हमारी चेतना

मे प्रविष्ट नही होता। यह अन्तिम चरण उस समय सम्पन्न होता है जबकि अन्तिम मापक उपकरण के और हमारी चेतना को सीधा प्रभावित करने वाली चीज के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यह अन्तिम चरण हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए अभी रहस्यो से घिरा है और अब तक क्वांटम यान्त्रिकी (आधुनिक भौतिकी) या अन्य किसी भी सिद्धान्त के अधीन इसके सम्बन्ध मे कोई स्पष्टीकरण नही दिया जा सका है।"

आइन्स्टाइन से उनके गम्भीर रोग के दौरान पूछा गया कि क्या वह मृत्यु से डरते हैं, तब उन्होंने उत्तर दिया था, 'मैं सभी जीवित चीजो के साथ ऐसी एकात्मकता का अनुभव करता हूँ कि मेरे लिये यह बात कोई अर्थ नही रखती कि व्यक्ति कहाँ शुरू होता है और कहाँ समाप्त होता है।"

आन्तरिक जगत की वास्तविकता का खडन नही किया जा सकता, हिंशेलवुड ने कहा है—"आतरिक जगत की वास्तविकता का प्रत्याख्यान आसपास की सम्पूर्ण सत्ता को एकदम अस्वीकार करने के समान है। उसकी अर्थवत्ता को कम करना, जीवन के लक्ष्य को ही गिराना है और उसे 'प्राकृतिक चयन के उत्पाद' की सज्ञा देकर उडा देना निरा तर्काभास है।'

एक अन्य भौतिक-शास्त्री यान नायमान् ने क्वाटम यान्त्रिकी की स्थापनाओ के सिद्धान्तो मे चेतना (चित्र) के योग का समावेश किया, उन्होंने अनुमान किया कि तथाकथित 'तरंग पिटक' का हल निकालने के लिए चेतना से अन्त क्रिया आवश्यक है, वह कहते हैं—'विषयी प्रेक्षण एक नयी सत्ता है, जो भौतिक परिमंडल से सापेक्ष है। लेकिन उसके बराबर नही की जा सकती। वस्तुत विषयी के प्रेक्षण हमे व्यक्ति के बौद्धिक आभ्यन्तर जीवन मे ले जाता है, जो स्वभावत प्रेक्षणातीत है। हमे ससार को दो भागों में बाँटना चाहिये, एक प्रेक्षित प्रणाली, दूसरा प्रेक्षण करने वाला। पहले मे हम सारी भौतिक प्रक्रियाओ का अनुसरण कर सकते हैं (कम से कम सिद्धान्त रूप मे)। दूसरे मे यह बात अर्थहीन है। दोनो के बीच की सीमा रेखा बहुत कुछ तदर्थ है। यह सीमा वास्तविक प्रेक्षण के शरीर के भीतर मनमाने ढंग से ले जायी जा सकती है। यही बात मनोभौतिक समातरवाद के सिद्धान्त का सार है, लेकिन इससे इस तथ्य मे कोई परिवर्तन नहीं आता कि हर विधि मे सीमा (शरीर तथा चित्र के बीच) कही रखनी जरूर होगी।'

स्व० योगानन्द परमहस का क्रिया योग, राधास्वामी गुरु महाराज श्री चरनसिंह का सबत-सुरत योग, महर्षि महेषयोगी का सर्वातीत-ध्यान (ट्रांसेंडेंटल मेडीटेशन), इन सभी यौगिक विद्याओ मे इस उपरि-मानसिक अतीन्द्रिक या आत्मिक उन्मेष का अनुभव ध्यान मे अचूक रूप से होता है।

प्रत्येक प्राणि के शरीर के अदृश्य आभावलय (AURA) को देखकर उसकी मानसिक स्थिति का निर्णय करने के लिये लोवसाग रम्पा ने एक यन्त्र आविष्कृत किया है। इस विलय-दर्शन से व्यक्ति की अचूक चिकित्सा हो सकती है।

हिप्नाटिज्म यानी सम्मोहन विद्या से पूर्व-जन्म-स्मृति या जाति-स्मरण ज्ञान तक पहुँचने के अनेक सफल प्रयोग हुये है।

अभी कुछ ही दशक पहले जर्मनी मे एक महान् आधुनिक योगदर्शी हुआ है—रुडाल्फ स्टाइनर। इसने ऑकल्ट मे अतीन्द्रिक आत्मानुभूति तक जाने के मार्ग का अन्वेषण किया था। गजिफ



और आडस्पेंस्की भी समकालीन विश्व के महान् परामौतिक द्रष्टा और चिन्तक हुए। अमेरिका के प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिक डा० स्टीवेन्सन इसी अनुसन्धान हेतु भारत भी आये थे।

अमरीका के 'विलसा क्लाउड चैम्बर' के शोध से वडे आश्चर्यजनक तथ्य सामने आये है। इससे यह प्रकट होता है कि मृत्यु के उपरान्त भी प्राणी का अस्तित्व किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहता है।

इस प्रयोग के अन्तर्गत एक ऐसा वडा सिलिण्डर लिया जाता है, जिसकी भीतरी परतें विशेप चमकदार होती है। फिर उसमे कुछ रासायनिक घोल डाले जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप विशेष प्रकार की चमकदार और हल्की-सी प्रकाशीय गैस भीतर फैल जाती है। इस गैस की विशेपता है कि यदि कोई परमाणु या इलेक्ट्रान इसके भीतर प्रवेश करे तो शक्तिशाली कैमरे द्वारा उसका चित्र उतार लिया जाता है।

प्रयोग के लिये एक चूहा रखा गया। विजली का करेण्ट लगा कर इस चूहे को मार डाला गया। चूहे के मरणोपरान्त उस सिलेण्डर का चित्र उतारा गया। वैज्ञानिक यह देख कर विस्मित हुये विना नही रहे कि मृत्यु के पश्चात् गैस के कुहरे मे भी मृत चूहे की धुंधली आकृति तैर रही थी। वह आकृति वैसी ही हरकतें भी कर रही थी जैसी जीवित अवस्था मे चूहा करता है। इस प्रयोग से यह प्रमाणित हुआ कि चूहा मृत्यु के पश्चात् प्राणी सत्ता किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहती है।

अपनी सुविख्यात कृति 'मेमोरीज, ड्रीम्स, रिफ्लेक्शन्स' मे विश्व-विख्यात तत्त्वदर्शी, चिन्तक और मनोवैज्ञानिक 'कार्ल जुग' ने अपने एक विचित्र अनुभव का वर्णन किया है, जिसका तात्पर्य है कि हमारे जगत मे अवश्य ही एक चौथा आयाम है, जो अनोखे रहस्यो से ओतप्रोत है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिको स्टेनिस्लाव ग्रोफ और जान हेलिफेक्स ग्रोफ ने पिछले दिनो अनेक रोगियो का अध्ययन करते समय तथा रेमण्ड ए० मूडी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लाइफ आफ्टर डेथ' मे ऐसी अनेक घटनाओ का उल्लेख किया है—जव रोगी मृतक घोपित कर दिये गये, पर फिर भी तत्पश्चात् मृतक जीवित हो उठे और उन्होने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारा।

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डा० नेलसन वाल्ट का कथन है कि—'मनुष्य के अन्दर एक वलवती आत्म-चेतना रहती है, जिसे जिजीविपा एव प्राणधात्री शक्ति कह सकते हैं।

मन शास्त्री हेनब्रूक ने अपनी शोधो में इस वात का उल्लेख किया है कि अतीन्द्रिय क्षमता पुरुषो की अपेक्षा नारियो मे कही अधिक होती है।

रूस के इलेक्ट्रान विशेषज्ञ मयोन किर्लियान ने फोटोग्राफी की एक विशेष प्रविधि द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि मानव के स्थूल शरीर के अन्दर का सूक्ष्म शरीर ऐसे सूक्ष्म पदार्थों से बना होता है, जिनके इलेक्ट्रान स्थूल शरीर के इलेक्ट्रानो की अपेक्षा अत्यधिक तीव्र गति से गतिमान होते हैं। यह सूक्ष्म शरीर पार्थिव शरीर से अलग होकर कही भी विचरण कर सकता है। न्यूयार्क में परामानसिक तत्त्वो की खोज के लिए एक विभाग की स्थापना की गयी है, जिसके अध्यक्ष है 'डा० रोवर्ट वेफर'।

लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के फिजियोलॉजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलयेव

ने टैलीपैथी द्वारा कई मील दूर एक प्रयोगशाला मे अनुसन्धानरत वैज्ञानिको को सम्मोहित कर अनुसन्धानकर्ताओ को अपने प्रयोग से हटाकर दूसरे प्रयोग मे लगवा दिया। यह घटना सिद्ध करती है कि भौतिक शरीर के परे मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का भी अस्तित्व है।

आत्मा या प्राणो की गुत्थी आज भी वैज्ञानिको के सम्मुख प्रश्न चिन्ह बनी खडी है। वे नही कह सकते कि प्राण मस्तिष्क मे बसते हैं या आत्मा मे, या मस्तिष्क और आत्मा का कोई ऐसा सम्बन्ध है जिसका पर्दा उठना अभी बाकी है।

प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री मिखाइल पोलान्यी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विश्व की अधिकाश वस्तुओ का अस्तित्व कुछ ऐसे सिद्धान्तो पर आधारित है, जिनका ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिको को नही है।

प्राणी के सम्बन्ध मे हम जितना जानते हैं, उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानव शरीर एक 'यन्त्र' है, किन्तु 'मैं' इसकी गतिविधियो को नियन्त्रित करता है।

चित्त-शरीर समस्या सदा से जीवित है, हर्मन वेल के शब्दो मे—"हमे विज्ञान के आगे विकास की प्रतीक्षा करनी होगी। सम्भवत. हजारो वर्ष तक, तब जाकर हम द्रव्य, जीवन तथा आत्मा के जटिल तानेबाने का एक विस्तृत चित्र प्रस्तुत कर सकेंगे और इस साहसपूर्ण कार्य को मानव किस प्रकार झेल सकेगा, सिवा जीवात्मा तथा परमात्मा की परस्पर पूरकता मे आस्था के आधार पर ?"

[प्रस्तुत लेख मे लेखक ने आत्मा के सम्बन्ध मे पौर्वात्य एवं पाश्चात्य दार्शनिको, वैज्ञानिको एव डाक्टरो के अभिमत दिये हैं। इसमे उनके अनुभवो व प्रयोगों के आधार पर बने विचार हैं। आधुनिक जगत आत्मा के सही स्वरूप तक कब पहुँचेगा यह मन्जिल अभी दूर लगती है।

—संपादक]

परिचय एवं पता :

अशोककुमार सक्सेना
दर्शन और विज्ञान के अध्येता
वरिष्ठ शिक्षक जीव-विज्ञान
जवाहर विद्यापीठ, कानोड।





आत्मसाधना में निश्चयनय की उपयोगिता

✡ श्री सुमेरमुनिजी

जैन-दर्शन मे निश्चयनय और व्यवहारनय की चर्चा काफी विस्तार व गहराई से की गई है। दोनो नयो को दो आँखो के समान माना गया है। कोई व्यक्ति व्यवहारनय को छोडकर केवल निश्चयनय से अथवा निश्चयनय का परित्याग कर केवल व्यवहारनय से वस्तु को जानना-समझना चाहे तो वह समीचीन बोध से अनभिज्ञ ही रहेगा। दोनो मे से किसी एक का अभाव होगा तो एकाक्षीपन आ जायेगा। अत वस्तु को यथार्थ रूप से समझने के लिए दोनो नयो का सम्यग्बोध होना नितान्त जरूरी है। दोनो नयो का अपनी-अपनी भूमिका पर पूरा-पूरा वर्चस्व है। इस बात को हम जितनी गहराई से समझेंगे उतनी ही वह अधिक स्पष्ट हो जायेगी और बोध से भावित हो सकेंगे।

निश्चयनय की परिभाषा

आपके मन-मस्तिष्क मे एक प्रश्न खडा हो रहा होगा कि निश्चयनय और व्यवहारनय क्या है? तो लीजिए पहले इसी प्रश्न का समाधान प्राप्त करें। निश्चयनय वह है—जो वस्तु को अखण्ड रूप मे स्वीकार करता है, देखता व जानता है। जैसे आत्मा अनन्त गुणो का पुज है, अनन्त पर्यायो का पिण्ड है, निश्चयनय उसे अखण्ड रूप मे ही जानेगा-देखेगा। मतलब यह है कि किसी भी द्रव्य मे जो भेद की तरफ नहीं देखता, जो शुद्ध अखण्ड द्रव्य को ही स्वीकार करता है, वह निश्चयनय है। निश्चयनय मे विकल्प नही दीखेंगे, सयोग नजर नही आएँगे। निश्चयनय सयोग की ओर नही झाँकता। उसकी दृष्टि मे पर्याय नही आते। वह न शुद्ध पर्यायो की ओर झाँकता है और न अशुद्ध पर्यायो की ओर ही।

एक उदाहरण के द्वारा समझें। एक पट्टा-तख्त है। निश्चयनय इसे पट्टे के रूप मे देखता है। इस नय की आँख से यह पट्टा ही नजर आएगा। पट्टे मे कीलें भी हैं, पाये भी हैं, और लकड़ी के टुकडे भी हैं, पर निश्चयनय इन सयोगो या विभेदो को नही देखेगा। वह पट्टे को अखण्ड पट्टे के रूप मे ही देखेगा।

एक पुस्तक है। निश्चयनय की दृष्टि से जब हम पुस्तक को देखेंगे तो हमे पुस्तक ही नजर आएगी। क्योकि निश्चयनय केवल पुस्तक के रूप मे ही उस पुस्तक को स्वीकार करेगा। ऐसे देखा जाय तो उस पुस्तक मे अलग-अलग अनेक पन्ने हैं। इन पन्नो पर अक्षर भी अंकित हैं, काली स्याही का रग भी है। ये सब कुछ पुस्तक के अग होते हुए भी निश्चयनय पुस्तक के इन सब अवयवो को नहीं देखता। उसकी दृष्टि अवयवी—पुस्तक की ओर ही रहेगी।

निश्चयनय सयोगों को नहीं देखता

एक बात और समझ लें। वह यह है कि निश्चयनय की निगाह सयोगों पर नही जाती। जैसे पानी मे मैल है, उसमे गन्दगी या मिट्टी मिली हुई है। निश्चयनय जल को जल के रूप मे ही देखेगा। वह जल के साथ मे मिली हुई गन्दगी, मिट्टी या मैल को नही देखता। वह जब भी देखेगा, जल को ही देखेगा। वह यह भी नही देखेगा कि यह जल किस जलाशय, नदी या समुद्र का है। यह खारा है या मीठा। निश्चयनय की आँख पर्यायो या सयोगो को कतई नही देखती।



व्यवहारनय का लक्षण

व्यवहारनय वह है, जो पर्यायो, या सयोगो को देखता है। व्यवहारनय पानी को केवल पानी के रूप मे नही देखता। वह पानी के साथ मिले हुए मैल या गन्दगी को देखेगा। वह यह भी विचार करता है कि यह पानी कहाँ का है। खारा है या मीठा। व्यवहारनय-सयोगो और पर्यायो से युक्त पानी को देखेगा। उससे शुद्ध जल नही दीखेगा।

व्यवहारनय का स्वरूप

व्यवहारनय की दृष्टि से तो हम अनादिकाल मे अभ्यस्त हैं। अनादिकाल से हमारी आत्मा सयोग-सम्बन्ध को लेकर ससार मे यात्रा करती आ रही है। हमारी आत्मा का कषाय के साथ संयोग है, कर्म के साथ सयोग है और योगो के साथ भी सयोग है। व्यवहार दृष्टि से आप देखेंगे तो ये सब सयोग नजर आयेंगे। व्यवहारनय की दृष्टि से देखें तो आत्मा आठ कर्मों से, चार कषायो से एव कार्मण शरीर से तथा योगो से युक्त दीखेगा। परन्तु निश्चयनय की दृष्टि से आत्मा को देखेंगे तो वह आठ कर्मों, तीन योगो एव कषायो से रहित शुद्ध रूप मे नजर आएगी। निश्चय-नय की निगाह कर्मो, पर्यायो, योगो, कषायो आदि के सयोगो पर नही पड़ती। वह शुद्ध, बुद्ध स्वभावरूप आत्मा पर ही पड़ेगी।

व्यवहारनय एव निश्चयनय का विषय

अत निश्चयनय का विषय शुद्ध आत्मा है, जबकि व्यवहारनय का विषय अशुद्ध आत्मा है। व्यवहारनय की आँख से सयोग ही सयोग दिखाई देंगे। व्यवहारनय की दृष्टि से अनन्तभूत भी देखेंगे या अनन्त भविष्य भी देखेंगे तो सयोगयुक्त नजर आएगा। किन्तु निश्चयनय की दृष्टि से एकमात्र आत्मा ही नजर आएगी।

निश्चयनय ही आत्मकल्याण के लिए उपादेय

यहाँ एक बात और समझनी है कि आत्म-कल्याण से सीधा सम्बन्ध किस नय का है ? जो व्यक्ति आत्मकल्याण करना चाहता है, या मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए किस नय का उपदेश दिया जाना चाहिए ? कौन-सा नय मोक्ष या आत्मकल्याण मे साधक है, कौन-सा बाधक है ? वास्तव मे देखा जाय तो निश्चयनय ही आत्मकल्याण के लिए साधक है। मानसशास्त्र का एक नियम है कि जो जिस रूप मे जिस चीज को देखता है, वह वैसा ही बन जाता है, वह उसी रूप मे ढल जाता है। चन्द्रमा का लगातार ध्यान करने या देखने वाले व्यक्ति का स्वभाव प्राय सौम्य या शीतल हो जाता है। इसी प्रकार जब निश्चयनय की दृष्टि से व्यक्ति आत्मा को देखता है तो वह उसके निर्मल, शुद्ध स्वभाव को ही देखेगा और निरन्तर-अनवरत शुद्ध स्वभाव की ओर दृष्टि होने से आत्म-विशुद्धि भी बढ़ती जाती है। स्वभाव दृष्टि (निश्चयनय) से देखने पर यह कुत्ते की आत्मा है, बिल्ली की आत्मा है, गाय की आत्मा है या मनुष्य की आत्मा है। यह पापी है या धर्मात्मा है। यह निर्धन या धनाढ्य आत्मा है, आदि ये विकल्प बिलकुल ओझल हो जायेंगे। इससे यह लाभ होगा कि निश्चयदृष्टि वाला साधक पवित्र, निर्मल, शुद्ध स्वरूपमय दृष्टि का होने से इन उपर्युक्त पर्यायो पर नजर नही डालेगा। वह प्रत्येक आत्मा को सिर्फ आत्म-द्रव्य की दृष्टि से देखेगा। इस कारण न किसी आत्मा पर उसके मन मे राग आएगा और न द्वेष ही। जब राग-द्वेषात्मक विकल्प छूट जायेंगे तो आत्मा मे होने वाली अशुद्धि या मलीनता भी नही होगी। कितना



सुन्दर उपाय है—आत्मा को शुद्ध, निर्मल एव पवित्र बनाये रखने का। निश्चयनय की दृष्टि मे ही यह चमत्कार है, जादू है कि वह आत्मा को राग-द्वेष या कषायो से मलिन नही होने देता।

एक-दूसरे पहलू से भी निश्चयदृष्टि पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि इसको अपना लेने पर आत्मा की जो पर्यायें हैं, वे नजर नही आयेंगी। जैसे कई लोग अपने को हीन या अधिक मानने लगते हैं कि मैं पापी हूं, मैं पण्डित हूं, मैं मूर्ख हूं इत्यादि विकल्प निश्चयनय की दृष्टि वाले साधक मे नही स्फुरित होते। उसकी दृष्टि मे एकमात्र शुद्ध व अखण्ड आत्मा ही स्फुरित होती है।

'एगे आया' : निश्चयनय का सूत्र

स्थानाग सूत्र मे निश्चयनय की दृष्टि से **'एगे आया'** का कथन है। इसके दो अर्थ घटित हो सकते हैं। एक अर्थ तो यह है कि हाथी की, कुत्ते की, चीटी की या मनुष्य की, सभी प्राणियो की आत्मा एक समान है। यह विकल्प और सयोग से रहित शुद्ध आत्मा निश्चयदृष्टि वालो को ही प्रतीत हो सकती है, व्यवहारदृष्टि वालो को नही। जब व्यक्ति विश्व की सम्पूर्ण आत्माओ को एकरूप देखेगा तो उसकी दृष्टि मे कोई पापी, घृणित या द्वेषी नजर नही आएगा और न ही किसी के प्रति उसका राग, मोह, आसक्ति या लगाव होगा।

'एगे आया' का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है, आत्मा अनन्त पर्यायात्मक, अनन्त गुणात्मक अथवा अनेक सम्बन्धो से युक्त होते हुए भी एक है। आत्मा एक अखण्ड द्रव्य है। चाहे पर्याय शुद्ध हो या अशुद्ध, निश्चयनय की दृष्टि मे ग्राह्य नही होती। वह तो सिद्ध भगवान की आत्मा की निरुपाधिक शुद्ध पर्यायो को भी ग्रहण नही करता। इसलिए निश्चयनय की दृष्टि आत्मा को शुद्धता व निर्मलता की ओर प्रेरित करती है।

व्यवहारनय की दृष्टि से आत्मा के आठ प्रकार

स्थानागसूत्र मे आगे चलकर व्यवहारनय की दृष्टि से आत्मा के आठ प्रकार बताये हैं—द्रव्य-आत्मा, कषाय-आत्मा, योग-आत्मा, उपयोग-आत्मा, ज्ञान-आत्मा, दर्शन-आत्मा, चारित्र-आत्मा और वीर्य-आत्मा। क्योकि व्यवहारनय की दृष्टि आत्मा के सयोगजन्य भेदो, पर्यायजनित प्रकारो को ही पकडती है। वह एक शुद्ध, अखण्ड, निरुपाधिक आत्मा को नही पकडती। निश्चयनय की दृष्टि वाला साधक इन आठ प्रकारो मे से सिर्फ द्रव्य रूप आत्मा को ही ग्रहण करेगा। वह इधर-उधर के विकल्पो या पर्यायो के बीहड मे नही भटकेगा।

निश्चयदृष्टि आत्मशुद्धि के लिए उपादेय

शास्त्रो मे निश्चयनय और व्यवहारनय दोनो नयो से आत्मा का कथन मिलता है। इस पर से यह फैसला करना है कि निश्चयनय की दृष्टि से चलना अधिक हितकर हो सकता है या व्यवहारनय की दृष्टि से ?

अगर आपको यथार्थ रूप मे अपना आत्म-कल्याण करना है तो अपने असली, अखण्ड शुद्ध स्वरूप को देखने का अभ्यास करना होगा। तभी आत्मा शुद्ध से शुद्धतर और निर्मल से निर्मलतर होती जाएगी। और एक दिन वह स्वर्णिम सवेरा होगा कि आत्मा ही परमात्मा के रूप मे स्वय प्रकट हो जायेगा। यह सब निश्चयनय की दृष्टि को अपनाने से ही हो सकता है। क्योकि धर्मशास्त्रो का यह नियम है कि **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** अर्थात् दिव्य रूप होकर ही देव की पूजा या प्राप्ति कर सकता है। इस दृष्टि से निश्चयनय की दृष्टि वाला साधक परम विशुद्ध ज्ञायिक स्वभाव को प्राप्त कर परमात्मस्वरूप को उपलब्ध हो जाता है।



निश्चयदृष्टि के अभ्यास का अवसर

अनादिकाल से हमारी आत्मा संसार मे परिभ्रमण करती आ रही है। चौरासी के चक्कर से मुक्त नही हो पाई। इसका मूल कारण है—निश्चय दृष्टि से पराङ्मुख होना। व्यवहारनय के आश्रय से सयोग ही सयोग परिलक्षित होता आया है। आत्मा पुद्गल सयोगी और विभाव पर्याय मे पडा हुआ दृष्टिगोचर हुआ। पुद्गल को देखा तो वह भी अशुद्ध और सयोगी नजर आया। क्योकि व्यवहार दृष्टि मे पडा हुआ प्राणी शुद्ध बुद्ध-मुक्त होने का अवसर कदापि प्राप्त नही कर सकता। किन्तु जो प्राणी निश्चयाश्रित है वही शुद्ध स्वरूप की ओर झाँकता है। उसी के आश्रय से परिमुक्त व परमात्मस्वरूप का बोध व दर्शन कर पाता है, न कि व्यवहार दृष्टि से। अतएव निश्चयदृष्टि, यथार्थ दृष्टि को विस्मृत नही कर उसी का लक्ष्य बनाया जाय और सतत अभ्यास किया जाय।

ज्ञेय के लिए दोनो नय : उपादेय के लिए निश्चयनय

जहाँ तक प्रत्येक पदार्थ को जानने का सवाल है, वहाँ तक दोनो नयो की दृष्टियो से प्रत्येक पदार्थ को सर्वांश रूप मे भली-भांति जानना चाहिए। अर्थात्—दोनो नयो को भली-भाँति जानना चाहिए। किन्तु कल्याण साधते समय दोनो मे से किसी एक नय का आश्रय लेना पड़े तो निश्चयनय का आश्रय लेना चाहिए, व्यवहारनय का आश्रय श्रेयस्कर नही होता। आत्म-कल्याण की साधना के समय व्यवहारनय का आश्रय छूट ही जाता है।

नय का कार्य वस्तु को जानना है

नय जानने का विषय है, केवल सुनने का विषय नही है। वस्तु को भली-भाँति जानने का काम नय करता है। कोई यह शका उठाए कि नय जब जानने का ही काम करता है तो हमे शुद्ध को ही जानना चाहिए, अशुद्ध को जानने से क्या लाभ है? अशुद्ध को जानकर क्या करना है? इसका समाधान करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—'अशुद्धनय को भी जानना तो अवश्य चाहिए। अशुद्धनय का स्वरूप जाने बिना शुद्ध नय को कैसे अपना सकेंगे? दोनो नयो से वस्तु को जानना तो चाहिए, किन्तु आत्म-कल्याण साधना के समय अपनाना और अभ्यास करना चाहिए निश्चयनय की दृष्टि का।

निश्चयनय की दृष्टि मे वस्तु का प्रकाशात्मक पहलू

आत्मा को शुद्ध, निर्मल एव विकार रहित बनाने के लिए भी निश्चयनय की दृष्टि से उसके प्रकाशात्मक पहलू को देखने और उधर ही ध्यान जोडने की जरूरत है। व्यवहारनय की दृष्टि से हम किसी वस्तु को देखेंगे या उस ओर ध्यान जोडेंगे तो वह अशुद्ध रूप मे ही नजर आयेगा, अन्धकार का पहलू ही हमे दृष्टिगोचर होगा। बुराई को छोडने के लिए बुराई की तरफ ध्यान देंगे तो धीरे-धीरे सस्कारो मे वह बुराई जम जाएगी। उसका निकलना कठिन हो जाएगा।

बुराई को निकालने का गलत तरीका

एक जगह हम एक मन्दिर में ठहरे थे। वहाँ चर्चा चल पडी कि बुराई को छोडना हो तो हमें क्या करना चाहिए? अगर हम किसी बुराई को छोडना चाहते हैं तो पहले उस बुराई की ओर हमारा ध्यान जाएगा, हम प्राय यह देखने की कोशिश करेंगे कि हममे कौन-सी बुराई, कितनी मात्रा मे है? उस बुराई को हटाते समय भी बार-बार हमारा ध्यान उस ओर जाएगा कि बुराई कितनी घटी है, कितनी शेष रही है? क्या बुराई निकालने का यह तरीका ठीक है?"

हमने कहा—"यह तरीका बिलकुल गलत है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह तरीका यथार्थ नही है। यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि जिस वस्तु का बार-



वार रटन किया जाएगा, जिसे पुन -पुन स्मरण किया जायगा, जिसका वार-बार चिन्तन-मनन किया जाएगा, वह धीरे-धीरे सस्कारो मे बद्धमूल हो जाएगी। उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति को क्रोध का त्याग करना है और वह वार-वार क्रोध का चिन्तन करता है, स्मरण करता है या उसकी ओर ध्यान देता है तो क्रोध हटने के वजाय और अधिक तीव्र हो जाएगा। क्रोध उसके सस्कारो के साथ घुल-मिल जाएगा। एक व्यक्ति शराव वहुत पीता था। उसकी पत्नी अपने पति की शराव की आदत पर उसे वहुत झिड़कती थी। परिवार के लोग भी उसकी शराव पीने की आदत के कारण उससे घृणा करते थे। अन्य लोग भी वार-वार उसे टोकते रहते थे। इस पर उसने शराव पीने का त्याग कर दिया। किन्तु उसी दिन शाम को ही समय पर उसे शराव की याद आयी। मन में वहुत ललक उठी कि चुपके से जाकर शराव पी लू। फिर उसे पत्नी और परिवार की डांट-फटकार की याद आयी। कुछ समय वाद फिर शराव पीने की हूक उठी, उसने अपनी प्रतिज्ञा को याद किया—मैंने शराव पीने की शपथ ली थी, पर वह तो सवके सामने शराव पीने की शपथ थी। एकान्त मे जाकर अकेले मे चुपके से थोडी शराव पी ली जाय तो क्या हर्ज है? और फिर जिस किस्म की शराव मैं पीता था, उस किस्म की शराव पीने की मैंने शपथ ली है, दूसरे किस्म की शराव पी लूँ तो क्या हानि है? किन्तु फिर पत्नी के झिडकने वाली क्रूर मुख मुद्रा, परिवार की वौखलाहट आदि आँखो के सामने उभर आयी। उसने उस समय शराव पीने का विचार स्थगित कर दिया। किन्तु रातभर उसे शराव के विचार आते रहे। स्वप्न भी ढेर सारे आये शराव पीने के कि वह स्वप्न मे शराव की कई वोतलें गटगटा गया। सुवह उठा तो शरीर मे वहुत सुस्ती थी। दिन भर शराव का चिन्तन चलता रहा। आखिर रात मे चुपचाप शराव की दुकान पर चला गया। एक कोने मे जाकर वैठ गया। उसने इशारे से वढिया किस्म की शराव का आर्डर दिया। दो प्याले शराव के पेट मे उडेल दिये। घर जाकर चुपचाप विस्तर पर सो गया। यह क्रम सदा चलने लगा। उसने अपने मन मे यह सोचकर सन्तोष कर लिया कि मैंने जो शराव पीने की प्रतिज्ञा की है, वह अमुक किस्म की और सवके सामने न पीने की है। मैं अव जो शराव पीता हूँ वह वढिया किस्म की तथा चुपचाप अकेला पीता हूँ। इसमे मेरी प्रतिज्ञा मे कोई आँच नही आती। इस प्रकार शराव का वार-वार स्मरण एव चिन्तन करने से वह पहले की अपेक्षा अधिक शराव पीने लगा।

हाँ तो, इसी प्रकार बुराई का वार-वार स्मरण करने, चिन्तन करने से वह नही छूट सकती, वह तो सस्कारो मे और अधिक घुल-मिल जाएगी एव प्रच्छन्न रूप से होने लगेगी। इस तरीके से तो धीरे-धीरे मनुष्य उसका आदी वन जाता है।

यही वात आध्यात्मिक दृष्टि से विचारणीय है। किसी को क्रोध छोडना है, अभिमान छोडना है, माया व लोभ छोडना है, तो वह कैसे छोडेगा? कौन-सा तरीका अपनायेगा, इन चारो कषायो को छोडने के लिए? अगर अपना उपयोग या ध्यान वार-वार क्रोधादि कषायो के साथ जोडेगा, इसी का चिन्तन-मनन चलेगा, इन्ही की उधेडवुन मे मन लगता रहेगा तो कषाय के छूटने के वजाय और अधिक दृढ व वढते जायेंगे। आत्म-परिणति शुद्ध होने के वजाय क्रोधादि के वार-वार विचार से अशुद्ध-अशुद्धत्तर होती चली जायेगी। पूर्वापेक्षा और अधिक रूप से कषाय की गिरफ्त मे जकड जायेंगे। जैन-दर्शन का यह दृष्टिकोण रहा है—'**अविच्चुई धारणा होई**' जिस वस्तु का पुन -पुन. स्मरण किया जाता है, वह कालान्तर मे धारणा का रूप ले लेती है, सस्कारो मे जड जमा लेती है। भगवान महावीर से जव क्रोधादि चारो कषायो मे छूटने का कारण पूछा गया तो उन्होने आत्मा के मूल स्वभाव की दृष्टि से समाधान दिया—

"उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
माय च उज्जुभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥"

—दशवैका० अ० ८, गा० ३६

अगर क्रोध को नष्ट करना चाहते हो तो उपशमभाव-क्षमाभाव को धारण करलो। अभिमान को मृदुता-नम्रता से जीतो, माया (कपट) को सरलता से और लोभ को संतोष से जीतो। क्रोध को छोड़ने के लिए क्रोध का बार-बार चिन्तन नही करना है, मान पर विजय पाने के लिए अभिमान का स्मरण करना उचित नही है, माया का त्याग करने के लिए बार-बार यह रटन ठीक नही कि मुझे माया को छोडना है, और न ही लोभ को तिलाजलि देने के लिए लोभ पर मनन करने की आवश्यकता है।

अन्धकार को हटाने के लिए

कोई व्यक्ति अन्धकार को मिटाना चाहता है तो क्या अँधेरे का बार-बार चिन्तन, मनन या रटने से अथवा हाथ से बार-बार अन्धकार को हटाने से वह हट जायेगा, नष्ट हो जायेगा ? ऐसा कदापि सम्भव नही है।

एक परिवार मे नई-नई बहू आयी थी। बहू बहुत ही भोली और बुद्धि से मन्द थी। घर मे सास, बहू और लडका तीन ही प्राणी थे। कच्चा घर था। मिट्टी के घडो मे घर का सामान रखा हुआ था। एक दिन लडका कही बाहर गाँव गया हुआ था। रात को सास-बहू दो ही घर मे थी। किसी आवश्यक कार्यवश सास को बाहर जाना था। अत जाते समय वह बहू को हिदायत देती गयी—"बहू ! मैं अभी जरूरी काम से बाहर जा रही हूँ। तू एक काम करना, अँधेरे को मार भगाना और घर के आवश्यक कार्य कर लेना।" भोली बहू ने सास की आज्ञा शिरोधार्य की। रात का समय हुआ। अँधियारा फैलने लगा। बहू ने सास की आज्ञा को ध्यान मे रखते हुए अपने हाथ मे डडा उठाया और उसे घुमा-घुमाकर अँधेरे को भगाने लगी। हाथ थक गये डडा घुमाते-घुमाते, पर अँधेरा भगा नही। प्रत्युत और अधिक फैल गया। और डडे के घुमाने, पटकने से घर मे सामान के भरे घडे भी फूट गये। सामान इधर-उधर बिखर गया।

सास जब आवश्यक कार्य से निपटकर घर आयी और उसने यह सब माजरा देखा तो वह दग रह गयी। सास ने पूछा—"बहू ! ये घडे क्यो फोड डाले ?"

"माताजी ! आपने अँधेरे को मार भगाने के लिए कहा था न। मैंने पहले डडा यो ही घुमाया, पर अँधेरा भागा नहीं, तब डडा मारना शुरू किया। अफसोस है, तब भी अँधेरा भागा नहीं, बल्कि बढता ही चला गया।" बहू ने कहा।

बहूरानी के अविवेक पर नाराजी दिखाते हुए सास बोली—"ऐसे कहीं डडा मारने से अँधेरा भागता है ? तूने अक्ल के साथ दुश्मनी कर रखी मालूम होती है।"

"माताजी ! तो बताइए न, यह अँधेरा कैसे भगेगा, डडे के बिना ?"

सास ने मुस्कराते हुए कहा—"बहूरानी ! ला, दीपक ले आ। मैं अभी बताती हूँ, अँधेरा कैसे भगाया जाता है ! बहूरानी सरल थी। वह तुरन्त एक दीपक ले आयी। सास ने दीपक जलाया दीपक के प्रज्वलित होते ही घर का सारा गहन अंधकार दूर हो गया।

सास ने बहूरानी से कहा—"देखो, बहू ! अन्धकार डडे मारने से नहीं भागता, वह तो प्रकाश से बहुत शीघ्र भाग जाता है।"

ठीक इसी प्रकार बुराई या विकारो का अन्धकार मिटाना हो तो बुराई या विकारो से



नही भागेगा। क्रोध से क्रोध नही मिटेगा, लोभ से लोभ नहीं हटेगा। क्रोध या लोभ को हटाना हो तो क्षमाभाव या सतोषभाव को अपनाना होगा। क्षमा के आते ही क्रोध अपने आप पलायन कर जायेगा। नम्रता के आते ही अभिमान चला जायेगा। सरलता का दीपक मानस मन्दिर मे जग-मगाते ही माया की गाढ़ तमिस्त्रा दूर हो जायेगी। सन्तोष का हृदय मे प्रकाश होते ही लोभ नौ दो ग्यारह हो जायेगा। जिस क्षण हम अन्धकार के पथ से आँखें मूंदकर प्रकाश की ओर दृष्टि जमा देंगे तो फिर उलझने या बुराई अपने आप काफूर हो जायगी। प्रकाश का मतलब है—निश्चयनय की दृष्टि, स्वभाव दृष्टि। जब हमारा उपयोग, हमारा ध्यान आत्मा के शुद्ध, निर्मल व शाश्वत स्वभाव की ओर लग जायेगा, उसी मे तन्मय हो जायेगा तो यह निश्चित है कि क्रोधादि विकार-भाव स्वत. ही नही आयेंगे। और आत्मा अपने क्षायिक भाव को प्राप्त हो जायेगा।

विकारों के सस्कारो को कैसे भगाएँ

शुद्ध स्वभाव की स्थिति कोरी बातो से या केवल कहने मात्र से नही आयेगी आत्मा मे वर्षों के जमे हुए क्रोधादि कषायभाव के सस्कार कैसे भाग जायेंगे ? यह एक चमत्कार ही है कि शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के बाद आत्मा मे पड़े हुए अशुद्ध सस्कारो की ओर ध्यान ही नही दिया जायेगा। उनके प्रति एकदम उपेक्षा हो जायेगी, तो वे भी कहाँ तक ठहर सकेंगे ? अपने आप अपना-सा मुह लेकर चले जायेंगे।

किसी बनिये की दूकान पर कोई बातूनी आकर बैठ जाता है, तो वह दुकान पर बैठकर खाली बातें ही बनाता है। दुकानदारी मे विघ्न डालता है। ग्राहको का ध्यान सौदा लेने से हटा देता है। अत वह दुकानदार उसे हटाना चाहेगा। अगर सीधा ही उसे यह कहा जाय कि भाग जा यहाँ से। यहाँ क्यो बैठा है ? या उसे धक्का देकर निकालना चाहे तो यह असभ्यता और अशिष्टता होगी। असभ्यता से किसी को हटाना अच्छा नही लगता। तो वह दुकानदार उसे सभ्यता से भगायेगा। इसके लिए वह उससे बात ही नही करेगा। वह अपनी दुकानदारी मे या अन्य कार्यों मे लग जायेगा। जब दुकानदार उसकी उपेक्षा कर देगा तो वह आगन्तुक दुकान से अपने आप ही चला जायेगा। इस प्रकार उस बातूनी से स्वत ही छुटकारा मिल जायेगा।

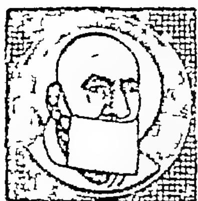
हाँ, तो यही बात विकारो को भगाने के सम्बन्ध मे है। अगर मन की दुकान पर विकार रूपी वाचाल आ धमके तो उसे हटाने के लिए उससे किनारा कसी करनी ही होगी। उसके प्रति उपेक्षा भाव करना ही होगा। उसकी तरफ से ध्यान हटाकर अपने शुद्ध स्वभाव रूपी माल की ओर ध्यान लगा लेवें। इस प्रकार क्रोधादि विकारो को बिलकुल प्रश्रय नही देने से वे अपने आप ही चले जायेंगे।

इस तरीके या पद्धति को नही अपनाकर क्रोधादि विकारो को मिटाने के लिए बार-बार उनका स्मरण करेंगे और लक्ष्य देंगे तो कभी दूर नही होंगे।

प्रकृति का अटल नियम है कि मनुष्य जिस बात को पुन-पुन दुहरायेगा, वह उतनी ही मजबूत होती जायेगी। अतएव उसकी ओर का ध्यान छोड़ा जायेगा तब ही उस विकारभाव को छुटकारा मिल पायेगा।

व्यवहारनय की दृष्टि से विचार विकल्पों का जनक

व्यवहारनय की दृष्टि से अगर विकारो को हटाने के लिए विकारो की ओर ही झांकेंगे, उन्ही के सन्मुख होंगे तो विकारो का हटना तो दूर रहा किन्तु और अधिक पैदा होते चले जायेंगे। कहते हैं—ऐलोपेथिक दवा एक बीमारी को मिटाती या दबाती है, तो अन्य नई-नई बीमारियाँ पैदा



कर देती है। इसी प्रकार कपाय की वीमारी को मिटाने के लिए उसी का स्मरण करते चले जायेंगे तो उस एक वीमारी के स्थान पर अन्य अनेक विकारो का जन्म हो जायेगा। विकारो के वार-वार परिशीलन से विकारो का नाश कदापि नही हो सकेगा। इसलिए वार-वार यह कहा जा रहा है कि कपायभाव का परिमार्जन करने के लिए निश्चयनय की दृष्टि से शुद्ध स्वभाव का ध्यान करने की प्रवल आवश्यकता है। वही शुद्ध ध्यान धर्म ध्यान कहलाता है।

पूर्ण आत्म द्रव्य का दर्शन निश्चयनय से ही

जव हम निश्चयनय की आँख से देखने का प्रयास करेंगे तो आत्मा स्वभाव ने नित्य, शुद्ध, वुद्ध, असग, ध्रुव एव अविनाशी प्रतीत होगी। व्यवहारनय की आँख से देखेंगे तो आत्मा अनित्य, अध्रुव, अशुद्ध नजर आयेगी। दोनो नयो मे से कौन-सा ऐसा नय है जो कि आत्मा को संसारी वनाता है, जन्म-मरण के चक्र मे भ्रमण कराता है। मोक्ष का चिन्तन होने रहने पर भी वन्धन क्यो हाथ लगता है? अनन्तकाल व्यतीत हो गया तथापि मोक्ष हस्तगत क्यो नहीं हुआ। अमर व शाश्वत सुख की अनुभूति से क्यो वचित एव नासमझ रहे। अगर थोडी-सी गहराई से विचार करें तो यह वात वहुत शीघ्र हल हो जाती है। इसका मूल कारण है कि हमने पर्याय को ही देखने की कोशिश की है। पर्यायो को देखने से अखण्ड आत्म-द्रव्य या कोई भी द्रव्य पूरा का पूरा नहीं दिखाई देता। क्योकि पर्याय का काल एक समय का होता है, और वह भी वर्तमान मे ही। यदि हम पर्याय को देखने जायेंगे तो एक साथ दो, तीन या और इससे अधिक दृष्टिगोचर नहीं होगी। एक क्षण या एक समय मे एक द्रव्य की या एक गुण की कितनी पर्याय दिखलाई दे सकती है? सिर्फ एक पर्याय ही दिखलायी देगी। तो एक पर्याय ही तो द्रव्य नही है। एक द्रव्य मे अनन्त पर्यायें होती हैं। भूतकाल की अनन्त पर्याय है, भविष्य काल की अनन्त पर्याय होती हैं और वर्तमान काल की एक पर्याय होती है। ये सव पर्यायें—चाहे व्यक्त हो या अव्यक्त—मिलकर एक आत्म-द्रव्य वनता है।

आत्मा एक प्रदेश को नही कहा जा सकता, और न दो प्रदेश को ही आत्मा कहा जा सकता है तथा न तीन, चार आदि प्रदेश को भी आत्मा कहा जा सकता है। आत्मा असख्यात प्रदेशी है। इसी प्रकार एक गुण की अनन्त पर्याय भी आत्मा नही है। भूत-भविष्य-वर्तमान की समस्त पर्यायें मिलकर ही अखण्ड आत्म द्रव्य वनता है।

इसी शुद्ध, अखण्ड और शाश्वत आत्म द्रव्य को देखना हो तो स्वभावदृष्टि, द्रव्यदृष्टि या निश्चयनय की दृष्टि को ही अपनाना होगा।

निश्चयनय ही शुद्ध आत्मद्रव्य को देखने मे समर्थ है। यही आत्म-शुद्धि मे प्रवल साधक है। यही मोक्ष साधना मे प्रवलतम सहायक है। इसे अपनाकर ही कर्म, कपाय, संयोग, पर्याय-संयोग आदि से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

व्यवहारनय की उपयोगिता

निश्चयनय से प्रथम अपनी दृष्टि को शुद्ध वनाकर व्यक्ति व्यवहारनय की दृष्टि से साधना-पथ पर चलने का प्रयत्न करेगा तो उसे मोक्ष की मजिल तक पहुँचने मे आसानी होगी। अन्यथा, वह यदि निश्चयनय की दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करके वही अटक जायेगा। अत व्यवहारनय की इतनी-सी उपयोगिता है। उसे माने विना कोई चारा नही है। क्योंकि निश्चय शुद्ध व्यवहारनय को छोड देने पर तीर्थ-विच्छेद की सम्भावना है, और निश्चयनय को छोडकर केवल व्यवहारनय का अनुसरण अन्धी दौड है। दोनो नयो का अपनी-अपनी जगह स्थान है, परन्तु अध्यात्मसाधक की दृष्टि मुख्यतया निश्चय नय की ओर होनी चाहिए। दोनो नय परस्पर सापेक्ष हैं।



नयवाद : विभिन्न दर्शनों के समन्वय की अपूर्व कला

✡ श्रीचन्द चोरडिया, न्यायतीर्थ (द्वय)

सम्पूर्ण पदार्थ सामान्य-विशेषरूप से ही अनुभव मे आते हैं। अत अनेकान्तवाद मे ही वस्तु का अर्थक्रियाकारित्व लक्षण सम्यग्प्रकार से घटित हो सकता है। सामान्य और विशेष परस्पर सापेक्ष है। विना सामान्य के विशेष और विशेप के विना सामान्य कही पर भी नही ठहर सकते। अत विशेष निरपेक्ष सामान्य को अथवा सामान्य निरपेक्ष विशेष को तत्त्व मानना केवल प्रलाप मात्र है। जिस प्रकार जन्मान्ध मनुष्य हाथी का स्वरूप जानने की इच्छा से हाथी के भिन्न-भिन्न अवयवो को टटोलकर हाथी के केवल कान, सूंड, पैर आदि को ही हाथी समझ बैठते हैं उसी प्रकार एकान्तवादी वस्तु के सिर्फ एकाश को जानकर उस वस्तु के सिर्फ एक अश रूप ज्ञान को ही वस्तु का सर्वाशात्मक ज्ञान समझने लगते है। सम्पूर्णनय स्वरूप स्याद्वाद के विना किसी भी वस्तु का सम्यग् प्रकार से प्रतिपादन नही किया जा सकता। सम्पूर्ण वादी पद-पद पर नयवाद का आश्रय लेकर ही पदार्थो का प्रतिपादन कर सकते हैं। क्योकि प्रत्येक वस्तु मे अनन्त स्वभाव अथवा धर्म है।

नयवाद परिभाषा, अर्थ

जिसके द्वारा पदार्थों के एक अश का ज्ञान हो, उसे नय कहते हैं। खोटे नयो को दुर्नय कहते हैं। किसी वस्तु मे अन्य धर्मो का निषेध करके अपने अभीष्ट एकान्त अस्तित्व को सिद्ध करने को दुर्नय कहते हैं।[1] जैसे—यह घट ही है। वस्तु मे अभीष्ट धर्म की प्रधानता से अन्य धर्मों का निषेध करने के कारण दुर्नय को मिथ्यानय कहा गया है। इसके विपरीत किसी वस्तु मे अपने इष्टधर्म को सिद्ध करते हुए अन्य धर्मों मे उदासीन होकर वस्तु के विवेचन करने को नय (सुनय) कहते है। जैसे—यह घट है। नय मे दुर्नय की तरह एक धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का निषेध नही किया जा सकता, इसलिए नय को दुर्नय नही कहा जा सकता। प्रमाण सर्वार्थग्राही है तथा नय विकलादेशग्राही है। नय और प्रमाण के द्वारा दुर्नयवाद का निराकरण किया जा सकता है।

विशेषावश्यकभाष्य मे जिनभद्र क्षमाश्रमण ने नयो को प्रमाण के समान कहा है। उपक्रम, अनुगम, नय, निक्षेप—ये चार अनुयोग महानगर मे पहुँचने के दरवाजे है। प्रमाण से निश्चित किये हुए पदार्थों के एक अश के ज्ञान को नय कहते हैं। वस्तुओ मे अनन्तधर्म होते हैं। वस्तु के अनन्त धर्मों मे से वक्ता के अभिप्राय के अनुसार एक धर्म के कथन करने को नय कहते हैं। घट मे कच्चापन, पक्कापन, मोटापन, चौडापन आदि अनन्तधर्म होते है अत नाना नयो की अपेक्षा से शब्द और अर्थ की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु मे अनन्त धर्म विद्यमान हैं। नय का उद्देश्य है माध्यस्थ बढ़े।

प्रमाण, इन्द्रिय और मन—सबसे हो सकता है किन्तु नय सिर्फ मन से होता है क्योकि अशो का ग्रहण मानसिक अभिप्राय से हो सकता है। जब हम अशो की कल्पना करने लग जाते हैं तब वह ज्ञान नय कहलाता है। नयज्ञान मे वस्तु के अन्य अश या गुणो की ओर उपेक्षा या गौणता रहती है परन्तु खण्डन नही होता।[2] जो ज्ञान शब्दो मे उतारा जा सके, जिसमे वस्तु को उद्देश्य और

---

१ भेदाभेदात्मके ज्ञेये भेदाभेदाभिसन्धय.।
ये ते उपेक्षानपेक्षाभ्या लक्ष्यन्ते नयदुर्नया ॥ —लघीय० का० ३०

२ सापेक्षा परस्परसवद्धास्ते नया —अष्टशती, कारिका १०८



विधेय रूप मे कहा जा सके, उसे नय कहते है। अपनी विवक्षा मे किसी एक अंश को मुख्य मान कर व्यवहार करना नय है। जैसे दीप मे नित्य धर्म भी रहता है और अनित्य धर्म भी। यहाँ अनित्यत्व का निषेध न करते हुए अपेक्षावशात् दीपक को नित्य कहना नय है। प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार मे कहा है—

नीयते येन श्रुताख्य प्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यत स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नय ।

अर्थात् जिसके द्वारा—श्रुत प्रमाण के द्वारा विषय किये हुए पदार्थ का एक अंश सोचा जाय—ऐसे वक्ता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं। नयो के निरूपण का अर्थ है—विचारो का वर्गीकरण। नयवाद अर्थात् विचारो की मीमांसा। इस वाद मे विचारो के कारण, परिणाम या विषयो की पर्यालोचना मात्र नही है। व्यवहार मे परस्पर विरुद्ध दीखने वाले, किन्तु यथार्थ में अविरोधी विचारो के मूल कारणो की खोज करना ही इसका मूल उद्देश्य है। इसलिए नयवाद की संक्षिप्त परिभाषा है—परस्पर विरुद्ध दीखने वाले विचारो के मूल कारणो की खोजपूर्वक उन सब मे समन्वय करने वाला शास्त्र।[1]

नय के ज्ञाननय और क्रियानय—ये दो विचार भी हो सकते है। विचार सारणियो से पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को जानना ज्ञाननय है और उसे अपने जीवन मे उतरना क्रियानय। केवल संकेत मात्र से अर्थ का ज्ञान नही होता क्योंकि शब्दो मे ही सब अर्थो को जानने की शक्ति होती है।

नयवाद परिभाषा—अर्थ की व्याख्या

शाब्दिक, आर्थिक, वास्तविक, व्यावहारिक, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक के अभिप्राय से आचार्यों ने नय के मूलतः सात भेद किये हैं—यथा—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत। बौद्ध कहते हैं—रूप आदि अवस्था ही वस्तुद्रव्य है। वेदान्त का कहना है कि द्रव्य ही वस्तु है, रूपादि गुण तात्त्विक नही है। भेद और अभेद का द्वन्द्व का एक निदर्शन है। नयवाद अभेद-भेद इन दो वस्तुओ पर टिका हुआ है।[2] शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा द्रव्यार्थिक नय समस्त पदार्थों को केवल द्रव्य रूप जानता है क्योकि द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं है, जैसे—आत्मा, घट आदि। सभी पदार्थ द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्य हैं। प्रदीप, घटादि सर्वथा अनित्य हैं, आकाश सर्वथा नित्य है—यह मानना दुर्नयवाद को स्वीकार करना है। वस्तु के अनन्त धर्मात्मक होने पर भी सब धर्मो का तिरस्कार करके केवल अपने अभीष्ट नित्यत्वादि धर्मो का समर्थन करना 'दुर्नय' है। वस्तुत कोई भी पदार्थ सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य नहीं कहा जा सकता। जो अनित्य है वह कथंचित् नित्य है और जो नित्य है वह कथंचित् अनित्य है। वैशेषिक-दर्शन मे भी कहीं-कहीं पदार्थ में नित्य-अनित्य दो तरह के धर्मों की व्यवस्था उपलब्ध होती है जैसा कि प्रशस्तिकार ने प्रशस्तपादभाष्य मे कहा है—

सा तु द्विविधा नित्या अनित्या च।
परमाणुलक्षणा नित्या कार्यलक्षणा अनित्या।

---

१ अनेकान्तोऽप्यनेकान्त प्रमाणनयसाधन.।
अनेकान्त· प्रमाणस्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥ —स्वयम्भू० १०३

२ सामान्य प्रतिभासो ह्यनुगताकारो विशेषप्रतिभासस्तु व्यावृत्ताकारोऽनुभूयते।
—प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, चतुर्थ खण्ड



अर्थात् पृथ्वी नित्य और अनित्य—दो प्रकार की है। परमाणुरूप पृथ्वी नित्य और कार्य-रूप पृथ्वी अनित्य है। वैशेषिक लोग भी एक अवयवी को ही चित्ररूप (परस्पर विरुद्ध रूप) तथा एक ही पट को चल और अचल, रूप और अरूप, आवृत्त, और अनावृत्त आदि विरुद्ध धर्म युक्त स्वीकार करते हैं। बौद्ध लोग भी एक ही चित्रपट मे नील-अनील दो विरुद्ध धर्मों को मानते हैं। एक ही पुरुष को अपने पिता की अपेक्षा पुत्र और पुत्रो की अपेक्षा पिता कहा जाता है उसी प्रकार एक ही अनुभूति भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से अनुभूति और अनुभाव्य कही जाती है।

सक्षेपत द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेद से नय के दो भेद हैं। द्रव्यार्थिकनय के नैगम, सग्रह, व्यवहार ये तीन भेद होते है। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत—ये चार पर्यायार्थिक-नय के भेद हैं। श्री सिद्धसेन आदि तार्किको के मत को मानने वाले द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद मानते है, परन्तु जिनभद्रगणि के मत का अनुसरण करने वाले सैद्धान्तिक द्रव्यार्थिकनय के चार भेद मानते हैं। जो पर्यायो को गौण मानकर द्रव्य को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे द्रव्यार्थिकनय कहते है। जो द्रव्य को गौण मानकर पर्यायो को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं अर्थात् द्रव्य अर्थात् सामान्य को विषय करने वाले नय को द्रव्यार्थिकनय कहते है और पर्याय अर्थात् विशेष को विषय करने वाले नय को पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

नय और प्रमाण से होने वाले जीवादि तत्त्वो के यथार्थज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। न्यायशास्त्र मे जिस ज्ञान का विषय सत्य है उसे सम्यग्ज्ञान और जिसका विषय असत्य है उसे मिथ्याज्ञान कहा जाता है। अध्यात्मशास्त्र मे यह विभाग गौण है। यहाँ सम्यग्ज्ञान से उसी ज्ञान का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का विकास हो और मिथ्याज्ञान से उसी ज्ञान का ग्रहण होता है जिससे आत्मा का पतन हो या ससार की वृद्धि हो। अस्तु, किसी विषय के सापेक्ष निरूपण को नय कहते हैं। किसी एक या अनेक वस्तुओ के विषय मे अलग-अलग मनुष्यो के या एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न विचार होते है। अगर प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि से देखा जाय तो वे विचार अपरिमित हैं। इन सबका विचार प्रत्येक को लेकर करना असम्भव है। अपने प्रयोजन के अनुसार अतिविस्तार और अतिसक्षेप—दोनो को छोडकर किसी विषय का मध्यम दृष्टि से प्रतिपादन करना ही नय है।

सामान्यत मनुष्य की ज्ञानवृत्ति अधूरी होती है और अस्मिता अभिनिवेश अर्थात् अहकार या अपने को ठीक मानने की भावना बहुत अधिक होती है। इससे जब वह किसी विषय मे किसी प्रकार का विचार करता है तो उसी विचार को अन्तिम, सम्पूर्ण तथा सत्य मान लेता है। इस भावना से वह दूसरो के विचारो को समझने के धैर्य को खो बैठता है। अन्त मे अपने अल्प तथा आशिक ज्ञान को सम्पूर्ण मान लेता है। इस प्रकार की धारणाओ के कारण ही सत्य होने पर भी मान्यताओ मे परस्पर विवाद हो जाता है और पूर्ण और सत्य ज्ञान का द्वार बद हो जाता है।

एक दर्शन आत्मा आदि के विषय मे अपने माने हुए किसी पुरुष के एकदेशीय विचार को सम्पूर्ण सत्य मान लेता है। उस विषय मे उसका विरोध करने वाले सत्य विचार को भी असत्य समझता है। इसी प्रकार दूसरा दर्शन पहले को और दोनो मिलकर तीसरे को झूठा समझते हैं। फलस्वरूप समता की जगह विषमता और विवाद खडे हो जाते हैं अत सत्य और पूर्ण ज्ञान का द्वार खोलने के लिए तथा विवाद दूर करने के लिए नयवाद की स्थापना की गई है और उसके द्वारा यह बताया गया है कि प्रत्येक विचारक अपने विचार को आप्त-वाक्य कहने के पहले यह तो सोचे



कि उसका विचार प्रमाण की गिनती मे आने लायक सर्वांशी है भी या नही। इस प्रकार की सूचना करना ही जैनदर्शन की नयवादरूप विशेषता है।

नयवाद—भेद-उपभेद

यद्यपि नैगम, सग्रहादि के भेद से नयो के भेद प्रसिद्ध हैं तथापि नयो को प्रस्थक के दृष्टात मे, वसति के दृष्टान्त से और प्रदेश के दृष्टान्त से समझाया गया है। आगम मे कहा है—

से किं त नयप्पमाणे ? तिविहे पण्णत्ते, त जहा—पत्थगदिट्ठतेण वसहिदिट्ठतेणं पएस-दिट्ठतेण।

—अणुओगद्दाराइ सुत्त ४७३

अर्थात् नयप्रमाण तीन प्रकार से प्रतिपादन किया गया है, यथा—प्रस्थक के दृष्टान्त से, वसति के दृष्टान्त मे और प्रदेश के दृष्टान्त से।

जिन नयो को प्रस्थक के दृष्टान्त से सिद्ध किया जाय उसे प्रस्थक दृष्टान्त जानना चाहिए। जैसे—कोई व्यक्ति परशु हाथ मे लेकर वन मे जा रहा था। उसको देखकर किसी ने पूछा कि आप कहाँ जाते हैं। प्रत्युत्तर मे उसने कहा कि 'प्रस्थक के लिए जाता हूँ।' उसका ऐसा कहना अविशुद्ध नैगमनय की अपेक्षा से है क्योकि अभी तो उसके विचार विशेष ही उत्पन्न हुए हैं।[1] तदनन्तर किसी ने उसको काष्ठ छीलते हुए देखकर पूछा कि आप क्या छीलते है ? प्रत्युत्तर मे उसने कहा कि प्रस्थक को छीलता हूँ। यह विशुद्ध नैगम नय का वचन है। इसी प्रकार काष्ठ को तक्षण करते हुए, उत्कीरन करते हुए, लेखन करते हुए को देखकर जब किसी ने पूछा। प्रत्युत्तर मे उसने कहा कि प्रस्थक को तक्षण करता हूँ, उत्कीरन करता हूँ, लेखन करता हूँ—यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। क्योकि विशुद्धतर नैगमनय के मत से जब प्रस्थक नामाकित हो गया तभी पूर्ण प्रस्थक माना जाता है। अर्थात् प्रथम के नैगमनय से दूसरा कथन इसी प्रकार विशुद्धतर होता हुआ नामाकित प्रस्थक (धान्यमान विशेषार्थ काष्ठमय भाजन) निष्पन्न हो जाता है। क्योकि जब प्रस्थक का नाम स्थापन कर लिया गया तभी विशुद्धतर नैगमनय से परिपूर्ण रूप प्रस्थक होता है।

सग्रहनय के मत से सब वस्तु सामान्य रूप है, इसलिए जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो तभी उसको प्रस्थक कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो घट-पटादि वस्तुएँ भी प्रस्थक सज्ञक हो जायेंगी। इसलिए जब वह धान्य से परिपूर्ण भरा हो और अपना कार्य करता हो तभी वह प्रस्थक कहा जाता है।[2]

इसी प्रकार व्यवहारनय की मान्यता है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान काल को ही मानता है, भूत और भविष्यत् को नही। इसलिए व्यवहार-पक्ष मे नामरूप प्रस्थक को भी प्रस्थक और उसमे भरे हुए धान्य को भी प्रस्थक कहा जाता है।[3]

शब्द, समभिरूढ और एवभूत—इन तीनो नयो को शब्दनय कहते हैं क्योकि वे शब्द के अनुकूल अर्थ मानते हैं। आद्य के चार नय अर्थ का प्राधान्य मानते हैं।[4] इसलिए शब्दनयो के

---

१ से जहा नामए केइ पुरिसे परसु गहायनडविहुत्ते गच्छेज्जा, त च केइ पामित्ता वदेज्जा-कथ भव गच्छसि ? अविवुद्धो नेगमो भणति पत्थगस्स गच्छामि। —अणुओगद्दाराइं ४७४

२ सगहस्स मितमेज्जसमारूढो पत्थओ। —अणुओगद्दाराइ, सूत्र ४७४

३ अज्जुसुयस्स पत्थओऽवि पत्थओ मेज्जपि पत्थओ। —अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७४

४ तिण्ह सद्दनयाण पत्थयस्स अत्थाहिगारजाणओ जस्स वा वसेण पत्थओ निपफज्जइ। —अणुओगद्दाराइ, सूत्र ४७४



मत से जो प्रस्थक के अर्थ का ज्ञाता। हो—वही प्रस्थक है, क्योकि उपयोग मे जो प्रस्थक की निष्पत्ति है वास्तव में वही प्रस्थक है, अन्य नहीं और विना उपयोग के प्रस्थक हो ही नही सकता। इसलिए ये तीनो भावनय है। भाव प्रधान नयो मे उपयोग ही मुख्य लक्षण है—और उपयोग के विना प्रस्थक की उत्पत्ति नही होती। अत उपयोग को ही 'प्रस्थक' कहा जाता है।

वसति के दृष्टान्त से नयो का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—जैसे—कोई नामधारी पुरुष किसी पुरुष को कहे कि आप कहाँ पर रहते हो? प्रत्युत्तर मे उसने कहा कि लोक मे रहता हूँ—यह अविशुद्ध नैगमनय का कथन है।[1] लोक तीन प्रकार मे प्रतिपादन किया गया है—यथा—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, तो क्या आप तीनो लोको मे वसते हैं? प्रत्युत्तर मे कहा कि मैं तिर्यक् लोक मे ही वसता हूँ—यह विशुद्ध नैगमनय का वचन है। तिर्यक् लोक मे जम्बू द्वीप से स्वयभूरमण समुद्र पर्यन्त असख्येय द्वीप समुद्र हैं, तो क्या आप उन सभी मे रहते हो? प्रत्युत्तर मे उसने कहा कि मैं जम्बूद्वीप मे वसता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र आदि दस क्षेत्र हैं, तो क्या आप उन सभी मे वसते हो? प्रत्युत्तर मे कहा कि भरतक्षेत्र मे रहता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। भरतक्षेत्र के भी दो खण्ड हैं—दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र तथा उत्तरार्द्ध भरतक्षेत्र? तो आप उन सभी मे रहते हो? प्रत्युत्तर मे कहा है कि मैं दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र मे वास करता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है।

दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र में भी अनेक ग्राम, खान, नगर, खेड, शहर, मडप, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सवाह, सन्निवेश आदि स्थान है तो क्या आप उन सभी में निवास करते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं पाटलिपुत्र (पटना) में वसता हूँ। यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। पाटलिपुत्र में भी अनेक घर हैं, तो क्या आप उन सभी मे वसते हो? प्रत्युत्तर में कहा कि मैं देवदत्त के घर में वसता हूँ—यह विशुद्धतर नैगमनय का वचन है। देवदत्त के घर में अनेक कोठे-कमरे हैं, तो क्या आप उन सभी मे वसते हो? प्रत्युत्तर मे कहा कि मैं देवदत्त के गर्भ घर मे वसता हूँ।

इस प्रकार पूर्वपूर्वापेक्षया विशुद्धतर नैगमनय के मत से वसते हुए को वसता हुआ माना जाता है। यदि वह अन्यत्र स्थान को चला गया हो तव भी जहाँ निवास करेगा वही उसको वसता हुआ माना जायेगा।

इसी प्रकार व्यवहारनय का मन्तव्य है। क्योकि जहाँ पर जिसका निवासस्थान है वह उसी स्थान मे वसता हुआ माना जाता है तथा जहाँ पर रहे, वही निवासस्थान उसका होता है। जैसे कि पाटलिपुत्र का रहने वाला यदि कारणवशात् कही पर चला जाय तव वहाँ पर ऐसा कहा जाता है कि अमुक पुरुष पाटलिपुत्र का रहने वाला यहाँ पर आया हुआ है। तथा पाटलिपुत्र मे ऐसा कहते हैं—"अव वह यहाँ पर नहीं है अन्यत्र चला गया है।" भावार्थ यह है कि विशुद्धतर नैगमनय और व्यवहारनय के मत से 'वसते हुए को वसता हुआ' मानते हैं।

सग्रहनय से जव कोई स्वशय्या में शयन करे तभी वसता हुआ माना जाता है क्योकि चलनादि क्रिया से रहित होकर शयन करने के समय को ही सग्रहनय वसता हुआ मानता है। यह सामान्यवादी है? इसलिए इसके मत से सभी शय्याएँ एक समान हैं। चाहे वे फिर कही पर ही क्यो न हो।

---

१ से जहा नामए केइ पुरिसे कचि पुरिस वदिज्जा, कहि भव वससि? तत्थ अविसुद्धो णेगमो—लोगे वसामि।

—अणुओगद्दाराइ, सूत्र ४७५



ऋजुसूत्रनय के मत से आकाश के जिन प्रदेशो मे अवकाश किया हो अर्थात् संस्तारक मे जितने आकाश प्रदेश उसने अवगाहन किये हो, उनमे ही वसता हुआ माना जाता है।

शब्द, समभिरूढ और एवभूतनय—तीनो नयो का ऐसा मन्तव्य है कि जो-जो पदार्थ है वे सब अपने-अपने स्वरूप मे ही बसते हैं। अर्थात् तीनो शब्दनयो के अभिप्राय से पदार्थ आत्म-भाव मे रहता हुआ माना जाता है।

प्रदेश के दृष्टान्त से सप्त नयो का स्वरूप निम्न प्रकार जानना चाहिए—

नैगमनय कहता है कि छह प्रकार के प्रदेश हैं—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश, स्कन्ध का प्रदेश और देश का प्रदेश।[1] इस प्रकार नैगमनय के वचन को सुनकर सग्रहनय ने कहा कि तुम छह के प्रदेश कहते हो—यह उचित नही है क्योकि जो देश का प्रदेश है वह उसी के द्रव्य का है उदाहरणत.—मेरे नौकर ने गधा खरीदा है। दास भी मेरा ही है और गधा भी मेरा ही है। इसलिए ऐसे मत कहो कि छहो के प्रदेश हैं, ऐसा कहो कि पांचो के प्रदेश हैं—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

सग्रहनय के वचन को सुनकर व्यवहारनय ने कहा कि तुमने पांचो प्रदेश प्रतिपादन किये हैं, वे भी उचित नही हैं। जैसे—पांच गोष्ठिक पुरुषो की किंचित् द्रव्य जाति सामान्य होती है, हिरण्य, सुवर्ण, धन अथवा धान्य साधारण साझी हो—उसी प्रकार पांचो प्रदेश साधारण हो तब तो आपका कथन युक्तिसगत है, लेकिन वे पृथक्-पृथक् प्रदेश हैं अत. आपका कथन युक्तिसगत नही है। लेकिन ऐसा प्रतिपादन करो कि प्रदेश पांच प्रकार का है—यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश।

व्यवहारनय के वचन को सुनकर ऋजुसूत्रनय ने कहा कि तुम्हारा प्रतिपादन सम्यग् नही है क्योकि एक-एक द्रव्य के पांच-पांच प्रदेश मानने से २५ हो जाते हैं इसलिए यह कथन सिद्धान्त बाधित है। इसलिए ऐसा न कहना चाहिए किन्तु मध्य मे 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश यावत् स्यात् स्कन्ध प्रदेश। क्योकि जिसकी वर्तमान मे अस्ति है उसी की अस्ति है, जिसकी नास्ति है उसी की नास्ति है। जो पदार्थ है वह अपने गुण मे सदैव काल मे विद्यमान है क्योकि पांचो द्रव्य साधारण नही हैं इसलिए स्यात् शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

ऋजुसूत्रनय के कथन को सुनकर शब्दनय ने कहा कि यदि स्यात् शब्द का ही सर्वथा प्रयोग किया जायेगा तो अनवस्था आदि दोष की प्राप्ति हो जायेगी। जैसे कि—स्यात् धर्म प्रदेश, स्यात् अधर्म प्रदेश इत्यादि। जैसे देवदत्त राजा का भी भृत्य है और वही अमात्य का भी है। इसी प्रकार आकाशादि प्रदेश भी जानना चाहिए। इसलिए ऐसा कथन युक्तिसगत नही है, किन्तु ऐसा कहना चाहिए कि जो धर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही धर्मात्मक है। इसी प्रकार जो अधर्म प्रदेश है वह प्रदेश ही अधर्मात्मक है।[2]

शब्दनय के कथन को सुनकर समभिरूढनय ने कहा कि तुम्हारा यह कथन युक्तिसगत

---

१ णेगमो भणति छण्ह पदेसो, त जहा—धम्मपदेसो जाव देसपदेसो—

—अणुओगद्दाराइं, सूत्र ४७६

२ अणुओगद्दाराइ, सूत्र ४७६



नही है। यह वाक्य दो समास का है—तत्पुरुष और कर्मधारय "धम्मे पएसे—से पएसे धम्मे"। यदि तत्पुरुष के द्वारा कहता है तो ऐसा नही कहना चाहिए अथवा कर्मधारय से कहता है तो विशेष रूप से कथन करना चाहिए। जैसे कि—धर्म और उसका जो प्रदेश है वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है, इसी प्रकार अधर्म और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश अधर्मात्मक है।

समभिरूढनय के वचन को सुनकर सम्प्रति एवभूतनय ने कहा कि तुम्हारा यह कथन युक्तिसंगत नही है। धर्मास्तिकाय आदि पदार्थों का स्वरूप देश, प्रदेश की कल्पना से रहित तथा प्रतिपूर्ण—आत्मस्वरूप से अविकल और अवयव रहित एक नाम से ग्रहण किया गया है। कहा है—

देसेऽवि से अवत्थू पएसेऽवि से अवत्थू।

—अणुओगद्दाराइ, सूत्र ४७६

अर्थात् एवंभूतनय की अपेक्षा देश भी अवस्तु है, प्रदेश भी अवस्तु है। भेद नही है। एक अखण्ड वस्तु ही ग्राह्य हो सकती है।

अपेक्षाभेद से नैगमादि नयो का आगमो मे विवेचन है। ये सातो नय अपना-अपना मत निरपेक्षता से वर्णन करते हुए दुर्नय हो जाते हैं। 'सौगतादि समयवत' और परस्पर सापेक्ष होते हुए सन्नय हो जाते हैं। इन सात नयो का जो परस्पर सापेक्ष कथन है वही सम्पूर्ण जैनमत है। क्योंकि जैनमत अनेक नयात्मक है, एक नयात्मक नही। स्याद्वादमजरी[1] मे कहा है कि हे नाथ! जैसे सब नदियाँ समुद्र मे इकट्ठी हो जाती हैं उसी प्रकार आपके मत मे सब नय एक साथ हो जाते हैं। किन्तु आपका मत किसी भी नय मे समावेश नही हो सकता। जैसे कि समुद्र मे नदी मे नही समाविष्ट होता इसी प्रकार सभी वादियो का सिद्धान्त तो जैनमत है लेकिन सम्पूर्ण जैनमत किसी वादी के मत में नही है।

नयवाद की सैद्धान्तिकता और व्यावहारिकता

तत्त्वत. सभी पदार्थ सामान्य-विशेषरूप हैं। परन्तु अल्पज्ञानी धर्म, अधर्म, आकाश—काल, इन अपौद्गलिक पदार्थों के सामान्य-विशेषत्व को सम्यग् प्रकार से नही समझ सकते, शब्दादि पौद्गलिक पदार्थों के सामान्य-विशेषत्व को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। केवल नैगमनय का अनुकरण करने वाले न्याय-वैशेषिक परस्पर भिन्न और निरपेक्ष सामान्य और विशेष दोनो को स्वीकार करते हैं। नैगमनय के अनुसार अभिन्न ज्ञान का कारण सामान्यधर्म विशेषधर्म मे भिन्न है। दो धर्म अथवा दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी में प्रधान और गौणता की विविक्षाओ को 'नैकगम' अथवा नैगमनय कहते हैं। परन्तु दो धर्म, दो धर्मी अथवा एक धर्म और एक धर्मी मे सर्वथा भिन्नता दिखाने को 'नैगमाभास' कहते है। निगम शब्द का अर्थ है—देश-सकल्प और उपचार। इनमे होने वाले अभिप्राय को नैगमनय कहते है।[2] अर्थात् इसमे तादात्म्य की अपेक्षा से ही सामान्य विशेष की भिन्नता का समर्थन किया जाता है।

वेदाती और साख्य केवल सग्रहनय को मानते हैं। विशेषरहित सामान्यमात्र जानने वाले को सग्रहनय कहते है। सग्रहनय एक शब्द के द्वारा अनेक पदार्थों को ग्रहण करता है अथवा एक अंश या अवयव का नाम लेने से सर्वगुणपर्याय सहित वस्तु को ग्रहण करने वाला सग्रहनय है।

यद्यपि सग्रहनय की अपेक्षा द्रव्य और पर्याय सत् से अभिन्न हैं—परन्तु व्यवहारनय की

---

१ उदधाविव सर्वसिन्धव, समुदीर्णास्त्वयिनाथ दृष्टय.।
न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधि.॥ —स्याद्वादमंजरी

२ निगम. देशसंकल्पः उपचारो वा तत्र भवो नैगम। —जैन सिद्धात दीपिका ६।१६



अपेक्षा द्रव्य और पर्याय को सत् से भिन्न माना गया है, द्रव्य और पर्याय के एकात भेद प्रतिपादन को व्यवहाराभास कहते हैं, जैसे चार्वाक् दर्शन। चार्वाक् लोग द्रव्य के पर्यायादि को न मानकर केवल भूतचतुष्टय को मानते हैं अत उन्हे व्यवहार भास कहा गया है। यह व्यवहारनय उपचार-बहुल और लौकिक दृष्टि को लेकर चलता है।

बौद्ध लोग क्षण-क्षण मे नाश होने वाली पर्यायो को ही वास्तविक मानकर पर्यायो के आश्रित द्रव्यो का निषेध करते हैं, इसलिए उनका मत ऋजुसूत्रनयाभास है। वस्तु के सर्वथा निषेध करने को ऋजुसूत्रनयाभास कहते हैं। वर्तमान क्षण की पर्याय मात्र की प्रधानता से वस्तु का कथन करना ऋजुसूत्रनय है—जैसे—इस समय मैं सुख की पर्याय भोगता हूँ।

परस्पर विरोधी लिंग, सख्यादि के भेद से वस्तु मे भेद मानने को शब्दनय कहते हैं। वैया-करण लोग शब्दनय आदि का अनुकरण करते हैं। कालादि के भेद से शब्द और अर्थ को सर्वदा अलग मानने को शब्दनयाभास कहते हैं। रूढि से सपूर्ण शब्दो के एक अर्थ मे प्रयुक्त होने को 'शब्दनय' कहते हैं।

समभिरुढनय पर्यायवाची शब्दो मे भिन्न अर्थ को द्योतित करता है। भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति होने से पर्यायवाची शब्द भिन्न-भिन्न अर्थो के द्योतक हैं। पर्यायवाची शब्दो को सर्वथा भिन्न मानना समभिरूढनयाभास कहते हैं।

जिस समय व्युत्पत्ति के निमित्त रूप अर्थ का व्यवहार होता है उसी समय मे शब्द मे अर्थ का व्यवहार होता है अर्थात् जिस क्षण मे किसी शब्द की व्युत्पत्ति का निमित्त कारण संपूर्ण रूप से विद्यमान हो, उसी समय उस शब्द का प्रयोग करना उचित है—यह एवभूतनय की मान्यता है।

नय से विपयीकृत वस्तु धर्म को अभेदवृत्ति प्राधान्य अथवा भेदोपचार से क्रमश कहने वाला वाक्य—विकलादेश कहा जाता है। अर्थात् विकलादेश क्रमश भेदोपचार से अथवा भेद प्राधान्य से अशेप धर्मात्मक वस्तु का प्रतिपादन करता है क्योकि उसको नयाधीनता है। प्रमाणनयतत्त्वा-लोकालकार मे देवेन्द्र सूरि ने कहा है—

"इयं सप्तभगी प्रतिभग सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा चेति।"

अर्थात् सप्तभगी का एक-एक भंग सकलादेश स्वभाव की तरह विकलादेश स्वभाव भी स्वीकृत किया है। प्रमाण के सात भगो की अपने विपय मे विधि और प्रतिषेध की अपेक्षा नय के भी सात भग होते हैं।[१]

नैगमादि नयो मे पहले-पहले नय अधिक विपय वाले हैं और आगे-आगे के नय परिमित विपय वाले हैं। सग्रहनय सत् मात्र को जानता है जबकि नैगमनय सामान्य और विशप—दोनो को जानता है इसलिये सग्रहनय की अपेक्षा नैगमनय का अधिक विपय है। व्यवहारनय सग्रहनय से जाने हुए पदार्थो को विशेष रूप से जानता है जबकि सग्रह समस्त सामान्य पदार्थों को जानता है इसलिए सग्रहनय का विपय व्यवहारनय की अपेक्षा अधिक है। व्यवहारनय तीनो कालो के पदार्थो को जानता है और ऋजुसूत्रनय मे केवल वर्तमान पर्याय का ज्ञान होता है अत व्यवहारनय का विपय ऋजुसूत्रनय से अधिक है, इसी प्रकार शब्दनय से ऋजुसूत्रनय का, समभिरुढ से शब्दनय का, और एवभूतनय से समभिरुढनय का विपय अधिक है।

---

१ नय वाक्यमपि स्वविपये प्रवर्तमान विधिप्रतिपेधाभ्या सप्तभगीमनुव्रजति।

—प्रमाणनयतत्वालोकालकार, अ० ७



व्यावहारिकनय की अपेक्षा फाणित, गुड, मधुर रस वाला कहा गया है और नैश्चयिक-नय की अपेक्षा पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाला कहा गया है। व्यावहारिकनय की अपेक्षा भ्रमर काला है और नैश्चयिकनय से भ्रमर पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाला है।[1] व्यावहारिकनय से तोते के पख हरे हैं और नैश्चयिकनय से पाँच वर्ण वाले, दो गध वाले, पाँच रस वाले और आठ स्पर्श वाले होते हैं। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा मजीठ लाल है, हल्दी पीली है, शख श्वेत है, कुष्ठ (पटवास—कपडे मे सुगध देने वाली पत्ती) सुगधित है, मुर्दा (मृतक शरीर) दुर्गंधित है, नीम (निम्व) तिक्त (तीखा) है, सूँठ कटुय (कडवा) है, कविठ कषैला है, इमली खट्टी है, खाड मधुर है, वज्र कर्कश (कठोर) है, नवनीत (मक्खन) मृदु (कोमल) है, लोह भारी है, उलुकपत्र (बोरडी का पत्ता) हल्का है, हिम (वर्फ) ठडा है, अग्निकाय उष्ण है और तेल स्निग्ध (चिकना) है। किंतु नैश्चयिकनय से इन सब मे पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस और आठ स्पर्श हैं।

व्यावहारिकनय से राख रूक्ष स्पर्श वाली है और नैश्चयिकनय से राख पाँच वर्ण, दो गध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाली है।

व्यावहारिकनय लोक-व्यवहार का अनुसरण करता है इसलिए जिस वस्तु का लोक प्रसिद्ध जो वर्ण होता है वह उसी को मानता है। नैश्चयिकनय वस्तु मे जितने वर्ण हैं उन सबको मानता है। परमाणु आदि मे सब वर्ण, गध, रस, स्पर्श विद्यमान हैं, इसलिए नैश्चयिकनय इन सबको मानता है। तात्त्विक अर्थ का कथन करने वाले विचार को निश्चयनय कहते हैं—यह सिद्धातवादी दृष्टिकोण है। लोकप्रसिद्ध अर्थ को मानने वाले विचार को व्यवहारनय कहते हैं।

विभिन्न दर्शनो के समन्वय का प्रतीक नयवाद

अन्यवादी परस्पर पक्ष और प्रतिपक्ष भाव रखने के कारण एक-दूसरे से ईर्ष्या करते है, परन्तु सम्पूर्ण नयो को एक समान देखने वाले आपके शास्त्रो मे पक्षपात नही है। आपका सिद्धान्त ईर्ष्या से रहित है क्योकि आप नैगमादि सम्पूर्ण नयो को एक समान देखते हैं। जिस प्रकार बिखरे हुए मोतियो को एक सूत्र मे पिरो देने से मोतियो का सुन्दर हार बनकर तैयार हो जाता है। उसी तरह भिन्न-भिन्न नयो को स्याद्वाद रूपी सूत्र मे पिरो देने से सम्पूर्ण नय श्रुतप्रमाण कहे जाते हैं। परस्पर विवाद करते हुए वादी लोग किसी मध्यस्थ के द्वारा न्याय किये जाने पर विवाद करना बन्द करके आपस मे मिल जाते हैं वैसे ही परस्पर विरुद्ध नय सर्वज्ञ भगवान के शासन की शरण लेकर 'स्यात्' शब्द द्वारा विरोध के शान्त हो जाने पर परस्पर मैत्रीभाव से एकत्र रहने लगते है, अत भगवान के शासन के सर्वनयस्वरूप होने से भगवान का शासन सम्पूर्ण दर्शनो से अविरुद्ध है क्योकि प्रत्येक दर्शन नयस्वरूप है। हे भगवन्! आप सम्पूर्ण नय रूप दर्शनो को मध्यस्थ भाव से देखते हैं अत: ईर्ष्यालु नहीं है। क्योकि आप एक पक्ष का आग्रह करके दूसरे पक्ष का तिरस्कार नहीं करते हैं। हे भगवन्! आपने केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को यथार्थ रीति से जान कर—नय और प्रमाण के द्वारा दुर्नयवाद का निराकरण किया है। नयस्वरूप स्याद्वाद का प्ररूपण करने वाला आपका द्वादशाग प्रवचन किसी के द्वारा भी पराभूत नही किया जा सकता।

सभी पदार्थ द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य हैं।

---

१ वावहारियणयस्स कालए भमरे, णेच्छइयणयस्स पचवण्णे दुगधे पचरसे अट्ठफासे पण्णत्ते।
—भगवती, शतक १८, उद्देशक ६, सूत्र २

केवल द्रव्यार्थिकनय को मानने वाले अद्वैतवादी, कोई मीमासक और साख्यवादी सामान्य को ही सत् (वाच्य) कहते हैं। केवल पर्यायार्थिकनय को मानने वाले वौद्ध लोग विशेष को ही सत् मानते हैं। केवल नैगमनय का अनुसरण करने वाले न्याय-वैशेषिक परस्पर भिन्न और निरपेक्ष सामान्य और विशेष दोनो को स्वीकार करते हैं। जो एक अश को लेकर वस्तु के स्वरूप का वर्णन करता है वह वस्तुत ज्ञाननय है। आचाराग मे कहा है कि जिसको सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यग्रूप देखो उसी को सयमरूप देखो और जिसको सयमरुप देखो उसी को सम्यग्रूप देखो।[1] सम्यग् जान कर ही—ग्रहण करने वाले अर्थ मे और अग्रहणीय अर्थ में भी होता है। उसे इहलोक और परलोक से सम्बन्धित अर्थ के विषय मे यत्न करना चाहिए। इस प्रकार जो सद्व्यवहार के ज्ञान के कारण का उपदेश है—वह प्रस्तावत ज्ञाननय है। भगवान ने साधुओ को लक्ष्य करके कहा कि 'जो सभी नयो के नाना प्रकार की वक्तव्यताओ को सुनकर सव नयो से विशुद्ध है वही साधु-चारित्र और ज्ञान के विषय मे अवस्थित है।[2]

दृष्टान्त के तौर पर आत्मा के विषय मे परस्पर विरोधी तत्त्व मिलते हैं। किसी का कहना है कि आत्मा एक है। किसी का कहना है कि आत्मा अनेक है। एकत्व और अनेकतत्व का परस्पर विरोध है ऐसी दशा मे यह वास्तविक है या नहीं और अगर वास्तविक नहीं है तो उसकी सगति कैसे हो सकती है? इस वात की खोज नयवाद ने की और कहा कि व्यक्ति की दृष्टि से आत्मा अनेक है और शुद्ध चैतन्य की दृष्टि से एक। इस प्रकार समन्वय करके नयवाद परस्पर विरोधी मालूम पडने वाले वाक्यो मे एकवाक्यता सिद्ध कर देता है। इसी प्रकार आत्मा के विषय मे नित्यत्व, अनित्यत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व आदि विरोध भी नयवाद द्वारा शान्त किये जा सकते हैं।

नय दृष्टि, विचार सरणि और सापेक्ष अभिप्राय—इन सभी शब्दो का एक अर्थ है। नयों के वर्णन मे यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि किसी भी विषय को लेकर उसका विचार अनेक दृष्टियो से किया जा सकता है। विचार सरणियो के अनेक होने पर भी सक्षेप मे उन्हें सात भागो में विभक्त किया गया है। इनमे उत्तरोत्तर अधिक सूक्ष्मता है। एवंभूतनय सबसे अधिक सूक्ष्म है। जिस विचार मे अर्थ की प्रधानता हो वह अर्थनय और जिसमे शव्द की प्रधानता हो वह शब्दनय है। ऋजुसूत्रनय तक पहले चार अर्थनय हैं और वाकी तीन शब्दनय है।

इस प्रकार नयवाद व्यावहारिक और सैद्धान्तिक तुला पर अवस्थित है तथा विभिन्न दर्शनो के समन्वय की अपूर्व कला है। ✡

परिचय एवं पता

श्रीचन्द चोरडिया न्यायतीर्थ

जैनदर्शन मे शोधकर्ता, लेश्याकोश, क्रिया कोष आदि के सम्पादक।

जैन फिलोसाफिकल सोसायटी

१६/सी० डॉवर लेन, कलकत्ता २९

---

१ ज सम्म ति पासह त मोण ति पासह।
ज मोणं ति पासह तं सम्मं ति पासह। —आयारो ५/३

२ णायमि गिण्हिअव्व अगिण्हिअव्वमि अत्थमि।
जइ अव्वमेव इइजो, उवएसो सो नओ नाम।
सव्वेसिं पि नयाणं बहुविह वत्तव्वय निसामित्ता।
तं सव्वनयविसुद्ध ज चरणगुणट्ठिओ साहू। —अणुओगद्दाराइं, उत्तरार्द्ध



श्रुतज्ञान एवं मतिज्ञान : एक विवेचन

✡ डा० हेमलता बोलिया
सहायक शोध अधिकारी, साहित्य संस्थान, उदयपुर (राज०)

जिस प्रकार शब्द और अनुमान के सम्बन्ध मे दार्शनिको मे मत वैभिन्न्य है उसी प्रकार जैन-दार्शनिको में भी श्रुतज्ञान और मतिज्ञान को लेकर मतैक्य का अभाव है। श्रुतज्ञान एव मतिज्ञान दोनो में ही कार्य-कारण का सम्बन्ध है। दोनो ही जीव मे साथ-साथ रहते है, परोक्ष है। इनका परस्पर स्वरूप इतना अधिक सम्मिश्रित है कि दोनो के मध्य विभाजन रेखा खीचना अत्यन्त कठिन है। इसके अतिरिक्त इसके मूल मे सूत्रकार द्वारा किया हुआ लक्षण भी है। उमास्वाति ने अपने 'तत्त्वार्थसूत्र' मे श्रुतज्ञान का लक्षण 'श्रुत मतिपूर्वकम्'[1] अर्थात् श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, किया है। इस आधार पर कुछ जैनाचार्यो की मान्यता है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का ही एक भेद है, स्वतन्त्र ज्ञान नही। सिद्धसेन का तो यहां तक कहना है कि श्रुतज्ञान को मतिज्ञान से भिन्न मानना ही व्यर्थ है।

अत श्रुतज्ञान मतिज्ञान से भिन्न एक स्वतन्त्र ज्ञान है अथवा नही, यह जैन दार्शनिको के लिए विचार का विषय बन गया है। इस सम्बन्ध मे विचार करने से पूर्व दोनो के स्वरूप को पृथक्-पृथक् जान लेना आवश्यक है क्योकि स्वरूपज्ञान के अभाव मे दोनो के परस्पर एकत्व और भिन्नत्व का ज्ञान नहीं हो सकता है।

मतिज्ञान

सामान्यत बुद्धि के माध्यम से जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। वैसे भी 'मति' शब्द 'मन' धातु मे 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है बुद्धि, तर्क आदि। इस आधार पर भी तर्कपरक ज्ञान ही मतिज्ञान सिद्ध होता है। परन्तु जैन-दार्शनिको ने इसकी विशिष्ट परिभाषाएँ दी हैं।

मतिज्ञान क्या है ? इसका उत्तर देते हुए आचार्य गृद्धपिच्छ ने तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है कि मति, स्मृति, सज्ञा, चिन्ता, अभिनिवोध एक-दूसरे के पर्याय हैं—केवल प्रकृत्या भिन्न दिखाई देते है। यह ज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय व धारणा रूप से चार प्रकार का है।

किन्तु गृद्धपिच्छ के इस लक्षण से मतिज्ञान का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है। अपितु उसके पर्यायो तथा प्रकारो का ज्ञान होता है।

पचसग्रहकार का मत है कि परोपदेश के बिना जो विष, यन्त्र, कूट, पजर तथा बन्ध आदि के विषय मे बुद्धि प्रवृत्त होती है, उसे ज्ञानीजन मतिज्ञान कहते हैं।

इन परिभाषाओ से मतिज्ञान का स्वरूप पूर्णत स्पष्ट नही होता है। इसलिए एक दार्शनिक ने इसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि परार्थ तथा इन्द्रियो के सन्निकर्ष

---

१ तत्त्वार्थसूत्र १।२०



की सचेतावस्था मे होने वाला पदार्थज्ञान मतिज्ञान है अथवा श्रवणेन्द्रियातिरिक्त ज्ञानेन्द्रियजन्य ज्ञान को भी मतिज्ञान कहा जा सकता है।

कतिपय दार्शनिको की इस भ्रान्त धारणा कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का ही एक भेद है, के निराकरण हेतु अधिकाश जैनदार्शनिको ने मतिज्ञान के स्वरूप का विवेचन श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए किया है।

श्रुतज्ञान

सामान्यत श्रुत का अर्थ **'श्रवण-श्रुतम्'** से सुनना है। यह सस्कृत की 'श्रु' धातु से निष्पन्न है। पूज्यपाद ने श्रुत का अर्थ श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर निरुप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनना या सुनना मात्र है वह श्रुत है।[१]

किन्तु 'श्रुत' शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ सुना हुआ होने पर भी जैन-दर्शन मे यह 'श्रुत' शब्द ज्ञान विशेष मे रूढ है।[२] तथा **'मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्'**[3] इस सूत्र से भी ज्ञान शब्द की अनुवृत्ति चली आने के कारण भावरूप श्रवण द्वारा निर्वचन किया गया श्रुत का अर्थ श्रुतज्ञान है। केवल मात्र कानो से सुना गया शब्द ही श्रुत नही है।[४] श्रुत का अर्थ ज्ञान विशेष करने पर जैन-दर्शन मे जो शब्दमय द्वादशाग श्रुत प्रसिद्ध है उसमे विरोध उपस्थित होता है क्योकि श्रुत शब्द से ज्ञान को ग्रहण करने पर शब्द छूट जाते हैं और शब्द को ग्रहण करने पर ज्ञान छूट जाता है तथा दोनो का एक साथ ग्रहण होना भी असम्भव है। इस पर जैनदार्शनिको का कथन है कि उपचार से शब्दात्मक श्रुत भी श्रुतशब्द द्वारा ग्रहण करने योग्य है। इसीलिए सूत्रकार ने शब्द के भेद-प्रभेदो को बताया है। यदि इनको 'श्रुतशब्द' ज्ञान ही इष्ट होता तो ये शब्द के होने वाले भेद प्रभेदो को नही बताते।[५] अत जैनदार्शनिको को मुख्यत तो श्रुत से ज्ञान अर्थ ही इष्ट है, किन्तु उपचार से श्रुत का शब्दात्मक होना भी उनको ग्राह्य है।

उमास्वाति के पूर्व शब्द को सुनकर जो ज्ञान होता था उसे श्रुतज्ञान कहा जाता था और उसमे शब्द के मुख्य कारण होने से उसे भी उपचार मे श्रुतज्ञान कहा जाता था। परन्तु उमास्वाति को श्रुतज्ञान का इतना ही लक्षण इष्ट नही हुआ। इसलिए उन्होने अपने तत्त्वार्थसूत्र मे श्रुतज्ञान का एक-दूसरा ही लक्षण किया है, जिसके अनुसार श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। उमास्वाति के पश्चात्वर्ती जैनदार्शनिको मे नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक को छोडकर प्राय सभी यह मानते हैं कि

---

१ (क) तत्त्वार्थवार्तिकम् १।९।२, पृ० ४४

(ख) तदावरणकर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाण श्रूयते अनेन—शृणोति श्रवणमात्र वा श्रुतम्।
—सर्वार्थसिद्धि १।९, पृ० ६६

(ग) तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालकार ३।९।४, पृ० ३

२ श्रुतशब्दोऽय श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञान विशेषे वर्तते।
—सर्वार्थसिद्धि १।२०, पृ० ८३

३ तत्त्वार्थसूत्र १।२०

४ ... 'ज्ञानमित्यनुवर्तनात्। श्रवणं हि श्रुतज्ञानं न पुन शब्दमात्रकम्।
—तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार ३।२०।२०, पृ० ५९९

५ वही, ३।२०।३, पृ० ५९०



श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है। किन्तु उमास्वाति के इस लक्षण से श्रुतज्ञान का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट नही होता है। इसीलिए जैनदार्शनिको ने पृथक्-पृथक् इसके लक्षण किये हैं।

जिनभद्रगणि के अनुसार इन्द्रिय और मन की सहायता से जो शब्दानुसारी ज्ञान होता है और अपने मे प्रतिमा समान अर्थ का प्रतिपादन करने मे जो समर्थ होता है उसे तो भावश्रुत कहते हैं तथा जो ज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होता है परन्तु शब्दानुसारी नही होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं।[1]

जिनभद्रगणि के इस लक्षण से यद्यपि अकलक सहमत हैं किन्तु इन्होने शब्द पर जिनभद्रगणि से अधिक बल दिया है। अकलक का कहना है कि शब्द योजना से पूर्व जो मति, स्मृति, चिन्ता, ज्ञान होते हैं, वे मतिज्ञान हैं और शब्द योजना होने पर वे ही श्रुतज्ञान हैं।[2] अकलक ने श्रुतज्ञान का यह लक्षण करके अन्य दर्शनो में माने गये उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव, ऐतिह्य और प्रतिमा प्रमाणो का अन्तर्भाव श्रुतज्ञान मे किया है और इनका यह भी कहना है कि शब्द प्रमाण तो श्रुतज्ञान ही है। इनके इस मत का पश्चात्वर्ती जैनदार्शनिको ने समर्थन भी किया परन्तु उनको इनका शब्द पर इतना अधिक बल देना उचित प्रतीत नही हुआ। यद्यपि वे भी इस बात को तो स्वीकार करते हैं कि श्रुतज्ञान मे शब्द की प्रमुखता होती है।

अमृतचन्द्र सूरि ने श्रुतज्ञान का लक्षण करते हुए इतना ही कहा कि मतिज्ञान के बाद स्पष्ट अर्थ की तर्कणा को लिए हुए जो ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है।[3]

किन्तु नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक ने तो श्रुतज्ञान का लक्षण इन सबसे एकदम भिन्न किया है। यह हम पूर्व मे ही सकेत कर चुके हैं कि श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इसको ये स्वीकार नहीं करते हैं। इनके इसको स्वीकार नहीं करने का कारण शायद यह रहा होगा कि श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक रूप से जो दो भेद हैं, उनमे अनक्षरात्मक श्रुत दिगम्बर-परम्परा के अनुसार शब्दात्मक नहीं है और ऊपर श्रुतज्ञान की यह परिभाषा दी गयी है कि शब्द योजना से पूर्व जो मति, स्मृति, चिन्ता, ज्ञान हैं, वे मतिज्ञान हैं और शब्द योजना होने पर वे ही श्रुतज्ञान हैं इस परिभाषा को मानने पर मतिज्ञान और अनक्षरात्मक श्रुत मे कोई भेद नही रह जाता है। इसीलिए इन्होंने श्रुतज्ञान का लक्षण इन सबसे भिन्न किया है। इनके अनुसार मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।[4]

किन्तु श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है इस कथन मे कोई असगति नहीं है क्योकि यह इस दृष्टि

---

१ इदियमणोणिमित्त ज विण्णाण सुताणुसारेण।
णिअयत्थु त्ति समत्थं त भावसुत मति सेस ॥

—विशेषावश्यकभाष्य, भाग १, गाथा ९९

२ ज्ञानमाद्य मति. सज्ञा चिन्ता चाभिनिवोधिकम्।
प्राक् नामयोजनाच्छेष श्रुत शब्दानुयोजनात् ॥

—लघीयस्त्रय, कारिका १०

३ द्रष्टव्य—तत्त्वार्थसार, कारिका २४

४ अत्थादो अत्थतरसुवलभत भणति सुदणाण।

—गोम्मटसार (जीवकाण्ड), गाथा ३९



से कहा गया है कि श्रुतज्ञान होने के लिए शब्द श्रवण आवश्यक है और शब्द श्रवण मति के अन्तर्गत है तथा यह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है। जब शब्द सुनाई देता है तब उसके अर्थ का स्मरण होता है। शब्दश्रवणरूप जो व्यापार है वह मतिज्ञान है, उसके पश्चात् उत्पन्न होने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रुतज्ञान मे मतिज्ञान मुख्य कारण है। क्योंकि मतिज्ञान के होने पर भी जब तक श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम न हो तब तक श्रुतज्ञान नहीं हो सकता है। मतिज्ञान तो इसका बाह्य कारण है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि श्रुतज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम होने पर मन और इन्द्रिय की सहायता से अपने मे प्रतिभासमान अर्थ का प्रतिपादन करने मे समर्थ जो स्पष्ट ज्ञान है, वह श्रुतज्ञान है।

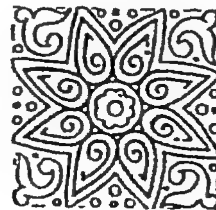
यद्यपि दोनो के स्वरूप विवेचन से ही यह सिद्ध हो जाता है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान का भेद नहीं है। फिर भी जैनदार्शनिको ने पृथक् से इस विषय मे अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है।

जिनभद्रगणि[1] ने अपने 'विशेषावश्यकभाष्य' मे दोनो के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मतिज्ञान का लक्षण भिन्न है और श्रुत का लक्षण भिन्न है। मति कारण है, श्रुत उसका कार्य है। मति के भेद भिन्न हैं और श्रुत के भेद भिन्न हैं। श्रुतज्ञान की इन्द्रिय केवल श्रोत्रेन्द्रिय है और मतिज्ञान की इन्द्रियां सभी हैं, मतिज्ञान मूक है इसके विपरीत श्रुतज्ञान मुखर है इत्यादि।

वैसे भी मतिज्ञान प्राय. वर्तमान विषय का ग्राहक होता है जबकि श्रुतज्ञान त्रिकाल विषयक अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो कालो का ग्राहक होता है। श्रुतज्ञान का मतिज्ञान से एक भेद यह है कि मतिज्ञान तो सिर्फ ज्ञान रूप ही है जबकि श्रुतज्ञान ज्ञान रूप भी है और शब्दरूप भी है, इसे ज्ञाता स्वयं भी जानता है और दूसरो को भी ज्ञान कराता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रुतज्ञान एक स्वतन्त्र ज्ञान है। जिन दार्शनिकों ने इसे मति का ही एक भेद माना है उन्होंने इसके स्वरूप को ठीक से नहीं समझा अन्यथा वे ऐसा नहीं कहते। ✡

पता—
डा० हेमलता बोलिया
C/o श्रीमान् बलवन्तसिंहजी बोलिया
३५, गगा गली (गणेश घाटी)
पो० उदयपुर



---

1 विशेषावश्यकभाष्य भाग १, गाथा ९७



जैन-परम्परा में पूर्वज्ञान : एक विश्लेषण

—डॉ० मुनिश्री नगराज जी, डी० लिट्०

जैन वाड्मय मे ज्ञानियो की दो प्रकार की परम्पराएँ प्राप्त होती है. पूर्वधर और द्वादशाग-वेत्ता। पूर्वों मे समग्र श्रुत या वाक्-परिणेय समग्र ज्ञान का समावेश माना गया है। वे सख्या मे चतुर्दश हैं। जैन श्रमणो मे पूर्वधरो का ज्ञान की दृष्टि से उच्च स्थान रहा है। जो श्रमण चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान धारण करते थे, उन्हे श्रुत-केवली कहा जाता था।

पूर्व-ज्ञान की परम्परा

एक मत ऐसा है, जिसके अनुसार पूर्व ज्ञान भगवान् महावीर से पूर्ववर्ती समय से चला आ रहा था। महावीर के पश्चात् अर्थात् उत्तरवर्ती काल मे जो वाड्मय सर्जित हुआ, उससे पूर्व का होने से वह (पूर्वात्मक-ज्ञान) 'पूर्व' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। उसकी अभिधा के रूप मे प्रयुक्त 'पूर्व' शब्द सम्भवत. इसी तथ्य पर आधारित है।

द्वादशागी से पूर्व पूर्व-रचना

एक दूसरे अभिमत के अनुसार द्वादशागी की रचना से पूर्व गणधरो द्वारा अर्हद्-भाषित तीन मातृका-पदो के आधार पर चतुर्दशशास्त्र रचे गये, जिनमे समग्र श्रुत की अवतारणा की गयी' आवश्यक निर्युक्ति मे ऐसा उल्लेख है।[1]

द्वादशागी से पूर्व—पहले यह रचना की गयी, अत. ये चतुर्दश शास्त्र चतुर्दश पूर्वों के नाम से विख्यात हुए। श्रुतज्ञान के कठिन, कठिनतर और कठिनतम विषय शास्त्रीय पद्धति से इनमे निरूपित हुए। यही कारण है, यह वाड्मय विशेषत विद्वत्प्रोज्य था। साधारण बुद्धिवालो के लिए यह दुर्गम था। अतएव इसके आधार पर सर्वसाधारण के लाभ के लिए द्वादशागी की रचना की गयी।

आवश्यक-निर्युक्ति[2] विवरण मे आचार्य मलयगिरि ने इस सम्बन्ध मे जो लिखा है, पठनीय है।

---

१ धम्मोवाओ पवयणमहवा पुव्वाई देसया तस्स।
सव्व जिणाणा गणहरा चोद्दस पुव्वा उ ते तस्स॥
सामाइयाइया वा वयजीवनिकाय भावणा पढम।
एसो धम्मोवादो जिणेहिं सव्वेहिं उवइट्ठो॥

—आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा २९२-९३

२ ननु पूर्वं तावत् पूर्वाणि भगवद्भिर्गणधरैरुपनिबध्यन्ते, पूर्वकरणात् पूर्वाणीति पूर्वाचार्यप्रदर्शित-व्युत्पत्तिश्रवणात्, पूर्वेषु च सकलवाड्मयस्यावतारो, न खलु तदस्ति यत्पूर्वेषु नाभिहित, तत किं शेषागविरचनेनाग वाह्य विरचनेन वा ? उच्यते, इह विचित्रा जगति प्राणिन तत्र ये दुर्मेधस ते पूर्वाणि नाध्येतुमीशते, पूर्वाणामतिगम्भीरार्थत्वात्, तेषा च दुर्मेधत्वात्, स्त्रीणा पूर्वाध्ययनानधिकार एव तासा तुच्छत्वादिदोषबहुलत्वात्।

—पृ० ४८, प्रकाशक, आगमोदय समिति, बम्बई

दृष्टिवाद मे पूर्वों का समावेश

द्वादशागी के बारहवें भाग का नाम दृष्टिवाद है। वह पाच भागो मे विभक्त है—१. परिकर्म, २. सूत्र, ३ पूर्वानुयोग, ४. पूर्वगत और ५ चूलिका। चतुर्थ विभाग पूर्वगत मे चतुर्दश पूर्वज्ञान का समावेश माना गया है। पूर्वज्ञान के आधार पर द्वादशागी की रचना हुई, फिर भी पूर्व-ज्ञान को छोड देना सम्भवत उपयुक्त नही लगा। यही कारण है कि अन्तत दृष्टिवाद मे उसे सन्निविष्ट कर दिया गया। इससे यह स्पष्ट है कि जैन तत्त्व-ज्ञान के महत्त्वपूर्ण विषय उसमे सूक्ष्म विश्लेपण पूर्वक बडे विस्तार से व्याख्यात थे।

विशेपावश्यकभाष्य मे उल्लेख है कि यद्यपि भूतवाद या दृष्टिवाद में समग्र उपयोग—ज्ञान का अवतरण अर्थात् समग्र वाङ्मय अन्तर्भूत है। परन्तु अल्पबुद्धि वाले लोगो तथा स्त्रियो के उपकार के हेतु उससे शेप श्रुत का निर्गहण हुआ, उसके आधार पर सारे वाङ्मय का सर्जन हुआ।[१]

स्त्रियो के लिए दृष्टिवाद का वर्जन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्त्रियो को दृष्टिवाद का शिक्षण देना वर्जित था। इस सम्बन्ध मे विशेपावश्यकभाष्य मे जो उल्लेख किया गया है, वह इस प्रकार है—स्त्रियाँ तुच्छ, गर्वोन्नत और चचलेन्द्रिय होती हैं। उनकी मेधा अपेक्षाकृत दुर्बल होती है, अत. उत्थान-समुत्थान आदि अतिशय या चमत्कार-युक्त अध्ययन तथा दृष्टिवाद का ज्ञान उनके लिए नही है।[२]

भाष्यकार ने स्त्रियो की किन्ही तथाकथित दुर्बलताओ की ओर लक्ष्य किया है। उनका तुच्छ, गर्ववहुल स्वभाव, चपलेन्द्रियता और बुद्धिमान्द्य भाष्यकार के अनुसार वे हेतु हैं, जिनके कारण उन्हें दृष्टिवाद का शिक्षण नहीं दिया जा सकता।

विशेपावश्यकभाष्य की गाथा ५५ की व्याख्या करते हुए मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने जो लिखा है, उसका साराश इस प्रकार है—स्त्रियो को यदि किसी प्रकार दृष्टिवाद श्रुत करा दिया जाए, तो तुच्छता आदि से युक्त प्रकृति के कारण वे भी दृष्टिवाद की अध्येता हैं, इस प्रकार मन मे अभिमान लाकर पुरुप के परिभव-तिरस्कार आदि मे प्रवृत्त हो जाती हैं। फलत उन्हें दुर्गति प्राप्त होती है। यह जानकर दया के सागर, परोपकार-परायण तीर्थंकरो ने उत्थान, समुत्थान आदि अतिशय चमत्कार-युक्त अध्ययन तथा दृष्टिवाद स्त्रियों को देने का निषेध किया है। स्त्रियो को श्रुत-ज्ञान प्राप्त कराया जाना चाहिए। यह उन पर अनुग्रह करते हुए शेप ग्यारह अग आदि वाङ्मय का सर्जन किया गया।

भाष्यकार आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण तथा वृत्तिकार आचार्य मलधारी हेमचन्द्र ने

---

१ जहवि य भूयावाए सव्वस्स वओगयस्स ओयारो।
निज्जूहणा तहावि हु दुम्मेहे पप्प इत्थी य॥

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ५५१

२ तुच्छा गारववहुला चलिंदिया दुव्वला धिईए य।
इति आइसेसज्झयणा भूयावाओ य नो त्थीण॥

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ५५२



स्त्रियो की प्रकृति, प्रवृत्ति, मेधा आदि की जो आलोचना की है, वह विमर्श सापेक्ष है, उस पर तथ्यान्वेषण की दृष्टि से ऊहापोह किया जाना चाहिए। गर्व, चापल्य तथा बुद्धि-दौर्बल्य या प्रतिभा की मन्दता आदि स्त्री-धर्म ही हैं, यह कहा जाना तो सगत नहीं लगता पर, प्राचीन काल से ही लोक-मान्यता कुछ इसी प्रकार की रही है। गर्व का अभाव, ऋजुता, जितेन्द्रियता और बुद्धि-प्रकर्ष संस्कार—लभ्य भी हैं और अध्यवसाय-गम्य भी। वे केवल पुरुष जात्याश्रित ही हो, यह कैसे माना जा सकता है ? स्त्री जहाँ तीर्थंकर नामकर्म तक का बन्ध कर सकती है अर्थात् स्त्री मे तीर्थंकर पद, जो अध्यात्म-साधना की सर्वोच्च सफल कोटि की स्थिति है, अधिगत करने का क्षमता है, तब उसमे उपर्युक्त दुर्बलताएँ आरोपित कर उसे दृष्टिवाद-श्रुत की अधिकारिणी न मानना एक प्रश्न-चिन्ह उपस्थित करता है।

नारी और दृष्टिवाद : एक और चिन्तन

प्रस्तुत विषय मे कतिपय विद्वानो की एक और मान्यता है। उसके अनुसार पूर्व-ज्ञान लब्ध्यात्मक है। उसे स्वायत्त करने के लिए केवल अध्ययन या पठन ही यथेष्ट नहीं है, अनिवार्यत. कुछ विशेष प्रकार की साधनाएँ भी करनी होती हैं, जिनमे कुछ काल के लिए एकान्त और एकाकी वास भी आवश्यक है। एक विशेष प्रकार के दैहिक सस्थान के कारण स्त्री के लिए यह सम्भव नही है। यही कारण है कि उसे दृष्टिवाद सिखाने की आज्ञा नहीं है, यह हेतु अवश्य विचारणीय है।

पूर्व-रचना . काल-तारतम्य

पूर्वों की रचना के सम्बन्ध मे आचाराग-निर्युक्ति मे एक और सकेत किया गया है, जो पूर्वों के उल्लेखो से भिन्न है। वहाँ सर्वप्रथम आचाराग की रचना का उल्लेख है, उसके अनन्तर अग-साहित्य और इतर वाङ्मय का जब एक ओर पूर्व वाङ्मय की रचना के सम्बन्ध मे प्राय अधिकाश विद्वानो का अभिमत उनके द्वादशागी से पहले रचे जाने का है, वहाँ आचाराग-निर्युक्ति मे आचाराग के सर्जन का उल्लेख एक भेद उत्पन्न करता है। अभी तो उसके अपाकरण का कोई साधक हेतु उपलब्ध नही है। इसलिए इसे यही छोडते हैं, पर इसका निष्कर्ष निकालने की ओर विद्वज्जनो का प्रयास रहना चाहिए।

सभी मतो के परिप्रेक्ष्य मे ऐसा स्पष्ट ध्वनित होता है कि पूर्व वाङ्मय की परम्परा सम्भवत पहले से रही है और वह मुख्यत तत्त्वादि की निरूपक रही है। वह विशेषत' उन लोगो के लिए थी जो स्वभावत दार्शनिक मस्तिष्क और तात्त्विक रुचि-सम्पन्न होते थे। सर्वसाधारण के लिए उसका उपयोग नही था। इसलिए बालको, नारियो, वृद्धो, अल्पमेधावियो या गूढ तत्त्व समझने की न्यून क्षमता वालो के हित के लिए प्राकृत मे धर्म-सिद्धान्त की अवतारणा हुई, जैसी उक्तियाँ अस्तित्व मे आईं।[1]

पूर्व वाङ्मय की भाषा

पूर्व वाङ्मय अपनी अत्यधिक विशालता के कारण शब्द-रूप मे पूरा-का-पूरा व्यक्त किया

---

१ वालस्त्रीवृद्धमूर्खाणा, नृणा चारित्रकाक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्वज्ञ , सिद्धान्त. प्राकृत कृत ॥ —दशवैकालिकवृत्ति, पृ० २०३



जा सके, सम्भव नहीं माना जाता। परम्परया कहा जाता है कि मसी-चूर्ण की इतनी विशाल राशि हो कि अवारी सहित हाथी भी उसमे ढक जाये। उस मसी-चूर्ण को जल मे घोला जाए और उसमे पूर्व लिखे जाएँ, तो भी यह कभी शक्य नहीं होगा कि वे लेख मे बाँधे जा सकें। अर्थात् पूर्वज्ञान समग्रतया शब्द का विषय नहीं है। वह लब्धिरूप आत्मक्षमतानुस्यूत है। पर, इतना सम्भाव्य मानना ही होगा कि जितना भी अंश रहा हो, शब्दरूप मे उसकी अवतरणा अवश्य हुई। तब प्रश्न उपस्थित होता है, किस भाषा मे ऐसा किया गया?

साधारणतया यह मान्यता है कि पूर्व सस्कृत-बद्ध थे। कुछ लोगो का इसमे अन्यथा मत भी है। वे पूर्वों के साथ किसी भी भाषा को नही जोडना चाहते। लब्धिरूप होने से जिस किसी भाषा मे उनकी अभिव्यंजना सभाव्य है। सिद्धान्ततः ऐसा भी सम्भावित हो सकता है। पर, चतुर्दश पूर्वधरो की, दश पूर्वधरो की, क्रमश हीयमान पूर्वधरो की एक परम्परा रही है। उन पूर्वधरो द्वारा अधिगत पूर्व-ज्ञान, जितना भी वाग्-विषयता मे सचीर्ण हुआ, वहाँ किसी न किसी भाषा का अवलम्बन अवश्य ही रहा होगा। यदि सस्कृत मे वैसा हुआ, तो स्वभावत एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जैन मान्यता के अनुसार प्राकृत (अर्द्धमागधी) आदि-भाषा है। तीर्थंकर अर्द्धमागधी मे धर्म-देशना देते हैं। वह श्रोतृ-समुदाय की अपनी-अपनी भाषा मे परिणत हो जाती है। देवता इसी भाषा मे बोलते हैं। अर्थात् वैदिक परम्परा मे विश्वास रखने वालो के अनुसार छन्दस् (वैदिक सस्कृत) का जो महत्व है, जैनधर्म मे आस्था रखने वालो के लिए आर्षत्व के सदर्भ मे प्राकृत का वही महत्व है।

भारत मे प्राकृत-बोलियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से लोक-भाषा के रूप मे व्यवहृत रही हैं। छन्दस् सम्भवत उन्ही बोलियो में से किसी एक पर आधृत शिष्ट रूप है। लौकिक सस्कृत का काल उससे पश्चाद्वर्ती है। इस स्थिति में पूर्व-श्रुत को भाषात्मक दृष्टि से सस्कृत के साथ जोडना कहाँ तक सगत है? कही परवर्ती काल मे ऐसा तो नही हुआ, जब सस्कृत का साहित्यिक भाषा के रूप में सर्वातिशायी गौरव पुनः प्रतिष्ठापन्न हुआ, तब जैन विद्वानो के मन मे भी वैसा आकर्षण जगा हो कि वे भी अपने आदि वाङ्मय का उसके साथ लगाव सिद्ध करें, जिससे उसका माहात्म्य बढ़े, निश्चयात्मक रूप में कुछ नही कहा जा सकता पर सहसा यह मान लेना समाधायक नहीं प्रतीत होता कि पूर्व-श्रुत सस्कृत-निबद्ध रहा।

पूर्वगत एक परिचय

पूर्वगत के अन्तर्गत विपुल साहित्य है। उसके अन्तर्वर्ती चौदह पूर्व हैं—

१ **उत्पादपूर्व**—इसमें समग्र द्रव्यो और पर्यायो के उत्पाद या उत्पत्ति को अधिकृत कर विश्लेषण किया गया है। इसका पद-परिमाण एक करोड है।

२ **अग्रायणीयपूर्व**—अग्र तथा अयन शब्दो के मेल से अग्रायणीय शब्द निष्पन्न हुआ है। अग्र[1] का अर्थ परिमाण और अयन का अर्थ गमन-परिच्छेद या विशदीकरण है। अर्थात् इस पूर्व मे सब द्रव्यों, सब पर्यायों और सब जीवो के परिमाण का वर्णन है। पद-परिमाण छियानवें लाख है।

---

१ अग्र परिमाण तस्य अयन गमन परिच्छेद इत्यर्थ तस्मै हितमग्रायणीयम्, सर्वद्रव्यादिपरिमाण-परिच्छेदकारि—इति भावार्थः तथाहि तत्र सर्वद्रव्याणा सर्वपर्यायाणा सर्वजीवविशेषाणा च परिमाणमुपवर्ण्यते।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, २५१५



३ **वीर्यप्रवादपूर्व**—इसमें सकर्म और अकर्म जीवो के वीर्य[1] का विवेचन है। पद-परिमाण सत्तर लाख है।

४ **अस्ति-नास्ति-प्रवादपूर्व**—लोक मे धर्मास्तिकाय आदि जो हैं और खर-विषाणादि जो नहीं है, उनका इसमे विवेचन है। अथवा सभी वस्तुएं स्वरूप की अपेक्षा से हैं तथा पररूप की अपेक्षा से नही हैं इस सम्बन्ध में विवेचन है।[2] पद-परिमाण साठ लाख है।

५. **ज्ञानप्रवादपूर्व**—इसमे मति आदि पांच प्रकार के ज्ञान का विस्तारपूर्वक विश्लेपण है। पद-परिमाण एक कम एक करोड है।

६. **सत्य-प्रवादपूर्व**—सत्य का अर्थ सयम या वचन[3] है। उनका विस्तारपूर्वक सूक्ष्मता से इसमें विवेचन है। पद-परिमाण छ अधिक एक करोड है।

७ **आत्म-प्रवादपूर्व**—इसमें आत्मा या जीव का नय-भेद से अनेक प्रकार से वर्णन है। पद-परिमाण छब्बीस करोड है।

८ **कर्म-प्रवादपूर्व**—इसमें ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश आदि भेदो की दृष्टि मे विस्तृत वर्णन किया गया है। पद परिमाण एक करोड छियासी हजार है।

९ **प्रत्याख्यानपूर्व**—इसमें भेद-प्रभेद सहित प्रत्याख्यान-त्याग का विवेचन है। पद-परिमाण चौरासी लाख है।

१० **विद्यानुप्रवादपूर्व**—अनेक अतिशय-चमत्कार युक्त विद्याओ का, उनके अनुरूप साधनो का तथा सिद्धियो का वर्णन है। पद-परिमाण एक करोड दस लाख है।

११ **अवन्ध्यपूर्व**—वन्ध्य शब्द का अर्थ निष्फल होता है, निष्फल न होना अवन्ध्य है। इसमें निष्फल न जाने वाले शुभफलात्मक ज्ञान, तप, सयम आदि का तथा अशुद्ध फलात्मक प्रमाद आदि का निरूपण है। पद-परिमाण छब्बीस करोड है।

१२. **प्राणायुप्रवादपूर्व**—इसमे प्राण अर्थात् पांच इन्द्रिय, मानस आदि तीन वल, उच्छ्वास-निश्वास तथा आयु का भेद-प्रभेद सहित विश्लेषण है। पद-परिमाण एक करोड छप्पन लाख है।

१३. **क्रियाप्रवादपूर्व**—इसमे कायिक आदि क्रियाओ का, सयमात्मक क्रियाओ का तथा स्वच्छन्द क्रियाओं का विशाल-विपुल विवेचन है। पद-परिमाण नौ करोड है।

१४ **लोकविन्दुसारपूर्व**—इसमे लोक मे या श्रुत-लोक मे अक्षर के ऊपर लगे विन्दु की

---

१ अन्तरग शक्ति, सामर्थ्य, पराक्रम।

२. यद वस्तु लोकेस्ति धर्मास्तिकायादि, यच्च नास्ति खरशृगादि तत्प्रवदतीत्यस्तिनास्ति प्रवादम् अथवा सर्वं वस्तु स्वरूपेणास्ति, पररूपेण नास्तीति अस्तिनास्ति प्रवादम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

३ सत्य सयमो वचन वा तत्सत्य सयम वचन वा प्रकर्षेण सप्रपचम वदतीति सत्यप्रवादम्।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५



तरह जो सर्वोत्तम तथा सर्वाक्षर-सन्निपातलब्धि हेतुक है, उस ज्ञान का वर्णन है।[१] पद-परिमाण साढ़े बारह करोड है।

चूलिकाएँ

चूलिकाएँ पूर्वों का पूरक साहित्य है। उन्हे परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत तथा अनुयोग (दृष्टिवाद के भेदो) मे उक्त और अनुक्त अर्थ की सग्राहिका ग्रथ-पद्धतियाँ[२] कहा गया है। दृष्टिवाद के इन भेदो मे जिन-जिन विषयो का निरूपण हुआ है, उन-उन विषयो मे विवेचित महत्त्वपूर्ण अर्थो-तथ्यो तथा कतिपय अविवेचित अर्थों—प्रसगो का इन चूलिकाओ मे विवेचन किया गया है। इन चूलिकाओ का पूर्व वाङ्मय मे विशेष महत्त्व है। ये चूलिकाएँ श्रुत रूपी पर्वत पर चोटियो की तरह सुशोभित हैं।

चूलिकाओ की सख्या

पूर्वगत के अन्तर्गत चतुर्दश पूर्वो मे प्रथम चार पूर्वों की चूलिकाएँ हैं। प्रश्न उपस्थित होता है, दृष्टिवाद के भेदो मे पूर्वगत एक भेद है। उसमे चतुर्दश पूर्वों का समावेश है। उन पूर्वों मे से चार—उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्य-प्रवाद तथा अस्ति-नास्ति-प्रवाद पर चूलिकाएँ हैं। इस प्रकार इनका सम्बन्ध चारो पूर्वो से होता है। तब इन्हें परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत और अनुयोग मे उक्त, अनुक्त अर्थोविपयो की जो सग्राहिका कहा गया है, वह कैसे सगत है ?

विभाजन या व्यवस्थापन की दृष्टि से पूर्वों को दृष्टिवाद के भेदो के अन्तर्गत पूर्वगत मे लिया गया है। वस्तुत उनमे समग्र श्रुत की अवतारणा है, अत परिकर्म, सूत्र तथा अनुयोग के विषय भी मौलिकतया उनमे अनुस्यूत हैं ही।

चार पूर्वों के साथ जो चूलिकाओ का सम्बन्ध है, उसका अभिप्राय है कि इन चार पूर्वों के सदर्भ मे इन चूलिकाओ द्वारा दृष्टिवाद के सभी विषयों का जो-जो वहाँ विस्तृत या सक्षिप्त रूप मे व्याख्यात हैं, कुछ कम व्याख्यात हैं, कुछ केवल साकेतिक हैं, विशदरूपेण व्याख्यात नही हैं, सग्रह हैं। इसका आशय है कि वैसे चूलिकाओ मे दृष्टिवाद के सभी विषय सामान्यत सकेतित हैं, पर विशेषत जो विषय परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत तथा अनुयोग मे विशदतया व्याख्यात नही है, उनका इनमे प्रस्तुतीकरण है। पहले पूर्व की चार, दूसरे की बारह, तीसरे की आठ तथा चौथे की दश चूलिकाएँ मानी गयी हैं। इस प्रकार कुल ४+१२+८+१०=३४ चूलिकाएँ हैं।

वस्तु वाङ्मय

चूलिकाओं के साथ-साथ 'वस्तु' सज्ञक एक और वाङ्मय है, जो पूर्वों का विश्लेपक या

---

१ लोके जगति श्रुत-लोके वा अक्षरस्योपरि बिन्दुरिव सार सर्वोत्तम सर्वाक्षरसन्निपातलब्धि-हेतुत्वात् लोकबिन्दुसारम् ।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१५

२ यथा मेरो चूला, तत्र चूला इव दृष्टिवादे परिकर्म सूत्रपूर्वानुयोगोक्तानुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थ-पद्धतय. ।

—वही पृ० २५१५



या विवर्धक है। इसे पूर्वान्तर्गत अध्ययन-स्थानीय ग्रन्थो के रूप मे माना गया है।[1] श्रोताओ की अपेक्षा से सूक्ष्म जीवादि भाव-निरूपण मे भी 'वस्तु' शब्द अभिहित है।[2] ऐसा भी माना जाता है, सब दृष्टियो की उसमे अवतारणा है।[3]

वस्तुओ की सख्या

प्रथम पूर्व मे दश, दूसरे मे चौदह, तीसरे मे आठ, चौथे मे अठारह, पाँचवें मे बारह, छठे मे दो, सातवें मे सोलह, आठवें मे तीस, नौवे मे बीस, दशवें मे पन्द्रह, ग्यारहवें मे बारह, बारहवें मे तेरह, तेरहवें मे तीस तथा चौदहवें पूर्व मे पच्चीस वस्तुएँ हैं, इस प्रकार कुल १०+१४+८+१८+१२+२+१६+३०+२०+१५+१२+१३+३०+२५=२२५ दो सौ पच्चीस वस्तुएँ हैं। विस्तृत विश्लेषण यहाँ सापेक्ष नही है। पूर्व वाङ्मय का सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत निबन्ध का विषय है।

जहा सूई ससुत्ता, पडिआ वि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, ससारे न विणस्सइ॥

× × ×

जावतऽविज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसभवा।
लुप्पति बहुसो मूढा, ससारम्मि अणतए॥

---

१ पूर्वान्तर्गतेषु अध्ययनस्थानीयेषु ग्रन्थ विशेषेषु।

—अभिधान राजेन्द्र, षष्ठ भाग, पृ० ८७९

२ श्रोत्रापेक्षया सूक्ष्मजीवादि भावकथने।

३ सर्वं दृष्टीना तत्र समवतारस्तस्य जनके।

—अभिधान राजेन्द्र, चतुर्थ भाग, पृ० २५१६



श्री जैन दिवाकर स्मृति-निबन्ध प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कार प्राप्त

सदाचार के शाश्वत मानदण्ड और जैनधर्म

✡ डा० सागरमल जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०
[दर्शन विभाग, हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल]

सदाचार और दुराचार का अर्थ

जब हम सदाचार के किसी शाश्वत मानदण्ड को जानना चाहते हैं, तो सबसे पहले हमे यह देखना होगा कि सदाचार का तात्पर्य क्या है और किसे हम सदाचार कहते हैं ? शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से सदाचार शब्द सत्+आचार इन दो शब्दो से मिलकर बना है, अर्थात् जो आचरण सत् (Right) या उचित है वह सदाचार है। लेकिन फिर भी यह प्रश्न बना रहता है कि सत् या उचित आचरण क्या है ? यद्यपि हम आचरण के कुछ प्रारूपो को सदाचार और कुछ प्रारूपो को दुराचार कहते हैं किन्तु मूल प्रश्न यह है कि वह कौन-सा तत्त्व है जो किसी आचरण को सदाचार या दुराचार बना देता है। हम अक्सर यह कहते हैं कि झूठ बोलना, चोरी करना, हिंसा करना, व्यभिचार करना आदि दुराचार हैं और करुणा, दया, सहानुभूति, ईमानदारी, सत्यवादिता, आदि सदाचार हैं, किन्तु वह आधार कौन-सा है, जो प्रथम प्रकार के आचरणो को दुराचार और दूसरे प्रकार के आचरणो को सदाचार बना देता है। चोरी या हिंसा क्यो दुराचार है और ईमानदारी या सत्यवादिता क्यो सदाचार हैं ? यदि हम सत् या उचित के अंग्रेजी पर्याय राईट (Right) पर विचार करते हैं तो Right शब्द लेटिन शब्द Rectus से बना है, जिसका अर्थ होता है नियमानुसार, अर्थात् जो आचरण नियमानुसार है, वह सदाचार है और जो नियमविरुद्ध है, वह दुराचार है। यहाँ नियम से तात्पर्य सामाजिक एव धार्मिक नियमो या परम्पराओ से है। भारतीय परम्परा मे भी सदाचार शब्द की ऐसी ही व्याख्या मनुस्मृति मे उपलब्ध होती है, मनु लिखते हैं—

तस्मिन् देशे य आचार पारम्पर्यक्रमागत ।
वर्णाना सान्तरालाना स सदाचार उच्यते ॥

अर्थात् जिस देश, काल और समाज मे जो आचरण परम्परा से चला आता है वही सदाचार कहा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो परम्परागत आचार के नियम है, उनका पालन करना ही सदाचार है। दूसरे शब्दो मे जिस देश, काल और समाज मे आचरण की जो परम्पराएँ स्वीकृत रही हैं, उन्ही के अनुसार आचरण सदाचार कहा जावेगा। किन्तु यह दृष्टिकोण समुचित प्रतीत नही होता है। वस्तुत. कोई भी आचरण किसी देश, काल और समाज मे आचरित एवं अनुमोदित होने से सदाचार नही बन जाता।

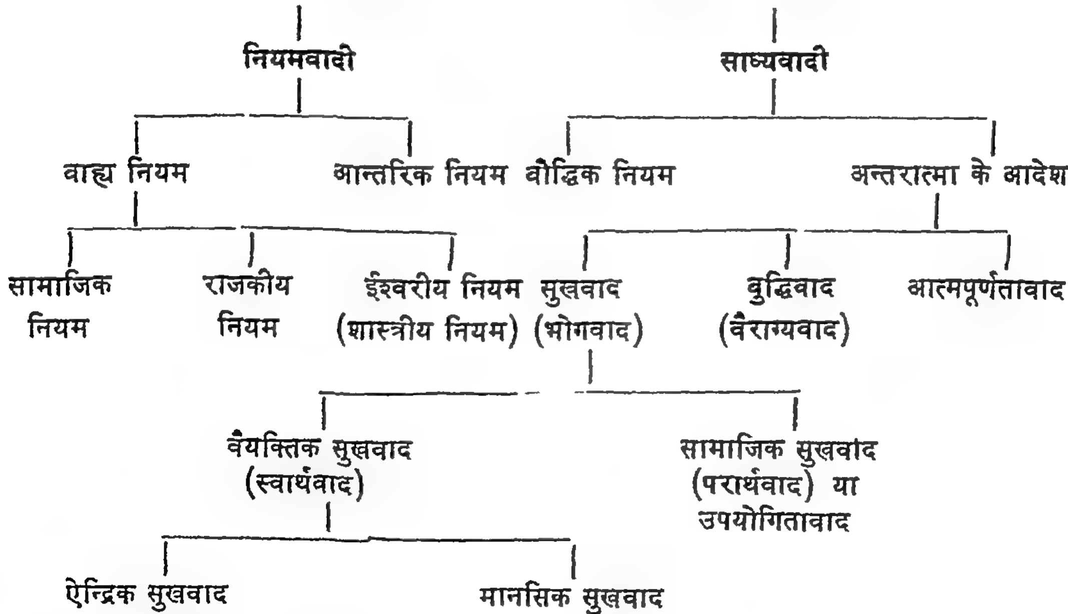
कोई आचरण केवल इसलिए सत् या उचित नही होता है कि वह किसी समाज मे स्वीकृत होता रहा है, अपितु वास्तविकता तो यह है कि इसलिए स्वीकृत होता रहा है क्योंकि वह सत् है। किसी आचरण का सत् या असत् होना अथवा सदाचार या दुराचार होना स्वय उसके स्वरूप पर निर्भर होता है न कि उसके आचरित अथवा अनाचरित होने पर। महाभारत मे दुर्योधन ने कहा था—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति ।
जानामि अधर्म न च मे निवृत्ति ॥

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ किन्तु उस ओर प्रवृत्त नही होता, उसका आचरण नही करता।



मैं अधर्म को भी जानता हूँ परन्तु उससे निवृत्त नही होता हूँ। अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि किसी आचरण का सदाचार या दुराचार होना इस बात पर निर्भर नही है कि वह किसी वर्ग या समाज द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत होता रहा है। सदाचार और दुराचार की मूल्य-वत्ता उनके परिणामो पर या उस साध्य पर निर्भर होती है, जिसके लिए उनका आचरण किया जाता है। आचरण की मूल्यवत्ता, स्वय आचरण पर ही नही, अपितु उसके साध्य या परिणाम पर निर्भर होती है। किसी आचरण की मूल्यवत्ता का निर्धारिण उसके समाज पर पडने वाले प्रभाव के आधार पर भी किया जाता है, फिर भी उसकी मूल्यवत्ता का अन्तिम आधार तो कोई आदर्श या साध्य ही होता है। अत जब हम सदाचार के मानदण्ड की बात करते हैं तो हमे उस परम मूल्य या साध्य पर ही विचार करना होगा जिसके आधार पर किसी कर्म को सदाचार या दुराचार की कोटि मे रखा जाता है। वस्तुतः मानव-जीवन का परम साध्य ही वह तत्व है, जो सदाचार का मानदण्ड या कसौटी बनता है। पाश्चात्य आचार दर्शनो मे सदाचार और दुराचार के जो मान-दण्ड स्वीकृत रहे हैं उन्हे मोटे-मोटे रूप से दो भागो मे बाँटा जाता है—१ नियमवादी और २ साध्यवादी। नियमवादी परम्परा सदाचार और दुराचार का मानदण्ड सामाजिक अथवा धार्मिक नियमो को मानती है, जबकि साध्यवादी परम्परा सुख अथवा आत्म-पूर्णता को ही सदाचार और दुराचार की कसौटी मानती है।



जैन-दर्शन मे सदाचार का मापदण्ड

अब मूल प्रश्न यह है कि वह परम मूल्य या चरम साध्य क्या है? जैन-दर्शन मानव के चरम साध्य के बारे मे स्पष्ट है। उसके अनुसार व्यक्ति का चरम साध्य मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति है। वह यह मानता है कि जो आचरण निर्वाण या मोक्ष की दिशा मे ले जाता है, वही सदाचार की कोटि मे आता है। दूसरे शब्दो मे जो आचरण मुक्ति का कारण है वह सदाचार है और जो आचरण बन्धन का कारण है, वह दुराचार है। किन्तु यहाँ पर हमे यह भी स्पष्ट करना होगा कि

उसका मोक्ष अथवा निर्वाण से क्या तात्पर्य है ? जैनधर्म के अनुसार निर्वाण या मोक्ष स्वभाव-दशा एवं आत्मपूर्णता की प्राप्ति है। वस्तुत. हमारा जो निज स्वरूप है उसे प्राप्त कर लेना अथवा हमारी बीजरूप क्षमताओं को विकसित कर आत्मपूर्णता की प्राप्ति ही मोक्ष है। उसकी पारम्परिक शब्दावली मे परभाव से हटकर स्वभाव मे स्थित हो जाना ही मोक्ष है। यही कारण था कि जैन-दार्शनिको ने धर्म की एक विलक्षण एव महत्वपूर्ण परिभाषा दी है। उनके अनुसार धर्म वह है जो वस्तु का निज स्वभाव है (वत्थुसहावो धम्मो)। व्यक्ति का धर्म या साध्य वही हो सकता है जो उसकी चेतना या आत्मा का निज स्वभाव है और जो हमारा निज स्वभाव है उसी को पा लेना ही मुक्ति है। अत उस स्वभाव दशा की ओर ले जाने वाला आचरण ही सदाचरण कहा जा सकता है।

पुन प्रश्न यह उठता है कि हमारा स्वभाव क्या है ? भगवती सूत्र मे गौतम ने भगवान महावीर के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित किया था। वे पूछते हैं—हे भगवन् ! आत्मा का निज स्वरूप क्या है और आत्मा का साध्य क्या है ? महावीर ने उनके इन प्रश्नो का जो उत्तर दिया था, वह आज भी समस्त जैन आचार-दर्शन मे किसी कर्म के नैतिक मूल्याकन का आधार है। महावीर ने कहा था—आत्मा समत्व स्वरूप है और उस समत्व स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही आत्मा का साध्य है। दूसरे शब्दो मे समता या समभाव स्वभाव है और विषमता विभाव है और जो विभाव से स्वभाव की दिशा मे अथवा विषमता से समता की दिशा मे ले जाता है वही धर्म है, नैतिकता है, सदाचार है। अर्थात् विषमता से समता की ओर ले जाने वाला आचरण ही सदाचार है। संक्षेप में जैनधर्म के अनुसार सदाचार या दुराचार का शाश्वत मानदण्ड समता एव विषमता अथवा स्वभाव एव विभाव है। स्वभाव दशा से फलित होने वाला आचरण सदाचार है और विभाव-दशा या पर-भाव से फलित होने वाला आचरण दुराचार है।

यहाँ हमे समता के स्वरूप पर भी विचार कर लेना होगा। यद्यपि द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से समता का अर्थ परभाव से हटकर शुद्ध स्वभाव दशा मे स्थित हो जाना है किन्तु अपनी विविध अभिव्यक्तियो की दृष्टि से विभिन्न स्थितियो मे इसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से समता या समभाव का अर्थ राग-द्वेष से ऊपर उठकर वीतरागता या अनासक्त भाव की उपलब्धि है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक समत्व का अर्थ है समस्त इच्छाओ, आकाक्षाओ से रहित मन की शान्त एव विक्षोभ (तनाव) रहित अवस्था। यही समत्व जब हमारे सामुदायिक या सामाजिक जीवन मे फलित होता है तो इसे हम अहिंसा के नाम से अभिहित करते हैं। वैचारिक दृष्टि से इसे हम अनाग्रह या अनेकान्त दृष्टि कहते हैं। जब हम इसी समत्व के आर्थिक पक्ष पर विचार करते हैं तो अपरिग्रह के नाम से पुकारते हैं—साम्यवाद एव न्यासी सिद्धान्त इसी अपरिग्रह-वृत्ति की आधुनिक अभिव्यक्तियाँ हैं। यह समत्व ही मानसिक क्षेत्र मे अनासक्ति या वीतरागता के रूप मे, सामाजिक क्षेत्र मे अहिंसा के रूप मे, वैचारिकता के क्षेत्र से अनाग्रह या अनेकान्त के रूप मे और आर्थिक क्षेत्र मे अपरिग्रह के रूप मे अभिव्यक्त होता है। अत. समत्व को निर्विवाद रूप से सदाचार का मानदण्ड स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु 'समत्व' को सदाचार का मानदण्ड स्वीकार करते हुए भी हमें उसके विविध पहलुओ पर विचार तो करना ही होगा क्योकि सदाचार का सम्बन्ध अपने साध्य के साथ-साथ उन साधनो से भी होता है जिसके द्वारा हम उसे पाना चाहते हैं और जिस रूप मे वह हमारे व्यवहार मे और सामुदायिक जीवन में प्रकट होता है।

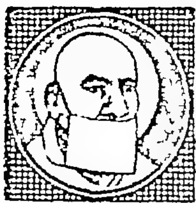
जहाँ तक व्यक्ति के चैत्तसिक या आन्तरिक समत्व का प्रश्न है हम उसे वीतराग मनोदशा या अनासक्त चित्तवृत्ति की साधना मान सकते हैं। फिर भी समत्व की साधना का यह रूप हमारे



वैयक्तिक एव आन्तरिक जीवन से अधिक सम्बन्धित है। वह व्यक्ति की मनोदशा का परिचायक है। यह ठीक है कि व्यक्ति की मनोदशा का प्रभाव उसके आचरण पर भी होता है और हम व्यक्ति के आचरण का मूल्याकन करते समय उसके इस आन्तरिक पक्ष पर विचार भी करते हैं किन्तु फिर भी सदाचार या दुराचार का यह प्रश्न हमारे व्यवहार के बाह्य पक्ष एव सामुदायिकता के साथ अधिक जुडा हुआ है। जब भी हम सदाचार एव दुराचार के किसी मानदण्ड की बात करते हैं तो हमारी दृष्टि व्यक्ति के आचरण के बाह्य पक्ष पर अथवा उस आचरण का दूसरो पर क्या प्रभाव या परिणाम होता है, इस बात पर अधिक होती है। सदाचार या दुराचार का प्रश्न केवल कर्ता के आन्तरिक मनोभावो या वैयक्तिक जीवन से तो सम्बन्धित नही है, वह आचरण के बाह्य प्रारूप तथा हमारे सामाजिक जीवन में उस आचरण के परिणामो पर भी विचार करता है। यहाँ हमें सदाचार और दुराचार की व्याख्या के लिए कोई ऐसी कसौटी खोजनी होगी जो आचार के बाह्य पक्ष अथवा हमारे व्यवहार के सामाजिक पक्ष को भी अपने मे समेट सके। सामान्यतया भारतीय चिन्तन मे इस सम्बन्ध मे एक सर्वमान्य दृष्टिकोण यह है कि परोपकार ही पुण्य है और पर-पीडा ही पाप है। तुलसीदास ने इसे निम्न शब्दो मे प्रकट किया है—

'परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर-पीड़ा सम नहीं अधमाई॥'

अर्थात् वह आचरण जो दूसरो के लिए कल्याणकारी या हितकारी है सदाचार है, पुण्य है और जो दूसरो के लिए अकल्याणकर है, अहितकर है, पाप है, दुराचार है। जैनधर्म मे सदाचार के एक ऐसे ही शाश्वत मानदण्ड की चर्चा हमे आचाराग सूत्र मे उपलब्ध होती है। वहाँ कहा गया है—'भूतकाल मे जितने अर्हंत हो गये हैं, वर्तमान काल मे जितने अर्हंत हैं और भविष्य मे जितने अर्हंत होंगे वे सभी यह उपदेश करते हैं कि सभी प्राणी, सभी भूतो, सभी जीवो और सभी सत्वो को किसी प्रकार का परिताप, उद्वेग या दुःख नहीं देना चाहिए, न किसी का हनन करना चाहिए। यही शुद्ध नित्य और शाश्वत धर्म है।' किन्तु मात्र दूसरे की हिंसा नही करने के रूप मे अहिंसा के निषेधात्मक पक्ष का या दूसरो के हित-साधन को ही सदाचार की कसौटी नही माना जा सकता है। ऐसी अवस्थाएँ सम्भव हैं कि जबकि मेरे असत्य सम्भाषण एव अनैतिक आचरण के द्वारा दूसरों का हित-साधन होता हो, अथवा कम से कम किसी का अहित न होता हो, किन्तु क्या हम ऐसे आचरण को सदाचार कहने का साहस कर सकेंगे। क्या वेश्यावृत्ति के माध्यम से अपार धनराशि को एकत्र कर उसे लोकहित के लिए व्यय करने मात्र से कोई स्त्री सदाचारी की कोटि मे आ सकेगी? क्या यौन-वासना की सतुष्टि के वे रूप जिसमे किसी भी दूसरे प्राणी की प्रकट मे हिंसा नही होती है, दुराचार की कोटि में नही आवेंगे? सूत्रकृताग मे सदाचारिता का एक ऐसा ही दावा अन्य तीर्थिको द्वारा प्रस्तुत भी किया गया था, जिसे भ० महावीर ने अमान्य कर दिया था। क्या हम उस व्यक्ति को, जो डाके डालकर उस सम्पत्ति को गरीबो में वितरित कर देता है, सदाचारी मान सकेंगे? एक चोर और एक सन्त दोनो ही व्यक्ति को सम्पत्ति के पाश से मुक्त करते हैं फिर भी दोनो समान कोटि के नही माने जाते। वस्तुत सदाचार या दुराचार का निर्णय केवल एक ही आधार पर नही होता है। उसमे आचरण का प्रेरक आन्तरिक पक्ष अर्थात् कर्ता की मनोदशा और आचरण का बाह्य परिणाम अर्थात् सामाजिक जीवन पर उसका प्रभाव दोनो ही विचारणीय हैं। आचार की शुभाशुभता विचार पर और विचार या मनोभावो की शुभाशुभता स्वय व्यवहार पर निर्भर करती है। सदाचार या दुराचार का मानदण्ड तो ऐसा होना चाहिए जो इन दोनो को समाविष्ट कर सके।



साधारणतया जैनधर्म सदाचार का शाश्वत मानदण्ड अहिंसा को स्वीकार करता है, किन्तु यहाँ हमे यह विचार करना होगा कि क्या केवल किसी को दुख या पीडा नही देना या किसी की हत्या नही करना, मात्र यही अहिंसा है। यदि अहिंसा की मात्र इतनी ही व्याख्या है, तो फिर वह सदाचार और दुराचार का मानदण्ड नही बन सकती, यद्यपि जैन आचार्यो ने सदैव ही उसे सदाचार का एकमात्र आधार प्रस्तुत किया है। आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा है कि अनृतवचन, स्तेय मैथुन, परिग्रह आदि पापो के जो भिन्न-भिन्न नाम दिये गये वे तो केवल शिष्य-बोध के लिए हैं, मूलत तो वे सब हिंसा ही है (पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)। वस्तुत जैन आचार्यों ने अहिंसा को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य मे विचारा है। वह आन्तरिक भी है और बाह्य भी। उसका सम्बन्ध व्यक्ति से भी है और समाज से भी। हिंसा को जैन-परम्परा मे स्व की हिंसा और पर की हिंसा ऐसे दो भागो मे बाँटा गया है। जब वह हमारे स्व-स्वरूप या स्वभाव दशा का घात करती है तो स्व-हिंसा है और जब दूसरो के हितो को चोट पहुँचाती है, तो वह पर की हिंसा है। स्व की हिंसा के रूप मे वह आन्तरिक पाप है, तो पर की हिंसा के रूप मे वह सामाजिक पाप। किन्तु उसके ये दोनों रूप दुराचार की कोटि मे ही आते हैं। अपने इस व्यापक अर्थ मे हिंसा को दुराचार की और अहिंसा को सदाचार की कसौटी माना जा सकता है।

सदाचार के शाश्वत मानदण्ड की समस्या

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या सदाचार का कोई शाश्वत मानदण्ड हो सकता है। वस्तुत सदाचार और दुराचार के मानदण्ड का निश्चय कर लेना इतना सहज नही है। यह सम्भव है कि जो आचरण किसी परिस्थिति विशेष मे सदाचार कहा जाता है, वही दूसरी परिस्थिति मे दुराचार बन जाता है और जो सामान्यतया दुराचार कहे जाते हैं वे किसी परिस्थिति विशेष सदाचार हो जाते हैं। शील रक्षा हेतु की जाने वाली आत्महत्या सदाचार की कोटि मे आ जाती है जबकि सामान्य स्थिति मे वह अनैतिक (दुराचार) मानी जाती है। जैन आचार्यों का तो यह स्पष्ट उद्घोष है—**'जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा'** अर्थात् आचार के जो प्रारूप सामान्यतया बन्धन के कारण हैं, वे ही परिस्थिति विशेष मे मुक्ति के साधन बन जाते हैं और इसी प्रकार सामान्य स्थिति मे जो मुक्ति के साधन है, वे ही किसी परिस्थिति विशेष मे बन्धन के कारण बन जाते है। प्रशमरति प्रकरण मे उमास्वाति का कथन है—

देश काल पुरुषमवस्थामुपघात, शुद्ध परिणामान्।
प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्यं नैकांतात्कल्प्यते कल्प्यम्॥

अर्थात् एकान्त रूप से न तो कोई कर्म आचरणीय होता है और न एकान्त रूप से अनाचरणीय होता है, वस्तुत. किसी कर्म की आचरणीयता और अनाचरणीयता देश, काल, व्यक्ति, परिस्थिति और मन स्थिति पर निर्भर होती है। महाभारत मे भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया गया है, उसमे लिखा है—

स एव धर्म. सोऽधर्मो देश काले प्रतिष्ठित।
आदानमनृत हिंसा धर्मोह्यवस्थिकस्मृत॥

—महाभारत शान्तिपर्व ६३।११

अर्थात् जो किसी देश और काल मे धर्म (सदाचार) कहा जाता है, वही किसी दूसरे देश और काल मे अधर्म (दुराचार) बन जाता है और जो हिंसा, झूठ, चौर्यकर्म आदि सामान्य अवस्था



मे अधर्म (दुराचार) कहे जाते हैं, वही किसी परिस्थिति विशेष मे धर्म बन जाते हैं। वस्तुत. कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं, जब सदाचार, दुराचार की कोटि मे और दुराचार, सदाचार की कोटि मे होता है। द्रौपदी का पाँचो पाडवो के साथ जो पति-पत्नी का सम्बन्ध था फिर भी उसकी गणना सदाचारी सती स्त्रियो मे की जाती है, जबकि वर्तमान समाज मे इस प्रकार का आचरण दुराचार ही कहा जावेगा। किन्तु क्या इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सदाचार-दुराचार का कोई शाश्वत मानदण्ड नही हो सकता है। वस्तुत सदाचार या दुराचार के किसी मानदण्ड का एकान्त रूप से निश्चय कर पाना कठिन है। जो बाहर नैतिक दिखाई देता है, वह भीतर से अनैतिक हो सकता है और जो बाहर से अनैतिक दिखाई देता है, वह भीतर से नैतिक हो सकता है। एक ओर तो व्यक्ति की आन्तरिक मनोवृत्तियाँ और दूसरी ओर जागतिक परिस्थितियाँ किसी कर्म की नैतिक मूल्यवत्ता को प्रभावित करती रहती है। अत इस सम्बन्ध मे कोई एकान्त नियम कार्य नही करता है। हमे उन सब पहलुओ पर भी ध्यान देना होता है जो कि किसी कर्म की नैतिक मूल्यवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। जैन विचारको ने सदाचार या नैतिकता के परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील अथवा सापेक्ष और निरपेक्ष दोनो पक्षो पर विचार किया है।

सदाचार के मानदण्ड की परिवर्तनशीलता का प्रश्न

वस्तुत. सदाचार के मानदण्डो मे परिवर्तन देशिक और कालिक आवश्यकता के अनुरूप होता है। महाभारत मे कहा गया है कि—

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युग ह्रासानुरूपतः॥

—शान्ति पर्व २५९।८

युग के ह्रास के अनुरूप सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के धर्म अलग-अलग होते हैं। यह परिस्थितियो के परिवर्तन से होने वाला मूल्य परिवर्तन एक प्रकार का सापेक्षिक परिवर्तन ही होगा। यह सही है कि मनुष्य को जिस विश्व मे जीवन जीना होता है वह परिस्थिति निरपेक्ष नहीं है। देशिक एवं कालिक परिस्थितियो के परिवर्तन हमारी सदाचार सम्बन्धी धारणाओ को प्रभावित करते हैं। देशिक और कालिक परिवर्तन के कारण यह सम्भव है कि जो कर्म एक देश और काल मे विहित हो, वही दूसरे देश और काल मे अविहित हो जावें। अष्टक प्रकरण मे कहा गया है—

उत्पद्यते ही साऽवस्था देशकालाभयान् प्रति।
यस्यामकार्यं कार्यं स्यात् कर्म कार्यं च वर्जयेत॥

—अष्टक प्रकरण २७-५ टीका

देशिक और कालिक स्थितियो के परिवर्तन से ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसमे कार्य अकार्य की कोटि मे और अकार्य कार्य की कोटि मे आ जाता है, किन्तु यह अवस्था सामान्य अवस्था नही, अपितु कोई विशिष्ट अवस्था होती है, जिसे हम आपवादिक अवस्था के रूप मे जानते है, किन्तु आपवादिक स्थिति मे होने वाला यह परिवर्तन सामान्य स्थिति मे होने वाले मूल्य परिवर्तन से भिन्न स्वरूप का होता है। उसे वस्तुत मूल्य परिवर्तन कहना भी कठिन है। इसमे जिन मूल्यो का परिवर्तन होता है, वे मुख्यत. साधन मूल्य होते हैं। क्योंकि साधन मूल्य आचरण



से सम्वन्धित होते हैं और आचरण परिस्थिति निरपेक्ष नही हो सकता अत. उसमे परिस्थितियो के परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार साधनपरक आचरण के नैतिक मानदण्ड परिवर्तित होते रहते हैं।

दूसरे, व्यक्ति को समाज मे जीवन जीना होता है और समाज परिस्थिति निरपेक्ष नही होता है अत सामाजिक नैतिकता अपरिवर्तनीय नही कही जा सकती, उसमे देशकालगत परिवर्तनो का प्रभाव पडता है किन्तु उसकी यह परिवर्तनशीलता भी देशकाल सापेक्ष ही होती है। वस्तुत किसी परिस्थिति मे किसी एक साध्य का नैतिक मूल्य इतना प्रधान हो जाता है कि उसकी सिद्धि के लिए किसी दूसरे नैतिक मूल्य का निषेध आवश्यक हो जाता है जैसे अन्याय के प्रतिकार के लिए हिंसा। किन्तु यह निषेध परिस्थिति विशेष तक ही सीमित रहता है। उस परिस्थिति के सामान्य होने पर धर्म पुन धर्म वन जाता है और अधर्म, अधर्म वन जाता है। वस्तुत आपवादिक अवस्था मे कोई एक मूल्य इतना प्रधान प्रतीत होता है कि उसकी उपलब्धि के लिए हम अन्य मूल्यो की उपेक्षा कर देते हैं अथवा कभी-कभी सामान्य रूप से स्वीकृत उसी मूल्य के विरोधी तथ्य को हम उसका साधन वना लेते हैं। उदाहरण के लिए जव हमे जीवन रक्षण ही एकमात्र मूल्य प्रतीत होता है तो उस अवस्था में हम हिंसा, असत्य-भाषण, चोरी आदि को अनैतिक नही मानते है। इस प्रकार अपवाद की अवस्था मे एक मूल्य साध्य स्थान पर चला जाता है और अपने साधनो को मूल्यवत्ता प्रदान करता प्रतीत होता है, किन्तु यह मूल्य भ्रम ही है, उस समय भी चोरी या हिंसा मूल्य नही वन जाते हैं क्योकि उनका स्वत कोई मूल्य नही है, वे तो उस साध्य की मूल्यवत्ता के कारण मूल्य के रूप मे प्रतीत या आभासित होते है। इसका यह अर्थ कदापि नही है कि अहिंसा के स्थान पर हिंसा या सत्य के स्थान पर असत्य नैतिक मूल्य वन जाते हैं। साधुजन की रक्षा के लिए दुष्टजन की हिंसा की जा सकती है किन्तु इससे हिंसा मूल्य नही वन जाती है। किसी प्रत्यय की नैतिक मूल्यवत्ता उसके किसी परिस्थिति विशेष मे आचरित होने या नही होने से अप्रभावित भी रह सकती है। प्रथम तो यह कि अपवाद की मूल्यवत्ता केवल उस परिस्थिति विशेष मे ही होती है, उसके आधार पर सदाचार का कोई सामान्य नियम नही वनाया जा सकता। साथ ही जव व्यक्ति आपद्धर्म का आचरण करता है तव भी उसकी दृष्टि में मूल नैतिक नियम या सदाचार की मूल्यवत्ता अक्षुण्ण वनी रहती है। यह तो परिस्थितिगत या व्यक्तिगत विवशता है, जिसके कारण उसे वह आचरण करना पड रहा है। दूसरे सार्वभौम नियम मे और अपवाद मे अन्तर है। अपवाद की यदि कोई मूल्यवत्ता है, तो वह केवल विशिष्ट परिस्थिति मे ही रहती है, जवकि सामान्य नियम की मूल्यवत्ता सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वजनीन होती है। अत. आपद्धर्म या अपवाद मार्ग की स्वीकृति जैनधर्म मे मूल्य परिवर्तन की सूचक नहीं है। वह सामान्यतया किसी मूल्य को न तो निर्मूल्य करती है और न मूल्य सस्थान मे उसे अपने स्थान से पदच्युत ही करती है, अत वह मूल्यान्तरण भी नहीं है।

नैतिक कर्म के दो पक्ष होते हैं—एक वाह्यपक्ष, जो आचरण के रूप मे होता है और दूसरा आन्तरिक पक्ष, जो कर्ता के मनोभावो के रूप मे होता है। अपवादमार्ग का सम्वन्ध केवल वाह्य पक्ष से होता है, अत उससे किसी नैतिक मूल्य की मूल्यवत्ता प्रभावित नही होती है। कर्म का मात्र वाह्य पक्ष उसे कोई नैतिक मूल्य प्रदान नही करता है।

सदाचार के मानदण्डों की परिवर्तनशीलता का अर्थ

सदाचार के मानदण्डो की परिवर्तनशीलता पर विचार करते समय सवसे पहले हमे यह



निश्चित कर लेना होगा कि उनकी परिवर्तनशीलता से हमारा क्या तात्पर्य है ? कुछ लोग परिवर्तनशीलता का अर्थ स्वयं सदाचार की मूल्यवत्ता की अस्वीकृति से लेते हैं। आज जब पाश्चात्य विचारको के द्वारा नैतिक मूल्यो को सावेगिक अभिव्यक्ति या वैयक्तिक एव सामाजिक अनुमोदन एवं रुचि का पर्याय माना जा रहा हो, तब परिवर्तनशीलता का अर्थ स्वय उनकी मूल्यवत्ता को नकारना ही होगा। आज सदाचार की मूल्यवत्ता स्वय अपने अर्थ की तलाश कर रही है। यदि सदाचार की धारणा अर्थहीन है, मात्र सामाजिक अनुमोदन है, तो फिर उसकी परिवर्तनशीलता का भी कोई विशेष अर्थ नही रह जाता है क्योकि यदि सदाचार के मूल्यो का यथार्थ एव वस्तुगत अस्तित्व ही नही है, यदि वे मात्र मनोकल्पनाएँ हैं तो उनके परिवर्तन का ठोस आधार भी नहीं होगा ? दूसरे, जब हम सदाचार-दुराचार, शुभ-अशुभ अथवा औचित्य-अनौचित्य के प्रत्ययो को वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुमोदन या पसन्दगी किंवा नापसन्दगी के रूप मे देखते है तो उनकी परिवर्तनशीलता का अर्थ फैशन की परिवर्तनशीलता से अधिक नही रह जावेगा।

किन्तु क्या सदाचार की मूल्यवत्ता पर ही कोई प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है ? क्या नैतिक मूल्यो की परिवर्तनशीलता फैशनो की परिवर्तनशीलता के समान है, जिन्हे जब चाहे तब और जैसा चाहे वैसा बदला जा सकता है। आयें जरा इन प्रश्नो पर थोड़ी गम्भीर चर्चा करें।

सर्वप्रथम तो आज जिस परिवर्तनशीलता की बात कही जा रही है, उससे तो स्वय सदाचार के मूल्य होने मे ही अनास्था उत्पन्न हो गई है। आज का मनुष्य अपनी पाशविक वासनाओ की पूर्ति के लिए विवेक एवं संयम की नियामक मर्यादाओ की अवहेलना को ही मूल्य परिवर्तन मान रहा है। वर्षो के चिन्तन और साधना से फलित ये मर्यादाएँ आज उसे कारा लग रही है और इन्हें तोड फैंकने मे ही उसे मूल्य-क्रान्ति परिलक्षित हो रही है। स्वतन्त्रता के नाम पर वह अतन्त्रता और अराजकता को ही मूल्य मान बैठा है, किन्तु यह सब मूल्य विभ्रम या मूल्य विपर्यय ही है जिसके कारण नैतिक मूल्यो के निर्मूल्यीकरण को ही परिवर्तन कहा जा रहा है। किन्तु हमे यह समझ लेना होगा कि मूल्य-सक्रमण या मूल्यान्तरण मूल्य-निषेध नही है। परिवर्तनशीलता का तात्पर्य स्वय नीति के मूल्य होने मे अनास्था नही है। यह सत्य है कि नैतिक मूल्यो मे और नीति सम्बन्धी धारणाओ मे परिवर्तन हुए है और होते रहेंगे, किन्तु मानव इतिहास मे कोई भी काल ऐसा नही है, जब स्वय नीति की मूल्यवत्ता को ही अस्वीकार किया गया हो। वस्तुत नैतिक मूल्यो या सदाचार के मानदण्डो की परिवर्तनशीलता मे भी कुछ ऐसा अवश्य है, जो बना रहता है और वह है, स्वय उनकी मूल्यवत्ता। नैतिक मूल्यो की विषय वस्तु बदलती रहती है, किन्तु उनका मूल आधार बना रहता है। मात्र इतना ही नही, कुछ मूल्य ऐसे भी हैं, जो अपनी मूल्यवत्ता को नही खोते हैं, मात्र उनकी व्याख्या के सन्दर्भ एव अर्थ बदलते हैं।

आज स्वय सदाचार या नैतिकता की मूल्यवत्ता के निषेध की बात दो दिशाओ से खडी हुई है एक ओर भौतिकवादी और साम्यवादी दर्शनो के द्वारा और दूसरी ओर पाश्चात्य अर्थ विश्लेषणवादियो के द्वारा। यह कहा जाता है कि वर्तमान मे साम्यवादी-दर्शन नीति की मूल्यवत्ता को अस्वीकार करता है, किन्तु इस सम्बन्ध मे स्वय लेनिन का वक्तव्य द्रष्टव्य है। वे कहते हैं—'प्राय यह कहा जाता है कि हमारा अपना कोई नीति-शास्त्र नही है, बहुधा मध्य वित्तीय वर्ग कहता है कि हम सब प्रकार के नीति-शास्त्र का खण्डन करते हैं, किन्तु उनका यह तरीका विचारो का भ्रष्ट करना है, श्रमिको और कृषको की आँख में धूल झोकना है। हम उसका खण्डन



करते है जो ईश्वरीय आदेशो से नीति शास्त्र को आविर्भूत करता है। हम कहते हैं कि यह धोखा-धडी है और श्रमिको तथा कृपको के मस्तिष्को को पूँजीपतियो तथा भू-पतियो के स्वार्थ के लिए सन्देह मे डालता है। हम कहते हैं कि हमारा नीति-शास्त्र सर्वहारा वर्ग के वर्ग सघर्ष के हितो के अधीन है, जो शोषक समाज को नष्ट करे, जो श्रमिको को सगठित करे और साम्यवादी समाज की स्थापना करे, वही नीति है (शेष सब अनीति है)।' इस प्रकार साम्यवादी दर्शन नैतिक मूल्यो का मूल्यान्तरण तो करता है, किन्तु स्वय नीति की मूल्यवत्ता का निषेध नही करता है। वह उस नीति का समर्थक है जो अन्याय एव शोषण की विरोधी है और सामाजिक समता की सस्थापक है, जो पीडित और शोषित को अपना अधिकार दिलाती है और सामाजिक न्याय की स्थापना करती है। वह सामाजिक न्याय और आर्थिक समता की स्थापना को ही सदाचार मानदण्ड स्वीकार करती है। अत वह सदाचार और दुराचार की धारणा को अस्वीकार नही करती है।

वह भौतिकवादी दर्शन, जो सामाजिक एव साहचर्य के मूल्यो का समर्थक है, नीति की मूल्यवत्ता का निषेधक नही हो सकता है। यदि हम मनुष्य को एक विवेकवान सामाजिक प्राणी मानते हैं, तो हमे नैतिक मूल्यो को अवश्य स्वीकार करना होगा। वस्तुत नीति का अर्थ है किन्ही विवेकपूर्ण साध्यो की प्राप्ति के लिए वैयक्तिक और सामाजिक जीवन मे आचार और व्यवहार के किन्ही ऐसे आदर्शो एव मर्यादाओ की स्वीकृति, जिसके अभाव मे मानव की मानवता और मानवीय समाज का अस्तित्व ही खतरे मे होगा, यदि नीति की मूल्यवत्ता का या सदाचार की धारणा का निषेध कोई दृष्टि कर सकती है तो वह मात्र पाशविक भोगवादी दृष्टि है, किन्तु यह दृष्टि मनुष्य को एक पशु से अधिक नहीं मानती है। यह सत्य है कि यदि मनुष्य मात्र पशु है तो नीति का, सदाचार का कोई अर्थ नही है, किन्तु क्या आज मनुष्य का अवमूल्यन पशु के स्तर पर किया जा सकता है ? क्या मनुष्य निरा पशु है ? यदि मनुष्य निरा पशु होता है तो वह पूरी तरह प्राकृतिक नियमो से शासित होता और निश्चय ही उसके लिए सदाचार की कोई आवश्यकता नहीं होती। किन्तु आज का मनुष्य पूर्णत प्राकृतिक नियमो से शासित नहीं है वह तो प्राकृतिक नियमो एव मर्यादाओ की अवहेलना करता है। अत पशु भी नही है। उसकी सामाजिकता भी उसके स्वभाव से निसृत नही है, जैसी कि यूथचारी प्राणियो मे होती है। उसकी सामाजिकता उसके बुद्धि तत्त्व का प्रतिफल है, वह विचार की देन है, स्वभाव की नही। यही कारण है कि वह समाज का और सामाजिक मर्यादाओ का सर्जक भी है और सहारक भी है, वह उन्हे स्वीकार भी करता है और उनकी अवहेलना भी करता है, अत. वह समाज से ऊपर भी है। ब्रेडले का कथन है कि यदि मनुष्य सामाजिक नही है तो वह मनुष्य ही नही है, किन्तु यदि वह केवल सामाजिक है तो वह पशु से अधिक नही है। मनुष्य की मनुष्यता उसके अति सामाजिक एव नैतिक प्राणी होने मे है। अत मनुष्य के लिए सदाचार की मूल्यवत्ता की अस्वीकृति असम्भव है। यदि हम परिवर्तन-शीलता के नाम पर स्वय सदाचार की मूल्यवत्ता को ही अस्वीकार करेंगे तो वह मानवीय सस्कृति का ही अवमूल्यन होगा। मात्र अवमूल्यन ही नही, उसकी इतिश्री भी होगी।

पुनश्च सदाचार की धारणाओ को सावेगिक अभिव्यक्ति या रुचि सापेक्ष मानने पर भी, न तो सदाचार की मूल्यवत्ता को निरस्त किया जा सकता है और न सदाचार एव दुराचार के मानदण्डो को फैशनो के समान परिवर्तनशील माना जा सकता है। यदि सदाचार और दुराचार का आधार पसन्दगी या रुचि है तो फिर पसन्दगी या नापसन्दगी के भावो की उत्पत्ति का आधार क्या है ? क्यो हम चौर्य कर्म को नापसन्द करते हैं और क्यो ईमानदारी को पसन्द करते हैं ? सदाचार





एव दुराचार की व्याख्या मात्र पसन्दगी और नापसन्दगी के रूप में नही की जा सकती। मानवीय पसन्दगी या नापसन्दगी अथवा रुचि केवल मन की मौज या मन की तरग (whim) पर निर्भर नही है। इन्हें पूरी तरह आत्मनिष्ठ (Subjective) नही माना जा सकता, इनके पीछे एक वस्तु-निष्ठ आधार भी होता है। आज हमे उन आधारो का अन्वेपण करना होगा, जो हमारी पसन्दगी और नापसन्दगी को वनाते या प्रभावित करते हैं। वे कुछ आदर्श, सिद्धान्त, दृष्टियाँ या मूल्य-वोध है, जो हमारी पसन्दगी या नापसन्दगी को वनाते हैं और जिनके आधार पर हमारी रुचियाँ सृजित होती हैं। मानवीय रुचियाँ और मानवीय पसन्दगी या नापसन्दगी आकस्मिक एव प्राकृतिक (Natural) नही है। जो तत्त्व इनको वनाते है, उनमे नैतिक मूल्य या सदाचार की अवधारणाएँ भी हैं। ये पूर्णतया व्यक्ति और समाज की रचना भी नही है, अपितु व्यक्ति के मूल्य सस्थान के बोध से भी उत्पन्न होती हैं। वस्तुत मूल्यो की सत्ता अनुभव की पूर्ववर्ती है, मनुष्य मूल्यो का द्रष्टा है, सृजक नही। अत पसन्दगी की इस धारणा के आधार पर स्वय सदाचार की मूल्यवत्ता को निरस्त नही किया जा सकता है। दूसरे यदि हम औचित्य एव अनौचित्य या सदाचार-दुराचार का आधार सामाजिक उपयोगिता को मानते हैं, तो यह भी ठीक नही है। मेरे व्यक्तिगत स्वार्थो से सामाजिक हित क्यो श्रेष्ठ एव वरेण्य हैं? इस प्रश्न का हमारे पास क्या उत्तर होगा? सामाजिक हितो की वरेण्यता का उत्तर सदाचार के किसी शाश्वत मानदण्ड को स्वीकार किये विना नहीं दिया जा सकता है। इस प्रकार परिवर्तनशीलता के नाम पर स्वय सदाचार की मूल्यवत्ता पर प्रश्न चिह्न नही लगाया जा सकता। सदाचार के मूल्यो के अस्तित्व की स्वीकृति मे ही उनकी परिवर्तनशीलता का कोई अर्थ हो सकता है, उनके नकारने मे नही है।

यहाँ हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समाज भी सदाचार के किसी मानदण्ड का सृजक नही है। अक्सर यह कहा जाता है कि सदाचार या दुराचार की धारणा समाज-सापेक्ष है। एक उर्दू के शायर ने कहा है—

बजा कहे आलम उसे बजा समझो
जवानए खल्क को नक्कारए खुदा समझो।

अर्थात् जिसे समाज उचित कहता है उसे उचित और जिसे अनुचित कहता है उसे अनुचित मानो क्योकि समाज की आवाज ईश्वर की आवाज है। सामान्यतया सामाजिक मानदण्डो को सदाचार का मानदण्ड मान लिया जाता है किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह वात प्रामाणिक सिद्ध नही होती है। समाज किन्ही आचरण के प्रारूपो को विहित या अविहित मान सकता है किन्तु सामाजिक विहितता और अविहितता नैतिक औचित्य या अनौचित्य से भिन्न है। एक कर्म अनैतिक होते हुए भी विहित माना जा सकता है अथवा नैतिक होते हुए भी अविहित माना जा सकता है। कजर जाति मे चोरी, आदिम कवीलो मे नरवलि या मुस्लिम समाज मे वहु-पत्नी प्रथा विहित है। राजपूतो मे लडकी को जन्मते ही मार डालना कभी विहित रहा था। अनेक देशो मे वेश्यावृत्ति, सम-लैंगिकता मद्यपान आज भी विहित और वैधानिक है—किन्तु क्या इन्हें नैतिक कहा जा सकता है। क्या आचार के ये रूप सदाचार की कोटि मे जा सकते है? नग्नता को, शासनतन्त्र की आलोचना को अविहित एव अवैधानिक माना जा सकता है, किन्तु इससे नग्न रहना या शासक वर्ग के गलत कार्यो की आलोचना करना अनैतिक नही कहा आ सकेगा। मानवो के समुदाय विशेष के द्वारा किसी कर्म को विहित या वैधानिक मान लेने मात्र से वह सदाचार की कोटि मे नही आ जाता। गर्भपात वैधानिक हो सकता है लेकिन नैतिक कभी नही। नैतिक मूल्य-



वत्ता निष्पक्ष विवेक के प्रकाश मे आलोकित होती है। वह सामाजिक विहितता या वैधानिकता से भिन्न है। समाज किसी कर्म को विहित या अविहित बना सकता है, किन्तु उचित या अनुचित नही।

यद्यपि सदाचार के मानदण्डो मे परिवर्तन होता है किन्तु उनकी परिवर्तनशीलता फैशनो की परिवर्तनशीलता के समान भी नहीं है, क्योकि नैतिक मूल्य या सदाचार के मानदण्ड मात्र रुचि सापेक्ष न होकर स्वय रुचियो के सृजक भी हैं। अतः जिस प्रकार रुचियाँ या तद्जनित फैशन बदलते हैं वैसे ही सदाचार के मानदण्ड नही बदलते हैं। यह सही है कि उनमे देश, काल एव परिस्थितियो के आधार पर कुछ परिवर्तन होता है किन्तु फिर भी उनमे एक स्थायी तत्त्व होता है। अहिंसा, न्याय, आत्म-त्याग, सयम आदि अनेक नैतिक मूल्य या सदाचार के प्रत्यय ऐसे हैं, जिनकी मूल्यवत्ता सभी देशो एव कालो मे समान रूप से स्वीकृत रही है। यद्यपि इनमे अपवाद माने गये हैं, किन्तु अपवाद की स्वीकृति इनकी मूल्यवत्ता का निषेध नहीं होकर, वैयक्तिक असमर्थता अथवा परिस्थिति विशेष मे उनकी सिद्धि की विवशता की ही सूचक है। अपवाद, अपवाद है, वह मूल नियम की निषेध नहीं है। जैन-दर्शन उत्सर्ग मार्ग और अपवाद-मार्ग का विधान करता है उसमे उत्सर्ग मार्ग का शाश्वत और अपवाद मार्ग को परिवर्तनशील मानता है। इस प्रकार कुछ नैतिक मूल्य या सदाचार की धारणाएँ अवश्य ही ऐसी हैं जो सार्वभौम और अपरिवर्तनीय हैं। प्रथमतः सदाचार की धारणाओ मे बहुत ही कम परिवर्तन होता है और यदि होता भी है तो कही अधिक स्थायित्व लिए हुए होता है। फैशन एक दशाब्दी से दूसरी दशाब्दी मे ही नहीं, अपितु दिन-प्रतिदिन बदलते रहते हैं, किन्तु नैतिक मूल्य या सदाचार सम्बन्धी धारणाएँ इस प्रकार नही बदलती हैं। ग्रीक नैतिक मूल्यो का ईसाइयत के द्वारा तथा भारतीय वैदिक युग के मूल्यो का औपनिषदिक एव जैन-बौद्ध सस्कृतियो के द्वारा आशिक रूप से मूल्यान्तरण अवश्य हुआ है किन्तु श्रमण सस्कृति तथा जैन धर्म के द्वारा स्वीकृत मूल्यो का इन दो हजार वर्षो मे भी मूल्यान्तरण नही हो सका है। इन्होंने सदाचार या दुराचार के जो मानदण्ड स्थिर किये थे वे आज भी स्वीकृत हैं। आज आमूल परिवर्तन के नाम पर उनके उखाड फेंकने की जो बात कही जा रही है, वह भ्रान्तिजनक ही है। मूल्य विश्व मे आमूल परिवर्तन या निरपेक्ष परिवर्तन सम्भव ही नहीं होता है नैतिक मूल्यो या सदाचार की धारणाओ के सन्दर्भ मे जिस प्रकार का परिवर्तन होता है वह एक सापेक्ष और सीमित प्रकार का परिवर्तन है। इसमे दो प्रकार के परिवर्तन परिलक्षित होते हैं—परिवर्तन का एक रूप वह होता है, जिसमे कोई नैतिक मूल्य विवेक के विकास के साथ व्यापक अर्थ ग्रहण करता जाता है तथा उसके पुराने अर्थ अनैतिक और नये अर्थ नैतिक माने जाने लगते हैं, जैसा कि अहिंसा और परार्थ के प्रत्ययो के साथ हुआ है। एक समय मे इन प्रत्ययो का अर्थ विस्तार परिजनो, स्वजातियो एव स्वधर्मियो तक सीमित था। आज वह राष्ट्रीयता या स्वराष्ट्र तक विकसित होता हुआ सम्पूर्ण मानव जाति एव प्राणी जगत तक अपना विस्तार पा रहा है। आत्मीय परिजनों, जाति बन्धुओ एव साधर्मी बन्धुओ का हित साधन करना किसी युग में नैतिक माना जाता था किन्तु आज हम उसे भाई-भतीजावाद, जातिवाद एव सम्प्रदायवाद कहकर अनैतिक मानते हैं। आज राष्ट्रीय हित साधन नैतिक माना जाता है, किन्तु आने वाले कल मे यह भी अनैतिक माना जा सकता है। यही बात अहिंसा के प्रत्यय के साथ भी घटित हुई है, आदिम कबीलों मे परिजनो की हिंसा ही हिंसा मानी जाती थी, आगे चलकर मनुष्य की हिंसा को हिंसा माना जाने लगा, वैदिक धर्म एव यहूदी धर्म ही नही, ईसाई धर्म भी, अहिंसा के प्रत्यय को मानव



जाति से अधिक अर्थ-विस्तार नही दे पाया, किन्तु वैष्णव परम्परा मे अहिंसा का प्रत्यय प्राणी जगत तक और जैन-परम्परा मे वनस्पति जगत तक अपना अर्थ-विस्तार पा गया। इस प्रकार नैतिक मूल्यो की परिवर्तनशीलता का एक अर्थ उनके अर्थों को विस्तार या सकोच देना भी है। इसमे मूलभूत प्रत्यय की मूल्यवत्ता बनी रहती है, केवल उसके अर्थ विस्तार या सकोच ग्रहण करते जाते हैं। नरबलि, पशुबलि या विधर्मी की हत्या हिंसा है या नहीं है ? इस प्रश्न के उत्तर लोगो के विचारो की भिन्नता से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु इससे अहिंसा की मूल्यवत्ता अप्रभावित है। दण्ड के सिद्धान्त और दण्ड के नियम बदल सकते हैं, किन्तु इससे न्याय की मूल्यवत्ता समाप्त नहीं होती है। यौन नैतिकता के सन्दर्भ मे भी इसी प्रकार का अर्थ-विस्तार या अर्थ-सकोच हुआ है। इसकी एक अति यह रही है कि एक ओर पर-पुरुष का दर्शन भी पाप माना गया तो दूसरी ओर स्वच्छन्द यौन सम्बन्धो को भी विहित माना गया। किन्तु इन दोनो अतियो के बावजूद भी पति-पत्नी सम्बन्ध मे प्रेम, निष्ठा एवं त्याग के तत्त्वो की अनिवार्यता सर्वमान्य रही तथा सयम एव ब्रह्मचर्य की मूल्यवत्ता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया गया।

नैतिक मूल्यो की परिवर्तनशीलता का एक रूप वह होता है, जिसमे किसी मूल्य की मूल्यवत्ता को अस्वीकार नहीं किया जाता, किन्तु उनका पदक्रम बदलता रहता है अर्थात् मूल्यो का निर्मूल्यीकरण नहीं होता अपितु उनका स्थान सक्रमण होता है। किसी युग मे जो नैतिक गुण प्रमुख माने जाते रहे हो, वे दूसरे युग मे गौण हो सकते हैं और जो मूल्य गौण थे, वे प्रमुख हो सकते हैं। उच्च मूल्य निम्न स्थान पर तथा निम्न मूल्य उच्च स्थान पर या साध्य मूल्य साधन स्थान पर तथा साधन मूल्य साध्य स्थान पर आ-जा सकते हैं। कभी न्याय का मूल्य प्रमुख और अहिंसा का मूल्य गौण था—न्याय की स्थापना के लिए हिंसा को विहित माना जाता था—किन्तु जब अहिंसा का प्रत्यय प्रमुख बन गया तो अन्याय को सहन करना भी विहित माने जाने लगा। ग्रीक मूल्यो के स्थान पर ईसाइयत के मूल्यो की स्थापना मे ऐसा ही परिवर्तन हुआ है। आज साम्यवादी-दर्शन सामाजिक न्याय के हेतु खूनी क्रान्ति की उपादेयता की स्वीकृति के द्वारा पुन. अहिंसा के स्थान पर न्याय को ही प्रमुख मूल्य के पद पर स्थापित करना चाहता है। किन्तु इसका अर्थ यह कभी नहीं है कि ग्रीक सभ्यता मे या साम्यवादी-दर्शन मे अहिंसा पूर्णतया निर्मूल्य है या ईसाइयत मे न्याय का कोई स्थान ही नहीं है। मात्र होता यह है कि युग की परिस्थिति के अनुरूप मूल्य-विश्व के कुछ मूल्य उभरकर प्रमुख बन जाते हैं और दूसरे उनके परिपार्श्व मे चले जाते हैं। मात्र इतना ही नही, कभी-कभी बाहर से परस्पर विरोध मे स्थित दो मूल्य वस्तुत विरोधी नही होते हैं—जैसे न्याय और अहिंसा। कभी-कभी न्याय की स्थापना के लिए हिंसा का सहारा लिया जाता है, किन्तु इसमे मूलत वे परस्पर विरोधी नही कहे जा सकते हैं क्योकि अन्याय भी तो हिंसा ही है। साम्यवाद और प्रजातन्त्र के राजनैतिक-दर्शनो का विरोध मूल्य-विरोध नही, मूल्यो की प्रधानता का विरोध है। साम्यवाद के लिए रोटी और सामाजिक न्याय प्रधान मूल्य है और स्वतन्त्रता गौण मूल्य है, जबकि प्रजातन्त्र मे स्वतन्त्रता प्रधान मूल्य है और रोटी गौण मूल्य है। आज स्वच्छन्द यौनाचार का समर्थन भी सयम के स्थान पर स्वतन्त्रता (अतन्त्रता) को ही प्रधान मूल्य मानने के एक अतिवादी दृष्टिकोण का परिणाम है। सुखवाद और बुद्धिवाद का मूल्य-विवाद भी ऐसा ही है, न तो सुखवाद बुद्धितत्त्व को निर्मूल्य मानता है और न बुद्धिवाद सुख को निर्मूल्य मानता है। मात्र इतना ही है कि सुखवाद मे सुख प्रधान मूल्य है और बुद्धि गौण मूल्य है जबकि बुद्धिवाद मे विवेक प्रधान मूल्य है और सुख गौण मूल्य है। इस प्रकार मूल्य-परिवर्तन का अर्थ



उनके तारतम्य मे परिवर्तन है, जो कि एक प्रकार का सापेक्षिक परिवर्तन ही है। कभी-कभी मूल्य विपर्यय को ही मूल्य परिवर्तन मानने की भूल की जाती है, किन्तु हमे यह ध्यान रखना होगा कि मूल्य विपर्यय मूल्य परिवर्तन नही है। मूल्य विपर्यय मे हम अपनी चारित्रिक दुर्बलताओ को, जो कि वास्तव मे मूल्य है ही नही, मूल्य मान लेते हैं—जैसे स्वच्छन्द यौनाचार को नैतिक मान लेना। दूसरे यदि 'काम' की मूल्यवत्ता के नाम पर कामुकता तथा रोटी की मूल्यवत्ता के नाम पर स्वाद-लोलुपता या पेटूपन का समर्थन किया जावे, तो यह मूल्य परिवर्तन नहीं होगा, मूल्य विपर्यय या मूल्याभास ही होगा, क्योकि 'काम' या 'रोटी' मूल्य हो सकते हैं किन्तु 'कामुकता' या 'स्वाद लोलुपता' किसी भी स्थिति मे नैतिक मूल्य नही हो सकते हैं। इसी सन्दर्भ मे हमे एक तीसरे प्रकार का मूल्य परिवर्तन परिलक्षित होता है जिसमे मूल्य-विश्व के ही कुछ मूल्य अपनी आनुषंगिकता के कारण नैतिक मूल्यो के वर्ग मे सम्मिलित हो जाते हैं। और कभी-कभी तो नैतिक जगत के प्रमुख मूल्य या नियामक मूल्य बन जाते हैं, अर्थ और काम ऐसे ही मूल्य हैं जो स्वरूपत. नैतिक मूल्य नही हैं फिर भी नैतिक मूल्यो के वर्ग मे सम्मिलित होकर उनका नियमन और क्रम निर्धारण भी करते हैं। यह सम्भव है कि जो एक परिस्थिति मे प्रधान मूल्य हो, वह दूसरी परिस्थिति मे प्रधान मूल्य न हो, किन्तु इससे उनकी मूल्यवत्ता समाप्त नही होती है। परिस्थितिजन्य मूल्य या सापेक्ष मूल्य दूसरे मूल्यो के निषेधक नही होते हैं। दो परस्पर विरोधी मूल्य भी अपनी-अपनी परिस्थिति मे अपनी मूल्यवत्ता को बनाए रख सकते है। एक दृष्टि से जो मूल्य लगता है वह दूसरी दृष्टि से निर्मूल्य हो सकता है, किन्तु अपनी दृष्टि या अपेक्षा से तो वह मूल्यवान बना रहता है। यह बात परिस्थितिक मूल्यो के सम्बन्ध मे ही अधिक सत्य लगती है।

जैन नैतिकता का अपरिवर्तनशील या निरपेक्ष पक्ष

हमने जैनदर्शन मे नैतिकता के सापेक्ष पक्ष पर विचार किया लेकिन इसका अर्थ यह नही कि जैन-दर्शन मे नैतिकता का केवल सापेक्ष पक्ष ही स्वीकार किया गया है। जैन विचारक कहते हैं कि नैतिकता का एक-दूसरा पहलू भी है जिसे हम निरपेक्ष कह सकते हैं। जैन तीर्थंकरो का उद्घोष था कि "धर्म शुद्ध है, नित्य है और शाश्वत है।" यदि नैतिकता मे कोई निरपेक्ष एव शाश्वत तत्त्व नही है तो फिर धर्म की नित्यता और शाश्वतता का कोई अर्थ नही रह जाता है। जैन नैतिकता यह स्वीकार करती है कि भूत, वर्तमान, भविष्य के सभी धर्म-प्रवर्तको (तीर्थंकरो) की धर्म प्रज्ञप्ति एक ही होती है लेकिन इसके साथ-साथ वह यह भी स्वीकार करती है सभी तीर्थंकरो की धर्म प्रज्ञप्ति एक होने पर भी तीर्थंकरो के द्वारा प्रतिपादित आचार नियमो मे ऊपर से विभिन्नता मालूम हो सकती है, जैसी महावीर और पार्श्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित आचार नियमो मे थी। जैन विचारणा यह स्वीकार करती है कि नैतिक आचरण के आन्तर और बाह्य ऐसे दो पक्ष होते हैं जिन्हे पारिभाषिक शब्दो मे द्रव्य और भाव कहा जाता है। जैन विचारणा के अनुसार आचरण का वह बाह्य पक्ष देश एव कालगत परिवर्तनो के आधार पर परिवर्तनशील होता है, सापेक्ष होता है। जबकि आचरण का आन्तर पक्ष सदैव-सदैव एकरूप होता है, अपरिवर्तनशील होता है, दूसरे शब्दो मे निरपेक्ष होता है। वैचारिक या भाव-हिंसा सदैव-सदैव अनैतिक होती है, कभी भी धर्ममार्ग अथवा नैतिक जीवन का नियम नही कहला सकती, लेकिन द्रव्यहिंसा या बाह्यरूप मे परिलक्षित होने वाली हिंसा सदैव ही अनैतिक अथवा अनाचरणीय ही हो ऐसा नही कहा जा सकता। आन्तर परिग्रह अर्थात् तृष्णा या आसक्ति सदैव ही अनैतिक है लेकिन द्रव्य परिग्रह सदैव ही अनैतिक नहीं कहा जा सकता। संक्षेप मे जैन विचारणा के अनुसार आचरण के बाह्य रूपो मे नैतिकता सापेक्ष ही हो सकती है और होती



है लेकिन आचरण के आन्तर रूपो या भावो या सकल्पो के रूप मे वह सदैव निरपेक्ष ही है। सम्भव है कि वाह्य रूप मे अशुभ दिखने वाला कोई कर्म अपने अन्तर् मे निहित किसी सदाशयता के कारण शुभ हो जाय लेकिन अन्तर् का अशुभ सकल्प किसी भी स्थिति मे नैतिक नहीं हो सकता।

जैन दृष्टि मे नैतिकता अपने हेतु या सकल्प की दृष्टि से निरपेक्ष होती है। लेकिन परिणाम अथवा वाह्य आचरण की दृष्टि से सापेक्ष होती है। दूसरे शब्दो मे नैतिक सकल्प निरपेक्ष होता है लेकिन नैतिक कर्म सापेक्ष होता है। इसी कथन को जैन पारिभाषिक शब्दो मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यवहारनय (व्यवहारदृष्टि) से नैतिकता सापेक्ष है या व्यावहारिक नैतिकता सापेक्ष है लेकिन निश्चयनय (पारमार्थिक दृष्टि) से नैतिकता निरपेक्ष है या निश्चय नैतिकता निरपेक्ष है। जैन दृष्टि मे व्यावहारिक नैतिकता वह है जो कर्म के परिणाम या फल पर दृष्टि रखती है जबकि निश्चय नैतिकता वह है जो कर्त्ता के प्रयोजन या सकल्प पर दृष्टि रखती है। युद्ध का सकल्प किसी भी स्थिति मे नैतिक नही हो सकता, लेकिन युद्ध का कर्म सदैव ही अनैतिक हो, यह आवश्यक नहीं। आत्महत्या का सकल्प सदैव ही अनैतिक होता है, लेकिन आत्महत्या का कर्म सदैव ही अनैतिक हो, यह आवश्यक नही है, वरन् कभी-कभी तो वह नैतिक ही हो जाता है, जैसे—चन्दना की माता के द्वारा की गई आत्महत्या या चेडा महाराज के द्वारा किया गया युद्ध।

जैन नैतिक विचारणा मे नैतिकता को निरपेक्ष तो माना गया लेकिन केवल सकल्प के क्षेत्र तक। जैन-दर्शन 'मानस कर्म' के क्षेत्र मे नैतिकता को विशुद्ध रूप मे निरपेक्ष एव अपरिवर्तनशील स्वीकार करता है, लेकिन जहाँ कायिक या वाचिक कर्मों के वाह्य आचरण का क्षेत्र आता है, वह उसे सापेक्ष स्वीकार करता है। वस्तुत विचारणा का क्षेत्र, मानस का क्षेत्र आत्मा का अपना क्षेत्र है वहाँ वही सर्वोच्च शासक है अत वहाँ तो नैतिकता को निरपेक्ष रूप मे स्वीकार किया जा सकता है लेकिन आचरण के क्षेत्र मे चेतन तत्त्व एकमात्र शासक नही, वहाँ तो अन्य परिस्थितियाँ भी शासन करती हैं अत उस क्षेत्र मे नैतिकता के प्रत्यय को निरपेक्ष नहीं बनाया जा सकता।

नैतिक मूल्यों की परिवर्तनशीलता एव अपरिवर्तनशीलता का मूल्याकन

नैतिक मूल्यो की परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध मे हमे जॉन ड्यूई का दृष्टिकोण अधिक सगतिपूर्ण जान पडता है। वे यह मानते हैं कि वे परिस्थितियाँ, जिनमे नैतिक आदर्शों की सिद्धि की जाती है, सदैव ही परिवर्तनशील हैं और नैतिक नियमो, नैतिक कर्तव्यो और नैतिक मूल्याकनो के लिए इन परिवर्तनशील परिस्थितियो के साथ समायोजन करना आवश्यक होता है, किन्तु यह मान लेना मूर्खतापूर्ण ही होगा कि नैतिक सिद्धान्त इतने परिवर्तनशील है कि किसी सामाजिक स्थिति मे उनमे कोई नियामक शक्ति ही नही होती है। शुभ की विषयवस्तु वदल सकती है किन्तु शुभ का आकार नही। दूसरे शब्दो मे, नैतिकता का शरीर परिवर्तनशील है किन्तु नैतिकता की आत्मा नही। नैतिक मूल्यो का विशेष स्वरूप समय-समय पर वैसे-वैसे वदलता रहता है, जैसे-जैसे सामाजिक या सांस्कृतिक स्तर और परिस्थिति वदलती रहती है, किन्तु मूल्यो की नैतिकता का सामान्य स्वरूप स्थिर रहता है।

वस्तुत नैतिक मूल्यो की वास्तविक प्रकृति मे परिवर्तनशीलता और अपरिवर्तनशीलता के दोनो ही पक्ष उपस्थित हैं। नीति का कौन-सा पक्ष परिवर्तनशील होता है और कौन-सा पक्ष अपरिवर्तनशील होता है, इसे निम्नाकित रूप मे समझा जा सकता है—

१ सकल्प का नैतिक मूल्य अपरिवर्तनशील होता है और आचरण का नैतिक मूल्य परि-



वर्तनशील होता है। हिंसा का सकल्प कभी नैतिक नही होता, यद्यपि हिंसा का कर्म सदैव अनैतिक हो, यह आवश्यक नही। दूसरे शब्दो मे, कर्म का जो मानसिक या बौद्धिक पक्ष है वह निरपेक्ष एवं अपरिवर्तनीय है, किन्तु कर्म का जो व्यावहारिक एव आचरणात्मक पक्ष है, वह सापेक्ष एव परिवर्तनशील है। दूसरे शब्दो मे, नीति की आत्मा अपरिवर्तनशील है और नीति का शरीर परिवर्तनशील है। सकल्प का क्षेत्र प्रज्ञा का क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ चेतना ही सर्वोच्च शासक है। अन्तस् मे व्यक्ति स्वय अपना शासक है, वहाँ परिस्थितियो या समाज का शासन नही है, अत उस क्षेत्र मे नैतिक मूल्यो की निरपेक्षता एव अपरिवर्तनशीलता सम्भव है। निष्काम कर्म-योग का दर्शन इसी सिद्धान्त पर स्थित है, क्योंकि अनेक स्थितियो में कर्म का बाह्यात्मक रूप कर्त्ता के मनोभावो का यथार्थ परिचायक नही होता। अत यह माना जा सकता है कि वे मूल्य जो मनोवृत्त्यात्मक या भावनात्मक नीति से सम्बन्धित है, अपरिवर्तनीय हैं किन्तु वे मूल्य जो आचरणात्मक या व्यवहारात्मक हैं, परिवर्तनीय हैं।

२ दूसरे, नैतिक साध्य या नैतिक आदर्श अपरिवर्तनशील होता है किन्तु उस साध्य के साधन परिवर्तनशील होते हैं। जो सर्वोच्च शुभ है वह अपरिवर्तनीय है, किन्तु उस सर्वोच्च शुभ की प्राप्ति के जो नियम या मार्ग हैं वे विविध एव परिवर्तनीय है, क्योकि एक ही साध्य की प्राप्ति के अनेक साधन हो सकते हैं। यहाँ हमे यह भी स्मरण रखना होगा कि सर्वोच्च शुभ को छोडकर कुछ अन्य साध्य कभी साधन भी बन जाते हैं। साध्य साधन का वर्गीकरण निरपेक्ष नही है, उनमें परिवर्तन सम्भव है। यद्यपि जब तक कोई मूल्य साध्य स्थान पर बना रहता है, तब तक उसकी मूल्यवत्ता अपरिवर्तनीय रहती है। किन्तु इसका अर्थ यह भी नही है कि किसी स्थिति मे जो साध्य-मूल्य है, वह कभी साधन-मूल्य नहीं बनेगा। मूल्य-विश्व के अनेक मूल्य ऐसे है जो कभी साधन-मूल्य होते हैं और कभी साध्य-मूल्य। अत उनकी मूल्यवत्ता अपने स्थान परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो सकती है। पुन वैयक्तिक रुचियो, क्षमताओ और स्थितियो की भिन्नता के आधार पर सभी के लिए समान नियमो का प्रतिपादन सम्भव नहीं है। अत साधन-मूल्यो को परिवर्तनीय मानना ही एक यथार्थ दृष्टिकोण हो सकता है।

३ तीसरे, नैतिक नियमो मे कुछ नियम मौलिक होते हैं। साधारणतया सामान्य या मूलभूत नियम ही अपरिवर्तनीय माने जा सकते हैं, विशेष नियम तो परिवर्तनीय होते हैं। यद्यपि हमे यह मानने मे कोई आपत्ति नही है कि अनेक परिस्थितियो मे सामान्य नियमो के भी अपवाद हो सकते हैं और वे नैतिक भी हो सकते हैं, फिर भी इतना तो ध्यान मे रखना आवश्यक है कि अपवाद को कभी भी नियम का स्थान नही दिया जा सकता है।

यहाँ एक बात जो विचारणीय है वह यह कि मौलिक नियमो एव साध्य-मूल्यो की अपरिवर्तनशीलता भी एकातिक नही है। वस्तुत जैन-दर्शन मे नैतिक मूल्यो या सदाचार के मानदण्डो के सन्दर्भ मे एकान्तरूप से अपरिवर्तनशीलता और एकान्तरूप से परिवर्तनशीलता को स्वीकार नही किया जा सकता। यदि नैतिक मूल्य या सदाचार के मानदण्ड एकान्तरूप से परिवर्तनशील होंगे तो उनकी कोई नियामकता ही नहीं रह जावेगी। इसी प्रकार वे यदि एकान्त रूप से अपरिवर्तनशील होंगे तो सामाजिक सन्दर्भों के अनुरूप नहीं रह सकेंगे। सदाचार के मानदण्ड इतने निर्लोच तो नही है कि वे परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियो के साथ समायोजन नही कर सकें, किन्तु वे इतने लचीले भी नहीं हैं कि हर कोई उन्हें अपने अनुरूप ढाल कर उनके स्वरूप को ही विकृत कर दे। साराश यह है कि सदाचार के मानदण्ड अन्तरंग रूप से स्थायी हैं और बाह्य रूप मे परिवर्तनशील हैं।



ईश्वरवाद बनाम पुरुषार्थवाद

✡ डा० कृपाशंकर व्यास
[संस्कृत विभाग, शासकीय महाविद्यालय, शाजापुर (म० प्र०)]

सृष्टि मे विषय और विषयी प्राय. एक सस्थान के रूप मे होने से पृथक् नही है। इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से अथवा मानसिक प्रत्ययो से उत्पन्न सुख-दुख रूप विषयो का अनुभवकर्ता जीव है—इसे दार्शनिको ने विषयी के द्रष्टा के रूप मे नित्य स्वीकारा है जबकि विषयो को परिवर्तनशील, क्षण-भगुर या जड पदार्थों से जन्य होने के कारण (अजीव भी कहा जाता है) कुछ दार्शनिको[1] को छोड-कर शेष सभी ने अनित्य माना है। जीव-अजीव कब और कैसे सयुक्त होकर सृष्टि मे कारणरूपता को प्राप्त हुए—यही गहन समस्या दार्शनिको के समक्ष आदिकाल से बनी हुई है जिसका समाधान सभी दार्शनिको (भारतीय और पाश्चात्य) ने यथासम्भव ढूँढने का अथक प्रयास किया है। यह भिन्न बात है कि आज तक सर्वसम्मत समाधान नही मिल सका है। भारतीय-दर्शन के प्रयास की दिशा को समझने के लिये आवश्यक है कि इसके मूल-सिद्धान्तो को कम से कम स्थूल रूप मे समझ लें।

भारतीय-दर्शन स्थूलत दो भागो मे (कालक्रमानुसार नही) विभाजित किया गया है—(१) आस्तिक (२) नास्तिक※। आस्तिकदर्शन के अन्तर्गत वे दर्शन आते हैं जो अपने आदिस्रोत के लिये वेदाश्रय लेते हैं। इनमे न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमासा और उत्तरमीमासा आते हैं। नास्तिकदर्शन के अन्तर्गत वे दर्शन हैं जो कि अपने सिद्धान्तो के लिये वेद को आदिस्रोत के रूप में स्वीकार नही करते, अपितु अपने-अपने सिद्धान्त प्रतिपादको को ही अपने-अपने धर्म और दर्शन का आदि प्रणेता स्वीकार करते हैं। इसके अन्तर्गत चार्वाक, जैन[2], बौद्ध विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं। उपरोक्त दर्शन विभागो मे कतिपय विभाग जीव से परे एक अन्य सत्ता को भी मान्यता देते हैं, जबकि अन्य नही। इनमे ईश्वर की सत्ता को अंगीकार करने वाले दर्शन न्याय, वैशेषिक, योग, पूर्वमीमासा, उत्तरमीमासा एव जैन हैं (कुछ सीमा तक तथा भिन्न अर्थ मे ईश्वरीय सत्ता मे विश्वास है)। सांख्य-दर्शन को अनीश्वरवादी दर्शन भी कहा जाता है कारण कि सांख्य मे पुरुष ही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त कुछ नही है।

ईश्वर और ईश्वरवाद (Theism) को समझने के लिये आवश्यक है कि इन शब्दो का

※ नास्तिक उस अर्थ मे जो कुछ लोग कहते आये हैं। नास्तिक की परिभाषा और व्युत्पत्ति के अनुसार जैन नास्तिक नही हैं। —सम्पादक

१ (अ) जैन दार्शनिको के अनुसार द्रव्य सत् है—यथा "सद् दव्व वा" —भगवती सूत्र ८।९
(ब) "तत्त्व सल्लाक्षणिक सन्मात्र वा यत स्वत सिद्धम्" —पचाध्यायी, पूर्वार्ध, श्लोक ८

२ "विद्वानो का यह भी मत है कि जैन-दर्शन आस्तिक-दर्शन है।" विशेष द्रष्टव्य—"जैनधर्म की आस्तिकता" —चिन्तन की मनोभूमि-उपाध्याय अमरमुनि, पृ० ८९
वस्तुत आस्तिक या नास्तिक किसी दर्शन के लिए कहना दर्शन की उस शाखा का अपमान नही है बल्कि आस्तिक-नास्तिक शब्द दर्शन को विभाजित करने वाले शब्द मात्र है।



किस अर्थ मे प्रयोग होता है—समझा जाये। ईश्वर[3] शब्द "ईश्" धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ स्वामी होना, आदेश देना, अधिकार मे करना है। "ईश्" धातु का विशेषण ही "ईश्वर" है जो कि शक्ति सम्पन्नता की ओर इंगित करता है। अत यह कहना औचित्यपूर्ण है कि जीव से परे जो भी सत्ता है वही "ईश्वर" है। आज के समाज मे ईश्वर से सम्बन्धित सिद्धान्त ईश्वरवाद का प्रयोग व्यापक एव सकुचित दोनो अर्थों मे किया जाता है। व्यापक अर्थ में ईश्वरवाद उस सिद्धान्त को कहते हैं जो ईश्वर को सत्य मानता है। इस अर्थ की परिधि मे ईश्वर सम्बन्धी सभी सिद्धान्त आ जाते हैं। इस सिद्धान्त को स्वीकार करने वालो मे न केवल भारतीय दार्शनिक हैं अपितु पाश्चात्य[4] दार्शनिक भी हैं जिनमे विशेषरूप से उल्लेखनीय डेकार्टे (Descartes), वर्कले[5] (Berkeley), काण्ट[6] (Kant), जेम्सवार्ड (James Ward), प्रिंगल पैटिसन[7] (Pringle Pattisan) हैं। सकीर्ण अर्थ मे ईश्वरवाद उस सिद्धान्त को कहते हैं जो कि एक व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर का समर्थन करता है। इस सिद्धान्त का समर्थन विशेषत: जैनधर्म तथा अन्य सगुणोपासक धर्मों ने किया है। इसी मत के पक्ष मे पाश्चात्य विद्वान् फिलण्ट[8] (Flient) का कथन है कि "वह धर्म जिसमे एक व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर आराधना का विषय रहता है—ईश्वरवादी धर्म कहा जाता है।" व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर व्यक्तित्वरहित ईश्वर की अपेक्षा धार्मिक भावना की सन्तुष्टि करने मे अधिक समर्थ है। धार्मिक चेतना के लिये आवश्यक है कि उपासक और उपास्य के बीच निकटता रहे। इस नैकट्यभाव को बनाये रखने के लिये यह अनिवार्य है कि उपासक के हृदय मे उपास्य के प्रति श्रद्धा, आदर और भक्तिभाव बना रहे (जैनदर्शन[9] एव धर्म में भक्तिभाव को सिद्धान्तत कोई स्थान नही है किन्तु व्यावहारिक जगत् में जैन समाज तीर्थंकरो के प्रति भक्तिभाव से पूरित है) और इसी प्रकार उपास्य भी उपासक के लिये करुणा, क्षमा, दया और सहानुभूति भाव से पूरित रहे। ईश्वर उपास्य है, मनुष्य उपासक है।

ईश्वरवाद वस्तुत: व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की स्थापना करके उपासक मनुष्य का उससे निकट

---

३ संस्कृत-हिन्दी कोश—वा० व० आप्टे, पृ० १७९-१८०
वाचस्पत्यम्—द्वितीय भाग, पृ० १०११-१०४८

४ ईश्वरवादी सिद्धान्त के प्रतिपादको मे—स्पिनोजा, जॉन कॉल्विन, जॉन टोलेण्ड, तिण्डल, लाइवनिज, ब्रेडले, रायस, हॉविसन आदि विशेष के लिए द्रष्टव्य—"ईश्वर सम्बन्धी मत" पृष्ठ—६४ से १३२ तक "धर्म-दर्शन"—डा० रामनारायण व्यास (मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी)

५ वर्कले—ये अनुभववादी एव प्रत्यक्षवादी थे। दार्शनिक जीवन के प्रारभ मे इन्हे भी ईश्वर अमान्य था किन्तु दार्शनिक जीवन के अन्त मे इन्होंने ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है तथा ईश्वर को असीम एव परम सत्ता वाला बतलाया है।

६ काण्ट—दार्शनिक जीवन के आरम्भ मे इन्होंने आत्मा और ईश्वर को अज्ञात और अज्ञेय घोषित किया है किन्तु बाद मे ईश्वर की सत्ता स्वीकार की है।

७ "The Idea of God in Recent Philosophy"

८ "Theistic Religion is a Religion in which the one Personal and Perfect God is the object of worship" Flient—Theism, p 50.

९ भारतीय दर्शन, भाग १, पृ० ३०३—डा० राधाकृष्णन्



सम्बन्ध ही स्थापित करता है। ईश्वर मे यदि व्यक्तित्व का अभाव हो तो वह अपने उपासक के प्रति किसी भी प्रकार से अपने कारुणिक भाव को प्रदर्शित नही कर सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ईश्वरवाद (चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य) व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की स्थापना करके मानव-मानस की धार्मिक सन्तुष्टि ही करता है। यहाँ यह कहना असगत न होगा कि ईश्वरवाद का प्रयोग सभी ईश्वरवादी दार्शनिको एव धार्मिक मतावलम्बियो ने किया अवश्य है किन्तु अर्थ मे भिन्नता है।

इस सन्दर्भ मे भारतीय दार्शनिक आचाय उदयन[10] का कथन विशेष औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है कि "ईश्वर के अस्तित्व मे सन्देह करना ही व्यर्थ है क्योकि कौन ऐसा मनुष्य है जो किसी न किसी रूप मे 'ईश्वर' को न मानता हो—यथा उपनिषद् के अनुयायी ईश्वर को 'शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव' के रूप मे, कपिल अनुयायी 'आदि विद्वान् सिद्ध' के रूप मे पतजलि अनुयायी 'क्लेश, कर्म, विपाक, आशय (अदृष्ट) से रहित, निर्माणकाय के द्वारा सम्प्रदाय चलाने वाले तथा वेद को अभिव्यक्त करने वाले' के रूप मे, पाशुपत मत वाले 'निर्लेप तथा स्वतन्त्र' के रूप में, शैव 'शिव' के रूप मे वैष्णव—'विष्णु' (पुरुषोत्तम) के रूप मे, पौराणिक—'पितामह' के रूप मे, याज्ञिक 'यज्ञ पुरुष' के रूप मे, सौगत—'सर्वज्ञ' के रूप मे, दिगम्बर 'निरावरण मूर्ति' के रूप मे, मीमासक 'उपास्य देव' के रूप मे, नैयायिक—'सर्वगुणसम्पन्न पुरुष' के रूप मे, चार्वाक—'लोक व्यवहार सिद्ध' के रूप मे तथा बढई 'विश्वकर्मा' के रूप मे, जिनका पूजन करते हैं, वही तो 'ईश्वर' है।" इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव सन्तुष्टि के लिये प्राय. सभी दार्शनिको ने किसी न किसी रूप मे ईश्वर-अस्तित्व के सिद्धान्त को अगीकार किया है यद्यपि यह अवश्य है कि ईश्वर शब्द के अर्थों मे मतैक्य नही है।

जगत मे जीव-अजीव के सयुक्त होने मे न्यायवैशेषिकादि[11] दर्शनो ने ईश्वर, प्रकृति, पुरुष, सयोग, काल, स्वभाव और यदृच्छा आदि को कारण माना है। इन दर्शनो की दृष्टि मे जीव को शुभाशुभ कर्मफल की प्राप्ति ईश्वरादि के द्वारा होती है। इस मत के विपरीत जैन दार्शनिको का मत है कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है और उसी प्रकार वह फल भोगने मे भी स्वतन्त्र है। हाँ, यह अवश्य है कि जैन दार्शनिको[12] ने इसके साथ ही साथ काल, स्वभाव और कर्म को भी सृष्टि में कारण स्वरूप माना है तथा यदृच्छावाद का पुरजोर खण्डन किया है।

जैनदार्शनिको ने असख्य जीव एव अजीव पदार्थों की परस्पर प्रतिक्रिया के सिद्धान्त को स्वीकार कर जगत् के विकास की प्रक्रिया का विश्लेपण किया है। इनके[13] मत मे जगत् के सृजन

---

१० (अ) न्याय कुसुमाञ्जलि १-१
(ब) भारतीय दर्शन—उमेश मिश्र, पृ० २२४
११ (अ) प्रशस्तपादभाष्य (सृष्टि सहार प्रकरण)
(ब) साख्य कारिका २१
(स) न्यायसूत्रभाष्य
(द) गीता ५।१४
१२ आसवदि जण कम्म परिणामेणप्पणो स णिण्णेयो।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवण परो होदि॥ (द्रव्य स० २९)
१३ (अ) भारतीय दर्शन, भाग १, पृ० ३०२—डा० राधाकृष्णन्
(ब) पञ्चास्तिकाय समयसार, गाथा १५



अथवा संहार के लिये किसी ईश्वर की सत्ता को मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विद्यमान पदार्थों का नाश नहीं होता है और न ही असत् में सृष्टि का निर्माण भी सम्भव है। जन्म तथा विनाश वस्तुओं के अपने गुणों एवं पर्यायों पर निर्भर है। इस प्रकार संसार में विद्यमान जो अनेक पदार्थ एवं प्राणी हैं उन सबको जैन-दार्शनिक स्वयम्भूत एवं आधार रूप में स्वीकार करते हैं। इसी प्रक्रिया से जैनी अनेक पदार्थों की कल्पना की स्थापना करते हैं। उनका कथन है कि पदार्थ अपने को व्यक्त कर सके इसी प्रयोजन से सृष्टि के रूप में आ जाते हैं। जीवात्माओं से युक्त समस्त विश्व मानसिक एवं भौतिक अवयवों सहित लगातार अनादिकाल से चला आ रहा है तथा इसमें किसी नित्य स्थायी देवता का हस्तक्षेप भी नहीं है और न रहा है। संसार में दृष्टिगत विभिन्नतायें वस्तुतः काल, स्वभाव, नियति, कर्म एवं उद्यम इन पांच सहकारी दशाओं के कारण हैं। बीज में यद्यपि वृक्ष रूप में उदित होने की अन्तर्शक्ति विद्यमान है, फिर भी उसे वृक्ष रूप धारण करने के पूर्व काल (मौसम), प्राकृतिक वातावरण और भूमि में बोये जाने के कर्म रूप में उचित सहायता की अपेक्षा रहती ही है तभी वह वृक्ष रूप धारण कर पाता है। इतना होने पर भी वृक्ष का स्वरूप उसके मूलभूत बीज के स्वरूप पर ही निर्भर करता है। इसी कारण से वृक्षों में भिन्नता दिखलाई देती है। वृक्षों के ही समान जीवों में भी भिन्नता का यही कारण है।

जैन दार्शनिकों ने एक असीम सत्तात्मक शक्ति के रूप में यद्यपि ईश्वर को मान्यता नहीं दी है, फिर भी उनका स्पष्ट मत है कि संसार की कुछ आत्माएं जब उचित रूप में विकसित हो जातीं हैं तब वे ही देवत्व रूप धारण कर लेते हैं—ये ही 'अर्हत्' कहलाते हैं अर्थात् सर्वोपरि प्रभु, सर्वज्ञ-आत्मा जिन्होंने समस्त दोषों पर विजय पा ली है। यह अवश्य है कि उनमें कोई सृजनात्मक शक्ति नहीं है कि फिर भी जब जीवात्मा अपनी उच्चतम पूर्णता को प्राप्त कर लेती है तत्क्षण ही वह ईश्वरत्व को प्राप्त कर परमात्मा अथवा सर्वोपरि आत्मा बन जाती है। वस्तुतः प्रत्येक जीव में उच्चतम अवस्था में पहुंचने की शक्ति है, किन्तु रहती है सुप्तावस्था में। इसी प्रकार सुप्तावस्था से क्रियात्मक धरातल पर जीवात्मा को लाकर मानव अपनी उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर ले यही जीवात्मा का परम पुरुषार्थ है। इस उच्चावस्था (ईश्वरत्व) को प्राप्त करने के लिये मानव को अपने पुरुषार्थ पर अडिग विश्वास करना होगा। यह पुरुषार्थ है क्या, इसे किस प्रकार व्यक्ति अंगीकार कर ईश्वरत्व की कोटि में आ सकता है—इसके लिये आवश्यक है पुरुषार्थ शब्द का विश्लेषित अर्थ समझना।

पुरुषार्थ का साधारणतः प्रचलित अर्थ है—मानव की शक्ति, किन्तु दार्शनिक जगत् में इस शब्द का कुछ भिन्न एवं विस्तृत अर्थ है। पुरुषार्थ शब्द के दार्शनिक अर्थ का विश्लेषण करने के पूर्व आवश्यक है कि इसका व्याकरण-सम्मत अर्थ जान लें। व्याकरण की दृष्टि से 'पुरुषार्थ' दो शब्दों के संयोग से बना है—पुरुष+अर्थ। पुरुष[१४] शब्द की व्युत्पत्ति है पुरि देहे शेते इति पुरुषः—

१४ (क) पुरि देहे शेते—शी+ड पृषोरादित्वात्
वाचस्पत्यम्—पुर्+कुषन्। पुरि=पृ+इ।—संस्कृत हिन्दी कोश—आप्टे, पृ० ६२४
(ख) वाचस्पत्यम्—पंचम भाग, पृ० ४३७६
(ग) अर्थ=ऋ+थन्—आप्टे कोश, पृ० ९६
(आशय, प्रयोजन, लक्ष्य, उद्देश्य, इच्छा आदि)



अर्थात् पुरि (नगर) मे निवास करने वाला। मानव शरीर एक नगर के समान है इसमे निवास करने वाला 'जीव' है। अत पुरुष का मूल अर्थ है 'जीव' किन्तु आज पुरुष शब्द जीव का पर्यायवाची न होकर पुरुषलिंग का द्योतक बन गया है, जबकि यह अर्थ व्याकरण-सम्मत नही है। व्याकरणसम्मत अर्थ के रूप मे जब 'पुरुष' शब्द का प्रयोग हो तथा उसके साथ 'अर्थ' शब्द का प्रयोग कर दिया जाये तो यह 'पुरुषार्थ' शब्द सम्पूर्ण मानव जाति के उद्देश्य या प्रयोजन की अभिव्यक्ति करता है। इसी कारण से इसी अर्थ मे प्राचीन भारतीय ग्रन्थो मे 'पुरुषार्थ चतुष्टय' का उल्लेख मिलता है—

"धर्मार्थकाममोक्षाय पुरुषार्था उदाहृता" —अग्निपुराण

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों मे मानव जाति के जीवन का सम्पूर्ण ध्येय अन्तर्निहित है। इन चारो पुरुषार्थो मे भी अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष ही श्रेयस्कर माना गया है। इसे[15] प्राप्त करने के लिए कोई भी साधक प्रयासशील हो सकता है। भले ही वह साधक गृहस्थ हो अथवा गृहत्यागी हो, नर हो या नारी हो, बाल हो या वृद्ध हो, देश का हो या विदेश का हो। अन्य शब्दो मे कहा जा सकता है कि देश, काल, वय, जाति आदि कुछ भी साधक को साध्य की प्राप्ति मे बाधक नही है। यदि कुछ बाधक है तो साधक की ही मानसिक-दुर्बलता जो कि उसके मन मे ससार के प्रति मोह, ममता, तृष्णा आदि विकार को जन्म दे देती है जिससे वह इस ससार के महा-पक मे आमग्न हो जाता है। इसी कारण से ही वह भवचक्र के गमनागमन क्रिया से दुखी बना रहता है। अत आवश्यकता इस बात की है कि साधक अपने आप का हितचिन्तक बने। कथन[16] भी है—

"पुरिसा ! तुममेव तुम मित्तं,
किं बहिया मित्तमिच्छसि।"

इसी भाव को उपनिषदो मे भी स्पष्ट किया गया है। वहाँ तो साधक को स्पष्ट चेतावनी दी गई है कि ससार मे यदि कोई विषय देखने योग्य है तो वह "स्व आत्मा" है और अन्य कुछ नही—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्य"

आत्मा[17] का चिन्तक (स्वचिन्तक) बनते ही साधक सम्यक्-दर्शन, सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्-चारित्र एव सम्यक्-तप का पूर्णतया एव सर्वतोभावेन विकास करने मे सलग्न हो जाता है। इस चतुरग मार्ग के विकसित होते ही साधक के कर्मबन्धन विच्छिन्न[18] हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप

---

१५ विशेष के लिए द्रष्टव्य—चिन्तन की मनोभूमि—उपाध्याय अमरमुनि, पृ० ७६

१६ आचाराग १।३।३

१७ (अ) "आलवण च मे आदा"—**नियमसार ९९**
(ब) "आदा हु मे सरण"—**मोक्ष पाहुड १०५**

१८ (अ) "अट्ठ विह पि य कम्म
अरिभूय होइ सव्व-जीवाणं।
तं कम्ममरिहता
अरिहता तेण वुच्चति ॥" —आवश्यकनिर्युक्ति ९१४



साधक मानवत्व की कोटि से ईश्वरत्व की कोटि मे पहुँच जाता है। वस्तुत. मानव के पुरुषार्थ की इति ही जैनदर्शनानुसार ईश्वरत्व (अर्हतत्व सिद्धत्व) की प्राप्ति है। इस ईश्वरत्व की अवस्था मे मानव परमात्मभाव को प्राप्त हो जाता है। उसको प्राप्ति के लिए अप्राप्तव्य कुछ नहीं रहता अपितु मानवात्मा[19] अपने शाश्वत् स्वरूप मे स्थित हो जाती है कारण कि उसका बन्धन जो कि अविद्या तथा कर्म के कारण था वह ज्ञान से सदा-सदा के लिए विच्छिन्न हो जाता है। इसी कारण जैन-दर्शन मे आत्मा को अनन्त आनन्द सत् माना गया है। यहाँ यह प्रश्न सभाव्य है कि आत्मा जब सुखरूप तथा आनन्दरूप है तब दुख किस कारण से है। यह दुख यथार्थत कर्म[20] बन्धन के कारण है। इसी कर्मबन्धन से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को पुरुपार्थ का (व्यावहारिक अर्थ—शक्ति या प्रयास) आश्रय लेना पडता है। यहाँ पुरुषार्थ शारीरिक शक्ति का परिचायक नही है अपितु मानसिक शक्ति[21] का द्योतक है। कथन भी है—

"ऋते ज्ञानात् न मुक्ति"

इसी ज्ञान रूपी पुरुपार्थ से साधारण मे साधारण मानव ईश्वरत्व को प्राप्त हो सकता है। यही है जैनधर्म का मानव-दर्शन।

किसी कवि ने उचित ही कहा है—

"बीज बीज ही नहीं, बीज मे तरुवर भी है।
मनुज मनुज ही नहीं, मनुज मे ईश्वर भी है॥"

(—चिन्तन की मनोभूमि, पृ० ५०)

पता—
डा० कृपाशकर व्यास
मारवाड़ सेरी
पो० शाजापुर (म० प्र०)



(ब) "मानवीय चेतना का चरम विकास ही ईश्वरत्व है।"

द्रष्टव्य—चिन्तन की मनोभूमि, पृ० ४७

१९ (अ) "खवित्ता पुव्व कम्माइ संजमेण तवेण य।
नव्वदुक्ख पहीणट्ठा पक्कमंति महेसिणो॥"

—उत्तरा० २५।४५

(ब) चिन्तन की मनोभूमि, पृ० ३१

(स) जैन-दर्शन का व्यापक रूप (जैनधर्म परिचय माला), पृ० २० —महात्मा भगवान दीन

२० "अस्यात्माऽनादितोबद्ध कर्मभि कर्मणात्मकै"

—(जैनधर्म परिचय माला भाग १२)—लोक प्रकाश ४२४

२१ "णाण णरस्स सारो"—दर्शन पाहुड ३१—कुन्दकुन्दाचार्य



कर्म : बन्धन एवं मुक्ति की प्रक्रियाएँ

✡ मुनिश्री समदर्शीजी 'प्रभाकर'

जीव और पुद्गल—दो स्वतन्त्र तत्त्व हैं। आत्मा के साथ पुद्गल (कर्म) का सयोग-सम्वन्ध होना वन्ध है, और उसका वियोग हो जाना, कर्मो का पूर्णत क्षय हो जाना, मोक्ष है। श्रमण भगवान महावीर के समय मे यह प्रश्न भी दार्शनिको, विचारको और धर्म-सस्थापको (आचार्यों) के समक्ष चर्चा का महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। कुछ विचारक ऐसा मानते थे कि 'पुरुप (आत्मा) सत्त्व, रजो और तमो—तीनो गुणो से रहित है और विभु (व्यापक) है। इसलिए उसे पुण्य-पाप का वन्ध नहीं होता। वह कर्म का वन्ध ही नही करता और उससे न तो स्वय मुक्त होता है और न कर्म को अपने से मुक्त करता है, वह तो अकर्त्ता है। वह वाह्य या आभ्यन्तर कुछ नहीं जानता, क्योंकि ज्ञान पुरुष का नही, प्रकृति का स्वभाव है।'

इस तरह के चिन्तन से तीन प्रश्न उठते थे, कि यदि जीव के साथ कर्म का सयोग होना यही वन्ध माना जाए, तो वह वन्ध सादि है, या अनादि ? यदि वन्ध सादि है, तो पहले जीव और तदनन्तर कर्म उत्पन्न हुआ ? या पहले कर्म उसके वाद जीव का उद्‌भव हुआ ? या दोनो का युगपत जन्म हुआ ?[1] जीव कर्म से पूर्व तो उत्पन्न नही हो सकता। विना कर्म के उसकी उत्पत्ति निर्हेतुक होगी और तद्रूप उसका विनाश भी निर्हेतुक हो जाएगा। यदि जीव अनादि मे है, तो उसका कर्म के साथ सयोग नही हो सकता, क्योकि उसका कोई कारण नही है। यदि विना कारण ही जीव-कर्म का सयोग होता हो, तो मुक्त जीव भी पुन वद्ध हो जायेंगे। इस प्रकार जव वन्ध ही नही होता, तो मुक्त होने का प्रश्न ही नही उठता। वह तो सदा मुक्त ही है।

दूसरी वात यह है कि जीव से पहले कर्म की उत्पत्ति नही मान सकते। क्योकि जीव कर्म का कर्ता है। विना कर्ता के उसकी उत्पत्ति निर्हेतुक होगी, तो विनाश भी निर्हेतुक हो जाएगा। यदि दोनो को युगपत मानें तव भी उनमे कर्तापन और कार्यरूपता घट नही सकती। युगपत उत्पन्न होने वाले पदार्थों मे जैसे गाय और गाय के सीग—दोनो मे गाय सींग की कर्ता नही है और सीग गाय के कार्य नहीं हैं, उसी प्रकार जीव-कर्म भी परस्पर कर्ता और कार्य नही हो सकते। जीव और कर्म का अनादि सम्वन्ध मानना भी उपयुक्त नही है। जो अनादि सम्वन्ध है, वह अनन्त भी होगा और जो अनन्त है, उसका कभी नाश नही हो सकता। फिर जीव कभी भी कर्म-वन्ध से मुक्त ही नही होगा। इसलिए इस ससार मे जीव को न तो कर्म का वन्ध होता है और न वह उस वन्धन से मुक्त होता है। वन्धन ही नही है, तव मुक्ति कैसी ?

वन्ध-मोक्ष का स्वरूप

कर्म से आत्मा का आवद्ध होना और आवद्ध कर्मों से मुक्त होना—वन्ध और मोक्ष तत्त्व है। इस सम्वन्ध मे आगम-युग एव दार्शनिक-युग में विचारको मे विचार-भेद रहा है। चार्वाक-दर्शन के अतिरिक्त सभी दार्शनिक वन्ध और मोक्ष के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु अन्तर है—वन्ध और मोक्ष किसका होता है, इस मान्यता में। कुछ विचारक ऐसा मानते हैं कि आत्मा त्रि-गुणातीत है, विभु (व्यापक) है, शुद्ध है, अकर्त्ता है, इसलिए पुरुप (आत्मा) को वन्ध नहीं होता।

---

१ विशेषावश्यकभाष्य, १८०५-६



वन्ध प्रकृति को होता है, और वही उससे मुक्त होती है। आत्मा कर्म-वन्ध से अलिप्त है। सांख्य-दर्शन की दृष्टि से पुरुष (आत्मा) कर्ता नही है, कर्म का कर्त्ता है—प्रकृति। कुछ विचारक केवल एक ही तत्त्व को मूल-तत्त्व मानते हैं और वह है—ब्रह्म। उनके विचार से ब्रह्म ही सत्य है, उसके अतिरिक्त जगत्—जो प्रत्यक्ष मे परिलक्षित होता है, मिथ्या है। हम जो कुछ देखते हैं, वह सब भ्रम है, विवर्त है, माया है। यह ससार मायारूप है, यथार्थ नही है। ब्रह्म का ज्ञान नही हुआ तव तक ही यह माया रूप ससार है। ब्रह्मज्ञान होते ही जीव, जीव नही रह जाएगा, वह ब्रह्म मे विलीन हो जाएगा। इस प्रकार अद्वैतवाद के सस्थापक आचार्य शकर के विचार से ब्रह्म के अतिरिक्त कर्म, कर्म-वन्धन और उसका विपाक सव मिथ्या है, भ्रम है और माया है। न्याय और वैशेषिक दर्शन द्वैतवाद को मानते है, शुभाशुभ कर्म को एव उनके विपाक (फल) को भी मानते हैं। परन्तु उनके विचार से आत्मा का शुद्ध स्वरूप जड-सा है। वे आत्मा मे ज्ञान-चेतना मानते अवश्य हैं, परन्तु वह आत्मा का स्वभाव नही, वाहर से आगत गुण है। जव तक ज्ञान रहता है, तभी तक सारे सघर्ष, जन्म-मरण, दु ख-सुख हैं। इसलिए ज्ञान से मुक्त होना ही मुक्ति है। उनके विचार से मुक्ति या मोक्ष मे ज्ञान-चेतना नही रहती। ज्ञान-चेतना का अभाव यही तो जडता है। जहाँ व्यक्ति की अनन्त-चेतना-शक्ति जाग्रत होने के स्थान मे नष्ट हो जाती है, ऐसी मुक्ति कौन चाहेगा ?

वौद्ध-दर्शन आत्मा को क्षणिक मानता है—'सर्वं अनित्य, सर्वं क्षणिकं'—यह उसका मूल सूत्र है। जिस क्षण जो आत्म-चेतना कर्म करती है, वन्ध से आवद्ध होती है, दूसरे क्षण वह नहीं, उसकी सन्तति दूसरी आत्मा जन्म ले लेगी। इस तरह कोई भी वस्तु नित्य नहीं है, जो कुछ दिखाई देता है, वह उसकी सन्तति है। इसलिए कर्म करने वाला आत्मा एक है, और उसके विपाक का वेदन करने वाला दूसरा। यह कभी सम्भव ही नही होता कि कर्म करे कोई और उसका फल भोगे दूसरा।

जैन-दृष्टि से वन्ध-मोक्ष

जैन-दर्शन का इस सम्वन्ध मे अपना स्वतन्त्र एव मौलिक-चिन्तन है और कर्मदर्शन (Karma-Philosophy) के सम्वन्ध मे उसने वैज्ञानिक (Scientific) एव मनोवैज्ञानिक (Psychological) पद्धति से विचार किया है। सर्वप्रथम यह दृष्टि पूर्णत गलत है कि आत्मा कर्म का कर्त्ता नही है, जवकि वह फल का भोक्ता अवश्य है। यह अनुभवगम्य सत्य है कि जो कर्म करता है, वही फल का उपभोग करता है। कर्म अन्य करे और उसका फल वह न भोगकर कोई दूसरा ही भोगे, ऐसा कदापि हो नही सकता। दूसरी वात, जो कुछ दिखाई दे रहा है और प्रत्यक्ष है, उसे मिथ्या एव भ्रान्ति कहना, यह भी सत्य को झुटलाना है। एक ओर यह कहना कि सृष्टि मे मूल तत्त्व एक ही है, वह मूल तत्त्व ब्रह्म ही सत्य है, जगत् एकान्तत मिथ्या है। जव तत्त्व केवल ब्रह्म ही है, तव सृष्टि—यह दूसरा तत्त्व आया कहाँ से। ससार माया एवं अविद्या के कारण है। जैन-दर्शन भी यह मानता है कि कर्म-वन्ध का कारण अज्ञान (अविद्या), राग-द्वेष (मोह-माया) है, परन्तु वह ब्रह्म से भिन्न है। भले ही उसे माया कहें या कर्म-वन्ध कहें—चेतन (ब्रह्म) से भिन्न दूसरा जड-तत्त्व, जिसे जैन-दर्शन पुद्गल कहता है, है अवश्य। द्वैत-भाव अर्थात् दो मूल तत्त्वो को माने विना ससार का अस्तित्व रह ही नही सकता। तीसरी वात यह है कि ज्ञान आत्मा का गुण है, आत्मा का स्वभाव है। जैन-दर्शन की दृष्टि से आत्मा ज्ञानमय है, ज्ञान के अतिरिक्त वह अन्य कुछ नही है। ज्ञानमय



आत्मा के स्व-स्वरूप पर श्रद्धा होना, स्व-स्वरूप को जानना और स्व-स्वरूप मे स्थिर होना ही क्रमशः सम्यक् दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्-चारित्र है और इसकी समन्वित-साधना की पूर्णता ही मुक्ति है। इसलिए ज्ञान आत्मा का आगत गुण नही, निज गुण है और वह मुक्त-अवस्था मे भी रहता है। ससार मे परेशानी एवं ससार-परिभ्रमण का कारण ज्ञान नही, ज्ञान की अशुद्ध-पर्याय अज्ञान है। राग-द्वेष एव मोह के कारण यह अशुद्ध पर्याय होती है। ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की अशुद्ध या असम्यक्-पर्याय का क्षय कर देना ही मोक्ष है। चौथी बात यह है कि सभी पदार्थ एक अपेक्षा से क्षणिक भी हैं, परन्तु वे सर्वथा क्षणिक नही है। प्रत्येक पदार्थ की पर्याय परिवर्तित होती है, परन्तु पदार्थ का द्रव्यत्व कभी नष्ट नही होता, वह सदा बना रहता है। स्वर्ण का आकार बदल सकता है। स्वर्ण के कगन को तोडकर उसका हार बना सकते हैं। कगन का हार बनाने मे आकार बदल गया, परन्तु स्वर्ण-द्रव्य, जो कगन मे था, वह हार मे भी है, वह नही बदला। इसलिए इतना सत्य अवश्य है कि सभी पदार्थ अनित्य भी हैं, क्षणिक भी हैं, परन्तु एकान्तरूप से अनित्य ही नही है। इस प्रकार सापेक्ष-दृष्टि से विचार करें, तो वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ सकते है। सापेक्ष-दृष्टि जिसे जैन-दर्शन मे अनेकान्त एव स्याद्वाद कहते हैं, वस्तु के स्वरूप को समझने-जानने एव परखने की एक वैज्ञानिक दृष्टि एव पद्धति है। इस विश्व का कोई भी पदार्थ न एकान्तरूप से नित्य है, न एकान्तरूप से अनित्य है, प्रत्युत वह नित्यानित्य है।

जैन-दर्शन एव आगम-साहित्य मे यह माना गया है कि आत्मा शुभ और अशुभ कर्म का कर्त्ता है और उसके शुभ और अशुभ अथवा सुख-दुःख रूप अनुकूल एव प्रतिकूल फल का भोक्ता या सवेदक भी है।[2] भगवती सूत्र मे गणधर गौतम के पूछने पर कि भगवन्! आत्मा स्वकृत कर्म का फल भोगता है, परकृत कर्म का या उभयकृत कर्म का फल भोगता है? इसके उत्तर मे श्रमण भगवान महावीर ने कहा—हे गौतम! ससार मे परिभ्रमणशील प्रत्येक आत्मा स्व-कृत कर्म-फल का ही भोग करता है। कोई भी व्यक्ति न तो पर-कृत कर्म-फल का वेदन करता है, और न उभय-कृत कर्म-फल का।[3] इससे स्पष्ट होता है, कि कर्म है, कर्म का बन्ध होता है, आबद्ध कर्म के फल का सवेदन होता है अथवा कर्म-फल मिलता है, और आबद्ध-कर्म का भोग करके या निर्जरा करके आत्मा कर्म-बन्धन से एकदेश से और सम्पूर्ण रूप से मुक्त भी होता है। क्योकि जब तक अपने कृत-कर्मों की निर्जरा (क्षय) नहीं करता, तब तक आत्मा उनसे मुक्त नही हो सकता। कर्मक्षय का यह अर्थ नहीं है कि वह कर्म-पुद्गलो के अस्तित्व को ही मिटा देता है। पुद्गल द्रव्यरूप से नित्य है, वे सदा से रहे हैं और सदा-सर्वदा रहेंगे। यहाँ क्षय करने का अर्थ इतना ही है कि उनका आत्मा के साथ संयोग-सम्बन्ध नही रहता। आत्म-प्रदेशो से अलग हो जाने के बाद वे कर्म नहीं, पुद्गल कहे जाते हैं।

निश्चय-दृष्टि

आत्म-स्वरूप की दृष्टि से आत्मा शुद्ध है। उसमे अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-चारित्र और अनन्त-वीर्य (शक्ति) विद्यमान है। अपने शुद्ध-स्वरूप को भूलकर पर-स्वरूप या पर-भाव मे परिणत होने के कारण ही वह कर्म से आबद्ध होकर ससार मे परिभ्रमण करता है। वह न तो पर-

---

२ उत्तराध्ययन सूत्र, २०, ३७

३ भगवती सूत्र १, ३



भाव का अथवा पर-पदार्थ का कर्त्ता है, और न भोक्ता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को जो उसके स्वभाव से भिन्न है, पर है, प्रभावित नही कर सकता। उसका परिणमन पर-द्रव्य मे नही, स्व-द्रव्य मे अथवा स्वभाव मे ही होता है। यह भेद-ज्ञान हो जाना कि मैं पर-द्रव्य (पुद्गल) से सर्वथा भिन्न हूँ, वह न मेरा था, न मेरा है और न मेरा रहेगा। न पुद्गल के सयोग से मेरे स्वभाव एव स्वरूप मे (आत्म-प्रदेशो मे) अभिवृद्धि होती है और न उसके वियोग से स्व-स्वरूप मे किसी तरह की क्षति होती है। अत स्व के द्वारा स्व-स्वरूप का बोध हो जाना, परिज्ञान हो जाना अथवा अपने से अपने आप को जान लेना सम्यक्-ज्ञान है, स्व द्वारा ज्ञात स्व-स्वरूप पर श्रद्धा-निष्ठा एवं विश्वास रखना सम्यक्दर्शन है, और पर-भाव एव पर-स्वरूप से अपने आप को हटाकर अपने स्वरूप मे स्थित रहना ही सम्यक्-चारित्र है। निश्चय दृष्टि से सम्यक्-चारित्र का अर्थ किसी भी तरह की बाह्य क्रिया को करना नही, प्रत्युत अपने परिणामो को समस्त पर भावो से हटा लेना और स्व-भाव मे स्थित हो जाना है। क्रिया का सम्बन्ध योग से है। योग आत्मा से भिन्न पौद्गलिक है। इसलिए योग से सबद्ध क्रिया बन्ध का हेतु आस्रव है, निर्जरा एव मोक्ष का हेतु सवर कैसे हो सकती है? क्रिया ही चारित्र है, यह दृष्टि रहने से अनुकूल क्रिया पर राग होगा और प्रतिकूल क्रिया पर द्वेष। राग-द्वेष स्वभाव नही, विभाव हैं। इसलिए राग-द्वेषात्मक वैभाविक परिणति योग आस्रव से आगत कर्म-पुद्गलो के बन्ध का कारण है। निर्जरा का कारण है—राग-द्वेष से रहित वीतरागभाव। वीतराग भाव का अभिप्राय है—वीतराग की दृष्टि क्रिया पर नही, स्वभाव मे रहती है। वह अपने आप को बाह्य-क्रियाओ का कर्त्ता एव भोक्ता नही, केवल द्रष्टा समझती है। वीतराग क्रिया करता नही, वह तो योग का स्वभाव होने से जब तक योग का आत्मा के साथ संयोग-सम्बन्ध रहता है, तब तक होती है। इसलिए बाह्य क्रिया मे परिणत होना सम्यक्-चारित्र नहीं है, सम्यक्-चारित्र है—स्व-स्वभाव मे परिणत होना।

व्यवहार-दृष्टि

आत्मा और कर्म का सयोग-सम्बन्ध होने के कारण होने वाली वैभाविक परिणति से कर्म का बन्ध होता है और उसका वह साता-असाता के रूप मे वेदन भी करता है। वह यह जानता है कि कर्म एव नोकर्म उसके अपने नहीं हैं। आत्मा मन, वचन एवं काय—तीनो योगो से, जो पौद्गलिक हैं, सर्वथा भिन्न है। उसका स्वरूप एव स्वभाव भी योगो से सर्वथा भिन्न है। राग-द्वेष भी उसके अपने शुद्ध-भाव नही, विभाव है, अशुद्ध भाव हैं। राग-द्वेषात्मक परिणति भाव एव परिणामो की अशुद्ध-पर्याय हैं, विभावपर्याय है। परन्तु है वह जीव की ही परिणति अजीव की नही। क्योकि अजीव मे, पुद्गल मे, जड-पदार्थों मे राग-द्वेष है ही नही। उनमे चेतना का अभाव है, न ज्ञानचेतना है, न कर्मचेतना है और न कर्मफलचेतना है। ये तीनो चेतना आत्मा की ही हैं। कर्म एवं कर्म-फल चेतना अशुद्ध-भाव है और ज्ञान चेतना शुद्ध-भाव है। राग-द्वेष एव कर्म या कर्म-फल चेतना मे परिणत आत्मा ही योगो मे होने वाले स्पन्दन से आगत कार्मण-वर्गणा के पुद्गलो से आवद्ध होता है, इसी को आगम मे बन्ध कहा है। राग द्वेष शुभ भी है और अशुभ भी हैं, इसी कारण शुभ और अशुभ आस्रव मे आने वाले शुभ और अशुभ कर्मो का या पुण्य-पाप का बन्ध होता है। राग-द्वेषात्मक भाव या परिणाम आत्मा के है। इस अपेक्षा मे आगम मे यह कहा गया है कि आत्मा शुभ और अशुभ कर्म का कर्त्ता है। वीतरागभाव आत्मा का स्व-भाव है। जब, जिस क्षण आत्मा की परिणति वीतरागभाव मे होती है, तब वह नये कर्मो का बन्ध नही करता है और आवद्ध कर्मो की



निर्जरा करता है। इसलिए वह स्वय कर्म का कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है और स्वय ही उनसे मुक्त भी होता है।

जीव : कर्म का कर्त्ता-भोक्ता भी है

साख्य और जैन-दर्शन मे अन्तर यही है कि वह साख्य की तरह इस बात को नही मानता कि कर्म की कर्त्ता प्रकृति है। प्रकृति ही कर्म का बन्ध करती है, और वही उससे मुक्त होती है। प्रकृति जड है, जब उसमे चेतना है ही नही, तब उसमे बन्ध के परिणाम आ कैसे सकते है? पुरुष (आत्मा) के परिणामो के बिना बन्ध होगा कैसे? भले ही वे परिणाम अशुद्ध हो, वैभाविक हो, राग-द्वेषात्मक हो, होगे पुरुष के ही, आत्मा के ही, जीव के ही। जड भावशून्य है, परिणामो से रहित है। इसलिए जैन-दर्शन एव जैन-आगम-वाङ्मय इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता कि बन्ध का कर्त्ता प्रकृति है और वही उससे मुक्त होती है। पुरुष प्रकृति को अपना समझता है, इसलिए वह प्रकृति द्वारा कृतकर्म का फल भोगता है, ससार मे परिभ्रमण करता है। यह कैसे सभव हो सकता है कि कर्म करे प्रकृति और उसका फल भोगना पडे पुरुष को? इसलिए श्रमण भगवान महावीर ने भगवती सूत्र मे स्पष्ट शब्दो मे कहा कि आत्मा अपने कृतकर्म के फल को ही भोगता है, पर-कृत कर्म के फल को नही। इसलिए वह केवल भोक्ता ही नही, कर्म का कर्त्ता भी है और अपने द्वारा आबद्ध कर्म-बन्धन से मुक्त भी वह स्वय ही होता है। बन्ध और मुक्ति—दोनो उसके परिणामो मे निहित हैं विभाव-परिणति बन्ध का कारण है, तो स्वभाव-परिणति मुक्ति का, परन्तु दोनो परिणाम (स्वभाव और विभाव) उसके अपने हैं, वे न प्रकृति के हैं, न पुद्गलो के हैं, न योगो के और न जड के हैं। इसलिए प्रकृति अथवा योगो मे होने वाले स्पन्दन या क्रिया के द्वारा बन्ध होता है अथवा **'क्रियाएँ बन्ध'** ऐसा न कहकर, यह कहा—**'परिणामे बन्ध'** अथवा बन्ध परिणामो से होता है।

ज्ञान और क्रिया

वेदान्त के व्याख्याकार, ब्रह्म-सूत्र के भाष्यकार एव अद्वैतवाद के संस्थापक आचार्य शकर की मान्यता है कि केवल ब्रह्म ही सत्य है, नानात्व से परिपूर्ण यह जगत् मिथ्या है, भ्रम है और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है—**'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर.।'** अनेक पदार्थों से भरा हुआ, जो जगत प्रत्यक्ष मे दिखाई देता है, वह भ्रम है, इसलिए असत्य है। जैसे रज्जू मे सर्प की भ्रान्ति होती है और हम उसे सर्प समझ बैठते हैं। परन्तु जब यह भ्रान्ति दूर होती है, तब हम उसे सर्प नहीं, रज्जू (रस्सी) ही समझते है। आचार्य शकर के मत से सर्प-रज्जू भ्रम की पहेली ही विश्व या जगत् पहेली का रहस्य है। इस भ्रान्ति एवं माया का नाश होने पर जगत् सत्य नही, मिथ्या प्रतीत होता है। माया अनादि और भावात्मक है, फिर भी ज्ञान के द्वारा समाप्त होने योग्य है। वास्तव मे वह भावात्मक नहीं है, उसे भावात्मक केवल इसलिए कहते हैं कि वह अभावात्मक नहीं है। वह न भावात्मक है और न अभावात्मक, वल्कि दोनो से भिन्न एक तीसरी वस्तु है।[४] आचार्य शकर का कहना है—'बन्धन का मूल कारण जीव का स्वय के विषय मे अज्ञान है। जीव स्वय ब्रह्म है, परन्तु अनादि अविद्या (माया) के कारण वह इस तथ्य को भूल जाता है, और स्वय को मन, शरीर, इन्द्रियाँ समझने लगता है। यही उसका अज्ञान है और इसी कारण वह स्वय को बन्धन मे पडा समझता है। जब यह दोषपूर्ण तादात्म्य समाप्त हो जाता है, तो जीव यह अनुभव

४ Studies of Vedanta, Lecture VII



करता है कि वह तो अनादिकाल से ब्रह्म ही था, मुक्त ही था। वास्तव मे बन्धन मानसिक भ्रम है, सत्तागत नही। इसलिए बन्धन केवल व्यावहारिक दृष्टिकोण से ही सत्य है। पारमार्थिक सत्य यह है कि जीव न कभी बन्धन मे पडता है और न कभी मोक्ष को प्राप्त करता है।[५] आचार्य शकर का कहना है कि जिस प्रकार रज्जू-सर्प भ्रम को केवल ज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है, कर्म अथवा क्रिया इस भ्रम को दूर करने मे जरा भी सहायक नही होती, उसी प्रकार मोक्ष भी—जो ब्रह्म एवं जगत् का भ्रम दूर होना है, केवल ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है, कर्म से नही।[६]

जैन-दर्शन आत्मा को सत्य मानता है, परन्तु वह जगत् को मिथ्या नहीं मानता। नानात्व से परिपूर्ण यह जगत् या लोक भी सत्य है। इस लोक मे आत्मा का अस्तित्व है और आत्मा के स्वरूप से सर्वथा भिन्न पुद्गल का, जड का अस्तित्व भी है। भले ही आत्मा एव पुद्गल का अथवा चेतन और जड का, या पुरुष और प्रकृति का अथवा ब्रह्म और माया का अथवा जीव और कर्म का सयोग सम्बन्ध अथवा आत्मा का कर्म के साथ आवद्ध होना अज्ञान (अविद्या) के कारण हुआ है, परन्तु इतना तो मानना ही होगा कि जिसके बन्धन मे आत्मा आवद्ध है, उसका अस्तित्व है, और मुक्त होने के बाद भले ही आत्मा के साथ उसका सम्बन्ध न रहे, पर जगत् मे उसका अस्तित्व रहेगा ही। केवल भ्रम कहने मात्र से किसी वस्तु की सत्ता समाप्त नही हो जाती। रज्जू मे सर्प के भ्रम का तात्पर्य इतना ही है कि वह रज्जू सर्प नहीं है, परन्तु सर्प की सत्ता तो है, उसका अस्तित्व तो है। यदि उसका अस्तित्व ही नही होता, तो यह भ्रान्ति कैसे होती। जैसे किसी भी व्यक्ति को खर-विषाण (गधे की सीग) की भ्रान्ति नहीं होती। अस्तु यह नितान्त सत्य है कि मन, आत्मा नही है। शरीर भी आत्मा नही है, इन्द्रियाँ भी आत्मा नही है। आगम की भाषा मे कहूँ, तो कर्म और नोकर्म भी आत्मा नही है। आत्मा से सम्बद्ध होने के कारण अज्ञानवश व्यक्ति उन पर-पदार्थों को अपना समझ लेता है, परन्तु सम्यक्-ज्ञान होने पर वह उन्हें अपने स्वरूप से सर्वथा भिन्न समझता है। इसी को आगम मे भेद-विज्ञान कहा है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि आत्मा से भिन्न ये पदार्थ अथवा अनेक जड-पदार्थों से परिपूर्ण यह जगत् या लोक सर्वथा मिथ्या है। जीव जड नही है, जैसे रज्जू सर्प नही है, इतना सत्य है। परन्तु सर्प सर्वथा मिथ्या है, जड जगत् सर्वथा मिथ्या है, उसका अस्तित्व ही नहीं है, यह अनुभूत सत्य को झुठलाना है। भ्रम या भ्रान्ति उसी वस्तु की होती है, जो उस वस्तु मे नही है, परन्तु जिसका अस्तित्व है अवश्य, जैसे सूर्य के प्रकाश मे चमकती हुई सीप मे रजत (चाँदी) की भ्रान्ति होती है। सीप मे रजत का अस्तित्व नही है, यह भ्रान्ति है, परन्तु रजत का अस्तित्व ही नही है, ऐसा नहीं कह सकते। जड को जीव मानना भ्रान्ति है, अज्ञान है। जब तक यह अज्ञान (अविद्या) रहता है, तब तक आत्मा कर्म-बन्धन से मुक्त नही होता। यह जड शरीर, इन्द्रियाँ एव मन जीव नहीं है, आत्मा इनसे भिन्न है, यह बोध हो जाना और पर-भाव एव पर-स्वरूप से हटकर अपने स्वरूप को जान लेना सम्यक्-ज्ञान है। भ्रान्ति का दूर हो जाना यह बन्धन से मुक्त होने का रास्ता है। परन्तु सम्यक्-ज्ञान होने का यह अर्थ नहीं है कि जड-पदार्थ एवं पुद्गलो का अस्तित्व ही मिट गया। उनके अस्तित्व से इन्कार करना, यही सबसे बडा अज्ञान है।

ज्ञान से स्वरूप का बोध होता है और साधक यह जान लेता है कि मैं कर्म और नोकर्म

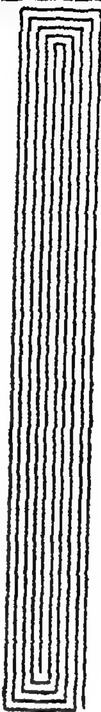
---

५ ईशावास्योपनिषद्, ५ शाकरभाष्य

६ कठोपनिषद् १, २, १४



रूप पुद्गलो से सर्वथा भिन्न हूँ, इतने मात्र से वह वन्धन से मुक्त हो नही जाएगा। जैसे व्यक्ति ने भ्रान्तिवश सीप को रजत समझ कर एकत्रित कर लिया। उसे जव यह वोध हो गया कि यह रजत नही, सीप है, तो उसकी भ्रान्ति दूर हो गई। हम यह कह सकते हैं कि उसे ज्ञान हो गया और ज्ञान का फल यह है कि उसका भ्रम दूर हो गया। परन्तु ज्ञान होने मात्र से वह तव तक उस सग्रहीत सीप के वोझ से मुक्त नही हो सकता, जव तक उन्हें अपनी जेव से निकाल कर नही फेंक देगा। इसी प्रकार अज्ञान, अविद्या एव मोहवश आवद्ध कर्मो का यथार्थ वोध हो जाना एक वात है और उन आवद्ध कर्मो से मुक्त होना, उनकी निर्जरा करके उनके आवरण को हटा देना दूसरी वात है। प्रथम को आगम मे सम्यक्-ज्ञान कहा है, और दूसरे को सम्यक्-चारित्र। सम्यक्ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान से साधक को यह वोध हो जाता है कि मेरा अपना स्वरूप क्या है और ससार का स्वरूप क्या है? मैं कर्म से आवद्ध क्यो हूँ? आवरण से आवृत होने का कारण क्या है? और उससे अनावृत होने का मार्ग क्या है? ज्ञान से मार्ग का वोध हो जाता है, परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति होगी, उस मार्ग पर गति करने से। गति एक क्रिया है, इसे आगम मे चारित्र एव आचार कहा है। वन्धन से मुक्त होने के लिए मात्र ज्ञान ही नही, ज्ञान के साथ चारित्र का, क्रिया का, आचार का होना भी आवश्यक है। न केवल क्रिया से आत्मा वन्धन से मुक्त हो सकता है, और न मात्र ज्ञान से। इसलिए जैन-दर्शन अद्वैत-वेदान्त की इस वात को तो मानता है, कि ससार मे आवद्ध रहने का कारण अविद्या (अज्ञान) है, परन्तु इसे स्वीकार नही करता कि उससे मुक्त होने के लिए ज्ञान का होना ही पर्याप्त है, कर्म (चारित्र) की, क्रिया की कोई आवश्यकता नही है।



जैन-दर्शन मे वन्ध और मोक्ष

सात या नव तत्त्व मे दो तत्त्व ही मुख्य हैं—जीव-अजीव, जड-चेतन, आत्मा-पुद्गल, पुरुष-प्रकृति या ब्रह्म-माया। स्थानाग सूत्र मे दो द्रव्य कहे हैं—'जीव दव्वा चेव अजीव दव्वा' अथवा जीव और अजीव द्रव्य। अजीव-द्रव्य के पाँच भेद किए गए हैं—धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश-द्रव्य, काल-द्रव्य और पुद्गल-द्रव्य। भले ही जीव और अजीव कह दें या आत्मा और पुद्गल—इन दो की प्रमुखता है, सृष्टि की रचना मे। आत्मा और पुद्गल का सयोग-सम्वन्ध संसार है और इस सयोग से मुक्त-उन्मुक्त हो जाना मोक्ष है। जव आत्मा स्व-भाव को छोडकर विभाव मे परिणमन करता है, राग-द्वेष के प्रवाह मे प्रवहमान रहता है, कषायो के रग से अनुरजित रहता है, तव वह कर्म से आवद्ध होता है, और कर्म से आवद्ध होने के कारण ही संसार मे परिभ्रमण करता है। जव आत्मा को स्वरूप का वोध हो जाता है और भेद-विज्ञान द्वारा परिज्ञात स्व-स्वरूप मे स्थित होता है, तव वह नये कर्म का वन्ध नही करता, प्रत्युत आवद्ध कर्मों की निर्जरा करता है, उनसे मुक्त होता है। राग-भाव से हटकर वीतराग-भाव मे आना कर्म-वन्धन से मुक्त होना है।

वन्धन कव से ?

भारत के सभी आस्तिक-दर्शन इस वात को मानते हैं कि आत्मा की आदि नही है, वह अनादि है। और साख्य, योग, न्याय-वैशेषिक, अद्वैत-वेदान्त—सभी आस्तिक-दर्शन इस तथ्य को भी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि ससार से मुक्त होने के वाद आत्मा पुन ससार मे जन्म नहीं लेता। पुनर्जन्म-मरण वद्ध-आत्मा का होता है, मुक्त का नही। ससार-परिभ्रमण का कारण पुरुष-प्रकृति के सयोग को मानें या ब्रह्म और माया के संयोग को, वह ठीक जैन-दर्शन की मान्यता के अनुसार अनादि काल से है। आचार्य शकर की मान्यता के अनुसार, 'अविद्या एव भ्रम का



नाश होते ही आत्मा को अपने ब्रह्म-स्वरूप का बोध हो जाता है और वह यह जान लेता है कि भ्रम या अविद्या के कारण मैं अनादि काल मे माया के साथ रहा, परन्तु वास्तव मे मैं तो अनादि-काल से ब्रह्म ही था।' साख्य की भाषा मे पुरुष-प्रकृति का भेद-ज्ञान नही होने से पुरुष अनादिकाल से ससार मे आवद्ध रहा। जैन आगम एव जैन-दर्शन भी इसी बात को मानते हैं कि जीव भी अनादि से है और पुद्गल भी अनादि से है। आत्मा को अपने स्वरूप का परिज्ञान न होने के कारण अज्ञान एव मोहवश वह कर्म-पुद्गलो से आवद्ध होकर ससार मे परिभ्रमण करता रहा। जव वह अज्ञान या मिथ्यात्व के आवरण को हटा देता है, मिथ्यात्व-ग्रन्थि (गाठ) का भेदन करके सम्यक्त्व को, सम्यक्-ज्ञान को अनावृत कर लेता है, तव उसे अपने स्वरूप का यथार्थ वोध हो जाता है। इससे वह यह जान लेता है, कि मैं शरीर, इन्द्रिय, मन एव कर्म आदि सभी पौद्गलिक पदार्थों से सर्वथा भिन्न हूँ। मैं अथवा आत्मा स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध होते हुए भी कर्म मे आवद्ध क्यों है, कर्म-वन्ध का कारण क्या है और उससे मुक्त होने का साधन क्या है, इसका परिज्ञान हो जाता है और एक दिन वह समस्त कर्म-वन्धन एव कर्मजन्य साधनो से सर्वथा मुक्त हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अनन्तकाल से अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान इस धारा का आदिकाल किसी भी दार्शनिक को ज्ञात नही है। जो वस्तु अनन्त काल से है, उसकी आदि हो ही नहीं सकती। आदि सान्त की होती है, अनन्त की नही। इसलिए ससारी आत्मा अनादि से कर्म-पुद्गलो से आवद्ध है।

अनादि-सयोग का अन्त कैसे ?

आत्मा और पुद्गल (कर्म) का सयोग अनादि से है, फिर वह अनन्त तक रहेगा ? जो वस्तु अनन्तकाल से है, जिसका आदिकाल है ही नही, उस अनन्त का अन्त भी नही होगा। अन्त उसी वस्तु का होता है, जिस वस्तु का आदिकाल निश्चित है। यदि ससारी-आत्मा अनादिकाल से कर्म से आवद्ध है, तो वह कभी मुक्त नही हो सकती ?

इसका समाधान श्रमण भगवान महावीर ने इस प्रकार किया कि आत्मा और पुद्गल—दोनो स्वतन्त्र द्रव्य हैं। दोनो अनादिकाल से हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे। ऐसा कोई भी क्षण नही रहा कि आत्मा का अस्तित्व न रहा हो, नही है और नही रहेगा। यही वात पुद्गल के सम्वन्ध मे है। आत्मा और कर्म-पुद्गल का सयोग सम्वन्ध होने पर भी दोनो का अस्तित्व स्वतन्त्र है। आत्मा से सम्वद्ध रहने पर भी आत्मा के असख्यात प्रदेशो मे से एक भी प्रदेश पुद्गल रूप मे परिणत नहीं होता और पुद्गलो का एक भी परमाणु चेतन रूप मे परिणत नही होता। दोनो के साथ रहने पर भी आत्मा की परिणति चेतन रूप मे होती है, और पुद्गल की परिणति पुद्गल (जड) रूप मे होती है। दोनो एक-दूसरे से सम्वद्ध दिखाई देने पर भी एक-दूसरे के रूप मे समाहित नहीं होते। जैसे लोहे के गोले को आग मे डालने पर अग्नि के परमाणु उसमे इतने एकाकार परिलक्षित होते हैं कि वह लोहे का नहीं, आग का गोला-सा दिखाई पडता है। परन्तु लोहे के परमाणु अलग है और अग्नि के सयोग मे आये हुए आग के परमाणु उससे अलग हैं। दोनो परमाणु पुद्गल है, फिर भी उस गोले को आग से वाहर निकालकर कुछ देर पड़ा रहने दें, तो ठण्डा होने पर आप देखेंगे कि आग के परमाणु शान्त हो जाते हैं, और वह लोहे का गोला ही रह जाता है। जैसे अग्नि के परमाणु लोहे से भिन्न हैं, इसी प्रकार पुद्गल के सयोग से आत्मा और पुद्गलो से निर्मित शरीर एक दिखाई देते हैं, परन्तु वस्तुत दोनो एक-दूसरे के स्वरूप एवं स्वभाव से सर्वथा भिन्न हैं। दोनो मे होने वाली परिणति भी पृथक्-पृथक् होती है। इसलिए उनका पृथक् होना सम्भव है।



कर्म का बन्ध वैभाविक परिणति (राग-द्वेष) से होता है, और जब तक आत्मा मे मोह-कर्म का उदय-भाव रहता है, तब तक प्रति समय कर्म का बन्ध होता रहता है। आत्मा पूर्व मे आबद्ध कर्म के विपाक का प्रति समय वेदन करता है, और वह कर्म अपना फल देकर आत्म-प्रदेशो से अलग हो जाता है और नये कर्मों का बन्ध हो जाता है। इस प्रकार प्रवाह की दृष्टि से कर्म का प्रवाह अनादि से चला आ रहा है। हम यह नही कह सकते कि यह कर्म-प्रवाह आत्मा के साथ कब से आ रहा है। वैभाविक परिणति से कर्म बँधते हैं और कर्म के कारण मोह, राग-द्वेष आदि विभाव जागृत होते हैं। जैसे अण्डे से मुर्गी निकलती है, और मुर्गी से अण्डा उत्पन्न होता है। यह नही कहा जा सकता कि अण्डा पहले अस्तित्व मे आया या मुर्गी। दोनो का यह पारस्परिक सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। इसी प्रकार आत्मा और कर्म का प्रवाह रूप से सयोग सम्बन्ध अनादि काल से है, परन्तु एक ही कर्म अनादि काल से नही है। प्रतिक्षण बँधने वाले कर्म की आदि है और उसका बन्ध कितने समय का है अथवा वह कितने काल तक सत्ता मे रहेगा, उसकी स्थिति का बन्ध भी उसके रस के बन्ध के साथ हो जाता है और वह कब उदय मे आकर फल देगा, यह भी स्थिति के अनुरूप निश्चित हो जाता है, इसलिए प्रतिक्षण बँधने वाले कर्म की आदि भी है और उसका अन्त भी है। इसी कारण जैन-दर्शन इस बात को मानता है कि आबद्ध कर्म को तोडा भी जा सकता है। आत्मा राग-द्वेषमय विभाव-धारा मे बहता है, तब कर्म बाँधता है, और राग-द्वेष का क्षय करके वीतरागभाव अथवा स्वभाव मे परिणत होता है, तब वह उससे मुक्त हो सकता है।

अस्तु, कर्म-प्रवाह की भले ही आदि न हो, परन्तु समय-समय पर बंधने वाले कर्मों की आदि है, इसलिए आत्मा उनसे मुक्त भी हो सकता है। प्रतिक्षण आत्मा पुराने कर्मों से छुटकारा पाता भी है—भले ही उसी क्षण नये कर्मों को बाँध ले, इससे यह कहना नितान्त गलत है कि वह बन्धन से मुक्त नही हो सकता। भले ही कर्म-बन्ध अनादि से है, परन्तु सवर और निर्जरा की अथवा वीतराग-भाव की साधना से उनका अन्त किया जा सकता है।

बन्ध के कारण

आगम-वाङ्मय मे कर्म-बन्ध का मूल कारण राग-द्वेष को माना है। योग—मन, वचन और काय-योग मे जब स्पन्दन होता है, क्रिया होती है, गति होती है, तब कार्मण-वर्गणा के पुद्गल आते हैं। कर्म के आने के द्वार को आस्रव कहा है। इसलिए शुभ-योग अथवा शुभ-प्रवृत्ति और अशुभ-योग अथवा अशुभ-प्रवृति दोनो कर्म के आगमन का द्वार हैं। इससे कर्म आते अवश्य हैं, परन्तु केवल योगो की प्रवृत्ति से उनका आत्म-प्रदेशो के साथ बन्ध नही होता। आगमो मे प्रकृति-बन्ध, प्रदेश-बन्ध, अनुभाग (रस) बन्ध और स्थिति-बन्ध यह चार प्रकार का बन्ध बताया है। आस्रव से आने वाले कर्म ज्ञानावरण आदि किस प्रकृति (स्वभाव) के हैं और उनके अनन्त परमाणुओ से निर्मित स्कन्ध कितने प्रदेश के हैं—यह दो प्रकार का बन्ध योगो मे होने वाले स्पन्दन एव प्रवृत्ति से होता है। परन्तु वे शुभ या अशुभ, तीव्र या मन्द किस तरह के रस के हैं और कितने काल तक आत्म-प्रदेशो को आवृत कर रहने वाले हैं, यह बन्ध प्रवृत्ति के साथ राग-द्वेषात्मक परिणामो से होता है और इसी को आगम मे बन्ध कहा है। इस दृष्टि से आगम मे राग-द्वेष अथवा कषाय और योग को बन्ध का हेतु कहा है। इसी का विस्तृत रूप है—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, ये पाँच भेद। राग-द्वेष या कषाय मिथ्यात्व गुणस्थान (प्रथम गुणस्थान) से लेकर सूक्ष्मसपराय गुण-



स्थान (दसवे गुणस्थान) तक रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थान मे राग (माया-लोभ) और द्वेष (क्रोध-मान) तीव्रतम रहता है। अव्रत एव देश-व्रत सम्यक्दृष्टि मे तीव्र कषाय रहता है। प्रमत्त-सयत मे मन्द कषाय रहता है, अप्रमत्त मे मन्दतर और आठवे से दसवें तक मन्दतम कषाय रहता है। एकादश गुणस्थान मे कषाय पूर्णत उपशान्त रहता है, उसका नाश नही होता, इसी कारण इस गुणस्थान को स्पर्श करने वाला साधक अवश्य ही नीचे गिरता है। परन्तु अष्टम गुणस्थान से कषायो का क्षय करते हुए क्षपक श्रेणी से गुणस्थानों का आरोहण करने वाला साधक दसवें से सीधा बारहवें गुणस्थान को स्पर्श करके त्रयोदश गुणस्थान मे पूर्णत वीतराग-भाव मे स्थित हो जाता है। अत द्वादश एव त्रयोदश दोनो गुणस्थानो मे केवल योग रहता है, इसलिए योगो की प्रवृत्ति से केवल कर्म आते हैं और तत्क्षण झड जाते हैं, कषाय अथवा राग-द्वेष का अभाव होने से उनका बन्ध नही होता, प्रत्युत पूर्व आबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है। और चतुर्दश गुणस्थान मे योग का भी निरोध करके साधक अयोग अवस्था को प्राप्त होकर सिद्ध, बुद्ध एव मुक्त हो जाता है, इसलिए इस गुणस्थान मे कर्म का आगमन भी नही होता।

निष्कर्ष यह रहा कि बन्ध का कारण राग-द्वेष एवं कषाय युक्त परिणाम है। जब तक योगो का अस्तित्व है, तब तक प्रवृत्ति तो होगी ही। प्रवृत्ति योगो का स्वभाव है। वह कर्म-पुद्गलो को अपनी ओर आकर्षित करती है, परन्तु उनका आत्म-प्रदेशो के साथ बन्ध होता है कषाय-भाव से ही। अत राग-भाव, कषाय-भाव बन्ध का कारण है, और वीतराग-भाव ससार-चक्र से, कर्म-बन्ध से मुक्त होने के कारण है। इसलिए ससार एव बन्ध का अर्थ है—कषाय-भाव या राग-भाव मे परिणत होना और मोक्ष या मुक्ति का अर्थ है—वीतराग-भाव मे स्थित रहना, उसी मे परिणत होना।

बन्ध एव अबन्ध की इस प्रक्रिया को आगम एव विशेषावश्यकभाष्य मे एक रूपक के द्वारा समझाया गया है—एक व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर खड़ा होता या लेट जाता है, तो हवा के झोके के साथ आने वाली मिट्टी उसके शरीर पर चिपक जाती है और दूसरा व्यक्ति बिना तेल लगाये खुले आकाश मे खडा होता है, उसके शरीर पर हवा के झोंके से मिट्टी लगती तो है, परन्तु चिपकती नही है। उत्तराध्ययनसूत्र में एक रूपक और दिया गया है—एक व्यक्ति मिट्टी के दो गोले—एक गीला और एक सूखा, दीवार पर फेंकता है, तो गीला गोला दीवार पर चिपक जाता है और सूखा गोला दीवार को स्पर्श तो करता है, परन्तु उस पर चिपकता नही है। एक उदाहरण और दिया जा सकता है—एक ईंट रखने के बाद उस पर दूसरी ईंट रखने के पूर्व प्रथम ईंट पर सीमेन्ट, चूना या गारा लगा दिया जाता है, तो वे ईंटें एक-दूसरी से भली-भाँति आबद्ध होकर दीवार का आकार ले लेती हैं, भव्य-भवन के रूप में साकार रूप ले लेती हैं। परन्तु यदि उनके मध्य मे सीमेन्ट, चूना या गारा न लगाया जाए, तो वे ईंटें परस्पर आबद्ध होकर दीवार या भवन का रूप नहीं ले सकती। एक ही झटके में गिर सकती हैं या गिरायी जा सकती हैं।

यही स्थिति कर्म-बन्ध की है। जिस व्यक्ति के परिणामो मे राग-द्वेष एवं कषाय-भाव की स्निग्धता (चिकनाहट) है, वही कर्म-रज से आबद्ध होता है। अलग-थलग रही हुई दो ईंटो को परस्पर आबद्ध करने की क्षमता सीमेण्ट की चिकनाहट मे ही है। यदि साधक के परिणामो मे कषायो का चिकनापन न हो तो कोई कारण नही कि कर्म उसे बाँध ले। मिट्टी का गीला गोला ही दीवार पर चिपकता है। कषाय-भाव एव राग-भाव के गीलेपन से रहित वीतराग-भाव मे स्थित साधक कदापि कर्म से आबद्ध नही होता।



इस प्रकार जैन-धर्म का कर्म-सिद्धान्त वैज्ञानिक एव मनोवैज्ञानिक पद्धति से किया गया विश्लेषण है। व्यक्ति का निर्माता उसका कार्य नही, उसके परिणाम हैं, विचार है, चिन्तन है। व्यक्ति जैसा बना है, जिस रूप मे बन रहा है और भविष्य मे जिस रूप का बनेगा, वह परिणाम के साँचे मे ही ढल कर बना है और बनेगा। अपने परिणामो से ही वह बँधा है, और अपने परिणामो से ही मुक्त होगा। परिणामो की, भावो की, विचारो की राग-द्वेष युक्त अशुद्ध पर्याय अथवा आध्यात्मिक भाषा मे कहूँ तो विभाव-पर्याय वन्ध का कारण है और राग-द्वेष से रहित वीतराग-भाव की शुद्ध-विशुद्ध एव परम-शुद्ध पर्याय मुक्ति का कारण है। यदि एक शब्द मे कहूँ तो **'राग-भाव ससार है, और वीतराग-भाव मोक्ष है।'** अस्तु मन (परिणाम) ही वन्ध का कारण है और मन ही मुक्ति का हेतु है—

'मन एव मनुष्याणा, कारण वन्ध-मोक्षयो'

संवर और निर्जरा

कर्म के आने का द्वार आस्रव है। जब तक आस्रव का द्वार खुला रहेगा, तब तक कर्म-प्रवाह भी आता रहेगा। व्यक्ति पूर्व के आवद्ध कर्मों का विपाक भोगकर उसे आत्म-प्रदेशो से अलग करने के साथ नये कर्मों को बाँध लेता है। इसलिए वन्ध से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम आस्रव के द्वार को रोकना आवश्यक है। इस साधना को सवर कहा है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग—ये पाँच आस्रव हैं, इसके विपरीत सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और शुद्धोपयोग सवर है। स्व-स्वरूप का बोधरूप सम्यक्-ज्ञान और उस पर श्रद्धा एव निष्ठा होना सम्यक्-दर्शन है, इसे सम्यक्त्व भी कहते हैं। व्रत का अर्थ है—स्व-स्वरूप से भिन्न पर-पदार्थों मे आसक्त नही रहना, केवल पदार्थों का नही, परन्तु अज्ञानवश उस पर रहे हुए ममत्व का त्याग करना, पर-पदार्थों की तृष्णा एव आकांक्षा का परित्याग करना। अपने स्वरूप मे जागृत रहकर विवेकपूर्वक गति करना अप्रमाद है और क्रोध, मान, माया और लोभ का प्रसग उपस्थित होने पर भी इस वैभाविक परिणति मे नही वहना अथवा कषायो को उदित नही होने देना अकषाय-भाव है। शुद्धोपयोग का अर्थ है—राग-द्वेष एव शुभ और अशुभ भावो से ऊपर उठकर अपने स्वभाव अथवा वीतराग-भाव मे परिणत रहना। इस प्रकार साधक जब अपने विशुद्ध स्वरूप को अनावृत करने के लिए सवर की साधना मे स्थित होता है, तब वह नये कर्मों का वन्ध नही करता। आस्रव के द्वार को सवर द्वारा रोक देने का तात्पर्य है—कर्म-वन्ध की परम्परा को रोक देना।

सवर की साधना से साधक कर्म-प्रवाह को अवरुद्ध करता है, और फिर निर्जरा की साधना से पूर्वआवद्ध कर्मों का क्षय करता है। आगम में निर्जरा के लिए तप-साधना को महत्वपूर्ण बताया है। जिस प्रकार स्वर्ण पर लगे हुए मल को दूर करने के लिए उसे अग्नि मे डालकर, तपाकर शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार तप की अग्नि के द्वारा साधक कर्म-मल को जलाकर नष्ट कर देता है। आगम मे तप दो प्रकार का बताया गया है—वाह्य-तप और आभ्यन्तर-तप। अनशन, ओणोदर्य, रस-परित्याग, भिक्षाचरी, परिसलीनता और काया-क्लेश—ये छह प्रकार के वाह्य-तप हैं। विनय, वैयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) प्रायश्चित्त, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग—ये छह आभ्यन्तर-तप हैं। तप-साधना से पूर्व-आवद्ध कर्मों का क्षय होता है। तप-साधना निर्जरा का एक साधन है। मुख्यता है, उसमे स्व-स्वरूप मे रमणरूप परिणामो की, पदार्थों के प्रति रही हुई आसक्ति एव व्यामोह के

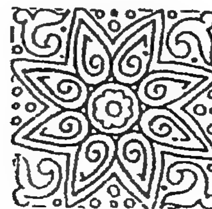


त्यागमय भावना की। इसलिए श्रमण भगवान महावीर ने तप की परिभाषा करते हुए कहा है— इच्छा (आकाक्षा एवं तृष्णा) का निरोध करना, उनका क्षय करना ही तप है—

'इच्छा निरोधो तप ।'

पदार्थों के प्रति मन मे जो राग-भाव है, उसी से इच्छा एव तृष्णा का भाव जागृत होता है, अनुकूल प्रतीत होने वाले पदार्थों को प्राप्त करने की एव अप्राप्त भोगो को तथा भोग्य पदार्थों को भोगने की कामना उद्बुद्ध होती हैं। यह रागमय मनोवृत्ति ही बन्ध का कारण है। इसलिए इस इच्छा एव आकाक्षा की मनोवृत्ति को रोकना, उसका निरोध करना तप है। तप का अर्थ है— तपाना, परन्तु मात्र शरीर एव इन्द्रियो को नही, मनोविकारो को, भोगेच्छा को, वासना को तपाना है। जिस साधना के द्वारा इच्छा, तृष्णा, वासना एव कामना नष्ट होती है और साधक निष्काम-भाव से साधना मे सलग्न होता है, स्व-स्वरूप मे परिणमन करता है, वह तप है, और वह निर्जरा का कारण है। इस साधना से एक भव के एव वर्तमान भव के ही नही, पूर्व के अनेक भवो मे आवद्ध कर्मों का भी एक क्षण मे नाश हो जाता है। इसके लिए यह रूपक दिया गया है कि हजारो मन घास का ढेर एक प्रज्वलित चिनगारी के डालते ही जिस प्रकार कुछ ही क्षणो में जलकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सम्यक्ज्ञानपूर्वक की गई तप-साधना से करोडो भवो के आवद्ध कर्मों को क्षय होते देर नहीं लगती।

वन्ध और मोक्ष के स्वरूप को आगम-साहित्य मे सरोवर के रूपक द्वारा समझाया है— तालाव मे नालो के द्वारा वर्षा का पानी आता है, और वह उसमे सग्रहीत हो जाता है। पहले आया हुआ पानी काम में आता रहता है, और नया पानी पुनः आकर उस सरोवर को भरा हुआ रखता है। यदि उसके नालो को वन्द कर दिया जाए, तो नया पानी उसमें आएगा नही, और पहले का आया हुआ पानी काम में लेने से खाली हो जाएगा या खाली कर दिया जाए तो सरोवर सूख जाएगा। इस प्रकार आस्रव कर्म रूप पानी के आने का नाला है और उससे आगत कर्मों का वन्ध के द्वारा आत्म-प्रदेशो के साथ वन्ध होता है। सवर कर्म आने के स्रोत को रोकने की साधना है, जिससे नये कर्मों का वन्ध रुक जाएगा और पूर्व के आवद्ध कर्मो की तप-साधना से निर्जरा करके साधक कर्म-वन्धन से पूर्ण मुक्त हो जाएगा। इस प्रकार आस्रव और बन्ध ये दो तत्त्व संसार परि-भ्रमण के कारण हैं, और सवर एव निर्जरा ये दो तत्त्व मुक्ति के कारण है।





जैन-दर्शन में मिथ्यात्व और सम्यक्त्व : एक तुलनात्मक विवेचन



डा० सागरमल जैन एम ए , पी-एच डी

मिथ्यात्व का अर्थ

सामान्यतया जैनागमो में अज्ञान और अयथार्थ ज्ञान दोनो के लिए मिथ्यात्व शब्द का प्रयोग हुआ है। यही नहीं किन्हीं सन्दर्भों में अज्ञान, अयथार्थ ज्ञान, मिथ्यात्व और मोह समानार्थक रूप में प्रयुक्त भी हुए है। यहाँ पर हम अज्ञान शब्द का प्रयोग एक विस्तृत अर्थ में कर रहे हैं जिसमें उसके उपरोक्त सभी अर्थ समाहित हैं। नैतिक दृष्टि से अज्ञान नैतिक-आदर्श के ज्ञान का अभाव और शुभाशुभ विवेक की कमी को अभिव्यक्त करता है। जब तक प्राणी को स्व-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नही होता है अर्थात् मैं क्या हूँ ? मेरा आदर्श क्या है ? या मुझे क्या प्राप्त करना है ? तब तक वह नैतिक जीवन में प्रविष्ट ही नही हो सकता। जैन विचारक कहते हैं कि जो आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता, जड पदार्थो के स्वरूप को नहीं जानता, वह क्या सयम की आराधना (नैतिक साधना) करेगा ?[१]

ऋषिभाषित सूत्र मे तरुण साधक अर्हत गाथापतिपुत्र कहते है—अज्ञान ही बहुत बडा दुःख है। अज्ञान से ही भय का जन्म होता है। समस्त देहधारियो के लिए भव-परम्परा का मूल विविध रूपो में व्याप्त अज्ञान ही है। जन्म-जरा और मृत्यु, भय-शोक, मान और अपमान सभी जीवात्मा के अज्ञान से उत्पन्न हुए है। ससार का प्रवाह (सतति) अज्ञानमूलक है।[२]

भारतीय नैतिक चिन्तन मे मात्र कर्मों की शुभाशुभता पर ही विचार नही किया गया वरन् यह भी जानने का प्रयास किया गया कि कर्मों की शुभाशुभता का कारण क्या है। क्यो एक व्यक्ति अशुभ कृत्यो की ओर प्रेरित होता है और क्यो दूसरा व्यक्ति शुभकृत्यों की ओर प्रेरित होता है ? गीता मे अर्जुन यह प्रश्न उठाता है कि हे कृष्ण ! नही चाहते हुए भी किसकी प्रेरणा से प्रेरित हो, यह पुरुष पापकर्म में नियोजित होता है।[३]

जैन-दर्शन के अनुसार इसका जो प्रत्युत्तर दिया जा सकता है, वह यह है कि मिथ्यात्व ही अशुभ की ओर प्रवृत्ति करने का कारण है।[४] बुद्ध का भी कथन है कि मिथ्यात्व ही अशुभाचरण और सम्यक्दृष्टि ही सदाचरण का कारण है[५]। गीता का उत्तर है रजोगुण से उत्पन्न काम ही ज्ञान को आवृत कर व्यक्ति को बलात् पापकर्म की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध, जैन और गीता के आचार-दर्शन इस सम्बन्ध मे एक मत है—अनैतिक आचरण के मार्ग मे प्रवृत्ति का कारण व्यक्ति का मिथ्या दृष्टिकोण ही है।

---

१ दशवैकालिक ४।११
२ इसिभासियाइं सुत्त महावडज्ज नामज्झयण
३ गीता ३।३६
४ इसिभासियाइ सुत्त २१।३
५ अगुत्तरनिकाय १।१७



मिथ्यात्व क्या है ?

जैन विचारको की दृष्टि मे वस्तुतत्त्व का अपने यथार्थस्वरूप मे वोध नही होना, यही मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व लक्ष्य विमुखता है, तत्त्वरुचि का अभाव है, सत्य के प्रति जिज्ञासा या अभीप्सा का अभाव है। बुद्ध ने अविद्या को वह स्थिति माना है जिसके कारण व्यक्ति परमार्थ को सम्यक्रूप से नही जान पाता है। बुद्ध कहते हैं—"आस्वाद दोप और मोक्ष को यथार्थत नहीं जानता है, यही अविद्या है।"[६] मिथ्या स्वभाव को स्पष्ट करते हुए बुद्ध कहते है 'जो मिथ्या दृष्टि है—मिथ्या समाधि है—इसी को मिथ्या स्वभाव कहते है।'"[७] मिथ्यात्व को हम एक ऐसा दृष्टिकोण कह सकते है जो सत्यता की दिशा से विमुख है। सक्षेप मे मिथ्यात्व असत्याभिरुचि है, राग और द्वेष के कारण दृष्टिकोण का विकृत हो जाना है।

जैन-दर्शन मे मिथ्यात्व के प्रकार

पूज्यपाद देवनन्दी ने मिथ्यात्व को उत्पत्ति की दृष्टि से दो प्रकार का बताया है·

१ नैसर्गिक (अनर्जित)—जो मिथ्यात्व मोहकर्म के उदय से होता है, वह नैसर्गिक मिथ्यात्व है।

२ परोपदेशपूर्वक—जो मिथ्या धारणा वाले लोगो के उपदेश से स्वीकार किया जाता है। अत. यह अर्जित या परोपदेशपूर्वक मिथ्यात्व है।

यह अर्जित मिथ्यात्व चार प्रकार का है—

(अ) क्रियावादी—आत्मा को कर्ता मानना

(ब) अक्रियावादी—आत्मा को अकर्ता मानना

(स) अज्ञानी—सत्य की प्राप्ति को सम्भव नही मानना

(द) वैनयिक—रूढ-परम्पराओ को स्वीकार करना।

स्वरूप की दृष्टि से जैनागमो मे मिथ्यात्व पाँच प्रकार का भी माना गया है।"[८]

१ एकान्त—जैनतत्त्वज्ञान मे वस्तुतत्त्व को अनन्तधर्मात्मक माना गया है। उसमे समान जाति के अनन्त गुण ही नही होते है वरन् विरोधी गुण भी समाहित होते हैं। अत' वस्तु-तत्त्व का एकागी ज्ञान उसके सन्दर्भ मे पूर्ण सत्य को प्रकट नही करता। वह आशिक सत्य होता है, पूर्ण सत्य नही। आशिक सत्य को जब पूर्ण सत्य मान लिया जाता है तो वह मिथ्यात्व हो जाता है। न केवल जैन विचारणा वरन् बौद्ध विचारणा मे भी एकान्तिक ज्ञान को मिथ्या कहा गया है। बुद्ध कहते हैं—"भारद्वाज! सत्यानुरक्षक विज्ञ पुरुष को एकाश से ऐसी निष्ठा करना योग्य नहीं है कि यही सत्य है और बाकी सब मिथ्या है।" बुद्ध इस सारे कथानक मे इसी बात पर बल देते हैं कि सापेक्षिक कथन के रूप मे ही सत्यानुरक्षण होता है, अन्य प्रकार से नहीं[९]। उदान मे भी बुद्ध ने कहा है—जो एकातदर्शी हैं वे ही विवाद करते हैं[१०]। इस प्रकार बुद्ध ने भी एकात को मिथ्यात्व माना है।

२. विपरीत—वस्तुतत्त्व का उसके स्व-स्वरूप के रूप मे ग्रहण नही कर उसके विपरीत रूप

---

६ सयुत्तनिकाय २१।३।३।८ ७ सयुत्तनिकाय ४३।३।१

८ तत्वार्थ० सर्वार्थसिद्धि टीका–(पूज्यवाद) ८।१

९ मज्झिमनिकाय चकिसुत्त उद्धृत महायान, पृ० १२५, १० उदान ६।४



मे ग्रहण करना भी मिथ्यात्व है। प्रश्न हो सकता है कि जब वस्तुतत्त्व अनन्तधर्मात्मक है और उसमे विरोधी धर्म भी रहे हुए हैं तो सामान्य व्यक्ति जिसका ज्ञान अशग्राही है, इस विपरीत ग्रहण के दोष से बच नही सकता क्योंकि उसने वस्तुतत्त्व के जिस पक्ष को ग्रहण किया उसका विरोधी धर्म भी उसमे उपस्थित है। अत उसका समस्त ग्रहण विपरीत ही होगा, लेकिन इस विचार मे एक भ्रान्ति है और वह यह है कि यद्यपि वस्तु अनन्तधर्मात्मक है लेकिन यह तो निरपेक्ष कथन है। एक अपेक्षा की दृष्टि से या जैन पारिभाषिक दृष्टि से कहे तो एक ही नय से वस्तुतत्त्व मे दो विरोधी धर्म नही होते हैं, उदाहरणार्थ—एक ही अपेक्षा से आत्मा को नित्य और अनित्य नही माना जाता है। आत्मा द्रव्यार्थिक-दृष्टि से नित्य है तो पर्यायार्थिक-दृष्टि से अनित्य है। अत आत्मा को पर्यायार्थिक दृष्टि से भी नित्य मानना, यह विपरीत ग्रहण मिथ्यात्व है। बुद्ध ने भी विपरीत ग्रहण को मिथ्या दृष्टित्व माना है और विभिन्न प्रकार के विपरीत ग्रहणो को स्पष्ट किया है।[११] गीता मे भी विपरीत ग्रहण को अज्ञान कहा गया है। अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म के रूप मे मानने वाली बुद्धि को गीता मे तामस कहा गया है (१८।३२)।

३ **वैनयिक**—बिना बौद्धिक गवेषणा के परम्परागत तथ्यो, धारणाओ, नियमोपनियमो को स्वीकार कर लेना, वैनयिक मिथ्यात्व है। यह एक प्रकार की रूढिवादिता है। वैनयिक मिथ्यात्व को बौद्ध-परम्परा की दृष्टि से शीलव्रत परामर्श भी कहा जा सकता है। इसे क्रियाकाण्डात्मक मनोवृत्ति भी कहा जा सकता है। गीता मे इस प्रकार के केवल रूढ व्यवहार की निन्दा की गई है। गीता कहती है ऐसी क्रियाएँ जन्म-मरण को बढाने वाली और त्रिगुणात्मक होती है।[१२]

४ **संशय**—सशयावस्था को भी जैन विचारणा मे मिथ्यात्व माना गया है। यद्यपि जैन दार्शनिको की दृष्टि मे सशय को नैतिक विकास की दृष्टि अनुपादेय माना गया है लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि जैन विचारको ने सशय को इस कोटि मे रखकर उसके मूल्य को भुला दिया है। जैन विचारक भी आज के वैज्ञानिको की तरह सशय को ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। प्राचीनतम जैनागम आचाराग सूत्र मे कहा गया है "जो सशय को जानता है वही ससार के स्वरूप का परिज्ञाता होता है जो सशय को नही जानता वह ससार के स्वरूप का भी परिज्ञाता नहीं हो सकता"। लेकिन जहाँ तक साधनात्मक जीवन का प्रश्न है हमे सशय से ऊपर उठना होगा। जैन विचारक आचार्य आत्मरामजी महाराज आचाराग सूत्र की टीका मे लिखते हैं—"सशय ज्ञान कराने मे सहायक है परन्तु यदि वह जिज्ञासा की सरल भावना का परित्याग करके केवल सन्देह करने की कुटिल वृत्ति अपना लेता है, तो वह पतन का कारण बन जाता है।"[१४] सशयावस्था वह स्थिति है जिसमे प्राणी सत् और असत् की कोई निश्चित धारणा नही रखता है। साशयिक अवस्था अनिर्णय की अवस्था है। साशयिक ज्ञान सत्य होते हुए भी मिथ्या ही होगा। नैतिक दृष्टि से ऐसा साधक कब पथ-भ्रष्ट हो सकता है यह नही कहा जा सकता। वह तो लक्ष्योन्मुखता और लक्ष्यविमुखता के मध्य हिण्डोले की भाँति झूलता हुआ अपना समय व्यर्थ करता है। गीता भी यही कहती है कि सशय की अवस्था मे लक्ष्य प्राप्त नही होता। सशयी आत्मा विनाश को ही प्राप्त होता है।[१५]

---

११ अगुत्तरनिकाय १।११
१२ गीता २।४२-४५
१३ आचाराग १।५।१।१४४
१४ आचाराग, हिन्दी टीका, प्रथम भाग, पृ० ४०६
१५ गीता ४।४०

५ अज्ञान—जैन विचारको ने अज्ञान को पूर्वाग्रह, विपरीत ग्रहण, सशय और एकान्तिक ज्ञान मे पृथक् माना है । उपरोक्त चारो मिथ्यात्व के विधायक पक्ष कहे जा सकते है, क्योकि इनमे ज्ञान तो उपस्थित है लेकिन वह अयथार्थ है । इनमे ज्ञानाभाव नही वरन् ज्ञान की अयथार्थता है, जबकि अज्ञान ज्ञानाभाव है । अत वह मिथ्यात्व का निषेधात्मक पक्ष प्रस्तुत करता है । अज्ञान नैतिक साधना का सबसे अधिक बाधक तत्त्व है क्योकि ज्ञानाभाव मे व्यक्ति को अपने लक्ष्य का भान नही हो सकता है, न वह कर्तव्याकर्तव्य का विचार कर सकता है । शुभाशुभ मे विवेक करने की क्षमता का अभाव अज्ञान ही है । ऐसे अज्ञान की अवस्था मे नैतिक आचरण सम्भव नही होता ।

मिथ्यात्व के २५ प्रकार

मिथ्यात्व के २५ भेदो का विवेचन हमे प्रतिक्रमण सूत्र मे प्राप्त होता है जिनमे से १० भेदो का विवेचन स्थानाग सूत्र मे है, मिथ्यात्व के शेष भेदो का विवेचन मूलागम ग्रन्थो मे यत्र-तत्र बिखरा हुआ मिलता है ।

(१) धर्म को अधर्म समझना ।
(२) अधर्म को धर्म समझना ।
(३) ससार (बन्धन) के मार्ग को मुक्ति का मार्ग समझना ।
(४) मुक्ति के मार्ग को बन्धन का मार्ग समझना ।
(५) जड पदार्थों को चेतन (जीव) समझना ।
(६) आत्मतत्त्व (जीव) को जड़ पदार्थ (अजीव) समझना ।
(७) असम्यक् आचरण करने वालो को साधु समझना ।
(८) सम्यक् आचरण करने वालों को असाधु समझना ।
(९) मुक्तात्मा को बद्ध मानना ।
(१०) राग-द्वेष से युक्त को मुक्त समझना[16] ।

(११) आभिग्रहिक मिथ्यात्व—परम्परागत रूप मे प्राप्त धारणाओ को बिना समीक्षा के अपना लेना अथवा उनसे जकडे रहना ।

(१२) अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व—सत्य को जानते हुए भी उसे स्वीकार नही करना अथवा सभी मतो को समान मूल्य वाला समझना ।

(१३) आभिनिवेशिक मिथ्यात्व—अभिमान की रक्षा के निमित्त असत्य मान्यता को हठपूर्वक पकडे रहना ।

(१४) साशयिक मिथ्यात्व—सशयशील बने रहकर सत्य का निश्चय नही कर पाना ।

(१५) अनाभोग मिथ्यात्व—विवेक अथवा ज्ञानक्षमता का अभाव ।

(१६) लौकिक मिथ्यात्व—लोक रूढ़ि मे अविचारपूर्वक बंधे रहना ।

(१७) लोकोत्तर मिथ्यात्व—पारलौकिक उपलब्धियो के निमित्त स्वार्थवश धर्म साधना करना ।

(१८) कुप्रवचन मिथ्यात्व—मिथ्या दार्शनिक विचारणाओ को स्वीकृत करना ।

(१९) न्यून मिथ्यात्व—पूर्ण सत्य अथवा तत्त्व स्वरूप को आशिक सत्य समझ लेना अथवा न्यून मानना ।

---

१६ स्थानाग, स्थान १० । तुलना कीजिए—अगुत्तरनिकाय १।१०-१२



(२०) अधिक मिथ्यात्व—आंशिक सत्य को उससे अधिक अथवा पूर्ण सत्य समझ लेना।

(२१) विपरीत मिथ्यात्व—वस्तुतत्त्व को उसके विपरीत रूप मे समझना।

(२२) अक्रिया मिथ्यात्व—आत्मा को एकान्तिक रूप मे अक्रिय मानना अथवा सिर्फ ज्ञान को महत्व देकर आचरण के प्रति उपेक्षा रखना।

(२३) अज्ञान मिथ्यात्व—ज्ञान अथवा विवेक का अभाव।

(२४) अविनय मिथ्यात्व—पूज्य वर्ग के प्रति समुचित सम्मान का प्रकट न करना अथवा उनकी आज्ञाओ का परिपालन नही करना। पूज्यबुद्धि और विनीतता का अभाव अविनय मिथ्यात्व है।

(२५) असातना मिथ्यात्व—पूज्य वर्ग की निन्दा और आलोचना करना।

अविनय और असातना को मिथ्यात्व इसलिए कहा गया है कि इनकी उपस्थिति से व्यक्ति गुरुजनो का यथोचित सम्मान नही करता है और फलस्वरूप उनसे मिलने वाले यथार्थता के बोध से वचित रहता है।

बौद्ध-दर्शन मे मिथ्यात्व के प्रकार

महात्मा बुद्ध ने सद्धर्म का विनाश करने वाली कुछ धारणाओ का विवेचन अगुत्तरनिकाय[१७] मे किया है जो कि जैन विचारणा के मिथ्यात्व की धारणा के बहुत निकट है। तुलना की दृष्टि से हम उनकी सक्षिप्त सूची प्रस्तुत कर रहे है, जिसके आधार पर यह जाना जा सके कि दोनो विचार परम्पराओ का इस सम्बन्ध में कितना अधिक साम्य है।

१ धर्म को अधर्म बताना।
२ अधर्म को धर्म बताना।
३. भिक्षु अनियम (अविनय) को भिक्षुनियम (विनय) बताना।
४. भिक्षु नियम को अनियम बताना।
५ तथागत (बुद्ध) द्वारा अभाषित को तथागत भाषित कहना।
६ तथागत द्वारा भाषित को अभाषित कहना।
७. तथागत द्वारा अनाचरित को आचरित कहना।
८ तथागत द्वारा आचरित को अनाचरित कहना।
९. तथागत द्वारा नही बनाए हुए (अप्रज्ञप्त) नियम को प्रज्ञप्त कहना।
१० तथागत द्वारा प्रज्ञप्त (बनाए हुए नियम) को अप्रज्ञप्त बताना।
११ अनपराध को अपराध कहना।
१२ अपराध को अनपराध कहना।
१३. लघु अपराध को गुरु अपराध कहना।
१४ गुरु अपराध को लघु अपराध कहना।
१५ गम्भीर अपराध को अगम्भीर कहना।
१६. अगम्भीर अपराध को गम्भीर कहना।
१७ निर्विशेष अपराध को सविशेष कहना।

---

१७ अगुत्तरनिकाय १।१०-१२



१८. सविशेष अपराध को निर्विशेष कहना।

१९ प्रायश्चित्त योग्य (सप्रतिकर्म) आपत्ति को प्रायश्चित्त के अयोग्य कहना।

२० प्रायश्चित्त के अयोग्य (अप्रतिकर्म) आपत्ति को प्रायश्चित्त के योग्य (सप्रतिकर्म) कहना।

गीता मे अज्ञान

गीता के मोह, अज्ञान या तामसिक ज्ञान भी मिथ्यात्व कहे जा सकते हैं। इस आधार पर विचार करने से गीता मे मिथ्यात्व का निम्न स्वरूप उपलब्ध होता है—

१ परमात्मा लोक का सर्जन करने वाला, कर्म का कर्ता एव कर्मों के फल का सयोग करने वाला है अथवा वह किसी के पाप-पुण्य को ग्रहण करता है, यह मानना अज्ञान है (५-१४, १५)।

२ प्रमाद, आलस्य और निद्रा अज्ञान है (१४–८), धन परिवार एव दान का अहकार करना अज्ञान है (१६–१५), विपरीत ज्ञान के द्वारा क्षणभगुर नाशवान शरीर मे आत्म-बुद्धि रखना व उसमे सर्वस्व की भाँति आसक्त रहना जो कि तत्व-अर्थ से रहित और तुच्छ है, तामसिक ज्ञान है (१८–१२)। इसी प्रकार असद् का ग्रहण, अशुभ आचरण (१६–१०) और सशयात्मकता को भी गीता में अज्ञान कहा गया है।

पाश्चात्य-दर्शन मे मिथ्यात्व का प्रत्यय

मिथ्यात्व यथार्थता के बोध का बाधक तत्त्व है। वह एक ऐसा रगीन चश्मा है जो वस्तु-तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को प्रकट नष्ट कर व्यक्ति के समक्ष उसका अयथार्थ किंवा भ्रान्त स्वरूप ही प्रकट करता है। भारत ही नही, पाश्चात्य देशो के विचारको ने भी यथार्थता या सत्य के जिज्ञासु को मिथ्या धारणाओ से परे रहने का सकेत किया है। पाश्चात्य-दर्शन के नवयुग के प्रतिनिधि फ्रासिस बेकन शुद्ध और निर्दोष ज्ञान की प्राप्ति के लिए मानस को निम्न चार मिथ्या धारणाओ से मुक्त रखने का निर्देश करते हैं। चार मिथ्या धारणाएँ निम्न हैं—

(१) जातिगत मिथ्या धारणाएँ (Idola Tribus)—सामाजिक सस्कारो से प्राप्त मिथ्या धारणाएँ।

(२) बाजारू मिथ्या विश्वास (Idola Fori)—असगत अर्थ आदि।

(३) व्यक्तिगत मिथ्या विश्वास (Idola Speces)—व्यक्ति के द्वारा बनाई गयी मिथ्या धारणाएँ (पूर्वाग्रह)।

(४) रगमच की भ्रान्ति (Idola Theatri)—मिथ्या सिद्धान्त या मान्यताएँ।

वे कहते हैं—'इन मिथ्या विश्वासो (पूर्वाग्रहों) से मानस को मुक्त करके ही ज्ञान को यथार्थ और निर्दोष रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए।'[१८]

जैन-दर्शन में अविद्या का स्वरूप

जैन-दर्शन मे अविद्या का पर्यायवाची शब्द मोह भी है। मोह आत्मा की सत् के सम्बन्ध मे यथार्थ दृष्टि को विकृत कर उसे गलत मार्ग दर्शन करता है और उसे असम्यक् आचरण के लिए

---

१८ हिस्ट्री आफ फिलॉसफी (थिली), पृ० २८७



प्रेरित करता है। परमार्थ और सत्य के सम्बन्ध मे जो अनेक भ्रान्त-धारणाएँ आती है एव असदाचरण होता है उनका आधार यही मोह है। मिथ्यात्व, मोह या अविद्या के कारण व्यक्ति की दृष्टि दूषित होती है और परिणामस्वरूप व्यक्ति की परम मूल्यो के सम्बन्ध मे भ्रान्त धारणाएँ वन जाती हैं। वह उन्हे ही परम मूल्य मान लेता है जोकि वस्तुत परम मूल्य या सर्वोच्च मूल्य नहीं होते है।

जैन-दर्शन मे अविद्या और विद्या का अन्तर करते हुए समयसार मे आचार्य कुन्दकुन्द वताते हैं कि जो पुरुष अपने से अन्य जो पर-द्रव्य मचित्त स्त्री-पुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक, मिश्र ग्रामनगरादिक—इनको ऐसा समझे कि मेरे हैं, ये मेरे पूर्व में थे, इनका मैं भी पहले था तथा ये मेरे आगामी होंगे, मैं भी इनका आगामी होऊँगा ऐसा झूठा आत्म विकल्प करता है वह मूढ है और जो पुरुष परमार्थ को जानता हुआ ऐसा झूठा विकल्प नही करता है, वह मूढ नहीं है, ज्ञानी है।[१६]

जैन-दर्शन में अविद्या या मिथ्यात्व केवल आत्मनिष्ठ (Subjective) ही नही है, वरन् वह वस्तुनिष्ठ भी है। जैन-दर्शन में मिथ्यात्व का अर्थ है—ज्ञान का अभाव या विपरीत ज्ञान। उसमे एकान्त या निरपेक्ष दृष्टि को भी मिथ्यात्व कहा गया है। तत्त्व का सापेक्षिक ज्ञान ही सम्यक्ज्ञान है और एकान्तिक दृष्टिकोण मिथ्याज्ञान है। दूसरे, जैन-दर्शन मे मिथ्यात्व अकेला ही वन्धन का कारण नहीं है। वह वन्धन का प्रमुख कारण होते हुए भी उसका सर्वस्व नही है। मिथ्या-दर्शन के कारण ज्ञान दूषित होता है और ज्ञान के दूषित होने से आचरण या चारित्र दूषित होता है। इस प्रकार मिथ्यात्व अनैतिक जीवन का प्रारम्भिक विन्दु है और अनैतिक आचरण उसकी अन्तिम परिणति है। नैतिक जीवन के लिए मिथ्यात्व से मुक्त होना आवश्यक है, क्योकि जव तक दृष्टि दूषित है, ज्ञान भी दूषित होगा और जव तक ज्ञान दूषित है तव तक आचरण भी सम्यक् या नैतिक नहीं हो सकता। नैतिक जीवन में प्रगति के लिए प्रथम शर्त है, मिथ्यात्व से मुक्त होना।

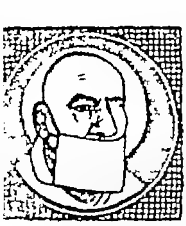
जैन-दार्शनिको की दृष्टि में मिथ्यात्व की पूर्वकोटि का पता नही लगाया जा सकता, वह अनादि है, फिर भी वह अनन्त नही माना गया है। जैन-दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में कहें तो भव्य जीवों की अपेक्षा से मिथ्यात्व अनादि और सान्त है और अभव्य जीवो की अपेक्षा से वह अनादि और अनन्त है। आत्मा पर अविद्या या मिथ्यात्व का आवरण कव से है यह पता नहीं लगाया जा सकता है, यद्यपि अविद्या या मिथ्यात्व से मुक्ति पाई जा सकती है। एक ओर मिथ्यात्व का कारण अनैतिकता है तो दूसरी ओर अनैतिकता का कारण मिथ्यात्व है। इसी प्रकार सम्यक्त्व का कारण नैतिकता और नैतिकता का कारण सम्यक्त्व है। नैतिक आचरण के परिणामस्वरूप सम्यक्त्व या यथार्थ दृष्टिकोण का उद्भव होता है और सम्यक्त्व या यथार्थ दृष्टिकोण के कारण नैतिक आचरण होता है।

वौद्ध-दर्शन मे अविद्या का स्वरूप

वौद्ध-दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रथम कडी अविद्या ही मानी गयी है। अविद्या से उत्पन्न व्यक्तित्व ही जीवन का मूलभूत पाप है। जन्म-मरण की परम्परा और दुःख का मूल यही अविद्या है। जिस प्रकार जैन-दर्शन में मिथ्यात्व की पूर्वकोटि नहीं जानी जा सकती, उसी प्रकार वौद्ध-दर्शन में भी अविद्या की पूर्वकोटि नही जानी जा सकती है। यह एक ऐसी सत्ता है जिसको समझ सकना कठिन है। हमे विना अधिक गहराइयो मे उतरे इसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेना पडेगा। अविद्या समस्त जीवन की पूर्ववर्ती आवश्यक अवस्था है, इसके पूर्व कुछ नहीं, क्योकि जन्म-

---

१६ समयसार २१–२२।



मरण की प्रक्रिया का कही आरम्भ नही खोजा जा सकता है, लेकिन दूसरी ओर इसके अस्तित्व से इन्कार भी नही किया जा सकता है। स्वय जीवन या जन्म-मरण की परम्परा इसका प्रमाण है कि अविद्या उपस्थित है। अविद्या का उद्भव कैसे होता है, यह नही बताया जा सकता है। अश्वघोष के अनुसार—'तथता' से ही अविद्या का जन्म होता है।[20] डा० राधाकृष्णन् की दृष्टि मे बौद्ध दर्शन मे अविद्या उस परम सत्ता, जिसे आलयविज्ञान, तथागतधर्म, शून्यता, धर्मधातु एव तथता कहा गया है, की वह शक्ति है, जो विश्व के भीतर से व्यक्तिगत जीवनो की शृ खला को उत्पन्न करती है। यह यथार्थ सत्ता ही अन्दर विद्यमान निषेधात्मक तत्त्व है। हमारी सीमित बुद्धि इसकी तह मे इससे अधिक और प्रवेश नही कर सकती।[21]

सामान्यतया अविद्या का अर्थ चार आर्यसत्यो का ज्ञानाभाव है। माध्यमिक एव विज्ञानवादी विचारको के अनुसार इन्द्रियानुभूति के विषय इस जगत की कोई स्वतत्र सत्ता नही है या परतत्र एव सापेक्षित हैं, इसे यथार्थ मान लेना यही अविद्या है। दूसरे शब्दो मे, अयथार्थ अनेकता को यथार्थ मान लेना यही अविद्या का कार्य है, इसी मे से वैयक्तिक अह का प्रादुर्भाव होता है और यही से तृष्णा का जन्म होता है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार भी अविद्या और तृष्णा (अनैतिकता) मे पारस्परिक कार्य-कारण सम्बन्ध है। अविद्या के कारण तृष्णा और तृष्णा के कारण अविद्या उत्पन्न होती है। जिस प्रकार जैन-दर्शन मे मोह के दो कार्य—दर्शन-मोह और चारित्र-मोह—हैं उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन मे अविद्या के दो कार्य—ज्ञ`यावरण एव क्लेशावरण हैं। ज्ञ`यावरण की तुलना दर्शन-मोह से और क्लेशावरण की तुलना चारित्र-मोह से की जा सकती है। जिस प्रकार वैदिक-परम्परा मे माया को अनिर्वचनीय माना गया है उसी प्रकार बौद्ध-परम्परा मे भी अविद्या को सत् और असत् दोनो ही कोटियो से परे माना गया है। विज्ञानवाद एव शून्यवाद के सम्प्रदायो की दृष्टि मे नानारूपात्मक जगत को परमार्थ मान लेना अविद्या है। मत्रेयनाथ ने अभूतपरिकल्प (अनेकता का ज्ञान) की विवेचना करते हुए बताया कि उसे सत् और असत् दोनो ही नही कहा जा सकता है। वह सत् इसलिए नही है क्योकि परमार्थ मे अनेकता या द्वैत का कोई अस्तित्व नही है और वह असत् इसलिए नही है कि उसके प्रहाण से निर्वाण का लाभ होता है।[22] इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध-दर्शन के परवर्ती सम्प्रदायो मे अविद्या का स्वरूप बहुत कुछ वेदान्तिक माया के समान बन गया है।

समीक्षा

बौद्ध-दर्शन के विज्ञानवाद और शून्यवाद के सम्प्रदायो मे अविद्या का जो स्वरूप बताया गया है वह आलोचना का विषय ही रहा है। विज्ञानवादी और शून्यवादी विचारक अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर इन्द्रियानुभूति के विषयो को अविद्या या वासना के काल्पनिक प्रत्यय मानते है। दूसरे, उनके अनुसार अविद्या आत्मनिष्ठ (Subjective) है। जैन दार्शनिको ने उनकी इस मान्यता को अनुचित ही माना है क्योकि प्रथमत· अनुभव के विषयो को अनादि अविद्या के काल्पनिक प्रत्यय मानकर इन्द्रियानुभूति के ज्ञान को असत्य बताया गया है। जैन दार्शनिको की दृष्टि मे इन्द्रियानुभूति के विषयो को असत् नही माना जा सकता, वे तर्क और अनुभव दोनो को ही यथार्थ मानकर चलते हैं। उनके अनुसार तार्किक ज्ञान (बौद्धिक ज्ञान) और अनुभूत्यात्मक ज्ञान—दोनो ही यथार्थता का

---

२० उद्धृत—जैन स्टडीज, पृ० १३६

२१ भारतीय दर्शन, पृ० ३८२-३८३

२२ जैन स्टडीज, पृ० १३२-१३३ पर उद्धृत



बोध करा सकते हैं। बौद्ध-दार्शनिको की यह धारणा कि 'अविद्या केवल आत्मगत है' जैन दार्शनिको को स्वीकार नहीं है। वे अविद्या का वस्तुगत आधार भी मानते हैं। उनकी दृष्टि मे बौद्ध दृष्टिकोण एकागी ही सिद्ध होता है। बौद्ध-दर्शन के अविद्या की विस्तृत समीक्षा आदरणीय श्री नथमल टाटिया ने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन जैन फिलॉसफी' मे की है।[२३] हमे विस्तार भय से और अधिक गहराई मे उतरना आवश्यक नहीं लगता है।

गीता एव वेदान्त मे अविद्या का स्वरूप

गीता मे अविद्या, अज्ञान और माया शब्द का प्रयोग हमे मिलता है। गीता मे अज्ञान और माया सामान्यतया दो भिन्न-भिन्न अर्थों मे ही प्रयोग हुए हैं। अज्ञान वैयक्तिक है जबकि माया एक ईश्वरीय शक्ति है। गीता मे अज्ञान का अर्थ परमात्मा के उस वास्तविक स्वरूप के ज्ञान का अभाव है जिस रूप मे वह जगत मे व्याप्त होते हुए भी उससे परे है। गीता मे अज्ञान विपरीत ज्ञान, मोह, अनेकता को यथार्थ मान लेना आदि अनेक अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। ज्ञान के सात्त्विक, राजस और तामस प्रकारो का विवेचन करते हुए गीता मे यह स्पष्ट बताया गया है कि अनेकता को यथार्थ मानने वाला दृष्टिकोण या ज्ञान राजस है। इसी प्रकार यह मानना कि परम तत्त्व मात्र इतना ही है, यह ज्ञान तामस है।[२४] यद्यपि गीता मे माया को व्यक्ति के दुःख एव बन्धन का कारण माना गया है। क्योकि यह एक भ्रान्त आशिक चेतना का पोषण करती है और उस रूप मे पूर्ण यथार्थता का ग्रहण सम्भव नहीं होता। फिर भी हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि गीता मे माया ईश्वर की ऐसी कार्यकारी शक्ति भी है जिसके माध्यम से परमात्मा इस नानारूपात्मक जगत मे अपने को अभिव्यक्त करता है। वैयक्तिक दृष्टि से माया परमार्थ का आवरण कर व्यक्ति को उसके यथार्थ ज्ञान से वचित करती है, जबकि परमसत्ता की अपेक्षा से वह उसकी एक शक्ति ही सिद्ध होती है।

वेदान्त-दर्शन में अविद्या का अर्थ अद्वय परमार्थ मे अनेकता की कल्पना है। वृहदारण्यकोपनिषद् मे कहा गया है कि जो अद्वय में अनेकता का दर्शन करता है वह मृत्यु को प्राप्त होता है।[२५] इसके विपरीत अनेकता मे एकता का दर्शन यह सच्चा ज्ञान है। ईशावास्योपनिषद् मे कहा गया है कि जो सभी को परमात्मा मे और परमात्मा मे सभी को स्थित देखता है, उस एकत्वदर्शी को न विजुगुप्सा होती है और न उसे कोई मोह या शोक होता है।[२६] वेदान्तिक परम्परा मे अविद्या जगत के प्रति आसक्ति एव मिथ्या दृष्टिकोण है और माया एक ऐसी शक्ति है जिससे यह अनेकतामय जगत अस्तित्ववान प्रतीत होता है। माया इस नानारूपात्मक जगत का आधार है और अविद्या हमे उससे बांधे हुए रखती है। वेदान्तिक-दर्शन मे माया अद्वय अविकार्य परमसत्ता की नानारूपात्मक जगत के रूप मे प्रतीति है। वेदान्त मे माया न तो सत् है और न असत् है उसे चतुष्कोटि विनिर्मुक्त कहा गया है।[२७] वह सत् इसलिए नही है कि उसका निरसन किया जा सकता है। वह असत् इसलिए नही है कि उसके आधार पर व्यवहार होता है। वेदान्तिक-

---

२३ विस्तृत विवेचना के लिए देखिए जैन स्टडीज, पृ० १२६-१२७ एव २०१-२१५
२४ गीता १८।२१-२२
२५ वृहदारण्यकोपनिषद् ४।४।१६
२६ ईशावास्योपनिषद् ६-७
२७ विवेक चूड़ामणि माया निरूपण १११



दर्शन मे माया जगत की व्याख्या और उसकी उत्पत्ति का सिद्धान्त है, जबकि अविद्या वैयक्तिक आसक्ति है।

समीक्षा

वेदान्त-दर्शन मे माया एक अर्ध सत्य है जबकि तार्किक दृष्टि मे माया या तो सत्य हो सकती है या असत्य। जैन-दार्शनिको के अनुसार सत्य सापेक्षिक अवश्य हो सकता है लेकिन अर्द्ध सत्य (Half Truth) ऐसी कोई अवस्था नही हो सकती है। यदि अद्वय परमार्थ को नानारूपात्मक मानना यह अविद्या है तो जैन दार्शनिको को यह दृष्टिकोण स्वीकार नही है। यद्यपि जैन, बौद्ध और वैदिक परम्पराएँ अविद्या की इस व्याख्या मे एकमत है कि अविद्या या मोह का अर्थ अनात्म मे आत्मबुद्धि है।

उपसंहार

अज्ञान, अविद्या या मोह की उपस्थिति ही हमारी सम्यक् प्रगति का सबसे बडा अवरोध है। हमारे क्षुद्र व्यक्तित्व और परमात्मत्व के बीच सबसे बड़ी बाधा है। उसके हटते ही हम अपने को अपने मे ही उपस्थित कर परमात्मा के निकट खडा पाते है। फिर भी प्रश्न है कि इस अविद्या या मिथ्यात्व से मुक्ति कैसे हो? वस्तुत अविद्या से मुक्ति के लिए यह आवश्यक नही हम अविद्या या अज्ञान को हटाने का प्रयत्न करें क्योकि उसके हटाने के सारे प्रयास वैसे ही निरर्थक होंगे जैसे कोई अन्धकार को हटाने के प्रयत्न करे। जैसे प्रकाश के होते ही अन्धकार स्वय ही समाप्त हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान रूप प्रकाश या सम्यक् दृष्टि के उत्पन्न होते ही अज्ञान या अविद्या का अन्धकार समाप्त हो जाता है। आवश्यकता इस बात की नही है कि हम अविद्या या मिथ्यात्व को हटाने का प्रयत्न करें वरन् आवश्यकता इस बात की है कि हम सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित करे ताकि अविद्या या अज्ञान का तमिस्र समाप्त हो जावे।

सम्यक्त्व

जैन-परम्परा मे सम्यक्दर्शन, सम्यक्त्व या सम्यक्दृष्टित्व शब्दो का प्रयोग समानार्थक रूप मे हुआ है। यद्यपि आचार्य जिनभद्र ने विशेषावश्यकभाष्य मे सम्यक्त्व और सम्यक्-दर्शन के भिन्न-भिन्न अर्थो का निर्देश किया है।[२८] अपने भिन्न अर्थ में सम्यक्त्व वह है जिसकी उपस्थिति से श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र सम्यक् बनते है। सम्यक्त्व का अर्थ-विस्तार सम्यक्दर्शन से अधिक व्यापक है, फिर भी सामान्यतया सम्यक्दर्शन और सम्यक्त्व शब्द एक ही अर्थ में प्रयोग किए गए हैं। वैसे सम्यक्त्व शब्द में सम्यक्दर्शन निहित ही है।

सम्यक्त्व का अर्थ

सबसे पहले हमे इसे स्पष्ट कर लेना होगा कि सम्यक्त्व या सम्यक् शब्द का क्या अभिप्राय है। सामान्य रूप में सम्यक् या सम्यक्त्व शब्द सत्यता या यथार्थता का परिचायक है, उसे हम उचितता भी कह सकते हैं। सम्यक्त्व अर्थ तत्त्वरुचि[२९] है। इस अर्थ मे सम्यक्त्व सत्याभिरुचि या

---

२८ विशेषावश्यकभाष्य

२९ अभिधान राजेन्द्र, खण्ड ५, पृष्ठ २४२५



सत्य की अभीप्सा है। दूसरे शब्दो मे, इसको सत्य के प्रति जिज्ञासावृत्ति या मुमुक्षुत्व भी कहा जा सकता है। अपने दोनो ही अर्थो में सम्यक्‌दर्शन या सम्यक्त्व नैतिक जीवन के लिए आवश्यक है। जैन नैतिकता का चरम आदर्श आत्मा के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि है, लेकिन यथार्थ की उपलब्धि भी तो यथार्थ से सम्भव होगी, अयथार्थ से तो यथार्थ पाया नही जा सकता। यदि साध्य यथार्थता की उपलब्धि है तो साधन भी यथार्थ ही चाहिए। जैन विचारणा साध्य और साधन की एकरूपता में विश्वास करती है। वह यह मानती है कि अनुचित साधन से प्राप्त किया लक्ष्य भी अनुचित ही है, वह उचित नहीं कहा जा सकता। सम्यक् को सम्यक् से ही प्राप्त करना होता है। असम्यक् से जो भी मिलता है, पाया जाता है, वह भी असम्यक् ही होता है। अत आत्मा के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि के लिए उन्होंने जिन साधनो का विधान किया उनका सम्यक् होना आवश्यक माना गया। वस्तुत ज्ञान, दर्शन और चारित्र का नैतिक मूल्य उनके सम्यक् होने में समाहित है। जब ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम्यक् होते हैं तो वे मुक्ति या निर्वाण के साधन बनते हैं। लेकिन यदि वे ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र मिथ्या होते है तो बन्धन का कारण बनते है। बन्धन और मुक्ति ज्ञान, दर्शन और चारित्र पर निर्भर नही वरन् उनकी सम्यक्ता और मिथ्यात्व पर आधारित है। सम्यक्‌ज्ञान, सम्यक्‌दर्शन और सम्यक्‌चारित्र मोक्ष का मार्ग है जबकि मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र ही बन्धन का मार्ग है।

आचार्य जिनभद्र की धारणा के अनुसार यदि सम्यक्त्व का अर्थ तत्त्वरुचि या सत्याभीप्सा करते हैं तो सम्यक्त्व का नैतिक साधना मे महत्त्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। नैतिकता की साधना आदर्शोन्मुख गति है लेकिन जिसके कारण वह गति है, साधना है, वह तो सत्याभीप्सा ही है। साधक मे जब तक सत्याभीप्सा या तत्त्वरुचि जाग्रत नही होती तब तक वह नैतिक प्रगति की ओर अग्रसर ही नही हो सकता। सत्य की चाह या सत्य की प्यास ही ऐसा तत्त्व है जो उसे साधना मार्ग मे प्रेरित करता है। जिसे प्यास नही, वह पानी की प्राप्ति का क्यो प्रयास करेगा? जिसमे सत्य की उपलब्धि की चाह (तत्त्वरुचि) नही वह क्यो साधना करने लगा? प्यासा ही पानी की खोज करता है। तत्त्वरुचि या सत्याभीप्सा से युक्त व्यक्ति ही आदर्श की प्राप्ति के निमित्त साधना के मार्ग पर आरूढ होता है। उत्तराध्ययन सूत्र मे सम्यक्त्व के भेदो का विवेचन करते हुए दोनो अर्थो को समन्वित कर दिया गया है। ग्रन्थकर्ता की दृष्टि मे यद्यपि सम्यक्त्व यथार्थता की अभिव्यक्ति करता है लेकिन यथार्थता जिस ज्ञानात्मक तथ्य के रूप मे उपस्थित होती है, उसके लिए सत्याभीप्सा या रुचि आवश्यक है।

दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द भी जैनागमो में अनेक अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है। जीवादि पदार्थों के स्वरूप का देखना, जानना, श्रद्धा करना दर्शन कहा जाता है।[30] सामान्यतया दर्शन शब्द देखने के अर्थ मे व्यवहार किया जाता है लेकिन यहाँ पर दर्शन शब्द का अर्थ मात्र नेत्रजन्य बोध नही है। उसमे इन्द्रियबोध, मनबोध और आत्मबोध सभी सम्मिलित है। दर्शन शब्द के अर्थ के सम्बन्ध मे जैन-परम्परा मे काफी विवाद रहा है। दर्शन शब्द को ज्ञान से अलग करते हुए विचारको ने दर्शन को अन्तर्बोध और ज्ञान को बौद्धिक ज्ञान कहा है।[31] नैतिक जीवन की दृष्टि से विचार करने पर

---

३० अभि० रा०, खण्ड ५, पृष्ठ २४२५

३१ सम प्राब्लम्स इन जैन साइकोलाजी, पृष्ठ ३२



दर्शन शब्द का दृष्टिकोणपरक अर्थ किया गया है।[32] दर्शन शब्द के स्थान पर दृष्टि शब्द का प्रयोग, उसके दृष्टिकोणपरक अर्थ का द्योतक है। प्राचीन जैन आगमो मे दर्शन शब्द के स्थान पर दृष्टि शब्द का प्रयोग बहुलता मे देखा जाता है। तत्त्वार्थसूत्र[33] और उत्तराध्ययन सूत्र[34] मे दर्शन शब्द का अर्थ तत्त्वश्रद्धा माना गया है। परवर्ती जैन साहित्य मे दर्शन शब्द का देव, गुरु और धर्म के प्रति श्रद्धा या भक्ति के अर्थ मे भी व्यवहार किया गया है।[35] इस प्रकार जैन-परम्परा मे सम्यक्-दर्शन तत्त्व-साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार, अन्तर्बोध, दृष्टिकोण, श्रद्धा और भक्ति आदि अर्थों को अपने मे समेटे हुए है। इन पर थोडी गहराई से विचार करना अपेक्षित है।

क्या सम्यक्दर्शन के उपरोक्त अर्थ परस्पर विरोधी हैं ?

सम्यक्दर्शन शब्द के विभिन्न अर्थों पर विचार करने से पहले हमे यह देखना होगा कि इनमे से कौन-सा अर्थ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रथम था और उसके पश्चात् किन-किन ऐतिहासिक परिस्थितियो के कारण यही शब्द अपने दूसरे अर्थों मे प्रयुक्त हुआ। प्रथमत हम देखते हैं कि बुद्ध और महावीर के अपने समय मे प्रत्येक धर्म-प्रवर्तक अपने सिद्धान्त को सम्यक्दृष्टि और दूसरे के सिद्धान्त को मिथ्यादृष्टि कहता था। बौद्धागमो मे ६२ मिथ्यादृष्टियो एवं जैनागम सूत्रकृताग मे ३६३ मिथ्यादृष्टियो का विवेचन मिलता है। लेकिन वहाँ पर मिथ्यादृष्टि शब्द अश्रद्धा अथवा मिथ्याश्रद्धा के अर्थ मे नहीं वरन् गलत दृष्टिकोण के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है। बाद मे जब यह प्रश्न उठा कि गलत दृष्टिकोण को किस सन्दर्भ मे माना जावे, तो कहा गया कि जीव (आत्मतत्त्व) और जगत के सम्बन्ध मे जो गलत दृष्टिकोण है, वही मिथ्यादर्शन या मिथ्यादृष्टि है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि से तात्पर्य हुआ आत्मा और जगत के स्वरूप के विषय मे गलत दृष्टिकोण। उस युग मे प्रत्येक धर्म-मार्ग का प्रवर्तक आत्मा और जगत के स्वरूप के विषय मे अपने दृष्टिकोण को सम्यक् दृष्टिकोण अथवा सम्यक्दर्शन, और अपने विरोधी के दृष्टिकोण को मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्या-दर्शन कहता था। बाद मे प्रत्येक सम्प्रदाय जीवन और जगत सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण पर विश्वास करने को सम्यक्दर्शन कहने लगा और जो लोग उसकी मान्यताओ के विपरीत मान्यता रखते थे उनको मिथ्यात्वी कहने लगा और उनकी मान्यता को मिथ्यादर्शन। इस प्रकार सम्यक्दर्शन शब्द तत्त्वार्थश्रद्धान (जीव और जगत के स्वरूप की) के अर्थ मे अभिरूढ हुआ। लेकिन तत्त्वार्थश्रद्धान के अर्थ मे भी सम्यक्दर्शन शब्द अपने मूल अर्थ से अधिक दूर नहीं हुआ था। यद्यपि उसकी भावना मे दिशा बदल चुकी थी, उसमे श्रद्धा का तत्त्व प्रविष्ट हो गया था लेकिन वह श्रद्धा थी तत्त्व के स्वरूप की मान्यता के सन्दर्भ मे। वैयक्तिक श्रद्धा का विकास बाद की बात थी। श्रमण-परम्परा मे सम्यक्दर्शन का दृष्टिकोणपरक अर्थ ही ग्राह्य था जो बाद मे तत्त्वार्थश्रद्धान के रूप मे विकसित हुआ। यहाँ तक तो श्रद्धा मे बौद्धिक पक्ष निहित था, श्रद्धा ज्ञानात्मक थी। लेकिन जैसे-जैसे भागवत सम्प्रदाय का विकास हुआ, उसका प्रभाव जैन और बौद्ध श्रमण परम्पराओ पर भी पडा। तत्त्वार्थ की श्रद्धा जब 'बुद्ध' और 'जिन' पर केन्द्रित होने लगी—वह ज्ञानात्मक से भावा-त्मक और निर्वैयक्तिक से वैयक्तिक बन गई। जिसने जैन और बौद्ध परम्पराओ मे भक्ति के तत्त्व

---

३२ अभि० रा०, खण्ड ५, पृ० २४२५

३३ तत्त्वार्थ० १।२

३४ उत्तरा० २८।३५

३५ सामायिक सूत्र—सम्यक्त्व पाठ



का वपन किया।[३६] मेरी अपनी दृष्टि मे आगम एव पिटक ग्रन्थो के संकलन एव लिपिबद्ध होने तक यह सब कुछ हो चुका था। अत आगम और पिटक ग्रन्थो मे सम्यक्दर्शन के इन सभी अर्थों की उपस्थिति उपलब्ध होती है। वस्तुत सम्यक्दर्शन का भाषाशास्त्रीय विवेचन पर आधारित यथार्थ दृष्टिकोणपरक अर्थ ही उसका प्रथम एव मूल अर्थ है, लेकिन यथार्थ दृष्टिकोण तो मात्र वीतराग पुरुष का ही हो सकता है, जहाँ तक व्यक्ति राग और द्वेष से युक्त है उसका दृष्टिकोण यथार्थ नहीं हो सकता। इस अर्थ को स्वीकार करने पर यथार्थ दृष्टिकोण तो साधनावस्था मे सम्भव नही होगा क्योकि साधना की अवस्था सरागता की अवस्था है। साधक-आत्मा मे तो राग और द्वेष दोनो की उपस्थिति होती है, साधक तो साधना ही इसलिए कर रहा है कि वह इन दोनो से मुक्त हो, इस प्रकार यथार्थ दृष्टिकोण तो मात्र सिद्धावस्था मे होगा। लेकिन यथार्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता तो साधक के लिए है, सिद्ध को तो वह स्वाभाविक रूप मे प्राप्त है। यथार्थ दृष्टिकोण के अभाव मे व्यक्ति का व्यवहार एव साधना सम्यक नही हो सकती अथवा अयथार्थ दृष्टिकोण ज्ञान और जीवन के व्यवहार को सम्यक् नही बना सकता है। यहाँ एक समस्या उत्पन्न होती है। यथार्थ दृष्टिकोण का साधनात्मक जीवन मे अभाव होता है और बिना यथार्थ दृष्टिकोण के साधना हो नही सकती। यह समस्या हमे ऐसी स्थिति मे डाल देती कि जहाँ हमे साधना-मार्ग की सम्भावना को ही अस्वीकृत करना होता है। यथार्थ दृष्टिकोण के बिना साधना सम्भव नही और यथार्थ दृष्टिकोण साधना-काल मे हो नहीं सकता।

लेकिन इस धारणा मे एक भ्रान्ति है, वह यह कि साधना मार्ग के लिए, दृष्टिकोण की यथार्थता के लिए, राग-द्वेष से पूर्ण विमुक्त दृष्टि का होना आवश्यक नही है, मात्र इतना आवश्यक है कि व्यक्ति अयथार्थता को जाने और उसके कारण जाने। ऐसा साधक यथार्थता को नही जानते हुए भी सम्यक्दृष्टि ही है, क्योकि वह असत्य को असत्य मानता है और उसके कारण को जानता है अत वह भ्रान्त नही है, असत्य के कारण को जानने के कारण वह उसका निराकरण कर सत्य को पा सकेगा। यद्यपि पूर्ण यथार्थ दृष्टि तो एक साधक व्यक्ति मे सम्भव नही है, फिर भी उसकी राग-द्वेषात्मक वृत्तियो मे जब स्वाभाविक रूप से कमी हो जाती है तो इस स्वाभाविक परिवर्तन के कारण पूर्वानुभूति और पश्चानुभूति मे अन्तर ज्ञात होता है और इस अन्तर के कारण के चिन्तन मे उसे दो बातें मिल जाती हैं—एक तो यह कि उसका दृष्टिकोण दूषित है और उसकी दृष्टि की दूषितता का अमुक कारण है। यद्यपि यहाँ सत्य तो प्राप्त नही होता लेकिन अपनी असत्यता और उसके कारण का बोध हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उसमे सत्याभीप्सा जाग्रत हो जाती है। यही सत्याभीप्सा उसे सत्य या यथार्थता के निकट पहुँचाती है और जितने अश मे वह यथार्थता के निकट पहुँचता है उतने ही अश मे उसका ज्ञान और चारित्र शुद्ध होता जाता है। ज्ञान और चारित्र की शुद्धता से पुन राग और द्वेष मे क्रमश कमी होती है और उसके फलस्वरूप उसके दृष्टिकोण मे और अधिक यथार्थता आ जाती है। इसी प्रकार क्रमश व्यक्ति स्वत ही साधना की चरम स्थिति मे पहुँच जाता है। आवश्यकनिर्युक्ति मे कहा गया है कि जल जैसे-जैसे स्वच्छ होता जाता है त्यो-त्यो द्रष्टा उसमें प्रतिबिम्बित रूपो को स्पष्टतया देखने लगता है उसी प्रकार अन्तर मे ज्यो-ज्यो तत्त्वरुचि जाग्रत होती है त्यो-त्यो तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होता जाता है।[३७] इसे जैन परिभाषा मे प्रत्येकबुद्ध (स्वत ही यथार्थता को जानने वाले) का साधना-मार्ग कहते है।

---

३६ देखिए स्थानाग ५।२ उद्धृत—आत्म-साधना सग्रह, पृ० १४३

३७ आवश्यकनिर्युक्ति ११६३



लेकिन प्रत्येक सामान्य साधक यथार्थ दृष्टिकोण को इस प्रकार प्राप्त नही करता है और न उसके लिए यह सम्भव ही है, सत्य की स्वानुभूति का मार्ग कठिन है। सत्य को स्वय जानने की विधि की अपेक्षा दूसरा सहज मार्ग है और वह यह कि जिन्होंने स्वानुभूति से सत्य को जानकर उसका जो भी स्वरूप बताया है, उसको मानकर चलना। इसे ही जैनशास्त्रकारो ने तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है अर्थात् यथार्थ दृष्टिकोण से युक्त वीतराग ने अपने यथार्थ दृष्टिकोण मे सत्ता का जो स्वरूप प्रकट किया है, उसे स्वीकार कर लेना। मान लीजिए कोई व्यक्ति पित्त विकार से पीड़ित है, अब ऐसी स्थिति मे वह किसी श्वेत वस्तु के यथार्थ ज्ञान से वंचित होगा। उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्राप्त करने के दो मार्ग हो सकते हैं। पहला मार्ग यह है कि उसकी बीमारी मे स्वाभाविक रूप से जब कुछ कमी हो जावे और वह अपनी पूर्व और पश्चात् की अनुभूति मे अन्तर पाकर अपने रोग को जाने और प्रयासो द्वारा उसे शान्त कर वस्तु के यथार्थस्वरूप का बोध पा जावे। दूसरी स्थिति मे जब किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उसे यह बताया जावे कि वह श्वेत वस्तु को पीत वर्ण की देख रहा है। यहाँ पर इस स्वस्थ दृष्टि वाले व्यक्ति की बात को स्वीकार कर लेने पर भी उसे अपनी रुग्णावस्था या अपनी दृष्टि की दूषितता का ज्ञान हो जाता है और साथ ही वह वस्तुतत्त्व को यथार्थ रूप मे जान भी लेता है।

सम्यक्दर्शन को चाहे यथार्थ दृष्टि कहें या तत्त्वार्थश्रद्धान उनमे वास्तविकता की दृष्टि से अन्तर नही होता है। अन्तर होता है उनकी उपलब्धि की विधि मे। एक वैज्ञानिक स्वत प्रयोग के आधार पर किसी सत्य का उद्घाटन करता है और वस्तुतत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है। दूसरा व्यक्ति वैज्ञानिक के कथनो पर विश्वास करके भी वस्तुतत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानता है। दोनो दशाओ मे व्यक्ति का दृष्टिकोण यथार्थ ही कहा जायगा यद्यपि दोनो की उपलब्धि विधि मे अन्तर है। एक ने उसे तत्त्व-साक्षात्कार या स्वत की अनुभूति मे पाया, तो दूसरे ने श्रद्धा के माध्यम से।

वस्तुतत्त्व के प्रति दृष्टिकोण की यथार्थता जिन माध्यमो से प्राप्त की जा सकती है, वे दो हैं—या तो व्यक्ति स्वय तत्त्व-साक्षात्कार करे अथवा उन ऋषियो, साधको के कथनो पर श्रद्धा करे जिन्होने तत्त्व-साक्षात्कार किया है। तत्त्वश्रद्धा तो मात्र उस समय तक के लिए एक अनिवार्य विकल्प है जब तक साधक तत्त्व-साक्षात्कार नही कर लेता। अन्तिम स्थिति तो तत्त्व-साक्षात्कार की ही है। इस सम्बन्ध मे प० सुखलाल जी लिखते हैं—"तत्त्वश्रद्धा ही सम्यकदृष्टि हो तो भी वह अर्थ अन्तिम नहीं है, अन्तिम अर्थ तो तत्त्व-साक्षात्कार है। तत्त्वश्रद्धा तो तत्त्व-साक्षात्कार का एक सोपान मात्र है। वह सोपान दृढ हो तभी यथोचित पुरुषार्थ से तत्त्व का साक्षात्कार होता है।"[३८]

जैन आचार-दर्शन मे सम्यक्दर्शन का स्थान

सम्यक्दर्शन जैन आचार-व्यवस्था का आधार है। नन्दीसूत्र मे सम्यक्दर्शन को संघ रूपी सुमेरु पर्वत की अत्यन्त सुदृढ और गहन भूपीठिका (आधारशिला) कहा गया है जिस पर ज्ञान और चारित्र रूपी उत्तम धर्म की मेखला अर्थात् पर्वतमाला स्थिर रही हुई है।[३९] जैन आचार-दर्शन मे सम्यकदर्शन को मुक्ति का अधिकार-पत्र कहा जा सकता है। उत्तराध्ययनसूत्र मे स्पष्ट रूप मे कहा गया है कि सम्यक्दर्शन के बिना सम्यक्ज्ञान नहीं होता और सम्यक्ज्ञान के अभाव मे आचरण मे यथार्थता या सद्चारित्रता नही आती और सद्चारित्रता के अभाव मे कर्मावरण

---

३८ जैनधर्म का प्राण, पृ० २४

३९ नन्दीसूत्र १।१२



से मुक्ति सम्भव नही और कर्मावरण से जकड़े हुए प्राणी का निर्वाण नही होता।[४०] आचारांगसूत्र मे कहा गया है कि सम्यक्दृष्टि पापाचरण नही करता।[४१] जैन विचारणा के अनुसार आचरण का सत् अथवा असत् होना कर्ता के दृष्टिकोण (दर्शन) पर निर्भर है। सम्यक्दृष्टित्व से परिनिष्पन्न होने वाला आचरण सदैव सत् होगा और मिथ्यादृष्टि से परिनिष्पन्न होने वाला आचरण सदैव असत् होगा। इसी आधार पर सूत्रकृतागसूत्र मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि व्यक्ति प्रबुद्ध है, भाग्यवान है और पराक्रमी भी है, लेकिन यदि उसका दृष्टिकोण असम्यक् है तो उसका समस्त दान, तप आदि पुरुषार्थ फलयुक्त होने के कारण अशुद्ध ही होगा। वह उसे मुक्ति की ओर नही ले जाकर बन्धन की ओर ही ले जावेगा। क्योकि असम्यक्दर्शी होने के कारण वह आसक्त (सराग) दृष्टि वाला होगा और आसक्त या फलाशापूर्ण विचार से परिनिष्पन्न होने के कारण उसके सभी कार्य भी फलयुक्त होगे और फलयुक्त होने से उसके बन्धन का कारण होगे। अत. असम्यक्दर्शी व्यक्ति का सारा पुरुषार्थ अशुद्ध ही कहा जावेगा क्योकि वह उसकी मुक्ति मे बाधक होगा। लेकिन इसके विपरीत सम्यक्दृष्टि या वीतरागदृष्टिसम्पन्न व्यक्ति के सभी कार्य फलाशा से रहित होने मे शुद्ध होगे। इस प्रकार जैन विचारणा यह बताती है कि सम्यक्दर्शन के अभाव से विचार-प्रवाह सराग, सकाम या फलाशा से युक्त होता है और यही कर्मों के प्रति रही हुई फलाशा बन्धन का कारण होने से पुरुषार्थ को अशुद्ध बना देती है जबकि सम्यक्दर्शन की उपस्थिति से विचार-प्रवाह वीतरागता, निष्कामता और अनासक्ति की ओर बढता है, फलाकाक्षा समाप्त हो जाती है अतः सम्यक्दृष्टि से युक्त सारा पुरुषार्थ परिशुद्ध होता है।[४२]

बौद्ध-दर्शन मे सम्यक्दर्शन का स्थान

बौद्ध-दर्शन मे सम्यकदर्शन का क्या स्थान है, यह बुद्ध के निम्न कथन से स्पष्ट हो जाता है। अगुत्तरनिकाय मे बुद्ध कहते हैं कि—

भिक्षुओ! मैं दूसरी कोई भी एक बात ऐसी नही जानता जिससे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म उत्पन्न होते हो तथा उत्पन्न अकुशल-धर्मों मे वृद्धि होती हो, विपुलता होती हो, जैसे भिक्षुओ! मिथ्या-दृष्टि।

भिक्षुओ! मिथ्यादृष्टि वाले मे अनुत्पन्न अकुशल-धर्म पैदा हो जाते हैं, उत्पन्न अकुशल-धर्म वृद्धि को, विपुलता को प्राप्त हो जाते हैं।

भिक्षुओ! मैं दूसरी कोई भी एक बात ऐसी नही जानता जिससे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो तथा उत्पन्न कुशल-धर्मों मे वृद्धि होती हो, विपुलता होती हो, जैसे भिक्षुओ! सम्यक्-दृष्टि।

भिक्षुओ! सम्यक्-दृष्टि वाले मे अनुत्पन्न कुशल-धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, उत्पन्न कुशल-धर्म वृद्धि को, विपुलता को प्राप्त हो जाते हैं।[४३] इस प्रकार बुद्ध सम्यक्-दृष्टि को नैतिक जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि मे मिथ्यादृष्टिकोण इधर (ससार) का किनारा है और सम्यक्-दृष्टिकोण उधर (निर्वाण) का किनारा है।[४४] बुद्ध के ये वचन यह स्पष्ट कर देते हैं कि बौद्ध-दर्शन मे सम्यक्-दृष्टि का कितना महत्वपूर्ण स्थान है।

---

४० उत्तरा० २८।३० ४१ आचाराग १।३।२ ४२ सूत्रकृताग १।८।२२-२३

४३ अगुत्तरनिकाय १।१७ ४४ अगुत्तरनिकाय १०।१२



वैदिक-परम्परा एवं गीता मे सम्यक्-दर्शन (श्रद्धा) का स्थान

वैदिक-परम्परा मे भी सम्यक्-दर्शन को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैनदर्शन के समान ही मनुस्मृति मे कहा गया है कि सम्यक्-दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति कर्म के बन्धन मे नही आता है, लेकिन सम्यक्-दर्शन से विहीन व्यक्ति ससार मे परिभ्रमित होता रहता है।

गीता मे यद्यपि सम्यक्-दर्शन शब्द का अभाव है फिर भी सम्यक्-दर्शन को श्रद्धापरक अर्थ मे लेने पर गीता मे उसका महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध हो जाता है। श्रद्धा गीता के आचार-दर्शन के केन्द्रीय तत्त्वो मे से एक है। 'श्रद्धावाल्लभते ज्ञान' कहकर गीता मे उसके महत्व को स्पष्ट कर दिया है। गीता यह भी स्वीकार करती है कि व्यक्ति की जैसी श्रद्धा होती है, उसका जीवन के प्रति जैसा दृष्टिकोण होता है, वैसा ही वह बन जाता है।[४६] गीता मे श्रीकृष्ण ने यह कहकर कि यदि दुराचारी व्यक्ति भी मुझे भजता है अर्थात् मेरे प्रति श्रद्धा रखता है तो उसे साधु ही समझा जाना चाहिए क्योकि वह यथार्थ निश्चय या दृष्टि से युक्त हो चुका है और वह शीघ्र ही धर्मात्मा होकर चिरशाति को प्राप्त हो जाता है, इस कथन मे सम्यक्-दर्शन या श्रद्धा के महत्व को स्पष्ट कर दिया है।[४७] गीता का यह कथन आचाराग के उस कथन से कि 'सम्यक्-दर्शी कोई पाप नही करता' काफी अधिक साम्यता रखता है। आचार्य शकर ने अपने गीता-भाष्य मे भी सम्यक्दर्शन के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "सम्यक्दर्शननिष्ठ पुरुष ससार के बीज रूप अविद्या आदि दोषो का उन्मूलन नहीं कर सके ऐसा कदापि सम्भव नही हो सकता अर्थात् सम्यक्-दर्शनयुक्त पुरुष निश्चितरूप से निर्वाण-लाभ करता है।"[४८] आचार्य शकर के अनुसार जब तक सम्यक्दर्शन नही होता तब तक राग (विषयासक्ति) का उच्छेद नही होता और जब तक राग का उच्छेद नहीं होता, मुक्ति सम्भव नही होती।

सम्यक्दर्शन आध्यात्मिक जीवन का प्राण है। जिस प्रकार चेतना से रहित शरीर शव है उसी प्रकार सम्यक्-दर्शन से रहित व्यक्ति चलता-फिरता शव है। जिस प्रकार शव लोक मे त्याज्य होता है वैसे ही आध्यात्मिक-जगत मे यह चल-शव त्याज्य होता है।[४९] वस्तुत सम्यक्-दर्शन एक जीवन-दृष्टि है। बिना जीवन-दृष्टि के जीवन का कोई अर्थ नही रह जाता। व्यक्ति की जीवन-दृष्टि जैसी होती है उसी रूप मे उसके चरित्र का निर्माण हो जाता है। गीता मे कहा गया है कि व्यक्ति श्रद्धामय है, जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है।[५०] असम्यक् जीवन-दृष्टि पतन की ओर और सम्यक् जीवन-दृष्टि उत्थान की ओर ले जाती है इसलिए यथार्थ जीवन-दृष्टि का निर्माण जिसे भारतीय परम्परा मे सम्यक्दर्शन, सम्यक्दृष्टि या श्रद्धा कहा गया है, आवश्यक है।

यथार्थ जीवनदृष्टि क्या है ? यदि इस प्रश्न पर हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हम पाते हैं कि समालोच्य सभी आचार-दर्शनो मे अनासक्त एव वीतराग जीवनदृष्टि को ही यथार्थ जीवनदृष्टि माना गया है।

---

४५ मनुस्मृति ६।७४
४६ गीता १७।३
४७ गीता ९।३०-३१
४८ गीता (शा०) १८।१२
४९ भावपाहुड १४३
५० गीता १७।३



सम्यक्दर्शन का वर्गीकरण

उत्तराध्ययनसूत्र मे सम्यक्दर्शन के, उसकी उत्पत्ति के आधार पर, दस भेद किये गये हैं, जो निम्नानुसार हैं—

(१) **निसर्ग (स्वभाव) रुचि सम्यक्त्व**—जो यथार्थ दृष्टिकोण व्यक्ति मे स्वत ही उत्पन्न हो जाता है, वह निसर्गरुचि सम्यक्त्व कहा जाता है।

(२) **उपदेशरुचि सम्यक्त्व**—दूसरे व्यक्ति से सुनकर जो यथार्थ दृष्टिकोण या तत्त्वश्रद्धान होता है, वह उपदेशरुचि सम्यक्त्व है।

(३) **आज्ञारुचि सम्यक्त्व**—वीतराग महापुरुषो के नैतिक आदेशो को मानकर जो यथार्थ दृष्टिकोण उत्पन्न होता है अथवा जो तत्त्वश्रद्धा होती है, उसे आज्ञारुचि सम्यक्त्व कहा जाता है।

(४) **सूत्ररुचि सम्यक्त्व**—अगप्रविष्ट एव अगवाह्य ग्रन्थो के अध्ययन के आधार पर जो यथार्थ दृष्टिकोण या तत्त्वश्रद्धान होता है, वह सूत्ररुचि सम्यक्त्व कहा जाता है।

(५) **बीजरुचि सम्यक्त्व**—यथार्थता के स्वल्पबोध को स्वचिन्तन के द्वारा विकसित करना, बीजरुचि सम्यक्त्व है।

(६) **अभिगमरुचि सम्यक्त्व**—अगसाहित्य एव अन्य ग्रन्थो को अर्थ एव विवेचना सहित अध्ययन करने से जो तत्त्व-बोध एव तत्व-श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह अभिगमरुचि सम्यक्त्व है।

(७) **विस्ताररुचि सम्यक्त्व**—वस्तुतत्त्व (षट् द्रव्यो) के अनेक पक्षो का विभिन्न अपेक्षाओ (दृष्टिकोणो) एव प्रमाणो से अवबोध कर उनकी यथार्थता पर श्रद्धा करना, यह विस्ताररुचि सम्यक्त्व है।

(८) **क्रियारुचि सम्यक्त्व**—प्रारम्भिक रूप मे साधक जीवन की विभिन्न क्रियाओ के आचरण मे रुचि हो और उस साधनात्मक अनुष्ठान के फलस्वरूप यथार्थता का बोध हो, वह क्रियारुचि सम्यक्त्व है।

(९) **सक्षेपरुचि सम्यक्त्व**—जो वस्तुतत्त्व का यथार्थ स्वरूप नही जानता है और जो आर्हत् प्रवचन (ज्ञान) मे प्रवीण भी नही है लेकिन जिसने अयथार्थ (मिथ्यादृष्टिकोण) को अगीकृत भी नही किया, जिसमे यथार्थ ज्ञान की अल्पता होते हुए भी मिथ्या (असत्य) धारणा नही है ऐसा सम्यक्त्व सक्षेपरुचि कहा जाता है।

(१०) **धर्मरुचि सम्यक्त्व**—तीर्थंकरदेव प्रणीत धर्म मे बताए गए द्रव्य स्वरूप, आगम साहित्य एव नैतिक नियम (चारित्र) पर आस्तिक्य भाव रखना उन्हे यथार्थ मानना यह धर्मरुचि सम्यक्त्व है।[५१]

सम्यक्त्व का त्रिविध वर्गीकरण[५२]

अपेक्षाभेद से सम्यक्त्व का त्रिविध वर्गीकरण भी जैनाचार्यों ने किया है। इस वर्गीकरण के अनुसार सम्यक्त्व के कारक, रोचक और दीपक ऐसे तीन भेद किये गये हैं •

१ कारकसम्यक्त्व

जिस यथार्थ दृष्टिकोण (सम्यक्त्व) के होने पर व्यक्ति सदाचरण या सम्यक्चारित्र की

---

५१ उत्तरा० २८।१६ ५२ विशेषावश्यकभाष्य २६७५



साधना मे अग्रसर होता है, वह 'कारक सम्यक्त्व' है। कारक सम्यक्त्व ऐसा यथार्थ दृष्टिकोण है जिसमे व्यक्ति आदर्श की उपलब्धि के हेतु सक्रिय एव प्रयासशील बन जाता है। नैतिक दृष्टि मे कहे तो 'कारक-सम्यक्त्व' शुभाशुभ विवेक की वह अवस्था है जिसमे व्यक्ति जिस शुभ का निश्चय करता है उसका आचरण भी करता है। यहाँ ज्ञान और क्रिया मे अभेद होता है। सुकरात का यह वचन कि 'ज्ञान ही सद्गुण है' इस अवस्था मे लागू होता है।

२ रोचकसम्यक्त्व

रोचक सम्यक्त्व सत्यबोध की वह अवस्था है जिसमे व्यक्ति शुभ को शुभ और अशुभ को अशुभ के रूप मे जानता है और शुभ की प्राप्ति की इच्छा भी करता है, लेकिन उसके लिए प्रयास नहीं करता। सत्यासत्यविवेक होने पर भी सत्य का आचरण नही कर पाना, यह रोचक सम्यक्त्व है। जैसे कोई रोगी अपनी रुग्णावस्था को भी जानता है, रोग की औषधि भी जानता है और रोग से मुक्त होना भी चाहता है लेकिन फिर भी औषधि का ग्रहण नही कर पाता वैसे ही रोचक सम्यक्त्व वाला व्यक्ति ससार के दु खमय यथार्थ स्वरूप को जानता है, उससे मुक्त होना भी चाहता है, उसे मोक्ष-मार्ग का भी ज्ञान होता है फिर वह सम्यक्चारित्र का पालन (चारित्रमोहकर्म के उदय के कारण) नहीं कर पाता है। इस अवस्था को महाभारत के उस वचन के समकक्ष माना जा सकता है, जिसमे कहा गया है कि धर्म को जानते हुए भी उसमे प्रवृत्ति नही होती और अधर्म को जानते हुए भी उससे निवृत्ति नहीं होती है।[५३]

३ दीपकसम्यक्त्व

वह अवस्था जिसमे व्यक्ति अपने उपदेश से दूसरो मे तत्वजिज्ञासा उत्पन्न कर देता है और उसके परिणामस्वरूप होने वाले यथार्थबोध का कारण बनता है, दीपक सम्यक्त्व कहलाती है। दीपक सम्यक्त्व वाला व्यक्ति वह है जो दूसरो को सन्मार्ग पर लगा देने का कारण तो बन जाता है लेकिन स्वय कुमार्ग का ही पथिक बना रहता है। जैसे कोई नदी के तीर पर खडा हुआ व्यक्ति किसी नदी के मध्य मे थके हुए तैराक का उत्साहवर्धन कर उसके पार लगने का कारण बन जाता है यद्यपि न तो स्वयं तैरना जानता है और न पार ही होता है।

सम्यक्त्व का त्रिविध वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से भी किया गया है—जिसमे कर्मप्रकृतियो के क्षयोपशम के आधार पर उसके भेद किये है। जैन विचारणा मे अनन्तानुबधी (तीव्रतम) क्रोध, मान, माया (कपट), लोभ तथा मिथ्यात्वमोह, मिश्रमोह और सम्यक्त्वमोह यह सात कर्मप्रकृतियाँ सम्यक्त्व (यथार्थबोध) की विरोधी मानी गयी है, इसमे सम्यक्त्वमोहनीय को छोड़ शेष छह कर्म-प्रकृतियां उदय होती हैं तो सम्यक्त्व का प्रगटन नहीं हो पाता। सम्यक्त्वमोह मात्र सम्यक्त्व की निर्मलता और विशुद्धि मे बाधक होता है। कर्मप्रकृतियो की तीन स्थितियां हैं—

१ क्षय, २ उपशम, और ३. क्षयोपशम।

उसी आधार पर सम्यक्त्व का यह वर्गीकरण किया गया है जिसमे सम्यक्त्व तीन प्रकार का होता है—

१ औपशमिक सम्यक्त्व २ क्षायिक सम्यक्त्व, और
३. क्षायोपशमिक सम्यक्त्व।

---

५३ देखिए—पचदशी ६।१७६ उद्धृत—भारतीय-दर्शन, पृ० १२



१ औपशमिक सम्यक्त्व

उपरोक्त (क्रियमाण) कर्मप्रकृतियो के उपशमित (दबाई हुई) हो जाने से जिस सम्यक्त्व गुण का प्रगटन होता है वह औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। औपशमिक सम्यक्त्व मे स्थायित्व का अभाव होता है। शास्त्रीय विवेचना के अनुसार यह एक अन्तर्मुहूर्त (४८ मिनिट) से अधिक नहीं टिक पाता है। उपशमित कर्मप्रकृतियाँ (वासनाएँ) पुन जाग्रत होकर इसे विनष्ट कर देती हैं।

२ क्षायिक सम्यक्त्व

उपरोक्त सातों कर्मप्रकृतियो के क्षय हो जाने पर जिस सम्यक्त्व रूप यथार्थबोध का प्रगटन होता है, वह क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह यथार्थबोध स्थायी होता है और एक बार प्रकट होने पर कभी भी विनष्ट नही होता है। शास्त्रीय भाषा मे यह सादि एव अनन्त होता है।

३ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व

मिथ्यात्वजनक उदयगत (क्रियमाण) कर्मप्रकृतियो के क्षय हो जाने पर और अनुदित (सत्तावान या सचित) कर्मप्रकृतियो के उपशम हो जाने पर जिस सम्यक्त्व का प्रगटन होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। यद्यपि सामान्य दृष्टि से यह अस्थायी ही है फिर भी एक लम्बी समयावधि (छयासठ सागरोपम से कुछ अधिक) तक अवस्थित रह सकता है।

औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की भूमिका मे सम्यक्त्व के रस का पान करने के पश्चात् जब साधक पुन मिथ्यात्व की ओर लौटता है तो लौटने की इस क्षणिक समयावधि में वान्त सम्यक्त्व का किंचित् सस्कार अवशिष्ट रहता है। जैसे वमन करते समय वमित पदार्थों का कुछ स्वाद आता है वैसे ही सम्यक्त्व को वान्त करते समय सम्यक्त्व का भी कुछ आस्वाद रहता है। जीव की ऐसी स्थिति **सास्वादन सम्यक्त्व** कहलाती है।

साथ ही जब जीव क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की भूमिका से क्षायिक सम्यक्त्व की प्रशस्त भूमिका पर आगे बढता है और इस विकास क्रम मे जब वह सम्यक्त्वमोहनीय कर्मप्रकृति के कर्मदलिको का अनुभव कर रहा होता है तो उसके सम्यक्त्व की यह अवस्था **'वेदक सम्यक्त्व'** कहलाती है। वेदक सम्यक्त्व के अनन्तर जीव क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है।

वस्तुत. सास्वादन सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व सम्यक्त्व की मध्यान्तर अवस्थायें है। पहली सम्यक्त्व से मिथ्यात्व की ओर गिरते समय और दूसरी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से क्षायिक सम्यक्त्व की ओर बढते समय होती है।

सम्यक्त्व का विविध वर्गीकरण

सम्यक्त्व का विश्लेषण अनेक अपेक्षाओ से किया गया है ताकि उसके विविध पहलुओ पर समुचित प्रकाश डाला जा सके। सम्यक्त्व का विविध वर्गीकरण चार प्रकार से किया गया है—

(अ) द्रव्यसम्यक्त्व और भावसम्यक्त्व[५४]

१ द्रव्यसम्यक्त्व—विशुद्ध रूप मे परिणत किये हुए मिथ्यात्व के कर्मपरमाणु द्रव्य-सम्यक्त्व कहलाते हैं।

---

५४ प्रवचनसारोद्धार (टीका) १४९।९४२



२. भावसम्यक्त्व—उपरोक्त विशुद्ध पुद्गल वर्गणा के निमित्त से होने वाली तत्त्वश्रद्धा भावसम्यक्त्व कहलाती है।

(ब) निश्चयसम्यक्त्व और व्यवहारसम्यक्त्व[55]

१ निश्चयसम्यक्त्व—राग-द्वेष और मोह का अत्यल्प हो जाना, पर-पदार्थों से भेदज्ञान एव स्व-स्वरूप मे रमण, देह मे रहते हुए देहाध्यास का छूट जाना, यह निश्चयसम्यक्त्व के लक्षण हैं। मेरा शुद्ध स्वरूप अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तआनन्दमय है। पर-भाव या आसक्ति ही मेरे बन्धन का कारण है, और स्व-स्वभाव मे रमण करना यही मोक्ष का हेतु है। मैं स्वय ही अपना आदर्श हूँ, देव-गुरु और धर्म यह मेरा आत्मा ही है। ऐसी दृढ श्रद्धा का होना ही निश्चय-सम्यक्त्व है। दूसरे शब्दो मे आत्मकेन्द्रित होना यही निश्चयसम्यक्त्व है।

२ व्यवहारसम्यक्त्व—वीतराग मे देवबुद्धि (आदर्श बुद्धि), पाँच महाव्रतो के पालन करने वाले मुनियो मे गुरुबुद्धि और जिनप्रणीत धर्म मे सिद्धान्तबुद्धि रखना, यह व्यवहारसम्यक्त्व है।

(स) निसर्गजसम्यक्त्व और अधिगमजसम्यक्त्व[56]

१ निसर्गजसम्यक्त्व—जिस प्रकार नदी के प्रवाह मे पडा हुआ पत्थर अप्रयास ही स्वाभाविक रूप से गोल हो जाता है उसी प्रकार ससार मे भटकते हुए प्राणी के अनायास ही जब कर्मावरण के अल्प होने पर यथार्थता का बोध हो जाता है तो ऐसा सत्यबोध निसर्गज (प्राकृतिक) होता है। बिना किसी गुरु आदि के उपदेश के स्वाभाविक रूप में स्वत उत्पन्न होने वाला ऐसा सत्यबोध निसर्गजसम्यक्त्व कहलाता है।

२ अधिगमजसम्यक्त्व—गुरु आदि के उपदेशरूप निमित्त से होने वाला सत्यबोध या सम्यक्त्व अधिगमजसम्यक्त्व कहलाता है।

इस प्रकार जैन दार्शनिक न तो वेदान्त और मीमासक दर्शन के अनुसार सत्य-पथ के नित्य प्रकटन को स्वीकार करते है और न न्याय-वैशेषिक और योगदर्शन के समान यह मानते हैं कि सत्य-पथ का प्रकटन ईश्वर के द्वारा होता है वरन् वे तो यह मानते हैं कि जीवात्मा मे सत्यबोध को प्राप्त करने की स्वाभाविक शक्ति है और वह बिना किसी दूसरे की सहायता के सत्य-पथ का बोध प्राप्त कर सकता है यद्यपि किन्हीं विशिष्ट आत्माओ (सर्वज्ञ, तीर्थंकर) द्वारा सत्य-पथ का प्रकटन एव उपदेश भी किया जाता है।[57]

सम्यक्त्व के पाँच अग

'सम्यक्त्व यथार्थता है, सत्य है, इस सत्य की साधना के लिए जैन विचारको ने ५ अगो का विधान किया है। जब तक साधक इन्हें नही अपना लेता है वह यथार्थता या सत्य की आराधना एव उपलब्धि मे समर्थ नही हो पाता। सम्यक्त्व के निम्न पाँच अग हैं.

१ सम—सम्यक्त्व का पहला लक्षण है सम। प्राकृत भाषा का यह 'सम' शब्द सस्कृत भाषा में तीन रूप लेता है—१ सम, २ शम, ३. श्रम। इन तीनो शब्दो के अनेक अर्थ होते हैं।

---

५५ प्रवचनसारोद्धार (टीका) १४६।६४२

५६ स्थानाग सूत्र २।१।७०

५७ स्टडीज इन जैन फिलासफी, पृ० २६८



पहले 'सम' शब्द के ही दो अर्थ होते है। पहले अर्थ मे यह समानुभूति या तुल्यता है अर्थात् सभी प्राणियो को अपने समान समझना है। इस अर्थ मे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के महान् सिद्धान्त की स्थापना करता है जो अहिंसा की विचार-प्रणाली का आधार है। दूसरे अर्थ मे इसे सम-मनोवृत्ति या समभाव कहा जा सकता है अर्थात् सुख-दु ख, हानि-लाभ आदि एव अनुकूल और प्रतिकूल दोनो स्थितियो मे समभाव रखना, चित्त को विचलित नही होने देना। यह चित्तवृत्ति सतुलन है। सस्कृत के 'शम' के रूप के आधार पर इसका अर्थ होता है शात करना अर्थात् कषायाग्नि या वासनाओ को शात करना। सस्कृत के तीसरे रूप 'श्रम' के आधार पर इसका निर्वचन होता है—प्रयास, प्रयत्न या पुरुषार्थ करना।

२ **सवेग**—सवेग शब्द का शाब्दिक विश्लेषण करने पर उसका निम्न अर्थ ध्वनित होता है—सम्+वेग, सम्—सम्यक्, उचित, वेग—गति अर्थात् सम्यक्गति। सम् शब्द आत्मा के अर्थ मे भी आ सकता है। इस प्रकार इसका अर्थ होगा आत्मा की ओर गति। दूसरे, सामान्य अर्थ मे सवेग शब्द अनुभूति के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। यहाँ इसका तात्पर्य होगा स्वानुभूति, आत्मानुभूति अथवा आत्मा के आनन्दमय स्वरूप की अनुभूति। तीसरे, आकाक्षा की तीव्रतम अवस्था को भी सवेग कहा जाता है। इस प्रसग मे इसका अर्थ होगा सत्याभीप्सा अर्थात् सत्य को जानने के तीव्रतम आकाक्षा। क्योकि जिसमे सत्याभीप्सा होगी वही सत्य को पा सकेगा। सत्याभीप्सा से ही अज्ञान मे ज्ञान की ओर प्रगति होती है। यही कारण है कि उत्तराध्ययनसूत्र मे सवेग का प्रतिफल बताते हुए महावीर कहते हैं कि सवेग से मिथ्यात्व की विशुद्धि होकर यथार्थ-दर्शन की उपलब्धि (आराधना) होती है।[५८]

३ **निर्वेद**—निर्वेद शब्द का अर्थ होता है उदासीनता, वैराग्य, अनासक्ति। सासारिक प्रवृत्तियों के प्रति उदासीन भाव रखना। क्योकि इसके अभाव मे साधना-मार्ग पर चलना सम्भव नही होता। वस्तुत. निर्वेद निष्काम भावना या अनासक्त दृष्टि के उदय का आवश्यक अग है।

४ **अनुकम्पा**—इस शब्द का शाब्दिक निर्वचन इस प्रकार है—अनु+कम्पा। अनु का अर्थ है तदनुसार, कम्प का अर्थ है धूजना या कम्पित होना अर्थात् किसी अन्य के अनुसार कम्पित होना। दूसरे शब्दो मे कहें तो दूसरे व्यक्ति के दु खित या पीडित होने पर तदनुकूल अनुभूति हमारे अन्दर उत्पन्न होना यही अनुकम्पा है। दूसरे के सुख-दु ख को अपना सुख-दु ख समझना यही अनुकम्पा का अर्थ है। परोपकार के नैतिक सिद्धान्त का आधार यही अनुकम्पा है। इसे सहानुभूति भी कहा जा सकता है।

५ **आस्तिक्य**—आस्तिक्य शब्द आस्तिकता का द्योतक है। जिसके मूल मे अस्ति शब्द है जो सत्ता का वाचक है। आस्तिक किसे कहा जाए इस प्रश्न का उत्तर अनेक रूपो मे दिया गया है। कुछ ने कहा—जो ईश्वर के अस्तित्व या सत्ता मे विश्वास करता है, वह आस्तिक है। दूसरो ने कहा—जो वेदो मे आस्था रखता है, वह आस्तिक है। लेकिन जैन विचारणा मे आस्तिक और नास्तिक के विभेद का आधार इससे भिन्न है। जैन-दर्शन के अनुसार जो पुण्य-पाप, पुर्नजन्म, कर्म-सिद्धान्त और आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वह आस्तिक है।

सम्यक्त्व के दूषण (अतिचार)

जैन विचारको की दृष्टि मे यथार्थता या सम्यक्त्व के निम्न पाँच दूषण (अतिचार) माने

५८ उत्तरा० २९।१

गये हैं जो सत्य या यथार्थता को अपने विशुद्ध स्वरूप मे जानने अथवा अनुभूत करने मे वाधक होते हैं। अतिचार वह दोष है जिससे व्रत भग तो नही होता लेकिन उसकी सम्यक्ता प्रभावित होती है। सम्यक् दृष्टिकोण की यथार्थता को प्रभावित करने वाले ३ दोष हैं—१ चल, २ मल, और ३ अगाढ। चल दोष से तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यक्ति अन्त करणपूर्वक तो यथार्थ दृष्टिकोण के प्रति दृढ रहता है लेकिन कभी-कभी क्षणिक रूप मे वाह्य आवेगो से प्रभावित हो जाता है। मल वे दोष हैं जो यथार्थ दृष्टिकोण की निर्मलता को प्रभावित करते हैं। मल निम्न पांच है—

१ **शका**—वीतराग या अर्हत् के कथनो पर शका करना, उनकी यथार्थता के प्रति सदेहात्मक दृष्टिकोण रखना।

२ **आकाक्षा**—स्वधर्म को छोडकर पर-धर्म की इच्छा करना, आकाक्षा करना। अथवा नैतिक एव धार्मिक आचरण के फल की आकाक्षा करना। फलासक्ति भी साधना-मार्ग मे वाधक तत्त्व मानी गयी है।

३ **विचिकित्सा**—नैतिक अथवा धार्मिक आचरण के फल के प्रति सशय करना कि मेरे इस सदाचरण का प्रतिफल मिलेगा या नही। जैन विचारणा मे कर्मो की फलापेक्षा एव फल-सशय दोनो को ही अनुचित माना गया है। कुछ जैनाचार्यों के अनुसार इसका अर्थ घृणा भी लगाया गया है।[५९] रोगी एव ग्लान व्यक्तियो के प्रति घृणा रखना। घृणाभाव व्यक्ति को सेवापथ से विमुख वनाता है।

४ **मिथ्यादृष्टियों की प्रशसा**—जिन लोगो का दृष्टिकोण सम्यक् नही है ऐसे अयथार्थ दृष्टिकोण वाले व्यक्तियो अथवा सगठनो की प्रशसा करना।

५ **मिथ्यादृष्टियो से अति परिचय**—साधनात्मक अथवा नैतिक जीवन के प्रति जिनका दृष्टिकोण अयथार्थ है, ऐसे व्यक्तियो से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना। सगति का असर व्यक्ति के जीवन पर काफी अधिक होता है। चारित्र के निर्माण एव पतन दोनो मे ही सगति का प्रभाव पडता है अत अनैतिक आचरण करने वाले लोगो से अतिपरिचय या घनिष्ठ सम्वन्ध रखना उचित नही माना गया है।

प० वनारसीदासजी ने नाटक समयसार मे सम्यक्त्व के अतिचारो की एक भिन्न सूची प्रस्तुत की है। उनके अनुसार सम्यक्दर्शन के निम्न पांच अतिचार हैं—

१ लोकभय
२. सासारिक सुखो के प्रति आसक्ति
३ भावी जीवन मे सासारिक सुखो के प्राप्त करने की इच्छा
४ मिथ्याशास्त्रो की प्रशसा एव
५ मिथ्या-मतियो की सेवा[६०]

अगाढ दोष वह दोष है जिसमे अस्थिरता रहती है। जिस प्रकार हिलते हुए दर्पण मे यथार्थ रूप तो दिखता है लेकिन वह अस्थिर होता है। इसी प्रकार अस्थिर चित्त मे सत्य का प्रकटन तो होता है लेकिन वह भी अस्थिर होता है। स्मरण रखना चाहिए कि जैन विचारणा के अनुसार उपरोक्त दोषो की सम्भावना क्षायोपशमिक सम्यक्त्व मे होती है—उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक

---

५९ देखिए गोम्मटसार (जीवकाण्ड) गाथा २९ की अग्रेजी टीका जे० एल० जैन, पृष्ठ २२
६० नाटक समयासार १३।३८



सम्यक्त्व मे नही होती है क्योकि उपशम सम्यक्त्व की समयावधि ही इतनी क्षणिक होती है कि दोष होने का अवकाश ही नही रहता और क्षायिक सम्यक्त्व पूर्ण शुद्ध होता है अत. वहाँ भी दोषो की सम्भावना नहीं रहती है।

सम्यक्दर्शन के आठ अंग या आठ दर्शनाचार

उत्तराध्ययनसूत्र मे सम्यग्दर्शन की साधना के आठ अग प्रस्तुत किये गये हैं जिनका समाचरण साधक के लिए अपेक्षित है। दर्शनविशुद्धि एव उसके सवर्द्धन और सरक्षण के लिए इनका पालन आवश्यक माना गया है। उत्तराध्ययन मे वर्णित यह आठ प्रकार का दर्शनाचार निम्न है—

१—नि शकित २—नि काक्षित ३—निर्विचिकित्सा ४—अमूढदृष्टि ५—उपबृहण ६—स्थिरीकरण ७—वात्सल्य, और ८—प्रभावना।[६१]

१ **नि शकता**—संशयशीलता का अभाव ही नि शकता है। जिनप्रणीत तत्त्व-दर्शन मे शका नहीं करना—उसे यथार्थ एव सत्य मानना, यही नि शकता है।[६२] संशयशीलता साधनात्मक जीवन के विकास का विघातक तत्त्व है। जिस साधक की मन स्थिति सशय के हिंडोले मे झूल रही हो वह भी इस ससार मे झूलता रहता है (परिभ्रमण करता रहता है) और अपने लक्ष्य को नही पा सकता। साधना के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साध्य, साधक और साधना-पथ तीनो पर अविचल श्रद्धा चाहिए। साधक मे जिस क्षण भी इन तीनो मे से एक के प्रति भी सन्देहशीलता उत्पन्न होती है, वह साधना के क्षेत्र मे च्युत हो जाता है। यही कारण है कि जैन विचारणा साधनात्मक जीवन के लिए निश्शकता को आवश्यक मानती है। निश्शकता की इस धारणा को प्रज्ञा और तर्क की विरोधी नही मानना चाहिए। सशय ज्ञान के विकास मे साधन हो सकता है लेकिन उसे साध्य मान लेना अथवा सशय मे ही रुक जाना यह साधनात्मक जीवन के उपयुक्त नही है। मूलाचार मे निश्शकता को निर्भयता माना गया है।[६३] नैतिकता के लिए पूर्ण निर्भय जीवन आवश्यक है। भय पर स्थित नैतिक्ता सच्ची नैतिकता नही है।

२ **निष्कांक्षता**—स्वकीय आनन्दमय परमात्मस्वरूप मे निष्ठावान रहना और किसी भी पर-भाव की आकाक्षा या इच्छा नही करना यही निष्काक्षता है। साधनात्मक जीवन मे भौतिक वैभव अथवा ऐहिक तथा पारलौकिक सुख को लक्ष्य बना लेना, यही जैनदर्शन के अनुसार 'काक्षा' है।[६४] किसी भी लौकिक और पारलौकिक कामना को लेकर साधनात्मक जीवन मे प्रविष्ट होना यह जैन विचारणा को मान्य नही है, वह ऐसी साधना को वास्तविक साधना नही कहता है क्योकि वह आत्म-केन्द्रित नहीं है। भौतिक सुखो और उपलब्धियो के पीछे भागने वाला साधक चमत्कार और प्रलोभन के पीछे किसी भी क्षण लक्ष्यच्युत हो सकता है। इस प्रकार जैन साधना मे यह माना गया है कि साधक को साधना के क्षेत्र मे प्रविष्ट होने के लिए निष्काक्षित अथवा निष्काम भाव से युक्त होना चाहिए। आचार्य अमृतचन्द्र ने पुरुषार्थसिद्धयुपाय मे निष्काक्षता का अर्थ एकान्तिक मान्यताओ से दूर रहना किया है।[६५] इस आधार पर अनाग्रहयुक्त दृष्टिकोण सम्यक्त्व के लिए आवश्यक माना गया है।

---

६१ उत्तरा० २८।३१
६२ आचाराग १।५।५।१६३
६३ मूलाचार २।५२-५३
६४ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १२
६५ पुरुषार्थ० २४



३. **निर्विचिकित्सा**—निर्विचिकित्सा के दो अर्थ माने गये हैं :

(अ) मैं जो धर्म-क्रिया या साधना कर रहा हूँ इसका फल मुझे मिलेगा या नहीं, मेरी यह साधना व्यर्थ तो नही चली जावेगी, ऐसी आशका रखना 'विचिकित्सा' कहलाती है। इस प्रकार साधना अथवा नैतिक क्रिया के फल के प्रति शकित वने रहना विचिकित्सा है। शकित हृदय से साधना करने वाले साधक मे स्थिरता और धैर्य का अभाव होता है और उसकी साधना सफल नही हो पाती है। अत साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह इस प्रतीति के साथ नैतिक आचरण का प्रारम्भ करें कि क्रिया और फल का अविनाभावी सम्वन्ध है और यदि नैतिक आचरण किया जावेगा तो निश्चित रूप से उसका फल प्राप्त होगा ही। इस प्रकार क्रिया के फल के प्रति सन्देह नही होना यही निर्विचिकित्सा है।

(व) कुछ जैनाचार्यो के अनुसार तपस्वी एव सयमपरायण मुनियो के दुर्वल एव जर्जर शरीर अथवा मलिन वेशभूषा को देखकर मन मे ग्लानि लाना विचिकित्सा है। अत साधक की वेश-भूपा एव शरीरादि वाह्य रूप पर घ्यान नही देकर उसके साधनात्मक गुणो पर विचार करना चाहिए। वेशभूपा एव शरीर आदि वाह्य सौन्दर्य पर दृष्टि को केन्द्रित नही करके आत्म-सौन्दर्य की ओर उसे केन्द्रित करना यही सच्ची निर्विचिकित्सा है। आचार्य समन्तभ्रद का कथन है—शरीर तो स्वभाव से ही अपवित्र है उसकी पवित्रता तो सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप रत्नत्रय के सदाचरण से ही होती है अतएव गुणीजनो के शरीर से घृणा न कर उनके गुणो से प्रेम करना निर्विचिकित्सा है।[६६]

४ **अमूढ़दृष्टि**—मूढता का अर्थ है अज्ञान। हेय और उपादेय, योग्य और अयोग्य के मध्य निर्णायक क्षमता का अभाव ही अज्ञान है, मूढता है। जैन साहित्य मे विभिन्न प्रकार की मूढताओ का वर्गीकरण तीन भागो मे किया गया है—

१ देवमूढता, २. लोकमूढता, और ३ समयमूढता।

(अ) **देवमूढता**—साधना का आदर्श कौन है ? उपास्य वनने की क्षमता किसमे है ? ऐसे निर्णायक ज्ञान का अभाव ही देवमूढता है, जिसके कारण साधक अपने लिए गलत आदर्श और उपास्य का चयन कर लेता है। जिसमे उपास्य एव साधना का आदर्श वनने की योग्यता नही है उसे उपास्य वना लेना देवमूढता है। काम-क्रोधादि विकारो के पूर्ण विजेता, वीतराग एव अविकल ज्ञान और दर्शन से युक्त परमात्मा को ही अपना उपास्य और आदर्श वनाना, यही देव के प्रति अमूढ़दृष्टि है।

(ब) **लोकमूढता**—लोक प्रवाह और रूढियो का अन्धानुकरण यही लोक मूढता है। आचार्य समन्तभद्र लोकमूढता की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'नदियो एव सागर मे स्नान करने से आत्मा की शुद्धि मानना, पत्थरो का ढेर कर उससे मुक्ति समझना अथवा पर्वत से गिरकर या अग्नि मे जलकर प्राण विसर्जन करना आदि लोकमूढताएँ है।'[६७]

(स) **समयमूढता**—समय का अर्थ सिद्धान्त या शास्त्र भी माना गया है। इस अर्थ मे सैद्धान्तिक ज्ञान या शास्त्रीय ज्ञान का अभाव समयमूढता है।

---

६६ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १३   ६७ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १४



५ उपबृहण—बृहि धातु के साथ 'उप' उपसर्ग लगाने से उपबृह शब्द निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है वृद्धि करना, पोषण करना अपने आध्यात्मिक गुणो का विकास करना यह उपबृहण है।[६८] सम्यक् आचरण करने वाले गुणिजनो की प्रशसा आदि करके उनके सम्यक् आचरण की वृद्धि मे योग देना उपबृहण है।

६ स्थिरीकरण—साधनात्मक जीवन मे कभी-कभी ऐसे अवसर उपस्थित हो जाते हैं जब साधक भौतिक प्रलोभन एव साधनात्मक जीवन की कठिनाइयो के कारण पथच्युत हो जाता है। अत ऐसे अवसरो पर स्वय को पथच्युत होने से बचाना और पथच्युत साधको को धर्ममार्ग मे स्थिर करना, यह स्थिरीकरण है। सम्यग्दृष्टिसम्पन्न साधक को न केवल अपने विकास की चिन्ता करनी होती है वरन् उसका यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसे साधको को जो धर्ममार्ग से विचलित या पतित हो गये हैं, उन्हें मार्ग मे स्थिर करे। जैनदर्शन यह मानता है कि व्यक्ति या समाज की भौतिक सेवा सच्ची सेवा नही है, सच्ची सेवा तो है उसे धर्ममार्ग मे स्थिर करना। जैनाचार्यों का कथन है कि व्यक्ति अपने शरीर के चमडे के जूते बनाकर अपने माता-पिता को पहिनावे अर्थात् उनके प्रति इतना अधिक आत्मोत्सर्ग का भाव रखे तो भी वह उनके ऋण से उऋण नही हो सकता, वह माता-पिता के ऋण से उऋण तभी माना जाता है जब वह उन्हे धर्ममार्ग मे स्थिर करता है। दूसरे शब्दो मे, उनके साधनात्मक जीवन मे सहयोग देता है। अत धर्म-मार्ग से पतित होने वाले व्यक्तियो को धर्म-मार्ग मे पुन स्थिर करना यह साधक का कर्तव्य माना गया है। इस पतन के दो प्रकार होते हैं—

१ दर्शन विकृति अर्थात् दृष्टिकोण की विकृतता

२. चारित्र विकृति अर्थात् धर्म-मार्ग या सदाचरण से च्युत होना। दोनो ही स्थितियो मे उसे यथोचित बोध देकर स्थिर करना चाहिए।[६९]

७. वात्सल्य—धर्ममार्ग मे समाचरण करने वाले समान शील-साथियो के प्रति प्रेमभाव रखना वात्सल्य है। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार 'स्वधर्मियो एव गुणियो के प्रति निष्कपट भाव से प्रीति रखना और उनकी यथोचित सेवा-शुश्रूषा करना वात्सल्य है। वात्सल्य मे मात्र समर्पण और प्रपत्ति का भाव होता है। वात्सल्य धर्मशासन के प्रति अनुराग है। वात्सल्य का प्रतीक गाय और गोवत्स (बछडा) का प्रेम है। जिस प्रकार गाय बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा के गोवत्स को सकट मे देखकर अपने प्राणो को भी जोखिम मे डाल देती है ठीक इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि साधक का भी यह कर्तव्य है कि वह धार्मिकजनो के सहयोग और सहकार के लिए कुछ भी उठा नहीं रखे। वात्सल्य सघ धर्म या सामाजिक भावना का केन्द्रित तत्त्व है।

८ प्रभावना—साधना के क्षेत्र मे स्व-पर-कल्याण की भावना होती है। जैसे पुष्प अपने सुवास से स्वय भी सुवासित होता है और दूसरो को भी सुवासित करता है वैसे ही साधक सदाचरण और ज्ञान की सौरभ से स्वय भी सुरभित होता है, साथ ही जगत् को भी सुरभित करता है। साधना, सदाचरण और ज्ञान की सुरभि द्वारा जगत के अन्य प्राणियो को धर्ममार्ग मे आकर्षित करना, यही प्रभावना है।[७०]

---

६८ पुरुषार्थ० २७
६९ रत्नकरण्ड श्रावकाचार १६
७० पुरुषार्थ० ३०



प्रभावना के आठ प्रकार माने गये हैं—

१ प्रवचन, २ धर्म, ३ वाद, ४ नैमित्तिक ५ तप, ६ विद्या, ७ प्रसिद्ध व्रत ग्रहण करना और ८ कवित्वशक्ति।

सम्यग्दर्शन की साधना के ६ स्थान

जिस प्रकार बौद्धदर्शन मे दु ख है, दु ख का कारण है, दु ख से निवृत्ति हो सकती है, और दु ख निवृत्ति का मार्ग है, इन चार आर्यसत्यो की स्वीकृति सम्यग्दृष्टित्व है उसी प्रकार जैन साधना के अनुसार निम्न षट्स्थानको[71] (छ बातो) की स्वीकृति सम्यग्दृष्टित्व है—

१ आत्मा है
२ आत्मा नित्य है
३ आत्मा अपने कर्मों का कर्ता है
४ आत्मा कृतकर्मों के फल का भोक्ता है
५ आत्मा मुक्ति प्राप्त कर सकता है
६ मुक्ति का उपाय या मार्ग है।

जैन तत्त्व विचारणा के अनुसार उपरोक्त षट्स्थानको पर दृढ प्रतीति सम्यग्दर्शन की साधना का आवश्यक अग है। दृष्टिकोण की विशुद्धता एव सदाचरण दोनो ही इन पर निर्भर हैं। यह षट्स्थानक जैन नैतिकता के केन्द्र बिन्दु है।

बौद्ध-दर्शन मे सम्यक्-दर्शन का स्वरूप

जैसा कि हमने पूर्व मे देखा बौद्ध परम्परा मे जैन-परम्परा के सम्यक्दर्शन के स्थान पर सम्यक् समाधि, श्रद्धा या चित्त का विवेचन उपलब्ध होता है। बुद्ध ने अपने त्रिविध साधना मार्ग मे कही शील, समाधि और प्रज्ञा, कही शील, चित्त और प्रज्ञा और कहीं शील, श्रद्धा और प्रज्ञा का विवेचन किया है। इस आधार पर हम देखते हैं कि बौद्ध-परम्परा मे समाधि, चित्त और श्रद्धा का प्रयोग सामान्यतया एक ही अर्थ मे हुआ है। वस्तुत श्रद्धा चित्त-विकल्प की शून्यता की ओर ही ले जाती है। श्रद्धा के उत्पन्न हो जाने पर विकल्प समाप्त हो जाते है। उसी प्रकार समाधि की अवस्था मे भी चित्त-विकल्पो की शून्यता होती है, अत. दोनो को एक ही माना जा सकता है। श्रद्धा और समाधि दोनो ही चित्त की अवस्थाएँ हैं अतः उनके स्थान पर चित्त का प्रयोग भी किया गया है। क्योकि चित्त की एकाग्रता ही समाधि है और चित्त की भावपूर्ण अवस्था ही श्रद्धा है। अत. चित्त, समाधि और श्रद्धा एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति करते है। यद्यपि अपेक्षाभेद से इनके अर्थों मे भिन्नता भी रही हुई है। श्रद्धा बुद्ध, सघ और धर्म के प्रति अनन्य निष्ठा है तो समाधि चित्त की शात अवस्था है।

बौद्ध परम्परा मे सम्यक्दर्शन का अर्थ साम्य बहुत कुछ सम्यक्दृष्टि से है। जिस प्रकार जैन-दर्शन मे सम्यक्दर्शन तत्त्वश्रद्धा है उसी प्रकार बौद्धदर्शन मे सम्यक्दृष्टि चार आर्यसत्यो के

---

७१ आत्मा छे, ते नित्य छे, छे कर्ता निजकर्म।
छे भोक्ता वली मोक्ष छे, मोक्ष उपाय सुधर्म॥

—आत्मसिद्धि शास्त्र (राजचन्दभाई)



प्रति श्रद्धा है। जिस प्रकार जैन-दर्शन मे सम्यक्दर्शन का अर्थ देव, गुरु और धर्म के प्रति निष्ठा माना गया है उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन मे श्रद्धा का अर्थ बुद्ध, सघ और धर्म के प्रति निष्ठा है। जिस प्रकार जैन-दर्शन मे देव के रूप मे अरिहत को साधना आदर्श के रूप मे स्वीकार किया जाता है उसी प्रकार बौद्ध-परम्परा में साधना आदर्श के रूप मे बुद्ध और बुद्धत्व को स्वीकार किया जाता है। साधना-मार्ग के रूप मे दोनो ही धर्म के प्रति निष्ठा को आवश्यक बताते है। जहाँ तक साधना के पथ-प्रदर्शक का प्रश्न है जैन-परम्परा मे पथ-प्रदर्शक के रूप मे गुरु को स्वीकार किया गया है जबकि बौद्ध-परम्परा उसके स्थान पर संघ को स्वीकार करती है।

जैसा कि हमने पूर्व मे निर्देश किया, जैन-दर्शन मे सम्यक्दर्शन के दृष्टिकोणपरक और श्रद्धापरक ऐसे दो अर्थ स्वीकृत रहे हैं। बौद्ध-परम्परा मे श्रद्धा और सम्यक्दृष्टि दो भिन्न-भिन्न तथ्य माने गये हैं। दोनो समवेत रूप से जैन-दर्शन के सम्यक्दर्शन शब्द के अर्थ की अवधारणा को बौद्ध-दर्शन मे स्पष्ट कर देते हैं।

बौद्ध-परम्परा मे सम्यक्दृष्टि का अर्थ दुःख, दुःख के कारण, दुःख निवृत्ति का मार्ग और दुःख विमुक्ति इन चार आर्यसत्यो की स्वीकृति रहा है। जिस प्रकार जैन-दर्शन मे वह जीवादि नव तत्त्वो का श्रद्धान् है उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन मे वह चार आर्यसत्यो का श्रद्धान् है।

यदि हम सम्यक्दर्शन को तत्त्वदृष्टि या तत्त्वश्रद्धान् से भिन्न श्रद्धापरक अर्थ मे गिनते हैं तो बौद्ध परम्परा में उसकी तुलना श्रद्धा से की जा सकती है। बौद्ध परम्परा मे श्रद्धा पाँच इन्द्रियो मे प्रथम इन्द्रिय, पाँच बलो मे अन्तिम बल और स्रोतापन्न अवस्था के चार अगो मे प्रथम अग मानी गई है। बौद्ध परम्परा मे श्रद्धा का अर्थ चित्त की प्रसादमयी अवस्था माना गया है। श्रद्धा जब चित्त मे उत्पन्न होती है तो वह चित्त को प्रीति और प्रामोद्य से भर देती है और चित्तमलो को नष्ट कर देती है। यहाँ हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि बौद्ध परम्परा मे श्रद्धा अन्धविश्वास नही वरन् एक बुद्धिसम्मत अनुभव है। यह विश्वास करना नहीं वरन् साक्षात्कार के पश्चात् उत्पन्न हुई तत्त्वनिष्ठा है। बुद्ध एक ओर यह मानते हैं कि धर्म का ग्रहण स्वय के द्वारा जानकर ही करना चाहिए। समग्र कलामासुत्त मे उन्होंने इसे सविस्तार स्पष्ट किया है। दूसरी ओर वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति बुद्धधर्म और सघ के प्रति निष्ठावान रहे। बुद्ध श्रद्धा को प्रज्ञा से समन्वित करके चलते हैं। मज्झिमनिकाय मे बुद्ध यह स्पष्ट कर देते हैं कि समीक्षा के द्वारा ही उचित प्रतीत होने पर धर्म का ग्रहण करना चाहिए।[७२] विवेक और समीक्षा यह सदैव ही बुद्ध को स्वीकृत रहे हैं। बुद्ध भिक्षुओ को सावधान करते हुए कहते थे कि भिक्षुओ, क्या तुम शास्ता के गौरव से तो हाँ नही कह रहे हो ? भिक्षुओ, जो तुम्हारा अपना देखा हुआ, अपना अनुभव किया हुआ है क्या उसी को तुम कह रहे हो।[७३] इस प्रकार बुद्ध श्रद्धा को प्रज्ञा से समन्वित कर देते है। सामान्यतया बौद्ध-दर्शन मे श्रद्धा को प्रथम और प्रज्ञा को अन्तिम स्थान दिया गया है। साधना-मार्ग की दृष्टि से श्रद्धा पहले आती है और प्रज्ञा उसके पश्चात् उत्पन्न होती है। श्रद्धा के कारण ही धर्म का श्रवण, ग्रहण, परीक्षण और वीर्यारम्भ होता है। नैतिक जीवन के लिए श्रद्धा कैसे आवश्यक होती है इसका सुन्दर चित्रण बौद्ध-परम्परा के सौन्दरनन्द नामक ग्रन्थ मे किया गया है। उसमे बुद्ध नन्द के प्रति कहते हैं कि पृथ्वी के भीतर जल है यह श्रद्धा जब मनुष्य को होती है तब प्रयोजन होने पर पृथ्वी को प्रयत्नपूर्वक खोदता है। भूमि से अन्न की उत्पत्ति होती है, यदि यह

---

७२ मज्झिमनिकाय १।५।७ ७३ मज्झिमनिकाय १।४।८



श्रद्धा कृषक मे न हो तो वह भूमि मे वीज ही नही वोवेगा। धर्म की उत्पत्ति मे श्रद्धा उत्तम कारण मानी गई है। जब तक मनुष्य तत्त्व को देख या सुन नही लेता तव तक उमकी श्रद्धा स्थिर नहीं होती। साधना के क्षेत्र मे प्रथम अवस्था मे श्रद्धा एक परिकल्पना के रूप मे ग्रहण होती है और वही अन्त मे तत्त्वसाक्षात्कार वन जाती है। बुद्ध ने श्रद्धा और प्रज्ञा अथवा दूसरे शब्दो मे जीवन के वौद्धिक और भावात्मक पक्षो मे एक समन्वय किया है। यह एक ऐसा समन्वय है जिसमे न तो श्रद्धा अन्धश्रद्धा वनती है और न प्रज्ञा केवल वौद्धिक या तर्कात्मक ज्ञान वन कर रह जाती है।

जिस प्रकार जैन-दर्शन मे सम्यक्दर्शन के शकाशीलता, आकाक्षा, विचिकित्सा आदि दोप माने गए हैं उसी प्रकार वौद्ध परम्परा मे भी पांच नीवरण माने गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

१ कामच्छन्द (कामभोगो की चाह)
२ अव्यापाद (अविहिंसा)
३ स्त्यानगृद्ध (मानसिक और चैतसिक आलस्य)
४ औद्धत्य-कौकृत्य (चित्त की चंचलता), और
५ विचिकित्सा (शका)।[७४]

तुलनात्मक दृष्टि से अगर हम देखें तो वौद्ध-परम्परा का कामच्छन्द जैन-परम्परा के काक्षा नामक अतिचार के समान है। इसी प्रकार विचिकित्सा को भी दोनो ही दर्शनो मे स्वीकार किया गया है। जैन-परम्परा मे सशय और विचिकित्सा दोनो अलग-अलग माने गए हैं लेकिन वौद्ध परम्परा दोनो का अन्तर्भाव एक मे ही कर देती है। इस प्रकार कुछ सामान्य मतभेदो को छोड कर जैन और वौद्ध दृष्टिकोण एक-दूसरे के निकट ही आते हैं।

गीता मे श्रद्धा का स्वरूप एवं वर्गीकरण

जैसा कि हमने पूर्व मे निर्देश किया कि गीता मे सम्यक्दर्शन के स्थान पर श्रद्धा का प्रत्यय ग्राह्य है। जैन-परम्परा मे सामान्यतया सम्यक्दर्शन दृष्टिपरक अर्थ मे स्वीकार हुआ है और अधिक से अधिक उसमे यदि श्रद्धा का तत्त्व समाहित है तो वह तत्त्वश्रद्धा ही है। लेकिन गीता मे श्रद्धा शब्द का अर्थ प्रमुख रूप से ईश्वर के प्रति अनन्य निष्ठा ही माना गया है। अत गीता मे श्रद्धा के स्वरूप पर विचार करते समय हमे यह ध्यान मे रखना चाहिए कि जैन-दर्शन मे श्रद्धा का जो अर्थ है वह गीता में नहीं है।

यद्यपि गीता भी यह स्वीकार करती है कि नैतिक जीवन के लिए सशयरहित होना आवश्यक है। श्रद्धारहित यज्ञ, तप, दान आदि सभी नैतिक कर्म निरर्थक ही माने गये हैं।[७५] गीता में श्रद्धा तीन प्रकार की मानी गई है—१ सात्विक, २. राजस और ३. तामस। सात्विक श्रद्धा सतोगुण मे उत्पन्न होकर देवताओ के प्रति होती है। राजस श्रद्धा यक्ष और राक्षसो के प्रति होती है। इसमे रजोगुण की प्रवानता होती है। तामस श्रद्धा भूत-प्रेत आदि के प्रति होती है।[७६]

---

७४ विसुद्धिमग्ग, पृ० ५१ (भाग-१)
७५ गीता १७।१५
७६ गीता १७।२-४



जिस प्रकार जैन-दर्शन मे शका या सन्देह को सम्यक्दर्शन का दोष माना गया है उसी प्रकार गीता मे भी सशयात्मकता को दोष माना गया है।[७७] जिस प्रकार जैन-दर्शन मे फलाकाक्षा भी सम्यक्दर्शन का अतिचार (दोष) मानी गई है उसी प्रकार गीता मे भी फलाकाक्षा को नैतिक जीवन का दोष ही माना गया है। गीता के अनुसार जो फलाकाक्षा से युक्त होकर श्रद्धा रखता है अथवा भक्ति करता है वह साधक निम्न श्रेणी का ही है। फलाकाक्षायुक्त श्रद्धा व्यक्ति को आध्यात्मिक प्रगति की दृष्टि से आगे नही ले जाती है। गीता मे श्रीकृष्ण कहते है कि जो लोग विवेक-ज्ञान से रहित होकर तथा भोगो की प्राप्ति विषयक कामनाओ से युक्त हो मुझ परमात्मा को छोड अन्यान्य देवताओ की शरण ग्रहण करते हैं, मैं उन लोगो की श्रद्धा उनमे स्थिर कर देता हूँ और उस श्रद्धा से युक्त होकर वे उन देवताओ की आराधना के द्वारा अपनी कामनाओ की पूर्ति करते है लेकिन उन अल्पबुद्धि लोगो का वह फल नाशवान होता है। देवताओ का पूजन करने वाले देवताओ को प्राप्त होते हैं लेकिन मुझ परमात्मा की भक्ति करने वाला मुझे ही प्राप्त होता है।[७८]

गीता मे श्रद्धा या भक्ति अपने आधारो की दृष्टि से चार प्रकार की मानी गई है—

१. ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् होने वाली श्रद्धा या भक्ति। परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् उनके प्रति जो निष्ठा होती है वह एक ज्ञानी की निष्ठा मानी गई है।

२ जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा पर श्रद्धा रखना। यह श्रद्धा या भक्ति का दूसरा रूप है। इसमे यद्यपि श्रद्धा तो होती है लेकिन वह पूर्णतया सशयरहित नही होती जबकि प्रथम स्थिति मे होने वाली श्रद्धा पूर्णतया सशयरहित होती है। सशयरहित श्रद्धा तो साक्षात्कार के पश्चात् ही सम्भव है। जिज्ञासा की अवस्था मे सशय बना ही रहता है अत श्रद्धा का यह स्तर प्रथम की अपेक्षा निम्न ही माना गया है।

३. तीसरे स्तर की श्रद्धा आर्त व्यक्ति की होती है। कठिनाई मे फँसा हुआ व्यक्ति जब स्वय अपने को उससे उबारने मे असमर्थ पाता है और इसी दैन्य भाव से किसी उद्धारक के प्रति अपनी निष्ठा को स्थित करता है तो उसकी यह श्रद्धा या भक्ति एक दुःखी या आर्त व्यक्ति की भक्ति ही होती है। श्रद्धा या भक्ति का यह स्तर पूर्वोक्त दोनो स्तरो से निम्न होता है।

४ श्रद्धा या भक्ति का चौथा स्तर वह है जिसमे श्रद्धा का उदय स्वार्थ के वशीभूत होकर होता है। यहाँ श्रद्धा कुछ पाने के लिए की जाती है, यह फलाकाक्षा की पूर्ति के लिए की जाने वाली श्रद्धा अत्यन्त निम्न स्तर की मानी गई है। वस्तुतः इसे श्रद्धा केवल उपचार से ही कहा जाता है। अपनी मूल भावनाओ में तो यह एक व्यापार अथवा ईश्वर को ठगने का एक प्रयत्न है। ऐसी श्रद्धा या भक्ति नैतिक प्रगति मे किसी भी अर्थ मे सहायक नही हो सकती है। नैतिक दृष्टि से केवल ज्ञान के द्वारा अथवा जिज्ञासा के लिए की गई श्रद्धा का ही कोई अर्थ और मूल्य हो सकता है।[७९]

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय हमे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गीता मे

---

७७ गीता ४।४०

७८ गीता ७।२१-२३

७९ गीता ७।१६



स्वयं श्रीकृष्ण के द्वारा अनेक वार यह आश्वासन दिया गया है कि जो मेरे प्रति श्रद्धा रखेगा वह वन्धनो से छूट कर अन्त मे मुझे ही प्राप्त हो जावेगा। गीता मे भक्त के योगक्षेम की जिम्मेदारी स्वय श्रीकृष्ण ही वहन करते हैं[८०] जवकि जैन और वौद्ध दर्शनो मे ऐसे आश्वासनो का अभाव है। गीता में वैयक्तिक ईश्वर के प्रति जिस निष्ठा का उद्बोधन है वह सामान्यतया जैन और वौद्ध परम्पराओं में अनुपलव्ध ही है।

उपसहार

सम्यक्दर्शन अथवा श्रद्धा का जीवन मे क्या मूल्य है, इस पर भी विचार अपेक्षित है। यदि हम सम्यक्दर्शन को दृष्टिपरक अर्थ मे स्वीकार करते हैं, जैसा कि सामान्यतया जैन और वौद्ध विचारणाओ मे स्वीकार किया गया है, तो उसका हमारे जीवन मे एक महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। सम्यक्दर्शन जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है, वह अनासक्त जीवन जीने की कला का केन्द्रीय तत्त्व है। हमारे चरित्र या व्यक्तित्व का निर्माण इसी जीवन दृष्टि के आधार पर होता है। गीता मे इसी तथ्य को यह कहकर वताया है कि यह पुरुष श्रद्धामय है और जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही वह वन जाता है। हम अपने को जैसा वनाना चाहते हैं, अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण भी उसी के अनुरूप करें। क्योकि व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है वैसा ही उसका जीवन जीने का ढग होता है और जैसा उसका जीवन जीने का ढग होता है वैसा ही उसका चरित्र वन जाता है। और जैसा उसका चरित्र होता है वैसा ही उसके व्यक्तित्व का उभार होता है। अत एक यथार्थ दृष्टिकोण का निर्माण जीवन की सवसे प्राथमिक आवश्यकता है।

☐ ३ स्वर्ग की दुनिया को पैरिस समझ लीजिए। जैसे कोई मनुष्य अच्छी कमाई करके पैरिस मे जा वैठे और वहाँ के राग-रग मे सारी सम्पत्ति लुटाकर वापस अपने गाँव आ जाय, इसी प्रकार यहाँ कमाई करके जीव स्वर्ग मे जाता है और वहाँ उसे खत्म करके वापिस लौट आता है। वहाँ सामायिक-पौषध आदि कुछ भी कमाई नही है, अत. जो कुछ शुभ सामग्री का योग मिला है वह मनुष्य जन्म मे ही मिला है।

—भाग १८ पृष्ठ ११४

---

८० गीता १८।६५-६६



जैन साहित्य में गाणितिक संकेतन

Mathematical Notations

—डा० मुकुटविहारीलाल अग्रवाल, एस-सी०, पी-एच० डी०

[जैन तत्त्वविद्या मे 'गणितानुयोग' एक स्वतन्त्र अनुयोग (विषय) है। प्राचीन जैन मनीषी आत्मा-परमात्मा आदि विषयो पर गणित की भाषा मे किस प्रकार विश्लेषण करते थे, उनकी शैली, उनके सकेतन आदि के सम्बन्ध मे गणित के प्रसिद्ध विद्वान् तथा लेखक डा० अग्रवाल का यह लेख एक नये विषय पर प्रकाश डालता है।]

पूर्वाभास—मानवीय जीवन मे सकेत की महत्ता प्राय देखी जाती है। भाषा ने जब तक शब्दो की पकड नही की थी तब भी अभिव्यक्ति (Expression) होती रहती थी। यह अभिव्यक्ति केवल संकेतो के कारण ही थी—यह सर्वविदित ही है। यदि कहा जाये कि भाषा का जन्म ही सकेतो से हुआ है तो असगति न होगी। जीवन मे गणित का अपना विशिष्ट महत्व है, क्योकि मानव अपनी आँखें खोलते ही गण (गिनना) के चक्कर मे फँस जाता है। यह चक्कर इतना सरल तो नही है कि वह आसानी से समझ सके। परन्तु कुछ ऐसे साधन हैं जो इस कार्य को सरल बना देते हैं, वे है गाणितिक सकेत अर्थात् गणित सम्बन्धी सकेत। इसी गाणितिक साकेतिकता के विकास पर विचार करना अपना परम लक्ष्यमय कर्त्तव्य है।

ये वे सकेत होते हैं जो किसी गणित सम्वन्धी क्रिया को व्यक्त करने मे, किसी गणितीय राशि को दर्शाने मे अथवा गणित मे प्रयुक्त होने वाली गणितीय राशि को निर्दिष्ट करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। यथा $a \div b$ मे, भाग का चिह्न ($\div$) निर्दिष्ट करता है कि a मे b का भाग देना है। $a < b$ मे, असमता का चिह्न $<$ a का b से छोटे होने का सम्बन्ध दर्शाता है। इन सकेतो की सहायता से गणित के तर्क सक्षिप्त रूप से लिखे जा सकते हैं और पाठक सूक्ष्म तर्कसगत भाषा की सहायता से जटिल सम्बन्धो को सरलता से समझ लेता है।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो मे विभिन्न प्रकार के सकेत मिलते हैं; किन्तु समय के साथ उन सब मे परिवर्तन हुए और वे अनेक रूपान्तर के बाद वर्तमान रूप मे आये।

धन और ऋण के चिह्न—सन् १४६० ई० लगभग बोहीमिया के एक नगर मे जॉन विड्मैन नामक एक गणितज्ञ हुआ है। विदेशियो मे सबसे पहले इसी ने + और — चिह्नो का प्रयोग किया है। परन्तु इसने इन सकेतो को जोडने और घटाने के अर्थ मे प्रयोग नही किया था। वरन् वह ये सकेत व्यापारिक बण्डलो पर डाला करता था यह दिखाने के लिए कि अमुक बण्डल किसी निश्चित मात्रा से अधिक है या कम।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थो को देखने से मालूम होता है कि भारतवर्ष मे भी जोडने-घटाने आदि को सूचित करने के लिए सकेतो का प्रयोग होता था। वे सकेत या तो प्रतीकात्मक हैं या चिह्नात्मक।

जोड़ने के लिए संकेत—'बक्षाली हस्तलिपि' मे जो ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो का ग्रन्थ है जोडने के लिए 'युत' शब्द का प्रथम अक्षर 'यु' मिलता है। यह अक्षर 'यु' जोड़ी जाने वाली



सख्या के अन्त मे लिखा जाता था। जैसे ४ और ६ जोडने होते थे तो इस प्रकार लिखा जाता था—

४ ६
१ १ यु

'वक्षाली हस्तलिपि' मे पूर्णाक लिखने की यह पद्धति थी कि अङ्क के नीचे १ लिख दिया जाता था, किन्तु दोनो के वीच भाग रेखा नही लगाई जाती थी।

जैन ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' (ईसा की दूसरी शताव्दी का ग्रन्थ) मे जोडने के लिए 'धण' शव्द लिखा है क्योकि प्राचीन साहित्य मे धन के लिए 'धण' शव्द प्रयोग होता था।

जोडने के लिए प० टोडरमल ने 'अर्थसदृष्टि' मे — चिह्न का प्रयोग किया है। यथा $\log_2 \log_2$ (अ)+१ के लिए उसमे इस प्रकार लिखा है[1]—

१—
व$_2$

जोडने के लिए, विशेषकर भिन्नो के योग मे, 'अर्थसदृष्टि' मे खडी लकीर का प्रयोग मिलता है।[2] यथा

१ | $\frac{१}{२}$ का आशय १+$\frac{१}{२}$ से है।

घटाने के लिए सकेत—'वक्षाली हस्तलिपि' मे घटाने के लिए + सकेत का प्रयोग किया गया है। यह + चिह्न उस अङ्क के वाद लिखा जाता था जिसे घटाना होता था। जैसे २० मे से ३ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा जाता था—

२० ३+
१ १

कुछ जैन ग्रन्थो मे भी घटाने के लिए उपरोक्त संकेत का प्रयोग मिलता है परन्तु यह + चिह्न घटायी जाने वाली सख्या के ऊपर लिखा जाता था। आचार्य वीरसेन ने 'धवला' (ईसा की नवी शताव्दी का ग्रन्थ) मे इस प्रकार के सकेत का प्रयोग किया है जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट है[3]—

" . . . |१| $\overset{+}{\underset{।}{}}$ **सोज्झ माणादो एदिस्से रिण सण्णा"**

अर्थात् १ $\overset{+}{\underset{।}{}}$ शोध्यमान (अर्थात् घटाने योग्य) होने से इसकी ऋण सज्ञा है।

घटाने के लिए + चिन्ह की उत्पत्ति के वारे मे प्रोफेसर लक्ष्मीचन्दजी जैन का मत है कि यह चिन्ह ब्राह्मी भाषा से वना है। ब्राह्मी भाषा मे ऋण के लिए 'रिण' लिखा जाता है और रिण का प्रथम अक्षर रि ब्राह्मीभाषा मे 𑀭𑀺 लिखा जाता है। अधिक प्रयोग होते-होते इसका रूप + हो गया है।

जैन ग्रन्थो मे घटाने के लिए ⌒ चिन्ह भी मिलता है। यह चिन्ह जिस अङ्क को

---

१ प० टोडरमल की अर्थसदृष्टि, पृष्ठ ६,७, ८, १५, १८, २०, २१

२ अर्थसदृष्टि, पृष्ठ ११

३ धवला, पुस्तक १०, सन् १९५४, पृष्ठ १५१



घटाना होता था उसके वाद लिखा जाता था।[४] यथा

$$\frac{१}{२} \overline{\Omega}$$

का आशय जघन्य युक्त असखेय —१ से है। यहाँ पर २ का आशय जघन्य युक्त असखेय से है।

'अर्थसदृष्टि' मे इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[५] यथा—यदि ल।५।४।३ का आशय ल × ५ × ४ × ३ अर्थात् ६० लाख से है और १ लाख इस राशि मे से घटाया जावे तो शेषफल को इस प्रकार लिखते हैं—

$$ल \overset{१}{} \frac{\Omega}{५।४।३}$$

'त्रिलोकसार' (दशवी शताब्दी का जैन ग्रन्थ) मे भी घटाने के लिए इसी प्रकार का सकेत मिलता है। इसमे लिखा है कि मूलराशि के ऊपर घटाई जाने वाली सख्या लिखो और उसके आगे पूछडी का सा आकार बिन्दी सहित करो जैसे २०० मे से २ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[६]—

$$\overset{२\,\frown}{२००}$$

घटाने के लिए ∼ सकेत भी जैन ग्रन्थो मे प्रयोग किया गया है। यथा १ करोड मे से २ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[७]—

को ∼ २

घटाने के लिए उपरोक्त चिन्ह ∼ ई० पू० तीसरी शताब्दी मे भी दृष्टिगोचर होता है।[८]

कही-कहीं घटाने के लिए ० सकेत का भी प्रयोग किया गया है। प० टोडरमलजी ने इस संकेत का प्रयोग इस प्रकार किया है—

---

४ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ४, तिलोयपण्णत्ति, भाग २, पृष्ठ ६०६, ७१७

५ वही, पृष्ठ २०

६ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ २

७ अर्थसदृष्टि, पृष्ठ ६

८ गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, भारतीय प्राचीनलिपि माला १९५९, प्लेट १



०
१
को

इसका आशय १ करोड —१ है।

एक करोड मे ने २ घटाने के लिए इस प्रकार भी लिखा है—

को ०
२

घनलोक मे से २ घटाने के लिए इम प्रकार लिखा है—

०
२
≡

यहाँ पर सकेत ≡ घनलोक के लिए प्रयोग किया गया है।

एक लाख मे से १ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[९]—

ल
०
१

'त्रिलोकसार' मे भी घटाने के लिए उपरोक्त चिन्ह ० मिलता है। उसमे लिखा है कि मूल राशि (जिसमे से घटाना हो) के नीचे बिन्दी लिखो और फिर बिन्दी के नीचे ऋण राशि (घटाई जाने वाली सख्या) लिखो। यथा यदि २०० मे से २ घटाने हो तो इस प्रकार लिखते है[१०]—

२००
०
२

घटाने के लिए ‿ तथा) सकेतो का प्रयोग भी पं० टोडरमल ने 'अर्थसदृष्टि' मे किया है। जैसे एक लाख मे से ५ घटाने के लिए इस प्रकार लिखा है[११]—

ल ‿ ५ तथा ल ५)

घटाने के लिए सकेत के स्थान पर ऋण शब्द का प्रतीकात्मक प्रथम अक्षर भी प्रयोग किया गया है। प्राचीन साहित्य मे ऋण के लिए रिण लिखा जाता था। अत. घटाने के लिए 'रि' और कहीं-कहीं 'रिण' का प्रयोग होता था। परन्तु यह अक्षर, जिस अङ्क को घटाना होता था, उसके बाद में लिखा जाता था। 'तिलोयपण्णत्ति' मे ऐसे उदाहरण अनेक जगह मिलते है।[१२] यथा—

९ अर्थसदृष्टि, पृष्ठ ६

१० त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ २

११ अर्थसदृष्टि, पृष्ठ ६

१२ तिलोयपण्णत्ति, भाग १, पृष्ठ २०



$$१४^{-२} \mid रि० यो० १००००० \mid ^{२}$$

अर्थात्—मध्यलोक के ऊपरी भाग से सौधर्म विमान के ध्वजदण्ड तक १ लाख योजन कम डेढ राजू ऊँचाई प्रमाण है। इसमें स्पष्ट है कि 'रि०' का आशय यहाँ पर घटाने से है। यहाँ $१४^{-२}$ का अर्थ डेढ राजू से है।

गुणा के लिए संकेत—गुणा के लिए 'वक्षाली हस्तलिपि' मे 'गु' सकेत का प्रयोग मिलता है। यह सकेत 'गु' शब्द 'गुणा' अथवा 'गुणित' का प्रथम अक्षर है। यथा—[१३]

३	३	३	३	३	३	३	१०	गु
१	१	१	१	१	१	१	१	

इसका आशय ३×३×३×३×३×३×३×१० है।

'तिलोयपण्णत्ति' मे गुणा के लिए एक खडी लकीर का प्रयोग किया गया है। यथा १०००× ९६×५००×८×८×८×८×८×८×८×८ के लिए इस प्रकार लिखा है।[१४]

§०।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

यहाँ पर §० का आशय १००० है।

'अर्थसदृष्टि' मे भी गुणा के लिए यही चिह्न मिलता है। यथा— १६ को २ से गुणा करने के लिए १६।२ लिखा है।[१५]

'त्रिलोकसार' मे भी गुणा के लिए यही चिह्न मिलता है। यथा— १२८ को ६४ से गुणा करने के लिए १२८।६४ लिखा है।[१६]

भाग के लिए संकेत—भाग के लिए 'वक्षाली हस्तलिपि' मे 'भा' सकेत का प्रयोग मिलता है। यह सकेत 'भा' शब्द 'भाग' अथवा 'भाजित' का प्रथम अक्षर है। यथा—[१७]

इसका आशय

४० भा	१६०	१३
१	१	१
		२

इसका आशय

$$\frac{१६०}{१} \times १३\frac{१}{२} \div \frac{४०}{१} \text{ से है।}$$

भिन्नो को प्रदर्शित करने के लिए प्राचीन जैन साहित्य मे अश और हर के बीच रेखा का प्रयोग नहीं मिलता है। 'तिलोयपण्णत्ति' मे बेलन का आयतन मालूम किया है जो $\frac{१९}{२४}$ आया है। इस $\frac{१९}{२४}$ को इस ग्रन्थ मे इस प्रकार लिखा है[१८]—

१९
२४

---

१३ वक्षाली हस्तलिपि Folio 47, recto
१४ तिलोयपण्णत्ति, भाग १, गाथा १, १२३-१२४
१५ अर्थसंदृष्टि, पृष्ठ ६
१६ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ ३
१७ वक्षाली हस्तलिपि Folio 42, recto
१८ त्रिलोयपण्णत्ति, भाग १, गाथा १, ११८



'त्रिलोकसार' मे भी इमी प्रकार के उदाहरण उपलव्ध होते है। इसमें लिखा है कि इक्यामी सौ वाणवै का चौंमठवाँ भाग इम प्रकार लिखिये[१९]—

८१९२
६४

'त्रिलोकसार' मे भाग देकर शेष वचने पर उसको लिखने की विधि का भी उल्लेख किया है, जो आधुनिक विधि से भिन्न है। यथा ८१९४ मे ६४ का भाग दें तो १२८ वार भाग जावेगा और २ शेप रहेगे। अर्थात् १२८ $\frac{२}{६४}$ को इस ग्रन्थ मे इस प्रकार लिखा है[२०]—

१२८।२
६४

शून्य का प्रयोग—० का प्रयोग आदि सख्या के रूप मे प्रारम्भ नहीं हुआ अपितु रिक्त स्थान की पूर्ति हेतु प्रतीक के रूप मे प्रयोग हुआ था। आधुनिक सकेत लिपि मे जहाँ ० लिखा जाता है वहाँ पर प्राचीनकाल मे ० सकेत न लिखकर उस स्थान को खाली छोड दिया जाता था। जैसे ४६ का अर्थ होता था छियालीस और ४ ६ का अर्थ होता था चार सौ छ। यदि दोनो अको के मध्य जितना उपयुक्त स्थान छोडना चाहिए उससे कम छोड़ा जाता था तो पाठकगण भ्रम मे पड जाते थे कि लेखक का आशय ४६ से है अथवा ४०६ से। इस भ्रम को दूर करने के लिए उस सख्या को ४ ६ न लिखकर ४.६ के रूप मे अकित किया जाने लगा। धीरे-धीरे इस प्रणाली का आधुनिक रूप ४०६ हो गया।

इस प्रकार के प्रयोग का उल्लेख प्राचीन जैन ग्रन्थो एव मन्दिरो आदि मे लिखा मिलता है। उदाहरणार्थ आगरा के हीग की मण्डी मे गोपीनाथ जी के जैन मन्दिर मे एक जैन प्रतिमा है जिसका निर्माण काल स० १५०९ है, परन्तु इस प्रतिमा पर इसका निर्माण काल १५०९ न लिखकर १५ ९ लिखा है।

वर्ग के लिए चिह्न—किसी सख्या को वर्ग करने के लिए 'व' चिह्न मिलता है। यह चिह्न 'व' उस सख्या के वाद लिखा जाता है, जिसका वर्ग करना होता है। यथा 'ज जु अ' एक सख्या है जिसका अर्थ जघन्य युक्त अनन्त है। यदि इसका वर्ग करेंगे तो उसे इस प्रकार लिखेंगे[२१]—

ज जु अ व

इसी प्रकार घन का सकेत 'घ', चतुर्थ घात के लिए 'व-व' (वर्ग-वर्ग), पाँचवी घात के लिए 'व-घ-घा' (वर्ग घन घात), छठवी घात के लिए 'घ-व' (घन वर्ग), सातवी घात के लिए 'व-व-घ-घा' (वर्ग वर्ग घन घात) आदि सकेत उपलव्ध होते है।

वर्गित-सर्वागित के लिये चिह्न—वर्गित-सर्वागित शब्द का तात्पर्य किसी सख्या का उसी सख्या तुल्य घात करने से है। जैसे ५ का वर्गित-सर्वागित $५^{५}$ हुआ। जैन ग्रन्थो मे इसके लिये विशेष चिह्न प्रयोग किया है। किसी सख्या को प्रथम वार वर्गित-सर्वागित करने के लिए इस प्रकार लिखा जाता है—

न ।१

---

१९ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ ५
२० वही, परिशिष्ट, पृष्ठ ६
२१ अर्थसदृष्टि, पृष्ठ ५



इसका आशय है $न^{न}$ से है। द्वितीय वर्गित-सवर्गित के लिए इस प्रकार लिखा जाता है ।

$$न^{२}$$

इसका आशय न को वर्गित-संवर्गित करके प्राप्त राशि को पुन वर्गित-सवर्गित करना है। अर्थात् $\left(न^{न}\right)^{न^{न}}$ है। जैसे २ का द्वितीय वर्गित-सवर्गित $\left(२^{२}\right)^{२^{२}}$ हुआ। अत $२^{२}$ $४^{४}=२५६$ हुआ।

द्वितीय वर्गित-सवर्गित राशि को पुन एक बार वर्गित-सवर्गित करने पर तृतीय वर्गित-सव-गित प्राप्त होता है। २ के तृतीय वर्गित-सवर्गित को 'धवला' मे इस प्रकार लिखा है[२२] —

$$२^{३} \quad (२५६)^{२५६}$$

वर्गमूल के लिए संकेत—'तिलोयपण्णत्ति' और 'अर्थसहष्टि' आदि मे वर्गमूल के लिए 'मू०' का प्रयोग किया है। 'तिलोयपण्णत्ति' के निम्नलिखित अवतरण मे 'मू०' सकेत वर्गमूल के लिए दृष्टिगोचर होता है।[२३]

= ५८६४ रिण रा० = ४/५ |४|६५६१| ४|६५५३६| -२ मू०| ० / १|३ मू०| = ४|६५५३६|५|

पं० टोडरमल की 'अर्थसहष्टि' मे 'के $मू_{१}$' प्रथम वर्गमूल और 'के $मू_{२}$' वर्गमूल के वर्गमूल के लिए प्रयोग किया गया है।

सकेत 'मू०' मूल अर्थात् वर्गमूल शब्द का प्रथम अक्षर है। इस सकेत को उस सख्या के अन्त मे लिखा जाता था जिसका वर्गमूल निकालना होता था। 'वक्षाली हस्तलिपि' मे भी 'मू०' का प्रयोग मिलता है जो निम्न उदाहरण से स्पष्ट है[२४]—

११	यु०	५	मू०	४
१		१		१

२२ धवला, पुस्तक ३, अमरावती १९४१, परिशिष्ट पृ० ३५

२३ तिलोयपण्णत्ति, भाग २, पचम अधिकार, पृष्ठ ६०९

२४ Bulletin of Mathematical Society, Calcutta, Vol 21, 1929 पत्रिका मे प्रकाशित विभूतिभूषणदत्त का 'वक्षाली गणित' पर लेख, पृष्ठ २४



का आशय $\sqrt{११+५}$ =४ है।

विशेष सख्या के लिए चिन्ह—'त्रिलोकसार'[२५] और 'अर्थसदृष्टि' मे सख्यात के लिए २ असख्यात के लिए ${\rm \partial}$ तथा अनन्त के लिए 'ख' का प्रयोग मिलता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्टत कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने गाणितिक संकेतन पर गहन अध्ययन प्रस्तुत करके गणितशास्त्र को समृद्धिशाली बनाने का स्तुत्य प्रयास किया है। वस्तुत गणित-शास्त्र मे गाणितिक संकेतन का अपना विशिष्ट महत्त्व है। इसके अभाव मे गणितीय अन्तर्दृष्टि धुंधली सी दीख पडती है। जैनाचार्यों ने प्रस्तुत कथन की महत्ता को समझते हुए गणित सम्बन्धी चिन्हो पर विचार करना अपना परम धर्म समझा और इन आचार्यो का यह परम धर्म ही गणित-शास्त्र को महती देन सिद्ध हुआ। ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ पर जैनाचार्यों ने प्रस्तुत विषय को मार्मिकता तो प्रदान की ही है, साथ ही साथ व्यावहारिकता, रोचकता, और सरलता की त्रिगुणात्मकता को समाहित भी किया है। अन्तत यह कह सकते हैं कि जैनाचार्यों ने इस क्षेत्र मे जो भगीरथ यत्न किये हैं, वे कदापि विस्मृत नही किये जा सकते।

दिव्य ज्योतिर्धर

जय-जय-जय-जय जैन दिवाकर।
त्याग-मूर्ति! जय! दिव्य-ज्योतिधर॥
"केशरमाता" रत्न प्रसूति।
भारत को दी दिव्य विभूति॥
"चौथमलजी महाराज" नाम था।
पर-उपकार ही एक काम था॥
गुणीजनो के नित्य गुण गाते।
निन्दा के तो निकट न जाते॥
वाणी के जादूगर वक्ता।
मत्रमुग्ध हो जाते श्रोता॥
घर-घर धर्म प्रदीप जलाये।
प्रेम-सत्य के मोती लूटाये॥
भूले-भटको को समझाये।
वंजर मे भी फूल खिलाये॥
जीवन भर रहे "केवल" निर्भय।
वोलो! सच्चे गुरुवर की जय॥

—श्री केवल मुनि

---

२५ त्रिलोकसार, परिशिष्ट, पृष्ठ २१



ऐतिहासिक चर्चा—

धर्मवीर लोंकाशाह

—डा० तेजसिंह गौड़ एम० ए०, पी-एच० डी०



कल्पसूत्र मे भगवान महावीर के कल्याणको का वर्णन करके दीवाली की उत्पत्ति और श्रमण-सघ के भविष्य का कुछ उल्लेख किया गया है। उसमे बताया गया है कि जिस समय भगवान महावीर का निर्वाण हुआ, उस समय उनके जन्म नक्षत्र पर भस्मराशि नामक महाग्रह का सक्रमण हुआ। जब से २००० वर्ष की स्थिति वाला भस्मग्रह महावीर की जन्म राशि पर आया तब से ही श्रमण सघ की उत्तरोत्तर सेवाभक्ति घटने लगी। भस्मग्रह के हटने पर २००० वर्ष बाद श्रमण सघ की उत्तरोत्तर उन्नति होगी।

इस बीच मे धर्म और शासन को सकट का मुकाबला करना होगा। करीब-करीब इसी वचनानुसार शुद्ध निर्ग्रन्थधर्म और उसके पालको का शनै-शनै अभाव-सा होता गया। विक्रम सवत् १५३० को जब २००० वर्ष पूरे हुए, तब लोकाशाह ने विक्रम सवत् १५३१ मे आगमानुसार साधुधर्म का पुनरुद्योत किया। उनके उपदेश से लखमशी, जगमालजी आदि ४५ पुरुषो ने एक साथ भागवती दीक्षा स्वीकार की, जिनमे कई अच्छे-अच्छे सघपति और श्रीपति भी थे। लोकाशाह की वाणी मे हृदय की सच्चाई और सम्यक्ज्ञान की शक्ति थी, अतएव बहुसख्यक जनता को वे अपनी ओर आकर्षित कर सके। आगमो की युक्ति, श्रद्धा की शक्ति और वीतराग प्ररूपित शुद्ध धर्म के प्रति भक्ति होने के कारण लोकाशाह क्राति करने मे सफल हो सके।[1]

लोकाशाह के सम्बन्ध मे विदुषी महासती श्री चन्दनकुमारीजी महाराज ने लिखा है, "उन्होंने स्वय अपना परिचय अथवा अपनी परम्परा का उल्लेख कही भी नही किया है। परम्परागत वृत्तातो तथा तत्कालीन कृतियो के आधार पर ही उनके इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। अनेक भण्डारो मे भी उनके जीवन सम्बन्धी परिचय की प्राचीन सामग्री सग्रहीत है। श्रीमान् लोकाशाह के जन्म सवत् के विषय मे अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। कोई उनका जन्म[2] १४७५ मे कोई १४८२ मे तथा कोई १४७२ को प्रमाणित मानते हैं। इनमे वि० स० १४८२ का वर्ष ही ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक जँचता है। वि० स० १४८२ कार्तिक पूर्णिमा के दिन गुजरात के पाटनगर अहमदाबाद मे आपका जन्म होना माना जाता है। कुछ विद्वान् उनका जन्म "अरहट्टवाडा" नामक स्थान पर मानते हैं। यह ग्राम राजस्थान के सिरोही जिले मे है।"

एक इतिहास लेखक ने उनका जन्म सौराष्ट्र प्रात के लिम्बडी ग्राम मे दशाश्रीमाली के घर मे होना लिखा है। किसी ने सौराष्ट्र की नदी के किनारे बसे हुए नागवेश ग्राम मे हरिश्चन्द्र सेठ की धर्मपत्नी मघीबाई की कुक्षि से उनका जन्म माना है। कुछ लोग उनका जन्म जालौर[3] मे मानते हैं। इन सभी प्रमाणो मे अहमदाबाद का प्रमाण उचित जँचता है। क्योकि अणहिलपुर पाटण के लखमसी श्रेष्ठि ने अहमदाबाद आकर ही उनसे धर्म-चर्चा की थी। अरहट्टवाडा, पाटन और सूरत

---

१ आदर्श विभूतियाँ, पृष्ठ ५-६

२ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ४७०

३ पट्टावली प्रबन्ध सग्रह, पृष्ठ २७



आदि सघो के नागजी, दुलीचन्दजी, मोतीचन्द्र तथा सम्भूजी ये चारो सघवी जब अहमदाबाद में आये थे तो उनका लोकाशाह के घर जाना इस बात को सिद्ध करता है कि लोकाशाह का जन्म स्थान अहमदाबाद ही होना चाहिए।[४] विनयचन्द्रजी कृत पट्टावली मे भी अहमदाबाद रहना लिखा है।[५]

श्री अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ मे लिखा है, "धर्मप्राण लोकाशाह के जन्मस्थान, समय और माता-पिता के नाम आदि के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न अभिप्राय मिलते हैं किन्तु विद्वान् सशोधनो के आधारभूत निर्णय के अनुसार श्री लोकाशाह का जन्म अरहट्ट वाडे मे चौधरी गोत्र के ओसवाल गृहस्थ सेठ हेमाभाई की पवित्र पति-परायणा भार्या गगाबाई की कूख से वि० स० १४७२ कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को शुक्रवार ता० १८-७-१४१५ के दिन हुआ था।[६] श्री लोकाशाह की जाति प्राग्वट भी मिलती है।[७] श्रावक-धर्म-परायण हेमाशाह के संरक्षण मे बालक लोकाशाह का बाल्यकाल सुख-सुविधापूर्वक व्यतीत हुआ। छ-सात वर्ष की आयु मे उनका अध्ययन आरम्भ कराया गया। थोडे ही वर्षों मे उन्होंने प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी आदि अनेक भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया। मधुरभाषी होने के साथ-साथ लोकाशाह अपने समय के सुन्दर लेखक भी थे। उनका लिखा हुआ एक-एक अक्षर मोती के समान सुन्दर लगता था। शास्त्रीय ज्ञान की उनके मन मे विशेष रुचि थी। लोकाशाह अपने सद्गुणो के कारण अपने पिता से भी अधिक प्रसिद्ध हो गये। जब वे पूर्ण युवा हो गये तब सिरोही के प्रसिद्ध सेठ शाह ओघवजी की सुपुत्री 'सुदर्शना' के साथ उनका विवाह कर दिया गया। विवाह के तीन वर्ष बाद उनके यहाँ पूर्णचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[८] लोकाशाह का विवाह सं० १४८७ मे हुआ। लोकाशाह के तेईसवें वर्ष मे माता का और चौबीसवें वर्ष मे पिता का देहावसान हो गया।[९]

सिरोही और चन्द्रावती इन दोनो राज्यो के बीच युद्धजन्य स्थिति के कारण अराजकता और व्यापारिक अव्यवस्था प्रसारित हो जाने से वे अहमदाबाद आ गये और वहाँ जवाहिरात का व्यापार करने लगे। अल्प समय मे ही आपने जवाहिरात के व्यापार मे अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। अहमदाबाद का तत्कालीन बादशाह मुहम्मदशाह उनके बुद्धि-चातुर्य से अत्यन्त प्रभावित हुआ और लोकाशाह को अपना खजांची बना लिया।[१०]

विदुषी महासती चन्दनकुमारीजी महाराज ने लिखा है, "कहते हैं एक बार मुहम्मदशाह के दरबार मे सूरत से एक जौहरी दो मोती लेकर आया। बादशाह मोतियो को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। खरीदने की दृष्टि से उसने मोतियो का मूल्य जँचवाने के लिए अहमदाबाद शहर के सभी प्रमुख जौहरियो को बुलाया। सभी जौहरियो ने दोनो मोतियो को 'सच्चा' बताया। जब लोका-

---

४ हमारा इतिहास, पृष्ठ ९०-९१
५ पट्टावली प्रबन्ध सग्रह, पृ० १३५
६ वही, पृष्ठ ३८
७ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ४७०
८ हमारा इतिहास, पृष्ठ ९१-९२
९ स्वर्ण जयती ग्रन्थ, पृष्ठ ३८
१० वही, पृष्ठ ३८



शाह की वारी आई तो उन्होंने एक मोती को खरा और दूसरे को खोटा वताया। खोटे मोती की परख के लिए उसे एरन पर रख कर हथौडे की चोट लगाई गई। चोट लगते ही उसके टुकडे-टुकडे हो गये। मोती की इस परीक्षा को देखकर सारे जौहरी आश्चर्यचकित हो गये। लोकाशाह की विलक्षण बुद्धि देखकर वादशाह वहुत प्रसन्न हुवा। उसने उन्हें अपना कोषाध्यक्ष वना लिया। कुछ इतिहासकारो का मत है कि उन्हे अपने मन्त्री पद पर नियुक्त किया था। इस पद पर वे दस वर्ष तक रहे। इन्ही दिनो चम्पानेर के रावल ने मुहम्मदशाह पर आक्रमण कर दिया। शत्रु के प्रति शिथिल नीति अपनाने के कारण उसके पुत्र कुतुवशाह ने जहर देकर अपने पिता को मार डाला। वादशाह की इस क्रूर हत्या से लोकाशाह के हृदय पर वडा प्रभाव पडा। अव वे राजकाज से पूर्णतया विरक्त से रहने लगे। कुतुवशाह ने उन्हे राज्य प्रवन्ध मे पुन. लाने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु श्रीमान् लोकाशाह ने सव प्रलोभन अस्वीकार कर दिये।"[११]

श्री लोकाशाह प्रारम्भ से ही तत्त्वशोधक थे। उन्होंने एक लेखक मण्डल की स्थापना की और वहुत से लहिये (लिखने वाले) रख कर प्राचीन शास्त्रो और ग्रन्थो की नकलें करवाने लगे तथा अन्य धार्मिक कार्य मे अपना जीवन व्यतीत करने लगे। एक समय ज्ञानसुन्दरजी नाम के एक यति इनके यहाँ गोचरी के लिए आये। उन्होंने लोकाशाह के सुन्दर अक्षर देखकर अपने पास के शास्त्रो की नकल कर देने के लिए कहा। लोकाशाह ने श्रुत सेवा का यह कार्य स्वीकार कर लिया।[१२]

मेवाड़ पट्टावली मे लिखा है, "एक दिन द्रव्यलिंगियो की स्थान चर्चा चली। भण्डार मे शास्त्रो के पन्ने उद्दइयो ने खाये हैं। अत. लिखने की पूर्ण आवश्यकता है। श्री लोकाशाह के सुन्दर अक्षर आते थे। अत यह भार आप ही के ऊपर डाला गया। सर्वप्रथम दशवैकालिक सूत्र लिखा। उसमे अहिंसा का प्रतिपादन देखकर आपको इन साधुओ से घृणा होने लगी। परन्तु कहने का अवसर न देखकर कुछ भी न कहा। क्योकि ये उलटे वनकर शास्त्र लिखाना वन्द कर देंगे। जवकि प्रथम शास्त्र मे ही इस प्रकार ज्ञान रत्न है तो आगे वहुत होंगे। यो एक प्रति दिन मे और एक प्रति रात्रि मे लिखते रहे।

"एकदा आप तो राजभवन मे थे और पीछे से एक साधु ने आपकी पत्नी से सूत्र मांगा। उसने कहा—दिन का दूँ या रात्रि का। उसने दोनो ले लिये और गुरु से कहा कि—अव सूत्र न लिखवाओ। लोकाशाह घर आये। पत्नी ने सर्व वृत्तात कह दिया। आपने सतोष से कहा—जो शास्त्र हमारे पास हैं उनसे भी वहुत सुधार वनेगा। आप घर पर ही व्याख्यान द्वारा शास्त्र प्ररूपने लगे। वाणी मे मीठापन था। साथ ही शास्त्र प्रमाण द्वारा साधु आचार श्रवण कर वहुत प्राणी शुद्ध दयाधर्म अगीकार करने लगे।"[१३]

विविध उद्धरणो को प्रस्तुत करते हुए श्री भँवरलाल नाहटा ने लिखा है, "पहले घर की अवस्था अच्छी हो सकती है, पर फिर आर्थिक कमजोरी आ जाने मे उन्होने अपनी आजीविका ग्रन्थो की नकल कर चलाना आरम्भ किया। उनके अक्षर सुन्दर थे। महात्माओ के पास स० १५०८ के

---

११ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६३-६४

१२ स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३८-३९

१३ पट्टावली प्रवन्ध सग्रह, पृष्ठ २८९



लगभग विशेष सम्भव है कि अहमदावाद मे लेखन-कार्य करते हुए कुछ विशेष अशुद्धि आदि के कारण उनके साथ बोलचाल हो गई। वैसे व्याख्यानादि श्रवण द्वारा जैन-साध्वाचार की अभिज्ञता तो थी ही और यति-महातमाओ मे शिथिलाचार प्रविष्ट हो चुका था। इसलिए जब यतिजी ने विशेष उपालम्भ दिया तो रुष्ट होकर उनका मान भग करने के लिए उन्होंने कहा कि शास्त्र के अनुसार आपका आचार ठीक नही है एव लोगो मे उस बात को प्रचारित किया। इसी समय पारख लखमसी उन्हे मिला और उसके संयोग मे यतियो के आचार शैथिल्य का विशेष विरोध किया गया। जब यतियो मे साधु के गुण नहीं हैं तो उन्हे वन्दन क्यो किया जाय? कहा गया। तब यतियो ने कहा—'वेष ही प्रमाण है। भगवान की प्रतिमा मे यद्यपि भगवान के गुण नहीं फिर भी वह पूजी जाती है।' तब लुका ने कहा कि—'गुणहीन मूर्ति को मानना भी ठीक नही और उसकी पूजा मे हिंसा भी होती है। भगवान ने दया मे धर्म कहा है।' इस प्रकार अपने मत का प्रचार करते हुए कई वर्ष बीत गये। स० १५२७ और स० १५३४ के बीच विशेष सम्भव स० १५३०-३१ मे भाणा नामक व्यक्ति स्वय दीक्षित होकर इस मत का प्रथम मुनि हुआ। इसके बाद समय के प्रवाह से यह मत फैल गया।"[१४]

विनयचन्द्रजी कृत पट्टावली का विवरण भी उल्लेखनीय है। उसके अनुसार, "एक दिन गच्छधारी यति ने विचारा और भण्डार मे से सारे सूत्रो को बाहर निकालकर सभालना प्रारम्भ किया तो देखा कि सूत्रो को उदई चाट गई है और तब से वे सोच करने लगे। उस समय गुजरात प्रदेशान्तर्गत अहमदाबाद शहर मे ओसवाल वशीय लोकाशाह नाम के दफ्तरी रहते थे। एक दिन लोकाशाह प्रसन्नतापूर्वक उपाश्रय मे गुरुजी के पास गए तो वहाँ साधु ने कहा कि—"श्रावकजी सिद्धात लिखकर उपकार करो। यह सघ सेवा का काम है।" लोकाशाह ने यतिजी से सारा वृत्तात सुनकर कहा कि—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" और सबसे पहले दशवैकालिक की प्रति लेकर अपने घर चले गये। प्रतिलिपि करते समय लोकाशाह ने जिनराज के वचनो को ध्यान से पढा। पढकर मन मे विचार किया कि वर्तमान गच्छधारी सभी साध्वाचार से भ्रष्ट दिखाई देते हैं। लोकाशाह ने लिखते समय विचार किया कि यद्यपि ये गच्छधारी साधु अधर्मी है तथापि अभी इनके साथ नम्रता मे ही व्यवहार करना चाहिए। जब तक शास्त्रो की पूरी प्रतियाँ प्राप्त नही हो जाती तब तक इनके अनुकूल ही चलना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होंने समस्त आलस्य का त्याग कर दो-दो प्रतियाँ लिखनी प्रारम्भ की। वीतराग-वाणी (सूत्र) को पढकर उन्होंने बडा सुख माना और तन, मन, वचन से अत्यन्त हर्षित हुए।

अपने लेखन के सयोग को उन्होने पूर्वजन्म का महान् पुण्योदय माना तथा उसी के प्रभाव से तत्त्व-ज्ञान रूप अपूर्व वस्तु की प्राप्ति को समझा। दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा मे धर्म का लक्षण बताते हुए भगवान ने अहिंसा, सयम और तप को प्रधानता दी है।

दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा इस प्रकार है—

धम्मो मगलमुक्किट्ठं, अहिंसा सजमो तवो।
देवावि तं नमसति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

लोकाशाह यह पढकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

---

१४ श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ, पृष्ठ ४७५-७६



ये गच्छधारी साधु कल्याण रूप अहिंसा के मार्ग को त्याग कर, मूढतावश हिंसा मे धर्म मानने लगे हैं। इस प्रकार लोकाशाह के मन मे आश्चर्य हुआ। उन्होंने दशवैकालिक सूत्र की दो प्रतियाँ लिखीं।

उस प्रतापी लोकाशाह ने उन लिखित दो प्रतियो मे से एक अपने घर मे रखी और दूसरी भेषधारी यति को दे दी। इसी तरह लिखने को अन्यान्य सूत्र लाते रहे और एक प्रति अपने पास रख कर दूसरी यति को पहुँचाते रहे। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण बत्तीस सूत्रो को लिख लिया और परमार्थ के साथ-साथ शास्त्र-ज्ञान मे प्रवीण बन गए। इसी समय भस्मग्रह का योग भी समाप्त हुआ और वीर निर्वाण के दो हजार वर्ष भी पूरे होने को आये।

संवत् १५३१ मे धर्मप्राण लोकाशाह ने धर्म का शुद्ध स्वरूप समझकर लोगो को समझाया कि साधु का धर्ममार्ग अत्यन्त कठिन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पच महाव्रत वाला है। मुनिधर्म की विशेषता बताते हुए उन्होंने कहा कि—पाच समिति और तीन गुप्ति की जो आराधना करते है, सत्रह प्रकार के सयम का पालन करते हैं, हिंसा आदि अठारह पापो का भी सेवन नही करते और जो निरवद्य भँवर—भिक्षा ग्रहण करते हैं, वे ही सच्चे मुनि हैं। जो बयालीस दोषो को टालकर गाय की तरह शुद्ध आहार-पानी ग्रहण करते हैं, नव वाड सहित पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं तथा बारह प्रकार की तपस्या करके शरीर को कृश करते हैं, इस प्रकार जो शुद्ध व्यवहार का पालन करते हैं, उन्हे ही उत्तम साधु कहना चाहिए। आज के जो मतिविहीन मूढ भेषधारी हैं वे लोभारुढ होकर हिंसा मे धर्म बताते हैं। इसलिए इन भेषधारी साधुओ की सगति छोडकर स्वयमेव सूत्रो के अनुसार धर्म की प्ररूपणा करने लगे। लोकाशाह ने मन मे ऐसा विचार किया कि सन्देह छोडकर अब धर्म-प्रचार करना चाहिए।"[१५]

मन्दिरो, मठो और प्रतिमाग्रहो को आगम की कसौटी पर कसने पर उन्हे मोक्ष-मार्ग मे कही पर भी प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा का विधान नही मिला। शास्त्रो का विशुद्ध ज्ञान होने से अपने समाज की अन्ध-परम्परा के प्रति उन्हे ग्लानि हुई। शुद्ध जैनागमो के प्रति उनमे अडिग श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। उन्होंने दृढतापूर्वक घोषित किया कि—"शास्त्रो मे बताया हुआ निर्ग्रन्थ धर्म आज के सुखाभिलाषी और सम्प्रदायवाद को पोषण करने वाले कलुषित हाथो मे जाकर कलक की कालिमा से विकृत हो गया है। मोक्ष की सिद्धि के लिए मूर्तियो अथवा मन्दिरो की जड उपासना की आवश्यकता नही है किन्तु तप, त्याग और साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि की आवश्यकता है।"

अपने इस दृढ निश्चय के आधार पर उन्होंने शुद्ध शास्त्रीय उपदेश देना प्रारम्भ किया। भगवान महावीर के उपदेशो के रहस्य को समझकर उनके सच्चे प्रतिनिधि बनकर ज्ञान-दिवाकर धर्मप्राण लोकाशाह ने अपनी समस्त शक्ति को सचित कर मिथ्यात्व और आडम्बर के अन्धकार के विरुद्ध सिंहगर्जना की। अल्प समय मे ही अद्भुत सफलता मिली। लाखो लोग उनके अनुयायी बन गये। सत्ता के लोलुपी व्यक्ति लोकाशाह की यह धर्मक्रान्ति देखकर घबरा गये और यह कहने लगे कि "लोकाशाह नाम के एक लहिये ने अहमदाबाद मे शासन के विरोध मे विद्रोह खडा कर दिया है। इस प्रकार उनके विरोध मे उत्सूत्र प्ररूपणा और धर्म-भ्रष्टता के आक्षेप किये जाने लगे।"[१६] इसी तारतम्य मे मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज का लोकाशाह विषयक कथन द्रष्टव्य है,

---

१५ पट्टावली प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ १३४ से १३९

१६ स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३९



"लोकाशाह न तो विद्वान् था और न आपके समकालीन कोई आपके मत मे ही विद्वान् हुआ। यही कारण है कि लोकाशाह के समकालीन किसी के अनुयायी ने लोकाशाह का जीवन नही लिखा, इतना ही नही पर लोकाशाह के अनुयायियो को यह भी पता नही था कि लोकाशाह का जन्म किस ग्राम मे, किस कुल मे हुआ था, किस कारण से उन्होंने सघ मे भेद डाल नया मत खडा किया तथा लोकाशाह के नूतन मत के क्या सिद्धात थे इत्यादि।"[१७] जन्मस्थान, जन्मतिथि, कुल आदि कुछ ऐसी बातें है जो लोकाशाह ही नही अनेक जैनाचार्यों की भी नहीं मिलती अथवा मिलती हैं तो विवादास्पद हैं। इसलिए इन सबके लिए मैं यहाँ कुछ लिखना उचित नही समझता हूँ। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि आज भी देश मे एक विशाल समुदाय उनको मानता है। वे भले ही एक सामान्य पुरुष रहे हो किन्तु उनकी असाधारणता इसी मे है कि श्री ज्ञानसुन्दर मुनिजी ने अपने ग्रन्थ मे लोकाशाह की जन्मतिथि, जन्मस्थान, जाति तथा नवीन मत आदि पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। और इस प्रकार लेखक महोदय ने स्वय ही लोकाशाह का न केवल महत्व स्वीकार किया है वरन् एक ऐतिहासिक पुस्तक (भले ही विरोधी) लिखकर उन्हे प्रसिद्ध और लोकप्रिय किया है।

गच्छवासी लोग उनके विविध दोष बतलाते और उनका विरोध करते। समाज मे यह भ्राति फैलाई जाने लगी कि लोकाशाह पूजा, पौषध और दान आदि नही मानता। विरोधभाव से इस प्रकार के कई दोष विरोधियो द्वारा लगाये गये किन्तु वास्तव मे लोकाशाह धर्म का या व्रत का नही, अपितु धर्मविरोधी ढोग आडम्बर का निषेध करते थे। उनका मत था कि हमारे देव वीतराग एव अविकारी हैं अत उनकी पूजा भी उनके स्वरूपानुकूल ही आडम्बररहित होनी चाहिए।[१८]

विरोधी लोगो का यह कथन कि लोकाशाह व्रत, पौषध आदि को नही मानता, मात्र धर्मप्रेमी जनसमुदाय को बहकाने के लिए था। वास्तव मे लोकाशाह ने व्रत या तप का नही किन्तु धर्म मे आये हुए बाह्य क्रियावाद यानि आडम्बर आदि विकारो का ही विरोध किया था। जैसा कि कबीर ने भी अपने समय मे बढने हुए मूर्तिपूजा के विकारो के लिए जनसमुदाय को ललकारा था। यही बात लोकाशाह ने भी कही थी। वीतराग के स्वरूपानुकूल निर्दोष भक्ति से उनका कोई विरोध नही था।[१९]

लोकाशाह ने दया, दान, पूजा और पौषध की करणी मे आडम्बर एव उजमणा आदि की प्रणाली को ठीक नही माना। उन्होंने कर्मकाण्ड में आये हुए विकारो का शोधन किया और सर्वसाधारणजन भी सरलता से कर सकें, वैसी निर्दोष प्रणाली स्वीकार की। उन्होंने पूजनीय के सद्गुणो की ही पूजा को भवतारिणी माना। आरम्भ को धर्म का अग नही माना, क्योकि पूर्वाचार्यों ने "आरम्भेण निलय दया" इस वचन से हिंसा रूप आरम्भ मे दया नही होती, यह प्रमाणित किया।[२०]

---

१७ श्रीमान् लोकाशाह, पृष्ठ २
१८ श्री जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ ८५
१९ वही, पृष्ठ ८५
२० वही, पृष्ठ ८६



शास्त्र-वाचन करते हुए लोकाशाह को वोध हुआ। उन्होने समझा कि वस्तु के नाम-रूप या द्रव्य पूजनीय नही हैं। पूजनीय तो वास्तव मे वस्तु के सद्गुण है। लोकाशाह की इस परम्परा विरोधी नीति से लोगो मे रोष वढना सहज था। गच्छवासियो ने शक्ति भर इनका विरोध किया, पर ज्यो-ज्यो विरोध वढता गया, त्यो-त्यो उनकी ख्याति व महिमा भी वढती गई। जो अल्पकाल मे ही देशव्यापी हो गई। गुजरात, पजाव, उत्तर प्रदेश और राजस्थान मे चारो ओर—लोकागच्छ का प्रचार-प्रसार हो गया। लोकाशाह के मन्तव्य की उपादेयता इसी से प्रमाणित है कि अल्पतम समय मे ही उनके विचारो का सर्वत्र आदर हुआ।[२१]

लोकाशाह सम्वन्धी समाचार अनहिलपुर पाटन वाले श्रावक लखमशीभाई को मिले। लखमशीभाई उस समय के प्रतिष्ठित सत्ता-सम्पन्न तथा साधन-सम्पन्न श्रावक थे। लोकाशाह को सुधारने के विचार से वे अहमदावाद मे आये। उन्होंने लोकाशाह के साथ गम्भीरतापूर्वक वातचीत की। अन्त मे उनकी भी समझ मे आ गया कि लोकाशाह की वात यथार्थ है और उनका उपदेश आगम के अनुसार ही है।[२२]

इसी प्रकार मूर्ति-पूजा विषयक चर्चा मे भी उनकी समझ मे आ गया कि मूर्तिपूजा का मूल आगमो मे कही भी वर्णन नही है। इस पर जो लखमशी लोकाशाह को समझाने के लिए आये थे, वे खुद समझ गये। लोकाशाह की निर्भीकता और सत्यप्रियता ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया और वे स्वय लोकाशाह के शिष्य वन गये। यह घटना वि० स० १५२८ की है।[२३]

श्री लखमशीभाई के शिष्यत्व स्वीकार कर लेने के कुछ समय वाद सिरोही, अरहट्टवाडा, पाटण और सूरत के चारो सघ यात्रा करते हुए अहमदावाद आये। यहाँ श्री लोकाशाह के साथ चारो सघो के सघपति नागजी, दलीचन्दजी, मोतीचन्दजी और शभुजी इन चारो प्रमुख पुरुषो ने अनेक तत्त्वचर्चाएँ कीं। लोकाशाह की पवित्र वाणी का उन पर इतना प्रभाव पडा कि सघ समूह मे से ४५ पुरुष श्री लोकाशाह की प्ररूपणा के अनुसार दीक्षा लेने को तैयार हो गये। यहाँ श्री लोकाशाह की प्ररूपणा के अनुसार दीक्षा लेने का प्रसग भी यही प्रमाणित करता है कि वे उस समय तक स्वय दीक्षित नही हुए थे। गृहस्थावस्था मे ही उन्होंने इन ४५ पुरुषो को प्रतिवोध दिया था। कहते हैं कि हैदरावाद की ओर विचरण करने वाले श्री ज्ञानजी मुनि को अहमदावाद पधारने की प्रार्थना की गई। श्री मुनिराज २१ मुनिराजो के साथ अहमदावाद पधारे। वि० स० १५२८ वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के दिन ४५ पुरुषो को भागवती जैन दीक्षा प्रदान की गई।[२४] स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ मे दीक्षा प्रसग की तिथि वैशाख शुक्ला ३ स० १५२७ दी गई है।[२५] जवकि आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज भाणाजी आदि के मुनिव्रत धारण करने की तिथि स० १५३१ मानते हैं।[२६] मरुधर पट्टावली के अनुसार वि० स० १५३१ वैशाख शुक्ला तेरस को दीक्षा सम्पन्न हुई।[२७]

२१ श्री जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ ८६
२२ स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ, पृष्ठ ३९
२३ हमारा इतिहास, पृष्ठ ९६
२४ वही, पृष्ठ ९८
२५ वही, पृष्ठ ४०
२६ श्री जैन आचार्य चरितावली, पृष्ठ ८७
२७ पट्टावली प्रवध सग्रह, पृष्ठ २५५



मेवाड पट्टावली मे यही तिथि वीर सवत् २०२३ दी गई है।[२८] जो वि० सं० १५५३ होती है। यह तिथि विचारणीय है क्योकि इसके पूर्व उनके स्वर्गवास होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। अस्तु यह तिथि त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती है। खम्भात पट्टावली के अनुसार ४५ व्यक्तियो की भागवती जैन दीक्षा वि० स० १५३१ मे सम्पन्न हुई।[२९] प्राचीन पट्टावली मे भी तिथि १५३१ मिलती है।[३०] चूंकि अधिक सख्या मे तिथि स० १५३१ प्राप्त होती है, इसलिए हमे भी यही तिथि स्वीकार करने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही होनी चाहिए।

जिन ४५ व्यक्तियो ने लोकाशाह से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण की उनके पूर्व की घटना का रोचक विवरण श्री विनयचन्द्रजी कृत पट्टावली मे मिलता है। हमारे लिए भी यह एक विचारणीय प्रश्न है कि बिना किसी बात के सघ के लोगो को किस आधार पर लोकाशाह ने धर्म सन्देश दिया अथवा उचित-अनुचित की ओर ध्यान आकर्षित किया। जब हम उक्त विवरण पढते हैं तो हमारे सामने सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है और तब इस बात का औचित्य प्रमाणित हो जाता है कि क्यो लोकाशाह ने धर्म सन्देश फरमाया। तो आप भी उन विवरण को देखिये—

"अरहट्टवाडा के सेठ श्रावक लखमसीह ने तीर्थयात्रा के लिए एक विशाल सघ निकाला। साथ मे वाहन रूप मे कई गाडियाँ और सेजवाल भी थे। धर्म के निमित्त द्रव्य खर्च करने की उनमे बड़ी उमग थी। रास्ते मे अतिवर्षा होने के कारण सघपति ने पाटन नगर मे सघ ठहरा दिया और सघपति प्रतिदिन लोकाशाह के पास शास्त्र सुनने जाने लगे और सुनकर मन ही मन बड़े प्रसन्न होने लगे। एक दिन सघ मे रहे हुए भेषधारी यति ने सघपति से कहा—संघ को आगे क्यो नही बढाते? इस पर सघपति ने उनको समझाकर कहा—'महाराज! वर्षा ऋतु के कारण मार्ग मे हरियाली और कोमल नवांकुर पैदा हो गये हैं तथा पृथ्वी पर असख्य चराचर जीव उत्पन्न हो गए हैं। पृथ्वी पर रग-बिरगी लीलण-फूलण भी हो गई है, जिससे सघ को आगे बढाने से रोक रहे हैं। वर्षा ऋतु मे जमीन जीवमकुल बन जाती है, अत ऐसे समय मे अनावश्यक यातायात वर्जित हैं।' सघपति के करुणासिक्त वचन सुनकर भेषधारी बोले कि 'धर्म के काम मे हिंसा भी हो, तो कोई दोष नहीं है।' यति की बात सुनकर सघपति ने कहा कि 'जैनधर्म मे ऐसी पोल नही है। जैनधर्म दया-युक्त एव अनुपम धर्म है। मुझे आश्चर्य है कि तुम उसे हिंसाकारी अधर्म रूप कहते हो।' सघपति ने यति से आगे कहा कि—'तुम्हारे हृदय मे करुणा का लेश भी नही है, जिसको कि अब मैंने अच्छी तरह देख लिया है। ए! भेषधारी समलकर वचन बोल।' सघपति की यह बात सुनकर वह भेषधारी यति पीछे लौट गया। लोकाशाह के उपदेश से प्रभावित होकर सघपति ने पैंतालीस व्यक्तियों के साथ स्वय मुनिव्रत स्वीकार किया। उनमे भानजी, नूनजी, सखोजी और जगमालजी अत्यन्त दयालु एव विशिष्ट सन्त थे। उन पैंतालीस मे ये चार प्रमुख थे और जो शेष थे वे भी सच्चे अर्थों मे निश्चित रूप से उत्तम पुरुष थे। उन्होंने जप, तप आदि क्रिया करके सम्यक् प्रकार से गुण भण्डार जिनधर्म को दिपाया।"[३१]

---

२८ पट्टावली प्रबन्ध सग्रह, पृष्ठ २६०

२९ वही, पृष्ठ २०२

३० वही, पृष्ठ १८२

३१ वही, पृष्ठ १३६ से १४१



श्री लोकाशाह की विशेप प्रेरणा से ये दीक्षाएँ हुई थी अत इसी स्मृति मे यहाँ पर समस्त मुनियो के सगठन का नाम लोकागच्छ रखा गया।[32]

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन लोकाशाह की प्रेरणा से पैंतालीस व्यक्तियो ने मुनिव्रत स्वीकार किया, क्या उन लोकाशाह ने स्वय मुनिव्रत स्वीकार किया था अथवा नही ? इस सम्वन्ध मे दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं—एक मत यह स्वीकार करता है कि लोकाशाह ने मुनिधर्म स्वीकार किया था तथा दूसरा मत इसके विपरीत कहता है कि लोकाशाह ने दीक्षा नही ली थी। अस्तु हम सक्षेप मे दोनो मतो का अध्ययन करना उचित समझते हैं—

स्वर्ण जयन्ती ग्रन्थ मे लिखा है कि लोकाशाह की आगम मान्यता को अब बहुत अधिक समर्थन मिलने लगा था। अव तक तो वे अपने पास आने वालो को ही समझाते और उपदेश देते थे, परन्तु जव उन्हे विचार हुआ कि क्रियोद्धार के लिए सार्वजनिक रूप से उपदेश करना और अपने विचार जनता के समक्ष उपस्थित करना आवश्यक है, तव उन्होंने वैशाख शुक्ला ३ सवत् १५२६ ता० ११-४-१४७३ से सरेआम सार्वजनिक उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। इनके अनुयायी दिन-प्रतिदिन वढने लगे। स्वभावतः ये विरक्त तो थे ही किन्तु अव तक कुछ कारणो से दीक्षा नही ले सके। जवकि क्रियोद्धार के लिए यह आवश्यक था कि उपदेशक पहले स्वय आचरण करके वताये अतः मिगसर शुक्ला ५ स० १५३६ को ज्ञानजी मुनि के शिष्य सोहनजी से आपने दीक्षा अगीकार कर ली। अल्प समय मे ही आपके ४०० शिष्य और लाखो श्रावक आपके श्रद्धालु वन गये।[33] मरुधर पट्टावली के अनुसार लोकाशाह ने दीक्षा ली थी।[34] दरियापुरी सम्प्रदाय पट्टावली ने उन्हें ४६वें आचार्य के रूप मे वताया है और लिखा है, "केटलाक कहे छे के लोकाशाहे थे। स० १५०६ मी पाटण मा सुमतिविजय पासे दीक्षा लीधी अने लक्ष्मीविजय नामधारण करी ४५ जणा ने दीक्षा ग्रहण करावी। अने केटलाक कहे छे के दीक्षा ग्रहण करी नथी अने ससार मा रहीने ४५ जणा ने दीक्षा अपावी।"[35] इस प्रकार यहाँ हम देखते हैं कि इस मत को मानने वालो मे ही अन्तर्विरोध दिखाई देता है। क्योंकि एक स्थान पर उनके दीक्षागुरु का नाम श्री मोहन मुनिजी मिलता है तो दूसरे स्थान पर सुमतिविजय मिलता है। इसमे वास्तविकता क्या है ? निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है। यद्यपि पट्टावलियो के भी प्रमाण हैं।

दूसरे मतानुसार विद्वान् उन्हे गृहस्थ ही स्वीकार करते हैं। उनके पास अनेक प्राचीन पट्टावलियो के प्रमाण हैं जिनमे लोकाशाह को गृहस्थ स्वीकार किया गया है। वि० स० १५४३ के लावण्यसमय कवि ने अपनी चौपाइयो मे स्पष्ट लिखा है कि लोकाशाह पौषध, प्रतिक्रमण तथा पच्चक्खाण नही करता था। वह जिन-पूजा, अष्टापद तीर्थ तथा प्रतिमा प्रसाद का भी विरोध करता था। इससे यह तो स्पष्ट होता है कि यदि श्री लोकाशाह दीक्षित होते तो उन पर पौषध आदि क्रियाओ के न करने का आरोप न लगाया जाता। कुछ भी हो, भले ही उन्होंने द्रव्यरूप से दीक्षा न ग्रहण की हो पर उनके भाव तो दीक्षारूप ही थे। वे एक आदर्श गृहस्थ थे। उनका जीवन

---

३२ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६८-६६

३३ वही, पृष्ठ ४०

३४ पट्टावली प्रवध सग्रह, पृष्ठ २५५

३५ वही, पृष्ठ २६६



सयम पोपक था। विक्रम सवत् १५०६ मे पाटण मे श्री सुमतिविजयजी के पास उनके दीक्षित होकर श्री लक्ष्मीविजय नाम से प्रसिद्ध होने के प्रमाण मे भी कुछ तथ्य नही दीखता।[३६] यहाँ एक प्रश्न उठता है कि दीक्षा लेने के उपरान्त दीक्षा नाम परिवर्तित होकर पुन वही जन्म या गृहस्थ नाम का प्रवचन हो जाता है क्या? क्योकि लोकाशाह के सम्बन्ध मे ही यह प्रश्न आता है। यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी और उनका लक्ष्मीविजय नाम रखा गया था तो फिर वे कौनसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो गई जिनके अन्तर्गत पुन. उनका नाम लोकाशाह रखा गया। मैं सोचता हूँ कि ऐसा कही होता नही है। श्री मोती ऋषि जी महाराज ने लिखा है, "इस समय श्रीमान् लोकाशाहजी गृहस्थ अवस्था मे रहते हुए भी पूरी तरह शासन की प्रभावना मे तल्लीन हो गये थे। आपके एक अनुयायी और भक्त सज्जन ने आपको दीक्षा लेने का सुझाव दिया था। परन्तु आपने कहा कि मेरी वृद्धावस्था है। इसके अतिरिक्त गृहस्थावस्था मे रहकर मैं शासन प्रभावना का कार्य अधिक स्वतन्त्रता के साथ कर सकूँगा। फलत आप दीक्षित नही हुए, मगर जोर-शोर से सयम-मार्ग का प्रचार करने लगे।[३७] वृद्धावस्था वाली बात समझ मे आती है। क्योकि वृद्धावस्था मे यदि वे दीक्षा लेते और मुनिव्रत का पूर्णरूपेण पालन नही कर पाते तो शिथिलाचार आ जाता। शिथिलाचार के विरुद्ध ही तो उनका शखनाद था। इससे ऐसा लगता है कि यद्यपि न केवल उनके दीक्षा ग्रहण करने का प्रकरण वरन् उनके समस्त जीवन से सम्बन्वित घटनाओ पर ही मतभेद है तो भी ऐसा कह सकते है कि वे गृहस्थ होते हुए भी किसी दीक्षित सन्त के समान भाव वाले थे और उन्होंने जो कुछ भी किया उसके परिणामस्वरूप स्थानकवासी जैन सघ आज सम्पूर्ण भारत मे पाया जाता है।

लोकागच्छ और तदुपरात स्थानकवासी नाम की परम्परा चल पडने के सम्बन्ध मे विदुषी महासती श्री चन्दनकुमारीजी महाराज साहब ने इस प्रकार लिखा है "उनके अनुयायियो ने अपने उपकारी के उपकारो की स्मृति के लिए ही लोकागच्छ की स्थापना की थी। उनकी भावना भी इसे साम्प्रदायिक रूप देने की नही थी। वास्तव मे लोकागच्छ एक अनुशासनिक सस्था थी। साधु समाज के पुनर्निर्माण मे इस सस्था का पूरा-पूरा योग रहा था। इतिहास मे केवल लोकागच्छ का नाम ही यत्र-तत्र देखने मे आता है। अन्य किसी भी नाम का कोई उल्लेख नही मिलता। तत्कालीन साधु-समाज के रहन-सहन, वेशभूषा आदि का भी कोई समुचित उल्लेख नही मिलता। श्रीमान लोकाशाह के वाद लोकागच्छ किस नाम से प्रचलित रहा, यह अत्यन्त शोध का विषय है। इतना तो अवश्य निश्चित है कि वर्तमान मे प्रचलित श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज लोकागच्छ की वर्तमान-कालीन कडी है। इसी समाज मे हमे आज सही रूप मे लोकाशाह-सिद्धान्त के दर्शन होते है। आज के "धर्म स्थानक" प्राचीन श्रावको की पौषधशालाओ के रूपान्तर है। स्थानको मे धर्म-ध्यान करने के कारण जनता इन्हे स्थानकवासी कहने लगी। प्रारम्भ मे स्थानकवासी शब्द श्रावको के लिए प्रयुक्त हुआ था। बाद मे श्रावक समाज के परम-आराध्य मुनिराजो के लिए भी इसका प्रयोग होने लग गया। स्थानक-शब्द एक गुण-गरिमापूर्ण शास्त्रीय शब्द है। जैन शास्त्रो मे चौदह गुण-स्थानको का वर्णन आता है। इन गुणस्थानो मे आत्मा के क्रमिक विकास का इतिहास निहित है। अथवा इसे यो भी कह सकते हैं कि गुण-स्थानक मोक्ष-

---

३६ हमारा इतिहास, पृष्ठ ६७-६८

३७ ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास, पृष्ठ ७



धाम की चौदह सीढियाँ हैं। हमारे धर्म-स्थानो के लिए प्रयुक्त 'स्थानक' शब्द के पीछे भी एक धार्मिक परम्परा का इतिहास है।"[३८]

मुझे ऐसा लगता है कि 'लोकागच्छ' के नाम का परिवर्तन स्थानकवासी मे हुआ। क्यो ? व कैसे ? जिन ४५ अनुयायियो ने लोकाशाह के नाम से लोकागच्छ नाम रखा, वह उस समय तो चलता रहा। कालान्तर मे धर्म-साधना हेतु 'स्थान' विशेष का उपयोग होने लगा तथा वही शास्त्र-वाचन एव साधु-सन्त ठहरने लगे और वह 'स्थान' प्रतीक स्वरूप 'स्थानक' नाम से पहिचाना जाने लगा। पुन जो व्यक्ति वहाँ जाकर धर्म-साधना करने लगे अथवा सन्त रहने लगे वे स्थान-वास करने वाले=स्थान मे वास करने वाले होने से स्थानकवासी कहलाने लगे तथा उन सन्तो के अनुयायी स्थानकवासी समाज के नाम से प्रसिद्ध होते गये। जब यह नया नाम प्रसिद्ध एव लोकप्रिय हो गया तो लोकागच्छ नाम गौण बन गया और स्थानकवासी ही प्रचलन मे रह गया, जो अभी भी चल रहा है। इसके पीछे जो धार्मिक मान्यताएँ एव भावनाएँ हैं, वे सब अपने स्थान पर यथावत् हैं। उनका सम्बन्ध तो स्वाभाविक ही जुड गया। एक नाम "ढूंढिया" भी मिलता है जिसके सम्बन्ध मे यहाँ विचार करना उचित प्रतीत नही होता है। यह द्वेषवश उपहास करने के लिए विरोधियो के द्वारा दिया हुआ शब्द है।

धर्मवीर लोकाशाह के स्वर्गवास की तिथि के सम्बन्ध मे भी पर्याप्त मतभेद है। स्वर्ण जयती ग्रन्थ मे उनके स्वर्गवास के सम्बन्ध मे निम्नानुसार विवरण दिया गया है, "अपने जीवनकाल मे किसी भी क्रान्तिकार की प्रतिष्ठा नही होती। सामान्य जनता उसे एक पागल के रूप मे मानती है। यदि वह शक्तिशाली होता है तो उसके प्रति ईर्ष्या मे भरी हुई विष की दृष्टि से देखा जाता है और उसे शत्रु के रूप मे मानती है। लोकाशाह के सम्बन्ध मे भी ऐसा ही बना। जब वे दिल्ली से लौट रहे थे तब बीच मे अलवर मे मुकाम किया। उन्होंने अट्ठम (तीन दिन का उपवास) का पारणा किया था। समाज के दुर्भाग्य से श्री लोकाशाह का प्रताप और प्रतिष्ठा नही सही जाने के कारण उनके शिथिलाचारी और ईर्ष्यालु विरोधी लोगो ने उनके विरुद्ध कुचक्र रचा। तीन दिन के इस उपवासी तपस्वी को पारणे मे किसी दुष्ट-बुद्धि के अभागे ने विषयुक्त आहार वहरा दिया। मुनिश्री ने इस आहार का सेवन कर लिया। औदारिक शरीर और वह भी जीवन की लम्बी यात्रा से थका हुआ होने के कारण उस विष का तात्कालिक असर होने लगा। विचक्षण पुरुष शीघ्र ही समझ गये कि उनका अन्तिम काल समीप है, किन्तु महामानव मृत्यु से घबराता नही है। वे शान्ति मे सोगये और चौरासी लाख जीव योनियो को क्षमा कर शुक्लध्यान मे लीन हो गये। इस प्रकार इस युग सृष्टा ने अपने जीवन से नये युग को अनुप्राणित करके चैत्र शुक्ला एकादशी स० १५४६ तारीख १३ मार्च १४९० को देवलोकवासी हुए।"[३९] धर्मवीर लोकाशाह के स्वर्गगमन की विभिन्न विचार-धाराओ का समन्वय करते हुए विदुषी महासती चन्दनाकुमारी जी ने लिखा है, "धर्मप्राण श्री लोकाशाह के स्वर्गवास के विषय मे भी अनेक मतभेद हैं। यतिराज भानुचन्द्रजी का मत है कि धर्मवीर लोकाशाह का स्वर्गवास विक्रम सवत् १५३२ मे हुआ था। लोकागच्छीय यति श्री केशवजी उनका स्वर्गवास ५६ वर्ष की अवस्था में वि० स० १५३३ मे मानते हैं। वीरवशावली मे उनका स्वर्गवास काल १५३५ माना है। प्रभु वीर पट्टावली के लेखक श्री मणिलालजी महाराज ने लोका-

---

३८ हमारा इतिहास, पृष्ठ १०५-१०६

३९ वही, पृष्ठ ४०-४१

शाह के स्वर्गवास का समय १५४१ निर्धारित किया है। ये सभी प्रमाण एक-दूसरे से भिन्न हैं। इनमे १५४१ का काल ही उचित लगता है। उनके स्वर्गवास के विषय मे भी अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। कोई तो उनकी स्वाभाविक मृत्यु मानते हैं। कोई उन्हें विरोधियो द्वारा विष देकर मारा गया बताते है। इनमे दूसरे 'विष-प्रसग' के प्रमाण अधिक पुष्ट मिलते हैं। एक प्रमाण में उनका स्वर्गवास स्थान अलवर माना गया है।"[40] श्री पारसमल प्रसून भी उनकी मृत्यु विष प्रसग से मानते हैं।"[41] इस प्रकार प्रचलित इन विभिन्न विचारधाराओ मे हम किसी भी निष्कर्ष पर तब तक नही पहुँच सकते हैं जब तक कि कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो। फिर भी हमे वि० स० १५४६ मे मृत्यु होना कुछ विश्वसनीय लगता है।

पता—डा० तेजसिंह गौड

छोटा बाजार, उन्हेल, जिला उज्जैन (म०प्र)

जिनकी शताब्दी है।

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज गुणवान।
जिनकी शताब्दी है, चमके वे सूर्य समान ॥टेर॥
महा मालव मे "नीमच" नगरी सुन्दर है।
"गगारामजी" पिता है, माता "केशर" है॥
"चौरडिया कुल" धन्य हो गया पा ऐसी सतान ॥१॥
जीवन मे यौवन गुलाब सा मुस्काया।
विवाह किया पर रति-पति नही लुभा पाया॥
सुन्दर पत्नी छोड के निकले ले उद्देश्य महान ॥२॥
सदियो मे कोई ऐसे सत नजर आते।
जिनके चरणो मे पर्वत भी झुक जाते॥
वाणी मे जिनकी जादू हो, मन मे जन-कल्याण ॥३॥
पतितो को पावन कर, प्रभु से जोड दिया।
वाणी सुनकर पाप पंथ कई छोड़ दिया॥
अग्नि शीतल नीर बनाई, पिघलाये पाषाण ॥४॥
तन जैसा ही मन निर्मल, उन्नत विशाल था।
करुणा भरा हृदय था कोमल, भव्य भाल था॥
आत्मानन्द की आभा देती मधुर वदन मुस्कान ॥५॥
योगी-तपसी-पडित कई मिल जाते है।
सतगुरु "केवलमुनि" पुण्य से पाते है॥
जिनका कुटिया से महलो तक गूँजा गौरवगान ॥६॥

—श्री केवलमुनि

४० हमारा इतिहास, पृष्ठ १०१
४१ मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ १८३



श्री जैन दिवाकरजी महाराज की गुरु-परम्परा

✡ मधुरवक्ता श्री मूलमुनि जी

दर्शन, सिद्धान्त तथा विचार की दृष्टि से जैन-परम्परा अनादि है, शाश्वत है। किन्तु व्यक्ति की दृष्टि से प्रत्येक परम्परा का आदिसूत्र भी होता है। वर्तमान उत्सर्पिणी मे जैन श्रमण परम्परा के आदिकर्ता तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव माने गये है। इन्ही की पवित्र परम्परा मे २४वे तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर थे। वर्तमान मे विश्व मे जहाँ भी जैन श्रमण या श्रावक विद्यमान हैं, उन सबके परमाराध्य-पुरुष भगवान महावीर है तथा अभी सभी श्रमण महावीरवशीय कहलाते है।

भगवान महावीर के पट्ट शिष्य थे सुधर्मा स्वामी। वर्तमान पट्टावली (गुरु परम्परा) की गणना उन्ही के क्रम से की जाती है। सुधर्मा स्वामी के पश्चात् कुछ सौ वर्ष के बाद गुरु-परम्परा मे शाखा-प्रशाखाएँ निकलनी प्रारम्भ हुई जो आज तक भी निकलती जा रही हैं।

श्री स्थानकवासी मान्यता के अनुसार भगवान महावीर निर्वाण के एक हजार वर्ष बाद श्रमण-परम्परा मे क्रमश शिथिलता बढती गई। आचार-विचार की शुद्धता से हटकर श्रमणवर्ग भौतिक सुख-सुविधा यश-वैभव की ओर मुड गया। लगभग १६वी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने आचार क्रांति का बिगुल बजाया जिससे प्रेरणा पाकर भाणाजी ऋषि ने पुन शुद्ध-श्रमण परम्परा की विच्छिन्न कडी को जोडा। हमारी गणना के अनुसार भाणाजी ऋषि भगवान महावीर के ६२वें पाट पर होते है। उनके पश्चात् शुद्ध श्रमण-परम्परा मे ७२वे पाट पर (हमारी परम्परा के अनुसार) श्री दौलतरामजी स्वामी हुए। श्री दौलतरामजी स्वामी से गुरुदेव श्री चौथमलजी महाराज तक की परम्परा का वर्णन यहाँ प्रस्तुत है। इस परम्परा-पट्टावली मे सभवत अन्य परम्परा (गुर्वावली) वालो का मतभेद भी हो सकता है, हमने अपनी गुरु-अनुश्रुति के अनुसार यहाँ उल्लेख किया है।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज ने लगभग १३ वर्ष की अल्पायु मे ही फाल्गुन शुक्ला ५ को दीक्षा ली थी। आप काला पीपल ग्राम के बघेरवाल जाति के थे। पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के दादा गुरु थे।

आप अत्यन्त ही समर्थ विद्वान् एव सूत्र सिद्धान्त के पारगामी थे। इनका विचरण क्षेत्र कोटा, बूँदी, मेवाड, मालवा आदि था। आप एक बार विचरते हुए देहली पधारे। वहाँ के शास्त्रज्ञ श्रावक श्री दलपतसिंहजी से शास्त्रो का अध्ययन करने की जिज्ञासा प्रकट की। श्री दलपतसिंहजी ने कहा कि वे 'दसवैकालिकसूत्र' का अध्ययन करायेंगे। इस पर आपने अन्य शास्त्रो का अध्ययन कराने का भी अनुरोध किया। किन्तु श्री दलपतसिंहजी सहमत नही हुए। जब आप वहाँ से विहार करके अलवर पहुँचे तब आपके मन मे विचार आया कि आखिर श्री दलपतसिंहजी ने 'दसवैकालिकसूत्र' पर ही विशेष बल क्यो दिया ? इसमे अवश्य कोई रहस्य होना चाहिए। आप पुन देहली पधारे और श्री दलपतसिंहजी से कहा, आप जो चाहे सो पढ़ाएँ। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रकार आपने श्री दलपतसिंहजी से "दसवैकालिकसूत्र" के साथ-साथ अन्य ३२ सूत्रो का अध्ययन भी किया। उनके असाधारण ज्ञान-सम्पत्ति की प्रशसा पूज्य श्री अजरामरजी महाराज ने सुनी। पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी का आगमतेर ज्ञान भी बहुत बढा-चढा था। फिर भी आगम-ज्ञान प्राप्त



करने को आपको पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के पास ज्ञान-अभ्यास करने की इच्छा हुई। इस इच्छा को ध्यान मे रखकर लीमडी श्रीसघ ने एक विशेष व्यक्ति के साथ पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज की सेवा मे तत्सम्बन्धी प्रार्थना-पत्र भेजा।

आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय कोटा-बूदी की तरफ विराजते थे। उन्होने इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर काठियावाड लीमडी की ओर विहार कर दिया। वह व्यक्ति भी महाराजश्री के साथ अहमदाबाद तक रहा। वह वहां से श्रीसघ को बधाई देने और महाराज श्री के पधारने का शुभ सन्देश देने को लीमडी पहुँच गया। उस समय लीमडी श्रीसंघ के आनन्द का पार न रहा। श्रीसघ ने उस व्यक्ति को १२५०) रु० भेंट किये।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के लीमडी पधारने पर श्रीसंघ ने भाव-भीना स्वागत किया।

पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज से सूत्र-सिद्धान्त का रहस्य समझने लगे।

'समकितसार' के कर्त्ता पडित मुनि श्री जेठमलजी महाराज जो मारवाड के पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय के थे, उन दिनो पालनपुर विराजते थे, वे भी शास्त्र अध्ययनार्थ लीमडी पधारे।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के साधुओ मे उस समय कितना पारस्परिक स्नेह था तथा उनमे ज्ञान-पिपासा कितनी तीव्र थी यह उपरोक्त प्रसग से स्पष्ट होता है।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज ने बहुत समय तक विचरण कर पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी को सूत्र-ज्ञान दिया।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के आग्रह से पूज्य श्री अजरामरजी महाराज ने जयपुर मे एक चातुर्मास उनके साथ किया था।

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के चार शिष्य प्रसिद्ध थे—(१) श्री गणेशरामजी, (२) श्री गोविन्दरामजी, (३) श्री लालचन्दजी, (४) श्री राजारामजी। उनमे भी पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज विशेष प्रसिद्ध थे।

पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के पट्टधर पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज अन्तरडी ग्राम के निवासी तथा सिलावट जाति के थे। वे एक कुशल चित्रकार थे। एक बार पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज चित्र बनाते हुए अन्यत्र चले गये। उनकी चित्र सर्जन की सामग्री (रंग तूलिका आदि) कक्ष मे ज्यो की त्यो खुली रखी थी। सयोग से एक मक्खी रग मे फँस गई और तडप-तडप कर मर गई। लौटने पर श्री लालचन्दजी महाराज ने उसे देखा और बडे दु खी हुए, आपको वहीं वैराग्य उत्पन्न हो गया।

सौभाग्य से अन्तरडी मे पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज पधारे थे। आप उनके पास पहुँचे और दीक्षित होने का विचार प्रकट किया। इस तरह पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज ने इन्हें दीक्षा दी और जैन-सम्प्रदाय को एक सुयोग्य रत्न मिला। कालान्तर मे आप ही पूज्य श्री दौलत-रामजी महाराज के पदाधिकारी हुए। आपकी उपस्थिति में ही उन दिनो कोटा सम्प्रदाय मे २७



पडित मुनिराज प्रसिद्ध हुए। ये विद्वान् पडितगण जैन समाज की गौरव-गाथा का विस्तार चारो दिशाओ मे कर रहे थे।

पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज के नौ शिष्यो मे से पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज सुप्रसिद्ध हैं।

आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज

आपका जन्म टोक के पास टोडा (रायसी) जयपुर स्टेट मे हुआ था। आप एक सुसम्पन्न ओसवाल चपलोत गोत्रीय थे।

एक समय पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज का बूंदी मे शुभागमन हुआ। गृह कार्यवश श्री हुक्मीचन्दजी का भी बूंदी मे आना हो गया। पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज का वैराग्योत्पादक उपदेश श्रवण कर सं० १८७९ मे मृगसर के शुक्ल पक्ष मे आपने प्रबल वैराग्य से दीक्षा धारण की। तत्पश्चात् एक महान् धर्मवीर के रूप मे पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज रत्नत्रय की आराधना मे जुट गए।

आपकी व्याख्या शैली शब्दाडम्बर से रहित सरल तथा वैराग्य से ओत-प्रोत भव्य जीवो के हृदय को सीधे छूने वाली थी। आपके हस्ताक्षर भी अति सुन्दर थे। आज भी आपके द्वारा लिखित शास्त्र निम्बाहेडा के ग्रन्थालय मे सुरक्षित है। साथ ही १९ सूत्रो की हस्तलिखित प्रतियाँ अन्यत्र विद्यमान हैं।

आपने निरन्तर २१ वर्षों तक बेले-बेले (छठ) तप किया था। आप केवल एक ही चद्दर का सदा उपयोग करते थे चाहे भयकर शीत हो या ग्रीष्मऋतु। आप प्रतिदिन दो सौ "नमोत्थुण" का स्मरण जीवन-पर्यन्त करते रहे। आपने मिष्ठान्न तथा तली हुई चीजो का जीवन-पर्यन्त के लिए त्याग कर दिया था, केवल १३ द्रव्य रखकर शेष सभी द्रव्यो का आजीवन के लिए त्याग किया था। आप नींद बहुत ही कम लेते थे। आपने अपने गुरुजी से धर्म-प्रचार हेतु आज्ञा प्राप्त कर हाडोती प्रान्त मेवाड मालवा आदि के अनेक गाँवो मे भ्रमण करते हुए धर्म-प्रचार किया।

आपके धर्म-प्रचार से श्रीसघो मे आशातीत धर्म-ध्यान एव तपोन्नति हुई तथा पूज्यश्री के उच्चकोटि के आचार-विचार के प्रति जनगण सश्रद्धा नतमस्तक हो उठा। आपके स्पर्शमात्र से रामपुरा के एक कुष्टी का कुष्ठ रोग तिरोहित हो गया। इसी प्रकार एक दीक्षार्थिनी की हथकडियाँ भी आपके दर्शनो से टूट गईं। आपके तपोबल से नाथद्वारा के व्याख्यानस्थल पर नभ से रुपयो की वर्षा हुई थी।

आपके गुरु पूज्य श्री लालचन्दजी महाराज ने अपने व्याख्यान मे कहा था कि हुक्मीचन्दजी तो साक्षात् चौथे आरे के नमूने हैं। ये एक पवित्र आत्मा व उत्तम साधु तथा अद्‌भुत क्षमा के भडार हैं।'

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज ने साधुओ के नियमो-उपनियमो मे शास्त्रानुसार बहुत सुधार किये। आपने एव आपके साथी मुनि श्री शिवलालजी महाराज ने वि० स० १९०७ मे बीकानेर मे ठाणा ४ से चातुर्मास किया। आपके प्रभाव से महान् धर्मोन्नति हुई। आपके उपदेश से ४ दीक्षार्थी तैयार हुए। दीक्षा के समय पाँच नाई आए किन्तु दीक्षार्थी चार ही थे। अत पाँचवा नाई निराश हुआ। उस समय एक भाई तत्काल तैयार होकर बोला, "ले भाई नाई, निराश मत हो, मैं दीक्षा लेने को तैयार हूँ।" इस प्रकार पाँच दीक्षाएँ एक साथ एक ही दिन मे हुईं।



इस चातुर्मास के पश्चात् ही आप ६ ठाणा बन गए। पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज ने चार ही सघ की साक्षी से श्री शिवलालजी महाराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। उनके लिए यह विरद सुशोभित होता है—'क्रियोद्धारक प्रात स्मरणीय पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज।

इस तरह लगभग ३८ वर्ष ५ मास तक शुद्ध सयम का परिपालन कर विक्रम सं० १९१७ वैसाख शुक्ल ५ मगलवार को जावद मे आपका सथारा-समाधि पूर्वक स्वर्गवास हुआ।

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज ने एक पद्य मे आपके विषय मे कथन किया है कि आप आउष्टक विमान मे देवपने उत्पन्न होकर महाविदेह क्षेत्र मे राज्य वंश मे बलदेव की पदवी प्राप्त कर मोक्ष मे पधारेंगे। जैन दिवाकरजी महाराज ने परम्परा से सुना था कि पूज्य श्री के देवलोक होने के बाद उनके पात्र पर स्वर्णाक्षरो मे यह सब लिखा हुआ था जो बाद मे मिट गया।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज

पूज्य श्री दौलतरामजी महाराज के जिन चार प्रसिद्ध शिष्यो का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उनमे श्री गोविन्दरामजी महाराज भी थे, जिनके शिष्य श्री दयालजी महाराज थे। श्री दयालजी के ही शिष्य श्री शिवलालजी महाराज थे। आपकी दीक्षा रतलाम में वि० म० १८९१ मे हुई थी। आपका जन्मस्थान धामनिया (नीमच) मध्य प्रदेश था।

आप भी पूज्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज की तरह की शास्त्र मर्मज्ञ, स्वाध्यायी, आचार-विचार मे महान् निष्ठावान तथा परम श्रद्धावान थे। आपने लगातार ३२ वर्ष तक एकान्तर उपवास किया था। आप केवल तपस्वी ही नही, अपितु पूर्ण विद्वान् स्व-पर मत के पूर्ण ज्ञाता व समर्थ उपदेशक थे। आप भक्ति भरे जीवनस्पर्शी उपदेशात्मक कवित्त व भजन आदि की रचना भी करते थे।

आप पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म० के साथ ही विचरण करते थे। कोई जिज्ञासु यदि पूज्य हुक्मीचन्दजी महाराज से प्रश्न करता तो उसका उत्तर प्राय आप ही दिया करते थे। इसका कारण पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की मौनावस्था मे रहने की प्रवृत्ति थी।

जब पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज का सन्त समुदाय अत्यधिक बढ गया तब उन्होंने सन्तो से कहा कि हे सन्तो! मुनि शिवलालजी ही आप सबके आचार्य हैं। इस प्रकार सभी सन्तो ने पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज का आदेश शिरोधार्य किया और उन्होंने श्री शिवलालजी महाराज को अपना आचार्य मान लिया। आपको आचार्य पद स० १९०७ मे बीकानेर मे दिया गया।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज ने भी जैन-समाज व शासन का समुत्थान किया। वर्तमान काल मे पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के जितने भी मुनि व सन्त हैं सब आप ही के शिष्य प्रशिष्य परिवार मे हैं। आप ही कुलाचार्य भी हैं।

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज ने शिष्य बनाने के त्याग कर लिए थे अतएव जो शिष्य बने वह पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के बने।



पूज्य श्री शिवलालजी महाराज

श्री चतुर्भुजजी महाराज
श्री लालचन्दजी महाराज
श्री केवलचन्दजी महाराज (बडे)
श्री केवलचन्दजी महाराज (छोटे)
श्री रतनचन्दजी महाराज (आपके लगभग २७ शिष्य-प्रशिष्य हुए)
पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज

श्री हर्षचन्द्र जी महाराज
श्री राजमलजी महाराज (आपका शिष्य परिवार वर्तमान मे वहुत विस्तृत है)
आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज
आचार्य श्री चौथमलजी महाराज
आचार्य श्री मन्नालालजी महाराज
आचार्य श्री खूबचन्दजी महाराज
आचार्य श्री सहसमलजी महाराज

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज के समय मे अर्थात् विक्रम स० १८७८ कजार्डा गाँव मे दयारामजी भडारी के घर मे पुत्र रत्न का जन्म हुआ। जिनका नाम रत्नचन्द रखा गया। वालक की शिक्षा के पश्चात् इन्ही रतनचन्दजी का इन्दौर रियासत मे वडकुआ निवासी गुलराजजी पटवारी की सुपुत्री राजकँवर के साथ विवाह सम्वन्ध हुआ।

वि स० १९०३ मे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम जवाहरलाल रखा गया। वि०स० १९०६ आषाढ शुक्ला चतुर्थी मे द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम हीरालाल रखा गया और वि०स० १९१२ माद्रपद शुक्ला छठ सोमवार को तृतीय पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम नन्दलाल रखा गया।

स० १९१४ विद्वद्वर मुनिश्री राजमल जी महाराज का शिष्य मडली सहित कजार्डा मे पधारना हुआ। उनकी अमृत वाणी सुनकर रतनचन्दजी को वैराग्य जागृत हुआ। उन्होंने दीक्षा लेने का विचार अपनी पत्नी राजकँवर और साले देवीचन्दजी के सामने रखे। अनेक उत्तर प्रत्युत्तर होने के पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ला पचमी स० १९१४ के पवित्र दिन राजमलजी महाराज के पास श्री रतनचन्दजी व श्री देवीचन्द जी दोनो ने सयम स्वीकार किया। इन दोनो के सयम के समय मगनमलजी सोनी और हीरालालजी पटवा को भी वैराग्य उत्पन्न हो गया था।

दीक्षा-ग्रहण करने के पश्चात् दोनो मुनियो ने पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के अपने गुरुश्री राजमलजी महाराज से जैनागम तथा आत्मवोध का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

विक्रम स० १९१९ को मावी पूज्य प० मुनि श्री चौथमलजी महाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ कजार्डा पधारे। जिनका सारगर्मित प्रवचन सुनकर जवाहरलालजी के हृदय मे गहरा प्रभाव पडा। जिन्होंने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया।

उनकी मातेश्वरी को इस प्रत्याख्यान का पता लगा, तव पुत्र को भाँति-भाँति से समझाया।



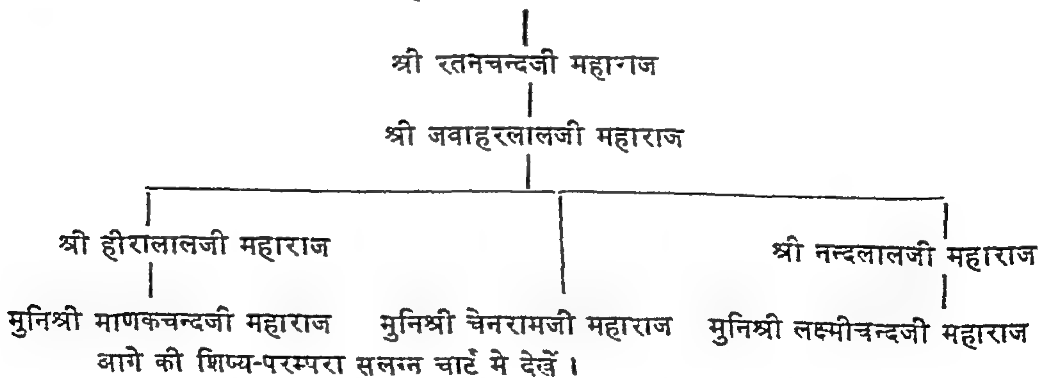
परन्तु उन्होंने अपना दीक्षा का विचार पक्का कर लिया। विक्रम स० १६२० में भावी पूज्य श्री चौथमलजी महाराज और मुनिश्री रतनचन्दजी महाराज का चातुर्मास फलौदी मारवाड मे था। तब कजार्डा का श्रीसघ पहुँचकर मुनिश्री से निवेदन किया कि चातुर्मास के पश्चात् आप विहार कजार्डा की तरफ कराने की कृपा करें। कारण श्री रतनचन्दजी महाराज का शेष सारा कुटुम्ब दीक्षा ग्रहण करने वाला है। मुनिश्री ने विनती स्वीकार की। चातुर्मास के पश्चात् विहार करते हुए कजार्डा पधारे। उन पधारने वाले मुनिराजो मे श्रीमद् जैनाचार्य शिवलालजी महाराज, श्री राजमलजी महाराज, भावी पूज्य श्री चौथमलजी महाराज, श्री रतनचन्दजी महाराज और श्री देवीचन्दजी महाराज आदि आठ मुनिराज थे। इनके अतिरिक्त श्री रगूजी महासतीजी महाराज श्री नवला जी महासतीजी महाराज और श्री व्रजूजी महासती जी महाराज का शुभ आगमन भी कजार्डा मे हुआ।

पौष शुक्ला छठ स० १६२० के पवित्र दिन श्रीमती राजकँवर बाई ने अपने तीनो पुत्रों (जवाहरलालजी, हीरालालजी नन्दलालजी) को दीक्षा दिलवाई। और स्वय भी दीक्षित हो गई। पूज्य श्री ने राजकँवर बाई को दीक्षा देकर महासतीजी श्री नवलाजी महाराज की शिष्या घोषित की।

इसी प्रकार मुनि जवाहरलालजी महाराज को मुनि श्री रतनचन्दजी के शिष्य और मुनिश्री हीरालालजी महाराज, मुनिश्री नन्दलालजी महाराज को, मुनिश्री जवाहरलालजी महाराज के शिष्य घोषित किये।

जैसे—

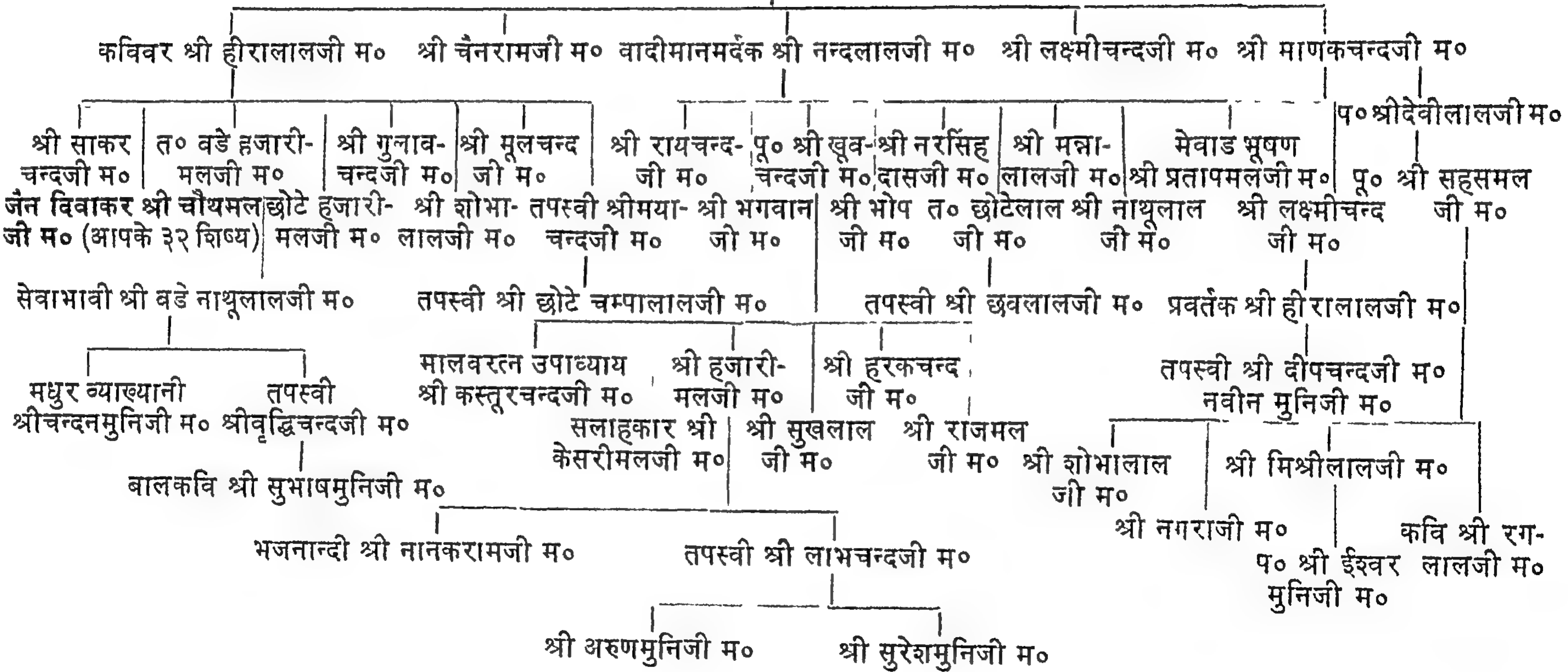
विद्ववर प० श्री राजमलजी महाराज के शिष्य



आगे की शिष्य-परम्परा सलग्न चार्ट मे देखें।

☆

परमश्रद्धेय विद्वद्वर श्रीराजमलजी महाराज की शिष्य-परम्परा



जगतवल्लभ जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता श्री चौथमलजी म० के शिष्य-प्रशिष्य

श्री हुक्मीचन्दजी म० (बडा)

प० श्री शकरलालजी म०

श्री कजोडीमलजी म०

श्री किशनलालजी म०

श्री भैरुलालजी म०

श्री नन्दलालजी म०

श्री रतनलालजी म०

श्री हुक्मीचन्दजी म० (छोटा)

स्वा० श्री इन्दरमल जी म०

त० श्री मोहनलाल जी म०

उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म०

कविश्री चम्पालालजी म०

श्री सागरमलजी म०

प्रवर्तक श्री वृद्धिचन्दजी म०, सेवाभावी श्री सन्तोषचन्दजी म०

तपस्वी मगलचन्दजी म०

प० श्री भगवती मुनिजी म०

तपस्वी श्री विमलमुनिजी म०

श्री वीरेन्द्र मुनिजी म०

मधुरवक्ता श्री मूलचन्दजी म०

व्याख्यानी श्री ऋषभ मुनिजी म०

मधुर गायक श्री प्रमोद मुनिजी म०

कविश्री केवलचन्दजी म०

श्री दिनेश मुनिजी म०

तपस्वी श्री विजयराजजी म०

श्री ताराचन्दजी म०

त० श्री बसन्तीलालजी म०

प्रवर्तक श्री मगनलालजी म०

तपस्वी श्री नेमीचन्दजी म०

तपस्वी श्री गौरीलालजी म०

तपस्वी सागरमलजी म०

तपस्वी श्री मेघराजजी म०

अवधानी श्री अशोक मुनिजी म०

सेवाभावी श्री सुदर्शन मुनिजी म०

प० श्री वर्द्धमान जी म०, श्री मन्नालालजी, म० त० श्री वक्तावरमलजी म०, श्रीगणेश मुनिजी म०, तपस्वी श्री पन्नालालजी म०, प० श्री उदय मुनिजी म०

श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन

में

उदारतापूर्वक आर्थिक सहयोग

प्रदान करने वाले सद्गृहस्थों का

चित्र एवं परिचय

सहयोगी परिचय

सहयोगी परिचय

श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन निमित्त कोई स्थायी फण्ड या किसी संस्था विशेष का आर्थिक दायित्व अब तक हमने नही किया और न ही हम ऐसा चाहते। यद्यपि ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन का गुरुतर व्यय सामने था। और सम्बल था कविरत्न श्री केवल मुनि जी महाराज की प्रेरणा-शक्ति का। हमें प्रसन्नता है कि स्व० गुरुदेव के भक्त वर्ग ने अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धाजलि स्वरूप भक्ति और श्रद्धा पूर्ण हृदय से उदारता के साथ हमारा सहयोग किया, और स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशन के व्ययसाध्य कार्य को सरल बनाया।

प० मुनि श्री मूलचन्द जी महाराज ने भी इस कार्य के लिए कई सज्जनो को बलवती प्रेरणा दी। साथ ही देहली के उत्साही श्री नेमचन्द जी तातेड (चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट) श्री ज्ञानचन्द जी तातेड़, श्री कमलचन्द जी घोडावत आदि ने भी अथक प्रयत्न करके सहयोगी बनाये। हम इन सब के स्नेहपूर्ण सहयोग के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही उदार सहयोगियो का चित्र, परिचय व नामावली यहाँ क्रमपूर्वक प्रकाशित की जा रही है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ मे प्रमुख उदार सहयोगी सचित्र परिचय

श्रीमान रतनचन्दजी रांका, कडपा (आं० प्र०)

आपका जन्म १५ अक्टूवर १६३८ को वाड़मेर (राजस्थान) के अन्तर्गत राखी ग्राम मे स्व० श्रीमान जसराज जी राका के घर पर माताजी श्रीमती वरजूवाई की कुक्षि से हुआ।

आपके माता-पिता दोनो ही अत्यत धर्मपरायण, सुसस्कार सम्पन्न सद्‌गृहस्थ थे। आपको धार्मिक संस्कार वचपन से ही विरासत मे मिले। धार्मिक कार्यों की तरफ आपकी प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही रही है।

प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् १२ वर्ष की अल्पायु मे आप व्यवसाय के लिए कलकत्ता गये। पश्चात् सन् १६६० से आ प्र. के कडपा शहर मे आध्रा इडस्ट्रियल वर्क्स की स्थापना से आपने औद्योगिक क्षेत्र मे पदार्पण किया, जिससे १६७३ तक आप सम्वन्धित रहे। सन् १६६४ मे राका केवल कार्पोरेशन की स्थापना की जो सन् १६७५ मे एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप मे परिवर्तित हो गई। यह सस्थान कण्डक्टर व्यवसाय मे देश-विदेश मे अपनी अच्छी प्रतिष्ठा रखता है। वम्वई मे राका मेटल वर्क्स तथा अहमदावाद मे राका टेक्स टाइल्स के नाम से आपकी दो फर्में हैं।

व्यावसायिक प्रगति के साथ-साथ आप सामाजिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियो मे भी सदा अग्रणी रहे है। आप अनेक सस्थाओ के अध्यक्ष व सक्रिय सदस्य हैं।

वर्तमान मे निम्न सस्थाओ से आप सम्वन्धित हैं—

- भगवान महावीर जनरल अस्पताल व रिसर्च सेंटर (सुमेरपुर) —चेयरमेन
- भगवान महावीर पोस्ट ग्रेज्युएट सेंटर श्री वेंकटेश्वरा युनिवर्सिटी, एडवाइजरी कमेटी —सदस्य।
- कडपा डिस्ट्रिक्ट जनरल अस्पताल एडवाइजरी कमेटी—सदस्य।
- कडपा चेम्वर आफ कामर्स व इण्डस्ट्रीज—सदस्य
- आपने अभी हाल ही मे विभिन्न २३ देशो की यात्रा की है। जिनमे कनाडा, अमेरिका, जापान, जर्मनी, हालैण्ड, फ्रास, ताइवान, स्वीट्जरलैण्ड आदि प्रमुख हैं।

आप धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों मे वडी उदारता पूर्वक समय-समय पर सहयोग करते रहते हैं। साहित्य प्रकाशन मे आपका विशेष सहयोग अनेक सस्थाओ को मिलता रहा है। भविष्य मे आपके उदार सहयोग का हाथ सदा प्रवर्धमान रहे। श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ मे आपने मुक्त हृदय से सहयोग प्रदान किया है।

श्रीमान रतनकुमार जी जैन, बम्बई

श्री रतनकुमार जी जैन मूलत आगरा निवासी हैं। आगरा लोहामण्डी जैन समाज के प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ स्व० श्री मक्खनलालजी जैन आपके पिता व स्व० श्रीमती दुर्गादेवी आपकी माताजी थी। आपका जन्म २४ फरवरी, १९३४ को हुआ।

आगरा मे प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय मे आपने हिन्दी-गुजराती-मराठी-इगलिश-उर्दू व बागला आदि भाषाओं का ज्ञान व शिक्षण प्राप्त किया।

सन् १९३३।३४ मे आप आगरा मे स्व० श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सम्पर्क मे आये, तब से उनके प्रति आपकी अगाध श्रद्धा है। शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी महाराज, पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज, कविश्री अमरचन्दजी महाराज, श्री रत्नचन्द्रजी महाराज, कविश्री केवल मुनिजी आदि अनेक विद्वान् सन्तो के सम्पर्क से आपके विचार सदा धर्मानुकूल रहे और रहे पक्षपात-मुक्त गुणग्राही।

व्यवसाय के क्षेत्र मे आपकी प्रतिभा अच्छी चमकी है। आगरा, कलकत्ता, बम्बई आपके व्यवसाय केन्द्र रहे हैं।

लोह-स्टील व्यवसाय मे आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है। बम्बई मे नित्यानन्द स्टील रोलिंग मिल्स, नेरल (जि० कोलाबा) मे आपकी स्टील फैक्ट्री है।

आप (१) बोम्बे आइरन मर्चेण्ट एसोसियेशन व (२) आइरन एण्ड हार्डवेयर मर्चेण्ट्स ऐसोशिएशन बम्बई के डाइरेक्टर रह चुके है। सन् १९७७ मे दारुखाना आइरन मर्चेण्टस् ऐसोसियेशन लि. के मैनेजिंग डाइरेक्टर भी रहे।

अनेक समाज सेवी तथा धार्मिक सस्थाओ मे आप उदारतापूर्वक सहयोग करते रहते हैं। वीरायतन (राजगृह) के आप उपाध्यक्ष हैं। महावीर मेडिकल रिसर्चसेंटर के ट्रस्टी तथा अनेक सस्थाओ के सरक्षक सदस्य है। शिक्षा एव चिकित्सा के क्षेत्र मे आप उदारतापूर्वक सदा मुक्त हृदय से दान करते रहते हैं। फिर भी आप नाम एव यश की भावना से सदा दूर रहते हैं। आपका हँसमुख चेहरा, निश्छल स्नेह और उदारवृत्ति प्रत्येक मिलने वाले के हृदय मे अंकित हो जाती है।

कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज की प्रेरणा से आपने जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ मे सहयोग की प्रमुख भूमिका निवाही है।

सहयोगी सज्जन

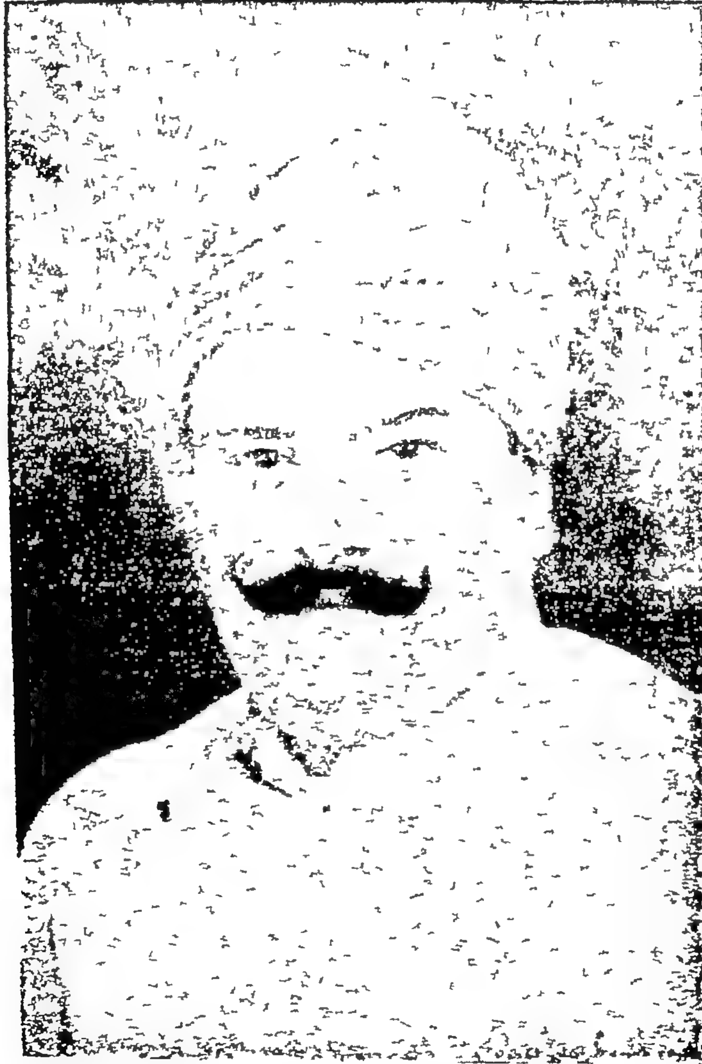


उदारचेता दानवीर श्री रतनचन्द जी रांका
कडपा (आ० प्र०)



धर्मप्रेमी उदार हृदय श्री रतनकुमार जी जैन
(बम्बई)

सहयोगी सज्जन



स्व० श्री नेमीचन्दजी वाठिया
वगड़ी (मारवाड)



स्व० श्रीमान नेमीचन्दजी बांठिया, बगड़ी (मारवाड़)

स्व० श्रीमान नेमीचन्दजी वाठिया एक मिलनसार, हँसमुख प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले सज्जन थे। आपका जन्म राजस्थान के बगडी नगर मे १५-१-१९१९ को श्रीमान हीराचन्दजी वाठिया की धर्मपत्नी मातेश्वरी श्री मैनावाई की कुक्षि से हुआ। युवा होने पर आपका पाणिग्रहण सादडी (मारवाड) निवासी श्रीमान ओटरमलजी कावेडिया की सुपुत्री धर्मानुरागिणी श्री मदनवाई के साथ सम्पन्न हुआ। सामाजिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक कार्यो मे आप दोनो की ही सदा रुचि रही है और उदारतापूर्वक सहयोग भी मिलता रहा है।

श्रीमान नेमीचन्दजी का ४४ वर्ष की लघुवय मे बगडी मे अकस्मात् स्वर्गवास हो गया।

श्रीमती मदनवाई धर्म मे अडिग आस्थावाली वहुत ही उदार और तपस्विनी महिला है। दान और तपस्या दोनो मे ही आपकी विशेष रुचि है। मासखमण तप भी आप कर चुकी हैं।

आपके भाई श्रीमान पारसमलजी कावेडिया भी बडे धर्मप्रेमी व उदारहृदय है। आप दानवीर भामाशाह के वशज हैं। 'एच० नेमीचन्द जैन ज्वेलर्स' (आरकाट) फर्म का सचालन भी अभी आप ही करते हैं। बहन की धर्म एव दान-भावना मे आप सदा सहयोगी रहते हैं। आपके माताजी, आपकी धर्मपत्नी दोनो ही धर्मानुरागी हैं। बच्चे भी सभी सुसस्कारी हैं।

श्रीमान पारसमलजी ओटरमलजी कावेडिया, आरकाट

श्रीमान पारसमलजी कावेडिया सादडी (मारवाड) निवासी है वर्तमान मे आप आरकाट मे सोने-चाँदी का व्यापार करते हैं।

आप वहुत ही उदार, सरल और धर्मप्रेमी हैं। आपकी माताजी भी वडी धर्मात्मा हैं। आपकी धर्मपत्नी वहुत ही धर्मशीला है। आपकी सुपुत्रियो एव पुत्रो मे धर्म के सस्कार पूर्णत परि-लक्षित होते हैं।

आपने धर्म एव समाज सेवा के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। सादडी (मारवाड) मे जैन स्थानक के उद्घाटन का शुभ कार्य आपके हाथ से ऊँची वोली वोल कर आनन्द सम्पन्न हुआ। अनेक सस्थाओ को भी दान दिया है।

आपकी बहिन श्रीमती मदनवाई (धर्मपत्नी श्री नेमीचन्दजी वाठिया) वह भी वडी उदार और तपस्विनी है। मासखमण का तप आप कर चुकी हैं। वर्षीतप और अनेक तपस्याएँ आपने की हैं।

आप जैन दिवाकरजी महाराज के प्रति वहुत भक्ति-भावना रखते हैं। 'स्मृतिग्रन्थ मे प्रमुखतापूर्वक सहयोग प्रदान किया है। तथा आपकी उदारता से अनेक व्यक्तियो को स्मृतिग्रन्थ भेंट दिया जायेगा।



स्व० सेठ स्वरूपचन्द जी तालेरा, व्यावर

व्यावर के प्रमुख एव सुप्रसिद्ध श्रीमान् सेठ स्वरूपचन्दजी तालेरा से जिसने एक बार भी भेट की, वह अपने जीवन मे उन्हे कभी नही भूल सकता, यह उनके स्वागत-सत्कार व वात्सल्य भावना की अपनी नीजि विशेषता थी।

आपका जन्म स० १९४८ मे भवरी (मारवाड) मे हुआ, अपने पिता श्री कुनणमलजी तालेरा की छत्रछाया मे बाल्यकाल सुख पूर्वक व्यतीत कर आप स० १९५६ मे व्यावर पधारे एवं यहीं विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। शिक्षा की ओर विशेष रुचि न होने के कारण आपने कुछ वर्ष बाद ही नौकरी कर ली और व्यापारिक क्षेत्र की विशेष जानकारी करने मे दिलचस्पी रखी। सन् १९१८ मे आपने ऊन का व्यापार शुरू किया, भाग्य ने आपका साथ दिया, लक्ष्मी ने आपको वरद हाथो से वरा और इस प्रकार आपने आशातीत सफलता प्राप्त की। बम्बई मे आपने बडे पैमाने पर ऊन का कारोबार बढाया और भारत ही नही, विलायतो मे भी अपनी प्रामाणिकता एव कार्य-कुशलता की छाप जमाई। इस प्रकार लाखो की सम्पत्ति का उपार्जन कर आप पूर्ण वैभवशाली बने।

स्व० जैन दिवाकर गुरुदेव चौथमलजी महाराज साहब के आप परम भक्त हैं, गुरुदेव के प्रति आपकी प्रगाढ श्रद्धा एव अटूट स्नेह था। धर्म गुरु के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा का परिचय, आपने धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे विशाल हृदय से लक्ष्मी का सदुपयोग कर सस्थाओ को ऊँचा उठाने एव धार्मिक प्रचार करने मे पूर्ण सहयोग दिया जो कि सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

(शेष पृष्ठ ५८३ पर)

लक्ष्मीचन्द जी तालेरा

आप स्व० सेठ श्री स्वरूपचन्दजी तालेरा के द्वितीय सुपुत्र हैं। पिता की तरह आप भी बडे उदार, मिलनसार तथा सामाजिक एव राष्ट्रीय सेवा कार्यो मे विशेष उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

आपका जन्म १६ मार्च, १९३७ को व्यावर मे हुआ। शिक्षा प्राप्त कर आपने अपना पैतृक व्यवसाय तो सँभाला ही, साथ ही नये उद्योगो का भी प्रारम्भ किया।

०कुन्दनमल स्वरूपचन्द, व्यावर

०ओसवाल केवल्स प्रा० लि०, जयपुर

०ओसवाल इण्डस्ट्रीज, जयपुर

ये आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं।

आप वर्तमान मे अनेक समाज-सेवी सस्थाओ के अधिकारी हैं—अध्यक्ष—

१. जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, व्यावर

२. उपाध्याय प्यारचन्द जैन छात्रालय, व्यावर

३ आयबिल खाता, व्यावर

४ श्री जैन दिवाकर फाउण्डेशन, व्यावर

५ श्री मगनजैन सहायता समिति, व्यावर

उपाध्यक्ष—अखिल भारतीय जैन दिवाकर सगठन समिति श्री जैन दिवाकर क्लिनिक, व्यावर

ट्रस्टी—श्री जैन चतुर्थ वृद्धाश्रम, चित्तौड

कोषाध्यक्ष—राजस्थान कडक्टर मैन्युफेक्चरिंग ऐसोसियेशन, जयपुर

आपकी कार्यदक्षता व उत्साह से समाज को सदा लाभ मिलता रहेगा।

आपने स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में अच्छी सहायता प्रदान की है।



समाजरत्न, उदारमना कंवरलाल जी बेताला, गोहाटी (आसाम)

उदार हृदय, धर्मनिष्ठ, समाजरत्न सेठ श्रीमान् कवरलाल जी बेताला अत्यन्त सरल हृदय एव धार्मिक प्रवृत्तियो के प्रति हार्दिक रूप से निष्ठावान, सज्जन प्रकृति के सुश्रावक हैं।

आपका जन्म वि० स० १९८० डेह (नागौर) निवासी श्रीमान पूनमचन्द जी वेताला के घर श्रीमती राजाबाई की कुक्षि से हुआ। आप पाँच भाई हैं। जिसमे आपका चौथा क्रम है। आप अभी गोहाटी (आसाम) के अच्छे उद्योगी तथा साहसी व्यवसायी हैं। आप अनेक सस्थाओ के सक्रिय सहयोगी है। उदारतापूर्वक विविध रचनात्मक प्रवृत्तियो के आप उत्साह के साथ प्राय दान देते रहते है। सन्तो की सेवा के प्रति तो जैसे आपके मन का कण-कण समर्पित है। श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति आपके हृदय मे असीम श्रद्धा भक्ति है।

आपकी धर्म पत्नी श्रीमती विदामावाई तथा आपके सुपुत्र श्री धर्मचन्द जी की धार्मिक रुचि भी प्रशंसनीय है। आपकी दो पुत्रियाँ श्रीमती काता एव ममता तथा पौत्र महेश, मुकेश आदि सभी की जैन सस्कृति के प्रति असीम आस्थाएँ हैं। ✡

(शेष पृष्ठ ५८२ का)

आप सन् १९३३ से सेवा समिति व्यावर, के सभापति एव कोषाध्यक्ष रहे। जहां से करीब १५०-२०० रोगियो को हमेशा मुफ्त औषधि मिलती है, समिति के लिये ३१०१) रु० प्रदान कर आपने अपनी ओर से एक विशाल कमरा भी वनाया है। आप सन् १९५५ से व्यावर श्रावक सघ के उपसघपति, अहिंसा सभा के सभापति, ऊन एसोसिएशन के प्रमुख सदस्य एव सन् १९६२ से प्रेसीडेंट पद पर रहे। चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम चित्तौडगढ के ट्रस्टी भी थे जहाँ आपने अपनी ओर से एक कमरा भी वनवा दिया है। जैन दिवाकर पुस्तकालय व्यावर व अजमेर सघ के धार्मिक भवन में भी एक-एक कमरा आपने अपनी ओर से वनवाया। व्यावर मे आपने रु० १५०००) की एक मुश्त रकम निकाल कर "तालेरा पब्लिक चेरीटेवल ट्रस्ट, व्यावर" की स्थापना की। नगर के चक्षु-दान यज्ञ मे भी आप प्रतिवर्ष पूर्ण सहयोग देते रहे।

आपकी सहधर्मिणी श्रीमती ऐजन कवरजी एक विशाल हृदय वाली धार्मिक वृत्ति की महिला है, धार्मिक प्रसगों एव व्यवहारिक कार्यों मे हजारो को खिलाकर खाने मे ही आपको विशेष रुचि है।

वृद्धावस्था होते हुए भी नियमव्रत मे दृढ हैं सन्त-सतियो की सेवा मे तत्पर रहती है।

आपके दो सुपुत्र हैं—श्रीमान् निहालचन्दजी एव श्री लक्ष्मीचन्दजी।

श्री निहालचन्दजी सरल हैं। श्री लक्ष्मीचन्दजी उत्साही युवक हैं। नम्र, सरल, उदारवृत्ति वाले हैं। आपकी धर्मपत्नी भी वहुत धर्मात्मा एव उदार है।

श्रीमान् तालेराजी का २५ अप्रेल, १९६९ को स्वर्गवास हो गया।



स्व० माँगीलाल जी वडेर, देहली

देहली के स्थानकवासी जैन समाज मे वडेर परिवार सदा से ही धर्म एवं समाज की सेवा मे अमूल्य सेवाएँ देता रहा है। श्रीमान् रिखवचन्दजी वडेर के पिता स्व० जौहरी श्री मागीलालजी वडेर भी एक श्रावक रत्न थे। आप व्यापार के क्षेत्र मे नीलम (जवाहरात) के प्रसिद्ध पारखी एव व्यापारी थे।

आपका हृदय वहुत ही उदार तथा दया पूर्ण था। जो भी आपके पास भावना लेकर आया वह खाली हाथ नहीं लौटा। आपका साहस और धैर्य तो वडा प्रशसनीय था। जव आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री चम्पालालजी तथा मध्यम पुत्र श्री मुन्नालालजी का स्वर्गवास हुआ तो आपने उनको अन्तिम समय मे धर्म सहयोग कराने मे अद्भुत साहस का परिचय दिया। सन्तो को वुलाकर मृत्युशय्या पर पडे पुत्रो को यावज्जीवन सथारा कराकर उनका जीवन सार्थक कराया यह वडे ही आदर्श की वात है। इस प्रकार आपके जीवन-व्यवहार मे धर्म और त्याग भावना पग-पग पर साकार थी। आप जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के प्रति वडी ही श्रद्धा भावना रखते थे। गुरुदेव श्री की भी आप पर तथा आपके परिवार पर असीम कृपा थी। आपने विक्रम सवत् १९९३ आसोज सुदि पचमी को ५६ वर्ष की आयु मे शान्तिपूर्वक सथारा करके देह-त्याग किया।

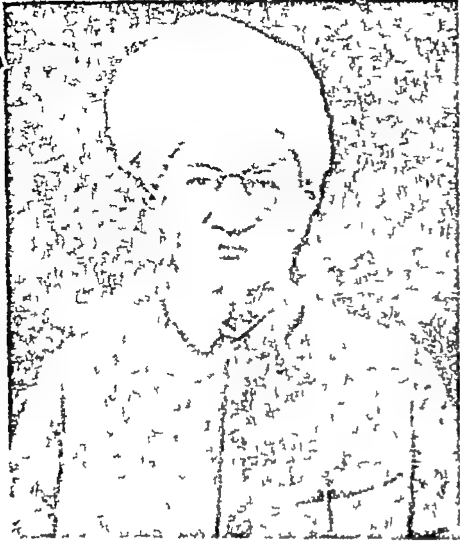


तपस्विनी श्रीमती मीनादेवी, वडेर

धर्मनिष्ठ उदारचेता श्रीमान् रिखवचन्दजी वडेर की धर्मपत्नी सौ० मीना देवी जी वहुत धार्मिक सस्कार सम्पन्न, तपस्या एव दान-धर्म मे विशेष रुचि वाली महिला रत्न हैं। आपने अपने स्व० स्वसुर श्रीमान् मागीलालजी वडेर एवं सास स्व० श्रीमती विनय कंवर जी की काफी सेवा की। धर्म एव समाज सेवा के प्रत्येक कार्य मे आप उदारतापूर्वक सहयोग देती रहती हैं। श्रीमान् रिखवचन्दजी साहव भी आपकी धार्मिक प्रवृत्तियो को सदा प्रोत्साहन देते रहते हैं।

आपने अनेक तपस्याएँ की हैं। मुख्यत १ से १५ उपवास तक की लडी। ४ अठाई ६ वर्षी तप, एक मास का आयविलतप किया है। इस वर्ष (१९७८) श्री केवल मुनि जी महाराज के चातुर्मास मे आपने मासखमण तप किया है। आप शरीर से अवश्य दुर्वल हैं पर आत्म-वल वहुत प्रखर हैं। आपके दो सुपुत्र—श्री महेन्द्रकुमार व श्री राजेन्द्रकुमार तथा—दो पुत्रियाँ—श्रीमती पवन कुमारी तथा श्रीमती फूल कुमारी हैं। सभी परिवार वडा ही धर्मप्रेमी, उदार हृदय और समाज सेवा मे अग्रणी है। श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ में आपने अच्छा सहयोग किया है।

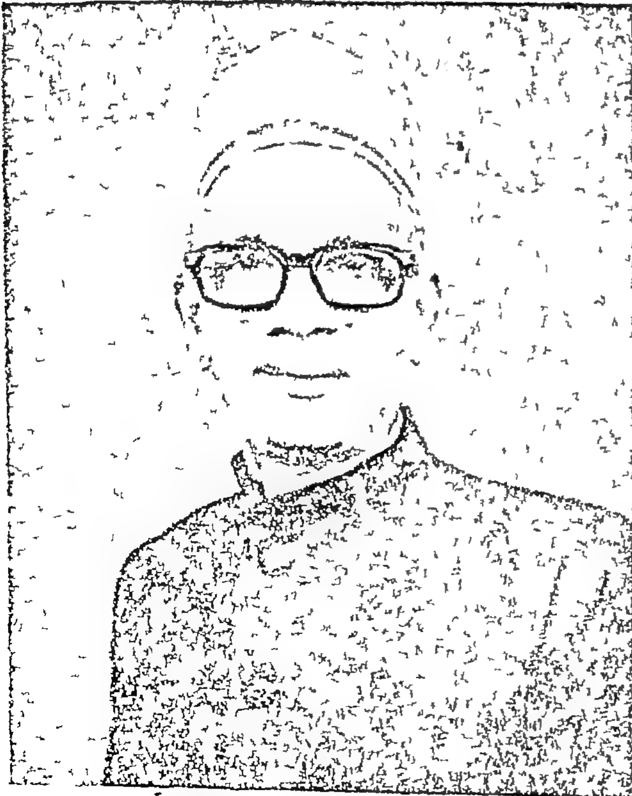
सहयोगी सज्जन



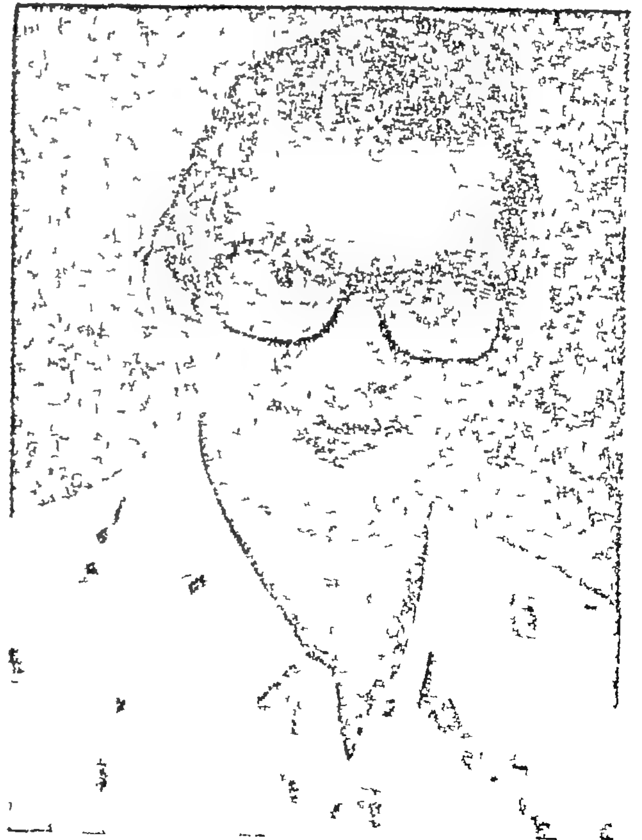
स्व० सेठ स्वरूपचन्द जी तालेरा, ब्यावर



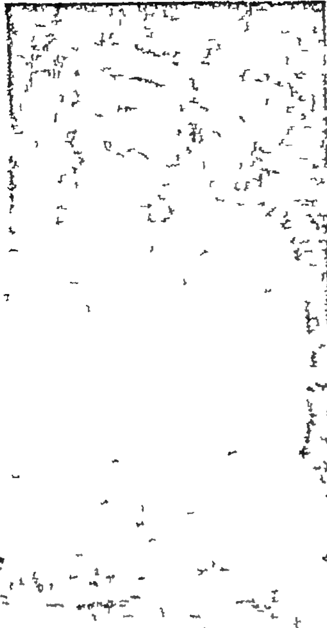
श्री लक्ष्मीचन्द जी तालेरा, ब्यावर



श्री कवरलाल जी बेताला, गोहाटी



श्री धर्मचन्द जी बेताला



स्व० श्री मागीलाल जी वडेर, देहली

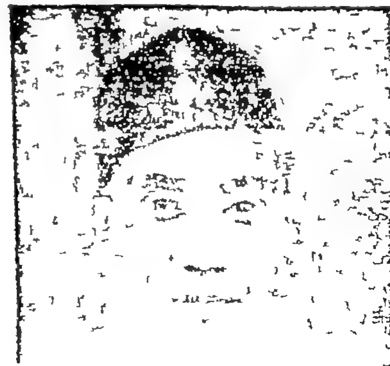


सौ० श्रीमती मीनादेवी वडेर, देहली

सहयोगी सज्जन



सेठ कानूनसिंह जी मुणोत, ब्यावर



श्री कचरमल जी चौपडा, जावद



सेठ कालूसिंह जी मुणोत, ब्यावर

श्रीमान् सेठ कालूसिहजी मुणोत ब्यावर के प्रमुख सर्राफो मे से एक है। आपका परिवार मूलत किशनगढ का निवासी है। आप स० १९८४ मे ब्यावर आये और यहाँ अपना सर्राफा का व्यवसाय बढाया। आपके तीन पुत्र श्री केशरसिहजी, श्री सुमेरसिहजी, श्री चांदसिहजी है और पुत्री सुश्री प्रह्लाद कवर जिनका विवाह पाली हुआ है।

आपश्री ने समय-समय पर समाज-सेवा मे भी धन का सदुपयोग किया है। रूपनगढ स्थानक के निर्माण के लिए आपने आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

प्रसिद्ध वक्ता श्री जैन दिवाकर जी महाराज साहब के शताब्दि वर्ष के अवसर पर स्थापित अस्पताल के लिये एव छात्रावास के लिये भी सहायता प्रदान की। श्री दिवाकर जैन लायब्रेरी भवन मे भी अपनी पूजनीया मातु श्री की स्मृति मे एक कमरे का निर्माण करवाया है।



सेठ कचरमल जी चौपड़ा, जावद

जावद (जि० मदसौर) एक अच्छा कस्वा है। यहाँ अनेक धर्मप्रेमी समाजसेवी सज्जन निवास करते हैं। श्रीमान् सेठ कचरमल जी चौपडा यहाँ के अच्छे प्रतिष्ठित श्रावक तथा प्रमुख नागरिक है।

आप स्व० सेठ मगनमलजी चौपडा के सुपुत्र हैं। आपका परिवार सदा से समाज एवं राजकीय कार्यों मे अग्रणी रहा है। श्री चौपडा जी स्वय भी मडी कमेटी, म्युनिसिपल कमेटी के अध्यक्ष तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट आदि पदो पर रहकर सेवा कार्य करते रहे है।

आप स्व० गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिभावना रखते आये है। उनके प्रेरक प्रवचनो से आपके जीवन मे धर्म श्रद्धा विशेष सुदृढ हुई।

आप कई भाई-बन्धुओ का बडा परिवार है। धर्म-ध्यान तथा सामायिक आदि कार्यों मे आपकी विशेष रुचि है। सामाजिक सेवा कार्यों मे सहयोग भी करते रहते हैं। आपका अनाज का व्यवसाय है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ मे आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।



स्व० सेठ छगनमलजो बोरा, स्व० सेठ वस्तीमलजी बोरा

व्यावर निवासी श्रीमान छगनमलजी व वस्तीमलजी वोरा दोनो सगे भाई थे। आप दोनो बन्धुओ मे परस्पर स्नेह एव प्रेम प्रशसनीय था। धार्मिक भावना बडी दृढ थी। स्व० जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म० के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा थी। गुरुदेव की सद्प्रेरणा से आपने व्यापार मे सदा ही प्रामाणिकता और नीतिमत्ता अपनाई और इसी के परिणामस्वरूप रूई एव ऊन के व्यापार मे दूर-दूर तक बहुत प्रसिद्धि भी पाई और सफलता भी। गुरुवर्य के उपदेशो ने आप बन्धुओ मे दानशीलता भी निरन्तर बढती गई और ज्यो-ज्यो दानवृत्ति बढी, व्यापार फला-फूला।

श्रीमान छगनमलजी के एक पुत्र—श्री घीसुलालजी तथा चार पुत्रियां है। श्री वस्तीमलजी के पांच पुत्र है—श्री मिश्रीलालजी, मोतीलालजी, अमरचन्दजी, राजेन्द्रप्रसादजी और लक्ष्मीचन्दजी एव पुत्रियां भी है। दोनो भाइयो का भरा-पूरा परिवार बडा ही धर्मप्रेमी तथा सुसस्कारी है। गुरुदेव श्री जैन दिवाकरजी महाराज के स्मृतिग्रन्थ मे श्रद्धाजलि स्वरूप बोहरा परिवार ने उदार सहयोग प्रदान किया है।



श्रीमती वीरनदेवी पारख, दिल्ली

आप श्रीमान खेमचन्दजी पारख की धर्मपत्नी है। धार्मिक भावना एव तपस्या की विशेष रुचि और दानशीलता आपकी विशेषता है। आपने ८/११/१५ आदि तपस्याएँ की हैं। मासखमण तप और वर्षीतप भी किया है।

श्रीमान खेमचन्दजी भी आपको दान-तप आराधना मे सदा सहयोग देते रहते है। आपकी प्रवृत्ति परोपकार व लोक-हितकारी कार्यों मे विशेष है। ६४ वर्ष की आयु मे भी आप सामाजिक कार्यों मे उत्साह से भाग लेते है। आप श्रीमान स्व० हिम्मतसिंह जी पारख के सुपुत्र है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ में आपका अच्छा सहयोग मिला है।



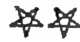
श्रीमान केसरसिहजी खमेसरा व उनकी धर्मपत्नी सौ० पदमबाई उदयपुर

श्री केसरसिह जी ने धर्मप्रेमी स्व० श्रीयुत भूरालालजी सा० खमेसरा की धर्मपत्नी स्व० नाथवाई की कोख से सन् १९१२ मे उदयपुर शहर मे जन्म लिया। विद्याध्ययन के बाद आप रेलवे सेवा मे आये, जहाँ करीब ३८ वर्ष तक स्टेशन मास्टर पद पर उदयपुर, चित्तौडगढ, पालनपुर, कान्डला पोर्ट, ब्यावर, सोजतरोड आदि स्टेशनो पर कार्य करते रहे। सौ० पदमवाई धर्मप्रेमी श्रद्धालु स्व० श्री कस्तूरचन्दजी सा० वोरदिया व स्व० श्रीमती चाँदवाई की सुपुत्री हैं।

इनके दो पुत्र श्री मनोहरसिह इन्जीनियर व श्री नरेन्द्रसिह इन्जीनियर है तथा दो पुत्रियाँ सौ० विमला व सौ० शोभा हैं। जिनकी शादी हो चुकी है। श्री मनोहरसिह जी कानपुर मे सलाहकार हैं व श्री नरेन्द्र सिंह जी मुजफ्फरनगर मे बैंक सेवा मे हैं।

पूरे परिवार को धर्म से बहुत लगाव है व जैन दिवाकरजी महाराज के अनन्य भक्त हैं।

आपने स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन मे उदार सहायता प्रदान की है।



श्रीमान इन्द्रसिहजी बाबेल उदयपुर

उदयपुर निवासी जैन दिवाकरजी महाराज के परम भक्त श्रीयुत मालुमसिह जी बावेल के सुपुत्र श्री तेजसिहजी वावेल के यहाँ ५ मई, १९४३ को आपका जन्म हुआ।

आप बडी धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। शुरू से ही आपका परिवार धर्मरत रहा है, यही कारण है कि आपकी वहिन श्री चन्दनवालाजी जो अब महासती चन्दनवाला जी महाराज हैं १३ वर्ष की लघु अवस्था मे ही विदुषी महासती श्री कमलावती जी के चरणो मे दीक्षित वनी हैं।

आपका वाल्यकाल वडा ही सघर्षपूर्ण स्थिति से गुजरा, किन्तु इन सघर्षों के वावजूद आप वाल्यकाल से ही अत्यधिक परिश्रमी एव मेधावी रहे, हाईस्कूल तक विद्या प्राप्त करने के पश्चात् आपकी नियुक्ति, दी उदयपुर सेण्ट्रल को-आपरेटिव वैंक लि०, उदयपुर मे एक लिपिक के पद पर हुई, अपने सेवा-काल मे ही स्नातक (वी० ए०) की उपाधि प्राप्त की। साथ ही अपने मृदुव्यवहार से अपने समस्त सहकर्मियो का स्नेह अर्जित किया।

समाज मे व्याप्त कुरीतियो के लिए सदा से आप विपक्ष मे रहे हैं।

सप्रति आप मुख्य लेखपाल के पद पर कार्यरत हैं तथा अखिल राजस्थान सहकारी वैंक अधिकारी एसोसियेशन के सयुक्त महामन्त्री भी हैं।

सदा से ही श्री इन्द्रसिहजी वावेल का रुझान सगीत एव पठन-पाठन पर रहा है।

प्रस्तुत प्रकाशन मे आपका अच्छा सहयोग मिला है।

श्रीमान सोहनलालजी भटेवरा, कोशीथल

श्री सोहनलालजी अत्यन्त उदार, मिलनसार, सरल व सरस प्रकृति के धनी हैं। नवयुवक होने पर भी आपमे धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा है। आपमे धार्मिक भावना पैदा करने का श्रेय आपके पूज्य पिता श्री किस्तूरचन्दजी को है। किस्तूरचन्दजी वडे ही प्रतिभासम्पन्न थे। स्वाध्यायशील होने के कारण पर्युषण पर्व के दिनो मे सन्तो के अभाव मे वे स्वय प्रवचन किया करते थे। श्री सोहनलाल जी ने पूज्य पिताजी के नाम पर चार चाँद लगा दिये हैं।

व्यापार के क्षेत्र मे जैसे उन्होंने ख्याति प्राप्त की है वैसी ही ख्याति धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे भी प्राप्त की है। आपकी जन्मस्थली वीरभूमि मेवाड मे कोशीथल की है और आपका व्यवसाय अहमदाबाद मे है।

श्री सोहनलालजी साहव के पाँच भाई थे, जिनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं—श्रीमान् तखतमलजी, श्रीमान् चुनीलालजी, श्रीमान् कुन्दनलालजी, श्रीमान् राजमलजी श्रीमान् सोहन-लालजी।

इन पाँचो भाइयो की जोडी पाडवो के समान थी, उसमे से दो भाई तखतमलजी तथा भाई चुनीलालजी साहव का स्वर्गवास हो गया है। अन्य सभी भाइयो मे भी धार्मिक भावनाएँ व उत्साह अपूर्व है। आपका सम्पूर्ण परिवार धर्मप्रेमी है।



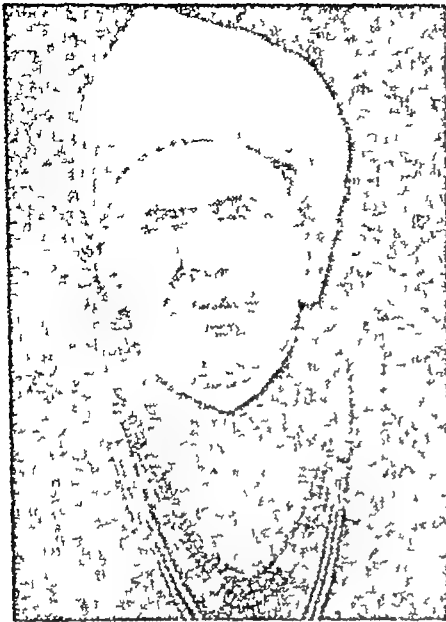
श्रीयुत गोपालचन्दजी चौधरी, अलवर

आप अलवर निवासी स्व० श्रीमान चाँदमलजी चौधरी के सुपुत्र हैं। वचपन से ही आप अच्छे प्रतिभाशाली रहे हैं। निष्ठापूर्वक अध्ययन करते हुए आप अपनी प्रतिभा, लगन और कार्य-कुशलता के कारण सदा प्रगति करते रहे हैं।

आपने उच्च शिक्षा के लिए पिलानी कालेज मे अध्ययन किया। वहाँ से मैकेनिकल इजी-नियरी परीक्षा मे अच्छे अको से उत्तीर्णता प्राप्त की। अभी आप सिमको वेगन फैक्ट्री (भरतपुर) मे ज्वाइट प्रेसिडेन्ट पद पर अपना दायित्व कुशलतापूर्वक निवाह रहे हैं।

आपकी धर्मपत्नी सौ० श्री लाडकुमारी वहुत ही विवेकशील चतुर गृहिणी हैं। धर्मध्यान मे भी विशेष रुचि रखती हैं। आपके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। वे भी आपकी तरह सुसस्कारी और धार्मिक भावना वाले वडे होनहार हैं।

श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी महाराज साहव के प्रति आपके पिताश्रीजी की वड़ी श्रद्धा थी। आप भी श्री केवल मुनिजी महाराज साहव के प्रति वडी भक्ति-भावना रखते हैं। इस ग्रन्थ प्रकाशन मे आपने उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान किया है।



स्व० सेठ छगनमल जी वोरा

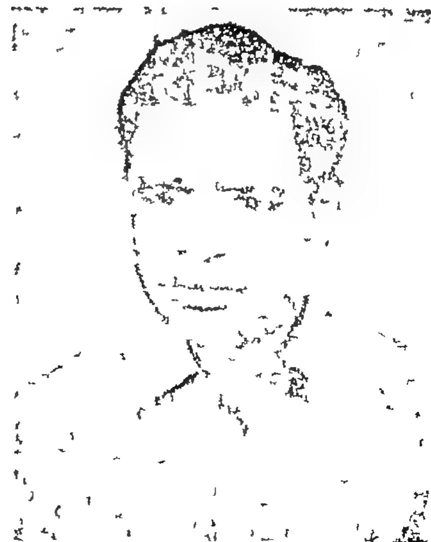


स्व० सेठ वस्तीमल जी वोरा

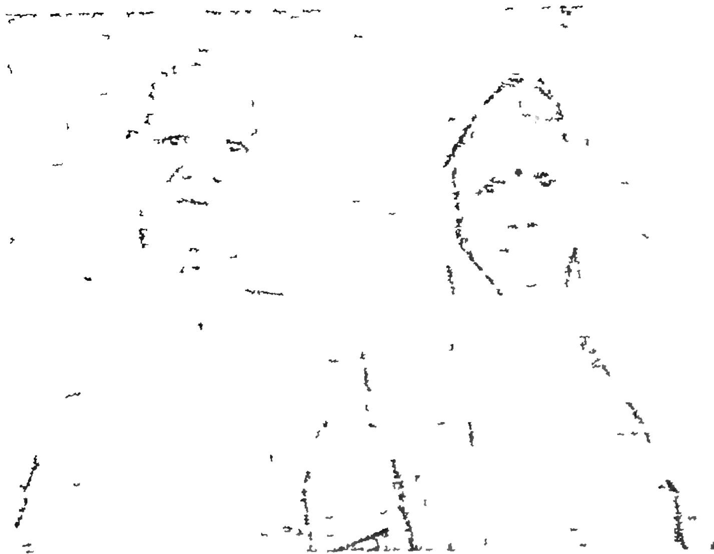
सहयोगी सज्जन



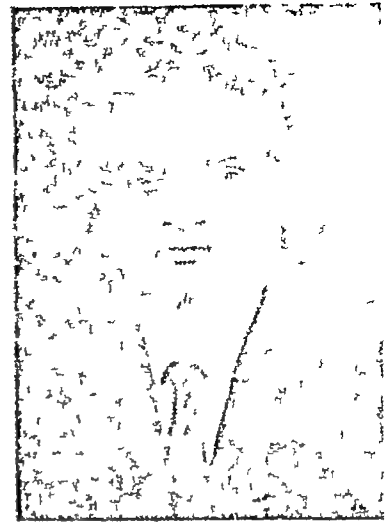
श्रीमती वीरनदेवी पारख,, देहली



श्री इन्द्रसिंह जी बाबेल, उदयपुर



श्री केशरसिंह जी खमेसरा सौ० पदमबाई
उदयपुर

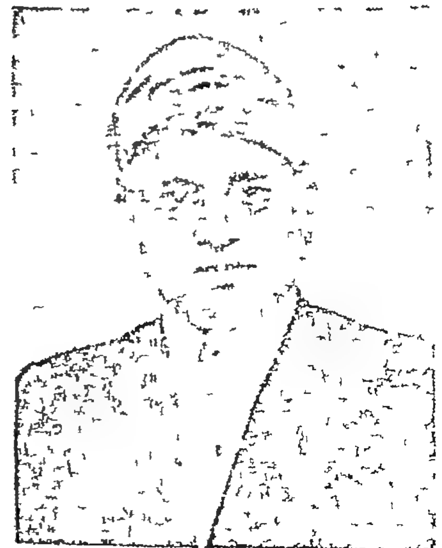


श्री गोपालचन्द जी चौधरी
अलवर

सहयोगी सज्जन



सेठ श्री मदनलाल जी चौरडिया,
सौ० मोहनकवर चौरडिया



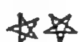
श्री सोहनलाल जी भटेवरा
कोशीथल



श्रीमान सेठ मदनलालजी चोरड़िया, मदनगज

आपका जन्म वि० सं० १६८६ आसोज सुदि ५ को सेठ श्री स्व० नेमीचन्दजी चोरड़िया के घर मे हुआ। सुसंस्कारी परिवार में आपका पालन-पोषण हुआ तथा जीवन विशेष धर्मध्यान, समाजसेवा आदि कार्यों मे लगा।

आपका कपड़े का अच्छा व्यवसाय है। साथ ही लघु उद्योगशाला के अधिकारी भी हैं। आप जिस प्रकार व्यापार मे कुशल हैं, उसी प्रकार जीवन के अभ्युत्थान मे भी सदा जागरूक व कुशल रहे हैं। नियमित धर्मध्यान करना, सामाजिक मस्थाओ को समय-समय पर उदारतापूर्वक सहयोग करना आपकी रुचि का कार्य है। ज्ञान दान, विद्या दान और औषध दान करने में आपको अधिक प्रसन्नता रहती है। साधु-सन्तो की मेवा मे आप हर समय तत्पर रहते हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मोहनकवर बाई भी आपकी भाँति धर्मशीला सस्कारी महिला हैं। श्री जैन दिवाकर स्मृति-ग्रन्थ मे आपने अच्छा महयोग दिया है।



स्व० श्रीमान माणकचन्दजी तातेड़, दिल्ली

आप श्रीमान ला० कल्लूमल जी तातेड के पुत्र थे। आप स्वभाव से बडे ही धार्मिक, उदार और व्यापार मे नीति निष्ठ थे। आपकी धर्मपत्नी श्री शरवतीदेवी भी आपकी तरह ही धर्मशीला और साधु-सन्तो की सेवा करने मे माता की तरह थी। धर्म साधना करना, दान देना, सतो की सेवा करना और सार्धमि भाइयो का वात्सल्य करना—इनमे आपको बडा आनन्द आता था।

श्री जैन दिवाकरजी महाराज के सुशिष्य कवि श्री वशीलालजी महाराज जब देहली मे अस्वस्थ थे तब आपने बड़ी श्रद्धा और विवेक के माथ सेवा का लाभ लिया था।

स्व० श्री माणकचन्दजी के तीन सुपुत्र हैं—१. फूलचन्दजी, २. श्री कमलचन्दजी, ३. श्री ज्ञानचन्दजी। आपकी पुत्रियाँ है सौ० पदमा, सौ० विमला। सभी की धर्मभावना बडी सराहनीय है। सभी का परिवार धार्मिक सस्कारो वाला सुखी तथा सुसस्कारी है।

श्री ज्ञानचन्दजी बहुत ही उदार हृदय, सेवा-भावी तथा उत्साही युवक हैं। श्री माणकचन्दजी के समय से ही आपका गोटे का व्यवसाय चला आ रहा है, पुत्रो ने इस व्यवसाय मे चार चाँद लगाये हैं।



दिनेशकुमार चन्द्रकान्त वैंकर, हैदराबाद

श्री दिनेशभाई चन्द्रकात वैंकर हैदराबाद स्थानकवासी जैन समाज के प्रमुख उत्साही कार्यकता व युवावर्ग के आदर्श प्रेरणा केन्द्र है। अभी ३५ वर्ष की आयु मे भी आपको धार्मिक व सामाजिक कार्यों मे विशेष अभिरुचि है। स्थानीय समाज के प्रत्येक कार्य मे आपका सहयोग मिलता रहता है। समाज के सत्साहित्य प्रचार मे आपको विशेष दिलचस्पी है। समय-समय पर साहित्य प्रकाशन मे आपका उदार सहयोग मिलता रहता है।

आपका हैदराबाद मे अच्छा स्टील व्यवसाय है। भारत स्टील इण्डस्ट्रीज हैदराबाद के आप पार्टनर है।

आपके पिता श्री चन्द्रकात भाई भी बडी सात्विक वृत्ति वाले धर्मप्रेमी उदार श्रावक है। व्यापार एव धर्म दोनो क्षेत्रो मे ही आप यशस्वी है।

प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन मे आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।



स्व० श्री मिश्रीलालजी लोढा, देहली

आप श्रीमान स्व० श्री मोतीलालजी लोढा के सुपुत्र थे। आपको धार्मिक सस्कार तथा समाजसेवा की भावना पैतृक विरासत मे मिली थी। त्यागी साधु सतियो की सेवा तथा दीन-दुखियो की सहायता मे आप सदा अग्रणी रहते थे। चांदनी चौक बारादरी ट्रस्ट के सस्थापको मे से आप एक थे।

आपकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती लक्ष्मीवाई जी भी बडी धार्मिक विचार वाली धर्मशीला श्राविका थी। आपके सुपुत्र श्री हजारीलालजी एव श्री केसरीचन्दजी दोनो ही बडे धर्मप्रेमी तथा जवाहरात व्यापार मे सुदक्ष सुप्रसिद्ध है। समाज-सेवा मे दोनो ही अग्रणी रहते हैं। आपकी तीन सुपुत्रियाँ—श्रीमती मीनादेवीजी, श्रीमती धन्नोदेवीजी तथा सत्यवतीजी भी आपकी भाँति ही धर्मानुरागिणी हैं। श्रीमती मीनादेवीजी (वडेर) ने अभी सितम्बर (१६७८) मे मासखमण तप किया है।

श्रीमान हजारीलालजी एव श्री केसरीचन्दजी ने पूज्य पिताजी की स्मृति एव बहन मीनादेवी जी के मासखमण तपोपलक्ष्य मे स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन मे सहयोग दिया है।



श्री दिनेश कुमार सी० देकर
हैदराबाद

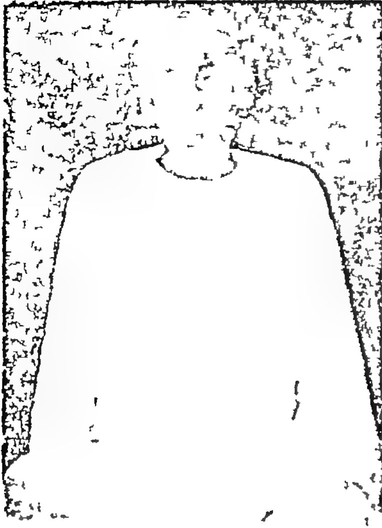


स्व० मिश्रीलाल जी लोढा
दिल्ली

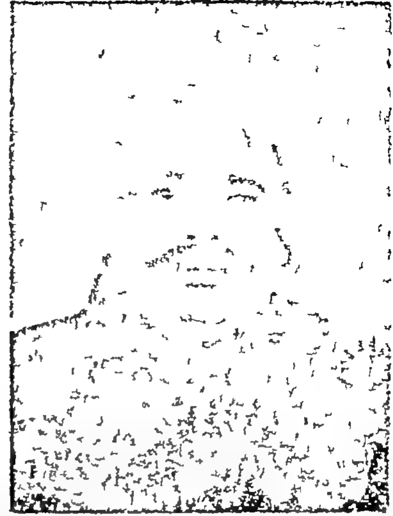
सहयोगी सज्जन



स्व० श्रीमान माणकचन्द जी तातेड एव उनकी
धर्मपत्नी श्रीमती सरवतीदेवी, दिल्ली



स्व० श्रीमान छुट्टनलाल जी तातेड
दिल्ली



श्रीमान भेरु सिंह जी जामड
मदनगज

सहयोगी सज्जन



श्री मोहनलाल जी तातेड, दिल्ली



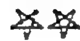
सौ० नगीनादेवी तातेड



मिस्रीमलजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर

दान अगर प्रसन्नतापूर्वक निरभिमान वृत्ति से दिया जाता है तो वह दान विशिष्ट दान कहलाता है। श्री धनराज जी विनायकिया एक ऐसे ही दानशील वृत्ति के सज्जन हैं। जब श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन की चर्चा चली तो आपने अपनी इच्छा से बिना किसी प्रेरणा के सर्वप्रथम अपने उदार सहयोग की घोषणा कर दी और कहा कि स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के असीम उपकारो से वर्तमान समाज को अवगत कराने का यह प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है। आप सदा ही धर्म एव समाजोपयोगी कार्यो मे विनम्रभाव पूर्वक सहयोग करते रहते हैं। दान देकर यश भावना भी नही रखते वे नाम व चित्र छपाने मे भी सकोच करते हैं।

आपका मद्रास तथा ब्यावर मे 'मिसरीमल धनराज विनायकिया'—इसी नाम से अच्छा व्यवसाय है। व्यवसाय मे अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके परिवार मे भी धार्मिक भावना अच्छी है। श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति आपका पूरा परिवार भक्ति व श्रद्धा रखता है।



धर्मप्रेमी छल्लाणी परिवार, ब्यावर

ब्यावर निवासी छल्लाणी परिवार स्थानीय समाज मे प्रत्येक कार्य मे अग्रणी और कार्यशील रहता है। श्रीमान प्रेमराज जी, मोतीलाल जी, पूनमचन्द जी और नौरतनमल जी ये चारो भाई तथा आपका परिवार स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति गहरी श्रद्धाभावना रखता है। आपकी माताजी भी अत्यन्त श्रद्धाशील, धर्मपरायण तथा उदार स्वभाव की है। माता के सस्कार सन्तान मे आते ही हैं, आप चारो भाइयो मे परस्पर प्रेम तथा सहयोग की भावना है और व्यापार तथा सामाजिक कार्यों मे एक-दूसरे के परामर्श तथा विचारो का मान रखते है। ब्यावर के महावीर बाजार मे आपके व्यवसाय की अच्छी धाक है। प्रेम, नीतिमत्ता एव प्रामाणिकता के सहारे आपके व्यवसाय मे बहुत प्रगति तथा उन्नति की है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ के प्रकाशन मे छल्लाणी परिवार ने अच्छा सहयोग किया है।



श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन श्रीसंघ, लोहामण्डी, आगरा

जैनधर्म विभूषण स्व० गुरुदेव श्री रत्नचन्द्र जी महाराज के सदुपदेशों से प्रभावित लोहामण्डी आगरा का श्रीसंघ, सदा से ही धर्म-प्रभावना और समाजसेवा में अग्रणी रहा है। यहाँ पर अनेक वर्षों तक प्रवर्तक श्री पृथ्वीचन्द जी महाराज राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमर मुनि जी आदि का विराजना हुआ। साहित्य, शिक्षा आदि क्षेत्रों में समाज की चहुँमुखी गति-प्रगति होती रही।

श्रीसंघ के रजिस्टर्ड ट्रस्ट के अन्तर्गत दो महाविद्यालय (श्री रतनमुनि जैन गर्ल्स इण्टर कालेज तथा बोयज इण्टर कालेज) दो बाल मन्दिर, पुस्तकालय आदि अनेक शिक्षण संस्थाएँ चल रही हैं। समाज सुधार की दिशा में भी अनेक क्रान्तिकारी कार्यक्रम चलते रहते है

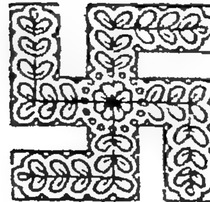
जैन दिवाकर जी महाराज के दो चातुर्मास आगरा लोहामण्डी में हो चुके हैं। लोहामण्डी धर्म-प्रेमियों ने बहुत धर्म का लाभ लिया। श्रीसंघ बहुत धर्मानुरागी है।

वर्तमान मे अध्यक्ष है—श्री जगन्नाथ प्रसाद जी जैन

उपाध्यक्ष—श्री पदमकुमार जी जैन

कोषाध्यक्ष—श्री किशनमुरारी जी जैन

मन्त्री—श्री चन्द्रभान जी जैन





स्व० श्री छुट्टनलाल जी तातेड़, वकील (दिल्ली) की स्मृति में

श्रीमान छुट्टनलाल जी तातेड वडे ही मिलनसार शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे। साधु-सन्तो की सेवा के लिए आपके मन मे विशेष भाव था। श्री जैन दिवाकर जी महाराज के सुशिष्य कवि श्री वशीलाल जी महाराज जो देहली मे रुग्णावस्था मे रहे, आपने उनकी सेवा-औषधि आदि की व्यवस्था मे वहुत ही ध्यान दिया और भक्तिभाव से सेवा की। समाज सेवा मे भी आप सदा अग्रणी रहे। अनेक संस्थाओ के आप पदाधिकारी रहे, उनकी प्रगति मे दिलचस्पी ली और स्वय भी उदारतापूर्वक सहयोग करते रहे। आपके चार पुत्रियाँ व एक पुत्र है। आपके सुपुत्र श्री सोहनलाल जी तातेड भी आपकी तरह समाज सेवा आदि कार्यों मे तथा साधु-सतियो की सेवाभक्ति मे सदा अग्रणी रहते हैं।

श्रीमान मोहनलाल जी तातेड़, दिल्ली

आप स्व० श्री कल्लूमल जी तातेड के सुपुत्र हैं। स्वभाव से वडे सरल, नम्र और मिलनसार हैं। धर्मप्रेम भी अच्छा है। कपडे का अच्छा व्यवसाय है। समाज-सेवा और सार्धमि-सेवा मे उदारतापूर्वक दान देते हैं। आपकी धर्मपत्नी सौ० नगीनादेवी जी तपस्विनी श्राविका हैं।

श्री मोहनलाल जी के पाँच सुपुत्र हैं—

१ श्री विमलचन्द जी, २ नेमचन्द जी, ३ श्री कुशलचन्द जी, ४ महतावचन्द जी, ५ श्री सजय कुमार तथा सुपुत्री है—अजु कुमारी।

श्री नेमचन्द जी अच्छे सुशिक्षित (चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट) है। समाज एव राष्ट्र-सेवा मे सदा आगे रहते हैं। व्यवसाय मे वहुत व्यस्त रहते हुए भी आप धार्मिक कार्यों मे सहयोग करते रहते है। स्वभाव से भी मधुर मिलनसार है। प्रस्तुत स्मृति ग्रन्थ के लिए जन-जन का सहयोग प्राप्त करने मे श्री नेमचन्द जी ने वहुत ही श्रम किया है।

सौ० नगीनादेवी तातेड़, दिल्ली

आप श्रीमान मोहनलाल जी तातेड की धर्मपत्नी है। समाज-सेवा, धर्मध्यान, दान और तपस्या मे सदा अग्रणी रही है। आपने अपने स्वसुर स्व० श्री कल्लूमल जी तातेड एव सास स्व० श्रीमती सुगनकुवर जी की काफी सेवा की व धर्म-ध्यान का सहयोग दिया। आपने १ से लेकर ११ उपवास तक की लडी की है। वर्ष १६७८ मे कविरत्न श्री केवलमुनि जी महाराज के चातुर्मास मे कविश्री जी की प्रेरणा से आपने मासखमण की तपस्या वडे ही आत्मवल और उत्साह के साथ की। समय-समय पर आप अनेक प्रकार के तप-त्याग करती रहती हैं।

मासखमण तप की खुशी मे जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ मे आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, ताल

जिला उदयपुर के अन्तर्गत 'ताल' वडा ही सौभाग्यशाली गाँव रहा है। इस गाँव ने अनेक श्रमण रत्न प्रदान किये हैं, जैसे—तपस्वी श्री मयाचन्द जी महाराज जिन्होंने स्व० गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के सानिध्य मे वडी-वडी आश्चर्यकारक तपस्याएँ की। १ से ४१ तक की लडी भी की। तपस्वी श्री नेमीचन्द जी महाराज भी वडे ही तपस्वी और त्यागी थे। आपने ५४ दिन तक की तपस्याएँ की। वडे ही गुणवान श्रमण थे। स्वाध्यायी श्री इन्द्रमल जी महाराज जो कई वर्षों से रतलाम मे विराजमान हैं, आपने भी इसी ताल को अपने जन्म से कृतार्थ किया है।

ताल श्री सघ ने श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन मे उदार सहयोग किया है।



श्रीमान भैरुसिंहजी जामड, मदनगंज

आप धार्मिक प्रवृत्ति के उदार और परोपकारी सज्जन है। मदनगज के जैन समाज मे तथा व्यापारिक क्षेत्र मे आपका अच्छा स्थान है। धर्म एव समाज सेवा के क्षेत्र मे आपका अच्छा स्थान है। धर्म एव समाज-सेवा के क्षेत्र मे आप सदा सहयोग देते रहते हैं। आपका जन्म वि. स १९८७ मे श्रीमान पृथ्वीराज जी जामड के घर श्रीमती धापूबाई की कुक्षि से हुआ। आप चार भाई व दो बहिनें है। सभी सुखी सम्पन्न व सुसंस्कारी हैं।

श्रीयुत गुलाबचन्द जी जैन, दिल्ली

आपश्री जैन दिवाकर जी महाराज के अनन्य भक्तो मे से एक है। जब श्री दिवाकर जी महाराज का दिल्ली मे चातुर्मास हुआ तब आपने बडी श्रद्धा और तत्परता के साथ उनकी सेवा की थी। आपकी कार्यक्षमता देखकर स्व० उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज ने जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम तथा जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम का कार्यभार संभालने की प्रेरणा दी। उनकी कृपा से आपने यह कार्य सुचारु रूप से चलाया। तथा श्री गुरुदेव के प्रवचन-श्रवण तथा सान्निध्य का भी काफी सुअवसर आया।

आप देहली निवासी स्व० श्री मिलापचन्दजी पारख के सुपुत्र है। अच्छे सुशिक्षित हैं तथा सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियो मे रुचि रखते हैं। देहली में भी आप प्रेस व्यवसाय मे सलग्न हैं। आप वेदवाडे मे जैन दिवाकर प्रिंटिंग प्रेस के मालिक हैं।

सेठ चाँदमल जी कोठारी, ब्यावर

श्रीमान चांदमल जी कोठारी स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के बहुत पहले से ही भक्त रहे हैं। जब कभी भी धर्म एव समाज सेवा का कार्य सामने आया, आपने प्रसन्नतापूर्वक उसमे सहयोग किया।

बम्बई, त्रिचनापल्ली तथा ब्यावर मे आपका व्यवसाय है। सन्तो की सेवा तथा धर्म प्रभावना में आप सदा अग्रणी रहते हैं। भाइयो मे एक-दूसरे के प्रति प्रेम और स्नेह सराहनीय है।

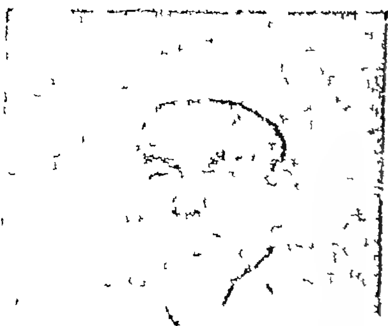
श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन में आपने उदार सहयोग प्रदान किया है।

सेठ हरकचन्द जी बेताला, इन्दौर

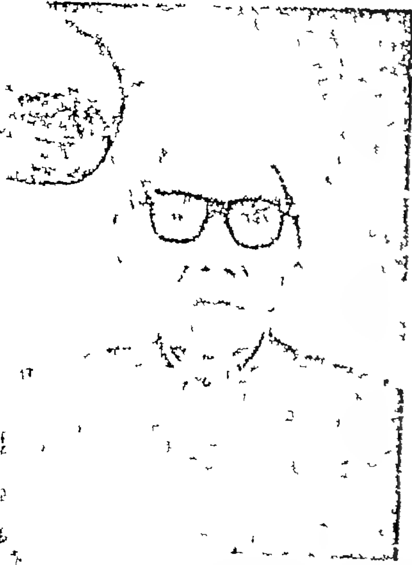
आपकी जन्म-भूमि डेह (जिला नागौर, राजस्थान) है। प्रारम्भ से ही धार्मिक रुचि रही। व्यवसाय मे बडे दक्ष हैं। आपका इन्दौर व कानपुर मे दाल मिल है। सरल तथा मिलनसार स्वभाव के हैं। समय-समय पर सामाजिक व धार्मिक कार्यो मे दान करते रहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी बहुत तपस्या करती हैं। ८।१०।११।१५ आदि की बडी तपस्याएँ भी की हैं। साधु-सन्तो की सेवा तथा त्याग प्रत्याख्यान करती रहती हैं। आपके आठ सुपुत्र हैं—श्री रतनचन्द जी, मिश्रीलाल जी, सागरमल जी, सम्पतराज जी, उगमचन्द जी, प्रसन्नचन्द जी (डाक्टर), कैलाश-चन्द जी (C A) व सन्तोष कुमार जी। सभी परिवार बडा सस्कारी व धर्मप्रेमी है। श्री सागरमल जी को धर्मध्यान की विशेष भावना व उत्साह है।

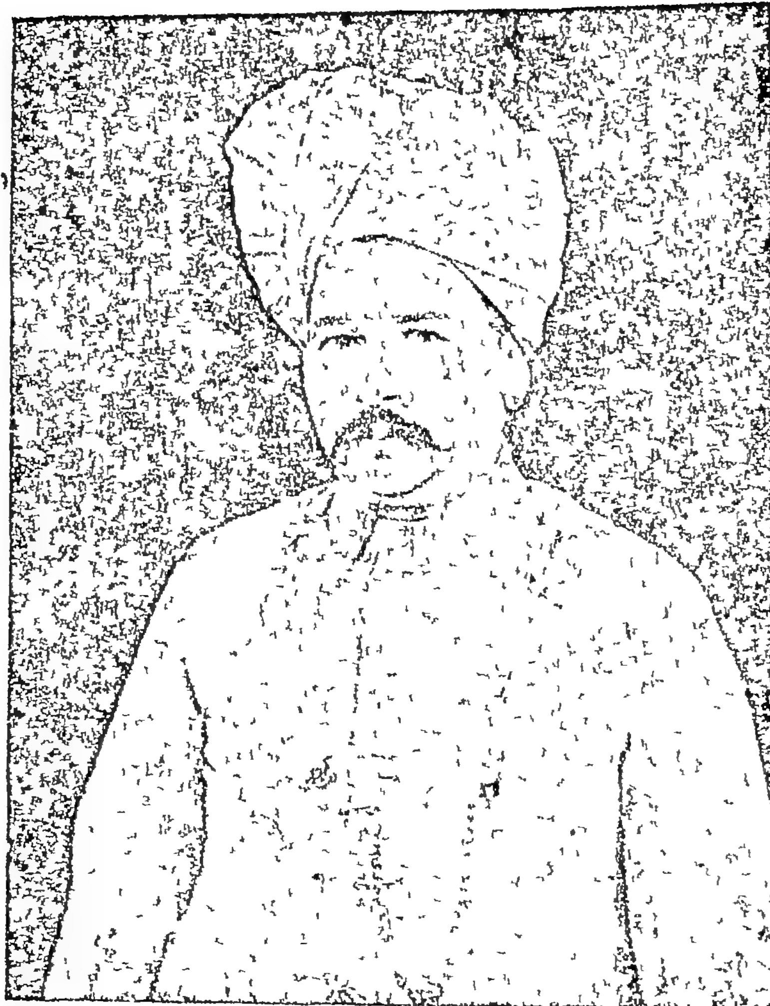
सहयोगी सज्जन



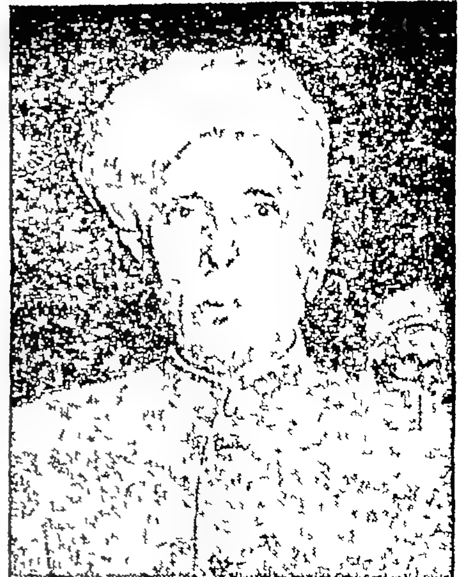
श्री गुलावचन्द जी जैन
दिल्ली



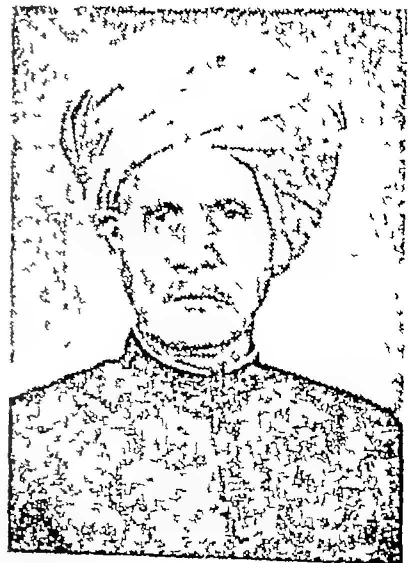
श्री चादमल जी कोठारी, ब्यावर



श्री देवराज जी सुराना, ब्यावर



श्री हरकचन्द जी वेताला, इन्दौर

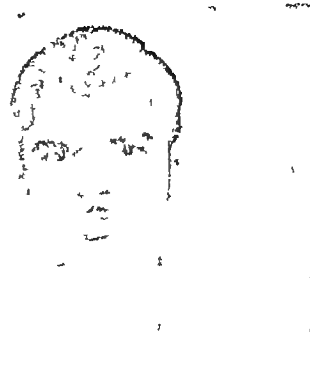


सेठ श्री अभयराज जी नाहर, ब्यावर

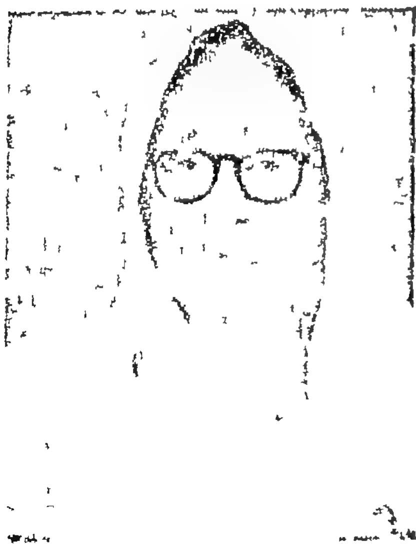
सहयोगी सज्जन



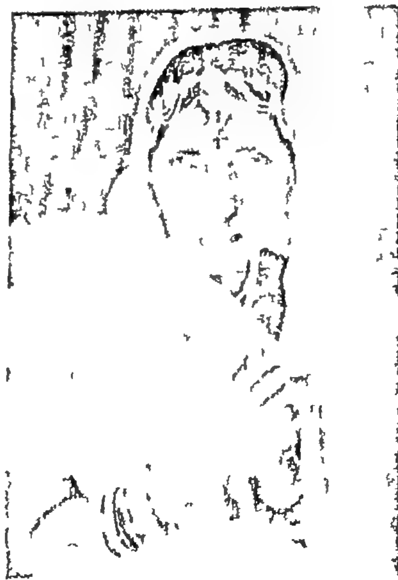
श्री भूरचन्द जी बाफना, तिरुकोइलूर



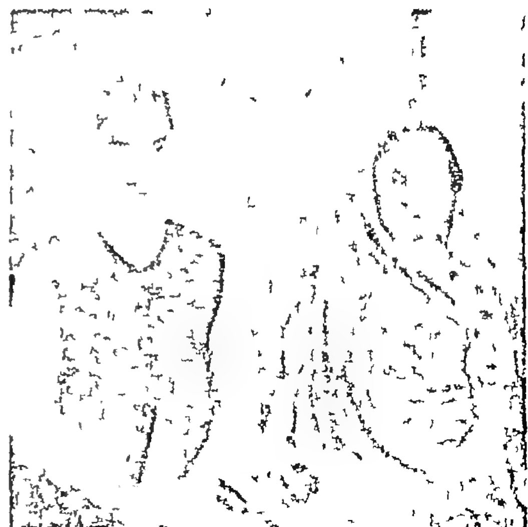
श्री मीठालाल जी बाफना



श्रीमती प्रेमवती पारख
दिल्ली



श्रीमती प्रेमलता तातेड
दिल्ली



श्री गोपालचन्द जी तातेड एवं
श्रीमती इन्द्रादेवी



श्रीमान रतनलाल जी चतर, ब्यावर

श्रीमान रतनलाल जी चतर ब्यावर के एक प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं। आपमे धार्मिक भावना के साथ समाज सेवा की भावना भी प्रबल है। आप बडे ही सरलमना देवगुरुभक्त मिलनसार व्यक्ति हैं।

आपके पिताजी श्री विजयलाल जी चतर एव माताजी श्रीमती नजरबाई थे। वि० स० १९८८ पोषसुदि ७ पडागा (अजमेर) मे आपका जन्म हुआ। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती उमराव कवर बाई आपकी भाँति ही सेवापरायण धर्मशीला महिला है। आपके पुत्र हैं—श्री पारसमल जी तथा राजेन्द्र कुमार जी। तीन पुत्रियाँ हैं—श्रीमती सज्जन कवर, उषा तथा ममता। ब्यावर तथा जयपुर मे आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान है। स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति आपकी बडी श्रद्धा रही है।

सेठ श्री देवराज जी सुराना, ब्यावर

आप ब्यावर के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे। आपका पूरा परिवार बडा ही सस्कारी व धर्मप्रेमी है। स्व० श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी।

श्रीमान सरदारमल जी संचेती, जोधपुर

जोधपुर का सचेती परिवार श्री जैन दिवाकर जी महाराज के प्रति सदा से ही भक्ति भाव तथा अनन्य श्रद्धा रखता है। कहावत है—जैसे-जैसे जल बरसता है, वनराजि फलती-फूलती है, इसी प्रकार जैसे धर्म-भावना बढती है, मनुष्य की ऋद्धि-समृद्धि फलती-फूलती रहती है। सचेती परिवार के सम्बन्ध मे यह उक्ति चरितार्थ होती है।

श्रीयुत सरदारमल जी सचेती, सचेती परिवार के रत्न हैं। जोधपुर मे आपका वस्त्र व्यवसाय है। अपनी कार्यकुशलता तथा प्रामाणिकता के कारण आपने व्यवसाय मे उन्नति की तथा समाज मे भी प्रतिष्ठा प्राप्त की। आप समय-समय पर सामाजिक एव धार्मिक कार्यो मे सहयोग करते रहते हैं।

सेठ श्री अभयराज जी नाहर, ब्यावर

अटूट गुरुभक्ति और सच्चे कर्मयोगी का स्वरूप समझना हो तो श्री अभयराज जी नाहर का जीवन देखना चाहिए।

आप जेठाना निवासी श्रीमान कनकमल जी नाहर एव श्रीमती गोरीबाई के सुपुत्र हैं। १६ वर्ष की आयु मे ब्यावर आने पर आपने स्व० गुरुदेव श्री जैन दिवाकर जी महाराज के दर्शन किये। दर्शन मात्र से ही हृदय मे धार्मिक सस्कार जाग उठे। सामायिक सीखी और गुरुदेव की सेवा व धर्म-साधना के क्षेत्र मे बढे। व्यापार से भी अधिक आपको साधु-सन्तो की सेवा व सामाजिक कार्यो मे रुचि रही। आप बडे ही सरल, निष्ठावान, प्रामाणिक और सतत कार्यशील वृत्ति के हैं। अनेक वर्षो से श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय का भार सभाल रखा है। उसमे काफी प्रगति भी हुई है। श्री जैन दिवाकर लाइब्रेरी, उपाध्याय श्री प्यारचन्द जी आयम्बिल खाता एव छात्रावास के आप सचालक हैं। श्री मगन मुनि ज्ञान-प्रचार समिति व साधर्मि सहायता फण्ड के द्वारा आप समाज के भाई-बहनो की सेवा करते रहते हैं।



श्रीमान सूरजभान जी जैन, हांसीवाले

आप हासी के प्रसिद्ध श्रावक श्रीमान मुन्नालाल जी जैन के सुपुत्र हैं। बडे ही सरल स्वभाव के उदार हृदय सज्जन हैं। गरीब-असहाय व्यक्तियो की सेवा के लिए आप सदा कुछ न कुछ करते रहते हैं। प्रतिमास अपनी आय मे से कुछ अश गरीब असहायो की सेवा मे तथा गुप्तदान मे खर्च करते हैं। अपनी जन्मभूमि हासी मे भी अस्पताल मे बीमारो को बाटने के लिए प्रतिमास दवाइया भी भेजते रहते हैं।

श्री सूरजभान जी के सुपुत्र श्री प्रेमचन्दजी भी बडे धर्मप्रेमी उत्साही है। आप देहली (चांदनी चौक) मे कपडे का व्यापार करते हैं। ✡

श्रीमती प्रेमवती पारख, दिल्ली

दानवीर समाजसेवी श्रीमान रतनलालजी पारख देहली के स्थानकवासी जैन समाज के एक सुप्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आप बडे ही धार्मिक, शिक्षाप्रेमी तथा उदार हृदय थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमवती पारख भी आपकी भाँति ही धार्मिक, उदार हृदया और सरल स्वभाव की हैं। दान-क्षमा आदि कार्यों मे विशेष रुचि रखती हैं। आपने अठाई तप तक तपश्चरण भी किया है। अपनी सन्तानो मे धार्मिक सस्कार भरने मे भी आप बडी निपुण सिद्ध हुई हैं। आपके सुपुत्र—श्री महतावचन्द जी व्यवसाय करते हैं, तथा श्री सितावचन्द जी डाक्टर हैं। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों मे सदा सहयोग करते रहते हैं।

श्री प्रेमवती जी ने स्व० श्रीमान रतनलाल जी की स्मृति मे प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशन मे सहयोग दिया है। ✡

सौ० श्रीमती प्रेमलता तातेड़, दिल्ली

आप श्रीमान चन्दनमलजी तातेड की धर्मपत्नी हैं। तथा देहली के प्रसिद्ध श्रावक श्रीमान गोपालचन्द जी तातेड की पुत्रवधू हैं। श्रीमान चन्दनमल जी बडे ही उत्साही समाज सेवी और उदार हृदय हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमलता बहन अभी ३३ वर्ष की आयु होते हुए भी बडी धर्मात्मा और तपस्या मे विशेष रुचि रखती हैं। इस वर्ष आपका मासखमण (३१ दिन का उपवास) करने का विचार था। आप बम्बई गई, वहाँ तपस्या प्रारम्भ भी कर दी, पर अचानक आपको पारणा करना पडा। देहली आकर पुन: तपस्या की। ४ नवम्बर को मासखमण का पारणा हुआ।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ मे आपने अच्छा सहयोग दिया है। ✡

श्रीमान गोपालचन्द जी तातेड़, दिल्ली

आप स्व० श्रीमान कल्लूमल जी तातेड के सुपुत्र हैं। आप बडे ही धर्मज्ञ, कष्ट-सहिष्णु और साधु-सन्तो की सेवा करने वाले श्रावक हैं। आपकी धर्मपत्नी सौ० इन्द्रादेवी भी बडी धर्मात्मा, तपस्यानुरागिणी है। आप बीमारी मे भी धर्म-ध्यान, त्याग-प्रत्याख्यान करके मन को धर्म मे लगाये रखते है तथा वेदना को बडे समभावपूर्वक सहन करते हैं। तपस्वीरत्न खादीधारी श्री गणेशमल जी महाराज के चरणो मे आपकी अत्यन्त भक्ति थी।

सौ० इन्द्रादेवी जी ने वर्षीतप, एकान्तर तप, आदि तपस्याएँ की हैं। आपके तीन सुपुत्र हैं—श्री खूबचन्द जी, श्री चन्दनमल जी तथा श्री सन्तोषचन्द जी और दो सुपुत्रियां हैं—सौ० विद्यादेवी सौ० सरलादेवी। देहली मे आपका वस्त्र व्यवसाय है। समय-समय पर समाज सेवा भी करते रहते हैं। ✡



सेठ श्री भूरचन्द जी मीठालाल जी बाफना, तिरुकोइलूर

सेठ श्री भूरचदजी बाफना राजस्थान मे आगेवा (मारवाड) के निवासी हैं। अभी आप तिरुकोइलुर नगर (तामिलनाडु) मे व्यवसाय करते हैं। आप उदार हृदय वाले धर्मप्रेमी, सतो के भक्त और श्रद्धालु सज्जन हैं। सामाजिक एव धार्मिक कार्यों मे बडी दिलचस्पी रखते है।

आपके सुपुत्र श्री मीठालालजी बडे ही उत्साही और धर्म कार्यों मे रस लेने वाले युवक है। श्री रमेशकुमार और आनन्दकुमार दोनो वालक (श्री भूरचन्दजी के पौत्र) आपके पुत्र, है जो छोटी आयु मे ही बडे सस्कारी और सत प्रेमी है। आपकी पोती विजय कुमारी भी सस्कारी है। बालको की माताजी भी अच्छे गुणो वाली है। ✡

श्रीमान रतनलाल जी मारु, मदनगंज

उदार हृदय श्री रतनलालजी मारु का जन्म वि० स० १६८० मिगसर वदि १३ नरवर ग्राम मे श्री भवरलाल जी मारू के घर पर हुआ। आपकी माताजी श्रीमती गोपीदेवी भी बडी धार्मिक विचारो वाली सरलता व सादगी वाली महिला थी।

श्री रतनलाल जी की दान मे विशेष रुचि है। सेवा, शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रो मे आप धन का सदुपयोग करते रहते हैं। स्वभाव से अत्यन्त सरल, सादगी पूर्ण जीवन और धार्मिक प्रवृत्तियो मे रुचिशील श्री मारु जी स्थानीय जैन समाज के विशिष्ट व्यक्ति है। आपका बीडी का व्यवसाय है। आप तीन भाई तथा तीन बहनें हैं। सभी गुरुदेवश्री के भक्त हैं। ✡

श्रीमान छगनलाल जी गोठी, मद्रास

मौन भाव से समाज सेवा करना तथा जीवन को सादा धर्म मय बनाये रखना—यही उद्देश्य है श्री छगनलाल जी गोठी के जीवन का।

आपके पिताजी श्री बालचन्दजी गोठी भी बडे ही धार्मिक व सुसस्कारी थे। आप तीन भाई हैं जिनमे द्वितीय क्रम आपका है। आपने कुछ वर्षों तक जयपुर मे जवाहरात का व्यवसाय किया। फिर करीब १२ वर्ष तक वर्मा के रगून शहर मे जवाहरात का व्यापार किया और अच्छी सफलता प्राप्त की। अभी काफी समय से साहूकार पेठ (मद्रास शहर) मे 'शाति डायमंड' नाम से आपका जवाहरात का अच्छा व्यवसाय है।

आप स्वभाव से बडे ही सरल, विनम्र और मिलनसार है। साधु-सन्तो के प्रति अच्छा प्रेम व भक्ति रखते हैं। समाज के कार्यों मे समय-समय पर उदारमन से सहयोग करते हैं।

कविरत्न श्री केवल मुनिजी महाराज के प्रति आपकी विशेष भक्ति-भावना है। ✡

स्व० सेठ तेजमलजी पुसालाल जी रुणवाल, बीजापुर

स्व० श्रीमान तेजमल जी रुणवाल का जन्म २०-१-१६०३ को हुआ। आप बडे ही धर्म-प्रेमी, सादगीप्रिय तथा साधु-सन्तो के भक्त थे। धार्मिक सामाजिक कार्यों मे उत्साह रखते थे। दिनाक २१-१-१६७४ को आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मावाई तेजमल जी बडी धर्मशीला, सरल स्वभावी हैं। आपकी सरलता-उदारता व प्रेम-भावना के कारण इतना बडा परिवार आज भी प्रेम व स्नेह के सूत्र में बँधा हुआ एक आदर्श परिवार बना हुआ है।

श्रीमान तेजमल जी के क्रमश पाच पुत्र हैं—

(१) श्री खेमचन्द जी, (२) उदेराज जी (३) अमृतलाल जी, (४) गणपतलालजी, (५) जवाहरलाल जी। तीन पुत्रिया हैं जिनका विवाह हो गया है। सभी सुखी है। सब मे धर्म की लागणी अच्छी है तथा मानव-प्रेम एव व्यवहार शुद्धि की तरफ विशेष भावना रखते हैं। ✡



श्रीमान श्रीकिशनचन्द जी तातेड़, दिल्ली

श्रीमान किशनचन्द जी तातेड देहली निवासी श्रीमान स्व० कल्लूमल जी तातेड के सुपुत्र हैं। आप बडे ही शात-स्वभाव के सरलात्मा है।

साधु-सन्तो की विशेष सेवा करते रहते है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती नगीनादेवी भी आपकी भाँति सरल हृदया धर्मशीला महिला है। आपने तेले, चोले व अठाई आदि तपस्याएँ की है। आजकल प्रतिमाह चार आयम्बिल करते हैं।

आपके चार पुत्र हैं—श्री विजयकुमारजी, निर्मलकुमार जी धर्मचन्दजी एव अजयकुमारजी। सभी सुयोग्य तथा सुसस्कारी हैं।

निर्मल कुमार जी तातेड़

श्री किशनचन्दजी तातेड के सपुत्र श्री निर्मलकुमार जी तातेड एक समाज-सेवी एव धर्म-प्रेमी उत्साही नवयुवक है। आप चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट हैं और दिल्ली मे अपना व्यवसाय करते हैं। आपका काफी समाजसेवी सस्थाओ से सम्बन्ध है। आप अपने माता-पिता की भाँति साधु-सन्तो की काफी सेवा करते रहते हैं।

स्व० श्री किशनचन्द जी चौरड़िया, देहली

देहली के श्रावक शिरोमणी लाला किशनचन्द जी चौरड़िया का जीवन सरलता की अनुपम मिसाल रहा है। आप लाला कपूरचन्द जी चौरडिया जोकि चाँदनी चौक विरादरी के अनेक वर्षो तक प्रधान रहे, के एकमात्र पुत्र थे। अपने पिता की भाँति धर्माचरण मे सदैव आगे रहे। व्यापार मे प्रामाणिक व अनेको को सहारा देने वाले थे। स्वयं बहुत सादगी मे रहते थे, किन्तु दानशीलता मे अग्रगण्य थे। हर वर्ष सन्त गणो के दर्शनार्थ सपरिवार यात्रा पर जाते थे। साधु-सन्तो की सेवा का लाभ लेने मे कभी पीछे न रहे। जैन दिवाकर जी महाराज साहब के अनन्य भक्तो मे से थे। हर सप्ताह व्रत आयबिल आदि तपस्या भी बराबर करते थे।

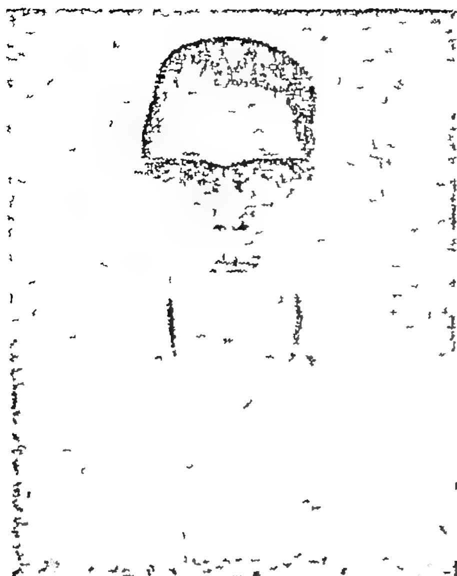
आपके पुत्र श्री महतावचन्द चौरडिया, पुत्री श्रीमती विजयकुमारी भी उसी प्रकार धर्माचरण, तप सयम की प्रवृत्तियो व दानशीलता मे अग्रगण्य है।

श्रीमती नगीना देवी चौरड़िया

आप स्व० लाला किशनचन्दजी चौरडिया की धर्मपत्नी व समाज की अग्रगण्य नेताओ मे से हैं। जैन साहित्य व आगमो का ज्ञान अनुकरणीय है। आपको धार्मिक संस्कार माता की गोद से ही मिले। आपकी माता श्रीमती फूलमती जी (धर्मपत्नी लाला बन्नोमल जी सुजंती जौहरी) ने युवावस्था मे ही भागवती दीक्षा धारण करली थी और लगभग अर्धशताब्दि तक सयम जीवन का पालन किया। देहली मे ही अनेक वर्षो स्थिरावास रहा। धर्मवीर माता के सान्निध्य मे उनकी शूरवीर पुत्री ने यहाँ समाज की सेवा की है। अनेक वर्षो तक आप एस० एस० जैन महिला संगठन सभा की सचिव व प्रधान रही। उन दिनो ही धार्मिक प्रवृत्तियो के प्रचार व प्रसार के लिए आप तत्कालीन राजनेताओ राष्ट्रपति स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद जी व प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू जी से मिलती रही है।

श्री दिवाकर जी महाराज साहब की आप अनन्य भक्तो मे से रही हैं। ज्ञान भी उन्हीं से प्राप्त किया।

आपके ज्ञान व अनुभव का सहयोग समाज को बराबर मिलता रहे यही कामना है।



श्री रतनलाल जी मारू, मदनगज

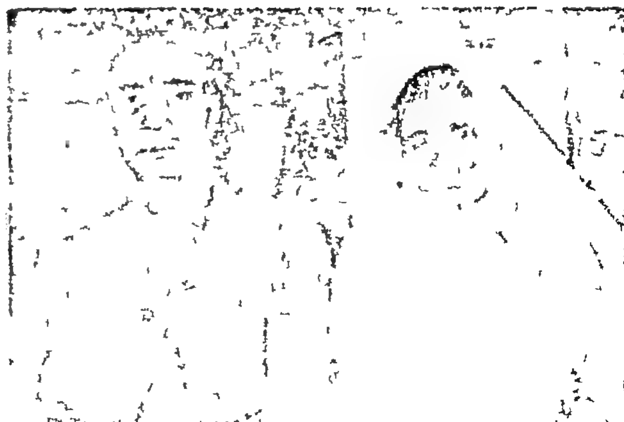


श्री छगनलाल जी गोठी, मद्रास

सहयोगी सज्जन



श्री निर्मलकुमार जी तातेड
दिल्ली



श्री किशनचन्द जी तातेड एव उनकी धर्मपत्नी
सौ० नगीनादेवी, दिल्ली



श्रीमती वसन्तीदेवी नाहर, दिल्ली

आप स्व० श्री मगलचन्द जी नाहर की धर्मपत्नी है। स्वभाव मे वडी शात और धार्मिक है। स्वास्थ्य अच्छा नही रहते हुए भी तपस्या तथा धर्मध्यान मे अच्छी रुचि रखती है। अठाई तक तपस्या भी कर चुकी है।

आपके तीन सुपुत्र है—श्री पूनमचन्द जी, श्री प्रीतमचन्द जी और श्री पदमचन्द जी। तीनो ही अच्छे स्वभाव के सामाजिक भावना वाले हैं। जवाहरात का व्यवसाय करते हैं तथा समाज सेवा मे सदा हाथ बँटाते है।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन मे आपने अपने स्वर्गीय पति श्री मंगलचन्द जी की पुण्य स्मृति मे सहयोग प्रदान किया है।

श्री कस्तूरचन्द जी लोढा, दिल्ली

आप वडे ही उदार हृदय, समाज सेवी प्रतिष्ठित जौहरी हैं। समाज के कार्यो मे सदा दिल खोलकर सहयोग देते है।

आपके सुपुत्र श्री रघुवीर सिंह जी लोढा है, जो स्वय भी जवाहरात का व्यवसाय करते हैं तथा उदार हृदय है। राम और श्याम आपके दो पौत्र हैं, दोनो ही वडे होनहार और प्रतिभाशाली है। श्री कस्तूरचन्द जी की दो सुपुत्रियाँ हैं, जो वडी धर्मशीला है।

स्व० पिताश्री चुनीलाल जी लोढा की स्मृति मे आपने सहयोग प्रदान किया है।

स्व० श्रीमती धनवती देवी लोढा, दिल्ली

आप श्रीमान कस्तूरचन्द जी लोढा की धर्मपत्नी थी।

स्वभाव से वडी मधुर, विनम्र, समझदार और धर्मपरायण। तपस्या मे विशेष रुचि थी। १ से ६ लेकर तक तपस्याए की थी। दो वार वर्षीतप भी किया।

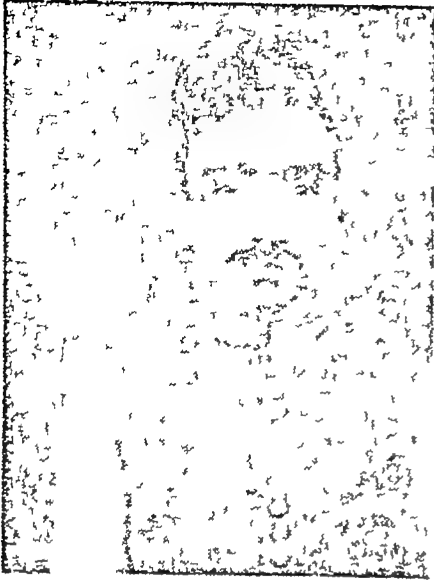
आपके सुपुत्र श्री रघुवीरसिंह जी लोढा एक अच्छे उदार सज्जन है। सदा हँसमुख, मिलनसार और हर काम मे उत्साही हैं। आप जवाहरात का व्यापार करते हैं। आपकी धर्मपत्नी सौ० प्रेमवती जैन भी वडी धार्मिक भावना वाली हैं। माता जी की रुग्णावस्था मे श्री रघुवीरसिंह जी तथा सौ० प्रेमवती जी ने बहुत ही सेवा की तथा धार्मिक सहयोग दिया। स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन मे आपने अच्छा सहयोग प्रदान किया है।

स्व० श्री पन्नालालजी घोड़ावत (दिल्ली) की स्मृति में

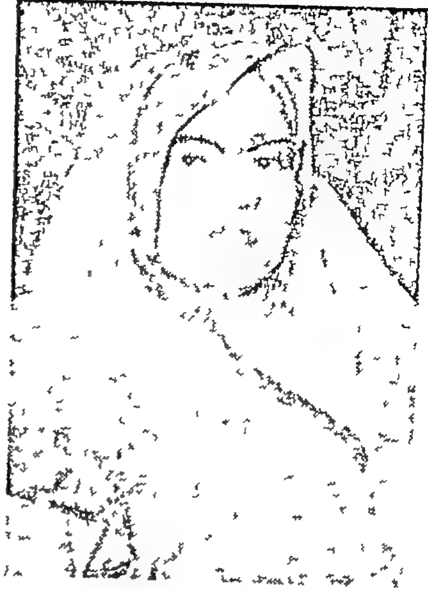
स्व० श्री हजारीलाल जी घोड़ावत के सुपुत्र श्रीमान (स्व०) पन्नालाल जी घोडावत एक कर्मठ समाज सेवी तथा धर्मप्रेमी सज्जन थे। स्वभाव से बड़े सरल तथा शातिप्रिय थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्दनदेवी जी भी आपकी तरह ही वडी धार्मिक, सरलमना और विनम्र स्वभाव की हैं। आपने अठाई तक तपस्या भी की है।

आपके सुपुत्र श्री रूपचन्दजी घोड़ावत भी पिताजी की तरह ही समाज-सेवा की भावना रखते हैं, धार्मिक कार्यों मे उत्साही हैं। तथा आपके दो पौत्र हैं श्री विमलचन्द जी एव श्री कमल चन्द जी। श्री कमलचन्द जी कर्मठ कार्यकर्ता हैं। सामाजिक तथा धार्मिक समारोहो मे वडी दिलचस्पी लेते है और समय-समय पर सहयोग भी करते हैं।

श्रीमती कुन्दनदेवीजी ने स्वर्गीय श्री पन्नालाल जी की स्मृति मे प्रकाशन-सहयोग किया है।

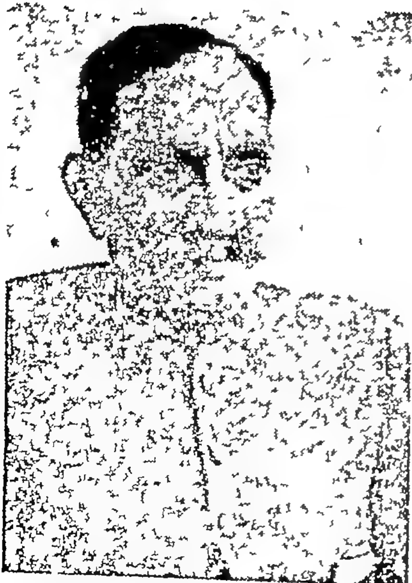


श्री कस्तूरचन्द जी लोढा, दिल्ली

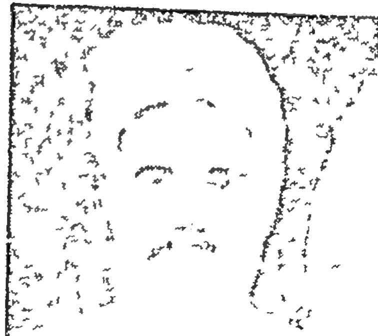


स्व० श्रीमती धनवतीदेवी लोढा

सहयोगी सज्जन



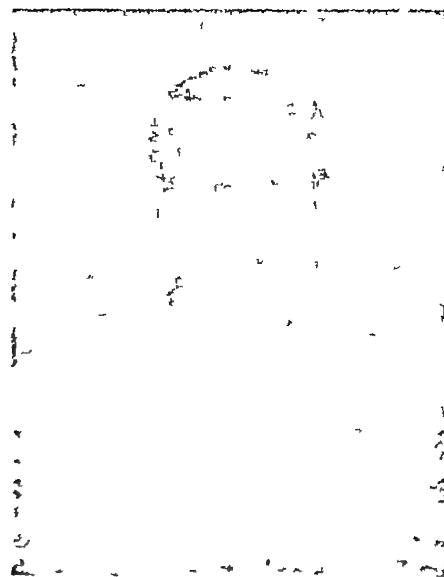
श्री पन्नालाल जी घोडावत, दिल्ली



श्री भवरीलाल जी वैद, दिल्ली



श्री हजारीलाल जी बैद' दिल्ली



श्री हेमचन्द जी नखवाल, दिल्ली;

सहयोगी सज्जन



श्रीमती विनयकुमारी रावयान



श्रीमती धनवतीदेवी छजलानी



स्व० भंवरीलाल जी वैद (खंडेला) की स्मृति मे

स्व० श्रीमान भंवरीलाल जी वैद खडेला के निवासी थे।

आप धर्म मे अच्छे श्रद्धालु थे। तपस्याए भी करते थे। कई अठाइया भी की थी। प्रत्येक शुभ-कार्य मे उदारतापूर्वक सहयोग दान भी करते थे।

आपके चार सुपुत्र हैं—श्री ताराचन्द जी, श्री शातिलाल जी, श्री निहालचन्दजी तथा श्री ज्ञानचन्द जी। चारो ही सज्जन पिताजी के आदर्शो का अनुसरण करने वाले हैं। देहली मे जवाहरात का व्यवसाय करते हैं। स्व० पिताजी की स्मृति मे चारो बन्धुओ ने सहयोग दिया है।



स्व० हजारीलाल जी वैद (खण्डेला) की स्मृति में

खडेला निवासी श्रीमान हजारीलाल जी वैद बडे ही धर्म प्रेमी और तपस्वी श्रावक थे। आपने जीवन मे अनेक तपस्याएँ की। विशेप रूप मे अठाई तप की तपस्याएँ। तपस्वी होने के साथ-साथ आप उदार दानशील वृत्ति के थे।

आपके सुपुत्र श्री वशीलाल जी वैद भी आपकी तरह उदार और सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यो मे सदा भाग लेते है, और अपना योगदान भी करते हैं। देहली मे आपका जवाहरात का व्यवसाय है।



स्व० श्रीमती विनयकुमारी राक्यान, दिल्ली

आप समाज सेवी श्री छगनलाल जी राक्यान की धर्मपत्नी थी। बचपन से ही धार्मिक सस्कारो मे पली थी अत धार्मिक भावना, दया, तपस्या आदि के शुभ सस्कार आपमे गहरे थे।

आपके दो पुत्र श्री आदीश्वरकुमार जी एव श्री शातिकुमार जी हैं। आपकी पुत्री श्रीमती मजूकुमारी जी हैं। श्री आदीश्वर कुमार जी आपकी भाति ही धर्मप्रेमी और समाज सेवी व्यक्ति हैं। आप अनेक समाज-सेवी सस्थाओ से सम्बद्ध है। आप दीन—असहायो की सहायता करने मे सदा आगे रहते हैं।



स्व० श्रीमती धनवती देवी, छजलानी, दिल्ली

आप श्रीमान पन्नालाल जी छजलानी की धर्मपत्नी थी। धार्मिक भावना के साथ ही तपस्या मे अधिक रुचि थी। अठाई व ११ तक की तपस्याए की। स्व० श्रीमती धनवती जी के पिता श्री चम्पालालजी चौरडिया भी बहुत धर्मप्रेमी थे।

श्रीमान पन्नालाल जी स्वय भी अनेक समाजसेवी तथा धार्मिक सस्थाओ मे सम्बद्ध है। बडे उत्साही और कर्मठ समाज सेवी है। आपके सुपुत्र श्री तुमुल कुमार जी भी बडे समझदार तथा धर्मप्रेमी युवक है।



श्रीमान शेरमलजी जैन, सिकन्दराबाद

आन्ध्रप्रदेश की राजधानी सिकन्दराबाद का स्थानकवासी जैन समाज धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों मे सदा प्रगतिशील रहा है। वहाँ के श्वे० स्थानकवासी जैन श्रावक सघ के उपाध्यक्ष हैं—

श्रीमान शेरमल जी । आप बडे ही मिलनसार और हँसमुख हैं। आपका हृदय उदार तथा धार्मिक श्रद्धा से परिपूर्ण है।

आपका सर्राफा (सोना-चांदी) का अच्छा व्यवसाय है तथा आन्ध्रप्रदेश पान ब्रोकर्स ऐसोसियेशन के आप अध्यक्ष हैं। अनेक धार्मिक तथा सामाजिक उत्तरदायित्वो को सम्भाले हुये हैं।



श्रीमान हेमचन्द जी संखवाल, दिल्ली

श्री स्थानकवासी जैन समाज (चादनीचौक देहली) के जाने-माने श्रावक सेठ स्व० श्री जगन्नाथ जी सखवाल के सुपुत्र है—श्रीमान हेमचन्द जी सखवाल। आप भी स्व० पिताजी की तरह समाज-सेवा, धर्म-प्रभावना आदि मे उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं। और उदारता पूर्वक दान देते हैं। आपका जवाहरात का बहुत अच्छा व्यवसाय है।

आपकी धर्मपत्नी सौ० श्रीमती रत्नप्रभा जी भी बडी समझदार उदार हृदया और धर्मशीला श्राविका है। आपका भवन, महावीर जैन भवन (चांदनी चौक) के सबसे निकट होने से साधु-सतियो की सेवा तथा सुपात्र दान का सर्वाधिक लाभ भी आपको मिलता रहता है। आप बडी श्रद्धा और विवेकपूर्वक सेवा करती रहती हैं।

विनोद कुमार ज्ञान चन्द जैन, दिल्ली

आप धार्मिक प्रवृति के उदार और परोपकारी सज्जन है । आपका नया वाजार क्षेत्र मे अनाज का थोक व्यापार है । सदा समाज सेवा व धार्मिक कार्यों मे आगे रहते है ।

श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन मे आपने उदार सहयोग प्रदान किया है ।

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ के उदार सहयोगी

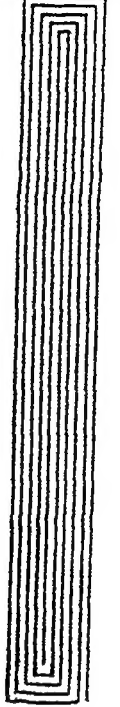
शुभ नामावली

२५१) श्री शाह गुलाबचन्दजी भँवरलाल जी मेहता, उदयपुर
२५१) श्री मोतीलालजी हीरालालजी वोरा, वकील अहमदनगर
२५१) श्री सुखमालचन्दजी जैन, दरियागज दिल्ली
२०१) श्री भीकामलजी लोढा, मालीवाडा, दिल्ली
२०१) श्री कस्तूरमलजी हेमन्तकुमारजी सिंघी, मालीवाडा, दिल्ली
२०२) श्री तखतमलजी गहरीलालजी भटेवरा, अहमदावाद
२०१) श्री प्यारेलालजी मदनलालजी सोनी, अजमेर
१५१) श्री श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन सघ मोती कटरा, आगरा
१०१) श्री कनकमलजी रूपचन्दजी ढावरिया, अजमेर
१०१) श्री सौभागमलजी चपलोद, अजमेर
१०१) श्री हगामीलालजी चाँदमलजी गोखरू, अजमेर
१०१) श्री कस्तूरमलजी साड, अजमेर
१०१) श्री कवरलालजी भागचन्दजी चौधरी, अजमेर
१०१) श्री भेदीलालजी कपूरचन्दजी जैन, अजमेर
१०१) श्री सूरजकरणजी लोढा, अजमेर
१०१) श्री घीसालालजी लालचन्दजी वीरवाल, अजमेर
१०१) श्री रिखवचन्दजी जैन वकील आर्यनगर, अजमेर
१०१) सौ० प्रेमकुँवर वाई, अजमेर
१०१) श्रीमान थानचन्दजी मेहता (अध्यक्ष श्री० व० स्था० श्रीसघ) जोधपुर
१०१) श्रीमान सुमेरमलजी साहव मेड़तिया (मन्त्री श्री० व० स्था० श्रीसघ) जोधपुर
१०१) श्रीमान अगरचन्दजी फतेहचन्दजी (कोषाध्यक्ष श्री० व० स्था० श्रीसंघ) ,,
१०१) श्रीमान सुजानमलजी सचेती जोधपुर
१०१) श्रीमान खेमराज जी सचेती ,,
१०१) श्रीमान हरकचन्द जी मेहता ,,
१०१) श्रीमान कनकराज जी गोलिया ,,
१०१) श्रीमान चम्पालालजी मानमलजी वाफना, जोधपुर
१०१) श्रीमान गणपतमलजी सुराणा ,,
१०१) श्रीमान नेमीचन्द जो कोठारी ,,
१०१) श्रीमान निहालचन्दजी गजराज जी भण्डारी ,,
१०१) श्रीमान मेघराजजी सुमेरमलजी साड ,,



१०१) श्रीमान जेठमलजी साहब "चूडी वाले", जोधपुर
१०१) श्रीमान मूलचन्द जी गोलेच्छा, जोधपुर
१०१) श्रीमान पारसमल जी सांखला, जोधपुर
१०१) श्री अतरचन्द जी जैन, मालीवाडा, दिल्ली
१०१) कु० अजू तातेड, छीपीवाडा, दिल्ली
१०१) श्री विरधीचन्द जी वैद, मालीवाडा, दिल्ली
१०१) श्री अजीत प्रसाद जी जैन, दिल्ली
१०१) श्री सुरेशचन्द जी जैन, दिल्ली
१०१) श्री युद्धवीर सिंह जी जैन, दिल्ली
१०१) श्री महेन्द्रसिंह जी पारख, मालीवाडा, दिल्ली
१०१) सौ० निर्मला पारख, मालीवाड़ा, दिल्ली
१०१) श्री श्यामसुन्दर जी लोढा, मालीवाडा, दिल्ली
१०१) श्री उदयसिंह जी जैन, कश्मीरी गेट दिल्ली
१०१) श्री पदमचन्द जी लोढा, मालीवाडा, दिल्ली
१०१) श्री रतनलाल जी लोढा (पाली वाले), दिल्ली
१०१) श्री चन्दूलाल जी सी० झवेरी, शक्तिनगर, दिल्ली
१०१) श्री जसवन्तराय जी सी० शाह, प्रेमनगर, दिल्ली
१०१) श्रीमान मुन्नालाल जी राजमल जी पीपाडा, ब्यावर
१०१) श्री पुखराज जी नौरतमल जी लोढा, ब्यावर
१०१) श्री सम्पतराज शान्तिलाल लोढा, ब्यावर
१०१) श्री मदनलाल जी नौरतमल जी संचेती, ब्यावर
१०१) श्री पुनमचन्द जी नौरतमल जी बावेल, ब्यावर
१०१) श्री चतुरभुज जी उत्तमचन्द जी गुगलिया, ब्यावर
१०१) श्री मोखमसिंह जी चांदमल जी मेहता, ब्यावर
१०१) श्री चांदमल जी वीरेन्द्र कुमार जी मेहता, मदनगज (किसनगढ)
१०१) श्री मांगीलाल जी चौरड़िया, मदनगज (किसनगढ़)
१०१) श्रीमती हंगामकवर बाई, धर्मपत्नी—श्री पुखराज जी कोटेचा, मदनगज (किसनगढ)
१०१) सौ० बादामबाई, धर्मपत्नी श्री पन्नालाल जी बरडिया, मदनगज (किसनगढ)
१०१) श्री लादूलाल जी नेमीचन्द जी बम्ब, ओसवाली मोहल्ला, मदनगज (किसनगढ)
१०१) श्रीमती इचरजबाई धर्मपत्नी स्व० गोविन्दसिंह जी मुणोत, मदनगज (किसनगढ)
१०१) श्रीमती तारमबाई धर्मपत्नी श्रीमान भवरलाल जी सोनी, मदनगज (किसनगढ)
१०१) श्रीमान मनोहरसिंह जी रतनलाल जी धूपिया (कादेडावाला), मदनगज (किसनगढ)
१०१) श्री हनुमन्तसिंह जी लोढा, बालाजी रोड, विजयनगर
१०१) श्री ताराचन्द जी पोखरना, विजयनगर
१०१) श्री सुगनचन्द जी टावरिया, विजयनगर





१०१) श्री मदनलाल जी नावेडा, विजयनगर
१०१) श्री सोहनलाल जी कावडिया, विजयनगर
१०१) श्री सोहनलालजी वच्छराज जी भण्डारी, विजयनगर
१०१) श्री उदयमल जी खाव्या, विजयनगर
१०१) श्रीमती सन्तोषवाई, धर्मपत्नी गजराज जी तातेड, विजयनगर

सवाई माधोपुर में (वर्षीतप करने वाली वहनो की ओर से)

१०१) सौ० रामप्यारी देवी, रामकल्याण जी पसारी, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती वापूवाई नन्दलाल जी ठेकेदार, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती वादामवाई सौभागमल जी डेकवावाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती अनोखीवाई धूलीलाल जी पटेल, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती कचनवाई मोतीलाल जी मोटर वाला, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती फूलावाई हीरालाल जी मोटर वाला, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती कल्याणीवाई कन्हैयालाल जी चौधरी, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती चौसरवाई लड्डूलाल जी चौधरी, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती चलतीवाई चौथमलजी खाजणा वाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती अनारवाई कालुलाल जी वावई वाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती फूलावाई रतनलाल जी सौंफ वाले, सवाई माधोपुर
१०१) श्रीमती दौलतवाई धर्मपत्नी श्री मंगलचन्द जी वीरवाल, सवाई माधोपुर

१०१) श्रीयुत पवन कुमारजी पालावात (पिता श्री रतनलालजी पालावत की स्मृति मे), जयपुर
१०१) श्रीयुत एस० एल० जैन, जयपुर
१०१) श्री विमलसिंह जी मेहता, जयपुर
१०१) श्री निहालचन्द जी लोढा, जयपुर
१०१) श्री नथमल जी जैन (वाईसगोदाम), जयपुर
१०१) श्री शिवराज जी खाव्या, रामगढ़
१०१) श्री विमलचन्द जी छाजेड, भीलवाडा
१०१) श्री चाँदमल जी गोरीलाल जी नागोता, निम्वाडा
१०१) श्री राधाकिशन जी मोहनलाल जी वीरवाल, नीमच
१०१) श्री फूलचन्द जी लड्डूलाल जी पोरवाल जैन, इन्दौर
१०१) श्री भवरलाल जी कल्याणमल जी जैन, इन्दौर
१०१) श्री कल्याणमल जी मूलचन्द जी जैन, इन्दौर
१०१) सौ० मजुलावहन, स्नेहलता गज, इन्दौर
१०१) श्री कन्हैयालाल जी प्रभुलाल जी जैन वुकसेलर, इन्दौर
१०१) श्री व० स्था० जैन दर्शनार्थी सघ, इन्दौर
१०१) श्री अमरचन्द जी प्रकाशचन्द जी कक्कड, सरवाड
१०१) श्री हरकचन्द जी जालमसिंह जी मेहतवाल, केकडी
१०१) श्री राजमल जी पारसमल जी पोरवाल, कोटा
१०१) श्रीमती उमरावकवरवाई धर्मपत्नी थानमल जी मेहता, इच्छावर



१०१) श्री सोहनलाल जी शकरलाल जी जैन, मालेगाँव
१०१) सेठ श्री चम्पालाल जी धारीवाल, पाली
१०१) सौ० रोशनदेवी धर्मपत्नी श्री शातिलाल जी मंडलेचा, खाचरौद
१०१) सौ० पुष्पादेवी धर्मपत्नी श्री नवीन कुमार जी मंडलेचा, खाचरौद
१०१) श्री पुरुषोत्तमदास जी मालेरकोटला वाले
१०१) श्री जे० दीपचन्द जी बोकडिया, मद्रास
१०१) श्री जे० पारसमल जी बोकडिया, मद्रास
१०१) श्री वसन्तलाल जी चाँदमल जी वोकडिया, कान्हूर पठारकर, सोनई
१०१) श्री रसिकलाल जी के० पारिख, जोहरी केम्बे
१०१) एक सज्जन (गुप्त भेंट), मद्रास
१०१) श्री महावीरचन्द जी वरमेचा, मद्रास
१०१) श्री जयचन्द जी कोचेटा, रावर्टसन पेठ, K. C F
१०१) श्री जयचन्द जी चौधरी, अलवर
१०१) सौ० भावना वैन धर्मपत्नी डा० पुखराज जी देसरला, देवगढ (मदारिया)
१०१) श्री माणकचन्द जी हसराज जी वेताला, वागलकोट
१०१) श्री शशिकान्त जी जैन, (पूना निवासी) सेलम
१०१) श्री हरकचन्द हस्तीमल जी सचेती, पूना
१०१) श्री बलवन्तसिह जी सिंघवी (शाहपुरा वाले), मन्दसौर
१०१) श्रीमती पानवाई भालोट वाली, मन्दसौर
१०१) श्रीमान भवरलाल जी नवरतनमल जी सकलेचा, मेटूपालियम (तमिलनाडु)
१०१) श्री चन्द्रकात जी खिमानी, बैंगलोर
१०१) श्री पोपट लाल जी रामचद जी कणविट, पूना
१०१) स्व० श्रीमती तोतीवाई धर्मपत्नी श्री मेहरचद जी वकील, गुडगांवा
१०१) श्री मास्टर साहब मगलचन्दजी सकलेचा, दरगाह बाजार, अजमेर
१०१) श्री अमरचन्दजी कासवा, लाखन कोटडी, अजमेर
१०१) श्री गोविन्दरायजी फूलचन्दजी वीरवाल, ऊन के व्यापारी, अजमेर
१०१) श्री आर० सी० जैन, ८३, एवरेस्ट अपार्टमेंट, माउट प्लीजेंट रोड, मालावार हिल, वम्बई न० ६
१०१) श्री आर० सी० जैन, जैन ज्वैलर्स, (ग्रहरत्न विक्रेता) कदम कुआं, पटना (बिहार)
१०१) श्री ताराचन्दजी कोठारी, वासवाड़ा (राज०)

